



टूटे तार

[श्रीयुत हरिऔध]

उँगलियों से छिड़ते जिस काल ,
सुधा की बूँदें पाते कान ;
धुन सुने सिर धुनते थे लोग ;
तान में पड़ जाती थी जान ।

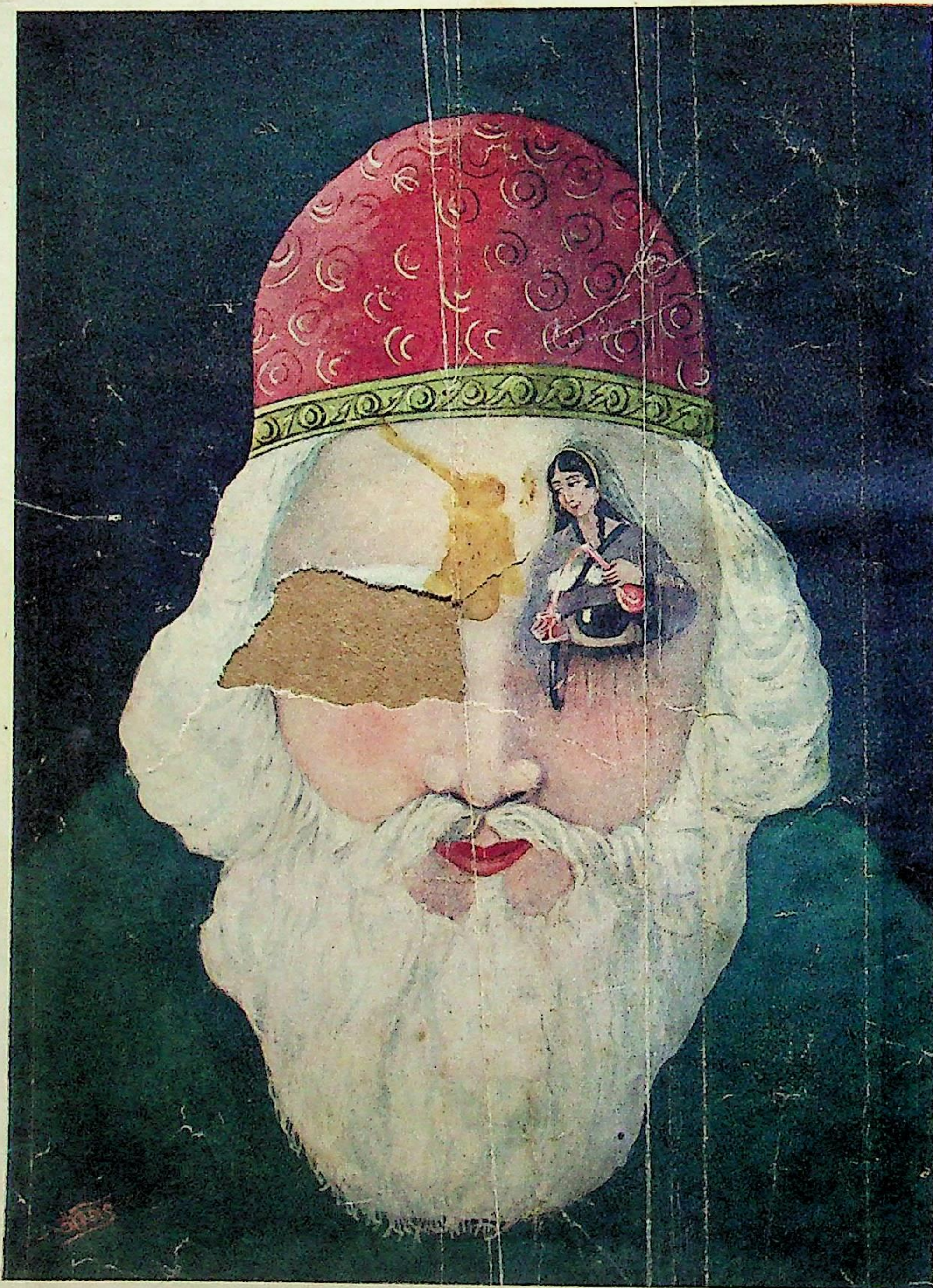
रगों में रम जाती थी रीझ ,
कंठ का जब करते थे संग ;
मी[illegible] बनते [illegible] ;
[illegible] ।

नि[illegible] इनमें [illegible]
गलों [illegible] बनते [illegible]
सुरों [illegible] लती ऐसी लोच ,
बरस जाती थी जो रस-धार ।

मनों को जो ले लेती मोल ,
लहर वह इनसे पाती बीन ;
[illegible] गूँज ,
[illegible] छीन ।



बोल थे इनके ब[illegible]
कभी इनमें भी थी झंकार ;
करेगा प्यार इन्हें अब कौन ,
आज तो हैं ये टूटे तार ।



प्रेम का नशा

[चित्रकार—श्रीअजितकुमार बोस]

ما در پیالہ عکس رخ یار دیدہ ایم ❀ اے بے خبر ز لذت شرب مدام ما

(हाफ़िज़)

साधना औषधालय
ढाका (बंगाल)

अध्यक्ष—श्रीयोगेशचंद्र घोष एम्० ए०, एफ़्० सी० एस्० (लंडन)

यदि रोग की अवस्था ठीक-ठीक लिखी गई है और हमारी राय के अनुसार काम किया जाय, तो रोग चाहे जैसा हो फ़ायदा अवश्य पहुँचेगा। हमारे औषधालय का बड़ा सूचीपत्र मँगाकर पढ़िए।

मकरध्वज (स्वर्णसिंदूर)

(विशुद्ध स्वर्णघटित) मूल्य तोला ४) रु०

मकरध्वज—शास्त्रोक्त रीति से स्वर्ण, पारा, आमलासार, गंधक इत्यादि से तैयार किया गया है। सर्व-रोगनाशक अद्भुत औषधि है। चाहे जैसा रोग हो, इसके सेवन से दूर हो जाता है।

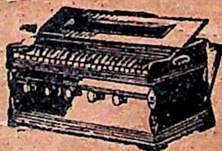
च्यवनप्राश

भयंकर-से-भयंकर श्वास और कास, दमा और खाँसी और फेफड़े के संपूर्ण रोगों के लिये अत्यंत लाभकारी है। सुंदरता, ताक़त तथा जीवन को बढ़ानेवाला सबसे उत्तम रसायन है। मूल्य १ सेर का ३) रु०।

शुक्रसंजीवनी

शुक्रसंजीवनी—धातुदुर्बलता, शुक्रहीनता, स्वप्नदोष, नपुंसकत्व इन सबों के लिये अत्यंत लाभदायक है। धातु-दुर्बलता, नपुंसकता, स्वप्नदोष, बुढ़ापा, क्षयरोग, गठिया, बहुमूत्र, बदहज़मी, उन्माद इत्यादि रोग नष्ट हो जाते हैं। मूल्य १ सेर का दाम १६) रु०।

हारमोनियम और ग्रामोफ़ोन



हमारे यहाँ उत्तम
और
उचित मूल्य पर मिलते हैं



रेकार्ड, सब प्रकार के बाजे, फ़ोटोग्राफ़ी, बायस्कोप, बेतार का तार और साइकिल के लिये हिंदी-सूचीपत्र बिना मूल्य मँगाकर देखिए।

घर बैठे फ़ोटोग्राफ़ी सीखिये

हिंदी फ़ोटोग्राफ़र

प्रथम भाग—नवसिखियों के लिये। मूल्य १)

द्वितीय भाग—ख़राब तस्वीर को उत्तम बनाना, छोटे फ़ोटो को बड़ा करना और सब प्रकार के सोल्यूशन इत्यादि। मूल्य २) दोनो भाग सचित्र हैं।

हिन्दी ग्रामोफ़ोन रेकर्ड सङ्गीत

अर्थात् बड़े प्रसिद्ध प्रसिद्ध गवैयोंके गाये हुए गानोंकी उत्तमोत्तम और मनोरंजक पुस्तकें

प्रथम भाग—५५० रेकर्डों के ११०० गाने मूल्य १।।।) रेशमी जिल्द सहित ३।)

द्वितीय भाग—५०० रेकर्डों के १००० गाने मूल्य १।।।) रेशमी जिल्द सहित २।।)

तृतीय भाग—कामिक हंसी, ड्रामे और जोनोफोन के गाने १।।।) रेशमी जिल्द २।।)

चतुर्थ भाग—मारवाड़ी, नैपाली, मराठी, सिंधी और बंगला रेकर्डों के गानोंका हिन्दी में आनन्द लिजीये— मूल्य केवल मात्र १।) रुपया रेशमी जिल्द १।।।)

हेड आफ़िस—
५/१ धमतल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता

एम० एल० साहा,

ब्रांच—
७ सी लिंडसे
स्ट्रीट, कलकत्ता



दो हज़ार वर्ष में नई बात !

भर्तृहरि महाराज के शतक सचित्र !!

६३ हाफ़टोन चित्र ! १४४० सफ़ों में ग्रंथ की समाप्ति !!

मूल श्लोक, हिंदी-अनुवाद, सरल व्याख्या,

टीका, कविता-अनुवाद और

अँगरेज़ी-अनुवाद !

महाराज भर्तृहरि के नीति, वैराग्य और शृंगार-शतक सारे संसार में मशहूर हैं । ऐसा कौन पढ़ा-लिखा है, जो उनकी बाबत नहीं जानता ? उनके अनेकों अनुवाद हो चुके हैं, पर आज तक उनका ऐसा विस्तृत और सचित्र अनुवाद कहीं नहीं हुआ। तीनों शतकों में कोई ६३ मनोमुग्धकारी हाफ़टोन चित्र हैं । चित्र देखते ही आत्मा फड़क उठती है । श्लोक का भाव चट दिमाग़ में घुस जाता है । अगर एक-एक चित्र का दाम दो-दो आना भी समझें तो १०) के तो चित्र ही हो जाते हैं । १४४० सफ़ों की पुस्तकें मुफ़्त में हैं। ऊपर मूल श्लोक, नीचे हिंदी-अर्थ, उसके नीचे विस्तृत टीका, उसके नीचे कविता-अनुवाद और शेष में अँगरेज़ी-अनुवाद है । हम ठीक कहते हैं, ऐसा अनुवाद आपने ख्वाब में भी न देखा होगा । अनुवाद ही नहीं है, भर्तृहरि महाराज के श्लोकों के भावों से टक्कर खानेवाली उर्दू-शायर, संस्कृत-कवियों और अँगरेज़ी, फ़ारसी के विद्वानों की वाणियाँ जगह-ब-जगह अँगूठी में हीरों की तरह अलग-अलग जड़ी हुई हैं । आपने अगर ये तीनों शतक देख लिए, तो संसार के नीति, वैराग्य और शृंगार पर कहनेवालों की अनमोल कविताएँ और वाणियाँ भी देख लीं । आप इन्हें अवश्य देखिए । इनके लिये आप भूलकर भी लालच मत कीजिए ।

नीति-शतक

राजा से लेकर किसान तक को सुख और शांति से जीवन बिताने के लिये नीति की जरूरत है । नीति जानने से ही राज्य चलता है । नीति से ही कारोबार में सफलता मिलती है। नीति से ही गृहस्थी में सच्चा सुख मिलता है । नीति जाने बिना सुख कहाँ ? अगर आप सच्चा सुख भोगना चाहते हैं, अगर आप सफलता के साथ जीवन यापन करना चाहते हैं, अगर आप स्त्री और पुत्र का सच्चा आनंद भोगना चाहते हैं, तो आप हमारा "नीति-शतक" मँगाइए । इसमें अनुवादक महोदय ने अपना पचास साल का अनुभव भी लिख दिया है, इसलिये यह ग्रंथ अनमोल हो गया है । अगर आप नीतिशतक पढ़ लेंगे, तो आपकी चातुरी की सीमा न रहेगी, संसार-यात्रा में आप कभी भी धोखा न खायँगे, धन और ऐश्वर्य आपके चरणों में लोटेंगे, और सभा-सुसाइटियों में आपकी वाह-वाह होगी । मूल्य अजिल्द का ४॥) और सजिल्द का ५)

वैराग्य-शतक

यह संसार सुपना है । मृत्यु ने जन्म को, बुढ़ापे ने जवानी को, कुढ़नेवालों ने गुणों को, तथा चंचलता ने धनैश्वर्य को ग्रस रक्खा है । इस जीवन में कहीं सुख नहीं है । अगर सुख है, तो वैराग्य में है। उसी वैराग्य

(उलटकर पढ़िए)

पर महाराज भर्तृहरि ने १०० अनमोल और अपूर्व श्लोक रचे हैं। एक-एक श्लोक करोड़-करोड़ को भी सस्ता है। उसी वैराग्य-शतक का ऊपर के मुताबिक़ अनुवाद किया गया है। साथ ही देश-विदेश के महात्माओं की वाणियाँ भी जगह-जगह सजाकर बहुमूल्य पुस्तक को अनमोल कर दिया है। वैराग्य पर ऐसी-ऐसी कहानियाँ लिखी हैं कि पढ़कर आत्मा फड़क उठती है। संसार की असारता आँखों के सामने नाचने लगती है। सर्वत्र ही स्वार्थ नज़र आने लगता है।

अगर आपको संसार की असारता और स्वार्थपरायणता का जीता-जागता चित्र देखना है, अगर संसार के जाल से बचना और निकलना है, अगर ग़फ़लत की नींद से जागना है, अनंत-काल तक सच्ची सुख-शांति भोगनी है, जन्म-मरण के झंझटों से बचना और परमानंद-पद * प्राप्त करना है, तो आप हमारा "वैराग्य-शतक" अवश्य देखिए। आपकी आत्मा ग्रंथ देखकर खिल उठेगी। मूल्य अजिल्द का ४) और सजिल्द का ५) है।

शृंगार-शतक

यह शतक नौजवान और रसिक पुरुषों के काम का है। नाम की नसों में भी इसे देखते ही तेज़ी आ जाती है। जिस स्त्री-सुख को काम-शास्त्रवालों ने परमानंद का दूसरा भाई कहा है, उसी के संबंध में इसमें लिखा गया है। जिन मुनिमनमोहिनी रमणियों ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव तक को अपना दास बना रक्खा है, उन्हीं के रूप, यौवन और नाज़ो-नख़रों का वर्णन इसमें है।

अगर आप ललित ललनाओं के हाव-भाव और नाज़ो-नख़रों का आनंद चाहते हैं, उनके गूढ़ रहस्यों को जानना चाहते हैं, अगर सुंदरी वेश्याओं के कपट-जाल से बचना चाहते हैं, अगर अपनी प्यारी स्त्री से सच्चा सुख पाना चाहते हैं, तो हमारा "शृंगार-शतक" अवश्य देखिए। अनुवादक महाशय ने इस शतक में कामशास्त्र या कोकशास्त्र की अनमोल बातें मौक़े-मौक़े से सजाकर इस शतक को भी अनमोल कर दिया है। सच पूछिए, तो यह सच्चा कामशास्त्र है। जिसने जवानी में क़दम रखकर इसे नहीं देखा, उसने कुछ भी न देखा। मूल्य अजिल्द का ३) और सजिल्द का ३।।)

उत्तमता का प्रमाण—नवीन संस्करण

तीनो ही शतकों के नवीन संस्करण हो जाना, उनकी उत्तमता के स्पष्ट प्रमाण हैं। फिर भी हम वहमी लोगों के संतोष-विधानार्थ चंद सम्मतियों के सारांश-मात्र नीचे दिए देते हैं—

साहित्य शास्त्री पं० नर्मदाप्रसादजी मिश्र बी० ए० एडीटर "श्रीशारदा" लिखते हैं—

"इस नीति-शतक में पहले मूल श्लोक, उनके नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या और व्याख्या के अंत में अँगरेज़ी-अनुवाद है। पूर्व और पश्चिम के नीतिकारों की नीतियाँ भी अनेक स्थानों पर दो गई हैं। कहीं-कहीं अनुवादक ने अपना अनुभव भी लिख दिया है, जो खूब हुआ है। श्लोकों के चित्र भी दिए हैं। जिससे पुस्तक में विशेषता आ गई है। इतनी सज-धज देखते हुए ५) मूल्य कुछ भी अधिक नहीं है।"

* वैराग्य-शतक मँगानेवालों को वैराग्य-शतक के अनुवादक का अनुवाद किया हुआ "हिंदी-भगवद्-गीता" भी मँगाना चाहिए। दोनो ग्रंथों से निश्चय ही परमपद की प्राप्ति होगी। गीता का इतना सरल अनुवाद आज तक भारत में और कहीं नहीं हुआ है। मोक्ष चाहनेवालों के लिये अब तो गीता का मूल्य भी ३) से घटाकर २) कर दिया गया है। सजिल्द का दाम ३) है।

(अगले पृष्ठ पर भी पढ़िए)



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष ३ खंड २ | फाल्गुन, ३०७ तुलसी-संवत् (१९८६ वि०)— मार्च, १९३० | संख्या २ पूर्ण संख्या ३२

बाँसुरी

[बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर"]

जमुना-कछारनि पै बन-द्रुम-डारनि पै,
औरै कछू मंजु मधुराई फिरि जाति है;
कहै रतनाकर त्यों नगर-अगारनि पै,
बारनि पै बनत निकाई फिरि जाति है।

नर-पसु-पच्छिन की चरचा चलावै कौन,
पौन-भौन हूँ मैं सरसाई फिरि जाति है;
जहाँ-जहाँ बाँसुरी बजावत कन्हाई वीर,
तहाँ-तहाँ मदन-दोहाई फिरि जाति है।

लाहौर-कांग्रेस

[आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]



हौर में कांग्रेस—इससे प्रथम लाहौर में दो अधिवेशन हो चुके थे, पहला सन् १८६३ में स्वर्गीय दादाभाई नौरोज़ी की अध्यक्षता में और दूसरा सन् १९०० में। परंतु इस कांग्रेस में और उनमें बहुत अंतर था ! वह कांग्रेस अर्ध-सरकारी संस्था थी। लोग बड़े दिन की छुट्टियों का मज़ा लूटने, अँगरेज़ी में सुंदर व्याख्यान झाड़ने और सुनने को इकट्ठे हुआ करते थे। हिंदोस्तानियों को ऊँची नौकरियाँ मिलें—इसी प्रकार के प्रस्ताव होते और उनकी नक़लें सरकार को भेज दी जाती थीं।

कांग्रेस का जन्म—स्वर्गीय देशभक्त सुरेंद्रनाथ बनर्जी को कांग्रेस को जन्म देने का श्रेय मिलना योग्य है। उन्होंने देश में राजनीतिक प्रचार करने और राष्ट्रीयता का भाव भरने को, २६ जुलाई, सन् १८७६ में, कलकत्ते में, इंडियन एसोसिएशन क़ायम किया। श्यामाचरण सरकार उसके सभापति और आनंदमोहन बोस मंत्री बनाए गए। परंतु सच्चे मंत्री तो सुरेंद्रनाथ ही थे। पर चूँकि वह तभी नौकरी से निकाले गए थे, इसलिये राजनीति में अगुआ होना न चाहते थे।

इसी अवसर पर लॉर्ड सालसबरी ने इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा के लिये २१ के बजाय १९ वर्ष की आयु की क़ैद कर दी थी। इस विषय को लेकर इं० ए० ने इसके विरोध में घोर आंदोलन किया। इसके लिये सुरेंद्रनाथजी ने काशी से रावलपिंडी तक और तमाम दक्षिण का दौरा किया। बड़े-बड़े शहरों में आपने भाषण दिए। अलीगढ़ में सर सैयद अहमद सभापति बने। दक्षिण के काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग, महादेवगोविंद रानाडे इस आंदोलन में आपके साथी हुए। अंत में श्रीलालमोहन घोष इँगलैंड की कामन्स सभा में इसी उद्देश्य से भेजे गए। अंत को सिविल सर्विस-संबंधी नियमों में आवश्यक सुधार कर दिए गए।

१८७७ में, दिल्ली में, महारानी विक्टोरिया का दर्बार हुआ। वहाँ बड़े-बड़े राजे और विद्वान् आए। सुरेंद्रनाथजी हिंदू-पेट्रिएट के तौर पर उसे देखने गए। उन दिनों देश में भारी अकाल पड़ रहा था। पर वहाँ की फ़िज़ूलख़र्ची और ठाट देखकर वह विचलित हुए। देश की सार्वजनिक शक्ति को एकत्र करने के विचार इसी तरह उनमें उत्पन्न हुए।

सन् १८८० में लॉर्ड रिपन गवर्नर जनरल होकर आए। प्रधान मंत्री ग्लेडस्टन ने भारत की अशांति देखकर ही उन्हें भेजा था। इन्होंने अफ़ग़ानिस्तान से संधि की, और वैज्ञानिक सीमा-प्रांत की अपेक्षा प्रजा की शांति को अधिक संतोष-जनक समझा। इन्होंने १८७८ के देशी अख़बारों के नियंत्रण-संबंधी क़ानूनों को रद कर दिया। ज़िला-बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियाँ क़ायम कीं।

सन् १८८२ में सर सी० पी० एलबर्ट ने कौंसिल में यह प्रसिद्ध बिल रक्खा, जिसका मतलब यह था कि गोरे अभियुक्तों का फ़ैसला भी काले मैजिस्ट्रेट कर सकें। ऐंग्लो-इंडियन लोगों में भारी तूफ़ान उठा। इससे अँगरेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों के मन में यह विचार पैदा हुआ कि गोरे लोग हमें तुच्छ ही समझते हैं। जगह-जगह संस्थाएँ स्थापित होने लगीं। १८८४ में, बंगाल में, जितेंद्रमोहन ठाकुर के नेतृत्व में, नेशनल लीग की स्थापना और एक अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शिनी हुई। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने उत्तर-भारत का तीसरा दौरा किया, तथा राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता पर ज़ोरदार भाषण दिए। इधर १८८५ में बंबई प्रेसिडेंसी एसोसिएशन का जन्म हुआ। श्रीफ़ीरोज़शाह मेहता, काशीनाथ तैलंग, दीनशाएदलजी वाचा इसके संयुक्त मंत्री हुए।

परंतु इन सभी सभाओं की सीमा प्रांतों में बद्ध

थी। इंडियन एसोसिएशन के सिवा सबका उद्देश्य भी प्रांत में ही काम करना था। पर देश-भर की समस्याओं का विचार करने की भावना देश में उत्पन्न हो गई थी।

मिस्टर ह्यूम, जो कांग्रेस के पिता कहे जाते हैं, सन् ५७ का विद्रोह देख चुके थे। वह उन दिनों इटावे के कलेक्टर थे। १८७० में वह भारत-सरकार के स्वराष्ट्र-सचिव रहे, फिर सन् १८७१ से १८७६ तक लगान, कृषि और व्यापार-विभाग के मिनिस्टर रहे। इन उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्यों में रहने पर आपको देश की परिस्थिति देखने का बारीकी से अवसर मिला। देश की जनता एक मत से उठ खड़ी हो, तो कैसी विपद् उठ खड़ी हो सकती है, यह वह समझे हुए थे। सन् १८८२ में उन्होंने नौकरी छोड़ी, और शिमले में रहने लगे। आपने लॉर्ड लिटन का कठोर शासन और उसके बाद लॉर्ड रिपन का शांत प्रोग्राम देखा था। वह गोरों के जोश और देश के असंतोष पर गंभीर विचार करने लगे। उन्होंने सोचा, वैध आंदोलन का मार्ग खोलकर यह असंतोष रोका जा सकता है। यह विचारकर इन्होंने सन् १८८४ में एक इंडियन नेशनल यूनियन की स्थापना की। इसने १८८५ में, दिसंबर में, देश-भर के प्रतिनिधियों को एकत्र करने की तैयारी की। भारत के मध्य भाग में होने के कारण इसके लिये पूना स्थान नियत किया गया। उद्देश्य राष्ट्रीय उन्नति तथा आगामी वर्ष के लिये राजनीतिक कार्य थे।

चिपलूणकर स्वागतकारिणी के सभापति बने। ह्यूम साहब का विचार इस सभा के द्वारा केवल सामाजिक विषयों पर विचार करना था। पर तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफ़रिन ने उन्हें राजनीतिक सभा बनाने की सलाह दी। लॉर्ड डफ़रिन ने उनसे कहा—शासन-सूत्रधार की हैसियत से मुझे लोगों की वास्तविक इच्छा जानने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यदि कोई ऐसी ज़िम्मेदार संस्था हो, जिससे सरकार को देश की इच्छा का पता चलता रहे, तो बड़ी सुविधा हो। १८८५ में, शिमले में, ह्यूम साहब और वायसराय से इस संबंध में बातचीत भी हुई। उसमें वायसराय ने यह भी कहा कि इसमें प्रांत के गवर्नर की अध्यक्षता न रहे, जिसमें लोगों को संकोच न हो। यह तजवीज़ नेताओं ने भी पसंद की। वायसराय ने यह कह दिया था कि उनका नाम इस संबंध में तब तक न प्रकट किया जाय, जब तक वह भारतवर्ष में रहें। यही हुआ भी। इसके बाद ह्यूम साहब इँगलैंड गए, और वहाँ लॉर्ड रिपन, जान ब्राइट एम्० पी०, आर० टी० रेड एम्० पी०, लॉर्ड डलहौसी, वैक्सटन एम्० पी०, स्लैग एम्० पी० और अन्य पुरुषों से भेंट कर अपना अभिप्राय समझा दिया, जिससे कोई ग़लतफ़हमी न होने पावे। यह करके वह नवंबर में भारतवर्ष लौट आए।

अचानक पूने में प्लेग-प्रकोप होने के कारण यह अधिवेशन बंबई में, सन् १८८५ में, श्रीउमेशचंद्र बनर्जी की अध्यक्षता में, ७२ प्रतिनिधियों की उपस्थिति में, हुआ। यह कांग्रेस के जन्म का संक्षिप्त इतिहास है। इसके बाद ४४ वर्ष का इतिहास तो बहुत विस्तृत है। उसे फिर कभी बताया जायगा।

सन् ३० की कांग्रेस से प्रथम की नीति—सन् ३० की कांग्रेस पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में खुले षड्यंत्र की सभा थी। इसमें पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव बहु-सम्मति से पास हुआ। सन् १९०६ में जब कलकत्ते में दादाभाई नौरोज़ी के सभापतित्व में कांग्रेस हुई, तब उसमें स्पष्ट राष्ट्रीयता की गंध आने लगी थी। 'स्वराज्य' शब्द का सबसे प्रथम मंत्रोच्चार उसी समय हुआ था। इसके बाद सन् १९०८ ई० में, इलाहाबाद में, कांग्रेस का ध्येय निश्चित किया गया। उस समय साम्राज्यांतर्गत स्वराज्य की माँग थी। १९२० तक कांग्रेस की यही नीति रही। परंतु नागपुर-कांग्रेस में महात्मा गांधी ने साफ़ कह दिया कि "ब्रिटिश-साम्राज्य के अंदर यदि संभव हो, और ब्रिटिश-साम्राज्य के बाहर यदि ज़रूरत हो।" ९ वर्ष तक यह युग भी क़ायम रहा।

सन् ३० की कांग्रेस—गत वर्ष कलकत्ते की कांग्रेस में महात्मा गांधी ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि ३१ दिसंबर, सन् २९ की रात के १२ बजे तक सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य भारत को न देगी, तो मैं पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष में हो जाऊँगा। इस प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने रात को १२ बजकर ३ मिनट पर पूर्ण स्वाधीनता की

घोषणा की। इस कांग्रेस के सभापति का पद ग्रहण करने के लिये महात्मा गांधी से बहुत विनय की गई थी; परंतु महात्मा गांधी ने यह जवाब दिया कि देश में जो नई उत्तेजना फैली है, उसे रोककर, अपनी ठीक नीति के आधार पर, क़ब्ज़े में कर रखना मेरे लिये अशक्य प्रतीत होता है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि उस प्रवाह को अपने ऊपर से गुज़र जाने दूँ। उन्होंने पं० जवाहरलाल नेहरू को सभापति-पद के लिये पेश किया, और वह चुन लिए गए। देश में इस समय गर्म विचार भरे हुए हैं। यद्यपि लोग देश के लिये साधारण क़ुर्बानी भी करने को तैयार नहीं दीखते, परंतु वे गर्म-से-गर्म प्रोग्राम को अमल में आने का तमाशा देखना अवश्य चाहते हैं। नवयुवक लोग, जिनमें पंजाब, बंगाल और दक्षिण-भारत का ख़ास भाग है, बड़ी उतावली से अपने गर्म विचारों को अमल में लाने की इच्छा करते दीख पड़ते हैं।

वायसराय की ट्रेन पर बम—२३ तारीख़ के प्रातःकाल ७½ बजे निज़ामुद्दीन-स्टेशन और अजमेरी-दरवाज़े के रेलवे केबिन के बीच किसी व्यक्ति ने बम का प्रयोग किया। यह बम बड़ी होशियारी से निज़ामुद्दीन और नई दिल्ली-स्टेशन के बीच ६५२-६ नंबर के खंभे के पास लाइन के नीचे रक्खा था, और उसका संबंध एक बिजली के तार से था, जो मिट्टी के नीचे दबा दिया गया था, और पुराने क़िले की दक्षिणी दीवार से २० गज़ के फ़ासले पर होता हुआ चला गया था। अनुमान होता है कि वहाँ से चौथाई मील के फ़ासले पर कोई शख़्स बैठा था, और बैटरी तार से लगी हुई थी। जहाँ बम रक्खा था, वहाँ से ३० फ़ुट इधर-उधर ज़मीन ढालू थी। यदि ट्रेन पटरी से भी उतर जाती, तो चकनाचूर हो जाती। उस वक़्त घना कुहरा पड़ रहा था। ट्रेन ४० मील की चाल पर दौड़ रही थी। ट्रेन ठीक वहाँ पहुँचने पर धड़ाका हुआ। दो डब्बे बुरी तरह नष्ट हो गए। एक ख़ानसामे को चोट आई। खिड़कियों के शीशे टूट गए। उस स्थान की पटरी २ फ़ीट ६ इंच उड़ गई।

परंतु ट्रेन बिना रुके नई दिल्ली-स्टेशन पर, ठीक टाइम पर, पहुँच गई। बम की ख़बर स्टेशन पहुँचने पर कर्नल हार्वे ने वायसराय को दी। वह उसी क्षण घटना-स्थल पर गए। लाइन पर पुलीस का कड़ा पहरा था, और घटना-स्थल पर भी पुलीस तैनात थी। ठीक इसी दिन लॉर्ड हार्डिंग पर भी बम फेंका गया था। इस संबंध में कुछ आदमी लाहौर में गिरफ़्तार हुए हैं, जो ज़मानत पर छोड़े गए हैं।

वायसराय से नेताओं का सम्मिलन—इसी दिन ३ बजे शाम को महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू, माननीय पटेल, सर तेजबहादुर सप्रू और मि० जिन्ना से वायसराय ने मुलाक़ात की। २½ घंटे तक बहस होती रही। महात्मा गांधी का कहना था कि सम्राट् की गवर्नमेंट की ओर से जब तक यह विश्वास न दिलाया जायगा कि प्रस्तावित राउंड टेबिल कान्फ़्रेंस में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्कीम पर विचार होगा, तथा ब्रिटिश गवर्नमेंट उसका समर्थन करेगी, तब तक कांग्रेस का उसमें भाग लेना कठिन है। वायसराय ने साफ़ तौर पर कह दिया कि कान्फ़्रेंस का उद्देश्य केवल यही है कि उन प्रस्तावों में, जिन्हें गवर्नमेंट ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने पेश करेगी, अधिक-से-अधिक एकमत होने का विचार प्रकट किया जा सके। मेरे लिये अथवा सम्राट् की सरकार के लिये पहले से यह बताना असंभव है कि कान्फ़्रेंस में क्या होगा। पार्लियामेंट की स्वाधीनता कम करना भी संभव नहीं। महात्मा गांधी ने कहा—मैं भारत के राष्ट्र के सामने प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि ३१ दिसंबर तक यदि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य न मिल जायगा, तो मैं पूर्ण स्वाधीनतावादी बन जाऊँगा। अतः शीघ्र ही पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य की बात स्वीकार कर लेनी चाहिए। वायसराय ने जवाब देते हुए कहा—मैं महात्मा गांधी और पं० मोतीलालजी नेहरू की माँगों से, जो उज्र और स्वीकार करने के अयोग्य हैं, सहमत नहीं।

इस प्रकार यह सम्मेलन व्यर्थ गया।

अफ़वाहें—कांग्रेस से प्रथम चारो तरफ़ अनेक प्रकार की अफ़वाहें फैल रही थीं। लोग कहते थे, हवाई जहाज़ और मशीनगनें पंडाल को उड़ा देंगी। कांग्रेस होने ही न दी जायगी। कुछ लोग कहते थे, जवाहरलाल

स्वराज्य-सेना-संग्रह कर युद्ध शुरू कर देंगे । रूस और अमेरिका से मदद मिल रही है। हिंदोस्तान-भर की खुफ़िया पुलीस लाहौर में इकट्ठी हो गई है आदि-आदि ।

सभापति का जुलूस—२९ तारीख़ को ४ बजे पं० जवाहरलाल नेहरू की स्पेशल ट्रेन स्टेशन पर पहुँची । लोगों का कहना है कि इतनी भीड़ लाहौर में पहले कभी नहीं देखी गई । १ घंटे तक सभापति को रास्ता न मिला । प्लेटफ़ार्म पर बैंड बज रहा था । चर्खेदार झंडियाँ थीं । महिलाओं की काफ़ी तादाद थी । स्वयंसेवकों ने सभापति को सलामी दी । जनरल ऑफ़िसर कमांडिंग सरदार मंगलसिंह सफ़ेद घोड़े पर सवार, १०० सवारों के साथ, नेतृत्व कर रहे थे ।

पं० जवाहरलाल नेहरू सफ़ेद घोड़े पर सवार हुए । आगे-आगे अनाथ-आश्रम और अन्य दो संस्थाओं का बैंड बजता था । उसके पीछे कांग्रेस-स्वयंसेवक बीन बाजा और शहनाई बजा रहे थे । उसके पीछे नियमित कांग्रेस-बैंड था । इसके बाद कुमारी जुतशी के संचालन में महिला-स्वयं-सेवक-दल था । इसके पीछे सेनापति मंगलसिंह के नेतृत्व में घुड़सवार-दल था । सरदार शार्दूलसिंह, लाला दुनीचंद (लाहौर), नामधारी सिखों के गुरु और अन्य नेता घोड़ों पर सवार थे । सबके बीचमें पं० जवाहरलाल नेहरू थे । पृष्ठ पर नामधारी सिखों का घुड़सवार-दल था । उसके पीछे हथौड़ा और हँसिया लिए हुए सिखों का बड़ा भारी जत्था पैदल चल रहा था । स्वागत-मंत्री डॉक्टर गोपीचंद भार्गव पैदल ही जुलूस का नियंत्रण कर रहे थे । अनुमान है कि जुलूस में १० लाख मनुष्यों की भीड़ थी । जगह-जगह तोरण बनाकर एवं झंडियों से नगर सजाया गया था, और स्वागत हो रहा था । क्रांतिकारी वाक्यों के मोटो जगह-जगह टाँगे गए थे । पुलीस ने प्रबंध में मदद देनी चाही थी, परंतु कार्य-कर्ताओं ने कह दिया कि यदि हम प्रबंध न कर सकेंगे, तो जुलूस ही न निकालेंगे । नगर के तंग और बने रास्तों पर जुलूस को ३ मील का रास्ता तय करना पड़ा था । अनारकली-बाज़ार में पं० मोतीलाल नेहरू ने अपने योग्य पुत्र पर पुष्प-वर्षा की, और इसके उत्तर में राष्ट्रपति ने उन्हें अभिवादन किया । लाला लाजपत राय के मकान पर जुलूस समाप्त हुआ । वहाँ लाला-जी की धर्मपत्नी के आतिथ्य-रूप उन्होंने चाय पी, और लाजपत-नगर को प्रस्थान किया ।

मूल-मंत्र—मूल-मंत्र या मोटो, जो नगर और पंडाल में लगाए गए, कुछ इस प्रकार के थे—

"हिंदोस्तान के बेताज के बादशाह, हम तेरा स्वागत करते हैं ।"

"बापू ! स्वागत, भूखा भारत तुम्हारी ओर टक-टकी लगाए देख रहा है ।"

"हिंदोस्तानी हिंदोस्तान में आज़ाद होना चाहते हैं ।"

"आज़ादी की लड़ाइयाँ बातों से नहीं जीती जातीं, कामों से जीती जाती हैं ।"

"देश-भक्ति से बड़ा कुछ नहीं है ।"

"जो अपनी आज़ादी खो देता है, वह अपना आधा धर्म खो देता है ।"

"गांधी सत्य की मूर्ति है ; सत्य अमरत्व की मूर्ति है ।"

"जवाहरलाल युवकों का प्रतिबिंब है, युवक कार्य के प्रतिबिंब हैं ।"

"डॉयर और ओडॉयर ने जिस ज़मीन को लाल रंग में रँगा, उसमें हम आपका स्वागत करते हैं ।"

"स्वतंत्रता की वेदी पर अपने को बलिदान कर दो ।"

"हिंदू, सिख और मुसलमान एक हो जाओ या सदा के लिये जहन्नुम में जाओ ।"

पंडाल और लाजपत-नगर—लाजपत-नगर बहुत सुंदर बनाया गया था । रावी के तट पर पट-मंडपों की शोभा देखने योग्य थी । पंडाल एक विशाल शामियाने के नीचे था, जिसमें २० हज़ार आदमी बैठ सकते थे । सभा-पति तथा नेताओं के लिये मंच बनाया गया था । उसी पर स्वागत-समिति, आल इंडिया कांग्रेस-कमेटी के सदस्यों तथा प्रतिष्ठित दर्शकों के बैठने को स्थान था । वेदी के सामने पत्र-प्रतिनिधियों के लिये स्थान थे । आने-जाने के लिये कई मार्ग थे । सर्वत्र खद्दर बिछाया गया था ।

ऋतु—शुरू में वर्षा और बर्फ़ गिरने से बड़ी दिक़्क़त रही । लाजपत-नगर में सब जगह कीचड़ थी । डे

रहे थे । सर्दी ख़ूब कड़ी थी, पर २९ तारीख़ को मौसम साफ़ हो गया ।

आल इंडिया कांग्रेस-कमेटी की बैठक—२७ दिसंबर की शाम को लाजपत-नगर में आल इंडिया कांग्रेस-कमेटी की बैठक हुई । सभापति पं० मोतीलाल नेहरू थे । दर्शक ठसाठस भर रहे थे । प्रारंभ में जनरल सेक्रेटरी पं० जवाहरलाल नेहरू ने गत वर्ष की रिपोर्ट पढ़ सुनाई । इसके बाद सुभाष बाबू ने बंगाल-कांग्रेस-कमेटी का झगड़ा उठाया । इस पर जो विवाद हुआ, उससे नाराज़ होकर सुभाष बाबू तथा कुछ मदरासी सभ्य वहाँ से उठ गए । सुभाष बाबू ने कार्य-समिति से इस्तीफ़ा भी दे दिया । रिपोर्ट पर बहस शुरू हुई । उसमें मदरास-सरकार द्वारा मद्य-निवारण के लिये ४ लाख रुपए की मंज़ूरी की जो बात कही गई थी, उसका विरोध मुथुरंग मुदालियर ने किया । इसके बाद मालवीयजी के नाम ४५,८४२) रु० की रक़म का जो पावना है, उस पर बहस हुई । निश्चय हुआ कि इसका निपटारा महात्माजी व मालवीयजी कर लेंगे । श्रीबदरुलहसन के नाम जो २७००) रु० थे, उनके लिये क़ानूनी कार्रवाही करने का निश्चय प्रकट हुआ । इसके बाद रिपोर्ट स्वीकृत हुई ।

इसके बाद पं० मोतीलालजी ने सभापतित्व का भार पं० जवाहरलाल नेहरू के ऊपर सौंपते हुए हिंदी में भाषण दिया । आपने कहा—

"मैं जो चाहता था, वह कर न सका ; पर जो कुछ भी कर सका हूँ, उसका श्रेय महात्मा गांधी और जनरल सेक्रेटरी को है । मैं सभापतित्व का चार्ज अपने पुत्र को देता हूँ । पर फ़ारसी में कहावत है कि जो काम बाप नहीं कर सकता, उसे बेटा कर दिखाता है । मुझे विश्वास है कि जवाहरलाल मुझसे अच्छा काम करेंगे । यह समय मुझ-जैसे बुड्ढों के लिये नहीं है, प्रत्युत यह युग जवानों के लिये है ।" इसके बाद आपने कहा—"मैं जवाहरलाल नेहरू को सभापति का आसन ग्रहण करने की आज्ञा देता हूँ, और विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनकी आज्ञा का सदैव विनय-पूर्वक पालन करूँगा ।" (इस पर खूब हर्ष-ध्वनि हुई ।)

जवाहरलाल नेहरू ने नम्रता-पूर्वक स्थान ग्रहण किया, और उनकी माता तथा सरोजिनी नायडू ने बधाइयाँ दीं । इसके बाद आल इंडिया कांग्रेस-कमेटी विषय-निर्वाचिनी बन गई ।

विषय-निर्वाचिनी—विषय-निर्वाचिनी में वायसराय के बम-दुर्घटना से बच जाने के उपलक्ष में बधाई देने का प्रस्ताव आया । इस पर एक घंटे तक बहस होती रही । विरोध पक्ष ख़ूब ज़ोर में बोला, और लोग अधिक हर्षित हुए ; पर अंत में ११७ पक्ष और ६९ विपक्ष मत से प्रस्ताव पास हो गया ।

इसके बाद महात्मा गांधी ने अपना मुख्य प्रस्ताव पेश करते हुए जो भाषण दिया, उसका सारांश यह है—

"मैं और पं० मोतीलाल बहुत प्रयत्न करने पर भी औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने में असमर्थ रहे । समझौते के लिये वायसराय ने प्रशंसनीय चेष्टा की । वह हमसे प्रेम और नम्रता से मिले । हमें प्रतीत हुआ कि कांग्रेस का समझौते की सभा में सम्मिलित होना व्यर्थ है । मेरे प्रस्ताव का दूसरा भाग कांग्रेस के ध्येय में परिवर्तन से संबंध रखता है । हम कहते हैं कि स्वराज्य का अर्थ पूर्ण स्वतंत्रता है । उसे प्राप्त करने को हमें शांत और वैध उपायों से ही काम लेना होगा । प्रस्ताव में कौंसिलों आदि के बहिष्कार की बात आपको बहुत भारी दीखेगी । पर आपका काम भी तो भारी है । आप सम्राट् की सरकार के स्थान पर अपनी सरकार स्थापित करके राजभक्ति की शपथ तो ले ही नहीं सकते । आपको झोपड़ियों में जाना, अछूतों को गले लगाना तथा मुसलमानों को मिलाना होगा । × × × हमें अपनी सारी शक्ति क्रियात्मक काम में लगानी चाहिए । सत्याग्रह के लिये हम अभी तैयार नहीं । यह काम आल इंडिया कमेटी के हाथ में रहे । अब नेहरू-रिपोर्ट रद्द समझी जाय । उसके कारण जो सिख और मुसलमान कांग्रेस से पृथक् थे, वे अब एक होने चाहिए ।"

इस प्रस्ताव का समर्थन श्रीनिवास ऐयंगर ने किया ।

२८ तारीख़ को समिति में 'पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय' पर ज़बर्दस्त बहस हुई । पंडित मदनमोहन मालवीय ने कहा—

"कांग्रेस को गोलमेज़-कान्फ़्रेंस में भाग लेना चाहिए। दिल्ली में, फ़रवरी में, सर्वदल-सम्मेलन किया जाय।"

जब तक मालवीयजी बोलते रहे, लोग उनका मज़ाक़ उड़ाते रहे। केलकर ने उनका समर्थन किया।

बंगाल के ज्वलंत युवक सुभाष बाबू ने बड़ी ज़ोरदार स्पीच दी। आपने कहा—

"इस प्रस्ताव में इस प्रकार के संशोधन होने चाहिए, जिनसे पूर्ण स्वाधीनता का यह अर्थ स्पष्ट हो जाय कि हमें ब्रिटिश साम्राज्य से कोई सरोकार ही नहीं है। कांग्रेस किसानों, मज़दूरों और युवकों का संगठन करे। व्यवस्थापिका सभाएँ, स्थानिक संस्थाएँ और अदालतें त्याग दी जायँ।"

इसी प्रकार के और भी बहुत-से संशोधन पेश हुए। ३१ तारीख़ को फिर मूल-प्रस्ताव पर बहस हुई। श्रीसत्यमूर्ति ने इस दिन कौंसिल-बहिष्कार के विरुद्ध वक्तव्य दिया। अंत में महात्मा गांधी ने सबको उत्तर देते हुए कहा—

"हमें वर्किंग-कमेटी के प्रस्ताव पर विश्वास रखना चाहिए। यह ठीक है कि हम औपनिवेशिक स्वराज्य की बात नहीं सुन सकते ; पर हम स्वतंत्रता की बात सुनने को तो किसी के भी साथ बैठ सकते हैं। मालवीयजी आदि ने सर्वदल-सम्मेलन की बात उठाई है। यह सच है कि उससे हमारी एकता में बहुत सहायता मिलेगी। पर जब औपनिवेशिक स्वराज्य हमें मिल ही नहीं रहा है, तो उसकी प्रतीक्षा कब तक? नर्मदलवाले हमसे नहीं मिल सकते, तो जाने दीजिए। हमें कलकत्ते के निर्णय के अनुसार पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास करना चाहिए।"

अंत में महात्माजी का मूल-प्रस्ताव ही स्वीकार कर लिया गया।

ध्वजारोपण—३१ तारीख़ को प्रातःकाल १० बजे सुनहरी धूप में जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय पताका अपने हाथों से फहराई। पताका की ऊँचाई दो सौ फ़ुट थी। उस पर बिजली के लैंप जड़े हुए थे, जिससे रात के समय ख़ूब जगमगाहट रहती थी। पौने दस बजे तक १ लाख से अधिक आदमी इकट्ठे हो गए। कुछ लोग पेड़ों पर भी चढ़ गए थे।

१० बजे सबसे प्रथम श्रीनिवास ऐयंगर, पं० मोतीलाल नेहरू, डॉ० अंसारी आदि पहुँच गए थे। इसके बाद पं० जवाहरलाल नेहरू पहुँचे। महिलाओं ने "वंदेमातरम्" का गीत गाया। फ़ोटोग्राफ़रों ने फ़ोटो लिए। स्वयंसेवकों के जनरल कमांडर ने फ़ौजी सलाम किया। इसके बाद पताका-संगीत हुआ। इस अवसर पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने जो छोटा-सा भाषण दिया, वह इस प्रकार था—

"आज जिस झंडे के नीचे तुम खड़े हो, वह किसी धर्म और संप्रदाय का नहीं, सारे देश का है। इसके नीचे खड़े हुए हम लोग हिंदू या मुसलमान नहीं, भारतीय हैं। याद रक्खो, जब तक भारतीयों में एक भी बचा जीवित है, यह पताका अपमानित या पद-दलित न होनी चाहिए।"

खुला अधिवेशन—ठीक ५ बजे प्रारंभ हुआ। हाज़िरी ११ हज़ार से अधिक थी। ५ बजे वालंटियरों ने बिगुल बजाकर सभापति के आगमन की सूचना दी। सबसे आगे वालंटियरों का एक जत्था था, पीछे दो-दो लीडर इस क्रम से थे—पं० मोतीलाल नेहरू और मौ० अब्दुल-कलाम आज़ाद, श्रीमती सरोजिनी नायडू, मौ० मुहम्मदअली, श्रीनिवास ऐयंगर और मदनमोहन मालवीय, डॉ० अंसारी और सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू और जे० एम्० सेनगुप्त। सबका स्वागत होने पर कन्याओं ने "वंदेमातरम्" का गाना गाया। इसके बाद और कुछ गायन होने पर स्वागताध्यक्ष डॉ० किचलू का भाषण हुआ।

स्वागताध्यक्ष का भाषण—आपका भाषण अँगरेज़ी में छपा हुआ था। आपके पढ़ते ही चारो ओर से हिंदी-हिंदी की पुकार उठने लगी। आपने खेद प्रकाश करते हुए कहा, हिंदी में भाषण तैयार नहीं है। मैं पीछे से हिंदी में सुना दूँगा। पंडाल में १८ लाउड स्पीकर लगे थे। अतः सब लोग आसानी से भाषण सुन सके। एक घंटे में यह भाषण समाप्त हुआ। अँधेरा होते ही सहस्रों बिजली के रंग-बिरंगे लैंप जल उठे। आपके भाषण का सारांश यह है—

"भाइयो! मैं आपका स्वागत करता हूँ। हम लोग राष्ट्रीय युद्ध के, स्वतन्त्रता के युद्ध के बड़े ही महत्त्व-पूर्ण

स्थान पर पहुँच गए हैं। इस समय हम लोगों को चाहिए कि अपनी अवस्था को अच्छी तरह समझें, और जो-जो शक्तियाँ हमारे पक्ष में और विपक्ष में हों, उन्हें परख लें। अभी विदेशी शासन जारी है, और उससे जनता इस तरह चूसी जा रही है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रश्न की अवहेलना करना संभव ही नहीं। जो ब्रिटिश शक्ति हम पर आज शासन कर रही है, वह यहाँ व्यापार के लिये आई थी। उस समय यह देश बहुत उच्च था। यहाँ का वस्त्र और जवाहरात तथा शिल्प विख्यात था। परंतु आज हमारा वह वैभव रेल और जहाज़ों में भरकर लूट लिया गया है। महायुद्ध के बाद तो हम विदेशी व्यापार के ग़ुलाम बन गए हैं।

लॉर्ड सेल्सबरी ने कहा था—हमें भारत का ख़ून पीना है, और इस समय हमें अपना बर्छा उस स्थान पर मारना चाहिए, जहाँ ज़्यादा ख़ून जमा हो। परंतु हमें ग्रामीणों से कुछ नहीं मिल सकता; क्योंकि वे तो रक्त के अभाव से आप ही मर रहे हैं।

भारत के ग्रामों की दशा का यह सच्चा रूप है। इसे हम तब तक नहीं सुधार सकते, जब तक कि देश की अर्थ-समस्या हमारे हाथ में न हो।

युद्ध के बाद धूर्त ब्रिटेन के आश्वासन और लॉयड जॉर्ज से हमें बड़ी आशाएँ थीं। मांटेग्यु-चेम्सफ़ोर्ड-स्कीम भी सिर्फ़ लिफ़ाफ़े-बाज़ी थी। इससे देश में चैतन्यता आई थी, जिसे रौलट-बिल से, घोर विरोध होने पर भी, दबाया गया, जिसके सम्मुख महात्मा गांधी ने सत्याग्रह-युद्ध की घोषणा की थी और हिंदू-मुसलमान एक होकर उनके झंडे के नीचे आ खड़े हुए थे। उस समय नौकरशाही काँप उठी थी।

इस उत्थान को कुचलने के लिये डॉयर और ओडॉयर ने निरीह जनता पर गोली चलाई। माताओं को बेपर्द किया गया। जलियानवाला बाग़ में हमारी कड़ी परीक्षा हुई। अंत में हमने अमृतसर-कांग्रेस में बता दिया कि अब हम शांति से अँगरेज़ों के नीचे नहीं बैठे रहेंगे।

महात्मा गांधी ने असहयोग-युद्ध छेड़ा; परंतु देश की कमज़ोरी ने उसे विफल किया। शक्ति बिखर गई। अंत में हिंदू-मुसलिम-वैमनस्य ने सब कुछ नष्ट कर दिया। सरकार की मनचेती हुई। आपस में फूट डालकर शासन करने की उसकी पुरानी नीति है।

अब एक ज़बर्दस्त प्रोग्राम सामने रखने की आवश्यकता है, जिसे पूरा करने में हम आपसी द्वेष भूल जायँ। जनता भूखी है, वह आँसू बहा रही है। पर किसान और मज़दूर ही भारत के भावी मालिक हैं। सांप्रदायिकता को नष्ट कर दो। कोई संप्रदाय ख़तरे में नहीं है।

महात्माजी हमारे नेता बनें और युवक उनका अनुसरण करें, यही मेरी प्रार्थना है।

पं० जवाहरलालजी और मैं केंब्रिज युनिवर्सिटी के सहपाठी हैं। मैं इनका आज हृदय से स्वागत करता हूँ।"

इसके बाद आपने हार पहनाकर जवाहरलालजी से सभापति का आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की, और उन्होंने प्रचंड तालियों की गड़गड़ाहट के बीच अपना भाषण हिंदी-भाषा में देना शुरू किया। वह भाषण एक घंटे से अधिक तक होता रहा। उसका सारांश इस प्रकार है—

"हम अपने उन भाइयों और बहनों को नहीं भूल सकते, जिन्होंने परिणाम की परवा न करके विदेशियों की हुकूमत के विरोध में या तो अपना जीवन दे डाला है और या जिनकी जोश-भरी जवानी ज़ुल्म सहते बीती है। वे वीर भले ही आज न हों, पर उनका साहस तो आज भी बना है। जतीन और विजय-जैसे पुत्र आज भी भारत पैदा कर सकता है। अब योरप के प्रभुत्व के दिन गए। ये अमेरिका और एशिया के उत्थान के दिन हैं। विश्व-क्रांति की लहर से भारत अछूता नहीं बच सकता।

भारतीय समाज भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का उच्छेद नहीं, बल्कि समानता देता रहा है। मुसलमानों के आने से इस व्यवस्था में गड़बड़ हुई थी। पर बहुत-सी व्यवस्था ठीक हो गई थी। तभी अँगरेज़ों ने अवसर पाकर अपना मतलब गाँठ लिया।

दुःख है कि आज भारत में धर्मसहिष्णुता नहीं है। योरप ने धर्म-स्वतंत्रता प्राप्त कर राजनीतिक और उसके बाद आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त की, और वह अब समाज-स्वाधीनता पर विचार कर रहा है।

भारत को भी इसके लिये कोई उपाय ढूँढ निकालना

ही पड़ेगा। वरना देश का ढाँचा ठीक न बनेगा। पर इसके लिये हमें अपनी प्रकृति और संस्कृति के अनुरूप ही चेष्टा करनी पड़ेगी।

भय, अविश्वास और संदेह हममें जो बने हैं, वे वैमनस्य का बीज हैं। हम मतभेद दूर करना नहीं चाहते, परस्पर के भय और संदेह को दूर करना चाहते हैं। खेद है, इस संबंध में सर्वदल-कमेटी को सफलता नहीं मिली। समाज में अनुपात और औसत का भाव बहुत है; परंतु विश्वास और उदारता से ही भय दूर हो सकते हैं।

वह समय आ गया है, जब हमें स्वराज्य-योजना को एक ओर रखकर स्वतंत्र भाव से अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना चाहिए, और पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर देनी चाहिए। हमारे राष्ट्रीय और श्रमजीवी नेताओं का बुरी तरह दमन किया जा रहा है, और ज़बर्दस्ती हमारे साथी क़ैद कर लिए गए हैं। बहुतों को स्वदेश नहीं लौटने दिया जाता। सरकारी सेना अपने फ़ौलादी पंजे में देश को जकड़े हुए है, और हममें से जो सिर उठाता है, उसी पर चाबुक पड़ता है।

वायसराय ने समझौता-सभा की घोषणा की है, जिसमें भारतीय नेता निमंत्रित किए जायँगे। पर हमें ब्रिटिश-राजनीति की दुरंगी चाल का पूरा अनुभव हो गया है।

इस घोषणा के बाद ही दिल्ली में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं ने एकत्र होकर यह स्पष्ट कर दिया था कि किन शर्तों पर वह घोषणा स्वीकार की जा सकती है। पीछे की व्याख्या से उक्त घोषणा का महत्त्व प्रकट हो गया है। अभी जो बहस पार्लियामेंट की साधारण सभा में, भारत के बारे में, छिड़ी है, और भारत-मंत्री ने अपनी सरकार की नियत साफ़ होने की बात कही है, वह हो सकती है; पर उससे हमें कुछ आशा नहीं। भारत को हानि पहुँचाकर इँगलैंड तो लाभ उठा ही रहा है।

पिछले दस सालों में सरकार ने भारत की भलाई के लिये क्या-क्या किया है, इसका वि रण भारत-मंत्री ने बताया है। उसका सार यह है कि कुछ भारतीयों को बड़े-बड़े पद देना और शेष को दमन-चक्र में पीस डालना।

संकीर्ण राष्ट्रीयता से संसार ऊब गया है, और वह अब राष्ट्रों के व्यापक सहयोग और पारस्परिक निर्भरता की तलाश में है। हम भी इसी उच्च आदर्श को सामने रखकर स्वाधीनता की घोषणा करने जा रहे हैं। पर इस कार्य में जन-साधारण का शरीक होना बहुत ज़रूरी है। साथ ही उनका शांति-पूर्ण होना भी ज़रूरी है। सुघटित विद्रोह की बात दूसरी है।

असहयोग-आंदोलन में विविध बहिष्कार की चर्चा थी। सेना में नौकरी न करने और टैक्स देने से इनकार करने की भी बात थी। कौंसिल-बहिष्कार के संबंध में मैं अधिक कुछ न कहूँगा। पर इन नक़ली कौंसिलों ने हममें कैसी नीति-भ्रष्टता ला दी है, और हममें से कितने उच्चों को ये जाल में फँसाए हुए हैं, यह प्रकट है। कौंसिल छोड़ने से हमें आपकी पूर्ण शक्ति को काम में लगाने का अवसर मिलेगा, जिसका स्वरूप टैक्स न देना और हड़ताल करना होगा। इसके सिवा विदेशी-बहिष्कार हम ख़ास तौर पर शुरू करेंगे। हमारा कार्य-क्रम राजनीतिक और आर्थिक, दोनो दृष्टियों से होना चाहिए। हम ब्रिटिश सरकार से कोई संबंध न रक्खेंगे। हम उस क़र्ज़ के चुकाने के ज़िम्मेवार भी नहीं, जो इँगलैंड ने भारत के नाम पर ले रक्खा है।

मैं अंत में सबसे खुला षड्यंत्र करने की अपील करता हूँ।"

इस भाषण के बाद आपने 'विप्लव दीर्घजीवी हो' का नारा लगाया, और हज़ारों कंठों से वह तीन बार घोषित किया गया।

अनंतर विषय-निर्वाचिनी के निर्णयानुसार यतीन और विजय पूँगी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया, और इस दिन की कार्यवाही समाप्त हुई।

३१वीं दिसंबर को दिन के एक बजे से कांग्रेस की कार्यवाही पुनः आरंभ हुई। देश-विदेशों के कितने ही व्यक्तियों और संस्थाओं की ओर से जो सहानुभूति-सूचक तार आए थे, राष्ट्रपति के आदेशानुसार, उनमें से कुछ थोड़े-से डॉक्टर अंसारी द्वारा पढ़कर सुनाए गए।

महात्मा गांधी ने पहले दिल्ली की बम-दुर्घटना के संबंध में खेद-प्रकाश करने का प्रस्ताव पेश किया, जो ८९७ अनुकूल और ८१६ प्रतिकूल वोटों से पास हुआ।

इसके बाद महात्माजी ने अपना यह मूल-प्रस्ताव रक्खा— विगत ३१वीं ऑक्टोबर को वायसराय ने औपनिवेशिक स्वराज्य के संबंध में जो घोषणा की थी, और जिसके जवाब में नेताओं ने मिलकर एक नोटिस निकाला था, उसके संबंध में वर्किंग कमेटी ने जो कुछ किया था, उसका यह कांग्रेस अनुमोदन करता है। स्वराज्य-आंदोलन के विषय में बड़े लाट ने जो चेष्टा की, वह भी कांग्रेस की दृष्टि में प्रशंसनीय है। इसके बाद से अब तक जो कुछ हुआ है, और बड़े लाट से नेताओं के मिलने का जो परिणाम देखने में आया है, उन सब बातों पर विचार कर कांग्रेस यह राय ज़ाहिर करती है कि गोलमेज़-कान्फ्रेंस में कांग्रेस के प्रतिनिधियों के जाने से कोई भी लाभ न होगा।

अतएव कांग्रेस के पिछले अधिवेशन के निर्णय के अनुसार यह कांग्रेस घोषणा करती है कि पूर्ण स्वाधीनता अर्जन करना ही कांग्रेस का ध्येय या लक्ष्य है, और साथ ही यह भी घोषणा करती है कि नेहरू-रिपोर्ट भी बेकार हो गई। अब से प्रत्येक कांग्रेस का कार्यकर्ता पूर्ण स्वाधीनता पाने के लिये ही उद्योग करेगा, और पूर्ण स्वाधीनता के लिये ही प्रचार-कार्य करेगा। कांग्रेस की इस नीति की रक्षा के लिये यह कांग्रेस भारतीय और विभिन्न प्रादेशिक व्यवस्थापिका सभाओं, सरकार द्वारा बनाई गई कमेटियों, लोकल बोर्डों, यूनियन बोर्डों इत्यादि को पूर्ण रूप से त्याग देने का निश्चय घोषित करती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यह कांग्रेस समस्त कांग्रेसी कार्यकर्ताओं और राष्ट्रीय आंदोलन के साथ संबंध रखनेवाले व्यक्तियों तथा संस्थाओं से भविष्य में चुनावों से किसी प्रकार का संपर्क न रखने के लिये कह रही है, और अभी जो कांग्रेस के कार्यकर्ता व्यवस्थापिका सभाओं, ज़िला बोर्डों और लोकल बोर्डों में काम कर रहे हैं, उनसे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि वे उन्हें एकदम छोड़ दें।

महात्माजी के इस प्रस्ताव का पंडित मोतीलालजी नेहरू ने समर्थन किया; पर बाद को पंडित मदनमोहन मालवीय और श्रीयुत सुभाषचंद्र वसु आदि ने आपके प्रस्ताव में संशोधन करने के लिये अलग-अलग प्रस्ताव पेश किए।

वोट लेने पर एक-एक कर सभी संशोधक प्रस्ताव रद्द हो गए, महात्मा गांधी का मूल-प्रस्ताव पास हो गया।

१ली जनवरी, १९३० को दिन के दो बजे से पुनः कांग्रेस का अधिवेशन आरंभ हुआ। आज जो-जो प्रस्ताव पास हुए, उनमें से मुख्य-मुख्य दिए जाते हैं—

(१) पूर्वी आफ्रिका के प्रवासी भारतवासियों के विषय में सभापति महोदय की ओर से जो प्रस्ताव किया गया, वह सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो गया।

(२) श्रीयुत सकलतवाला कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिये भारत आने को तैयार थे; पर उन्हें पास-पोर्ट नहीं दिया गया। सरकार की इस काररवाई का विरोध करने के लिये सभापति की ओर से जो प्रस्ताव पेश किया गया, वह भी सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो गया।

(३) कांग्रेस का अधिवेशन हर साल जाड़े के मध्य में ही हुआ करता है। शीत-प्रधान प्रांत में कांग्रेस होने से स्वागतकारिणी समिति और प्रतिनिधिगण को गर्म कपड़े ख़रीदने के लिये प्रायः बहुत अधिक धन ख़र्च करना पड़ता है। इसके अलावा बहुत जाड़ा होने के कारण प्रायः १७०० इस साल आदमी बीमार पड़े। इन बातों को ध्यान में रखते हुए सभापति की ओर से यह प्रस्ताव किया गया कि जब जिस प्रांत में कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला हो, उस प्रांत की कांग्रेस-कमेटी, यदि उचित और आवश्यक समझे, तो कांग्रेस का अधिवेशन फ़रवरी या मार्च के महीने में करा सकती है। इस प्रस्ताव पर बहुत देर तक वाद-विवाद होता रहा। अंत में वोट लेने पर ७५४-४२९ वोटों से प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

(४) यह कांग्रेस समझती है कि विदेशी शासन होने के कारण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष भाव से भारत पर जिन ऋणों का भार लादा जा रहा है, उन ऋणों के लिये स्वाधीन भारत उत्तरदायी न होगा। सन् १९२२ ई० की कांग्रेस में इस प्रकार का जो प्रस्ताव पास हुआ

था, इस बार की कांग्रेस उसका अनुमादन करती है, और जिन्हें यह बात जानने की आवश्यकता हो, उनके लिये घोषित करती है कि स्वाधीन भारत उत्तराधिकारी की हैसियत से जिन सुविधाओं एवं उत्तरदायित्वों को प्राप्त करेगा, उन पर विचार करने के लिये एक निरपेक्ष मंडली पर भार दिया जायगा, और वह जिन बातों को मानने योग्य न समझेगी, भारत उन्हें स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं रहेगा।

यह प्रस्ताव भी सभापति महोदय द्वारा उपस्थित किया गया था, और बिना किसी वाद-विवाद के सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो गया।

(९) देशी रजवाड़ों के अधिवासी प्रजाजनों ने पूर्ण स्वाधीनता के लिये अपने को तैयार बताया है। उनके अभाव-अभियोगों के लिये भी एक प्रस्ताव रक्खा गया, जो स्वीकृत हो गया।

आगामी वर्ष के लिये डॉक्टर महमूद और श्रीयुत श्रीप्रकाशजी जेनरल सेक्रेटरी तथा श्रीयमुनालालजी बजाज और श्रीशिवप्रसादजी गुप्त कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए।

अगले साल कांग्रेस का अधिवेशन कराची में होना निश्चित हुआ है। स्वागत-समिति के सदस्यों को धन्य-वाद देने के लिये श्रीमती सरोजिनी नायडू खड़ी हुईं। आपने धन्यवाद देने के बाद कहा—"कोई भी काम क्यों न हो, उसमें नेताओं की वशवर्तिता परम आवश्यक है। यदि हम अपने नेता के आदेशानुकूल नहीं चल सकते, यदि हम इसमें पक्के नहीं उतर सके, तो हमारी सब बातें, सब चेष्टाएँ व्यर्थ हो जायँगी।"

अंत में स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष डॉक्टर किचलू ने स्वयंसेवकों को धन्यवाद दिया, और उपस्थित प्रतिनिधियों से अपनी ग़लतियों और कमज़ोरियों के लिये क्षमा माँगी।

अंत में सभापति के अंतिम भाषण के बाद सभा विसर्जित हुई।

कांग्रेस के अवसर पर और धूमधाम—कांग्रेस के मुख्य अधिवेशन के अलावा इस अवसर पर और भी बहुत-से सम्मेलन लाहौर में हुए, जिनका संक्षिप्त परिचय यह है—

सामाजिक सम्मेलन—गत २६, २७, २८ दिसंबर को श्रीहरविलास सारदा के सभापतित्व में सामाजिक सम्मेलन हुआ। सभापति ने अपने ओजस्वी भाषण में सामाजिक बुराइयों का दिग्दर्शन कराते हुए सुधार की आवश्यकता बतलाई। आपने कहा कि सामाजिक सुधार से राजनीतिक सुधार के आंदोलन में बड़ी शक्ति मिलती है। सामाजिक संघटन की उन्नति के कारण ही भारत का भूत-काल महान् था। प्राचीन भारत और वर्तमान भारत की अवस्थाओं में महान् भेद है, अतः पुरानी कोई भी व्यवस्था आज के लिये उतनी उपयुक्त नहीं हो सकती। आपने स्त्रियों के अधिकार के विषय में क़ानून बनाने के लिये बड़ा ज़ोर दिया। सम्मेलन में कई आवश्यक प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव में कहा गया कि सब संप्रदायवाले आपस में मेल बढ़ाने का प्रयत्न करें, दूसरे में विधवाओं के उत्तराधिकार-संबंधी बिल का समर्थन किया गया, तथा सिफ़ारिश की गई कि वह बिल मुसलमान-विधवाओं के लिये भी लागू किया जाय। इसके बाद बाल-विवाह तथा बहुविवाह के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुए, और सवर्णजातीय विवाह पर ज़ोर दिया गया। क्षयरोग के कारण और इलाज के बारे में एक कमेटी क़ायम करने का निश्चय हुआ। अंत में एक सहभोज हुआ, जिसमें सब प्रांतों और जातियों के स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे।

राजनीतिक पीड़ित-सम्मेलन—श्रीहनुमंतसहाय के सभापतित्व में गत ३० दिसंबर को राजनीतिक पीड़ित-सम्मेलन हुआ, जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिये शहीद होनेवालों के प्रति श्रद्धा प्रकट की गई। प्रति वर्ष ३१ मार्च को शहीद-दिवस मनाने का निश्चय हुआ।

सिख-सम्मेलन—गत २० दिसंबर को सरदार खड्गसिंह के सभापतित्व में अकाली-सम्मेलन हुआ। सभापति ने नेहरू-विधान के रद्द होने पर प्रसन्नता प्रकट की, और कहा कि राष्ट्र के लिये स्वार्थ-त्याग करने में हम कभी नहीं चूके हैं, और न आगे चूकेंगे। हमारा प्रस्ताव जो महात्माजी ने मान लिया है, वह जब कांग्रेस में पास हो

जायगा, तो हम कांग्रेस में मिल जायँगे। सम्मेलन में दो महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक में कहा गया कि यदि सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रथा जारी रहे, तो सिखों को पंजाब में ३० प्रति सैकड़ा स्थान मिलने चाहिए, और दूसरी जगहों में इनके अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। दूसरे प्रस्ताव द्वारा सभापति को कम-से-कम ७ आदमियों की समिति बनाकर कांग्रेस के साथ समझौते की बात करने का अधिकार दिया गया। अगर समझौता हो गया, तो सिख कांग्रेस का साथ देंगे, अन्यथा अलग रहेंगे।

विद्यार्थी-सम्मेलन—गत ३० दिसंबर को महामना मालवीयजी के सभापतित्व में विद्यार्थी-सम्मेलन हुआ। सभा में पं० जवाहरलाल नेहरू तथा श्रीवल्लभ भाई पटेल आदि कई नेता भी उपस्थित थे। स्वागताध्यक्ष के भाषण के बाद सभापति ने महात्मा गांधी का संदेश पढ़ सुनाया। महात्माजी ने लिखा था कि विद्यार्थियों का प्रथम कर्तव्य अपने ऊपर अधिकार करना, अपना सुधार करना तथा खद्दर की उन्नति करना है। इसके बाद पं० जवाहरलालजी का बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। आपने कहा कि अब नौजवानों के काम करने की बारी है, जिनमें काफ़ी जागृति हो गई है। हमारे विचार से भारतीय नौजवानों में अभी अपनी ज़िम्मेदारी का सच्चा ज्ञान नहीं उदय हुआ है, और जब तक वे अपनी ज़िम्मेदारी पूर्ण रूप से नहीं समझेंगे, अपना सुधार नहीं करेंगे, तब तक उनकी शक्ति और जोश व्यर्थ ही होगा। विद्यार्थियों के अँगरेज़ी बोलने के लिये आग्रह करने पर आपने कहा कि देश की सर्वसाधारण जनता तक पहुँचने के लिये उनकी भाषा बोलना भी आवश्यक है। बाद में सभापति ने अपने भाषण में नवयुवकों को संघटन करने, धार्मिक बनने, सांप्रदायिकता छोड़ने, अपने ध्येय पर चलने और स्वदेश से प्रेम करने की सलाह दी। आपने कहा कि यदि छात्र नेताओं के आज्ञानुसार चलें, तो वे सन् ३० में स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। अंत में कई प्रस्ताव पास हुए, जिनमें भारतवर्षीय विद्यार्थी-संघ स्थापित करने की सिफ़ारिश की गई, खद्दर या स्वदेशी वस्त्र के व्यवहार का अनुरोध किया गया, यतींद्रनाथ दास की देश-सेवा की प्रशंसा की गई, तथा विद्यार्थियों को गिरफ़्तारी के लिये बधाई दी गई।

जाति-पाँति-तोड़क सम्मेलन—श्रीरामानंद चटर्जी के सभापतित्व में गत २८ दिसंबर को जाति-पाँति-तोड़क सम्मेलन हुआ। सभापति ने कहा, यह सच है कि भारत की राजनीतिक निर्बलता और पतन का कारण जाति-प्रथा है। यह राष्ट्र-निर्माण में सदा बाधक रही है। किसी समय यह भले ही व्यवहार में रही हो, पर अब प्रचलित नहीं रह सकती। इससे संघटन में बाधा पड़ती है। सम्मेलन में निम्न-लिखित प्रस्ताव पास हुए—

१—इस सम्मेलन की सम्मति में जाति-पाँति की नींव पर स्थापित संस्थाएँ केवल हिंदू-संघटन, शुद्धि और दलितोद्धार के रास्ते में ही भारी रुकावट नहीं हैं, प्रत्युत हिंदू-जाति के अस्तित्व के लिये भी अत्यंत हानिकारक हैं।

२—यह सम्मेलन सब हिंदू-संस्थाओं से अनुरोध करता है कि वे अपने सामान्य कार्य के प्रोग्राम में जाति-पाँति को तोड़ने और जाति-पाँति-तोड़क विवाहों के प्रचार को स्थान दें।

३—जाति-पाँति में विभक्त हिंदू-समाज को एकता के सूत्र में पिरोने के लिये यह सम्मेलन प्रत्येक अविवाहित युवक और युवती से अपील करता है कि विवाह करते समय वे जाति-पाँति की कुछ भी परवा न करें।

४—हिंदुओं में जाति-पाँति-तोड़क विवाहों को सरकारी क़ानून की दृष्टि में जायज़ ठहराने के उद्देश्य से एक बिल तैयार करने और उसे शीघ्र ही लेजिस्लेटिव एसेंबली में पेश कराने के लिये एक उपसभा बनाई जाय।

५—यह सम्मेलन सब प्रकार के हिंदुओं से प्रबल प्रेरणा करता है कि वे जन-संख्या के समय अपनी जन्म की जाति न लिखावें, और इस बात का विशेष ध्यान रक्खें कि उन्हें केवल हिंदू लिखा जाय।

६—यह सम्मेलन सरकार से प्रबल प्रार्थना करता है कि जन-संख्या का क़ानून इस ढंग से बनाया जाय कि जन-संख्या करते समय किसी पुरुष को भी अपनी जन्म की जाति बतलाना आवश्यक न हो।

७—अछूतपन के घृणित भेद-भाव को मिटा देने के

विचार से यह सम्मेलन लेजिस्लेटिव एसेंबली के सभासदों से प्रार्थना करता है कि वे अछूतपन को मिटानेवाला बिल पास करें।

राष्ट्रीय-मुस्लिम-सम्मेलन—गत ३० दिसंबर को चौधरी अफ़ज़लहक़ की अध्यक्षता में राष्ट्रीय-मुस्लिम-सम्मेलन हुआ। सभापति के भाषण के बाद प्रस्ताव पास हुआ कि मुसलमान देश-हित के लिये त्याग करें, और नेहरू-विधान के कारण अलग हुए मुसलमान भी अब कांग्रेस के काम में सहायक हों।

अछूत-सम्मेलन—अछूत-सम्मेलन महात्मा गांधी के सभापतित्व में हुआ। महात्माजी ने अपने भाषण में कहा कि अछूतों की मुक्ति उन्हीं के हाथों में है। आपने उन लोगों को साफ़ और सुथरा रहने तथा तंबाकू, शराब आदि छोड़ने की सलाह दी। मंदिर-प्रवेश के विषय में आपने कहा कि सत्याग्रह या ज़बर्दस्ती मंदिर में जाने से कुछ लाभ नहीं। मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहना चाहिए। फिर सत्याग्रह की कोई ज़रूरत नहीं। अंत में आपने अस्पृश्यता-निवारणार्थ धन की अपील की, और ख़ासा धन-संग्रह हुआ। बाद में श्रीजयकर के बिल के समर्थन में एक प्रस्ताव पास हुआ। कई और प्रस्ताव पास हुए।

पंजाब-सीमाप्रांतीय हिंदू-सम्मेलन—पंजाब-सीमाप्रांतीय हिंदू-सम्मेलन श्रीकेलकर के सभापतित्व में हुआ। इसमें कई महत्त्व-पूर्ण प्रस्ताव पास हुए, जिनमें वायसराय की स्पेशल को बम से उड़ाने के प्रयत्न तथा सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की निंदा की गई। पंजाब-कौंसिल द्वारा स्वीकृत एकाउंट्स बिल का विरोध किया गया। कौंसिल में स्त्रियों के लिये स्थान रक्षित रखने की सिफ़ारिश की गई, तथा पंजाब और सीमा-प्रांत के हिंदुओं से प्रत्येक तहसील में हिंदू-सभा स्थापित करने की अपील की गई।

राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन—राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन सरदार बल्लभभाई पटेल के सभापतित्व में हुआ। सभापति ने अपने भाषण में कहा कि हमारे देश में अनेक संप्रदाय हैं। यहाँ एकता तभी हो सकती है, जब हम अपनी राष्ट्रीय भाषा अपनावें। अगर हम अपनी भाषा एक बना लें, तो हमारी पराधीनता के पाश भी शीघ्र ही कट जायँगे, तथा हम उन्नति कर सकेंगे। हमारी राष्ट्र-भाषा हिंदी होनी चाहिए। उर्दू भी हिंदी ही है। इसके लिये झगड़ा नहीं होना चाहिए। मेरे विचार में दोनो में कोई अंतर नहीं। स्वराज्य के चार स्तंभ हैं, जिनमें पहली देश की भाषा है। अतएव देश में सर्वत्र हिंदी का प्रचार होना चाहिए। जितना शीघ्र इसका प्रचार होगा, उतना ही शीघ्र हम स्वतंत्र हो सकेंगे।

भाषण के बाद कुछ उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। पहले प्रस्ताव में कांग्रेस से प्रार्थना की गई कि वह अपनी सब कारवाई अँगरेज़ी की जगह हिंदी-भाषा में लिखा करे।

हिंदोस्तानी सेवादल-सम्मेलन—गत २७ दिसंबर को श्रीनिवास ऐयंगर के सभापतित्व में हिंदोस्तानी सेवादल-सम्मेलन हुआ। सभापति ने अपने भाषण में कहा कि सेवादल का मुख्य उद्देश्य नवयुवकों की शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति करना होना चाहिए। नवयुवकों में उद्यम, कार्यशीलता और संयम के गुण बढ़ाने चाहिए। सैनिकों की अपेक्षा संयमी पुरुषों ने आज तक अधिक कल्याणकर कार्य किए हैं। आज भारत को भी ऐसे ही पुरुषों की अत्यंत आवश्यकता है। आपने डॉ० हार्डीकर के कामों की प्रशंसा की। अंत में कई प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव द्वारा प्रांतीय कांग्रेस-कमेटियों से स्वयंसेवक-दल तैयार करने तथा उसकी शिक्षा के लिये ख़र्च स्वीकार करने की प्रार्थना की गई। सेवादल का शिक्षा-क्रम स्त्रियोपयोगी बनाने के लिये एक समिति नियुक्त की गई।

भारतीय ईसाई-कान्फ़्रेंस—भारतीय ईसाई-कान्फ़्रेंस के सभापति रेवरेंड बी० ए० नाग ने अपने भाषण में इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करना है। आपने भारतीय ईसाइयों को राउंडटेबिल-कान्फ़्रेंस का स्वागत करने और मजूर-सरकार पर विश्वास करने की राय दी।

अ० भा० नौजवान-सभा-सम्मेलन—यह सम्मेलन

२६, २७ दिसंबर को हुआ। दर्शकों की भीड़ के कारण शामियाना उखाड़ देना पड़ा। स्वागताध्यक्ष श्रीरामकृष्ण के हाल में ही गिरफ़्तार होने के कारण उनका भाषण दूसरे ने पढ़ सुनाया। उसमें कहा गया था कि देश का कल्याण साम्राज्यांतर्गत स्वराज्य में नहीं, बल्कि पूर्ण स्वाधीनता में है। पश्चात् सभानेत्री श्रीसुहासिनी नंबियर ने अपने ओजस्वी भाषण में कांग्रेस के कार्य-क्रम की निंदा की, तथा १ जनवरी से स्वराज्य-प्राप्ति के लिये युद्ध-घोषणा करने को कहा। अंत में कई प्रस्ताव पास हुए, जिनमें यतींद्रनाथ दास के प्रति आदर-भाव प्रकट किया गया, लाहौर एवं मेरठ के मामलों में सरकारी नीति की निंदा की गई, संसार के युवक-संघों को बधाई दी गई, तथा कांग्रेस के नेताओं की अँगरेज़ों से संबंध रखनेवाली नीति की निंदा की गई। लाहौर के मामले के लिये अपील करने पर ५००) रु० इकट्ठे हुए।

अ० भा० पुस्तकालय-सम्मेलन—श्रीरामानंद चटर्जी के सभापतित्व में २६, २७ दिसंबर को पुस्तकालय-सम्मेलन हुआ। आपने अपने भाषण में कहा कि पुस्तकालयों के द्वारा जनता ख़ूब शिक्षित बनाई जा सकती है। और कई लोगों के भाषण हुए, जिन्होंने कहा कि पुस्तकालयों के प्रचार की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी स्वराज्य-प्राप्ति की। सम्मेलन में सरकार से पुस्तकालयों का प्रचार करने तथा धनी, राजा एवं साहूकारों से उसकी सहायता करने के लिये कहा गया। वहाँ एक प्रदर्शिनी भी हुई थी, जिसमें अनेक हस्त-लिखित अमूल्य ग्रंथ तथा चित्र रक्खे गए थे।

कीर्ति किसान-सम्मेलन—यह सम्मेलन मेरठ-षड्यंत्र के अभियुक्त के भाई श्रीअधिकारी के सभापतित्व में हुआ। इसमें ज़मीन तथा कारख़ानों पर किसान और मज़दूरों का अधिकार स्थापित करने, भविष्य में साम्राज्यवाद के युद्धों में भाग न लेने आदि के अनेक प्रस्ताव पास हुए।

अ० भा० गो-महासभा—यह सभा सेठ गोविंद-दास के सभापतित्व में हुई। इसमें एक प्रस्ताव में कांग्रेस से अनुरोध किया गया कि वह २३ करोड़ हिंदुओं की गो-वध बंद कराने की माँग की ओर ध्यान दे, और गो-रक्षा का प्रश्न हल करे। दूसरे प्रस्ताव द्वारा सरकार की वर्तमान नीति पर खेद प्रकट करते हुए गो-रक्षा-संबंधी कुछ प्रश्नों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित कराते हुए उससे उन्हें हल करने की अपील की गई। इसके अलावा कई और आवश्यक प्रस्ताव पास हुए।

चिकित्सक-सम्मेलन—गत २७ दिसंबर को, भारतीय मेडिकल सम्मेलन, डॉक्टर विधानचंद्र राय के सभापतित्व में, हुआ। सभापति ने अपने व्याख्यान में उन विषयों पर प्रकाश डाला, जो वर्तमान समय के डॉक्टरों में हलचल पैदा किए हुए हैं। ब्रिटेन की जेनरल मेडिकल कौंसिल के भारतीय डॉक्टरों की डिग्री स्वीकार न करने के प्रश्न पर आपने कहा कि इंडियन मेडिकल एसोसिएशन इस बात पर अच्छी तरह विचार करे और डॉक्टरों से प्रार्थना करे कि वे इँगलैंड की बनी दवाएँ काम में न लावें। सम्मेलन में इँगलैंड की बनी दवाएँ न रक्खी जायँ। भारतीय मेडिकल कौंसिल स्थापित किए जाने के प्रस्ताव पास हुए।

कांग्रेस के अवसर पर बाहर से कुछ संदेश आए थे, जो अनेक भारतीय और विदेशीय गण्य-मान्य संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा भेजे गए थे। चूँकि इनकी संख्या अधिक थी, अतः डॉक्टर अंसारी ने कुछ संदेशों का थोड़ा-थोड़ा भाग सुनाया, जो इस प्रकार है—

पहला संदेश साम्राज्य-विरोधी संघ के अँगरेज़ी विभाग की ओर से था—

"यह (संघ) भारत की पूर्ण स्वतंत्रता की राष्ट्रीय लगन के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है, और बताता है कि संघ कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन को अत्यंत उत्सुकता के साथ देख रहा है।"

संघ के डच-विभाग ने भी कांग्रेस-सहानुभूति का संदेश भेजा है, और कहा है कि "भारतीयों को पूर्ण स्वतंत्रता के लिये ख़ूब कोशिश करनी चाहिए, और साम्राज्य से छुटकारा पाना चाहिए।"

ईरान की सोशलिस्ट पार्टी ने कांग्रेस से अनुरोध किया है कि वह अपनी स्वतंत्रता का निर्माण सोशलिस्ट आधार पर करे।

इनके सिवा हब्शी-अधिकाररक्षिणी सभा, पेरिस, अंतरजातीय राजनीतिक बंदी-समिति, काबुल-जापान-कांग्रेस-कमेटी, ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन, जोंसबर्ग, अमेरिका-कांग्रेस-कमेटी, न्यूयॉर्क की भारतीय राष्ट्र-समिति, केपटाउन के साउथ आफ्रिकन भारतीय संघ, सिलोन की युवक-परिषद्, ब्रिटिश मज़दूर-नेताओं, साउथ आफ्रिकन भारतीय समिति, अमेरिका की भारतीय समिति, और ईस्ट आफ्रिकन भारतीय कांग्रेस के सहानुभूति के संदेश आए थे।

श्रीशिवप्रसाद गुप्त ने, जो कांग्रेस की वर्किंग-कमेटी के सदस्य हैं, जेनेवा से एक संदेश भेजा है, और कांग्रेस से अनुरोध किया है कि वह मदरास और कलकत्ता के प्रस्तावों को द्वयर्थक्य से निकालकर तर्क-पूर्ण परिणामों में परिणत करे।

शैलेंद्र घोष (न्यूयॉर्क) और राजा महेंद्रप्रताप के संदेश भी आए हैं।

जब डॉ० अंसारी ने उक्त दोनो महापुरुषों का नाम लिया, तो समस्त पंडाल देर तक तालियों की आवाज़ से गूँजता रहा।

कांग्रेस के निर्णय के स्पष्ट होने पर इँगलैंड के कुछ पत्रों ने इस प्रकार सम्मतियाँ दीं—

'मैंचेस्टर गार्जियन' कांग्रेस की नीति पर टिप्पणी करता है—

"हम उन चेष्टाओं पर खेद प्रकट करते हैं, जो भारतीय शासन को असंभव बनाने के लिये की गई हैं। इसलिये यह निश्चित है कि ऐसी चेष्टाओं के सफल होने के पहले दबाव की आवश्यकता पड़े।"

'डेली एक्सप्रेस' भारतीय अधिकारियों को कड़ाई की नीति अख़्तियार करने की राय देता है; क्योंकि कड़ाई ही भारत को उस नाज़ुक मौक़े से बचा सकती है, जो संभव है, भारत को उन्नति के पथ पर बीस वर्ष पीछे हटा दे।

'डेली न्यूज़' ने लिखा है—

"हम भारत के लिये क्रमशः औपनिवेशिक स्वराज्य की कल्पना कर सकते हैं; परंतु पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य तो ग़ैर-अमली ही नहीं, कल्पनातीत है।"

'मॉर्निंग-पोस्ट' ने कहा है कि जिस शक्ति ने पिछली २३ दिसंबर को वायसराय की स्पेशल के नीचे बम फेंका है, वही कांग्रेस के इस प्रस्ताव की पीठ पर थी। सरकार ने कांग्रेस का यह विद्रोही अधिवेशन होने की आज्ञा कैसे दी? पंजाब-सरकार ने कांग्रेस के लिये ज़मीन दी, और उसकी रक्षा के लिये एक लाख रुपया ख़र्च किया।......पंजाब-सरकार ने यहाँ तक ही कांग्रेस को आत्म-समर्पण नहीं किया, बरन् सच पूछो, तो उसने लठबंद बदमाशों को, जिन्होंने प्रजा पर लाठियाँ चलाईं, अपना रक्षक बनाने की आज्ञा कांग्रेस को देकर अपने अधिकार का त्याग किया।

'संडे टाइम्स' ने लिखा कि "हरएक आदमी इस बात को मानेगा कि स्वराजिस्ट लोग शक्तिशाली हो गए हैं, और सरकार से अनुरोध करेगा कि वह गरम दलवालों के साथ विना रोक-टोक और विना अधिक सोचे-विचारे सख़्ती का व्यवहार करे।"

'डेली मेल' ने लॉर्ड इरविन और मि० बाल्डविन को लताड़ते हुए उन्हें मुट्ठी-भर गरम दलवालों से दब जाने का दोष दिया है, और बम-दुर्घटना के निंदात्मक प्रस्ताव-संबंधी विरोध की तरफ़ इशारा करते हुए लिखा है कि कांग्रेसवालों का एक बड़ा भाग ऐसी बम-दुर्घटनाओं के पक्ष में है।

'डेली टेलीग्राफ़' ने सर फ़िरोज़ सेठना के भाषण पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—"माडरेट भी अभी स्वप्न-संसार में विचर रहे हैं।"

'डेली टेलीग्राफ़' के विशेष संवाददाता ने एक तार में लिखा है कि पंडित जवाहरलाल के भाषण में अनेक राजद्रोहात्मक वाक्य हैं, परंतु अधिकारीवर्ग उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने को प्रस्तुत नहीं दिखाई देता; क्योंकि कांग्रेस-भूमि अत्यंत पवित्र और आदरणीय मानी जा रही है।

'मॉर्निंग-पोस्ट' का नई दिल्ली का संवाददाता इस पत्र को तार देता है कि "जाँच करने पर मालूम हुआ है, भारत-सरकार निश्चय कर चुकी है कि महात्मा गांधी देश को अनारकी की तरफ़ ले जाने से रोके जायँगे।"

साप्ताहिक 'स्पेक्टेटर' लिखता है कि "केवल एक काम, जो कांग्रेस की पूर्ण स्वतंत्रता की नीति को संभाव्य बना सकता है, एक स्वतंत्र या कई स्वतंत्र देशों पर शासन करने की एक भारतीय स्कीम का अस्तित्व होगा; परंतु ऐसी कोई भी स्कीम नहीं है।" यह पत्र आगे ब्रिटिश सरकार को सख़्ती, मज़बूती और निर्भयता की नीति अख़्तियार करने की राय देता है।

साप्ताहिक 'न्यू स्टेट्समैन' सरकार को असहयोगियों का बॉयकॉट करने की सम्मति देता है, और लिखता है—"हम भारत को प्रजा-तंत्र अथवा स्वराज्य नहीं दे सकते। हमें ज़बर्दस्ती उसे उस रास्ते पर ले चलना चाहिए, जिस पर हम चाहें, और केवल उन भारतीयों की सुननी चाहिए, जो हमसे सहयोग करने को राज़ी हों, शेष की कोई परवा न करनी चाहिए। एक सप्रू से अगर हम राय लें, तो वह हमारी मदद करेगा; परंतु एक नेहरू उसकी वाहियात माँगों की तरफ़ हमारे बढ़ने का सिर्फ़ फ़ायदा ही उठावेगा।"

साप्ताहिक 'सैटर्डे रिव्यू' ने ब्रिटेन को आगे बढ़ने की सम्मति दी है, और भारतीय सहयोग का स्वागत और सहयोग से इनकारों की उपेक्षा करने को कहा है।

'नेशन' यह विचार प्रकट करता है कि "चूँकि लॉर्ड इर्विन की नीति नरम और 'मिले रहने' की है, तो कोई कारण नहीं कि उसका राज्य-संबंधी प्रबंध भी शिथिल और कायरता-पूर्ण होगा। उसे पूर्ण विश्वास मिलना चाहिए कि प्रत्येक अवस्था में उसे इँगलैंड से पूरा सहयोग मिलेगा, चाहे वह यथार्थ अशांति को दबावे, अथवा पहले से ही वैसा मौक़ा न आने देने की कोशिश करे।"

पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा करके महात्मा गांधी ने इस बार सारे देश को मानो जलती हुई भट्ठी में डाल दिया है। यदि घोषणा के अनुसार देश ने स्वाधीनता की ओर अग्रसर होने की सच्ची चेष्टा की, तो मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि सन् तीस भारतवर्ष के लिये बड़ा भयानक साल होगा।

मेरी इस धारणा के दो ज़बर्दस्त कारण हैं—देश को अग्रसर होना ही पड़ेगा, चूँकि घोषणा महात्मा गांधी ने की है, और वह अब प्राण देकर भी विश्राम लेनेवाले जीव नहीं हैं। गत वर्ष महात्मा गांधी ने देश-भर में घूमकर अपनी शक्ति को तौल लिया है, और वह एकदम निराश नहीं हैं। यदि ऐसा होता, तो निश्चय महात्मा गांधी इस ज़बर्दस्त जवाबदेही को सिर पर न लेते। परंतु महात्माजी ने ऐसे नाज़ुक मौक़े पर ऐसी भीषण घोषणा करने का इरादा पक्का करके भी इस बार कांग्रेस के सभापति का स्थान स्वीकार न कर और उसे पं० जवाहरलाल नेहरू को बलात् देकर युवक-हृदयों को बहुत स्वाधीन कर दिया है, और यह काम असाधारण जोखिम से भरा हुआ है।

संसार के सभी देशों के युवक राष्ट्रीय भावना में गर्म दल के होते ही हैं। भारतीय युवकों के उग्र भाव आज छिपे नहीं हैं। भारत के युवकों के हृदय में जिस तेज़ी से ग़ैरत के भाव पैदा हुए हैं, और वे जिस साहस और त्याग का परिचय इन पिछले दिनों में दे चुके हैं, वह साधारण नहीं है। परंतु जैसा कि महात्माजी का मंतव्य है, और जो वास्तव में यथार्थ बात है कि भारतवर्ष-जैसे विशाल देश का प्रतापी ब्रिटेन की साम्राज्य-सत्ता पर विजय प्राप्त कर पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना उन उपायों से बिलकुल संभव नहीं, जिन्हें ये वीर युवक उपयोग में अब तक लाते रहे हैं। ब्रिटेन की महाशक्तियों को विजय करने के लिये देश को असाधारण सामूहिक त्याग, संगठन और सहिष्णुता एवं स्थैर्य की ज़रूरत है, जिसका कि अभी देश में बड़ा अभाव है।

महात्मा गांधी ने हठ-पूर्वक देश पर युवक-संघ का प्रभुत्व होने दिया है। यह केवल भारत ही ने नहीं, पृथ्वी-भर ने चकित होकर देखा है। परंतु संसार को इस बार इस प्रबल और महान् घटना से उतना भय और आशंका नहीं हुई, जितनी सन् २१ में उदीयमान असहयोग-आंदोलन से हो गई थी। उस असाधारण कार्य-क्रम ने संसार की महाशक्तियों की राजनीतिक दृष्टि भारत के इस सच्चे आंदोलन की ओर फेरी थी, और यह भारत इस निस्सहाय अवस्था में भी कुछ कर



डाक्तर एस० के० बर्म्मन की
कठिन रोगों की
सहज अचूक पेटेन्ट दवाएं।



आइओडाइज्ड सालसा

(ख़ून साफ़ करने की प्रसिद्ध दवा)

ख़ून में ही मनुष्य का जीवन है। अतः ख़ून को सदा साफ़ रखना चाहिए। हमारा यह सालसा साधारण सालसों से कहीं अधिक गुणकारी है।

यदि गर्मी (आतशक) गठिया व पारा मिली हुई दवाइयों से ख़ून बिगड़ गया हो, तो इस सालसे का सेवन कीजिए।

मूल्य—प्रति शीशी (३२ ख़ूराक) २।) ; डा० म० ।।=)

असली !] **डाबर मकरध्वज** [विशुद्ध !

इस अमूल्य रत्न से प्रायः सभी कोई परिचित हैं। इसके समान बहुरोग-नाशक तथा आयुवर्द्धक रसायन दूसरा नहीं। स्वस्थ शरीर में सेवन करने से आयु बढ़ती है। वृद्ध अवस्था में अमृत-तुल्य उपकारी है।

हमारे प्रयोगशाला में विशुद्ध सुवर्ण के योग से तैयार होता है।

मूल्य—७ मात्रा का ।।।=) ; डा० म० ।=)

नोट—हमारी दवाएँ सब जगह बिकती हैं। अपने स्थान में खरीदने से समय व डाक-खर्च की बचत होती है।

पोस्टबक्स नं० ५५४, (विभाग नं० ४६) कलकत्ता।

एजेंट—लखनऊ (चौक) में डा० गंगाराम जैटली।

गुज़रेगा, यह ब्रिटेन की सत्ता एवं पृथ्वी की महाशक्तियों को भी भास गया था।

इस बार हम सन् तीस के प्रभाव में जब सोते हुए उठे, तब हमने अपनी आत्मा को स्वाधीन भारत की घोषणा के प्रभाव से ओत-प्रोत पाया, परंतु इस असाधारण चीज़ की प्राप्ति से जो आनंद हृदय में होना चाहिए, वह हमें नहीं हुआ, बल्कि एक बोझ छाती पर रक्खा गया है, और इसका एक ही कारण है कि वर्तमान परिस्थिति और कार्य-क्रम के देखते देश इस घोषणा के अनुरूप स्वाधीन हो सकेगा, इसमें हमें घोर संदेह है। भारतवर्ष के पूर्ण स्वाधीन होने का समय अभी किसी तरह हमें निकट नहीं दीख रहा है।

यह बात सच है कि महात्मा गांधी अपने प्राणों की आहुति देने का सुयोग खोज रहे हैं, इसलिये हलका और सीधा प्रोग्राम उनके हृदय से निकलना संभव ही नहीं हो सकता। परंतु यह बात भी निश्चित है कि आज महात्मा गांधी सरलता से अकेले आत्म-आहुति नहीं दे सकते। मालूम होता है, पंजाब के शेर की अपमृत्यु भारतवर्ष ने चुपचाप सहन कर ली है। यदि साधारण दृष्टि से देखा जाय, तो यह कहा जा सकता है कि कदाचित् महात्माजी के प्राणों पर भी वह दिन आए, तो देश उसे इसी तरह दरगुज़र कर देगा। परंतु आँखोंवाले देख सकते हैं कि देश की राष्ट्रीयता के हृदय में जो दुर्धर्ष रोष उत्पन्न हो गया है, वह लालाजी के प्राणों का मोल है, और यह संभव ही नहीं हो सकता कि महात्माजी अपने प्राणों पर खेल जायँ और देश का वातावरण सोता रहे। अब कठिनता यह है कि महात्माजी जो कुछ करनेवाले हैं, उसे बिलकुल उन्हीं की पद्धति पर, आदि से अंत तक, निबाहना इस समय देश की शक्ति से बाहर है। ऐसी अचानक विपत्तियाँ, जो आज देश के सिर पर सवार हैं, और ऐसी प्रचंड बाधाएँ, जो उसकी स्वाधीनता के मार्ग में अड़ी हुई हैं, क्रोध और अविचार से नहीं दूर की जा सकतीं। उनके लिये बड़ा भारी संयम, ज़बरदस्त धैर्य और अचल सहिष्णुता की आवश्यकता है, जो देश में है ही नहीं।

महात्माजी की यह घोषणा बड़ी तेज़ी से समुद्रों को चीरती और पर्वतों को लाँघती हुई संसार के दरवाज़ों पर पहुँच गई है। आज सारा संसार भारत की जवानी और बुढ़ापे के एक ही क्षण के इस निश्चय को क्रियात्मक रूप में देखने को उत्सुक है। संसार पर—ख़ासकर ब्रिटेन पर—यह घटना कितना बड़ा प्रभाव रखती है, इसका परिचय एक ब्रिटिश-पत्र के यह कहने से मिलता है कि "आज भारत से हमारी सत्ता उठ गई।"

लाहौर की राष्ट्रीय महासभा के अवसर पर जो वक्तव्य प्रकट किए गए, वे इस बात को स्पष्ट करते हैं कि देश की बेचैनी इस समय देश को पूर्ण अहिंसक नहीं बनाए रख सकती, जिसका महात्मा गांधी के कार्य-क्रम में एक बहुत ही आवश्यक भाग है।

पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को सामने रखकर यदि देश कार्य-रूप से अग्रसर हो, तो सबसे पहली टक्कर जो उसको झेलनी पड़ेगी, वह गवर्नमेंट की दमन-नीति की चोट होगी। वह चोट इतनी साधारण नहीं है, जिसकी चर्चा ही न की जाय। यह बात तो प्रकट हो रही है कि ब्रिटिश-गवर्नमेंट ने, सन् ३० में, भारतवर्ष से मुक़ाबला करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, और वायसराय ने अपनी मुलाक़ात में स्पष्ट ही भारतवर्ष को उत्तरदायित्व देने से इनकार कर दिया है।

अगर भारतवर्ष को आज स्वाधीनता न प्राप्त हो, तो भी वह बड़ी ख़ुशी से अभी पचास साल ज़िंदा रह सकता और अपने संगठन तथा बल को उत्तरोत्तर बढ़ा सकता है। परंतु ग्रेट-ब्रिटेन यदि भारत की अभिलाषा के सामने परास्त हो जाय, तो वह निस्संदेह एक ही वर्ष में बरबाद हो जायगा। भारतवर्ष ग्रेट-ब्रिटेन का एकमात्र जीवन-अवलंब है, इसलिये भारतवर्ष को अपने अधीन बनाए रखने के लिये सारी अँगरेज़-जाति, आवश्यकता पड़ने पर, एक बार जूझ मरेगी। इसमें तो कोई शक नहीं कि आज साम्यवाद की बदौलत इँगलैंड में भी यह भाव फैला हुआ है कि कमज़ोर-से-कमज़ोर और छोटी-से-छोटी क़ौम को भी आत्म-शासन का स्वाभाविक अधिकार प्राप्त है, जैसा कि एक बार श्रीयुत सकलतवाला ने कहा था कि

"वर्तमान साम्राज्यवाद के पृष्ठ-पोषक इँगलैंड में भी मुश्किल से ६० हज़ार मनुष्य होंगे", परंतु हम इस बात की गंभीरता पर विचार करना चाहते हैं कि भारत की पूर्ण स्वाधीनता को इँगलैंड का क्या कोई भी उदार-से-उदार दल सहन कर सकेगा ? औपनिवेशिक स्वराज्य तो एक ऐसी सरल चीज़ है, जहाँ समस्त जातियों का—ख़ासकर ग्रेट-ब्रिटेन का—व्यापारिक स्वार्थ अबाध रूप से चल सकता है । इसके सिवा ग्रेट-ब्रिटेन की राजनीतिक मैत्री भी उसका एक अनिवार्य रूप है, इसलिये औपनिवेशिक स्वराज्य का समर्थन इँगलैंड के जन-बल से होना कदाचित् संभव होता, परंतु पूर्ण स्वाधीनता का ध्येय तो ग्रेट-ब्रिटेन के विध्वंस का प्रश्न है । हम नहीं समझते कि ब्रिटेन का जन-बल इस प्रश्न का समर्थन करेगा अथवा उदासीन भी रह सकेगा । फिर भारत के शासन में इँगलैंड का जन-बल बहुत दूर का हाथ रखता है, और भारत-सरकार को उसे स्याह-सफ़ेद करने का असाधारण अधिकार प्राप्त है । इसके सिवा वह बुरी तरह से इंडिया-हाउस के बंधन में बँधी हुई है, जो निर्धारित रीति से इधर-उधर हो ही नहीं सकता । तब एक ही बात स्पष्ट है कि भारतवर्ष को इस पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा की पूर्ति के लिये ब्रिटिश-सत्ता से युद्ध करना पड़ेगा । चूँकि इस युद्ध का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथ में रहेगा, इसलिये यह निश्चय है कि देश को अपने युद्ध की नीति पूर्ण अहिंसात्मक बनाए रखना पड़ेगी, क्योंकि अहिंसा महात्माजी का सर्वोपरि शस्त्र है, और सारे संसार ने इसी के कारण उन्हें महत्त्व का पद दिया है । परंतु ब्रिटिश-सत्ता को खुली आज़ादी है कि वह अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये अपने तमाम सामरिक बल और नीतिक छलों का उपयोग करे । यदि महात्मा गांधी का समस्त भारतीय युवक-दल को लेकर अग्रसर होना अनिवार्य है, तो ब्रिटेन-सत्ता का अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये अपने समस्त बल का उपयोग करना भी अनिवार्य है, और इसीलिये सन् ३० में भारत को जलती हुई भट्ठी में तपना पड़ेगा, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं ।

हिलोर

[श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद खत्री "मिलिंद"]

(१)

❀❀❀ मेरे हृदय-पात्र को तुम्हारी स्मृति का निर्झर न-जाने कब आकर भर गया । जान पड़ता है, यह अनादि काल से लबालब है । नयनों के पथ से कभी-कभी कुछ छलक भी पड़ता है, पर ख़ाली नहीं होता । आवेगों का एक क्षण आता है । इसे ज़रा ख़ाली कर जाता है । दूसरा आता है । फिर पूर्ण कर जाता है । जीवन के सारे सुख-दुःख इसकी छोटी-छोटी लहरों के साथ खेल-खेलकर सरस बन गए हैं । अंतर की असीम प्यास इसमें लय हो चुकी है, फिर भी यह ससीम है । इसके सौंदर्य का अनुभव होता है । मेरे देवता, मानो इसमें मिलकर तुम्हीं मेरे प्राणों में हिलोरें ले रहे हो !

(२)

❀❀❀ तुम्हारी एक ही किरण के स्पर्श से जीवन के भीतर-बाहर, चारो ओर, प्रकाश छा जाता है ; उसे छिपाने को भी जगह नहीं रहती । तुम्हारी एक ही हिलोर घट को सागर बना देती है ; उसे भरने को भी जगह नहीं रहती । जब मैं तुममें मिलने को एकांत खोजता हूँ, तुम अखिल विश्व को अपने में छुपा लाते हो । तुममें लय हो जाता है इस हृदय का सूनापन, इसके कोने-कोने में रम जाते हो तुम । पर, चुपचाप । हलचल नहीं मचती । यौवन का मौन, गोपन का संकोच और हृदय का एकांत लुट जाता है, पर तन्मयता भंग नहीं होती ।

हिंदी-व्याकरण

[पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए०]



करण उन नियमों की संस्था का नाम है, जो किसी भाषा में ओत-प्रोत रहते हैं। यहाँ मैंने जान-बूझकर 'संस्था' शब्द का प्रयोग किया है; क्योंकि केवल नियम-समूह या नियमावलि को व्याकरण नहीं कह सकते। व्याकरण के नियम एक दूसरे से अलग नहीं होते; किंतु वे उसी प्रकार परस्पर संबद्ध होते हैं, जैसे सूर्य-मंडल के ग्रह और उपग्रह।

संस्कृत में व्याकरण को एक शास्त्र माना गया है। पूर्व मीमांसा में, जो षड्दर्शनों में से पाँचवाँ है, व्याकरण के अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। व्याकरण वस्तुतः एक दर्शन है; क्योंकि उसमें मानवी मस्तिष्क के व्यापार का वर्णन होता है। कालिदास ने रघुवंश के पहले श्लोक में "वागर्थाविव संपृक्तौ" कहकर वाणी और अर्थ का घनिष्ठ संबंध बतलाया है। वाणी का अर्थ क्या है? साधारणतया लोग मेज़, कुर्सी आदि चीज़ों को ही वाणी का अर्थ समझते हैं, और इसीलिये इन चीज़ों का नाम पदार्थ है। परंतु यदि गहरी दृष्टि डाली जाय, तो मानवी मस्तिष्क में जो विचार-शृंखला चक्कर लगाया करती है, वही वाणी का अर्थ अर्थात् पदार्थ (पदानां अर्थः) है। इसलिये व्याकरण का मुख्य संबंध मनोविज्ञान (Psychology) से है। चूँकि ये नियम एक शृंखला में बँधे रहते हैं, अतः तर्कशास्त्र या लॉजिक (Logic) भी इसका संबंध है। इस प्रकार व्याकरण, से तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान का एक दूसरे पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। एक सच्चे वैयाकरण को इन शास्त्रों से यथोचित सहायता लेनी चाहिए।

साधारण लोग समझते हैं, व्याकरण के अनुकूल भाषा होती है, परंतु यह बात ग़लत है। वस्तुतः भाषा के अनुकूल व्याकरण होता है, न कि व्याकरण के अनुकूल भाषा। इस प्रकार व्याकरण-निर्माता साहित्य-निर्माताओं के अनुगामी होते हैं, न कि साहित्य-निर्माता व्याकरण-निर्माताओं के। यदि व्याकरण भाषा का पूर्वगामी होता, तो भाषा में कभी परिवर्तन ही न होता। चूँकि मनुष्यों अथवा जातियों के विचारों में परिवर्तन होता रहता है, इसलिये भाषाओं में भी परिवर्तन हो जाता है, और इस परिवर्तन का प्रकाशित करना ही व्याकरण का काम है।

व्याकरण के नियम दो प्रकार के होते हैं—एक सामान्य या सर्वदेशी, दूसरे विशेष या एकदेशी। सर्वदेशी या सामान्य नियम वे हैं, जो मनुष्य-जाति के मुख की आकृति आदि की समानता से संबंध रखते हैं। संसार-भर के मनुष्यों के मुँह एक प्रकार से बने हैं। उनमें एक प्रकार से आवाज़ उत्पन्न होती है। रूसी और बर्मी, दोनो एक प्रकार हँसते हैं। लंकावासी और स्वीडन-वासी, दोनो एक प्रकार रोते हैं। इसलिये बहुत-से नियम, जो स्थान और प्रयत्न के आश्रित हैं, सभी भाषाओं में सामान्य हैं। व्यंजन-संधि के बहुत-से नियम एक-से ही हैं। संस्कृत का सं और पर्क मिलकर संपर्क होता है अर्थात् प के पहले अनुस्वार का म हो जाता है। इसी प्रकार अँगरेज़ी के 'इं' 'पॉसीबिल' का इंपॉसीबिल (Impossible) हो जाता है। इसी प्रकार फ़ारसी का शब्द انبه यद्यपि 'अन् बः' लिखा जाता है, परंतु उसका उच्चारण 'अंबः' ही होता है।

हिंदी-व्याकरण के सामान्य नियम वे ही हैं, जो अन्य भाषाओं के। ये आज भी वही हैं, जो सौ वर्ष पहले थे, अथवा पाँच सौ वर्ष पीछे रहेंगे।

परंतु विशेष नियम वे हैं, जो भिन्न-भिन्न भाषाओं के निज के हैं। वे अन्य किसी भाषा में पाए नहीं जाते। इनका आश्रय अधिकतर उस जाति के विचारों के ऊपर होता है। भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न जातियों के विचार परिवर्तित होते रहते हैं। इसी कारण भाषा में भी अंतर हो जाता है, यही स्थल है, जहाँ मनोविज्ञान व्याकरण पर प्रभाव डालता है।

हिंदी में व्याकरण का अभाव है। अभी कोई पाणिनि तो क्या, शाकटायन भी उत्पन्न नहीं हुआ। हिंदी-निर्माताओं ने इस शास्त्र की आवश्यकता ही नहीं समझी। अन्य भाषाओं के व्याकरण की देखा-देखी स्कूलों में हिंदी के पढ़ानेवालों ने अवश्य व्याकरण की आवश्यकता का अनुभव किया। परंतु हिंदी-भाषा, हिंदी के स्कूल, हिंदी के अध्यापक तथा हिंदी के विद्यार्थी सब अनादर की दृष्टि से देखे जाते रहे। जिनमें स्वाभिमान तथा मस्तिष्क था, उन्हें हिंदी से मुँह फेरना पड़ा, और हिंदी-मंडल में केवल उनका प्रवेश हुआ, जो अंतिम श्रेणी के थे। उनमें स्वतंत्र विचारों की योग्यता ही न थी। इसलिये अन्य पाठ्य पुस्तकों की भाँति व्याकरण भी बाज़ारू ही बने।

सबसे प्रसिद्ध और शायद पहला व्याकरण 'भाषा-भास्कर' था। इसका श्रेय भी किसी हिंदी-भाषी को नहीं, किंतु पादरी एथरिंगटन साहब को था। संभव है, उन्होंने अपनी आवश्यकता को दृष्टि में रखकर इसका निर्माण किया हो। परंतु इसमें संस्कृत-पंडितों की अवश्य सहायता ली गई होगी। संस्कृत-पंडित बहुत दिनों से सच्चे वैयाकरण नहीं रहे, किंतु व्याकरण के दास हो गए हैं, अतः यह छटा भाषा-भास्कर में भी पाई जाती है। इसमें जाति की वर्तमान मनोवृत्ति तथा हिंदी-भाषा में ओत-प्रोत नियमों की अपेक्षा प्राचीन मनोवृत्ति से काम लिया गया है। भाषा-भास्कर के पश्चात् जो व्याकरण स्कूलों के लिये बनाए गए, वे बिलकुल बाज़ारू रहे।

व्याकरण शास्त्र का विचार छोड़कर पैसे बटोरने पर अधिक लक्ष्य रक्खा गया। यही कारण है, स्कूली व्याकरणों में बड़ी भद्दी मौलिक अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं। न निरीक्षकवर्ग को अवकाश है, न अध्यापकवर्ग में योग्यता है, और इसका फल भोगना पड़ता है बेचारे विद्यार्थियों को। नागरीप्रचारिणी सभा ने, १९०६ में, इस आवश्यकता का अनुभव किया। एक विषय-सूची तैयार की गई, और पं० कामताप्रसादजी गुरु ने एक व्याकरण का निर्माण किया। अनेक अंशों में यह पुराने व्याकरणों से अच्छा है; परंतु इसमें भी व्याकरण की आंतरिक शक्तियों का विश्लेषण नहीं किया गया। मनो-विज्ञान तथा तर्कशास्त्र, दोनो से काम नहीं लिया गया। अभी हिंदी के पाणिनि के शुभागमन में बहुत देर है।

संस्कृत के आदि वैयाकरण कौन थे, यह कहना कठिन है। परंतु जो पारिभाषिक शब्द इन लोगों ने गढ़े, उनसे इनकी बुद्धिमत्ता का पता लगता है। उदाहरण के लिये हम एक शब्द 'सर्वनाम' को लेते हैं। अँगरेज़ी भाषा का पर्याय 'प्रोनाउन' (Pronoun) दूषित शब्द है। एक नाउन दूसरे नाउन का स्थानापन्न हो सकता है; परंतु उसको प्रोनाउन नहीं कह सकते। अतः प्रोना-उन अर्थात् नाउन का स्थानापन्न—इस शब्द से वही अर्थ नहीं निकलता, जो संस्कृत के सर्वनाम से निकलता है। सर्वनाम का अर्थ सर्वेषां नाम अर्थात् सबका नाम, व्यक्तिवाचक, जातिवाचक तथा भाववाचक संज्ञाएँ विशेष वस्तुओं के नाम होते हैं। परंतु सर्वनाम सब वस्तुओं के नाम हो सकते हैं। 'मैं', 'तुम', 'वह', 'यह' आदि सब वस्तुओं के लिये प्रयुक्त होने के कारण सर्व-नाम कहलाते हैं। यह है सर्वनाम का भाव। इसी प्रकार अन्य शब्दों का हाल है। परंतु कुछ दिनों पीछे संस्कृत-व्याकरण की परिभाषाएँ इतनी प्रचलित हो गईं कि वैयाकरणों को उनके प्रकाशन की आवश्यकता नहीं रही। यही कारण है, पाणिनि ने सर्वनाम का अर्थ या परिभाषा देने के बजाय 'सर्वादीनि सर्वनामानि' अर्थात् सर्वनामों को गिनाना ही पर्याप्त समझा।

परंतु संस्कृत के व्याकरण में शब्दों के रूपों पर ही ज़्यादा ज़ोर दिया गया है, उनके अर्थों पर अधिक विचार नहीं किया गया। जो शब्द सुबंत थे, उनकी एक कोटि हो गई, अर्थात् वे सब शब्द, जिनके रूपों में एक प्रकार के प्रत्यय लग सकते थे, एक कोटि के हो गए। इसमें सभी संज्ञाएँ, सर्वनाम तथा विशेषण, सहित, आ गईं। जो शब्द संज्ञा तो थे, परंतु उस प्रकार के रूप धारण नहीं करते थे, उनको 'संज्ञा-कोटि' से अलग कर दिया गया। जैसे 'ओ३म्' शब्द प्रणव अर्थात् ईश्वर-वाचक है, फिर भी इसलिये अव्यय है कि उसके सुबंत शब्दों के समान रूप नहीं चलते। इसी प्रकार 'दारा' शब्द 'पत्नी'वाचक होते हुए भी इसलिये पुंलिंग रहा कि उसके रूप नर शब्द की भाँति चलते रहे।

परंतु हिंदी-व्याकरणवालों ने संस्कृत-व्याकरण का आँख बंद करके अनुसरण करने में बुद्धिमत्ता नहीं की। संस्कृत-शब्दों की तीन कोटियाँ—संज्ञा, क्रिया और अव्यय—उनके रूप के अनुसार थीं, परंतु हिंदी में पहले दो शब्द अर्थों और तीसरा शब्द रूप का द्योतक होने से विभाजन दूषित हो गया। इसी प्रकार संस्कृत का 'तारतम्य' शब्द अर्थबोधक नहीं था, तर और तम प्रत्ययों का स्मरण दिलाने के लिये ही यह शब्द बनाया गया था। परंतु हिंदीवालों ने संस्कृतवालों के उद्देश्य को न समझकर उनका अनुचित अनुकरण किया। संस्कृत के अच् और हल् शब्द हिंदी में निरर्थक-से ही प्रतीत होते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि हिंदी की जननी प्राकृत और मातामही संस्कृत है, और इसलिये हिंदी-व्याकरण के निर्माण में इन दोनो भाषाओं के व्याकरणों की पर्याप्त सहायता लेनी चाहिए। परंतु एक बात स्मरण रखनी चाहिए। सहायता लेना और बात है और बिना दाएँ-बाएँ देखे नक़ल करना और बात। हिंदी-व्याकरण-वालों से यही शिकायत है कि उन्होंने अपने स्वतंत्र विचारों से काम नहीं लिया।

पिछले दिनों लीडर आदि पत्रों में यह विवाद छिड़ा था कि हिंदी-व्याकरणों को संस्कृत का अनुसरण करना चाहिए या अँगरेज़ी का। पहले दल के लोग कहते हैं कि संस्कृत से उत्पन्न हुई होने के कारण हिंदी को संस्कृत का अनुगामी होना ही श्रेयस्कर है। इस दल के लोग अग्नि को पुंलिंग ही कहेंगे। दूसरे दल के लोग कहते हैं कि अँगरेज़ी प्रचलित और जीवित भाषा है, अतः यदि हिंदी को जीवित भाषा बनाना चाहते हैं, तो लुप्तप्राय भाषाओं के अनुकरण से काम न चलेगा। हम इन दोनो पक्षों के बीच का मार्ग बताते हैं। हिंदी अब उस अवस्था में नहीं है, जिसमें शायद चंदबरदाई के समय में थी। एक हज़ार से अधिक वर्षों के संघर्षण से वह अब काफ़ी बड़ी हो चुकी है। इसकी वृद्धि शनैः-शनैः होती रही। मुसलमानी राज्य की फ़ारसी और अँगरेज़ी राज्य की अँगरेज़ी इसे कुचल न सकीं। इसलिये न तो संस्कृत के अनुकरण से ही कार्य चलेगा और न अँगरेज़ी के अनुकरण से। अँगरेज़ी व्याकरण में भी अनेक दोष हैं। परंतु अँगरेज़ी में एक विशेषता यह है, कि वह वृद्धिशील है। उसमें दोष हैं; परंतु साथ ही दोषों का परिज्ञान भी है। हिंदी में भी यही होना चाहिए। हिंदी को अपनी टाँगों पर खड़े होने की कोशिश करनी चाहिए। हिंदी-वैयाकरणों को ध्यान रखना चाहिए कि उनका काम उन नियमों का अन्वेषण करना है, जो हिंदी-भाषा में पाए जाते हैं। उनका संस्कृत या अँगरेज़ी के नियम देखकर उनके अनुकूल हिंदी को चलाना, मानो घोड़े को गाड़ी के पीछे जोतना है। हिंदी भी एक प्रकार से वर्धनशील है। इसका प्रभाव-क्षेत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। नए-नए साहित्य-सेवी उत्पन्न हो रहे हैं। साहित्य का भांडार बढ़ रहा है। वृद्धि के साथ-साथ विभिन्नता भी आ रही है। नए यात्री नए मार्ग ढूँढ़कर निकाल रहे हैं। लकीर के फ़क़ीरों को लकीरों को त्यागना पड़ेगा। जब हिंदी-भाषा समस्त भारत की भाषा बनेगी, तो वह केवल काशी, प्रयाग या व्रज की भाषा न होगी। भिन्न-भिन्न प्रांत अपना-अपना प्रभाव डालेंगे। नए धार्मिक, सामाजिक, नैतिक तथा वैज्ञानिक आंदोलनों के कारण परिवर्तन होगा। इस संघर्षण से निकलकर जो भाषा बनेगी, वह वस्तुतः हिंदी भाषा होगी।

अतः हिंदी-वैयाकरणों को इन सबका ध्यान रखना पड़ेगा। प्रत्येक विभाग के अधिकारों पर दृष्टि रखनी होगी, और प्रत्येक के सुबीते को देखना पड़ेगा।

अब तक हिंदी-व्याकरण संश्लेषणात्मक (Synthetic) रहा है, परंतु वैज्ञानिक रीति चाहती है कि इसको विश्लेषणात्मक (Analytic) किया जाय। पहले अवयवी का ज्ञान होता है, फिर अवयवों का। बच्चा पहले गाय को पहचानता है, फिर गाय के अंगों को। हमको संपूर्ण पर्वत, संपूर्ण नदी, संपूर्ण वृक्ष, संपूर्ण चंद्र, संपूर्ण सूर्य का ज्ञान पहले हो जाता है, फिर उनके भिन्न-भिन्न भागों का ज्ञान होता है। बच्चा जानता है कि गुलाब का फूल क्या है, परंतु बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी फूल की एक पंखड़ी के अनेक अवयवों के विषय में बहुत कम जान सके हैं। इस नीति का अवलंबन करने से हमको व्याकरण में वाक्यों से आरंभ करना पड़ेगा, न कि शब्दों से। पाठशालाओं

में शब्दों से आरंभ करने की रीति उलटी है। इससे बच्चों का ध्यान शब्दों के रूपों तक ही सीमित रहता है। वे भावों तक नहीं जा सकते। भाव सूक्ष्म होते हैं। उनके पारस्परिक संबंध और भी सूक्ष्म होते हैं। परंतु ये भाव ही केंद्र हैं, जिनके चारो ओर शब्द घूमा करते हैं। व्याकरण में अब तक शब्दों से आरंभ करने का कारण यह प्रतीत होता है कि लोगों ने भूल से समझ रक्खा था कि बच्चा पहले शब्द सीखता है, यह एक मनोवैज्ञानिक भूल थी। वस्तुतः बच्चा जो टूटे फूटे शब्द भी उच्चारण करता है, वे भावों के स्थानापन्न होते हैं। उनको शब्द नहीं, किंतु टूटे हुए वाक्य कहना चाहिए। यदि इस बात को दृष्टि में रखकर व्याकरण का विश्लेषण किया जाय, तो ठीक होगा। वस्तुतः व्याकरण शब्द ही बताता है कि वि+आ+करण अर्थात् विश्लेषण से तात्पर्य है, न कि संश्लेषण अर्थात् समीकरण से।

व्याकरण के तीन मुख्य विभाग हैं—रूप-विभाग (Inflectioned), क्रम-विभाग (Syntactical) तथा ऐतिहासिक विभाग (Historical)।

रूप-विभाग में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में शब्दों के क्या-क्या रूप बदलते हैं, इसका वर्णन है। प्राचीन भाषाओं में एक शब्द के अनेक रूप हुआ करते थे। कारक आदि का भेद रूपांतर से ही ज्ञात हुआ करता था। संस्कृत, अरबी, लैटिन, यहाँ तक कि प्राचीन अँगरेज़ी का भी यही हाल था। परंतु आधुनिक भाषाओं की प्रणाली भिन्न है, अँगरेज़ी में तो कारक-भेद रहा ही नहीं। वहाँ केवल शब्दों के क्रम से ही कारकों के अर्थ का बोध होता है। हिंदी में कारकों की विभक्तियाँ संस्कृत-विभक्तियों के समान शब्दों का अंग नहीं रहीं। ने, को, से आदि, जो विभक्तियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, वस्तुतः एक प्रकार के प्रत्यय ही हैं, विभक्तियाँ नहीं। उनको शब्दों से अलग लिखने की प्रथा भी है। केवल श्रीरामदासजी गौड़ आदि कुछ विद्वान् इनको संस्कृत की भाँति शब्दों में मिलाकर लिखते हैं। परंतु मुझे उनकी यह बात न तो न्याय-संगत ही जँचती है, न सर्वप्रिय ही प्रतीत होती है। आधुनिक सब भाषाओं की प्रवृत्ति यह है कि शब्द अपने रूपों को बदला न करें। दूसरे, अनेक अवस्थाएँ ऐसी हैं, जिनमें 'ने', 'को' आदि का प्रयोग होता ही नहीं। 'राम नहीं आया', 'उसने रोटी नहीं खाई', इन दोनो स्थलों पर कर्तृकारक तथा कर्मकारक के 'ने' और 'को' चिह्नों का अभाव है।

प्राचीन भाषाओं में रूप-भेद होने के कारण क्रम-संबंधी नियम बहुत साधारण थे। वस्तुतः क्रम की आवश्यकता भी न रहती थी। प्रत्येक शब्द अपने रूप के अनुसार अर्थ देता था, चाहे उसे पहले रक्खो, चाहे बीच में या पीछे। परंतु अब रूपों की विभिन्नता को कम करने के लिये शब्दों का वाक्यों में स्थान निश्चित हो गया है। हिंदी-भाषा में क्रम पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। स्थान-भेद से अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। यह प्रवृत्ति एक प्रकार से अच्छी है; क्योंकि शब्दों का जितना कम विचार हो, उतना ही अच्छा।

ऐतिहासिक विभाग का संबंध शब्दों के निकास, इनके विकास के इतिहास आदि से है। हिंदी की वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि प्राकृत के समय के विकृत शब्दों को हटाकर शुद्ध संस्कृत-शब्दों को प्रयोग किया जाय। फ़ारसी के शब्दों के विषय में भी यही बात है। देव, विहारी, सूर, तुलसी आदि फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग करते थे, परंतु वे उनको अपना बना लेते थे। आजकल इनको तद्वत् प्रयोग करते हैं। अब 'काग़द' न लिखकर 'काग़ज़' लिखते हैं। यह प्रवृत्ति कब तक रहेगी, यह कहना कठिन है। मराठी भाषा में सैकड़ों फ़ारसी शब्द आते हैं, परंतु उनका रूप विकृत हो गया है, या यों कहना चाहिए कि मराठी ने उनको हज़म कर लिया है। कुछ दिनों में हिंदी-भाषा में भी यह गुण पैदा हो जायगा, परंतु इसके लिये कुछ नियम बन जायँ, तो अच्छा हो। तुलसी और सूर की-सी परिस्थिति तो आज है नहीं। आजकल तो विचित्र संघर्षण है। अतः जब तक यह संघर्षण निश्चित रूप धारण नहीं करता, उस समय तक वैयाकरणों को भाषा की चाल का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना होगा।

हिंदी-भाषा में लिंग-भेद बड़ा आपत्तिजनक है। इस विषय में अँगरेज़ी अच्छी है। परंतु अँगरेज़ी की क्रियाओं

में लिंग-भेद नहीं, किंतु हिंदी की क्रियाओं में लिंग-भेद है। एक बार एक बिहारी महाशय ने बड़ी शिकायत की। वह कहने लगे—"तुम क्रियाओं के लिंग-भेद को दूर कर दो, तो बहुत सुगमता हो जाय।" संस्कृत की क्रिया में लिंग-भेद न था, "वह आवै है", "वह खावै है" आदि रूप शायद इसी बात को दृष्टि में रखकर बनाए गए थे। परंतु इस भेद को दूर कौन करे? वैयाकरण तो कर नहीं सकता। साहित्य-सेवियों की प्रवृत्ति इस ओर नहीं है, अतः यह प्रश्न ऐसा ही रहेगा। सब जीवित भाषाओं में इस प्रकार की कुछ-न-कुछ कठिनाइयाँ हैं और वे हिंदी में भी रहेंगी। जीवित भाषाओं का लक्षण यह है कि मशीन के समान जकड़ी नहीं होतीं। उनमें वर्धन-शीलता होती है। वे सूखे वृक्ष के समान कड़ी नहीं, किंतु हरी डालियों के समान लचकीली होती हैं। उनमें पाचन-शक्ति होती है। उनको कोई पुरुष केवल पुस्तकों या व्याकरण से नहीं सीख सकता, किंतु उस भाषा के बोलनेवालों के व्यवहार से ही वे आ सकती हैं। हिंदी भी उसी प्रकार की भाषा है।

ज्योतिर्मयी

[पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"]

(१)



नती रहें न ?—इसलिये कि आप लोगों ने, आपके बनाए हुए शास्त्रों ने, जो हमारे प्रतिकूल हैं, ज़बरन हमें ग़ुलाम बना रक्खा है; कोई चारा भी नहीं—कैसी बे-लगाम बात !" कमल की पंखड़ियों-सी बड़ी-बड़ी उज्ज्वल आँखों से देखती हुई, एक सत्रह साल की, रूप की चंद्रिका, भरी हुई युवती ने कहा।

"नहीं, इसलिये कि पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलती है।" सहज स्वरों में कहकर युवक निरीक्षक की दृष्टि से युवती की जाँच करने लगा।

युवती मुसकिराई—तमाम चेहरे पर सुर्ख़ी दौड़ गई। गुलाब के दलों-से सुकुमार लाल होंठ ज़रा-ज़रा बढ़े, उस ममंरोज्ज्वल मुख पर प्रसन्न-कौतुक-पूर्ण एक ज्योतिचक्र छोड़ यथास्थान आ गए।

"बचने का दरिद्रता ?" मुसकिराती हुई "अच्छा बतलाइए तो, अगर पहली ब्याही हुई स्त्री मरकर इसी तरह स्वर्ग में अपने पूज्यपाद पति-देवता के लिये प्रतीक्षा करती रहे, और उसके पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नी को मार-मारकर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें, तो ख़ुद मरकर किसके-किसके पास पहुँचेंगे ?" युवती खिलखिला दी।

युवक का चेहरा उतर गया।

"आपने इस साल एम्० ए० पास किया है, और अँगरेज़ी में ? वहाँ पतिव्रता स्त्रियों की जीवनियाँ शायद पत्नीव्रत पुरुषों की जीवनियों से आपने ज़्यादा याद कीं—क्यों ?" युवती ने दून की ली।

युवक अपने बड़े भाई की ससुराल गया था। युवती उसकी विधवा छोटी साली थी।

"आप क्या पढ़ी हैं ?" युवक ने पूछा।

"सिर्फ़ हिंदी और थोड़ी-सी संस्कृत" डब्बे को नज़दीक सरकाकर युवती पान लगाने लगी।

"मैं इतना ही कहूँगा कि आपके विचार समाज के तिनके के लिये आग हैं।" युवक ने ताज्जुब की निगाह से देखते हुए कहा।

"लेकिन मेरे भी उर के मोम के पुतले को गला देने, बहा देने, मुझसे जुदा कर देने के लिये समाज आग है, साथ ही यह भी कहिए", उँगली चूनदानी में, बड़ी-बड़ी आँखों की तेज़ निगाह युवक की तरफ़ फेरकर युवती ने कहा—"मैं १२ साल की थी, ससुराल भी नहीं गई, जानती नहीं पति कैसे थे, और विधवा हो गई !" कई बूँद आँसू कपोलों से बहकर युवती की बाईं जाँघ पर गिर पड़े। आँचल से आँखें पोंछ वह पान लगाने लगी।

"तंबाकू खाते हैं आप ?" आँख उठाकर युवती ने पूछा।

"नहीं।" युवक के दिल में सन्नाटा था। इतनी बड़ी, इतने आश्चर्य की, इतनी ख़तरनाक बात आज तक किसी विधवा युवती की ज़बान से उसने नहीं सुनी थी। वह जानता था, यह सब अख़बारों का आंदोलन है। इस तरह की कल्पना भी उसने कभी नहीं की। कारण, वह कान्यकुब्जों के एक श्रेष्ठ कुल का बालक था। युवती की बातों से वह घबरा गया।

"लीजिए।" युवती ने कई बीड़े दिए।

"आप बुरा मत मानिएगा, मैं आपको टटोल रही थी कि आप कितने दर्दमंद हैं।" युवती ने साधारण आवाज़ में कहा।

युवक ने पान ले लिए, पर लिए ही बैठा रहा। "खाइए।" युवती ने कहा—"आपसे एक बात पूछूँ ?"

"पूछिए।"

"अगर आपसे कोई विधवा-विवाह करने के लिये कहे ?" युवती मुसकिराई।

"मैं नहीं जानता, यह तो पिताजी के हाथ की बात है।" युवक शरमा गया।

"अगर पिताजी की जगह आप ही अपने आममुख़्तार होते ?"

युवक संकुचित हो गया। हिम्मत बाँधकर कहा—"मुझे विधवा-विवाह करते हुए शरम मालूम होती है।"

युवती मनोभावों को दबाकर छलछलाई आँखों से रह गई। एक बार उसी तरह युवक को देखा, फिर सिर झुका लिया।

दूसरे दिन युवक घर चलने लगा। मकान की बड़ी-जेठी स्त्रियों के पैर छुए। आँखें इधर-उधर युवती की तलाश कर रही थीं। वह नहीं मिली। युवक दोमंज़िले से नीचे उतरा। देखा, दरवाज़े के पास खड़ी हुई वह उसकी राह देख रही है। युवक ने कहा—"आज्ञा दीजिए, अब जा रहा हूँ।" हाथ जोड़कर युवती ने प्रणाम किया। एक पत्र युवक को देते हुए कहा—"फिर जल्द दर्शन दीजिएगा।" युवक के हृदय में एक अज्ञात प्रसन्नता की लहर उठी। उसने देखा, पलकों के नील पंखों से उसकी आँखों की परियाँ अनंत आकाश की ओर उड़ जाना चाहती हैं, जहाँ स्नेह के स्वर्ण-वसंत में मदन और रति का नित्य संयोग है, जहाँ किसी प्रकाश की निष्ठुर श्रृंखला नवीनोन्मेष को जकड़कर पदानत नहीं कर रखती, जहाँ प्रेम ही आँखों में मनोहर चित्र, कंठ में मधुर संगीत, हृदय में सत्यनिष्ठ भावना और अंगों में रूप की ढकी आग है।

"ज्योती !" युवक ने स्नेह के मधुर कंठ से, सहानुभूति की ध्वनि में, कहा।

निस्संकोच युवती कुछ क़दम आगे बढ़ गई। युवक के बिलकुल नज़दीक, एक तरह सटकर, खड़ी हो गई। सिर युवक की ठोढ़ी के पास, आँखें आँखों में मिली हुई। उसके वस्त्र के स्पर्श से युवक की शिराओं में एक ऐसी तरंग बहने लगी, जिसका अनुभव आज तक उसे नहीं हुआ था। तमाम अंगों से आनंद के परमाणु निकलने लगे। आँखों में नशा छा गया।

"अच्छा फिर कहूँगा।" युवक चल दिया। "याद रखिएगा—आपसे इतनी ही प्रार्थना"......युवक दृष्टि से बाहर हो गया।

(२)

"पत्थर भी पिघलकर बह जाता है उस पत्र को पढ़ने से वीरेन" विजय ने सहानुभूति के शब्दों में कहा।

"तुम दिल के इतने कमज़ोर हो ?—एक नष्ट होते हुए समाज-क्लिष्ट जीवन का तुम उद्धार नहीं कर सकते विजय ? तुम्हारी शिक्षा क्या तुम्हें पुरानी राह का सीधा-सादा लद्दू बैल करने के लिये हुई है ?" वीरेंद्र ने चिंता-युक्त भर्त्सना के शब्दों में कहा।

"पिताजी से कुछ बस नहीं, मैं उनके प्रतिकूल आचरण नहीं कर सकूँगा। पर मैं आजीवन—आजीवन सोचूँगा, दुर्बल समाज के दरिया में बहते हुए एक निष्पाप पुष्प का उद्धार मैं नहीं कर सका और इसलिये कि उसने मुझे तैरना नहीं सिखलाया।"

"तुम्हें एक दूसरे समाज की शिक्षा से तैरना मालूम हो चुका है।"

"हो चुका है, पर तैरते ही रहना, फिर किनारे पर लगना नहीं; सब घाट समाज द्वारा अधिकृत हैं और केवल तैरते रहना मनुष्य के लिये असंभव है।"

"तुम कूल पर आ सकते हो।"

"पर उस फूल को लेकर समाज के किसी घाट पर नहीं जा सकता। वह कूल इतना बीहड़ है कि मेरे थके हुए पैर वहाँ जमेंगे नहीं। वहाँ दृष्टियों का ताप इतना प्रखर है कि फूल मुरझा जायगा, मैं झुलस जाऊँगा।"

"तो सारांश यह कि तुम उस पावन-मूर्ति अबला का, जिसने बढ़कर तुम्हें प्यार किया—मित्र समझ हृदय की गुप्त व्यथा प्रकट कर दी, उस देवी का समाज के पंक से उद्धार नहीं कर सकते ?"

"मेरा हृदय उसने छीन लिया है, पर शरीर पिताजी का दिया हुआ है वीरेन, मैं यहाँ दुर्बल हूँ।"

"कैसी वाहियात बात ! कितनी बड़ी आत्म-वंचना ! विजय, हृदय क्या शरीर से अलग है ? जिसने तुम पर विजय प्राप्त कर ली, अब उसका तिरस्कार करना जानते हो किसका अपमान करना है ?—परोक्ष अपना। समाज का धर्म क्या उसके लिये नहीं था ?—फूटे हुए बरतन की तरह क्या वह भी एक तरफ़ निकालकर न रख दी जाती ? क्या उसने यह सब नहीं सोचा ?"

"उसमें और-और तरह की भावनाएँ होंगी।"

"क्या ? और-और तरह की भावनाएँ होतीं, तो वह

तुम्हारे भाई की ससुरालवालों के सगर्व मुखों पर अच्छी तरह स्याही पोतकर अब तक कहीं चली गई होती, समझे ? वह समझदार है। और, तुम्हारे सामने जो इतना खुली है, इसका कारण काम नहीं, यथार्थ ही उसने तुम्हें प्यार किया है विजय। अच्छा, उसका पता क्या है?"

वीरेंद्र ने अपना नोटबुक निकालकर पता लिख लिया। फिर विजय से कहा—"तुम मेरे मित्र हो, वह मेरे मित्र की प्रेयसी।"

दोनो एक दूसरे की ओर देखकर हँसने लगे।

(३)

इस घटना को कई महीने बीत चुके। अब भाई की ससुराल जाने की कल्पना से ही विजय का कलेजा काँप उठता, संकोच की सर्दी से तमाम अंग जकड़ जाते, उसे संकल्प से निरस्त हो जाना पड़ता है। वीरेंद्र उसकी यह हालत देख-देख मन-ही-मन कुढ़ा करता, पर तब से फिर उसने किसी प्रकार की स्वतंत्र इच्छा का दबाव उस पर नहीं डाला। विजय इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में रिसर्च-स्कॉलर है। वीरेंद्र बी० ए० पास कर लेने के पश्चात् वहीं अपना कारोबार देखता रहता है। वह इटावे के प्रसिद्ध रईस नागरमल-भीखमदास-फ़र्म के मालिक मन्साराम अग्रवाल का इकलौता लड़का है।

महीने के लगभग हुआ, वीरेंद्र इटावे चला गया है। चलते समय विजय से बिदा होकर गया था।

इधर तीन-चार दिन हुए, घर से पत्र द्वारा विजय को बुलावा आया है। ज़िला उन्नाव, मौज़ा बीघापुर विजय की जन्म-भूमि है।

विजय के पिता साधारण स्थिति के मनुष्य हैं। माँझगाँव के मिश्र, कुलीन कान्यकुब्ज हैं। विजय का विवाह अधिक दहेज़ के लोभ से उन्होंने रोक रक्खा था। अब तक जितने संबंध आए हुए थे, तीन हज़ार से अधिक नहीं दे रहे थे। अबके एक संबंध आया हुआ है, जिसकी तरफ़ विजय के पिता का विशेष रूप से झुकाव है। ये लोग मुरादाबाद के रहनेवाले हैं। १८ दिन पहले विजय की जन्म-पत्रिका ले गए थे। विवाह बनता है, इसलिये दोबारा पक्का करने के लिये कन्या-पक्ष से कोई आया हुआ है। विजय के पिता और चचा आपस में मकान के भीतर सलाह करते हैं।

"दादा, लेकिन एक पै है, ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं, ऐसा न हो कि फिर कहीं के न रहें।"

"तुम भी ; मारो गोली ; हमको रुपए से मतलब; हमारे पास रुपया है, तो जात-बिरादर भाई-बंद सब साले आवेंगे ; नहीं तो कोई लोटे-भर पानी को भी न पूछेगा।"

"तो क्या राय है ?"

"विवाह करो, और क्या ?"

"सात हज़ार से आगे नहीं बढ़ता।"

"घर घेरे बैठा है, देखते नहीं ? धीरे-धीरे दुहो ; लेकिन शिकार निकल न जाय।"

"अब फसा है, तो क्या निकलेगा।"

"डर कौन—बारात में घर के चार जन चले चलेंगे। कहेंगे दूर है, ख़र्चा नहीं मिला।"

"वही ख़र्चा यहाँ करके खिला दिया जाय—क्यों ?"

"और क्या ?"

"बस यही ठीक है।"

विजय के पिता पं० गंगाधर मिश्र और चचा पं० कृष्णशंकर रक्त चंदन का टीका लगाए, रुद्राक्ष की माला पहने हुए, खड़ाऊँ खटपटाते दरवाज़े-चौपाल में नेवाड़ के पलँग पर, धीर-गंभीर मुद्रा से, सिर झुकाए हुए आकर बैठ गए। एक मूँज की चारपाई पर कन्या-पक्ष के पं० सत्यनारायण शर्मा मिर्ज़ई पहने, पगड़ी बाँधे बैठे हुए थे। मिश्रजी को देखकर पूछा—"तो क्या आज्ञा है मिश्रजी ?"

पंडित गंगाधर ने पं० कृष्णशंकर की ओर इशारा करके कहा—"बातचीत इनसे पक्की कीजिए। मकान-मालिक यही हैं।"

पं० सत्यनारायणजी ने पं० कृष्णशंकर की ओर देखा।

"बात यह है पंडितजी कि दहेज़ बहुत कम मिल रहा है। आप सोचें कि अब तक सात-आठ हज़ार रुपया लड़के की पढ़ाई में लग चुका है। लखनऊ के वाजपेयी आए थे, हमारा उनका संबंध है,

छः हज़ार देते थे, पर हमने इनकार कर दिया। अब हमको ख़र्च भी नहीं मिला, तो लड़के को पढ़ाकर हमने फ़ायदा क्या उठाया? इस संबंध में (इधर-उधर झाँककर) हमें कुछ मिला भी नहीं, तो इतना गिरकर।"

"अच्छा कहिए, क्या चाहते हैं आप?"

"पंद्रह हज़ार।"

"तब तो हमारे यहाँ बरतन भी नहीं रह जायँगे।"

"अच्छा, अब आप ही कहिए।"

"नौ हज़ार लीजिए।"

"अच्छा, बारह हज़ार में पक्का।"

पं० सत्यनारायण अपनी अधारी सँभालने लगे।

"ग्यारह हज़ार देते हैं आप? पं० कृष्णशंकर ने उभड़कर पूछा।"

"दस हज़ार सही, बताइए।"

"अच्छा पक्का; मगर पाँच हज़ार पेशगी।"

पं० सत्यनारायण ने काग़ज़, स्टांप और हज़ार-हज़ार के पाँच नोट निकालकर कहा—"लीजिए, आप दोनो इसमें दस्तख़त कीजिए। पहले लिखिए कि पं० सत्यनारायण, मुरादाबाद, की कन्या से श्रीयुत विजयकुमार मिश्र एम्० ए० के विवाह के संबंध में, जो दस हज़ार में मैं गवहीं और गौने के ख़र्च के पक्का हुआ है, कन्या के पिता से पाँच हज़ार पेशगी नक़द वसूल पाया। स्टांप पर वल्दियत के साथ दस्तख़त कीजिए।"

पंडित गंगाधर गद्गद हो गए। लिखा-पढ़ी हो गई। विवाह का दिन स्थिर हो गया।

तिलक चढ़ गया। तिलक के पहले समय तक विजय को ज्योतिर्मयी की याद आती रही। पर नवीन विवाह के प्रसंग से मन बट गया। फिर धीरे-धीरे, जैसा हुआ करता है, वह स्मृति भी चित्त की अतलता का स्पर्श करने चली, जो स्वयं ही बढ़कर अपना सर्वस्व दे देने चली थी। अब विजय को उसके चरित्र पर कभी-कभी शंका होने लगी है। सोचने लगा, बुरा फस गया था, बच गया। सच कहा है, "स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः।"

अब नई-नई कल्पनाओं की समीर उसके मस्तिष्क में बहने लगी है। एक अज्ञात, अपरिचित सुख को जैसे कल्पना के बल से वह प्रत्यक्ष कर लेना चाहता है, और इस चेष्टा में कितना सुख! इतना कभी उसे नहीं मिला। इस अज्ञात रहस्य में वह ज्योतिर्मयी की अम्लान कांति को एक प्रकार भूल ही गया।

(४)

विजय ने विवाह के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये वीरेंद्र को लिखा था, पर उसने उत्तर दिया—"मैं विजय का मित्र हूँ, किसी पराजय का नहीं; इस विवाह में मैं शरीक नहीं हो सकूँगा।"

जैसा पहले से निश्चय था, जल्दबाज़ी का बहाना कर पं० गंगाधर ने पास-पड़ोस के आदमियों को छोड़ और किसी को बुलाया भी नहीं था। यही कारण है कि ज्योतिर्मयी के यहाँ, विजय के बड़े भाई की ससुराल निमंत्रण नहीं पहुँच सका। इधर भी जहाँ कहीं न्योता गया, वहाँ से कुछ ही लोग आए। कारण, संदेह की हवा दूर-दूर तक बह चुकी थी।

बारात चली। लखनऊ में वीरेंद्र से विजय की मुलाक़ात हुई। वीरेंद्र ने पूछा—"यार, तुम तो ज्योतिर्मयी को भूल ही गए। इतना जल्द गल गए इस विवाह में?"

"बात यह है कि इस तरह की स्त्रियाँ समाज के काम की नहीं होतीं।"

"अरे, तुमने तो स्वर भी बदल दिया!"

"क्या किया जाय?"

"और जहाँ विवाह करने जा रहे हो, यही बड़ी सती-सावित्री निकलेगी, इसका क्या प्रमाण?"

"क्वाँरी और विधवा में फ़र्क़ है भाई?"

"यह मानता हूँ।"

"कुछ संस्कृति का भी ख़याल रखना चाहिए। संस्कृति से ही संतति अच्छी होती है।"

"अरे, तुम तो पूरे पंडित हो गए!"

"अपने कुल का सबको ख़याल रहता है—केतहु काल कराल परै पै मराल न ताकहि तुच्छ तलैया।"

"यह बात!"

"जी हाँ।"

"तब तो यार, जी चाहता है, तुम्हारे साथ मैं भी चलूँ।"

"चलो, मैंने तो तुम्हें लिखा भी था, पर तुम दुनिया

की वास्तविकता का विचार तो करते नहीं। विचारों की दीवारें उठाया-गिराया करते हो।"

"अच्छा भई, अब ज़रा वास्तविकता का आनंद भी ले लें। कहो, कितने गिनाए ?"

"दस हज़ार।"

"दस हज़ार ! उसके मकान में लोटा तो मज़बूत न छोड़ा होगा ?"

"कान्यकुब्ज-कुलीन हैं या दिल्लगी ?"

"वे कोई मामूली कान्यकुब्ज होंगे ?"

"बहुत मामूली नहीं, १७ बिस्वे मर्याद है।"

"हूँ।" वीरेंद्र सोचने लगा। "तुमसे घृणा हो गई है। जाओ, अब नहीं जाऊँगा। तुम इतने नीच हो।"

वीरेंद्र शहर की ओर चला गया। बारात मुरादाबाद चली।

(५)

विवाह हो गया। पं० सत्यनारायण शर्मा ने वर-यात्रियों का हृदय से स्वागत-सम्मान किया। खोरे में पाँच हज़ार नक़द दिए और कन्या को पाँच हज़ार का ज़ेवर ऊपर से बनवा दिया। विजय को सोने की चेन, जेब-घड़ी, रिस्टवाच, साइकिल, अँगूठी और कुछ सामान देकर प्रसन्न कर दिया।

बड़ा-छोटा "बड़हार" हो गया। चतुर्थी के बाद कन्या के साथ बारात बिदा हो गई।

वर-कन्या के लिये पं० सत्यनारायणजी ने एक सेकंड क्लास कंपार्टमेंट पहले ही से रिज़र्व्ड करा रक्खा था। और लोगों के लिये इंटर क्लास अलग।

पं० सत्यनारायण हाथ जोड़कर पं० गंगाधर और कृष्णशंकर आदि से बिदा हुए। कन्या से कहा—"बेटी, वहाँ पहुँचकर अपने समाचार जल्द देना।" गाड़ी छूट गई।

प्रणय के दुंबन से चित्त चंचल हो उठा। अब तक जिस अदेख मुख पर विजय ने असंख्यों कल्पनाएँ की थीं, उसे देखने का यह कितना शुभ-सुंदर अवसर मिला। उसने पिता को, ससुर को, समाज को आनंद के भरे हुए, छलकते-उछलते-मचलते हुए हृदय से बारंबार धन्यवाद दिया। युवती नई बहू का घूँघट उठा चंद्रमुख के देखने की उसकी चकोर-लालसा प्रबल हो उठी। डाकगाड़ी पूरी रफ़्तार से चली जा रही थी।

विजय उठकर बहू के पास जाकर बैठ गया। सर्वांग काँप उठा। घूँघट हटाने के लिये हाथ उठाया। हाथ काँप गया। उस कंपन में कितना आनंद !—हरएक रोम के भीतर से आनंद-मंदाकिनी बह चली।

विजय ने बहू का घूँघट उठा दिया। विजय मस्त होकर चीख़ उठा !—ऐं—तुम ?

"हाय-हाय ! यही विवाह का सुख है !" ज्योतिर्मयी के रोम-रोम से घृणा का ज़हर मध्याह्न की ज्वाला की तरह निकल रहा था। "छिः ! मैंने क्या किया ? यह वही विजय—वही सुंदर शांत विजय है ? ओह—कितना परिवर्तन ! इस कीड़े के साथ अब मुझे अपराधी की तरह सिकुड़कर घर के एक कोने में संपूर्ण जीवन पार करना होगा। मेरा वैधव्य इससे कितना अच्छा था। कितनी मधुर कल्पनाओं में पल रही थी ! वीरेंद्र !— तुम्हारे-जैसा सिंह-पुरुष ऐसे स्यार का साथ करता है ? तुमने इधर डेढ़ महीने से मेरे लिये कितना दुःख, कितना कष्ट, मुझे और अपने इस अधम मित्र को सुखी करने के लिये स्वीकार किया ! १८ हज़ार ख़र्च किए ! तुम्हारे मैनेजर—सत्यनारायण—मेरे कल्पित पिता ! वह देवताओं का निर्मल परिवार है !" ज्योतिर्मयी मन-ही-मन और कितना, न-जाने क्या-क्या, सोच रही थी।

विजय ने पूछा—"तुम वहाँ कैसे गईं ?"

"वीरेंद्र से पूछना।" नफ़रत से ज्योतिर्मयी ने कहा।

(६)

ज्योतिर्मयी मिश्र-ख़ानदान में मिल गई है। पर वीरेंद्र फिर विजय से नहीं मिला।

आगमन

(राग हिंडोल)

[पं० पद्मकांत मालवीय]

नाच उठता है क्यों मन-मोर ?
आ रहे क्या मेरे चित-चोर ?
खेलती मेघावलियाँ देख,
मत्त हो उठते प्रेमी मोर ;
लुटातीं वे संचित निधि सभी,
लजीले लोचन तोर-मरोर।
मचाता है यह अतिशय शोर ;
आ रहे क्या मेरे चित-चोर ?

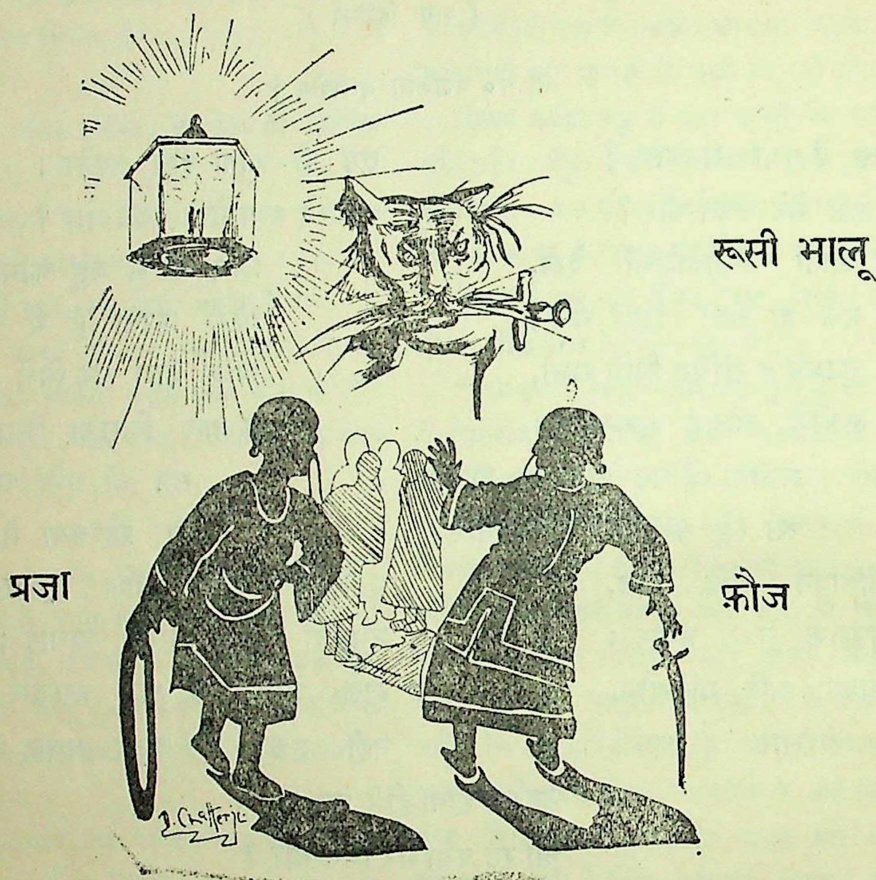
जभी प्रतिबिंबित होते चंद्र,
देखता अपलक नयन उघार ;
चंद्र भी होकर अति गति-हीन,
सुधा की बरसाते हैं धार।

तृप्त हो जाता दीन चकोर ;
आ रहे क्या मेरे चित-चोर ?
लिए उर में बहु कोमल घाव,
फिरा करता हूँ मैं चुपचाप ;
खोज हारा पर मिले न कहीं,
न-जाने किसका कैसा शाप ?
रहा यों मुझे आज झकझोर ;
आ रहे क्या मेरे चित-चोर ?

हृदय में उठतीं लोल हिलोर,
उमड़ता आता सिंधु अथाह ;
खुले जाते हैं अब दृग-द्वार,
नहीं रुकता है आज प्रवाह।

ठहर ! होता ही है अब भोर ;
आ रहे क्या मेरे चित-चोर ?

रूस और मंचूरिया



स्वराज्य-आंदोलन और मुसलमान

[मुंशी जहूरबख़्श हिंदी-कोविद]



ब हम किसी मित्र को यह कहते हुए सुनते हैं कि मतांधता ही इस देश के मुसलमानों की स्वदेश-प्रीति है—मतांधता ही उनकी राजनीति है, तब वास्तव में हमें बड़ा खेद होता है, क्षोभ से हमारी आत्मा आकुल हो उठती है, और हमारा ध्यान अरब की उस अज्ञात बालुका-राशि से जा टकराता है, जिसने लगभग पंद्रह सौ वर्ष पूर्व मुस्लिम स्वदेश-प्रीति और राजनीति का गंभीरतम उद्घोष सुना था। मुस्लिम मत की नींव साम्यवाद के आधार पर स्थिर की गई थी। उसकी दृष्टि में मनुष्य-मात्र का पद बराबर था। धनिक-से-धनिक और दरिद्र-से-दरिद्र व्यक्ति के धार्मिक अधिकारों में कोई विभेद नहीं था। इसी सिद्धांत के कारण मुस्लिम मत फला, फूला और फैला। उसने जहाँ की यात्रा की, वहीं के लोगों ने हृदय खोलकर उसका स्वागत किया। मुस्लिम-मतानुयायियों की संख्या में दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति होने लगी। इसके साथ ही साम्राज्य-वृद्धि की जैसे आँधी आ गई। इस्लाम-मत के उस महान् प्रवर्तक का हृदय आशंका से डगमगाने लगा कि कहीं इस्लाम के ये उठते हुए पौदे साम्राज्य-लोलुपता की कँटीली झाड़ियों में न फँस जायँ। उसने नियम बना दिया कि केवल ख़ुदा ही सबका बादशाह है; सब देशों का स्वामी है। किसी व्यक्ति-विशेष को यह अधिकार नहीं कि वह देश पर शासन करे, उसमें बसनेवाले लोगों को अपनी आज्ञा पर चलने के लिये बाध्य करे। राज्य का समुचित प्रबंध करने के लिये वे स्वयं अपना प्रतिनिधि चुनेंगे, और वह प्रतिनिधि लोक-मत के सामने उत्तरदायी रहेगा, इसी पवित्र राजनीति के सिद्धांत पर हज़रत महम्मद साहब के पश्चात् ख़िलाफ़त की प्रणाली स्थिर की गई थी।

परंतु इस्लाम के ये दोनो पवित्र उद्देश्य आज भारत के मुसलमानों में 'मतांधता' के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। कारण स्पष्ट है। स्वभाव की दुर्बलता के सामने मनुष्य को पराजित होना ही पड़ता है। ज्यों-ज्यों मुस्लिम-साम्राज्य की वृद्धि हुई, त्यों-त्यों मुसलमानों की लोभ-वृत्ति उन्नत होती गई, साम्यवाद के सिद्धांत में शिथिलता आ गई और प्रजा-तंत्र का सिद्धांत तो एकबारगी विनष्ट हो गया, उसकी शव-समाधि पर शुद्ध राजतंत्र का भवन खड़ा किया गया। ख़ुदा के स्थान पर मनुष्य ही मनुष्य का भाग्य-विधाता बन बैठा। इस्लाम के उज्ज्वल सिद्धांतों की यह कैसी हृदय-हीन हत्या थी। कहने को इस्लाम-मत का बहुत प्रचार अवश्य हो गया, इस्लाम साम्राज्य-वृद्धि की सीमा पर अवश्य पहुँच गया; पर वास्तव में हुआ उसका पतन ही! विजय के रूप में ऐसी पराजय, इतिहास में कदाचित् ही दिखाई देगी।

वास्तविक इस्लाम की हत्या करने के पश्चात् उसके थोथे हिमायतियों की दृष्टि भारत के देदीप्यमान् वैभव पर पड़ी, और उसने उन्हें खींच लिया। एक बार वे कोमल सिद्धांत यहाँ पुनः कुचले गए, मनुष्य ने मनुष्य का रक्त बहाया। इसके पश्चात्? इसके पश्चात् उस रक्त पर सिंहासन रक्खा गया, मुसलमान मुसकिराता हुआ बड़े अभिमान से उस पर बैठा भारत का भाग्य-विधाता बनकर। यहाँ की प्रजा ने उसे अपना भाग्य-विधाता नहीं चुना था। परंतु एक बात अच्छी हुई, वह यहीं रह गया। उसने यहीं रहकर, यहाँ की धन-राशि यहीं रहनेवालों को बाँट दी। यहाँ की उन्नति को ही उसने अपनी उन्नति समझा। यहाँ बस जाने के पश्चात् भी वह अरब या टरकी को अपना देश समझता रहा या नहीं, इस विषय में इतिहास चुप है, बल्कि बतलाता यह है कि इस देश की रक्षा करने में—उन्नति करने में उसने किसी प्रयत्न को बाक़ी नहीं छोड़ा, और उसके उत्तराधिकारियों—सिराज, मीरक़ासिम, हैदरटीपू आदि—

ने इस देश की स्वतंत्रता सुरक्षित रखने के हेतु अपने अस्तित्व तक को नष्ट कर दिया। आह ! आज उन महान् आत्माओं की संतान ने उनके उद्देश्य को पैरों-तले कुचल दिया है। मतांधता में ही उसकी राजनीति, स्वदेश-प्रीति और स्वतंत्रता रह गई है। भारत के वर्तमान स्वातंत्र्य आंदोलन में उसने कोई महत्त्व-पूर्ण भाग नहीं लिया, यह उसके लिये बड़े कलंक का विषय है।

मुसलमान इस देश के बादशाह थे। इस देश की स्वतंत्रता ही उनकी शासन-नीति का ध्येय था। परंतु आश्चर्य का विषय है कि ज्यों ही उनके हाथ से भारत का शासन-सूत्र छीन लिया गया, ज्यों ही अँगरेज़ इस देश के स्वामी हुए, त्यों ही मुसलमानों का रूप बदल गया। न उनमें वह तेज रहा, न वह वीर्य। उलटे वे विजेताओं के दास बन गए। उनसे मिलकर रहने में ही उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा समझी। इसके साथ ही उन-में एक नई मनोवृत्ति की लहर उत्पन्न हुई। वे अरब और टर्की को अपनी मातृभूमि समझने और उन्हीं के तराने गाने में अपना गौरव समझने लगे। जिन हिंदुओं के साथ वे सदियों घुल-मिलकर रह चुके थे, उन्हीं से अब उन्हें घृणा हो गई। वास्तव में यह मुसलमानों की अत्यंत भीषण नीतिक पराजय थी—देश हाथ से निकल जानेवाली पराजय से भी कहीं अधिक भयंकर। अंतस्तल के कोने-कोने में प्रविष्ट हुई इस पराजय-भावना से अब तक मुसलमानों का उद्धार नहीं हुआ।

कहते हैं, सन् ५७ का तूफ़ान भारत के उद्धार के लिये था, और हिंदू-मुसलमानों का सम्मिलित प्रयत्न था। हम मानते हैं, उन दिनों मुसलमान भी हिंदुओं के साथ थे। परंतु क्या भारतोद्धार के लिये? हृदय विश्वास नहीं करता। मुसलमानों में एक भी लक्ष्मीबाई, धुंधुपंत:, तात्याटोपे या जगदीशसिंह के दर्शन नहीं होते। उच्च श्रेणी के श्रीमंत मुसलमानों ने उस आयोजन में योग नहीं दिया। केवल साधारण स्थिति के लोग उस विग्रह में सम्मिलित हुए थे, और वे भी इस विचार से कि कारतूसों में सुअर की चर्बी न लगाई जाय या बहती गंगा है, हाथ क्यों न धोलें, लूटा-मारी में कुछ मिल ही जायगा।

यद्यपि सन् ५७ के विद्रोह का शमन करने में सरकार समर्थ अवश्य हुई, पर भारत के अंतस्तल में स्वाधीनता की जो भावना जाग्रत् हो गई थी, उसे वह वशीभूत नहीं कर सकी। कुछ दिनों के पश्चात् जातीय महासभा की स्थापना हुई, और उसके द्वारा भारत की इच्छाओं का अत्यंत धुँधला चित्र सरकार के सम्मुख उपस्थित किया जाने लगा। उन दिनों कांग्रेस एक मृत संस्था के सदृश थी। तीन सौ बासठ दिन सन्नाटा छाया रहता था। केवल तीन दिन कार्य होता था, और वह भी बड़ी शांति के साथ। तुच्छ-से-तुच्छ माँग के लिये भी भारतवासी ब्रिटिश-सत्ता के सम्मुख गिड़गिड़ाते थे। यद्यपि यह आंदोलन अत्यंत वैध और शांत था, फिर भी मुस्लिम लोक-मत उसके साथ सहानुभूति तक प्रदर्शित नहीं कर सका। इतना ही नहीं, उसने संसार को यह दिख-लाने के लिये कि इस आंदोलन से हमें कोई सहानु-भूति नहीं, मुस्लिम-लीग की स्थापना की, और अप्रत्यक्ष-रूप से इस बात की घोषणा कर दी कि हम फूट और विद्वेष के अनन्य पुजारी हैं; जिस भेद नीति पर सरकार के शासन का चक्र घूमता है, हम उसके समर्थक हैं; मुस्लिम-लीग के द्वारा विजेताओं से थोड़ी-सी सुविधाएँ प्राप्त कर लेने से ही हमारी आत्मा तृप्त हो जायगी। यद्यपि कांग्रेस के उस समय के सभापतियों की सूची में हमें दो-एक नाम मुसलमान सज्जनों के भी दिखाई देते हैं; पर यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं कि भारत के मुस्लिम-संसार पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, और न उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व उसकी देश-विमुख नीति पर ही गौरव का आवरण डाल सकता है।

मुसलमानों ने इस देश के राष्ट्र-वादियों का मार्ग सरकार से मिलकर ही कंटकाकीर्ण नहीं किया, वे प्रत्यक्ष रूप से भी कभी-कभी उनका विरोध करने में तत्पर दिखाई दिए हैं। वंग-भंग के समय तो उन्होंने खुलकर अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय दिया था। जब संपूर्ण देश में वंग-भंग के प्रश्न को लेकर विषाद की लहरें परिव्याप्त हो रही थीं, स्वदेशी का आंदोलन उग्र रूप धारण कर रहा था, तब देश में अपने भाइयों

का हृदय कुचलनेवाले एवं सरकार की पीठ ठोंकनेवाले मुसलमान प्रचुरता से दिखाई दिए थे। और, जब सम्राट् ने दोनो बंगाल एकत्र कर भारतीयों के आहत हृदय पर शीतल जल के कण बिखेर दिए थे, तब भी बंगाल में ऐसे मुसलमानों का अभाव नहीं था, जिन्हें सम्राट् की कृपा से आनंद प्राप्त हुआ हो।

यद्यपि वंग-भंग और स्वदेशी आंदोलन के समय दमन-चक्र की गति धीमी नहीं थी, फिर भी देश-प्रेम से ओत-प्रोत कितने ही नवयुवक-हृदय शांत नहीं रह सके। उन्होंने गुप्त समितियाँ स्थापित कीं, और सरकार के प्रति षड्यंत्र रचने के आयोजन किए। हम यह निस्संकोच होकर कह सकते हैं कि स्वराज्य या स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये उनके ये प्रयत्न भ्रम-पूर्ण थे, देश के लिये हानिकारक थे, पर उनके हृदय में मातृ-भूमि के प्रति जो पवित्र स्नेह था, उस स्नेह पर अपना सर्वस्व अर्पण करने की जो त्यागमय आकांक्षा थी, उसकी प्रशंसा कौन न करेगा? इस विप्लव-यज्ञ में अपने सर्वस्व की आहुति दे डालनेवाले होताओं की संख्या में भी मुसलमान युवकों के नाम प्रायः नहीं के बराबर हैं—बहुत होंगे तो दो-चार। यद्यपि इसके लिये हमें परिताप नहीं है, पर यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि देश के लिये बलिदान होने की भावना रखनेवाले युवक मुस्लिम-समाज में नहीं हैं, और वह भी तब, जब कि मुस्लिम-समाज वीरता को अपना बाना समझता हो।

यद्यपि देश को मुस्लिम-समाज का सहयोग प्रायः नहीं के बराबर ही प्राप्त हुआ, पर उसकी उमंगें और आकांक्षाएँ उन्नत ही होती गईं। महायुद्ध के पश्चात् तो उसकी आकांक्षाओं का स्वरूप अत्यंत स्पष्ट हो गया, और देश में एक नूतन जागृति हलचल करने लगी। ठीक उसी समय इस देश के मुसलमान भी सहसा जाग उठे। अब तक वे इसी आशा में संतुष्ट रहते थे कि सरकार उन्हें एक निश्चित संख्या में नौकरियाँ देती रहे। इसी संतुष्टि के कारण वे महायुद्ध में अपने ख़लीफ़ा टर्की के सामने भी ताल ठोंककर खड़े हो गए थे। परंतु महायुद्ध के पश्चात् उन्होंने देखा कि ब्रिटिश-सरकार उनके उसी ख़लीफ़ा का विविध रूप से तिरस्कार कर रही है—उसकी स्वाधीनता नष्ट किए डालती है, जो उनके धर्म का नेता और संरक्षक है। उन्होंने चीख़ना-चिल्लाना शुरू किया; पर उनकी पुकार किसी ने सुनी नहीं। मुसलमानों के नेत्र खुले, और पराधीन रहते हुए भी वे एक दूर देश की स्वाधीनता के लिये व्याकुल हो उठे। यह आश्चर्य का विषय है कि उन्होंने एक बार भी न सोचा कि हम पराधीन लोगों के पास ऐसी कौन-सी शक्ति है, जिसके भरोसे पर हम एक दूसरे देश की स्वतंत्रता की रक्षा कर सकेंगे।

जो हो, देश में स्वराज्य-आंदोलन चल ही रहा था, अब ख़िलाफ़त आंदोलन की भी उत्पत्ति हुई और महात्मा गांधी-जैसे पुरुष-पुंगव ने केवल इस सदाशा से कि इससे सदा के लिये हिंदू-मुस्लिम ऐक्य सुदृढ़ हो जायगा, उसका नेतृत्व ग्रहण किया। एक बार सचमुच हिंदू-मुस्लिम ऐक्य हो गया, देश की शक्ति बहुत बढ़ गई, उसके सामने आशा मनोहर रूप में नृत्य करने लगी। परंतु स्वराज्य के रूप में जो सुधार दिए गए, उनसे लोग बहुत ही हताश हुए। ख़िलाफ़त के प्रश्न का भी संतोषदायक निपटारा नहीं हुआ। उधर पंजाब में अग्नि-वर्षा हुई। बस, आंदोलन का स्वरूप और भी विराट् और भी उग्र हो गया। देश के कोने-कोने में असहयोग के भाव फैल गए। सरकार की आत्मा भी काँप गई। परंतु वह धैर्य-च्युत नहीं हुई—उसे अपने सदा के साथी मुसलमानों की आत्मनिर्बलता पर अब भी विश्वास था। मोपला-विद्रोह हुआ। शक्तिशाली भारत-सरकार प्रायः तीन मास तक उसका दमन करने में असमर्थ रही। मोपला लोगों ने अपने चारो ओर बसनेवाले निर्बल हिंदुओं पर यथेच्छ अत्याचार किए। राष्ट्रीयता के उस प्रवाह में हिंदू-नेता हृदय मसोसते हुए वह दृश्य देखते रहे, और हमें अत्यंत दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि उन ख़िलाफ़ती नेताओं ने, जो केवल ख़िलाफ़त के प्रश्न का संतोषजनक निपटारा न होने के कारण उस आंदोलन में सम्मिलित हो गए थे, मोपलाओं के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। वे भी मोपलाओं की करतूत चुपचाप देखा किए। स्मरण

रखना चाहिए कि इस मोपला-कांड और ख़िलाफ़ती नेताओं की उदासीनता ने भविष्य में देश की स्वाधीनता के आंदोलन पर घातक आघात किए।

यद्यपि उस आंदोलन में शुद्ध राष्ट्रीय भावना रखनेवाले मुस्लिम नेता भी सम्मिलित थे, पर अधिकता और प्रबलता ऐसे ही नेताओं की थी, जो केवल ख़िलाफ़त के लिये ही संपूर्ण आपत्तियों का भार सिर पर धारण करने को प्रस्तुत रहते थे। परंतु देश ने कभी उन पर अविश्वास नहीं किया। उसने उनका साथ ही नहीं दिया, बल्कि उनका सम्मान करने के लिये उसने अपने हृदय और नेत्र तक बिछा दिए। उनका सम्मान करने के लिये उसके पास जो श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पदार्थ था, वह भी उसने उन्हें स्नेह-पूर्वक अर्पण कर दिया। महात्मा गांधी के उस समय के दाहने हाथ मौलाना मुहम्मदअली साहब राष्ट्रीय महासभा के सभापति-पद पर प्रतिष्ठित किए गए। परंतु उस गुरुत्व-पूर्ण सिंहासन पर बैठकर मौलाना साहब ने अपने ओजस्वी और विद्वत्ता-पूर्ण भाषण में कुछ ऐसी बातें भी कह डालीं, जिनसे देश में एक नवीन हलचल मच गई। राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण हृदय मौलाना साहब की बातों से कुछ क्षुब्ध हुए, और हिंदुओं की एक बहुत बड़ी संख्या मुसलमानों की ओर संदेह-दृष्टि से देखने लगी।

इस समय तक ख़िलाफ़त की समस्या एक दूसरे ही ढंग से हल हो चुकी थी। शताब्दियों से सोए हुए टर्की ने करवटें बदलना शुरू कर दिया था। अंत में वह जाग उठा। उसने एक-तंत्र प्रणाली को ठुकराकर प्रजा-तंत्र की स्थापना की, मानो इस्लाम के उस प्राचीन कुचले हुए राजनीतिक सिद्धांत के पौदे पर अमृत छिड़क दिया। परंतु इससे भारत का दक़ियानूसी मुस्लिम-समाज बहुत असंतुष्ट हुआ। उसके नेता टर्की को कोसते हुए यहाँ-वहाँ दौड़ते फिरे। एक बार तो वे टर्की के द्वार पर भी जा पहुँचे। परंतु उसने उन्हें बुरी तरह दुतकार दिया। भारतीय मुसलमानों के दुःख की सीमा न रही। उन्हें इस्लाम पर आपत्ति की भयंकर घटाएँ घिरी हुई दिखने लगीं। भारत के दुर्भाग्य से इसी समय हिंदुओं द्वारा मोपला-विद्रोह की स्मृति जाग्रत् की गई। अब वे मुसलमानों से उस अपमान का बदला लेने के लिये बद्ध-परिकर हुए। फल-स्वरूप राष्ट्रीयता का शोषण करनेवाले शुद्धि और संगठन के आंदोलन का जन्म हुआ। मुसलमानों के आहत हृदय पर एक और ज़बर्दस्त आघात हुआ। वे तिलमिला उठे। जिन मुसलमानों में ख़िलाफ़त के साथ राष्ट्रीयता पर भी पूर्ण स्नेह था, वे भी अब राष्ट्रीयता को कुचलने लगे। परिणाम-स्वरूप घोर हिंदू-मुस्लिम-विग्रह की उत्पत्ति हुई। मांट-फ़र्ड स्कीम से जो थोड़े-से सुधार हुए थे, उनसे भी इस गृह-कलह को कुछ बल प्राप्त हुआ। सरकार ने कभी हिंदुओं की और कभी मुसलमानों की पीठ ठोंकी। राजनीति और मत-संकीर्णता के चपेटाघातों में दोनो पिस गए।

जब माता के लाल माता के अंचल को इस प्रकार निष्ठुरता-पूर्वक छिन्न-भिन्न कर रहे थे, तब ऐसे सपूतों का भी अभाव नहीं रहा, जो माता के मुखड़े को उज्ज्वल करने में अहोरात्र प्रयत्नशील रहे। हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि इस आंदोलन में कितने ही मुस्लिम युवकों और नेताओं ने देश का पूरा-पूरा साथ दिया। यह स्मरण रखना चाहिए कि उनका पथ निष्कंटक नहीं था। उन्हीं के सगे भाई-बंधु उन पर विश्वास नहीं करते थे, उनके प्रयत्नों में बाधक होते थे। फिर भी उन्होंने जिस सत्साहस का परिचय दिया, उसकी प्रशंसा स्वराज्य-आंदोलन के इतिहास में ओजस्वी शब्दों द्वारा की जायगी। स्वराज्य-आंदोलन के इतिहास में स्वर्गीय हकीम अजमलख़ाँ साहब, डॉक्टर मुख़्तार अहमद अंसारी, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, महाराजा महमूदाबाद, पटने के इमाम-बंधु आदि मुस्लिम नेताओं के नाम अमर रहेंगे इन महोदयों ने कभी—एक बार भी—देश के साथ विश्वासघात नहीं किया। ये सदा हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के समर्थक रहे। इनकी हमेशा यही आकांक्षा रही कि देश की प्रगति कुंठित न होने पावे। एतदर्थ इन्होंने भगीरथ प्रयत्न भी किए।

देश में यद्यपि स्वराज्य-आंदोलन चल रहा था, पर उसके सामने स्वराज्य की ऐसी कोई निश्चित रूप-रेखा नहीं थी, जिस पर देश के समस्त दल निर्भ्रांत गमन कर सकें। अतः बड़े परिश्रम से नेहरू-स्कीम का

निर्माण किया गया। यद्यपि हकीम साहब माता की गोदी सूनी कर गए थे, परंतु उक्त शेष नेताओं ने, और विशेषतया अंसारी साहब ने, नेहरू-रिपोर्ट के साथ जो परिश्रम किया, जो सहानुभूति प्रकट की, उसे संपूर्ण भारत जानता है। उनका नेहरू-रिपोर्ट-संबंधी प्रयत्न स्वराज्य-आंदोलन की एक चिरस्मरणीय घटना रहेगी। ये सज्जन मुसलमानों की मनोवृत्तियों से अपरिचित नहीं थे, अतः उन्होंने अपने सहयोगी मित्रों से घोर स्नेहमय युद्ध किया, और नेहरू-स्कीम में मुसलमानों के लिये वाजिब-से-वाजिब अधिकार स्थिर कराए। आशा तो यह की गई थी कि समस्त मुस्लिम-समाज इस स्कीम का स्वागत हृदय खोलकर करेगा, पर उसकी संकीर्ण मनो-वृत्तियाँ उसे ऐसा करने देतीं, तब न? उनकी अधिकार-लालसा भैरव-हाहाकार करती हुई जाग उठी। उन्होंने क्रोध में आकर नेहरू-स्कीम को पैरों से कुचल डाला। जितना उनसे बन सका, उतना उसके विरुद्ध उन्होंने विष वमन किया। और, कहते लज्जा मालूम होती है कि बहुत-से मुसलमानों ने अपनी चिर-परिचित दास्य वृत्ति का नग्न रूप दिखलाते हुए सरकार तक से यह प्रार्थना कर डाली कि नेहरू-स्कीम हमें मान्य नहीं है, वह हमारे अधिकारों की उचित मीमांसा नहीं करती। स्वराज्य प्रदान करते समय सरकार हमारे अधिकारों का ख़याल रक्खे। भारत को यह सबक़ मिल चुका है कि स्वराज्य भिक्षा-वृत्ति से प्राप्त होनेवाला पदार्थ नहीं। परंतु इस अभागे देश के अधिकांश मुसलमानों को अब भी भिक्षा-वृत्ति की सफलता पर विश्वास है। सारी दुनिया जाग उठी है, पर ये अब तक अपनी ख़ुमारी-भरी आँखें मोड़ रहे हैं। ये अपनी मतांधता को ही दोनो हाथों से पकड़े बैठे हैं। स्वराज्य मिले, इसकी इन्हें चिंता नहीं; ये तो केवल इसी में संतुष्ट हैं कि सरकारी नौकरियों में हमारा ही सितारा ऊँचा रहे।

आश्चर्य का विषय तो यह है कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिये जिन्होंने कुछ भी युद्ध नहीं किया, कुछ भी त्याग नहीं किया, वे भविष्य-अधिकारों की चिंता में व्यस्त हैं। हम देश के लिये चाहें कुछ भी न करें, पर हमें अधिकार मिलने का—और वह भी सबसे अधिक—निश्चय प्राप्त हो जाना चाहिए। इस मनोवृत्ति की टीका करना व्यर्थ है। हम यह नहीं कहते कि हमारे मुसलमान भाई अधिकार न माँगें। नहीं, माँगें और ख़ूब माँगें; पर उनकी प्राप्ति के लिये उन्हें कुछ त्याग भी तो करना चाहिए। विना त्याग के उत्कर्ष कहाँ! हम अपने मुसलमान भाइयों से यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि जब तक आप धार्मिक संकीर्णता का त्यागकर राष्ट्रीयता की उपासना न करेंगे, तब तक आपका भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। अब मतांधता का युग नहीं है। अब राष्ट्र-सेवा का ही समय है। हम आपसे यह नहीं कहते कि आप अपने धर्म पर स्नेह न करें। आप मज़े से पाँचो वक़्त की नमाज़ अदा करें, तीन सौ पैंसठ दिन रोज़े रक्खा करें, चौबीसों घंटे क़ुरान-शरीफ़ की तिलावत किया करें, उठते-बैठते, सोते-जागते क़यामत पर यक़ीन रक्खा करें, पर यह सब घर के भीतर हो। बाहर तो आपको राष्ट्रीयता के नारे ही बलंद करना चाहिए। ख़ूब स्मरण रखिए, जिस प्रकार हिंदू-संगठन राष्ट्रीयता का घातक है, उसी प्रकार आपकी धार्मिक संकीर्णता भी आपको राष्ट्रीयता से दूर रखनेवाली तथा आपके जातीय गौरव पर कालिमा पोतनेवाली है।

भारत में स्वराज्य के साथ स्वदेशी का घनिष्ठ संबंध है। दोनो अन्योन्याश्रित हैं। असहयोग-आंदोलन के समय मुसलमानों के सामने बड़े ज़ोरों से यह तज-वीज़ पेश की गई थी कि जिस इँगलैंड ने उनकी ख़िलाफ़त पर ऐसे दारुण आघात किए हैं, उन्हें उचित है कि वे उसकी बनाई हुई प्रत्येक वस्तु का बहिष्कार करें। परंतु आज देखिए, सौ में शायद एक मुसलमान भी ऐसा न निकलेगा, जो स्व-देशी का सिर से पैर तक भक्त हो! जिसे देखो, वही विदेशी पर फ़िदा है। ऐसा अनन्य है मुसलमानों का ख़िलाफ़त-प्रेम। जिनका यह ध्येय रहा हो कि इस देश के प्रत्येक कार-बार की उन्नति हो, यहाँ का एक पैसा भी बाहर न जाने पावे, उन्हीं की संतान विदेशी की भक्त हो—अपने विजेता की जेबें गरम करने में अपने को सौभाग्यशालिनी समझती हो—इससे बढ़कर आश्चर्य-पूर्ण दूसरी घटना संसार में नहीं हो सकती। यदि मुसल-मानों ने स्वदेशी पर वही आसक्ति दिखलाई होती, तो

भी संतोष की एक बात थी, और इसमें उनकी मतांधता पर भी कुछ आँच न पहुँचती। पर उनके तो सभी खेल निराले हुआ करते हैं।

यदि भारत के समस्त मुसलमान अब भी चेत जायँ, अब भी उनकी समझ में अपने मत का साम्यवाद और राजनीतिक सिद्धांत आ जायँ, अब भी उनकी स्मृति में अपने पूर्वजों का स्वदेशी-प्रेम एवं सिराज, मीर क़ासिम, हैदर टीपू आदि का ध्येय उदित हो जाय, तो भारत के हृदय का एक बहुत बड़ा कष्ट नष्ट हो जाय। उनकी परीक्षा का समय भी सामने है।

वाममार्ग

या

समाज की रूढ़ियाँ

[साहित्य-भूषण किशनलाल शरसोदे विशारद]

"अथ किमेतैर्वाऽपरेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिशशबिन्दुहरिश्चन्द्राऽम्बरीषननक्तुशर्यातिययात्यनरण्याक्षसेनादयः। अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः।"

(मैत्रेयोपनिषद्)



इस उपनिषद् के वचन से सिद्ध है कि सृष्टि के आदि से लेकर पाँच सहस्र वर्ष पर्यंत आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य था, और समस्त आर्य एक ही धर्म—वैदिक धर्म—के अनुयायी थे। इसके अनंतर परस्पर के विरोध से महाभारत के युद्ध में बड़े-बड़े वीरों और विद्वानों की मृत्यु होते ही आर्यावर्तीय प्रचंड मार्तंड भी अस्ताचल की ओर प्रस्थानित होता गया। यह प्राकृतिक नियम है कि आवश्यकता से अधिक द्रव्य होने पर आलस्य, कापुरुषता, ईर्षा, विषयासक्ति और प्रमाद का आविर्भाव होने लगता है। ठीक यही अवस्था इस आर्य-जाति की हुई। धीरे-धीरे गुणों की जगह दुर्गुणों का समावेश होता गया। आर्य लोग मद्य-मांसादि का सेवन कर अनार्य बनते गए। जिस आर्य-जाति की विजय-दुंदुभी एक दिन समस्त भू-मंडल को निनादित करती थी, वही दुर्भाग्य से आज राज्य-भ्रष्ट होकर विदेशियों द्वारा पद-दलित की जा रही है। जब आर्यों की राजकीय सत्ता को ही काल ने इस तरह ठुकरा दिया, तब वैदिक धर्म में क्या-क्या परिवर्तन न हुए होंगे!

महाभारत के युद्ध के अनंतर बड़े-बड़े विद्वान् और ऋषि-महर्षियों का अंत होते ही वैदिक धर्म का भी पाया डगमगाया। धर्म के कर्णधार ब्राह्मणों में भी विद्या का अभाव तथा स्वार्थ और मत्सर का समावेश हुआ। उन्होंने वेदादि सद् ग्रंथों का अध्ययन छोड़कर नए-नए धर्मों का आविष्कार आरंभ किया, जिसके फल-स्वरूप आज भारतवर्ष में सैकड़ों धर्मों का आधिपत्य दिखाई दे रहा है। विद्वान् धर्मोपदेशकों के अभाव में अंध-परंपरा का आविर्भाव हुआ, और स्वार्थी तथा मत्सरी लोगों ने एक नए धर्म—वाममार्ग—को जन्म दिया। इन्होंने अनेक नए मंत्रों की रचना की, और उनके आरंभ में शिव उवाच, विष्णु उवाच आदि शब्द लिखकर उन्हें वैदिक मन्त्र बतलाया और लोगों को अपने जाल में फसाना आरंभ किया। पाठकों के अवलोकनार्थ इनका काली-तंत्र में लिखा एक मंत्र उद्धृत करता हूँ—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ;
एते पंच मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे।

पाठक देखें, इनके मंत्र सदाचार, नीति और धर्म से कितनी दूर हैं। यही नहीं, इन्होंने इंद्रिय-लोलुप होकर रुद्रयामल-तंत्र में यहाँ तक लिख दिया—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चांडाली तु स्वयं काशी ;
चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता।

क्या इससे भी अधिक मनुष्यता की अवहेलना कुछ हो सकती है? इसी प्रकार इनके अनेक मंत्र मांस-भक्षण, मदिरा-पान और व्यभिचार की पुष्टि में मिलते हैं। आप सोचते होंगे, यह बात किसी ज़माने की रही होगी, अब तो इस देश में इस मत के माननेवाले नहीं हैं, फिर इस समय यह बेतुका राग अलापने से आपका क्या अभिप्राय है? इसका उत्तर देते दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि इस मत का माननेवाला कोई जनसमूह न होने पर भी आज इस मत के पोषक प्रत्येक जाति, धर्म और समाज में पाए जाते हैं, जिनका मैं क्रम से दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करता हूँ।

तंत्र-मंत्र

इस देश में तंत्र-मंत्र का अधिक प्रचार है। छोटी-छोटी बातों में इनका प्रयोग किया जाता है। प्रति वर्ष सैकड़ों नहीं, सहस्रों मृत्युएँ केवल तंत्र-मंत्रों पर विश्वास करने के कारण ही हुआ करती हैं। किसी भी रोग की चतुर वैद्यों द्वारा चिकित्सा न करा, तांत्रिक लोगों द्वारा रोगी का उपचार कराया जाता है, जिससे रोग घटने के स्थान पर बढ़ता जाता है, और अंत में रोगी को इन वाममार्गी तांत्रिकों के बहकावे में आकर अपने अमूल्य जीवन से हाथ धोना पड़ता है। कोई-कोई तांत्रिक कुछ चिकित्सा करना भी जानते हैं, जिससे वे प्रत्यक्ष में तो "ह्रां ह्रीं ह्रूँ बगलामुख्यै फट् स्वाहा" आदि ऊलजलूल शब्दों का उच्चारण करते और परोक्ष रीति से कुछ चिकित्सा भी करते रहते हैं। यदि भाग्यवश कहीं उनकी चिकित्सा से लाभ हो गया, तो भोले-भाले अशिक्षित लोग उनके मंत्रों पर विश्वास करने लगते और उन्हें बड़ा सिद्ध समझते हैं। ये लोग दूसरों को डराने और अपने वश में करने के लिये उन्हें मृत्यु का भय दिखलाते हैं। वे प्रत्यक्ष में आटे अथवा मिट्टी की मूर्ति बनाकर उस पर हल्दी से भैरव अथवा दुर्गा की मूर्ति बनाकर उसके कंठ में चाकू भोंककर उसे नदी में फेंक आते हैं, और गुप्त रीति से विष आदि के प्रयोग से उन्हें मारने का प्रयत्न करते रहते हैं। यदि दुर्भाग्य से वे ऐसे दुष्कर्म में किसी तरह सफल हो गए, तो लोग उनसे डरने लगते और उनकी आज्ञा के अनुसार चलने में ही अपना हित समझते हैं। ये वाममार्गी तांत्रिक ऐसी दुष्ट क्रियाएँ करते समय मद्य-मांसादि का यथेष्ट सेवन करते और भैरव, दुर्गा आदि के नाम पर अनेक निरपराध जीवों की बलि भी देते हैं। इस प्रकार इन देश के दुश्मनों द्वारा प्रतिवर्ष सहस्रों प्राणियों का जीवन स्वाहा होता जाता है। खेद है, इनके दमन का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता।

इन तांत्रिकों की एक शाखा और भी है, जो अपने को 'भगत' कहती है। इनके कार्य करने का विशेष समय दशहरा और चैत्र-पूर्णिमा है। इन दिनों में ये लगभग एक सप्ताह तक दुर्गा, काली आदि के मन-गढ़ंत गीत गाते और मद्यपानादि कर ढोल पीट-पीटकर जंगली ढंग से नृत्य करते हैं। इस समय इनके अनेक शिष्य एकत्र होकर इनके इस कार्य में सहायता देते हैं। इनको 'रजाल्या' कहते हैं। रजाल्या एक प्रकार से गुप्तचर का कार्य करते हैं। जो रोगी 'भगत' के घर उपचार कराने आते हैं, उनके घर की सब बातों का पता लगाकर 'रजाल्या' अपने भगत को बतलाते हैं। रोगी के आने पर 'भगत' अपने सिर को खूब हिला-हिलाकर शरीर कँपाता है, और अपने शरीर में किसी देवता के प्रवेश करने का स्वाँग रचकर 'रजाल्या' के कहे अनुसार रोगी के संबंध की सब बातें अपनी विचित्र भाषा में बकता और रोगी के हृदय में विश्वास जमाता है। ये रोगी को रोग से निवृत्त करने के बहाने जीवों का बलिदान कर मांसाहार करते अथवा अपने शिष्यों-सहित हलवा-पूड़ी उड़ाते हैं। इनके देव आने का दिन साधारणतः अमावस, पूर्णिमा, रविवार अथवा बुधवार रहा करता है। पर यदि अधिक लाभ होने की आशा दिखाई दी, तो अन्य दिनों में भी इनके शरीर में देवता का प्रवेश हो जाता है। इस प्रकार झूठा जाल रचकर ये वाममार्गी 'भगत' भी जनता को ठगते हैं।

भूत-प्रेतादि की भावना

"विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।" जब दुर्भाग्य का उदय होता है, तब बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। हम भारतवासियों के हृदय में अनेक दुर्भावनाओं ने स्थान कर लिया है, जिसमें से एक भूत-प्रेतादि की भावना भी है। 'भूत' का अर्थ है बीता हुआ समय, और 'प्रेत' का अर्थ है मृत शरीर, जैसा कि मनुस्मृति के इस मंत्र से प्रकट होता है—

"गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेंध समाचरन्।"

जब वर्तमान में दिखाई देनेवाले प्राणियों का अंत हो जाता है, तब उन्हें उनके भूतस्थ होने के कारण 'भूत' संज्ञा मिलती है। पर अनेक धूर्त, अनाचारी और पाखंडी भोली जनता को अपने जाल में फँसाने के लिये उनके हृदय में भूत-प्रेतादि की भावना दृढ़ करते हैं। हमारे शास्त्रों का तो मत यह है कि जीव

एक शरीर से निकलने के अनंतर अपने कर्मों के अनुसार दूसरी योनि में शरीर धारण करता है। फिर उसका भूत-प्रेतादि होना कैसे संभव है? कई मनुष्य अपनी आँखों से भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि के देखने की बातें बतलाते हैं। पर वास्तविक बात यह है कि कुसंस्कारों और कुसंगति से दृढ़ हुई कल्पना ही कभी-कभी अँधेरे स्थान में मूर्तिमान् होकर दिखाई देती है। पर यदि उस काल्पनिक चित्र को, अपनी झूठी भावनाओं को अलग कर, ध्यान से देखें, तो भ्रम-मात्र मालूम होता है। ऐसी झूठी भावनाओं पर विश्वास करनेवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष और बच्चे अँधेरे में सफ़ेद चट्टान, झाड़ी अथवा पशु आदि को देखकर उन्हें भूत समझ लेते और भयभीत होकर प्राण त्याग देते हैं। कभी-कभी मानसिक वेदना के कारण भी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, और वह पागल की तरह मनमाना बकने लगता है। ऐसी अवस्था में ओषधियों द्वारा उसकी चिकित्सा न करा, भूत-प्रेतादि की भावना के वश होकर भंगी-चमार आदि वाममार्गियों से मिथ्या तंत्र बँधवाते और अपनी उच्च जाति का गर्व करनेवाले बड़े-बड़े ठाकुर और लाला उन शूद्रों का उच्छिष्ट भोजन तक करने में नहीं हिचकिचाते।

ग्रहों का प्रकोप

एक दिन ज्योतिषशास्त्र की शिक्षा पाने के लिये अनेक विदेशी इस पुण्य-भूमि भारत के पैरों पर लोटते थे, वहीं अब कुछ अल्पबुद्धि वाममार्गी उसी विद्या के नाम पर स्वार्थ-साधन करने में लगे हुए हैं। ये बनावटी ज्योतिषीजी जनता को बड़ी-बड़ी आशाएँ दिलाते और उनका धन लूटते हैं। वे ज्यों ही किसी को आपत्ति-ग्रस्त देखते, उनके घर पहुँच जाते और कहते हैं कि आप राहु के चक्र में हैं, आप पर शनि का प्रकोप है, आपके चंद्र उलटे पड़े हैं। इत्यादि कहकर उनके हृदय को सशंक करते और ग्रहों की शांति करने के बहाने उनका द्रव्य हरते हैं। जिस प्रकार हमारी पृथ्वी जड़ रूप है, उसी प्रकार सूर्य, चंद्र, राहु, शनि आदि ग्रह भी हैं। वे ताप, प्रकाश से अधिक कुछ नहीं दे सकते। वे चेतन तो हैं नहीं, जो क्रोधित होकर दुःख दें और शांत होकर सुख की वर्षा करें। फिर मैं नहीं समझता कि लोग मिथ्यावाद में फसकर वाममार्गियों की संख्या क्यों बढ़ाते हैं!

मूर्ति पूजा

इस देश के अधिकांश निवासी मूर्ति-पूजक हैं। जिस देश में शिक्षितों की संख्या—ऐसे शिक्षितों की संख्या, जो अपनी शिक्षा का उपयोग-धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन में कर सकते हैं—केवल उँगलियों पर गिनी जाने के योग्य ही हो, उस देश के निवासी मूर्ति-पूजा के पक्षपाती हों, तो आश्चर्य ही क्या है? पर आश्चर्य केवल इस बात का है कि रात-दिन धर्म-ग्रंथों और इतिहासों के पन्ने पलटनेवाले सज्जन भी इस नाशकारी प्रथा को देश से उठा देने के पक्षपाती नहीं हैं! हम मूर्ति-पूजा करके अपने को धार्मिक प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं, पर वास्तव में हम अपने इस प्रयत्न द्वारा धीरे-धीरे धर्म से दूर होते जाते हैं। हम मूर्ति-पूजा करते समय ईश्वर का आवाहन करते और मूर्ति में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं; पर यह केवल बच्चों का खेल-सा जान पड़ता है; क्योंकि हमारा परमेश्वर चौथे अथवा सातवें आसमान पर थोड़े ही रहता है, जिसका पूजन के समय आवाहन करने की आवश्यकता पड़े। वह तो सर्वव्यापक है। फिर उसका आवाहन और विसर्जन करना बच्चों का खेल नहीं, तो क्या है? हम मूर्ति में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके उस महान् परमेश्वर को एक संकुचित स्थान में मानकर उसकी महत्ता कम करने का प्रयत्न करते हैं। अतः यह उसका पूजन नहीं, विरोध है। राजनीतिक दृष्टि से भी इस मूर्ति-पूजा ने इस देश को कितनी कल्पनातीत हानि पहुँचाई है, इसका साक्षी हमारे देश का इतिहास है। हमने जड़ मूर्ति में सर्वज्ञता का विश्वास कर अपने देश को श्री-विहीन बना दिया, दूसरों के हाथ में सौंप दिया, और अपने को घोर आपत्ति में फसा लिया। पाठक सोचते होंगे कि मैं मूर्ति-पूजा को वाममार्ग में क्यों घसीट रहा हूँ? 'वाममार्ग' का अर्थ है उलटा रास्ता। अतएव हमारे देश में प्रचलित जितनी प्रथाएँ हमारे देश, धर्म और समाज की घातक हैं, वे सभी वाममार्ग की पोषक हैं।

मंदिरों की अवस्था

मूर्ति-पूजा के साथ ही इस देश में मंदिर-निर्माण की भी प्रथा चली। जब मूर्ति-पूजकों की संख्या से भी अधिक मूर्तियों की संख्या हो गई, तब मंदिरों का भी लाखों की तादाद में होना कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं। पर क्या कोई भी धर्म की डींग मारनेवाला हिंदू अपने हृदय पर हाथ रखकर यह कह सकता है कि देश के समस्त मंदिरों में ईश्वर की सच्ची उपासना की जाती है? धार्मिक शिक्षा का प्रबंध है? क्या सभी मंदिरों के पेटू पुजारी सदाचार और धार्मिक भावों के समर्थक हैं? क्या देव-मंदिरों में वेश्या-नृत्य होते नहीं देखा जाता? क्या अनेक पुजारी 'भैरवोऽहम्' 'शिवोऽहम्' कहकर व्यभिचार नहीं बढ़ाते? क्या ये मंदिर देश में निठल्लों की संख्या नहीं बढ़ाते? क्या इन्हीं मंदिरों के कारण आज देश में लोग मज़हबी दीवाने बनकर विद्वेष नहीं फैला रहे हैं? यदि यह सब सत्य है, तो फिर कहिए, आपके मंदिर और मंदिरों के पुजारी वाममार्ग के अनुयायी हैं या नहीं?

तीर्थ-यात्रा

इस देश में प्रयाग, काशी, बदरीनाथ, केदारनाथ, रामेश्वर आदि अनेक तीर्थस्थान हैं, जहाँ प्रतिवर्ष लाखों हिंदू जाते और स्नान-पूजन कर अपने को धन्य मानते हैं। हम हिंदुओं पर वाममार्ग ने इतना गहरा हाथ जमा रक्खा है कि हमें विचार करने की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। हमें खाने-पीने में, पहनने-ओढ़ने में, चलने-फिरने में पद-पद पर धर्म-ही-धर्म दिखाई देता है। यही कारण है कि यह हिंदू-जाति बलहीन, कापुरुष और मूर्ख बनी हुई है। हमारे प्रत्येक कार्य में हमारा धर्म—नहीं-नहीं, वाममार्ग—अपनी टाँग अड़ा देता है। जिन तीर्थ-स्थानों से हम सच्चे धार्मिक होकर आते थे, उन तीर्थों में अब स्नान और मूर्ति-पूजन के अतिरिक्त कुछ भी न रहा। प्राचीन काल में इन तीर्थ-स्थानों में बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि और विद्वान् लोग रहा करते थे। वे वहाँ आनेवाले यात्रियों को धार्मिक शिक्षा देते और उनके हृदय में उच्च भावों को भरते थे। पर अब हमारे दुर्भाग्य से इन पवित्र स्थानों पर आज कलह, असत्य और व्यभिचार का अटल साम्राज्य है। वेद भगवान् कहते हैं—नमस्तीर्थ्याय च। (यजु० अ० १६) जो वेदादि शास्त्र और सत्य भाषणादि धर्म-लक्षणों से युक्त हो, उसे अन्नादि पदार्थ देना और उससे विद्या ग्रहण करना ही तीर्थ कहलाता है; पर आज हम अपने धार्मिक सिद्धांत को ठुकराकर वाममार्गी ग्रंथों में—

> गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ;
> मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।

पढ़ते और तीर्थ-यात्रा कर आते हैं। यही नहीं, हमें इन्हीं ग्रंथों में आगे चलकर यह भी मिलता है—

> प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति ;
> आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्।

यदि सचमुच सहस्रों कोस की दूरी से मनुष्य गंगा-गंगा कहते हुए पाप-मुक्त हो सकता हो, और केवल शिव-लिंग के दर्शन से ही सात जन्म तक के पाप नष्ट हो सकते हों, तो फिर पाप से डरने की आवश्यकता ही क्या है? मेरे विचारशील बंधुओ, ज़रा सोचो तो सही; क्या ये वाममार्गी ग्रंथ हमें पापाचार बढ़ाने के लिये उद्यत नहीं करते? यदि करते हैं, तो फिर आप ही कहिए, क्या ये मंत्र और जिन ग्रंथों में ऐसे मंत्र हैं, वे ग्रंथ वाममार्ग के पोषक नहीं हैं? क्या आज कोई भी समझदार हिंदू इन स्वार्थ-पूर्ण मंत्रों के आधार पर तीर्थ-यात्रा कर अपने आपको उद्दंड नर-पिशाच पंडों के हथकंडों में फँसाने का प्रयत्न करेगा? प्रत्येक तीर्थ की रामकहानी सुनाने की आवश्यकता नहीं। शिक्षित-समुदाय समाचार-पत्रों द्वारा और अधिकांश जनसमूह अपनी आँखों द्वारा तीर्थ-यात्रा की नग्न लीला का दिग्दर्शन करते ही रहते होंगे।

साधु-भक्ति

हम धर्म-प्राण हिंदुओं के हृदय में सदैव भक्ति का स्रोत बहता रहता है, फिर चाहे वह धर्म के अनुकूल हो या प्रतिकूल। यह भक्ति-स्रोत इस बात का प्रमाण है कि हम प्राचीन काल से अतिथियों का सत्कार करनेवाले रहे हैं; पर खेद है, आज हम अतिथियों को पहचानना भूल गए हैं। इन अतिथियों में विशेष संख्या हमारे देश के साधु-संन्यासियों की है। जहाँ कहीं भी देखिए, एक-दो साधु धूनी रमाए मिल ही जायँगे, और उनके चारो ओर दस-पाँच मनुष्य भी, उन पर श्रद्धा रखनेवाले, बैठे दिखाई देंगे। प्रत्येक गृहस्थ को यह पहचानना

परिवर्द्धित, संशोधित

हिंदी नवरत्न

तृतीय संस्करण

अर्थात्

हिंदी-भाषा के सर्वोत्तम कविरत्नों के आलोचना-पूर्ण जीवन-चरित्र

लेखक—

हिंदी-संसार के प्रख्यातनाम समालोचक "मिश्रबंधु"

इस पुस्तक की प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वानों ने की है। साहित्य-प्रेमी और साधारण-जन, सबको समान भाव से यह पुस्तक आनंद देगी। इस बार यह पुस्तक पहले से लगभग दुगुनी बड़ी और दसगुनी उपयोगी हो गई है! इसे सामयिक और सर्वांगपूर्ण बनाने में कोई भी चेष्टा बाक़ी नहीं रक्खी गई। अब तक की साहित्यिक खोजों के अनुसार संशोधन और संवर्द्धन होने से पुस्तक अप-टु-डेट हो गई है। नवरत्न का यह संस्करण सब तरह आदर्श, अद्वितीय और सर्वांग-सुंदर है। अब की चित्र सब तिरंगे कर दिए गए हैं, पर मूल्य वही रक्खा गया है।

११ रंगीन चित्रों से समलंकृत

मूल्य ४॥)
सुंदर सुनहरी जिल्द ५)

गंगा पुस्तकमाला
लखनऊ

तुलसीदास · सूरदास · देवदत्त · बिहारीलाल · भूषण · हरिश्चंद्र · चंदबरदाई · कबीरदास · केशवदास · मतिराम

पतिव्रता

मूल-लेखक—

बँगला के सुप्रसिद्ध नाटककार

स्वर्गीय गिरिशचंद्र घोष

[अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय]

यह एक बढ़िया नाटक है। इसकी विशेषता इसी से जानी जा सकती है कि अनेक ग्रंथों के रचयिता स्वनामधन्य पांडेयजी ने इसका अनुवाद किया है। नाटक सामाजिक है। इसमें एक भले आदमी का बिगड़ना और अंत में पतिव्रता स्त्री के प्रभाव से सुधरना, बड़ी ख़ूबी से, दिखाया गया है। स्त्री-पुरुष सबके पढ़ने लायक़ है। दो रंगीन और दो सादे चित्र। पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य १।=), सजिल्द १॥=)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

कठिन हो जाता है कि हम जिसकी सेवा करने की इच्छा कर रहे हैं, वह वास्तव में साधु है या असाधु। साधु आजकल की प्रचलित भाषा में संन्यासी को कहते हैं। हमारे धर्म-शास्त्र में लिखा है—

"वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः;
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्।"

अब देखना यह है कि क्या हमारे देश के समस्त नामधारी संन्यासी रीत्यनुसार तीनो आश्रमों का पालन कर संन्यासी हुए हैं? हम देखते हैं, हमारे देश के संन्यासियों में बाल, युवा, वृद्ध सभी हैं। यही नहीं, प्रत्युत अपने को साधु-संन्यासियों में गणना करानेवालों की कुछ जातियाँ तक बन गई हैं, जो अपने को गुसाइँ, जोगी, बैरागी आदि के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। ये गृहस्थ होते हुए भी अपने को साधु-संन्यासी की उपाधि से विभूषित करते और कुछ अपढ़ लोगों को अपने शिष्य बनाकर निर्वाह करते हैं। ये लोग "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः; गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।" आदि मन-गढ़ंत श्लोक सुनाकर "आपन मुख तुम आपनि करणी; बार अनेक भाँति बहु बरणी।"-वाली लोकोक्ति चरितार्थ करते हैं। ये भक्ष्याभक्ष्य का भी कुछ विचार नहीं करते। मैंने अपनी आँखों से इन कनफुँकवे गुरुओं को मद्य-पान और मांसाहार करते भी देखा है। गाँजा इनका सबसे प्रिय पदार्थ है। वे इसकी प्रशंसा में मनमानी ऊलजलूल पद्य-रचना सुनाकर स्वयं पीते और अपने शिष्यों को भी पिलाते हैं।

अब संन्यासियों का आदर्श देखिए—

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः;
आत्मैनव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह।
इंद्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च;
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते।
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः;
समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम्।
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः;
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः।
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः;
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।

मेरे भद्र भ्राताओ, अब आप आदर्श संन्यासियों के लक्षणों और आधुनिक नामधारी साधुओं (संन्यासियों) के लक्षणों और धर्म से तुलना करके बतलाइए, क्या ये नामधारी साधु वाममार्ग के प्रचारक और उन पर श्रद्धा रखनेवाले हिंदू वाममार्ग के अनुयायी नहीं हैं? मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि भारतवर्ष में सच्चे संन्यासियों का बिलकुल ही अभाव है। अब भी यहाँ कुछ संन्यासी ऐसे अवश्य हैं, जो सदैव हमें आदर्श की ओर ले जाने का प्रयत्न करते रहते हैं, और इसी कार्य में अपना अमूल्य जीवन समर्पण करने को तैयार रहते हैं। उन्हें मैं बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ, और प्रत्येक देश-वासी को भी देखना चाहिए।

इस देश में मांसाहारियों की संख्या भी कम नहीं है। यहाँ तक कि देश के कुछ विद्वानों का भी मत है कि इस समय हिंदू-मात्र को मांस भक्षण करना चाहिए। पर मैं समझता हूँ, मांसाहार से उन विद्वानों की बुद्धि भी इतनी नष्ट हो गई है कि वे हिंदुओं की वर्तमान कमज़ोरी को दूर करने के लिये कोई दूसरा उपाय ही नहीं ढूँढ़ सकते। पहले मैं धार्मिक दृष्टि से इस पर विचार करता हूँ।

मांसाहार

महात्मा मनु कहते हैं—

"योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया;
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते।"

अर्थात् जो अहिंसक प्राणियों को अपने सुख की इच्छा से मारता है, उसे जीवित अवस्था में अथवा मरने पर, कभी सुख नहीं मिलता। इसके आगे इसी विषय पर विचार प्रकट करते हुए वह लिखते हैं— "यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यमांसं सुरासवम्" अर्थात् मद्य, मांस, सुरा और आसव यक्ष, राक्षस और पिशाचों का अन्न है। अब आप ही कहिए, मांस-भक्षण करनेवाले मनुष्य मनुष्य हैं या पिशाच? हमारे धर्म-शास्त्रों में 'अहिंसा' की ही प्रधानता दी है, और हिंसा का घोर विरोध किया गया है। महाभारत के मोक्ष-धर्म-पर्व में लिखा है—

"सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्;
अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता।"

कुछ लोगों का मत है कि जब बड़े-बड़े डॉक्टर मांसाहार करने की सलाह देते हैं, तब हमें धर्म के

आडंबरों पर लक्ष्य देने की क्या आवश्यकता है? ऐसे सज्जनों की सेवा में मेरा निवेदन है कि वे पाश्चात्य मांसाहारी देशों के डॉक्टरों के मत पर विचार करने का कष्ट उठावें। इँगलैंड के प्रसिद्ध डॉक्टर अर्नेस्टवेल ने अपनी 'कैंसर रोग से बचने के उपाय'-नामक पुस्तक में लिखा है कि केवल इँगलैंड में ही मांसाहार से उत्पन्न होनेवाले 'कैंसर' रोग से ६०,००० मनुष्यों की मृत्यु होती है। इस प्रकार दुनिया के समस्त मांसाहारियों की संख्या का विचार करने से स्पष्ट प्रकट होता है कि इस रोग से २५०,००,००० मनुष्य मांसाहार कर इस भयंकर रोग के शिकार बनते हैं।

इँगलैंड के दूसरे प्रसिद्ध डॉक्टर किंग्सफ़ोर्ड और अमेरिका के डॉक्टर हेरा आदि का मत है कि मांसाहार से क्षय, नासूर, जलोदर और संग्रहणी के सदृश भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर भी मालूम होता है कि मनुष्य की शरीर-रचना का साम्य जितना शाकाहारी प्राणियों की शरीर-रचना से है, उतना मांसाहारी प्राणियों के शरीर से नहीं। यही कारण है कि मनुष्य के शरीर में मांस को पचानेवाले अवयव न होने के कारण वह उसे पचा नहीं सकता, जिससे वह मांस पेट में सड़कर अनेक भयंकर रोग उत्पन्न करता है। अब मैं मांसाहार पर डॉक्टरी मत का पुछल्ला बाँधनेवाले बंधुओं से पूछना चाहता हूँ कि वे इस देश के निवासियों को मांसाहारी बनाकर उन्हें सशक्त बनाना चाहते हैं या भयंकर रोग में फसाकर उनका सर्वनाश करना चाहते हैं? यदि प्रत्येक मनुष्य नियम-पूर्वक व्यायाम कर दुग्ध, घृत और ताज़े, पके फलों का ही सेवन पर्याप्त मात्रा में करता रहे, और ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन करे, तो वह अद्वितीय शक्तिशाली बन सकता है, जिसके प्रमाण आज हमारे सामने प्रोफ़ेसर राममूर्ति के सदृश नर-पुंगव हैं।

बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि इन वाममार्ग के पक्षपातियों ने धर्म-ग्रंथों में भी, अनेक स्थानों पर, मांसाहार के मन-गढ़ंत श्लोक मिलाकर वाममार्ग को पुष्ट किया है। इसके अनेक प्रमाण मुझे मालूम हैं; पर लेख बढ़ जाने के भय से अधिक उदाहरण न देकर विष्णुपुराण के दो श्लोक पाठकों के समक्ष रखता हूँ, जिनमें श्राद्ध के समय पितरों को भाँति-भाँति के मांस देने की आज्ञा दी गई है—

और्व उवाच—हविष्य मत्स्यमांसैस्तु शशस्य नकुलस्य च।
सौकराच्छागलैणेय रौरवैर्गवयेन च॥ १॥
औरभ्रगव्यैश्च तथा मासवृध्द्या पितामहाः।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यवार्ध्रीणसामिषैः॥ २॥
खड्गमांसमतीवात्र कालशाकं तथा मधु।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्ततृप्तिदानिनरेश्वर॥ ३॥
(विष्णुपुराण अंश ३, अ० १६)

अर्थात् और्व बोले—श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को हविष्य भोजन कराने से पितर लोग एक महीने तक तृप्त रहते हैं। मछली देने से दो महीने, शशक-मांस से तीन महीने, नकुल-मांस से चार महीने, शूकर-मांस से पाँच महीने, बकरी के मांस से छः महीने, मकर-मांस से सात महीने, रुरु के मांस से आठ महीने, गवय-मांस से नौ, मेढ़े से दस और गो-मांस से ग्यारह महीने तक पितृगण परितृप्त रहते हैं। पर यदि वार्ध्रीणस का मांस दिया जाय, तो पितर चिर दिन तक तृप्त रहते हैं। हे राजन्! गैंडे का मांस, कृष्णशाक और मधु, ये वस्तुएँ श्राद्ध में बहुत ही श्रेष्ठ और तृप्तिदायक हैं।

अब धर्म-प्राण हिंदू विचार करें कि इन वाममार्गियों ने कितना अंधेर मचा रक्खा है। यहाँ तक कि उन्होंने गो-मांस तक की आज्ञा दे दी। अब कहिए, जब तक धार्मिक ग्रंथों का विद्वानों द्वारा शोधन कराके इन वाममार्गियों की संख्या कम न की जायगी, तब तक गो-रक्षा समिति और पिंजरापोल संस्थाओं को सफलता कैसे मिलेगी?

मद्य-पान

मांसाहार की तरह मद्य-पान करनेवालों की भी संख्या कम नहीं है। यदि बीड़ी, सिगरेट्, तमाखू, गाँजा, भंग, चरस, चंडू आदि मादक पदार्थों का आस्वादन करना भी मद्य-पान के ही अंतर्गत समझा जाय, तो कहना न होगा कि प्रतिशत पाँच मनुष्य भी कठिनाई से ऐसे मिलेंगे, जो इस चक्कर में न पड़े हों। यह देश का

दुर्भाग्य है कि इस देश के अधिकांश निवासी इस बुरी आदत के द्वारा अपना सर्वनाश होते देखकर भी नित्य-प्रति इसकी वृद्धि ही करते जा रहे हैं। इन नशेखोर वाममार्गियों ने मद्य-पान ही स्वर्ग-प्राप्ति का साधन समझ रक्खा है। इनका मन-गढ़ंत धार्मिक सिद्धांत देखिए—

"हालां पिबति दीक्षितस्य मंदिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु विराजते कौलव चक्रवर्ती ...... ।"

जो कलार के घर जाकर बोतल-पर-बोतल चढ़ावे, वेश्याओं के घर जाकर कुकर्म करे, वही इनमें चक्रवर्ती राजा समझा जाता है। वे वाममार्गी अपने महानिर्वाण-तंत्र में मद्य की महत्ता बतलाते हुए लिखते हैं—

"पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले;
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।"

यही नहीं, इन देश के दुश्मनों ने स्वार्थ-साधन के लिये ऋषि-प्रणीत ग्रंथों में मांसाहार की तरह मद्य-विषयक भी कुछ मंत्र मिला दिए हैं। नमूने के रूप में मनुस्मृति का प्रक्षिप्त श्लोक देखिए—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्।
वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति ।
न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ;
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला। (अ० ५। ५६)

अब मैं पाठकों से ही पूछना चाहता हूँ कि जब तक देश में ऐसे वाममार्गी मनुष्य और पाखंडी उपदेशक बने रहेंगे, तब तक इस देश का उन्नति की ओर अग्र-सर होना कहाँ तक संभव है ?

सनातनधर्म के मान्य ग्रंथ ब्रह्मांडपुराण में लिखा है—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वे वर्णाश्रमेतराः;
तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे।

इसी तरह पद्मपुराण में भी लिखा है—

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः;
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ।

अब कहिए मेरे सनातनधर्मी बंधुओ, आप लोगों में से कितने ऐसे हैं, जो अपने धर्मग्रंथ की आज्ञा भुलाकर नरक जाने की तैयारी नहीं करते ? और मेरे पूज्य ब्राह्मणो, आप भी बतलाइए, इस धूम्र-पान से कितने ऐसे हैं, जो पद्मपुराण के मतानुसार ग्राम-शूकर बनने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं ?

बाल-विवाह

हत्यारे बाल-विवाह का नाम लेते ही शरीर में कंपन हो आता और नेत्र अश्रु-पूर्ण हो जाते हैं। परतंत्रता में परा-वलंबी जीवन व्यतीत करते हुए हम आर्यों (हिंदुओं) का इतना अधिक अधःपतन हो गया है कि हम अपने सच्चे हित को अहित और अहित को हित मान बैठे हैं। हमारे मस्तिष्क इतने विवेक-शून्य हो गए हैं कि किसी परि-स्थिति-वश जिस प्रथा का चलन हो गया, उसे आज सैकड़ों वर्षों के अनंतर—उस परिस्थिति का अंत होने पर भी—समाज से उठा देने का प्रयत्न नहीं करते। हम आज इतने बल-हीन क्यों हो गए, हम पद-पद पर क्यों ठुकराए जाते हैं, इस विषय पर मैं अपने विचार कभी अन्यत्र प्रकाशित करूँगा, पर तो भी इस समय इतना कह देना आवश्यक समझता हूँ कि इस अधःपतन और बलहीनता का सबसे प्रधान कारण बाल-विवाह ही है। जिस देश में एक दिन राम-कृष्ण-अर्जुन-से वीर, हनुमान्-भीष्म-से ब्रह्मचारी, वाल्मीकि-से कवि, व्यास-से वक्ता और जनक-से राजर्षि उत्पन्न होकर इसका 'देव-भूमि' नाम सार्थक करते थे, उसी देश में आज इस पैशाचिक प्रथा के कारण सहस्रों की संख्या में क्लीव, कामी, मूर्ख, नास्तिक और निर्लज्ज उत्पन्न होकर इसे 'श्मशान-भूमि' बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं होता कि वाम-मार्ग के आचार्य, अनुयायी और पोषक इस कुप्रथा के प्रचारक हैं। जब हमारे धर्म-ग्रंथ पर्याप्त रूप में इस विषय का स्पष्टीकरण कर रहे हैं, तब धर्म-ग्रंथ को ठुकराकर इस प्रथा का संचालन करनेवाले पंडितों का नाम हम किस उपाधि से विभूषित करें ? मेरा तो यह मत है कि देश की परिस्थिति में परिवर्तन करने के पूर्व इन वाममार्ग के आचार्यों के मस्तिष्क का—जिन्होंने स्वार्थवश पराशर उवाच, ब्रह्म उवाच आदि लिखकर अपने मन-गढ़ंत श्लोक रच दिए—ऑपरेशन कर इस सर्वनाशकारी प्रथा को देश-निकाला देना अत्या-वश्यक है। इसके पूर्व उन्नति की आशा करना निराशा-मात्र होगी। ये गुरुघंटाल आचार्य—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ;
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ।

माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ;
त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ।

बतलाकर बाल-विवाह का प्रचार करते और देश को गहरे गर्त में डुबाकर अपनी बर्बरता का परिचय देते हैं । वे अपने लबेद को वेद-शास्त्र और स्मृतियों से कहीं ऊँचा स्थान देते हैं । हमारे प्रसिद्ध स्मृतिकार भगवान् मनु कहते हैं—

"त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ;
उर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विंदेत सदृशं पतिम् ।"

कन्या रजस्वला हुए पश्चात् तीन वर्ष पर्यंत पति की खोज करके अपने सदृश पति से विवाह करे । यही नहीं, इस विषय में वेद का भी मत है---

"युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ।"
(ऋ० मं० ३ । सू० ८ । मं० ४)

अर्थात् जो पुरुष सब ओर से यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य-सेवन से उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त वस्त्र धारण किए हुए, ब्रह्मचर्य-युक्त युवा विद्या ग्रहण कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, वही प्रसिद्ध, अतिशय शोभा-युक्त, मंगलकारी होता है और अच्छी तरह ध्यान-युक्त विज्ञान से विद्या-वृद्धि की कामना-युक्त धैर्यशील विद्वान् लोग उसी पुरुष को उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं ।

इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य-अवस्था के पूर्व अर्थात् पचीस वर्ष की अवस्था के पहले विवाह करना युक्ति-संगत और हितकारक नहीं है । आप आयुर्वेद की दृष्टि से भी देखेंगे कि बाल-विवाह कितना वर्जित है । इस विषय में मुनिवर धन्वंतरिजी सुश्रुत में कहते हैं—

"ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ;
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ।
जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ;
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ।"

यदि सोलह वर्ष से कम आयु की स्त्री में पचीस वर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष गर्भस्थापन करे, तो वह कुक्षिस्थ गर्भ विपत्ति में पड़ता है । वह उत्पन्न होकर चिरकाल तक जीवित नहीं रहता और जीवित रहा भी, तो सदैव दुर्बलेंद्रिय ही रहेगा । अतः बाल्यावस्था में गर्भाधान न करे ।

इससे यह स्पष्ट है कि धार्मिक और आयुर्वैदिक आज्ञा का उल्लंघन कर बाल-विवाह करनेवाले वाममार्गी हैं ।

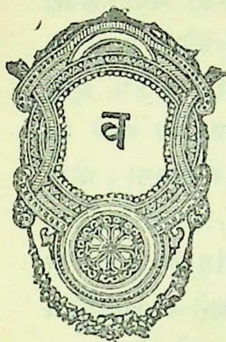
यदि 'वाममार्ग' विषय पर और भी अधिक विचार किया जाय, तो इस नाम की एक पुस्तक ही बन सकती है । अभी मैंने इस लेख में केवल मुख्य-मुख्य बातों पर ही विचार किया है । अस्पृश्यता, खान-पान आदि अनेक बातें छोड़ दी गई हैं । आशा है, मेरे विचारशील सत्यानुयायी देशवासी इस पर विचार करेंगे । *

* समस्त पत्र-संपादकों, हिंदू-सभाओं और सुधारकों से इस लेख को प्रकाशित कर प्रत्येक हिंदू-जनता तक पहुँचाने की प्रार्थना है ।—लेखक

दो भाई

[श्रीयुत भैयालाल जैन एच्० एम्० बी०]

(१)



वहाँ जो ताज़िया उठा करता था, उसमें हिंदू लोग बहुत मदद दिया करते थे—रुपए से, पैसे से, तन से, मन से, हर तरह से। इतने उत्साह से भाग लेते थे कि उसमें और ही रौनक़ आ जाती थी। पर उस साल दोनो फ़िरक़ों में वैमनस्य हो जाने से मज़ा किरकिरा हो गया। बेचारे मुसलमान, जिन्होंने केवल हिंदुओं के बल पर अभी तक अपनी शान निभाई थी, बुरी तरह से निराश हो गए। साथ ही उन्हें गुस्सा भी कम न आया। काफ़िरों को इसका मज़ा न चखा दिया, तो क्या रह गया! खिसियानी बिल्ली की तरह जहाँ देखो, वहीं मुसलमान ग़ुर्राने लगे। बंदिशें बँधने लगीं। कभी मियाँजी के घर पर, कभी मौलाना साहब के मकान पर और कभी क़ाज़ीजी के यहाँ मुसलमानों का जमाव होने लगा। हिंदुओं ने सब सुना, सब समझा; पर उनके सनातनी शांत स्वभाव में बल नहीं पड़ा। दो-चार जने कहीं इकट्ठे होते, तो ज़रा फुस-फुस कर लेते—"यार, ये मुसल्ले तो बदमाशी करने पर तुले हुए हैं। अब की ताज़िए में बड़ा झमेला मचावेंगे।"

आख़िर क़तल की रात आई। मुसलमानों का दिल जला हुआ था; वे मुस्तैद होकर निकले। सबकी आँखों में ख़ून उतरा हुआ था। चेहरे ख़ूँख़्वार थे। जिस समय वे 'अली-हुसेन' का ज़ोरों का नारा लगाते हुए निकल जाते थे, हिंदुओं का कलेजा काँप जाता था। छत के झरोखे और द्वार की संधि से देखते थे। देखकर सिहर उठते थे। किसी में इतना हियाव न था कि उनके सामने ज़रा बाहर तो आ जाय। झुंड के दूर निकल जाने पर कुछ दिखाऊ वीर अपने-अपने घर के दरवाज़ों पर आते और बातें करते थे—"यार, हिंदू लोग बड़े डरपोंक हैं; नहीं तो इनकी क्या मजाल कि इस तरह उछल-कूद मचा लें। एका नहीं है।" दूसरा कहता था—"हाँ भाई, एका नहीं है। क्या किया जाय? सभी हिंदू पस्त-हिम्मत नहीं होते; पर उनमें बहुत-से ऐसे होते हैं कि दूसरों की कमज़ोरी देखकर उनके भी घुटने मुड़ जाते हैं।" अनेक हेकड़ हिंदुओं ने दूसरों के सामने एक आदर्श रखने के विचार से लाठियाँ लीं, और निकल पड़े—"आ जाय जिसकी हिम्मत हो।" मुसलमान उन पर टूटते थे; वे मुसलमानों पर टूटते थे। ख़ासी बजती थी। पर हार हिंदुओं ही की होती थी। बुरी तरह पीटे जाते थे। दिलेर हिंदू जूझते थे; नामर्द हिंदू चूड़ियाँ पहनकर तहख़ानों में घुसे रहते थे। ख़ुदा न ख़ास्ता अगर कोई धोखे से बाहर रह जाता, तो लाठी लेने के बहाने चट अंदर चला जाता था। ऐसी बात न थी कि मुसलमान सभी झगड़ालू थे। उनमें अच्छे भी थे, जो हिंदुओं को अपना भाई, पड़ोसी और हमवतन समझते थे। पर उजड्डों ही की संख्या में अधिकता थी। वे उन नेक मुसलमानों की बातें सुनकर उनका मख़ौल उड़ाते और अपनी डींग हाँकते थे।

घनश्याम का छोटा भाई राधाकांत रात को ताज़िए की घमर-घमर से जाग उठा। उठकर बैठ गया। बोला—"भैया! ताज़िया!"

घनश्याम को ज़ोर की नींद लगी थी। ज़रा-सा कसमसाया। कहा—"हाँ, सो जाओ।"

कुछ देर के बाद राधाकांत पहले की अपेक्षा ज़ोर से बोला—"भैया! ताज़िया आया है।"

घनश्याम ने थोड़ा-सा सिर उठाकर कहा—"सोओ।"

राधाकांत को किसी तरह नींद नहीं आ सकती थी। उसने कहा—"मैं देखने जाता हूँ।"

घनश्याम—"यहीं छत पर से देख लो।"

लड़का चिलबिला और चंचल था। नीचे दौड़ गया। वहाँ घनश्याम फिर सो गया। जागने पर उसने

देखा, राधाकांत का बिस्तर ख़ाली है। पुकारा—'राधा! ओ राधा!" ताज़िया निकल गया। राधा कहाँ गया? लालटेन लेकर खोजने उठा। घर में नहीं मिला। बाहर देखा, वहाँ भी नहीं। हृदय में धड़कन हुई। पड़ोसियों को जगा-जगाकर पूछा—"भाई, कहीं राधा को तो नहीं देखा?" उन्होंने कहा—"नहीं। कहाँ गया?" रात-ही-रात थाने में जाकर रिपोर्ट की। मेरा भाई राधाकांत नहीं मिल रहा है। घर के सामने से ताज़िया निकला था, तभी से। दो बजे होंगे। पूरी हुलिया भी लिखा दी।

बहुत खोज-पड़ताल हुई। राधाकांत का पता नहीं चला। घनश्याम को अपने छोटे भाई के गुम हो जाने का अत्यंत शोक हुआ। पर उस शोक से अधिक मुसलमानों पर क्रोध हुआ। ज़रूर इन्हीं की कारस्वाई है।

(२)

राधाकांत बाहर निकला। एक मुसलमान ने उसका गोरा-गोरा मुँह और चमचमाती आँखें देखीं, तो मोहित हो गया। पूछा—"ताज़िया देखोगे?"

राधाकांत—"हाँ।"

उस मुसलमान का नाम उसमान था। उसने कहा—"चलो, मैं पास से दिखा दूँ।"

राधकांत राज़ी हो गया।

उसमान ने उसे गोद में उठा लिया। दो पैसे की रेवड़ी ले दी। चुमकारता-पुचकारता ताज़िए के पास-पास चलने लगा। दोनो बहुत दूर निकल गए। तब एकाएक राधाकांत को घर की याद आई। गोद से उतरने लगा। बोला—"घर जाऊँगा।"

उसमान—"चलो, थोड़ी दूर और है। अभी लौटेंगे, तो तुमको तुम्हारे घर पहुँचा देंगे।"

राधाकांत—"नहीं, मैं अभी जाऊँगा।"

उसमान—"अकेले चले जाओगे?"

राधाकांत—"हाँ।"

उसमान—"डर न लगेगा?"

राधाकांत—"नहीं।"

उसमान—"हम पहुँचा देने को तो कहते हैं।"

राधाकांत नहीं माना। मचल गया। उसमान ने उसका गाल मसककर एक तमाचा मार दिया। डाँटकर कहा—"चुप! नहीं तो फिर..."

इस व्यवहार से घर का लाड़ला राधाकांत एकदम सन्न रह गया। फिर उसके मुँह से बोल नहीं निकला। तमाम रास्ते-भर चुपचाप मुँह लटकाए चला गया। सबेरा होते-होते उसमान उसे गोद में लादे लौटा। राधाकांत के घर नहीं, अपने घर। बिस्तर बिछाकर उसे सुला दिया। राधाकांत का साहस नहीं हुआ कि अपने घर का नाम ले। मुँह ढाँपकर धीरे-धीरे रोने लगा। थोड़ी देर में सो गया।

पंद्रह दिन तक उसमान ने राधाकांत को उसी शहर में, अपने घर में, छिपाकर रक्खा। किसी को कानोकान ख़बर न हुई। उसे बाहर नहीं निकलने देता था। आप कहीं जाता था, तो बाहर से ताला जड़ दिया करता था। जाते समय कह जाता था कि मैं यहीं पास हूँ। तुम ज़रा भी रोए या चिल्लाए, तो आकर गला ही दबा दूँगा। डर के मारे वह कुछ नहीं बोलता था। दिन-रात मौन पड़ा रहता था। कभी-कभी अकेले में भीतर-ही-भीतर ख़ूब फफक-फफककर रोता भी था। उसमान की आहट पा जाने पर तुरंत ही आँसू पोंछ डालता था। राधाकांत उससे बहुत डरने लगा था। उसे यह उम्मीद ज़रा भी नहीं रह गई थी कि यह मुझे कभी घर भी पहुँचा देगा।

एक दिन उसमान रात के सन्नाटे में राधाकांत को लेकर रेल में बैठ गया। अलीगढ़ पहुँचा। वहाँ उसके बहुत-से मुलाक़ाती मुसलमान थे। जल्दी ही रहने का ठीक-ठिकाना लग गया। काम-धंधा भी मिल गया।

जुमे के दिन उसमान राधाकांत को मसजिद ले गया। वहाँ उसके मुसलमान बनाने की रस्म पूरी की गई। कलमा पढ़ाया गया। चोटी काट दी गई। पाँचो वक़्त नमाज़ पढ़ने की हिदायत की गई। नाम बदल दिया गया। शाम को दावत की ठहरी। बहुत-से नामी-गिरामी मुसलमान आए। उस दावत में राधाकांत को ज़बरदस्ती गोश्त खिला दिया गया।

राधाकांत फंदे में फस ही चुका था। निकलना दुश्वार था। धीरे-धीरे उस पर मज़हबी रंग चढ़ने लगा। वह भी अपने को मुसलमान समझने लगा। उसने

देखा, जैसे-जैसे वह ढर्रे पर आता जाता था, वैसे-वैसे उसमान उस पर ख़ुश होता जाता था। उस पर किसी तरह का ज़ोर-ज़ुल्म नहीं किया जाता था; बल्कि नेक नज़र ही रक्खी जाती थी। अंत में वह पक्का मुसलमान बन गया। उसमान को अपना सरपरस्त समझने लगा, और दूसरे मुसलमानों को अपना मज़हबी भाई। उसके प्रति उसका प्रेम भी बढ़ गया।

(३)

घनश्याम की ज़िंदगी के दिन पहले दूसरी ही तरह से बीतते थे। भाई के गुम हो जाने के बाद से उसने वह तरीक़ा बदल दिया। हम हिंदुओं की यह दुर्गति क्यों है? हमारे इतने हीन होने का क्या कारण है? अंत में उसने यही निष्कर्ष निकाला कि सच ही यह जाति संगठित नहीं है। संगठन के अभाव ही से इसकी यह अधोगति है, और हमारी इस दुर्बलता के उत्तर-दायी हमी हैं। किसी दूसरे का इसमें दोष नहीं है। हमारे ऊपर दूसरी जाति के लोगों के द्वारा जो अत्याचार किए जा रहे हैं, उनकी तह में पैठकर यदि हम देखें, तो साफ़ मालूम हो जायगा कि मूल-कारण हमी हैं। हमारी मुट्ठी में ज़ोर नहीं है, और हम अपनी चीज़ के छिन जाने का अपराध दूसरों के माथे पर मढ़ते हैं। कैसी बेवक़ूफ़ी है! रुपए की थैली सामने रखकर यदि हम ऊँघ जायँ, तो अपराध किसका? दूसरे का? छिः! आज मेरा भाई मुझसे छीन लिया गया है, तो मैं उत्तेजित हो उठा हूँ; कल दूसरों की मा-बहनें और बहू-बेटियाँ छीन ली गई थीं, तब मैं पड़ा सोता था। मैं भी दोषी हूँ। प्रत्येक हिंदू दोषी है। इसी तरह सब कान में तेल डाले पड़े रहेंगे, तो एक दिन हिंदू-जाति का सर्वनाश हो जायगा।

घनश्याम काम में जुट गया। उसने सारे शहर के हिंदुओं में उत्तेजना फैलाने की कोशिश की। मुहल्ले-मुहल्ले घूमा। एक-एक आदमी से मिला। उसके बाद उसने हिंदुओं की एक विराट् सभा का आयोजन किया। ख़ूब दौड़-धूप की। दिन निश्चित किया। सब जगह पर्चे बँटवाए। निर्दिष्ट समय पर सभा-स्थल पर जब देखा गया, चारो ओर सन्नाटा ही दिखा। कोई आया ही न था। कुछ समय के लिये घनश्याम का दिमाग़ चक्कर खा गया। कुछ समझ में न आया कि हिंदुओं के भाग्य में क्या बदा है? आँखों में उँगली डालकर दिखलाते हैं कि देखो, यह तुम्हारी भलाई का रास्ता है; तब भी इन्हें कुछ नहीं सूझता। पर वह हतोत्साह नहीं हुआ। किसी तरह भी काम हो, करूँगा; पीछे न हटूँगा।

बिजली की तरह चारो ओर ख़बर फैल गई कि बंबई से एक गानेवाली आई है। गले का स्वर कोयल को मात करनेवाला है। गाने में वह लय होती है, वह राग रहता है, वह रस रहता है कि बस, सुनते ही बनता है। रूप-रंग ऐसा है कि क्या किसी का होगा? लाखों में एक। मैदान में ठटाठट भीड़ भर गई। सारा शहर उमड़ पड़ा। पर उन लोगों की उस समय की निराशा का क्या पूछना कि जब गानेवाली के बदले घनश्याम खड़ा होकर अपनी वक्तृता झाड़ने लगा—"हिंदुओ! तुमको धिक्कार है! हज़ारों बार धिक्कार है! तुम्हें ज़रा भी होश नहीं। ऐसे ग़ाफ़िल हो कि अपनी भलाई-बुराई भी नहीं देखते। कैसा समय है? क्या करना चाहिए? कुछ ध्यान नहीं। मर मिटने का मौक़ा आवेगा, तभी शायद चेतोगे। कोई राह बतलाता है, उसकी सुनते ही नहीं। लक्षण बड़े ख़राब हैं। तुम अपने भाई को अपना भाई नहीं समझते। अपने ही खाने-पीने में मस्त रहते हो। अपनी चैन की वंशी की ध्वनि के आगे ग़रीबों का रोना नहीं सुनते। नर होकर भी पशु ही बने हुए हो। हद है। सोचते होगे, मज़ा करते हैं। भगवान् की कृपा से आनंद से दिन कटते जाते हैं। जब अपने पर आवेगी, तब देखा जायगा। निश्चिंत हो। यहीं पर गड्ढा है। यह मत सोचो कि बच जाओगे। ऐसी बीतेगी कि छठी का दूध याद आ जायगा। इतने गहरे गिरोगे कि पता न चलेगा।"

इतनी लानत-मलामत के बाद उसने संगठन का विषय छेड़ दिया। संगठन के गूढ़ तत्त्व समझाए। उससे होनेवाले लाभों का ब्योरेवार वर्णन किया। अनेकों उदाहरण दिए। कहा—"तब किसी माई के लाल की हिम्मत न पड़ेगी कि हमें आँख तो दिखा सके। संगठन-शक्ति क्या ऐसी-वैसी शक्ति है? इस शक्ति से शक्तिशाली होकर हम असंभव को संभव सिद्ध कर देंगे।

पर यदि इसी तरह हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे, तो चाहे जो हमें दिन-दहाड़े लूट लेगा। ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप कर सकते हैं। इसलिये चलो, उठो, खड़े हो जाओ। अब भी समय है। बहुत कुछ कर सकते हो। सबेरे का भूला मनुष्य शाम तक घर पहुँच जाय, तो वह भूला नहीं कहलाता।"

लोगों में जोश फैला। घनश्याम के साहस और दृढ़ता की प्रशंसा होने लगी।

कोई भी काम हो, उसमें रुपए की ज़रूरत पहले सामने आ खड़ी होती है। घनश्याम ने इसका अनुभव किया। ऐसा होना तो नहीं चाहिए; पर परिस्थिति ही ऐसी हो गई है। ख़ैर, वह चंदा इकट्ठा करने की फ़िक्र में भी लगा। धनी-मानी सज्जनों और सेठ-साहूकारों के पास गया। बहुत थोड़ा पैसा इकट्ठा हुआ। सेठ चाँदमल नाम का एक धनी असामी था। सबने उसकी आड़ ली। वह हम लोगों का सरपंच है। यदि वह चंदा देना शुरू कर दे, तो हम लोगों को कोई एतराज़ नहीं। घनश्याम वहाँ गया। सेठ का आसन गद्दी पर जमा था। घनश्याम को देखते ही वह सँभल-कर बैठ गया। शायद पहले ही उसको कुछ आभास मिल चुका था। घनश्याम ने सब मामला समझा-बुझाकर रुपए की अपील की। उत्तर मिला—"मैं ग़रीब आदमी हूँ। रोज़गार-धंधा आजकल बिलकुल ढीला है। पैसे की बड़ी तंगी है।" घनश्याम ने सुना; सुनकर चुपचाप उठ आया।

उसके थोड़े ही दिन बाद सेठ चाँदमल से और एक नीच जाति के आदमी से, बीच बाज़ार में, किसो बात पर झिकझिक हो गई। वह आदमी जूता तानकर खड़ा हो गया। उस समय तो सेठ कुछ अधिक नहीं बोला, पर बाद में उसने नालिश कर दी। मामले ने बड़ा तूल दिया। हज़ारों रुपए ख़र्च किए। उसे एक महीने के लिये जेल भिजवाकर ही छोड़ा।

मौक़ा देखकर एक दिन घनश्याम फिर सेठ चाँदमल के यहाँ गया। बोला—"सेठजी, आप तो कहते थे, मैं ग़रीब आदमी हूँ। पास में पैसा नहीं है। पर मुक़दमे में लगाने के लिये इतना रुपया कहाँ से निकल पड़ा? मुझे आप सिर्फ़ सौ ही रुपए दे देते, उतने ही में काम बन जाता।"

पहले तो सेठ ने बहुत लाल-पीली आँखें कीं; पर जब घनश्याम ने उसे सीधी पट्टी पढ़ाई, भेजे में बात घुसा दी कि मैं यों ही पिंड छोड़ देनेवाला जीव नहीं, किसी-न-किसी तरह लेकर ही रहूँगा, तब उसने आख़िर बड़ी मुश्किल से पेटी खोली। फिर तो धड़ाधड़ चंदा इकट्ठा हुआ। काम भी ज़ोरों के साथ चल निकला।

(४)

घनश्याम ने तब दूसरे स्थानों में घूम-घूमकर संगठन का प्रचार करना प्रारंभ किया। ऐसा कुछ हुआ कि वह जहाँ गया, वहीं धड़ाके के साथ काम हुआ। हज़ारों की संख्या में लोग जमा होते, स्थायी समिति बनती, फ़ंड इकट्ठा होता।

एक पलड़ा जब नीचे झुकने लगता है, तब दूसरा पलड़ा आप-ही-आप ऊपर उठने लगता है। मुसलमानों ने हिंदुओं का उत्कर्ष देखा, तो जल-भुनकर ख़ाक हो गए। यह संगठनवाला कहाँ से आया है? सुनते हैं, यही सब आफ़त बरपा करता है। गुड़ का बाप कोल्हू यही है। यहाँ इसकी दाल न गलने देनी चाहिए। किसी तरह हिकमत लगाकर इस पर हाथ साफ़ कर देना चाहिए। फिर तो फ़तेह है। बहुत-से मुसलमान एक एकांत स्थान में मिलकर मशविरा करने लगे।

एक ने कहा—"सबकी राय से किसी एक को यह काम सौंप देना चाहिए।"

दूसरा बोला—"ऐसा नहीं; पहले देख लेना चाहिए कि क्या कोई ऐसा भी बहादुर है, जो अपनी मर्ज़ी से इस काम को अंजाम देने के लिये मुस्तैद होकर खड़ा होता है?"

आवाज़ें आईं—"ठीक है, ठीक है।"

तत्क्षण ही एक सत्रह वर्ष का पट्ठा उठ खड़ा हुआ। बोला—"मैं तैयार हूँ।"

सबने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। यह उम्र और यह दिलेरी! सरदार ने कहा—"तुम अभी छोकड़े हो। बैठ जाओ।"

उस नवयुवक का नाम मुबारक था। मुबारक का

ख़ूबसूरत चेहरा ग़ुस्से से तमतमा उठा। आपे से बाहर होकर बोला—"आप इस तरह मेरी हतक क्यों कर रहे हैं? छोकड़ा ही समझा था, तो मुझे इसमें क्यों शरीक किया? मेरी कलाई में ताक़त है। मुझे अपने पर भरोसा है। मैं अपना फ़र्ज़ समझता हूँ। फिर मुझे क्यों नहीं इस काम को पूरा करने की इजाज़त दी जाती?"

उसकी बातों से सब सन्नाटे में आ गए। बहस-मुबाहिसे के बाद आख़िर उसी पर भार छोड़ दिया गया।

उस परदेश में घनश्याम एक सज्जन के यहाँ निमंत्रित होकर गया था। रात अधिक बीत जाने के कारण वहीं रह गया। गर्मी के दिन थे; पर आकाश में बदली छाई रहने से वह भीतर ही सोया था। दरवाज़ा और खिड़कियाँ सब खुली थीं। कोई सामान तो था नहीं कि किसी के ले जाने का डर हो। एक सुराही-भर कोने में रक्खी थी।

रात के दो बजे थे। पानी से सनी हुई हवा झर्-झर् बह रही थी। मुबारक कमर में पैना छुरा खोंसे हुए लुकता-छिपता पहुँचा। देखा, रास्ता साफ़ है। चारो ओर निगाह फेरी, कहीं कोई नहीं। उछल पड़ा। मार लिया पड़ाव। छुरे की मूठ पर हाथ रखकर वह दरवाज़े पर पहुँचा। नया पोता हुआ सफ़ेद झक कमरा लैंप की तेज़ रोशनी में चम-चम कर रहा था। घनश्याम का मुँह सामने ही था। मुबारक पास गया। छुरा निकाला। ऊपर ताना। किंतु एकाएक उसका हाथ सन्न रह गया। हृदय की धड़कन जैसे रुक गई। बाहर की साँस बाहर और भीतर की भीतर ही रह गई। छुरा हाथ से छूटकर धरती पर गिर पड़ा।

घनश्याम ने आहट पाकर झट आँखें खोल दीं। कहा—"कौन?"

मुबारक उसके पैरों से लिपट गया। मुँह से केवल निकला—"भैया!"

वह राधाकांत था। घनश्याम ने उसे तुरंत ही पहचान लिया। जल्दी से उठाकर गले से लगा लिया।

फिर दोनो ख़ूब रोए—ख़ूब रोए। यहाँ तक रोए कि आँसुओं से तर हो गए, और उनकी देह खिड़की में से आती हुई ठंडी हवा से काँपने लगी।

ख़लीफ़े और उनका जीवन

[श्रीराजेश्वरप्रसाद-नारायणसिंह बी० ए०]



मुहम्मद साहब ने मरते समय तक अरब में अपनी पूरी सत्ता स्थापित कर ली थी। इसलाम-धर्म का सौरभ अरब के कोने-कोने तक फैल चुका था। उनके कुछ अनुयायी अब उसे दिग्-दिगंत में फैलाने का उद्योग कर रहे थे। पर मुहम्मद साहब की मृत्यु से उनके इस उद्देश्य में भारी रुकावट आ पड़ी; क्योंकि वह शक्ति, जिसने सारे अरब को एकता के सूत्र में बाँध रक्खा था, जाती रही। मुहम्मद साहब की मृत्यु के कुछ ही दिनों के बाद इस धर्म-साम्राज्य के टूटने के लक्षण देख पड़ने लगे। अरब के कुछ बुद्धिमान् पुरुषों ने, जो मुहम्मद साहब के सच्चे शिष्य और दूरदर्शी थे, इस आती हुई दुर्घटना को रोकने के अभिप्राय से यह आवश्यक समझा कि मुहम्मद साहब के स्थान पर कोई दूसरा योग्य व्यक्ति, धार्मिक तथा सांसारिक मामलों की देख-रेख के लिये, अध्यक्ष चुना जाय। अतएव सर्व-सम्मति से मुहम्मद साहब के-से साधु-स्वभाव आबूबेकर इस पद पर संस्थापित हुए, और तभी से ख़िलाफ़त की सृष्टि हुई। आबूबेकर पहला ख़लीफ़ा हुआ। उनके बाद तीन और ख़लीफ़े चुने गए— उमर, उतमान और अली। अली के बाद ख़िलाफ़त एक विशिष्ट परिवार में चला गया, और तब से उसी परिवार के लोग ख़ानदानी तरीक़े पर ख़लीफ़ा होने लगे। निर्वाचन-पद्धति उठा दी गई।

ख़िलाफ़त के आरंभ में ख़लीफ़े बड़े साधु-स्वभाव हुआ करते थे। सादगी और दयालुता के लिये विख्यात थे। धार्मिक कृत्यों में ही अपने जीवन का अधिकांश समय बिताते थे। सांसारिक विषय-वासनाओं से दूर रहते थे। दौलत से कोई निजी वास्ता न था। उसे परोप-कार का साधन-मात्र समझते थे। ग़रीबों के-से जीवन बिताते थे। हाँ, हृदय विशाल था, उदारता विख्यात थी। उनकी इस मिज़ाज-ग़रीबी, सादगी और हृदय के औदार्य की इतिहास लिखनेवालों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ख़लीफ़ा आबूबेकर के संबंध में कहते हैं कि जब उन्होंने ख़िलाफ़त की बागडोर अपने हाथ में ली, तो अपनी पुत्री आयशा को बुलाकर कहा—"बेटी, हम लोगों की जो पैतृक संपत्ति है, उसका लेखा अलग कर ले। ताकि अंत में मैं यह देख सकूँ कि अपने कर्तव्य-पालन में मैं ग़रीब हुआ या धनी।" वह अपने लिये सिर्फ़ तीन टुकड़े सोने के और एक ऊँट तथा एक अनु-चर के जीवन-निर्वाह की सामग्री के सिवा और कुछ न लेते थे। इसमें भी जो सप्ताह के अंत तक बच जाता था, उसे वह प्रति शुक्रवार को दान कर देते थे। उनकी मृत्यु के बाद जब उनके कपड़े तथा अन्य सामग्री उनके उत्तराधिकारी उमर को मिली, तो उन्होंने बड़े अफ़सोस के साथ कहा—मुझमें यह शक्ति नहीं कि मैं उनकी तरह सादा जीवन व्यतीत कर सकूँ। पर सच पूछिए, तो उमर किसी क़दर उनसे कम न निकले। वह भी फटे-चिथड़े कपड़ों को ही पहनते थे। उन्होंने सिर्फ़ रूखी-सूखी रोटियाँ खाकर और कुएँ का पानी पीकर ही अपनी उम्र बिता दी। कहते हैं, एक बार फ़ारस का राजदूत उनसे मिलने आया, तो उसने उमर को मदीने की एक मस्जिद की सीढ़ियों पर, भिखमंगों के साथ, सोते पाया।

इतनी सादगी के साथ जीवन बिताते हुए भी ये ख़लीफ़े राज्य-विस्तार में किसी तरह कमी नहीं करते थे। वे स्वयं तो लड़ाइयों में कम—बहुत कम— जाया करते थे, पर उनके वीर सेनाध्यक्षों ने कुछ ही दिनों में फ़ारस, सीरिया, मिसर, आफ़्रिका, स्पेन आदि देशों में विजय-पताका फहरा दी। इन देशों से लूटकर आई हुई दौलत ने अरब की समृद्धि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ा दी। पीछे चलकर तो ये ख़लीफ़े संसार-भर में इसलाम-धर्म के प्रधान समझे जाने लगे। रोम के पोप की तरह इनकी भी पूजा होने लगी।

जब ख़िलाफ़त अब्बासियों के हाथ आई, तो उन्होंने

अपनी राजधानी बदलने की सोची। फलतः सन् ७६८ ई० (A. D.) में बग़दाद की नींव डाली गई, और तब से ख़लीफ़े बग़दाद में ही रहने लगे। बग़दाद आते ही ख़लीफ़ों के जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। टिग्रिस-नदी के तीर पर बसे हुए इस नगर की शोभा और ऐश्वर्य दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा। कुछ ही दिनों में इसकी आबादी ख़ूब घनी हो गई *। बग़दाद आकर ख़लीफ़ों ने ऐशो-आराम की ओर क़दम बढ़ाया। और, कुछ ही दिनों में वे इसमें ख़ूब ही डूब गए, भोग-विलास में लिप्त रहने लगे। सारी बातों में फ़ारस के बादशाहों की नक़ल करनी शुरू कर दी। पानी की तरह धन बहाने लगे। तो भी एक-एक ख़लीफ़ा मरने के बाद करोड़ों की संपत्ति छोड़ गया। बग़दाद में बड़ी-बड़ी इमारतें उठ खड़ी हुईं। उनके भीतर की सजावट देखने ही योग्य थी। उनमें लगे हुए मणि-मोतियों और बेशक़ीमती कपड़ों की रौनक़ कुछ और ही थी। देखकर आँखें चकाचौंध हो जातीं। भट्टि का यह श्लोक बग़दाद पर सोलहो आने चरितार्थ होता है

सद्रत्नमुक्ताफलवज्रभाञ्जि
विचित्रधातूनि सकाननानि ;
स्त्रीभिर्युतान्यप्सरसामिवोघै-
र्मेरोः शिरांसीव गृहाणि यस्याम्।

ये ख़लीफ़े ख़र्चीले भी ख़ूब थे। माहदी ने मक्के की एक ही सफ़र में साठ लाख दीनार ख़र्च कर डाले थे। राह में उसने बहुत-सी सराएँ बनवाईं, और ग़रीबों को भीख दी। इनके साथ-साथ खाने-पीने और ऐशो-आराम में भी काफ़ी ख़र्च किया। उसके साथ हज़ारों ऊँट, और आदमी माल ढोने के लिये गए थे। राह में जो इस जलूस को देखता, आश्चर्य-चकित हो जाता। एक दूसरे ख़लीफ़े के पुत्र की शादी में एक हज़ार बड़े-बड़े मोती नववधू के मस्तक पर बरसाए गए थे *, और बहुत-सी ज़मीन और मकानात लोगों को पुरस्कार के रूप में मिले थे। एक बार यूनान से ख़लीफ़ा के दरबार में राजदूत आए। उनके स्वागत में जो तैयारियाँ हुई थीं, उनका ज़िक्र अबुलफ़िदा नाम के एक तवारीख़ लिखनेवाले ने इस प्रकार किया है—

"ख़लीफ़ा की सारी फ़ौज शस्त्रों से सुसज्जित थी, जिसमें सैनिकों की संख्या एक सौ साठ हज़ार के क़रीब थी। राज्य के बड़े-बड़े अफ़सर और मुख्य-मुख्य दास उसके—ख़लीफ़ा के—पास ही, बग़ल में, खड़े थे। उनके वस्त्र बड़े उज्ज्वल थे, और उनके कमरबंद में लगे हुए मणियों और सोने की चमक देखते ही बनती थी। दरवाज़ों पर क़रीब ७०० प्रहरी थे। नौकाएँ ख़ूब सजाई गई थीं, और वे टिग्रिस-नदी के जल पर मद-माती चाल से तैर रही थीं। राजप्रासाद की शोभा भी कुछ और ही—अद्वितीय—थी। ३८ हज़ार पर्दे राज-महल में टँगे हुए थे, जिनमें साढ़े बारह हज़ार तो सिर्फ़ रेशम के चारो ओर सोने से मढ़े हुए थे। २२ हज़ार कारपेट ज़मीन पर बिछाए गए थे। एक सौ बड़े-बड़े सिंह पिंजड़ों से बाहर निकाले गए थे, जो देखने में अत्यंत भयंकर थे। ऐसे तो देखने-योग्य हज़ारों—एक-से-एक बढ़कर—चीज़ें थीं। पर एक वृक्ष का, जो सोने-चाँदी का बना था और जिसमें अठारह बड़ी-बड़ी शाखाएँ थीं, नज़ारा देखने ही लायक़ था। उन अठारह बड़ी तथा अगणित छोटी शाखाओं पर उन्हीं अमूल्य धातुओं की बनी हुई अनेक प्रकार की चिड़ियाँ बैठाई गई थीं। इस वृक्ष की पत्तियों का सृजन भी अलौकिक ही था। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह था कि कल के द्वारा उन पक्षियों से उनकी ही-जैसी बोलियाँ बोलाई जा रही थीं। सुननेवाले दंग हो रहे थे। इन दृश्यों को

---

* एक बार बग़दाद के एक लोकप्रिय फ़क़ीर के जनाज़े के साथ शहर के आठ लाख मर्द और साठ हज़ार औरतें क़बरिस्तान तक गई थीं। इससे शहर की आबादी का अनुमान किया जा सकता है।

* पूर्व के कुछ देशों में यह प्रथा पहले थी, और अब भी है। भारतवर्ष में भी शादी के मौक़े पर वर-वधू के मस्तक पर तरह-तरह की चीज़ों की वर्षा की जाती है। मिल्टन ने इसी की ओर संकेत करके लिखा है—

Or where the gorgeous East, with richest hand,
Showers on her kings Barbaric pearls and gold.

दिखाते हुए वज़ीर यूनान के राजदूतों को ख़लीफ़े की गद्दी के पास ले गया।"

मनुष्य की आत्मा को शांति और सुख ऐशो-आराम की चीज़ों से नहीं मिलता। भोग-विलास में शरीर-सुख भले ही मिले, पर मानसिक सुख का अनुभव वह कदापि नहीं कर सकता। ख़लीफ़ों में जब तक जीवन की सादगी बनी रही—जब तक वे साधु-जीवन बिताते रहे—उनकी आत्मा स्वर्गीय सुख का अनुभव करती रही ; पर जब उन्होंने भोग-विलास में—सांसारिक सुखों में—अपने जीवन को लगाया, तो वह सुख, वह शांति, वह इच्छा-निवृत्ति सदा के लिये विलीन हो गई। अब्दुलरहमान की भोग-विलासिता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी। पर उसी के कमरे में, उसकी मृत्यु के बाद, यह लिखा हुआ पाया गया—"मैं पचास साल तक शांति और विजय के साथ शासन कर चुका। मेरी प्रजा का मुझ पर प्रेम बना रहा, शत्रु सदैव मुझसे भय खाते रहे, मित्र राष्ट्र आदर की दृष्टि से देखते रहे। धन और सम्मान की या प्रभुता और आमोद-प्रमोद की मुझे कमी नहीं रही—वे सदैव मेरी उँगलियों के इशारों पर नाचते रहे। इनके होते हुए भी जब मैंने अपने जीवन के पिछले दिनों पर ग़ौर किया, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अपने जीवन के पचास वर्षों में सिर्फ़ चौदह दिन मेरी क़िस्मत में ऐसे लिखे थे, जिनमें मैंने सच्चे और पवित्र सुख का अनुभव किया। हे मूढ़ मनुष्य! तू सांसारिक सुखों पर व्यर्थ विश्वास न रख, उनकी उम्मीद न कर।" भोग-विलास में लिप्त सभी मनुष्यों का अंत में यही अनुभव होता है, और सभी इसी नतीजे पर पहुँचते हैं।

ख़लीफ़ों के समय में ज्ञान-विस्तार भी ख़ूब हुआ ; क्योंकि ख़लीफ़ों में कुछ ऐसे भी हुए, जो सदाचारी और विद्या-प्रेमी थे। ख़लीफ़ा हारूँरशीद और मामूँरशीद के अद्भुत विद्या-प्रेम की कथाएँ लोक-प्रसिद्ध हैं। इनका अधिक समय विद्योपार्जन तथा ज्ञान-चर्चा में ही बीतता था। गणित, ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र आदि विषयों में अरबवालों ने ख़ूब तरक़्क़ी की थी, और इसका अधिक श्रेय उन ख़लीफ़ों को है, जो विद्या के प्रेमी थे।

अनुभूति

[श्रीयुत "वीरात्मा"]

रहा तुम्हारे मधुर अंक में
जब तक प्रियतम ! इतने
थे न निकटतम मेरे, हो अब
दूर लोक से जितने।
क्षण में कैसे टूट गए वे
मेरे मीठे सपने;
गिरकर नीचे देख रहा अब,
हो तुम ऊँचे कितने !

❀ ❀ ❀

जितने ही तुम दूर दीखते,
उतने ही हो पास;
पीड़ा के क्रीड़ा-स्थल पर नित
मचा रहे हो रास।

पर बेहोशी की घड़ियों का
जब होता है अंत,
मिट जाता है क्षण में मेरा
सुंदर विश्व अनंत।

❀ ❀ ❀

सागर की लहरें तट पर आ
गातीं राग विराग;
क्षुद्र जगत् के मानस में जब
भर जाता अनुराग।
रो उठते तब 'तारे' मेरे,
"वैभव यह अस्थिर है !"
(इन्हीं तरंगों की 'श्रुतियों'-
सा क्या यह मेरा स्वर है ?)

भारतीय धंधों का ह्रास

[श्रीयुत सत्यप्रकाश एम्० एस्-सी०]



रपियन व्यापारियों के आने के बाद भारतवर्ष में पाश्चात्य विधियों का प्रयोग किया जाने लगा। अठारहवीं शताब्दि के आरंभ तक भारत के व्यापारियों और अँगरेज़, पुर्तगाल, फ़्रांसीसी एवं डच सौदागरों में पारस्परिक विनिमय ही अधिक होता था। इन लोगों ने यतस्ततः अपनी फ़ैक्टरियाँ अवश्य खोली थीं, पर इन फ़ैक्टरियों में वे अधिकतर अपने रहने का प्रबंध करते और अपने दफ़्तर आदि रखते थे। आकस्मिक आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिये ये आवश्यकतानुसार कुछ सेना भी रखने लगे। इस प्रकार इनकी फ़ैक्टरियों को छोटा-सा दुर्ग कहना चाहिए, न कि कारखाना। कुछ काल के उपरांत वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से कुछ आवश्यक वस्तुओं का धंधा भी इस देश में आरंभ हो गया।

भारतवर्ष का अपना व्यापार भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था। आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु अपने ही देश में तैयार कर ली जाती थी। कपड़े बुने जाते थे, खाद्य पदार्थ, शक्कर, मिसरी आदि तैयार किए जाते थे, खानों से धातुएँ निकाली जाती थीं, और उनको शोधकर बर्तन तैयार किए जाते थे, चाँदी, पीतल, लोहा, काँसा, सोना, सभी का व्यवहार होता था। इत्रों का व्यवसाय जितना इस देश में था, उतना उस समय कदाचित् ही किसी देश में होगा। यह भी भारतवासी अपनी ही विधि से तैयार करते थे। शोरे का व्यवसाय हमारे देश में बहुत ही था। इन्हीं शोरेवालों के आश्रय पर भारत की गोला-बारूद निर्भर थी। नमक भी झील, पहाड़ और समुद्रों से आवश्यक मात्रा में तैयार किया जाता था। रंगीन वस्त्रों के पहनने का जितना शौक़ भारतवासियों को रहा है, उतना और जगह के लोगों को नहीं। आज भी भारतीय महिलाएँ और भारतीय बच्चे जिस रुचि से तरह-तरह के रंगों के कपड़े पहनते हैं, उतना और देशवाले क्या पहनेंगे। थोड़े दिनों पहले के पुरुषों को भी रंगीन कपड़े अच्छे लगते थे। ये रंग हल्दी, गेरू, टेसू, मंजीठ और नील से तैयार किए जाते थे। नील की कोठियाँ अभी कुछ दिनों तक बहुत पाई जाती थीं; जिनके अनेक स्थानों में अब केवल अवशेष ही देखने को मिल सकते हैं। सुहागा, फिटकरी, कसीस, पारा, वंग आदि अनेक वस्तुओं का भी धंधा इस देश में किया जाता था।

पर इन सब चीज़ों के व्यापार के लिये इस देश में बड़े-बड़े कारख़ाने नहीं थे। इन सबको घरेलू धंधा (या काटेज इंडस्ट्री) कह सकते हैं। आठ-दस काम करनेवाले मज़दूर रखकर एक-एक धंधा आसानी से चल जाता था। आजकल भी जहाँ ग्रामों का व्यवसाय देशी विधि से किया

जाता है, काम करनेवाले चार-पाँच आदमी ही होते हैं। यही हाल तेल पेरने और लाख, चूड़ी आदि के काम करनेवालों का है। वस्त्रों के कारखाने में एक-दो चरखे, एक-दो करघे और दो-तीन काम करनेवाले आदमी। इस प्रकार एक नगर में छोटे-छोटे अनेक कारखाने बराबर चलते रहते थे। क़न्नौज में यदि इत्र का काम होता है, तो वहाँ घर-घर यही काम पावेंगे। बनारस में यदि पीतल का व्यवसाय है, तो इसका तात्पर्य यह कभी नहीं कि वहाँ पीतल की बड़ी भारी फ़ैक्टरी होगी। बस, यही कि किसी विशेष मोहल्ले या प्रत्येक गली में इसका छोटा-छोटा काम होते पाइएगा।

आजकल के पाश्चात्य व्यापार का ढंग दूसरा है। वहाँ कई संपत्तिशाली व्यक्ति मिलकर एक बड़ा कारखाना खोलते हैं, और फिर वह कार्य आरंभ करते हैं। उनका एक-एक कारखाना हमारे एक-एक नगर के बराबर है। इसका प्रभाव यह होता है कि वे थोड़े-से व्यय में बहुत-सी वस्तु तैयार कर सकते हैं। हमारे देश में जहाँ हाथ का उपयोग होता है, वहाँ उनका कार्य यंत्रों द्वारा होता है।

पाश्चात्य व्यापार के कारखाने आर्थिक स्थिति के हिसाब से अच्छे और बुरे, दोनो ही हैं। अंतर-जातीय व्यापारिक सफलता प्राप्त करने के लिये यंत्रों का उपयोग अनिवार्य है, पर व्यवसायहीनता का प्रश्न इनसे उत्तरोत्तर जटिल ही होता जायगा।

भारतवर्ष की समस्या विचित्र है। यहाँ पाश्चात्य विधियों का अनुसरण करनेवाले कारखाने तो खुलने नहीं पाते, पर घरेलू धंधे उत्तरोत्तर बंद होते जा रहे हैं। इसलिये देश का दोनो ही प्रकार से घाटा है। यदि हमारे चरखे-करघे की जगह वस्त्रों के बड़े-बड़े कारखाने हमारे पूँजीपतियों द्वारा खोल दिए जाते, तो हमें कोई आपत्ति न होती, प्रत्युत ऐसा होना हितकर ही था। पर हुआ क्या कि कारखाने तो खुले नहीं, हमने चरखे-करघे का भी उपयोग छोड़ दिया। विदेश से तैयार होकर हमारे लिये वस्त्र आने लगे।

जो वस्तु भारतवर्ष में न हो, वह यदि विदेश से हमारे यहाँ आवे, तो अधिक आपत्ति नहीं है—जैसे चाँदी। चाँदी का व्यवहार भारतवर्ष में बहुत किया जाता है; पर हमारे देश में यह बहुत कम पाई जाती है। प्रतिवर्ष १५,००,००,००० रुपयों की यह विदेश से आती है। उत्तरी बर्मा के शान-राज्यस्थ बौडविन में तीन लाख औंस चाँदी, जिसका मूल्य पाँच लाख रुपए के लगभग है, अवश्य तैयार की जाती है।

ताँबा हमारे देश में सिंहभूमि, छोटा नागपुर, अजमेर, अलवर, सिकिम आदि स्थानों में बहुतायत से पाया जाता है। पर आजकल सिंहभूमि को छोड़कर और कहीं इसका सफल व्यवसाय नहीं हो रहा है। अजमेर, जयपुर और राजपूताने के अन्य स्थानों में ताँबे और काँसे के बहुत-से अच्छे धंधे थे; पर विदेश से आनेवाले ताँबे की ये सस्तेपन में समता न कर सके। प्रभाव यह हुआ कि ताँबे का धंधा भी भारतवर्ष से उठा जा रहा है। विचार तो कीजिए कि

ताँबा-जैसी वस्तु भी प्रतिवर्ष तीन करोड़ रुपए के लगभग मूल्य की विदेश से हमारे यहाँ आ रही है।

लोहा इस देश में बहुत मिलता है। मोरभंज, मध्यप्रदेश के रायपुर, बर्दवान, सिंहभूमि आदि में इसकी अच्छी खानें हैं। लोहे के खनिजों से पहले पिग (Pig)—लोहा तैयार किया जाता है, और फिर उससे इस्पात आदि तैयार करते हैं। सन् १९२५ में, भारतवर्ष में, लोहे के खनिज इस प्रकार पाए गए—

मोरभंज	९,५७,२७५ टन	मूल्य	२८,७१,८२५ रु०
संबलपुर	७०३ ,,	,,	४,९२० ,,
सिंहभूमि	४,७७,५८० ,,	,,	१२,३६,८४० ,,
मध्यप्रदेश	१,०३७ ,,	,,	४,१८२ ,,
मैसूर	५६,२१८ ,,	,,	१,५४,००० ,,
समस्त भारत से	१५,४४,५७८ ,,		४,४७,९१०१ ,,

इस खनिज से पहले पिग-लोहा तैयार किया जाता है। पर लोहे का असली मूल्य इस्पात बनाने में है। ताता-कंपनी, (जमशेदपुर) इसके लिये एक बहुत बड़ा कारखाना है, जिसमें सन् १९२५-२६ में ८, ७२, ५४७ टन इस्पात तैयार किया गया। शेष पिग-लोहा इस्पात बनने के लिये निम्न-देशों में भेज दिया गया—

इस प्रकार हमारे देश में कारखानों के अभाव के कारण इतनी संपत्ति का नाश हो रहा है। विदेश से प्रतिवर्ष कुल ३५ करोड़ रुपए के लगभग का लोहा इस देश में आ रहा है। यह संख्या कुछ कम हृदय-विदारक नहीं है।

अल्यूमिनियम धातु (स्फटम्) की दशा इस देश में और भी अधिक शोचनीय है। इस धातु का मुख्य खनिज बौक्साइट कहलाता है। यह खनिज जितना भारतवर्ष में पाया जाता है, उतना और देशों में नहीं। पर खेद की बात केवल इतनी ही है कि इस खनिज से धातु तैयार करने की कोई आयोजना हमारे देश में नहीं है। अतः अल्यूमिनियम के लिये समस्त खनिज विदेशों में भेज दिया जाता है। इस धातु के बनाने के लिये बिजली की भट्ठियों की आवश्यकता पड़ती है; पर इस देश में बिजली का प्रचार बहुत कम होने के कारण बिजली तेज़ पड़ती है। यदि हमारे धनी लोग इस व्यवसाय की ओर ध्यान दें, तो हमें इतनी हानि न उठानी पड़े। विदेश से आने पर भी यह धातु कितनी सस्ती और उपयोगी है। कहीं यदि हमारे ही देश में यह तैयार होने लगे, तो फिर इसका क्या कहना।

	टन	रुपया
यूनाइटेड किंगडम	२०,१७८	९,३३,९१६
जर्मनी	११,२८८	५,२४,५०९
जापान	१,६८,१८८	७६,५७,०२५
यूनाइटेड स्टेट अमेरिका	१,५६,०६४	७२,१८,०३६
सब देशों को मिलाकर	३,८१,९८९	१,७५,५०,२०४

[illegible]-जैसी वस्तु भी प्रतिवर्ष तीन करोड़ रुपए के लगभग मूल्य की विदेश से हमारे यहाँ आ रही है।

लोहा इस देश में बहुत मिलता है। ओरभंज, मध्यप्रदेश के रायपुर, बर्दवान, सिंहभूमि आदि में इसकी अच्छी खानें हैं। लोहे के [illegible] से पहले पिग (Pig)—लोहा तैयार किया जाता है, और फिर उससे इस्पात आदि तैयार करते हैं। सन् १९२५ में, भारतवर्ष में, लोहे के खनिज इस प्रकार पाए गए—

ओरभंज	[illegible]	टन	मूल्य	२८,७१,८२५ रु०
रायपुर	७०३	”	”	४,९२० ”
सिंहभूमि	४,७७,५८०	”	”	१२,३६,८४० ”
मध्यप्रदेश	१,०२७	”	”	[illegible] ”
मैसूर	५६,२१८	”	”	१,५,४,००० ”
[illegible]भारत से	१५,४४,[illegible]	”		४,४७,९१०१ ”

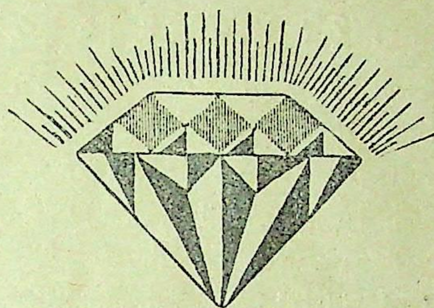
इस खनिज से पहले पिग-लोहा तैयार किया जाता है [illegible] लोहे [illegible] असली मूल्य इस्पात बनाने में है। ताता-कंपनी, (जमशेदपुर) इसके लिये [illegible] बहुत बड़ा कारखाना है, जिसमें सन् [illegible] टन इस्पात तैयार किये गये [illegible] पिग-लोहा इस्पात बनने के लिये [illegible] भेज दिया गया—

इस प्रकार हमारे देश में कारखानों के [illegible] के कारण हमारी संपत्ति का नाश हो रहा [illegible] विदेश से प्रतिवर्ष कुल ३५ करोड़ रुपए के [illegible] का लोहा इस देश में आ रहा है। यह [illegible] कुछ कम हृदय-विदारक नहीं है।

अल्यूमिनियम धातु (स्फटम्) की दशा [illegible] देश में और भी अधिक शोचनीय है। इस [illegible] का मुख्य खनिज बौक्साइट कहलाता है [illegible] खनिज जितना भारतवर्ष में पाया [illegible] उतना और देशों में नहीं। पर खेद की बात इतनी ही है कि इस खनिज से धातु [illegible] करने की कोई आयोजना हमारे देश में [illegible] अतः अल्यूमिनियम के लिये समस्त [illegible] विदेशों में भेज दिया जाता है। इस धातु [illegible] के लिये बिजली की भट्ठियों की आवश्यकता है; पर इस देश में बिजली का प्रचार [illegible] होने के कारण बिजली तेज़ पड़ती है [illegible] हमारे धनी लोग इस व्यवसाय की [illegible] दें, तो हमें इतनी हानि न उठानी पड़े। [illegible] आने पर भी यह धातु कितनी सस्ती [illegible] जाती है। कहीं यदि हमारे ही देश में [illegible] होने लगे, तो फिर इसका क्या कहना [illegible]

	टन	रुपया
[illegible]	[illegible]	९,३३,९१६
[illegible]	[illegible]	५,२४,५०९
[illegible]	[illegible]	[illegible],२७,०२५
[illegible]	[illegible]	[illegible]

अल्ट्रा डायमंड हीरा



अमेरिका की नई शोध

सच्चे हीरे का स्थान लेनेवाला और कई बातों में असल हीरे को भी मात करनेवाला ; जैसे चमक, तड़क-भड़क, अग्नि-परीक्षा, तिजाबी परीक्षा आदि । यदि विश्वास न हो, तो असल हीरे की तरह इससे भी काँच को काटकर संतोष कर लें ।

क़ीमत १० रुपए केरेट

प्रमाण-पत्र

पी० बागचंद जौहरी, हीरे के व्यापारी जयपुर से अपने ता० १०—१—३० के पत्र में लिखते हैं—

मैंने आपका हीरे का पार्सल पाया । जो कि असली हीरे की तरह है । कृपया १५ केरेट (६० ग्रेन) और भेज दीजिए ।

२१, पेरिय नेय्यकारन स्ट्रीट
जी० टी० मद्रास. } **के० चंपा ऐंड को, (जूवेलर)**

सूचना—एजेंसी के लिये पत्र-व्यवहार करें ।

अमृतधारा-२६वाँ वार्षिकोत्सव

१६२६ में अमृतधारा की रजत-जयंती के पश्चात् उसी की यादगार में अमृतधारा का वार्षिकोत्सव हर साल मनाया जाता है। अब २६वाँ वार्षिकोत्सव—

७ मार्च से १२ मार्च १६३० ई० तक

अमृतधारा-भवन में मनाया जावेगा। इसमें स्वास्थ्य पर व्याख्यान होंगे, बेबीशो होगा। इसके अतिरिक्त अमृतधारा टूर्नामेंट पिछले वर्षों की भाँति होगी जिसमें स्वास्थ्य तथा शारीरिक बल के मुक़ाबले होंगे। जैसे—रस्सा खींचना, सुडौल शरीर, उत्तम स्वास्थ्य, बीणी, गतका, बोझ उठाना, मुंगली, तैरना, मुक्का मारना इत्यादि। पूरा प्रोग्राम मँगवाने पर भेजा जाता है। इनके साथ-साथ अति लाभदायक नवीन बात यह की गई है कि देश के सुप्रसिद्ध हकीम तथा वैद्य पधारेंगे, जो कि लाभदायक वक्तृताएँ देंगे। उनका ख़र्च अमृतधारा-कार्यालय देगा। इसकी सूचना दूसरे नोटिस द्वारा दी जायगी। इस अवसर पर एक दिन के वास्ते जनता को रियायत का अवसर भी दिया जावेगा अर्थात्—

१२ मार्च १६३० ई० को

अमृतधारा (और उसके मिश्रण) $\frac{3}{4}$ मूल्य पर मिलेंगे और बाक़ी औषधियाँ व पुस्तकें आधे मूल्य पर मिलेंगी।

एजेंटों को भी इससे अधिक रियायत नहीं है, क्योंकि यह रियायत केवल सर्वसाधारण के वास्ते एक दिन के लिये ही है। यह रियायत केवल १२ मार्च के दिन के वास्ते है।

प्रत्येक पत्र के ऊपर "१२ मार्च की रियायत" लिखना चाहिए, और उसको १२ तारीख़ को ही डाक में डालना चाहिए। पत्र हमारे पास चाहे किसी दिन पहुँचे, किंतु डाकख़ाने की मुहर १२ मार्च की होनी चाहिए।

लाहौर निवासी अपने पत्र डाक में भी डाल सकते हैं। यदि ऐसा न करें तो एक पत्र पर अपना आडर लिखकर उस बक्स में डाल दें जो कि उनके वास्ते अमृतधारा-भवन में दफ़्तर के बाहर उस दिन रक्खा जायगा। दवाई इसके बाद जब चाहें (एक मास के भीतर) आकर ले जायँ।

उस दिन कार्यालय को भी छुट्टी होगी और एक दिन में सबको दे देना भी असंभव है। पिछले सालों में लोकल बक्स में ही एक हज़ार से अधिक आडर डाले जाते रहे हैं।

पाठक १२ मार्च, बुधवार का दिन अभी से नोट कर लें।

सूचीपत्र यदि पहले से मौजूद हो तो अच्छा है, नहीं तो अभी मँगवा लें और सोच रक्खें कि आपको क्या मँगवाना है। जो महाशय चाहें रुपया भी जमा करा सकते हैं। जब तक वह रुपया समाप्त न होगा रियायत मिलती रहेगी। सूचीपत्र जो आपके पास है या आप मँगवाएँ सबमें पूरा मूल्य अंकित है। अमृतधारा तथा अमृतधारा के मिश्रण और स्वर्ण-भस्म अंकित मूल्य से $\frac{3}{4}$ मूल्य पर और अन्य औषधियाँ तथा पुस्तकें आधे मूल्य में मिलेंगी। बाज़ारी द्रव्य जैसे कस्तूरी इत्यादि पर कोई रियायत नहीं होगी। औषधियों और पुस्तकों की सूची यदि आपके पास नहीं है तो शीघ्र पत्र लिखिए।

पत्र व तार का पता—अमृतधारा १३ लाहौर।

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा, अमृतधारा-भवन, अमृतधारा रोड, अमृतधारा डाकख़ाना, लाहौर।

संतान-निरोधक—Birth—Checker

आजकल इस बात की महत्ता पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है कि संतान पैदा करने से पहले प्रत्येक पुरुष स्त्री को ख़ूब सोच विचार लेना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि संतान पैदा करने की प्रत्येक पुरुष और स्त्री की इच्छा होती है और संतान के विना वैवाहिक जीवन बिल्कुल असफल समझा जाता है, किंतु संतान की बेहद वृद्धि भी बड़ी दुःखदायक होती है। उससे स्त्री के स्वास्थ्य, पुरुष के सुख और परिवार के धन का नाश हो जाता है। इसलिये संतान विना ज़रूरत पैदा करना आजकल एक पाप समझा जाता है। संतान-निरोधक की सहायता से पारिवारिक जीवन सुखमय हो जाता है। इसके द्वारा कोई भी स्त्री अपनी बढ़ती हुई संतान की वृद्धि रोक सकती है और पैदा हुए बच्चों की मौत भी कम कर सकती है। इसके सेवन से हर बच्चों के जन्म में ५ या ६ वर्ष का अंतर हो जाता है। इसके सेवन के बाद आप निर्भय होकर जीवन का मज़ा लूट सकते हैं। बच्चे-कच्चे का फिर कोई भय नहीं रहेगा। उस पर तुर्रा यह कि आपका स्वास्थ्य ज़रा भी ख़राब न होगा।

एक शीशी का मूल्य २)

संतान-क़ाबू में—Birth—Controler

अब तक लोग समझते थे कि संतान की उत्पत्ति अल्लाह मियाँ के क़ाबू में है। लेकिन विज्ञान ने अब मा-बाप के हाथ में मनचाही संतान पैदा करने की ताक़त दे दी है। हमारे 'बर्थ कंट्रोलर' की इसके लिये एक बार परीक्षा कीजिये। इस की सहायता से आप जब चाहें तब संतान पैदा कर सकते और जब चाहें तब बंद कर सकते हैं। मासिक धर्म के समय इस दवा का सेवन किया जाता है। प्रत्येक ऋतु-समय में सेवन करने से संतानोत्पत्ति का भय जाता रहता है, किंतु ज्यों ही इसे छोड़ दिया जाता है त्यों ही संतानोत्पत्ति की संभावना हो जाती है। इस प्रकार जब चाहे तब संतान उत्पन्न की जा सकती है। इसके सेवन से किसी प्रकार की स्वास्थ्य-हानि होने की संभावना नहीं है। इसके साथ ही आपके पारिवारिक संबंध में भी इसके कारण कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

६ महीने के लिये रु० १। १२ आना। १ वर्ष के लिये रु० २। ८ आना।

भार्या-मित्र—घुलनेवाली बत्ती—Wife's Friend.

यह दवा स्त्रियों के लिये है। सहवास से पहले इसे स्त्री प्रयोग में लाती है। यह अंदर जाकर घुल जाती और गर्भाशय का मार्ग रोक देती है। यह सब थोड़े से ही समय में हो जाता है। इसके बाद पुरुष के सहवास करने पर भी गर्भ नहीं रहता। पश्चिम की स्त्रियाँ इसे ख़ूब इस्तेमाल करती हैं। मेमों को यह अत्यंत प्रिय है। इसीलिये इसे स्त्रियों का मित्र कहते हैं।

लंदन की बनी हुई—दाम २)

शक्तिप्रद-बाम—Virile Balm

यह क्षणिक उत्तेजना देनेवाली चीज़ नहीं है। इसका असर बहुत दिनों तक रहता है। धातुक्षीणता के लिये तो यह रामबाण है। इस से नसों में शक्ति आती है और रग और पट्ठे मज़बूत होते हैं। इंद्रियाँ भी ख़ूब लंबी-चौड़ी हो जाती हैं और सदा इसी प्रकार की रहती हैं। विलक्षण गुण और अद्भुत चमत्कार से पूर्ण।

१ शीशी का दाम ३)

कुच-कुंकुम—Breast Balm

स्त्रियों का सच्चा सौंदर्य रंग, आयु और आकृति में नहीं है। उनका असली सौंदर्य है दूसरी ही जगह। उन्नत और कठोर कुच ही उनकी सुंदरता के ख़ज़ाने हैं। ढलती हुई उम्र और साधारण रंग में भी छाती का उभार चार चाँद लगा देता है। इसलिये ढलती हुई छातियों को रोकना स्त्रियों के लिये परमावश्यक होता है। हमारे ब्रेस्टबाम की मालिश से गिरी हुई और ढीली छातियाँ फिर कठोर हो जाती हैं। यह दवा लगाते ही सूख जाती है। इसलिये इससे कपड़े ख़राब नहीं होते और न बच्चे का दूध पीना रुकता है। दो या तीन ऋतु-समयों में इस्तेमाल करने से सदा के लिये छुट्टी।

१ शीशी—रु० २। ८ आ०

संकोचनी-ग्रिपर—Gripper

योनि का अत्यधिक ढीलापन एक प्रकार की बुरी बीमारी है। आयुर्वेद में इसका बढ़िया इलाज लिखा है। फिर भी लोग शर्म के मारे इसकी दवा नहीं करते। किंतु यह बड़ी भारी ग़लती है। कैसी भी बीमारी हो उसका इलाज ज़रूर करना चाहिए। ग्रिपर के इस्तेमाल से योनि-मार्ग कुमारी कन्या के समान संकुचित हो जाता है। इससे वैवाहिक आनंद की वृद्धि होती है और संतान उत्पत्ति में भी सहायता मिलती है दो-तीन बार लगाने से ही फ़ायदा होगा, फिर दवा की ज़रूरत ही न होगी।

१ शीशी का दाम २)

पैकिंग और पोस्टेज अलग

पता—दि बेंगाल आयुर्वेदिक होम १९०, मानिकतला, कलकत्ता

RIGVEDA.

1. English translation of the Rigveda Samhita by Dr. H. H. Wilson with copions notes introduction, index etc. Library edition, complete in six vols. recently reprinted, bound in cloth, fine printing. Price Rs. 30 + postage. Offered at the concession price of Rs. 25 post free, if paid in one sum by Money Order, or at the concession price of Rs. 26—8 post free if the price is paid by instalments—Rs. seven in advance by Money Order and Rs. 3—4 with every Vol. by V. P. P. every month.

2. English translation of the Rigveda Samhita by Dr. H. H. Wilson, cheap edition, complete in two vols. Cloth-binding, fine printing. The cheap edition contains only the translation, does not contain notes, introduction etc. Price Rs. 15, concession price for the present, Rs. Ten post free. No instalments.

3. English translation of the first Ashtoka of the Rigveda by Dr. H. H. Wilson—1300 stanzas—will be sent free of cost on receipt of Twelve Annas for postage and minor expenses. Send either a Money Order or postage stamps. No. V. P. P. Every applicant must write a letter for himself stating his age and profession.

ASHTEKAR & CO.,

POONA CITY.

GRATIS GRATIS

A book which will be your life-long friend. It contains about 400 utterances of ancient Hindu Sages in Sanskrit rendered into English. The price of the book is Rs. 2—8, but for a short time we shall send this book free of cost to those who send us seven annas for postage, etc. The applicant must declare that he understands the English language well and that he likes to read books of high thoughts. He should state his age and profession also.

H. R. BHAGAVAT, B. A.
Secy., Ashtakar & Co.,
Poona City.

1023

GRATIS GRATIS

Thirteen Upanishads with Marathi translation—Kaivalya, Kanshitaki, Jobala, Maitrayani, Shvetashvatara, Atma, Amritabindu, Agunivi, Gorbha, [illegible]

The applicant must declare that he can read and understand the Marathi language at least tolerably.—Ashtekar and Co., Poona City. 10233

VEDANTA BOOKS AT CHEAP PRICES.

1. *Katha upanishad* कठोपनिषत् Sanskrit text, word for word Meaning, English translation, Shankara Bhashyaw in Sanskrit, English translation of the Bhashyaw and notes. Regular Price Rs. 2—8 + postage.

2. **Patanjala Yoga Darshana** पातंजल-योग-दर्शन Sanskrit text with English translation and notes. Rs 2—8 + postage.

3. **Vedanta-Stotra-Sangraha** वेदान्त-स्तोत्र-संग्रह—mainly of Shankaracharya with English trans. Rs. 2—8 + postage.

4. **Viveka-chudamani** विवेकचूडामणि of Shankaracharya with English trans. and notes, Rs. 2—8 + postage.

For a short time, we are offering these four books cheap on condition that money is sent either by Money Order or in postage stamps.—All four books for Rs. 3—8 post free; any three for Rs. 2—8 post free; any two for Rs. 1—8 post free; and any one for Rupee One post free.

NOTE.—Those who want the books by V. P. P. must be ready to pay Rs. 2—8 + postage for each book. A Reply Post Card or a stamped addressed envelope ensures a reply.

H. R. BHAGAVAT B. A.
SECY. ASHTEKAR & CO., POONA CITY.

SANSKRIT BOOKS.

Bhagavad-Geeta भगवद्गीता with the Bhashyaw of Shree Shankaracharya in original Sanskrit, Rs. 2—7 by V. P. P. Rs. Two, post free if Money Order is sent.

प्रकरणग्रंथाः। Minor Works. Contains 30 minor works and Stotras, *e. g*, अपरोक्षानुभूतिः, आत्मबोधः, वाक्यवृत्तिः, स्वात्मनिरूपणम्. अद्वैतानुभूतिः. योगतारावली, शतश्लोकी, सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रहः, विवेकचूडामणिः, उपदेशसाहस्री, विष्णुसहस्रनामभाष्यम्. सनत्सुजातीयभाष्यम्, आत्मानात्मविचारः, वेदान्तस्तोत्राणि, भक्तिस्तोत्राणि, etc Rs. 4—8 by V. P. P.

Rs. 4 post free if Money Order is sent.

शोरे के व्यवसाय की अवस्था हमारे देश में प्रतिवर्ष शोचनीय होती जा रही है। यही नहीं, इसकी दशा बिलकुल उलटी हो गई है। पहले बिहार-प्रांत से शोरा अमेरिका और योरप को बहुत भेजा जाता था। पर अब विदेशों में यह कृत्रिम रासायनिक विधियों से भी तैयार किया जाने लगा है। आज देश की अवस्था यह हो गई है कि दक्षिणी अमेरिका के चिली-प्रांत का शोरा हमारे देश में विदेशी कंपनियों द्वारा बहुत भेजा जा रहा है। खेद इस बात का है कि हमारे कृषि-विद्या-विशारद चिली के शोरे की खाद का उपयोग करने के लिये किसानों को परेशान कर रहे हैं। भारत के शोरे और चिली के शोरे में थोड़ा-सा भेद है। भारत के शोरे का रासायनिक नाम पांशुजनोषेत है, जिसमें ३९ प्रतिशत नोषजन (नाइट्रोजन) होता है। चिली के शोरे का रासायनिक नाम सैंधकनोषेत है, जिसमें २७ प्रतिशत नोषजन होता है।

खाद की उपयोगिता नोषजन की मात्रा पर निर्भर है। इस प्रकार यह स्पष्ट ही है, कि चिली के शोरे से भारत का शोरा अधिक अच्छी खाद बना सकता है। चिली का शोरा कदाचित् कुछ सस्ता आता हो। उसका कारण यह है कि चिली-प्रदेश में ७७,००० वर्गमील के बीच में यह शोरा विद्यमान है, जिसकी मात्रा अनुमानतः २४,००,००,००० टन है। पर जिस हिसाब से यह शोरा खर्च हो रहा है, उससे यह केवल १०० वर्ष या अधिक-से-अधिक ३०० वर्ष तक काम में आ सकता है। भारतवर्ष में आजकल सत्रह हज़ार टन के लगभग शोरा प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है। पहले केवल बिहार-प्रांत में ही बीस हज़ार टन तैयार किया जाता था। प्रतिवर्ष यह व्यवसाय कम ही होता जा रहा है। हमने कृत्रिम विधियों से शोरा तैयार करना सीखा ही नहीं। अतः भविष्य में हमें इसके लिये दूसरों का ही मुँह तकना होगा। यह परतंत्रता राज्य की परतंत्रता से भी अधिक भयंकर होगी। जर्मन आदि देशों में वायु के नोषजन से शोरे के समान अनेक उपयोगी खादें बनाई जा रही हैं, अतः वे लोग अब प्राकृतिक शोरे के दासत्व से मुक्त हो गए हैं।

भारत की एक प्रसिद्ध वस्तु फिटकरी थी इसका उपयोग रंग और चमड़े के व्यवसाय में किया जाता है। कच्छ, राजपूताना और पंजाब के कुछ स्थानों में इसके अच्छे धंधे थे ; पर इसका व्यवसाय भी अब बंद हो रहा है। काला बाग़ और कच्छ में ही कुछ रह गया है।

सुहागा भारत की मुख्य वस्तु नहीं है ; क्योंकि यह लदख़ (पूगा घाटी) और तिब्बत के सोतों और खारी झीलों में पाया जाता है। पर जब से अमेरिका में खटिकटंकेत की प्रचुर राशि का पता चला है, तब से यहाँ का व्यवसाय बहुत ही कम हो गया है। पहले १६,००० हंडरवेट सुहागा उक्त स्थानों में तैयार किया जाता था; पर अब केवल ४,५०० हंडरवेट प्रतिवर्ष ही का [illegible] रह गया है। कहने का तात्पर्य यह कि

विदेशों का उत्कर्ष हमारे यहाँ के धंधों को बड़े वेग से खाए जा रहा है।

नील की कहानी बहुत रोई जा चुकी है। रसायन-शास्त्र का उपयोग करके जर्मनी ने कृत्रिम नील का संश्लेषण किया। उसमें उसे इतनी सफलता हुई कि भारतवर्ष के नील के कारखाने धड़ाधड़ बंद होने लगे। कारखानों को बंद करने के पूर्व यदि हमारे देश में भी कृत्रिम नील के कारखाने खोल दिए जाते, तो हमें कोई आपत्ति न होती। हुआ यह कि जो कुछ हमारे पास था, उससे भी हम हाथ धो बैठे। सन् १८८२ में बायर और ड्रूसन ने तथा सन् १८९० में ह्यूमन ने नील की विधि पेटेंट कराई। तब से अब तक नील के व्यवसाय की जो दुर्दशा हुई, वह सर्व-विदित है। सन् १८९३ में, भारत में, १५,००,००० एकड़ भूमि में नील की खेती की जाती थी। सन् १९१४ में यह केवल १,५०,००० ही अर्थात् पहले का दसवाँ भाग ही रह गई। महायुद्ध के दिनों में जर्मन-प्रदेश से भारत में नील आना बंद हो गया था, अतः नील की खेती फिर कुछ बढ़ी, और सन १९१७ में ७,५०,००० एकड़ तक हो गई। पर युद्ध समाप्त होने के बाद ही फिर इसकी खेती कम हो गई। अब इसके व्यवसाय की उन्नति की कोई आशा नहीं है।

यही हाल मंजीठ के रंग का हुआ। सन् १८६८ में ग्रावे और लीवरमैन ने कृत्रिम मंजीठ का रंग तैयार किया। तब से प्राकृतिक मंजीठ भी लुप्त होने लगा, और अब प्राकृतिक रंग देखने को भी मिलना दुष्कर है। यही हाल कृत्रिम सुगंधों का भी हुआ। यद्यपि भारत में अब भी चमेली, गुलाब, केवड़ा, खस आदि के इत्र बहुतायत से तैयार किए जाते हैं, पर विदेशी कृत्रिम सुगंध भी बाजार में बहुत आने लगे हैं। कस्तूरी की कृत्रिम सुगंध भी बर्गमैन, बौर आदि वैज्ञानिकों ने बनाई है। और भी अनेक सुगंधित पदार्थ बनाए गए हैं; पर अभी प्राकृतिक और कृत्रिम, दोनो प्रकार की सुगंध व्यवहार में आ रही हैं, अतः भारतीय व्यवसाय पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा।

विज्ञान की उन्नति योरप और अमेरिका के देशों में हुई। भारतवर्ष ने वैज्ञानिक साधनों को बहुत ही कम अपनाया; पर वैज्ञानिक साधनों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का इसने खुले दिल से स्वागत किया। इसका परिणाम यही होना था कि उसने अपने प्राचीन धंधे तो छोड़ दिए, और विदेशों के अधीन हो गया। इस अवसर पर हमारा अनुरोध यह है कि या तो नवीन वैज्ञानिक साधनों का अपने देश में उपयोग करके बड़े-बड़े कारखाने खोले जायँ, अथवा जब तक ऐसा न हो सके, अपने प्राचीन धंधों को ही जाग्रत् किया जाय। आर्थिक परतंत्रता से बढ़कर पराधीनता और कोई नहीं है।

राज्य-क्रांति क्यों होती है ?

[श्रीयुत अर्जुनप्रसादसिंह विद्यालंकार, बी० ए०, बी० सी०]



जब कोई शासक शासित की इच्छा के विरुद्ध आचरण करता है, और चाहता है कि बल-पूर्वक अपनी हुकूमत का बोझ शासित पर लादे, तो उसका बिगड़ उठना स्वाभाविक हो जाता है, और इस प्रकार 'क्रांति' की भीषण अग्नि में बल-प्रयोग का घृत पड़ जाता है, और वह विकराल रूप धारण कर लेती है—छल, प्रपंच (fraud) भी क्रांति देवी के भारी सहायक हैं।

कभी-कभी नागरिकों को उसका शासक यह कहकर सांत्वना देता है कि वह शासन-प्रणाली में बहुत कुछ सुधार करेगा; पर जब वह देखता है कि 'क्रांति' का प्रबल प्रवाह कुछ ढीला पड़ गया, तो उलटे शासित की इच्छा के विरुद्ध उसे अपने क़ब्ज़े में लाने का प्रयत्न करता है। जनता से चिकनी-चुपड़ी बातें कहकर अपनी ओर मिला लेता है; पर जब जनता को इसकी सूचना मिलती है, तो वह बिगड़ उठती है।

जिस देश में अनेक धर्म के लोग होते हैं, वहाँ तो 'क्रांति' होने की और भी ज्यादह संभावना रहती है; कारण कि वहाँ के लोगों का भिन्न-भिन्न हित (interest) रहता है। इस वजह से छोटी-छोटी बातों के लिये उनमें बराबर मतभेद हो जाया करता है। इसके अलावा और भी 'क्रांति' होने के कितने ही कारण हैं, जो सार्वभौम हैं। नमूने के तौर पर मैं यहाँ कुछ का नाम उद्धृत किए देता हूँ।* १—समानाधिकार प्राप्त करने की ख़्वाहिश २—सम्मान-प्राप्ति की प्रबलेच्छा ३—भय ४—महत्त्वाकांक्षा ५—घृणा, अपमान (contempt) ६—चुनाव-षड्यंत्र ७—असावधानी एवं छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं देना। कभी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता है—फलतः शासन-प्रणाली में एकबारगी बड़ा भारी परिवर्तन हो जाता है।

सुक़रात (Socratis) ने राज्य के तीन साधारण प्रकार बताए हैं। १—प्रजातंत्र † २—कुलीनतंत्र ३—राजतंत्र। और, प्रत्येक में राज्य-क्रांति अवश्यंभावी है।

प्रजातंत्र में विशेषतः देखा जाता है कि जिसे बोलने की अच्छी क्षमता हुई, वह झट अपनी वाक्-पटुता से लोगों पर अपना प्रभाव जमा लेता है, और धनी लोगों के विरुद्ध झूठी अफ़वाहें उड़ाया करता है। भोली-भाली जनता समझती है कि ये हमारे हितेच्छु हैं, और उन पर झट विश्वास कर लेती है। वह damagogue (धूर्तफंदी नेता) अवसर पाकर राज्य के विरुद्ध भी 'क्रांति' ला देता है, और आप कोई बड़ा पद लेकर बैठ जाता

* लेख के विस्तार-भय से हरएक विषय पर टिप्पणी नहीं की गई है।

† वह शासन-प्रणाली जहाँ प्रजा ही सर्वेसर्वा हो। (The Govt. for the people byt he deodle)

है। राजनीति-विशारद अरस्तू (Aristotle) महोदय यूनान के नगर-राज्य (city state) के विषय में फ़रमाते हैं कि उस ज़माने में जब कि नगर राज्य-शासन का छोटा केंद्र था, तो ऐसी घटनाएँ बराबर घटा करती थीं।

स्वार्थीकुलीनतंत्र (Oligarchy) में ज़्यादह 'क्रांति' होने की संभावना रहती है। जब Oligarchs अपनी प्रजा पर बहुत अत्याचार करता है, और प्रजा को यह असह्य हो जाता है, तो Oligarchs की वही हालत होती है, जो एशिया के 'ज़ार' और फ़्रांस के १६वें लुई की हुई थी। Oligarchs के आपस की स्पर्द्धा के कारण भी 'क्रांति' उग्र रूप धारण करती है।

कुलीनतंत्र (Aristocracy) में शासन की बागडोर इने-गिने सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के हाथ में होती है। जब कभी कुछ व्यक्ति किसी कारण से शासन-कार्य में भाग लेने से वंचित किए जाते हैं, तो वे बिगड़ उठते हैं. और भारी 'क्रांति' ला देते हैं।

'क्रांति' को दबाने के कुछ उपाय

मेकिग्रवेली-जैसे विचार रखनेवाले कूट-नीतिज्ञों का कहना है कि शासक को चाहिए कि 'क्रांति' होने के क़ब्ल (Precautionary measures) (पहले ही से यत्न करना) ले, और जनता की जो कुछ माँग हो, उसे यथासाध्य पूरा करने की चेष्टा करे। ख़ास करके नागरिकों के बीच में विषम-वृद्धि (disporportionate increase) न होने दे। जन-प्रिय बनने के ख़याल से शासक को किसी नागरिक को बड़ा अधिकार न देना चाहिए, जिससे उसको अपनी ही शक्ति पर धक्का पहुँचे। शासक को बराबर मध्यम नीति (Moderate policy) से काम लेना चाहिए। इसके लिये दूसरा उचित उपाय यह भी हो सकता है कि विरुद्ध पक्ष को बराबर राज्य-प्रबंध में स्थान दिया जाय, चाहे वह व्यक्ति दरिद्र, धनी या कुछ भी क्यों न हो; पर यह ध्यान रखना होगा कि वह नेक-नियत है। दरिद्र एवं धनी, दोनो को मिलाकर एक सूत्र में बाँध देना चाहिए, जिससे एक मध्यम श्रेणी (middle class) के लोग तैयार हो जायँ, जिससे प्रारंभ ही में 'क्रांति' पर कुठाराघात कर दिया जा सके। नागरिकों का भी यह फ़र्ज़ होना चाहिए कि वे बराबर अपने में सद्भाव बनाए रक्खें।

प्रजातंत्र-राज्य में धनी लोगों की संपत्ति और उनकी आमदनी बराबर करके सब प्रजा में बाँट दी जानी चाहिए, जिससे नागरिकों में शक्ति-संतुलन सदा क़ायम रहे। इससे यह भी होगा कि पूँजीपति और मज़दूर में कोई भेद नहीं रह जायगा। पूँजीपति लोग देश का असंख्य धन शौक़ीनी के प्रवाह में बहाया करते हैं, और एक तरफ़ मज़दूर लोगों को सर्वदा फ़ाक़ेकशी की नौबत लगी रहती है। यह अन्याय किसी हद तक कम हो जायगा।

स्वार्थी कुलीनतंत्र (Oligarchy)

इस प्रकार की शासन-प्रणाली में ख़ास करके गरीबों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, और राज-कार्य में उसे हो स्थान देना चाहिए

उनमें बहुत ऐसे-ऐसे गुण होते हैं, जो धनिकों में कम पाए जाते हैं, जैसे शासन करने की क्षमता आदि ।

राजतंत्र (Monarchy)

इस प्रकार की शासन-प्रणाली में राजा प्रजा की उन्नति नहीं देखना चाहता (यहाँ मेरा अभिप्राय अनियंत्रित राजा से है) । वह बराबर देखता रहता है कि उसके विरुद्ध कोई षड्यंत्र तो नहीं हो रहा है ? या उसकी रिआया को कोई भड़का तो नहीं रहा है ? वह किसी प्रकार की साहित्यिक संस्था को क़ायम नहीं होने देता, और उसकी सफलता के मार्ग में रोड़े अटकाया करता है । उसके राज्य में कहाँ क्या हो रहा है, इसको जानने के लिये वह खुफ़िया पुलीस का विभाग रखता है । वह अपने राज्य को सुदृढ़ रखने के लिये भेदनीति (Divide and rule) से काम लेता है । वह प्रजा पर इतना कर का बोझ लाद देता है, जिसको वहन करने में उसकी प्रजा असमर्थ हो जाती है । इस रक्त-शोषण की नीति से प्रजा बिलकुल खोखली हो जाती है । वह अपने मित्रों पर भी विश्वास नहीं करता । संग्राम-प्रेमी होना तो इसका प्रधान धर्म ही है ।

कसौटी*

[बाबू रामचंद्र टंडन एम्० ए, एल्-एल्० बी०]



एक राजा था। संसार में उसका बड़ा मान था। उसकी मुसकान फूल के सुगंध की भाँति मीठी थी; परंतु आत्मा संकुचित थी। उसके दो बेटे थे। छोटा बेटा तो उसके मन का था। बड़े बेटे से वह भय खाता था। एक बार, दिन निकलने से पहले ही, राजा के दुर्ग में, नगाड़े की आवाज़ हुई। राजा अपने दोनो बेटों के साथ घोड़े पर सवार होकर निकला। उनके पीछे और भी सजे हुए जवान थे। दो घंटे तक सब-के-सब चलते रहे। इसके बाद वे एक भूरी पहाड़ी के तले पहुँचे। इस पहाड़ी की चढ़ाई बड़ी कठिन थी।

बड़े बेटे ने पूछा—"हम लोग कहाँ चल रहे हैं?"

राजा ने कहा—"इस भूरी पहाड़ी के उस पार।" यह कहकर राजा अपने मन में मुसकिराया।

छोटा बेटा बोला—"पिताजी जो करते हैं, ठीक करते हैं।"

दो घंटे तक सब लोग और चलते रहे। आगे एक काली नदी मिली। यह नदी बड़ी गहरी थी।

बड़े बेटे ने पूछा—"हम लोग कहाँ चल रहे हैं?"

राजा ने कहा—"इस काली नदी के उस पार।" यह कहकर राजा अपने मन में मुसकिराया।

छोटा बेटा बोला—"पिताजी जो करते हैं, ठीक करते हैं।"

इसके बाद सब लोग दिन-भर चलते रहे। जब सूर्य डूबने का समय आया, तब वे एक झील के किनारे पहुँचे। यहीं पर एक दूसरा बड़ा दुर्ग था।

राजा ने कहा—"हम लोग यहीं आए हैं। यह एक ऐसे राजा का घर है, जो एक महान् पंडित भी है। इस घर में तुम बहुत कुछ सीखोगे।"

पंडित राजा इन सबका स्वागत करने के लिये दुर्ग के द्वार पर आया। वह एक गंभीर-चित्त मनुष्य था। उसके पास ही उसकी बेटी खड़ी थी। वह प्रभात-काल की भाँति सुंदर थी। उसने मुसकिराकर आँखें नीची कर लीं।

पहले राजा ने कहा—"ये मेरे दोनो बेटे हैं।"

पंडित राजा ने कहा—"और यह मेरी बेटी है।"

पहले राजा ने कहा—"यह कुमारी परम सुंदरी है। इसकी मुसकान मुझे बड़ी भली मालूम होती है।"

दूसरे ने कहा—"ये बड़े हृष्ट-पुष्ट कुमार हैं। मैं इनकी गंभीरता पसंद करता हूँ।"

इसके बाद दोनो राजों ने एक दूसरे की ओर देखा, और कहा—"संभव है, संयोग मिल जाय।"

इधर दोनो लड़कों ने भी कुमारी की ओर देखा। एक तो उसे देखकर पीला पड़ गया; दूसरे के मुँह पर लाली झलक आई। कुमारी सिर नीचा करके मुसकिराने लगी।

बड़े ने कहा—"इस कुमारी के साथ मैं ब्याह करूँगा; क्योंकि यह मुझे ही देखकर मुसकिराई है।"

छोटे बेटे ने अपने पिता की आस्तीन पकड़कर कहा—"पिताजी, मैं आपके कान में एक बात कहना चाहता हूँ। अगर आपकी मुझ पर कृपा है, तो आप आज्ञा दें कि मैं इस कुमारी से ब्याह कर लूँ; क्योंकि मुझे ही देखकर यह मुसकिराई है।"

राजा ने छोटे बेटे से कहा—"तुम्हारे कान में एक बात कहता हूँ। देखो, जल्दी न करो। अभी अपनी ज़बान से कोई बात न निकालो।"

इसके बाद सब दुर्ग के भीतर गए। दावत की तैयारी की गई। यह मकान इतना बड़ा था कि कुमार लोग इसे देखकर आश्चर्य में थे। पंडित राजा मेज़ के एक किनारे चुप बैठा था। उसे मौन देखकर कुमारों के

* स्कॉटलैंड के प्रसिद्ध साहित्यिक स्व० रॉबर्ट लुई स्टिवेंसन की एक कहानी का अविकल अनुवाद। यह कहानी लेखक के जीवन-काल में न प्रकाशित हो सकी थी।—लेखक

मन में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। कुमारी आँखें नीची किए हुए और मुसकिराती हुई भोजन परस रही थी। कुमारों के हृदय आनंद से विह्वल थे।

सवेरा होने से पहले ही बड़ा बेटा सोकर उठा। उसने देखा, कुमारी कपड़ा बुन रही थी। कुमारी बड़ी कामकाजी लड़की थी। बड़े बेटे ने उसके पास जाकर कहा—"कुमारी, मैं तुमसे ब्याह करना चाहता हूँ।"

कुमारी ने कहा—"मेरे पिता से कहो।" मुसकिराकर उसने अपनी आँखें नीची कर लीं। उस समय वह गुलाब की तरह सुंदर थी।

बड़े बेटे ने सोचा—"इसका जी मुझसे लगा है।" वह झील के किनारे चला गया, और गीत गाने लगा।

कुछ देर बाद छोटा बेटा आया। बोला—"कुमारी, हम लोगों के पिता राज़ी हों, तो मैं तुमसे ब्याह करना चाहता हूँ।"

कुमारी ने कहा—"मेरे पिता से कहो।" उसने आँखें नीची कर लीं। वह मुसकिराई। इस समय भी उसकी सुंदरता गुलाब की भाँति थी।

छोटे बेटे ने सोचा—"यह बड़ी आज्ञाकारिणी पुत्री है। अवश्य यह आज्ञाकारिणी स्त्री भी बनेगी।" फिर उसने सोचा—"क्या करना चाहिए?" और यह विचार करके कि कुमारी का पिता पंडित है, वह मंदिर में गया। वहाँ उसने एक भेड़े और एक ख़रगोश का बलिदान चढ़ाया।

धीरे-धीरे बात फैलने लगी। एक दिन पंडित राजा अपने ऊँचे सिंहासन पर बैठा। उसने पहले राजा को और उसके दोनो बेटों को बुलवाया।

पंडित राजा ने कहा—"न मुझे वैभव की चाह है, और न बल की। हम लोगों का जीवन छाया-जीवन की भाँति है। मेरा हृदय वैभव और बल, दोनो ही देखकर खिन्न हो चुका है। हम लोग इस संसार में इस प्रकार रहते हैं, जैसे गीला वस्त्र हवा में सूखने के लिये डाल दिया गया हो। वायु के संपर्क से भी मेरा जी भर गया है। मैं केवल एक वस्तु का मूल्य लगाता हूँ, वह वस्तु है 'सत्य'। मैं अपनी बेटी उसी से ब्याह दूँगा, जो मुझे सत्य की कसौटी ला दे। उस पत्थर की ज्योति में वस्तुएँ अपना बाहरी आवरण छोड़ देती और सच्चा रूप धारण कर लेती हैं। उसके आगे सभी वस्तुएँ तुच्छ हैं। अतएव कुमारो, यदि मेरी बेटी से ब्याह करना चाहते हो, तो इसी समय चल खड़े हो। जो मुझे सत्य की कसौटी लाकर देगा, उसी से मेरी पुत्री का ब्याह होगा। वही मेरी पुत्री का मूल्य है।"

छोटे बेटे ने अपने पिता से कहा—"तनिक कान में सुन लीजिए। मेरे विचार में हम लोगों का इस पत्थर के फेर में न पड़ना ही अच्छा।"

पिता ने भी कहा—"कान में सुनो। मेरा भी यही ख़याल है। परंतु मुँह से कोई बात निकालना ठीक नहीं।" यह कहकर वह पंडित राजा की ओर देखने और मुसकिराने लगा।

परंतु बड़ा बेटा उठ खड़ा हुआ। उसने पंडित राजा को 'पिता' कहकर संबोधन किया। बोला—"मेरा इस कुमारी के साथ ब्याह हो चाहे न हो, मैं आपको इसी नाम से पुकारूँगा; क्योंकि आप विद्वान् हैं, और वयोवृद्ध भी। मैं अभी घोड़े पर सवार होकर इस कसौटी की खोज में संसार में भ्रमण करता हूँ।" यह कहकर वह बिदा हुआ, और कसौटी की खोज में निकल पड़ा।

छोटे बेटे ने कहा—"मैं समझता हूँ, मुझे भी जाना चाहिए। अगर आपकी आज्ञा हो, तो मैं भी जाऊँ। इस कुमारी ने मुझे मोहित कर लिया है।"

उसके पिता ने कहा—"तुम मेरे साथ घर चलो।"

अतएव वे दोनो घर लौट आए। जब अपने दुर्ग में पहुँच गए, तो राजा अपने बेटे को ख़ज़ाने में ले गया। कहने लगा—"यह लो, यही सत्य की कसौटी है। जो वस्तु प्रकट में जैसी है, वही उसका सत्य रूप है। तुम इसे देखो, इसमें तुम्हें अपना यथार्थ रूप दिखाई पड़ेगा।"

छोटे बेटे ने उसे देखा, तो उसमें उसे अपना मुँह दिखाई दिया। अपनी चिकनी ठुड्ढी को, अपनी युवावस्था को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसके हाथ में एक साधारण दर्पण था।

उसने सोचा—"यह कौन ऐसी वस्तु है, जिसके लिये इतनी आपत्ति सिर पर उठाई जाय। परंतु इसके द्वारा यदि मुझे कुमारी प्राप्त हो जाय, तो मैं संतुष्ट

हूँ। मेरा भाई कितना मूर्ख है कि इसके लिये दुनिया की ख़ाक छानने निकला है। चीज़ तो घर ही पर मौजूद है।"

वे लोग फिर लौटकर पंडित राजा के दुर्ग में आए। दर्पण पंडित राजा को दिखाया। बोले—"यही सत्य की कसौटी है।" पंडित राजा ने दर्पण देखा। अपने को एक राजा की भाँति पाया। उसका घर राजा के घर की भाँति दिखाई दिया। सभी वस्तुएँ जैसी-की-तैसी देखीं। वह ईश्वर को धन्यवाद देने लगा। उसने कहा—"अब मैं समझा। जो वस्तु प्रकट में जैसी है, वही उसका सत्य रूप है। मैं वास्तव में राजा हूँ! मेरा हृदय नहीं मान रहा था।" उसने अपने मंदिर को तुड़वा दिया। एक दूसरा महल बनवाया। छोटे बेटे के साथ कुमारी का ब्याह हो गया।

उधर बड़ा बेटा सत्य की कसौटी पाने के लिये दुनिया की ख़ाक छान रहा था। जब किसी नई बस्ती में पहुँचता, तो लोगों से उसका हाल पूछता। सभी यही कहते कि "इसका हाल हमने केवल सुना ही नहीं; वह वस्तु भी हमारे ही पास है। हमारे घर में अँगीठी के पास रक्खी है।" इस पर कुमार प्रसन्न होता। उसे देखना चाहता। कभी वह वस्तु दर्पण निकलती, जिसमें वस्तुएँ ज्यों-की-त्यों दिखाई देतीं। इस पर वह कहता—"यह वह वस्तु नहीं हो सकती। इसमें तो वस्तुओं की बाहरी दिखावट का प्रतिबिंब-मात्र है। इससे काम न चलेगा।" कभी कोई कोयले का ढेला दे देता। इस पर भी वह कहता—"यह वह वस्तु नहीं हो सकती, इसमें तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।" कभी-कभी उसे सचमुच कोई सुंदर, रंगीन और चमकदार पत्थर मिल जाता। जब उसे ऐसी वस्तु मिलती, तो उसे वह लोगों से माँग लेता। लोग उसे वह वस्तु दे देते; क्योंकि लोग यह वस्तु बड़ी प्रसन्नता से दे डालते थे। अंत में बड़े बेटे का थैला ऐसे पत्थरों से भर गया। जब वह घोड़े पर चलता, तो ये पत्थर एक दूसरे से टकराकर बजते। जब वह कहीं ठहरता, तो इनको थैले से निकाल लेता। एक-एक करके सबको देखने लगता—यहाँ तक कि उसका सिर चक्की के पहिए की तरह चक्कर खाने लगता।

कुमार ने कहा—"भला, इस काम का भी कोई ठिकाना है। अंत होने ही नहीं आता। यह लाल पत्थर है, तो यह नीला है, यह हरा है। सभी बहुत अच्छे जान पड़ते हैं। सभी एक दूसरे को मात कर रहे हैं। पत्थर पड़े ऐसे व्यापार पर! यदि उस पंडित राजा का ध्यान न होता, जिसे मैंने 'पिता' कहकर संबोधन किया है, और उस दुर्ग की सुंदरी कुमारी का, जिसका ध्यान आते ही मेरे मुँह से गीत निकल पड़ता है, और हृदय विशाल हो जाता है, तो मैं इन सबको खारी समुद्र में फेंक देता, और घर जाकर जैसे और राजा लोग राज्य करते हैं, वैसे मैं भी राज्य करता।"

राजकुमार की दशा उस शिकारी की-सी हो रही थी, जिसने पहाड़ पर हिरन देख लिया है। रात होती है, चूल्हा जलता है, घर में दीपक का प्रकाश होता है; परंतु उसके हृदय में हिरन की लालसा बनी रहती है।

इस प्रकार बहुत वर्ष बीत गए। राजकुमार खारी समुद्र के तट पर पहुँचा। रात हो गई थी। बड़ा भयावना स्थल था। समुद्र की लहरें बड़े शोर से किनारे की चट्टान पर टकरा रही थीं। उसे वहाँ पर एक घर दिखाई दिया। उस घर में मोमबत्ती जलाए हुए कोई आदमी बैठा जान पड़ा। वहाँ आग नहीं जल रही थी। बड़ा बेटा उसके पास पहुँचा। उस आदमी ने राजकुमार को जल पिलाया। उसके पास भोजन के लिये कुछ न था। बोलने पर वह मनुष्य सिर हिलाता, मुँह से शब्द न निकालता।

राजकुमार ने पूछा—"तुम्हारे पास सत्य की कसौटी है?" आदमी ने सिर हिलाया। राजकुमार बोल उठा—"यह तो मैं जानता ही था! भला, किसके पास नहीं है? देखो, मेरे पास कसौटियों से थैला भर रहा है।" राजकुमार थका हुआ था, परंतु इतना कहकर वह हँसने लगा।

इस पर वह आदमी भी हँसने लगा, और उसके मुँह की फूँक से मोमबत्ती बुझ गई।

आदमी ने कहा—"सो रहो। अब तुम बहुत दूर आ गए हो। तुम्हारी खोज समाप्त हुई, और मेरी मोमबत्ती भी बुझ गई।"

जब सवेरा हुआ, तो उस आदमी ने राजकुमार को

एक स्फटिक दिया । न इसमें विशेष सुंदरता थी, न कुछ ऐसा रंग ही । राजा के बेटे ने उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए सिर हिलाया । इसके बाद वह पत्थर को पास रखकर आगे बढ़ा । उसे यह पत्थर विशेष मूल्यवान् न जान पड़ा ।

दिन-भर वह चला किया । उसका मन आज शांत था । खोज की इच्छा तृप्त हो चुकी थी । उसने सोचा, "कहीं यही तुच्छ पत्थर सत्य की कसौटी न हो ?" वह घोड़े पर से उतर पड़ा । थैले से सब पत्थर सड़क के किनारे उँडेल दिए । उसने देखा, एक दूसरे के प्रकाश में सभी पत्थरों का रंग हत हो जाता था, और सभी की ज्योति प्रभात-काल के तारों की भाँति विलीन हो जाती थी । परंतु इस स्फटिक के प्रकाश में सभी पत्थर अपना वास्तविक रूप और रंग धारण किए रहे । हाँ, अन्य पत्थरों की अपेक्षा यह स्फटिक विशेष ज्योतिर्मय था ।

राजकुमार अपनी भौंहों को मलकर कहने लगा—"ऐसा तो न हो कि यही पूर्ण सत्य है, और शेष सभों में केवल सत्य के अंश हैं ?"

उसने स्फटिक उठा लिया । उसको आकाश की ओर उठाकर देखा । उसमें आकाश का रंग और भी गहरा दिखाई दिया, और आकाश एक गड्ढे की तरह जान पड़ा । फिर उसने घूमकर पहाड़ियों की ओर देखा । स्फटिक में पहाड़ियाँ ठंडी और बीहड़ दिखाई दीं ; परंतु उनमें एक जीवन की रेखा दिखाई पड़ी । इसके बाद उसने उस स्फटिक से धरती पर पड़ी हुई धूल को देखा । जो कुछ उसने देखा, उसे देखकर उसके हृदय में आश्चर्य भी हुआ और भय भी । अंत में उसने स्फटिक का प्रकाश अपने ऊपर डाला, और घुटनों के बल गिरकर प्रार्थना करने लगा ।

राजकुमार ने कहा—"ईश्वर को धन्यवाद है । मुझे अंत में सत्य की कसौटी मिल ही गई । अब घर लौट चलना चाहिए, और पंडित राजा से, और उस दुर्ग की कुमारी से—जिसके ध्यान से मेरे मुँह से गीत निकल पड़ता है, और हृदय विशाल हो जाता है—भेंट करनी चाहिए ।"

इस प्रकार बड़ा बेटा जब उस दुर्ग के समीप आया, तो देखता क्या है कि जहाँ फाटक पर उससे पहले दिन पंडित राजा से भेंट हुई थी, वहाँ पर कुछ बालक खेल रहे हैं । उसने सोचा, यहाँ पर तो मेरे बालकों को खेलना चाहिए था । उसका आनंद क्षण-भर के लिये जाता रहा । भीतर जब वह दरबार में गया, तो देखा, सिंहासन पर उसका छोटा भाई बैठा है । उसी के पास कुमारी बैठी है । उसने सोचा, यहाँ पर तो मुझे बैठना चाहिए था, और कुमारी को मेरे पास होना चाहिए था । यह सोचकर उसके हृदय में क्रोध उमड़ा ।

उसके छोटे भाई ने पूछा—"तुम कौन हो, और इस दुर्ग में क्यों आए हो ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ । मैं कुमारी से ब्याह करने आया हूँ ; क्योंकि सत्य की कसौटी लेकर आया हूँ ।"

छोटा भाई खिलखिलाकर हँस पड़ा । बोला—"मैंने तो कसौटी बहुत वर्ष हुए पा ली थी । मैंने कुमारी से ब्याह भी किया, और वह देखो, फाटक पर हमारे बच्चे भी खेल रहे हैं ।"

यह सुनकर बड़े भाई का रंग उषा की भाँति धूमिल हो गया । वह बोला—"तुमने न्याय को छोड़ा तो नहीं ? मैं देखता हूँ, मेरा जीवन व्यर्थ गया !"

छोटे भाई ने जवाब दिया—"न्याय ? तुम्हारे-जैसे अशांत और भटकनेवाले आदमी के मुँह से मेरे अथवा मेरे पिता के न्याय पर संदेह किया जाना अच्छा नहीं जान पड़ता । संसार जानता है, हम लोग न्याय-प्रिय हैं ।"

बड़े भाई ने कहा—"अच्छा, तुमने सब कुछ पा लिया सही । तनिक शांति से मेरी बात सुनो । संसार में अनेकों कसौटियाँ हैं । यह कहना सरल बात नहीं कि उनमें कौन-सी सच्ची है ।"

छोटा भाई बोला—"मैं अपनी कसौटी पर लज्जित नहीं हूँ । यह लो, इसमें अपने को देख लो ।"

बड़े भाई ने उस दर्पण को देखा । उसे देखकर वह बड़े आश्चर्य में हुआ । उसने देखा, मैं बुड्ढा हो गया हूँ । मेरे सिर के बाल सफ़ेद हो गए हैं । वह दरबार में बैठ गया, और फूट-फूटकर रोने लगा ।

छोटा भाई कहने लगा—"अब तुम्हीं देखो ! तुमने कितनी बड़ी मूर्खता की। तुम दुनिया-भर में मारे-मारे फिरे। जिस वस्तु के लिये तुमने ऐसा किया, वह हमारे पिता के पास मौजूद थी। अब अपने बाल पकाकर लौटे हो। तुम्हें देखकर कुत्ते भूँकते हैं। न तुम्हारे आगे कोई बाल-बच्चा है। मुझे देखो, मैं आज्ञाकारी पुत्र था। बुद्धिमान् था। यहाँ सिंहासन पर ताज लगाए बैठा हूँ। सुख है, समृद्धि है, परिवार है।"

बड़े भाई ने कहा—"हाँ, लेकिन तुम्हारी जीभ बड़ी पैनी है।" यह कहकर उसने अपना स्फटिक निकाला। उसमें अपने भाई को देखा। उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि उसका भाई झूठ बोल रहा है। उसने देखा, छोटे भाई की आत्मा संकुचित है। उसका हृदय एक छोटी-सी थैली की तरह जान पड़ा। उसमें अनेकों आशंकाएँ बिच्छुओं की भाँति भरी हुई थीं। उसके हृदय में प्रेम मृत हो चुका था। यह देखकर बड़े भाई के मुँह से एक चीख़ निकल पड़ी।

इसके बाद उसने स्फटिक का प्रकाश कुमारी पर डाला। उस प्रकाश में उसने स्पष्ट देखा कि कुमारी की आत्मा मर चुकी है। उसके ऊपर केवल ग़ौरव का आवरण पड़ा हुआ है। जिस प्रकार घड़ी टिक-टिक करती है, उसी प्रकार वह मुसकिराती है। वह अपने मुसकिराने का कारण आप ही नहीं जानती थी। यह देखकर राजकुमार ने एक दीर्घ उच्छ्वास ली।

उसने छोटे भाई से कहा—"अच्छा और बुरा—दोनो ही हुआ। अब मैं बिदा होता हूँ। तुम यहाँ दुर्ग में जैसे जी चाहे रहो। मैं अपनी झोली में यह स्फटिक रखकर फिर से संसार की यात्रा करता हूँ।"

कामनवेल्थ का भूत



स्वतंत्रता औपनिवेशिक स्वराज्य

कुसुम-कुंज

१. साहित्य में रस का त्याग तथा उत्पत्ति



हित्य में रस का उतना ही उपयोग है, जितना कि जीवन में आत्मा या शरीर का, कलियों में समुचित ठंडक या गर्मी का, चित्त में प्रकाश या छाया का, प्रेम में संयोग या वियोग का। किसी-न-किसी रस के मधुर तथा मनोहर संचार से ख़ाली कविता वैसी ही होती है, जैसी यौवन की कमनीयता से रहित कृशित-कलेवरा कामिनी, मधुकरों के कलित कलरव से वियुक्त तथा प्रशांत कली, पुष्पों के विकास, सौंदर्य तथा धवल हास्य से परित्यक्त वन-लता। इसके इस महान् उपयोग को समझते हुए ही रस-शास्त्र के प्रेमियों ने 'रस एवात्मा काव्यस्य' माना है, अर्थात् रस ही कविता का आत्मा है। अब प्रश्न यह उठता है कि कविता के जीवन का आधार-भूत रस कौन-सी वस्तु है ?

जिस तरह समुद्र में सर्वदा लहरें उठा करती तथा विलीन हो जाया करती हैं, परंतु उन लहरों के नीचे स्थिर जल-समूह कभी भी हटता हुआ नहीं नज़र आता, उसी प्रकार प्रत्येक रस के प्रादुर्भाव में कोई ऐसा स्थायी भाव हुआ करता है, जिसके आधार पर, रंग-मंच पर आनेवाले भिन्न-भिन्न पात्रों की तरह, बहुतेरे भाव उठते तथा विलीन हो जाते हैं। यही स्थायी भाव अन्य सहायकों से अभिव्यक्त होकर रस की संज्ञा प्राप्त करता है। यह स्थायी भाव प्रत्येक रस के लिये भिन्न-भिन्न तथा निर्दिष्ट हुआ करता है, जैसे शृंगार के लिये 'रति', वीर के लिये 'उत्साह', करुण का 'शोक' आदि। जैसे नृपति मनुष्यों में श्रेष्ठ कहलाता है, शिष्यों के पूजनीय होने के कारण मनुष्य गुरु कहलाता है, इसी प्रकार सभी भावों में महान् तथा चिरवर्ती होने के कारण यह 'स्थायी' कहा जाता है।

अब यहाँ विचारणीय विषय यह है कि रस कितने प्रकार के होते हैं, तथा रस के लिये किन-किन भावों की आवश्यकता होती है ? साधारणतः रस के नौ भेद होते हैं ; शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत तथा शांत। इस विषय में बहुत मत-भेद भी हैं। भवभूति—जिसका सर्वोत्तम 'उत्तरराम-चरित' साहित्य के रसिक सज्जनों से छिपा नहीं है—का

सिद्धांत है कि वास्तव में 'करुण' ही एक प्रधान रस है, तथा अन्य रस उसके 'विवर्त'। रसों की एकता को सिद्ध करनेवाला वचन यह है—

> एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
> भिन्नान् पृथगपृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
> आवर्त्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारा-
> नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥ १ ॥
>
> (उ० रा० अं०)

जिस प्रकार अधखिली कलियों में, विकसित पुष्पों में तथा मधु-पूर्ण पराग में, समुद्र के प्रशांत जल में, उत्ताल-तरंग-मालाओं में, भँवर में, कोई अंतर नहीं, केवल अवस्थाओं का चकराते हुए भेद-मात्र है, उसी प्रकार इन रसों में कोई भेद नहीं, वरन् करुण के ही ये सब अवस्थांतर में भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। इसी तरह के आभेद को 'विवर्त' कहते हैं। दर्शन-शास्त्र के जाननेवालों से यह बात छिपी नहीं रह सकती कि दर्शन के नभोमंडल में विवर्तवाद तथा परिणामवाद भिन्न-भिन्न उज्ज्वल नक्षत्र माने गए हैं। परंतु उक्त पद्य में भवभूति ने दोनो के साथ खिचड़ी पकाकर कदाचित् यह अभिव्यक्त करना चाहा है कि उनके समय में या तो ऐसे भेद का अभाव हो या उनके स्वतंत्र विचार में 'विवर्त' तथा 'परिणाम' एक ही वस्तु हो।

कुछ लोगों का विचार है कि शांत-रस कोई स्वतंत्र रस हो ही नहीं सकता।

> न यत्र दुःखं न सुखं न चिंता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा ;
> रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु समप्रमाणः।

इस प्रकार का प्रकाश, जिसमें सुख, दुःख, चिंता, द्वेष, राज, इच्छा आदि भावों की गति रुक जाय, मोक्ष की अवस्था में बिना पहुँचे हुए सांसारिक मनुष्यों के लिये संभव नहीं; क्योंकि ये भाव बड़े प्रबल होते हैं। संसार के संन्यासी, तपस्वी प्रभृति गृहस्थों की विषय-वासनामयी लीला-भूमि में रहकर इन भावों को क़ाबू में नहीं रख सकते। इसी कारण विषय-वासना की उद्यान-वाटिका से अपने को कोसों हटाकर गिरि-कंदराओं की शरण लेते हैं। इसके उत्तर में यह कहा तो अवश्य जा सकता है कि मनुष्य के जीवन में ऐसे अवसरों की कमी नहीं, जब वह किसी वस्तु की प्राप्ति के चिंतन में इतना तन्मय तथा संलग्न हो जाता है कि सांसारिक सुख, दुःख आदि भावों की धारा उसके मानस-स्रोत में उतनी देर के लिये सर्वथा बंद हो जाती है। परंतु ऐसी अवस्था में अन्य भावों का प्रकाश हृदय-कानन में चाहे छिप भी जाय, मगर सुख के संचार का बंद हो जाना सत्यता का गला घोटना है; क्योंकि अपनी अभिलषित वस्तु के पास क्रमशः पहुँचने में जो एक उत्कर्षात्मक सुख (Pleasure of progressive realisation) होता है, उस सुख का प्रभाव नहीं मिट सकता। और, ऐसे प्रशम की अवस्था की सत्यता के बारे में विचार उठाने पर कल्पना भी जवाब दे देती है।

रस की उत्पत्ति के लिये स्थायी भाव के अतिरिक्त अन्य भावों की एकांत आवश्यकता होती है, जो 'विभाव', 'अनुभाव' तथा 'संचारीभाव' के नाम से साहित्य में कहे जाते हैं। जिस प्रकार कोकिल की कूक के लिये वसंत के सुंदर दिवस की आवश्यकता है, तारों की अभिव्यक्ति के लिये यामिनी के प्रारंभ की ज़रूरत है, उसी प्रकार स्थायी भाव की अभिव्यक्ति के लिये इन भावों की सहायता अनिवार्य है। 'विभाव' उसको कहते हैं, जिसके द्वारा 'स्थायी भाव' के आस्वाद का सूक्ष्म रूप से आविर्भाव हो सके। इस प्रकार आविर्भूत स्थायी भाव का, जिसके द्वारा, रस की तरह, अनुभव हो, उसे 'अनुभाव' कहा जाता है। पुनः इस अनुभूत रस का जिन सहकारी कारणों से सम्यक् संचार हो जाय, उसे 'संचारी भाव' बतलाया गया है। इससे यह बात स्पष्ट है कि 'विभाव' अभिव्यक्ति के कारण होते हैं, 'अनुभाव' कार्य होते हैं, तथा संचारीभाव सहकारी कारण। परंतु व्यवहार-क्षेत्र में इन तीनो को भी अविशेष रूप से कारण ही माना जाता है। जिस प्रकार मिर्च आदि के साथ मादक द्रव्यों के व्यवहार में एक विलक्षण आस्वाद होता है, उसी प्रकार विभाव आदि का स्थायी भाव के साथ सम्मिश्रण होने से एक विलक्षण आह्लाद उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी एक या दो ही के रहने पर रस की उत्पत्ति पाई जाती है; परंतु ऐसी जगहों में भी बाक़ी का प्रकरण आदि के बल से समाक्षेप हुए बिना नहीं रहता।

एक प्रश्न और भी उठता है। वह यह कि 'करुण' आदि रसों के दुःखमय होने के कारण उनके विभाव आदि के सम्मिश्रण से क्या आह्लाद हो सकता है? प्रथमतः इस विषय में सहृदयों का अनुभव ही प्रमाण है। दूसरी बात यह कि संसार में कोई भी मनुष्य अभिनिवेश के साथ दुःख के लिये प्रवृत्त नहीं होता; परंतु करुण आदि रसों में अभिनिवेश के साथ प्रवृत्ति देखी जाने के कारण इनकी सुखमयता साफ़-साफ़ झलकती है। इसका रहस्य यह है कि संसार में वन-वास आदि जो दुःख के कारण होते हैं, वे भी काव्य, नाटक के क्षेत्र में आकर दुःख का कारण नहीं रह जाते, बल्कि आह्लाद के ही कारण में परिणत हो जाते हैं। इसलिये यह व्यवस्था कि लौकिक शोक, हर्ष आदि के कारणों से लौकिक शोक, हर्ष आदि उत्पन्न होते हैं, केवल लोक में ही रह जाती है; काव्य में सभी विभावों से केवल हर्ष-ही-हर्ष होता है।

साधारणतः साहित्य में रस की उत्पत्ति की सामग्री तथा स्थान यही है। उपर्युक्त बातों का समन्वय शृंगार-रस में उदाहरणार्थ इस प्रकार हो सकता है। इस रस का स्थायी भाव रति है। इस सोई हुई रति-वासना को जगानेवाले दो प्रकार के विभाव होते हैं—एक आलंबन (नायिका) और दूसरा उद्दीपन अर्थात् चारो ओर के बिखरे हुए नैसर्गिक सौंदर्य, जिनके अवलोकन से कल्पना जाग्रत् एवं उत्तेजित हो जाती है। चुंबन तथा कांता-कटाक्ष आदि इस रस के अनुभाव होते हैं। पुनः लज्जा तथा हास इसके संचारी भाव माने गए हैं। इन भावों से अभिव्यक्त जो रति-भाव है, वही शृंगार माना जाता है। काम के उद्बोध को 'शृंग' कहते हैं, वह जिसके द्वारा हो उसे शृंगार कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य रसों में उपर्युक्त बातों का समन्वय हो जाता है।

वीरमणिप्रसाद उपाध्याय
(बी० ए०, साहित्याचार्य)

× × ×

२. अश्लील साहित्य और चाँद

मानव-स्वभाव की प्रवाह-धारा प्रकृति से ही अधो-गामिनी होती है। उसको ऊर्ध्वगामिनी बनाने के लिये नियंत्रण, संयम, त्याग और तपस्या की आवश्यकता होती है। जहाँ इन दुर्लभ गुणों का अभाव होता है, वहाँ मानव-स्वभाव नीच-से-नीचतर होता जाता है। प्रकृति का यह नियम अटूट है। इसीलिये हम देखते हैं कि साधारण जन-समुदाय की अभिरुचि प्रायः ऐसी होती है, जो अश्लीलता, गंदगी और भद्देपन को अधिक पसंद करती है। अभिरुचि के सुधारने का काम लेखकों, संपादकों, प्रकाशकों और शिक्षा-प्रेमियों का है। एक आदर्श लेखक अपनी अमूल्य रचना द्वारा समाज की निम्नगामिनी प्रवृत्ति को उठाने की चेष्टा करता है, और एक संपादक अपने पत्र के समुचित संपादन द्वारा वह अवस्था लाता है। इसी प्रकार एक प्रकाशक तथा उच्च शिक्षा-प्रेमी सज्जन अपने-अपने अनुकूल कार्यों द्वारा जनता की उपर्युक्त स्वभाव-धारा को नियंत्रण और संयम के साथ ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते हैं। जो लेखक, संपादक, प्रकाशक या शिक्षा-प्रेमी ऐसा नहीं करते, वे अपनी ख्याति और अपने गुण का दुरुपयोग ही नहीं करते, वरन् अपने समाज और साहित्य के साथ घोर अन्याय करते हैं।

यह देखकर हमें बड़ा दुःख होता है कि हिंदी के कुछ साहित्य-सेवी कहलानेवाले स्वार्थी लोग इसी कुप्रवृत्ति के पोषक बन रहे हैं। यह तो सत्य है ही कि जनता को, विशेषतः उस जनता को, जिसमें उचित शिक्षा का अभाव है, वह साहित्य, जो अधिक कुरुचि-पूर्ण होगा, अधिक अच्छा लगेगा। फलतः वह उसे अधिक पढ़ेगी भी। और, यदि कोई पुस्तक या पत्र अधिक पढ़ा गया, फिर वह चाहे जिस कारण से हो, तो उसकी बिक्री भी अधिक होगी, और उसके लेखक, संपादक या प्रकाशक को उससे लाभ भी अधिक ही होगा। परंतु इस प्रकार के लाभ से लाभान्वित होना कहाँ तक उचित और न्याय-संगत होता है, यह स्पष्ट है। स्वार्थ के पीछे आँख बंद कर पड़नेवाले धन-लोलुप व्यक्तियों की बात हम नहीं कहते, परंतु प्रत्येक शिष्ट, न्याय-प्रिय और विवेक-शील सज्जन हमारी इस बात से सहमत होंगे कि इस प्रकार की कुप्रवृत्ति से धनोपार्जन करना नीचता और घृणा का व्यापार है। ऐसा होते हुए भी कुछ लोगों

की प्रवृत्ति उस ओर बड़ी तेज़ी के साथ आकृष्ट हो रही है। कारण क्या है ? केवल यह कि उनका पापी पेट नेकी की कमाई से नहीं भरता।

हिंदी-प्रकाशकों में चाँद का कार्य सबसे अधिक घृणित और निंदनीय है। यह अपने को क्रांतिकारी समाज-सुधारक बताकर बड़े-बड़े अक्षरों में विज्ञापन करता है। परंतु उसके कार्य समाज-सुधार की तो छाया तक का स्पर्श नहीं करते, उलटा अनेक प्रकार के अनाचार और निंद्य प्रवृत्ति का प्रचार करने में अग्रसर होते हैं। समय-समय पर अश्लील-से-अश्लील लेख प्रकाशित करके चाँद ने अपना मुँह काला किया है। इसके लिये उसकी बड़ी-से-बड़ी आलोचनाएँ भी हुईं। प्रताप के साथ तो नोटिसबाज़ी तक की नौबत आ गई थी। परंतु प्रताप चाँद की बंदर-घुड़की से दबकर दुबक रहनेवाला न था। उसका पक्ष प्रबल था। उसमें न्याय का सत्य था, विवेक था, कर्तव्य-ज्ञान था, और धर्म-परायणता थी, और चाँद, अन्याय, अनाचार कुप्रवृति, हठधर्मी, स्वार्थांधता और नीचता से भरा हुआ था। अंत में वही हुआ, जो होना चाहिए था। चाँद अपना-सा मुँह लेकर बैठ गया। इस प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ एक ही बार नहीं, अनेक बार हुईं। परंतु फिर भी चाँद की गति-विधि में अंतर नहीं आया। जब-जब उसे अवसर मिला—इतना ही क्या मौक़े-बे मौक़े भी—वह अपनी गंदी मनोवृति की दुर्गंधि फैलाने से बाज़ नहीं आया, और अंत में अपने विशेष अंक, मारवाड़ा-अंक, के नितांत नग्न और वीभत्स रूप में तो उसने इतनी अश्लीलता दिखलाई कि जिसको देखकर स्वयं अश्लीलता भी काँप उठेगी ! अश्लीलता, गंदगी और नीचता का जितना घिनौना नाच इस अंक में नाचा गया है, वह भी नितांत नीचता और असभ्यता के साथ, उतना गंदे-से-गंदे साहित्य में भी मिलना दुर्लभ है। समाज-सुधार, भावना और सदाशयता का ढोल पीटनेवाला चाँद क्या अपनी इन काली करतूतों के लिये लज्जा का अनुभव करता है ?

दुःख का विषय तो यह है कि जब साहित्य-संसार में इस प्रकार का आंदोलन हो रहा है कि अश्लील साहित्य का प्रकाशन और निर्माण सदा के लिये बंद कर दिया जाय, तब चाँद का गंदगी-भरा विशेषांक प्रकाशित हुआ ! उसने इस आंदोलन से शिक्षा ग्रहण करने पर भी इनकार कर दिया, और अपनी कुप्रवृत्ति का उदाहरण देते हुए अपने पत्र के कॉलम काले किए। मगर जहाँ धर्माधर्म और न्यायान्याय का विचार छोड़कर अर्थ-पिशाचों की भाँति धनी लोग धनोपार्जन के निमित्त छटपटा रहे हों, वहाँ इन बातों पर विचार ही कौन करता है ? वहाँ तो विचार होता है कि सभ्यता भाड़ में जाती हो तो जाय, साहित्य के उज्ज्वल मस्तक पर कलंक का भद्दा कालिख पुतता हो, तो पुते और समाज रसातल में जाता हो तो जाय, परंतु अपने टके सीधे होने चाहिए। यह विचार आता अवश्य है, परंतु इसका भी प्रकाश्य रूप में जो आवरण होता है, वह कुछ दूसरा ही। यदि सच्ची बात कही जायगी, तब तो भय होगा कि लोग नीच कहेंगे, सो तो कहेंगे ही, और स्वयं भी नीच बनने की नौबत आवेगी। यह ठीक न होगा। इसलिए समाज-सुधार का सीधा-सा बहाना क्यों न कर लिया जाय ? बस, एक ही टट्टी तैयार कर ली गई, और उसी की ओट से गंदे-से-गंदे और असभ्य-से-असभ्य लेख प्रकाशित होने लगे। साहित्य-सेवा की यह कितनी घृणित विडंबना है ! समाज-सेवा के नाम पर समाज पर किया जानेवाला कितना नीच प्रहार है !! हम चाहते हैं, इस प्रकार की गति-विधि का पूर्ण विरोध किया जाय। साहित्य-सम्मेलन शीघ्र होने जा रहा है। हमारी अपील है कि शिष्टता-सभ्यता, श्लीलता, साहित्य-सेवा और समाज-सुधार के नाम पर सम्मेलन में एकत्र होनेवाले साहित्य-महारथी इस समस्या पर गंभीरता-पूर्वक विचार करें। यदि इसकी प्रगति रोकी न गई, तो इसका परिणाम इतना भयंकर होगा कि साहित्य के सिर पर व्यथ का कलंक लगेगा, सो तो लगेगा ही, समाज को भी बड़ी घातक चोट पहुँचेगी।

मोतीलाल लाठ

× × ×

३. माला

बाहर भीतर एक नहीं,
अति उज्ज्वल बाहर, भीतर काला ;

हैं कहते, कुछ औ' करते कुछ,
ज्यों चिथड़े को लपेटे दुशाला।
ऐसे बड़े-बड़े लोग यहाँ,
जिनके बस में है विचित्र मसाला;
साँच को झूठ, असत्य को सत्य
करें, पर फेरते हाथ में माला।

श्रीदामोदरसहायसिंह एल्० टी०, "कवि-किंकर"

× × ×

४. काल-विजय

तू जोवन-उर में प्रभात बन
प्रखरित करती है नव आस;
तेरी साँसें संचारित कर
देती हैं तरंग-उल्लास।
होकर जोवन गगन-शिखर में
उदित रचाती है मध्याह्न;
विजयैश्वर्य कांति भर देती,
दे निज दीप्ति-स्वर्ण का दान।
यदि तू कभी सरल संध्या-सी
लाती अधर-बीच मुसकान;
होती है सुदूर से आकर
हृदयांकित शैशव-सुधि म्लान।
जब तू तन्मय दृष्टि लगा
सुनती है मेरा प्रेमालाप;
शशि-ज्योत्स्ना-विमुग्ध रजनी-सी
बैठी रहती है चुपचाप।
काल-नियम से निज स्वतंत्र ये
नाना रूप सजाती है;
काल-चक्र के घर्घर-स्वर में
अपना राग बजाती है।
यदि यह काल तुझे दुख-युक्ति
लड़ा चाहे करना आधीन;
तो बन हृदय! अनन्य हमारे
आत्मा-नभ में हो जा लीन।

ईश्वरीदत्त जोशी (बी० ए०)

× × ×

५. ग़दर के ज़माने में

पंजाब के हत्याकांड और कुछ गोरे सैनिकों द्वारा हिंदोस्तानी स्त्रियों के प्रति किए गए दुर्व्यवहार की चर्चा चल रही थी। एक वृद्ध बैठा सब बातें सुन रहा था। जब चर्चा समाप्त हो चुकी, तब उससे न रहा गया। उसने कहा—"क्या अँगरेज़ लोग भूल गए कि हम लोगों ने उनके साथ क्या किया है?"

चर्चा करनेवाले नवयुवकों ने पूछा—"क्यों, आपने क्या किया, सुनाइए तो।"

उस वृद्ध ने जो कुछ कहा, नीचे लिपि-बद्ध किया जाता है—

सन् १८५७ का समय था। गोरों को हिंदोस्तान के बाहर निकाल भगाने का आयोजन किया जा चुका था। अवध के सिपाही धर्म के लिये प्राण न्योछावर करने का निश्चय कर चुके थे। इधर गोरे लोग भी अपने प्राणों की बाज़ी लगा रहे थे। कइयों का क़त्ल हो गया था। अँगरेज़ों के बड़े-बड़े अफ़सरों के क़दम उखड़ गए थे। साम्राज्य की सत्ता का स्वप्न देखनेवाले आज के अँगरेज़ों के पिता और पितामह, जॉन कंपनी के फ़ौजी और मुल्की नौकरों की राज्य-नौका अब डूबी—अब डूबी हो रही थी।

उस संघर्ष के समय अगर पशुओं की पाशविकता प्रबल हो उठी थी, तो दया के स्रोत महात्माओं के हृदय में भी सार्वदेशिक प्रेम प्रबल हो उठा था। संसार की बुराइयाँ और भलाइयाँ, दोनो ही अपना-अपना कार्य कर रही थीं। पागल पशुता चीरने और काटने के लिये लालायित हो रही थी, और स्नेहमयी दयार्द्रता मनुष्यता को ज़िंदा रखने का प्रयत्न कर रही थी।

ऐसे भयंकर समय की एक कहानी मैं सुनाता हूँ। मई के महीने से हिंदोस्तान में गर्मी विशेष बढ़ जाती है। देशवासियों तक को इस गर्मी से कष्ट होता है,

तब ठंडे मुल्कों में रहनेवाले योरपियनों की कठिनाइयों का कहना ही क्या ? सन् सत्तावन का ग़दर मई महीने में ही ज़ोर से शुरू हुआ था। सिपाही लोगों ने कई जगह की छावनियाँ जला दी थीं। जहाँ-जहाँ योरपियन थे, वहाँ-वहाँ से वे दिल्ली, लखनऊ, कानपुर आदि की रक्षा के लिये बुलाए जाते थे। ईसामसीह के दया-धर्म का प्रचार करनेवाले मिशनरी और हिंदोस्तान के भूखे अनाथों को बपतिस्मा देकर बनाए हुए ईसाई— जिनका संबंध अँगरेज़ों से था—सभी लड़ने के लिये बुलाए जाते थे। मि० लारेंस ने लखनऊ के क़िले में गोले-बारूद के बड़े-बड़े पीपे भरकर ज़मीन में गड़वा दिए थे। यह सब काम हिंदोस्तानी मज़दूरों द्वारा— विशेषकर ईसाई-धर्म की दीक्षा पाए हुए हिंदोस्तानी ईसाइयों द्वारा—कराया गया था; पर उनको यह पता न लगने दिया गया था कि पीपों में कौन-सी चीज़ भरी हुई है। उन्हें यही बतलाया गया था कि पीपों में नाज भरा गया है, और उसे सुरक्षित रखने के लिये ज़मीन की खोह में रक्खा जा रहा है। इतना इंतज़ाम होते हुए भी एक के बाद दूसरा क़िला बलवाई सिपाहियों के हाथ लग ही गया, और ऐसा मालूम होने लगा कि कंपनी-सरकार का राज्य हिंदोस्तान में न रहेगा।

अन्य स्थानों की तरह आगर-छावनी की फ़ौज भी बाग़ी हो गई थी। अपने योरपियन अफ़सरों को गोली मारकर उसने गोरों के बँगलों में आग लगा दी थी। मई का महीना, गर्मी के दिन और फिर पहाड़ी मुल्क। आगर-छावनी में सात-आठ गोरे अफ़सर रहते थे, उनमें से ३ आदमियों के बाल-बच्चे भी थे। बाग़ियों के विप्लव की ख़बर पाकर अँगरेज़ लोग अपनी औरतों को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना चाहते थे। वे अपना इंतज़ाम पूरी तरह से कर भी नहीं पाए थे कि फ़ौज बाग़ी हो गई। बाहर के कई बलवाई फ़ौज में शामिल हो गए, और उन्होंने छावनी में आग लगा दी।

छावनी की मेमें और कुछ गोरे अपने नौकरों के साथ जंगल को भागे। खाने के लिये उनके पास सामग्री नहीं थी, न पीने के लिये पानी। जब बलवाइयों ने बँगलों में आग लगा दी थी, तब उनका ख़याल था कि अंदर के सभी जीव जलकर भस्म हो गए होंगे; किंतु दो-तीन घंटों के बाद उन्हें मालूम हुआ कि बाग़ियों के आने की सूचना पाकर अँगरेज़-औरतें और बच्चे घोड़ों पर सवार कराकर सारंगपुर की तरफ़ भेज दिए गए हैं। दोपहर के दो बजे बाग़ियों ने छावनी में आग लगाई थी, और चार बजे उनको यह मालूम हुआ कि अँगरेज़ लोग भाग गए। हाथ का शिकार छूट जाने पर जिस तरह चीता क्रोध के मारे अंधा हो जाता है, उसी तरह बाग़ियों में से कुछ लोगों की हालत हुई। वे अपने घोड़ों पर सवार होकर अँगरेज़ों का पीछा करने के लिये रवाना हुए। दो घंटे तक बराबर उन्होंने अपने घोड़ों को भगाया। मुँह के फेन और बदन के पसीने से घोड़ों की थकावट का पूरा पता लग रहा था; पर बाग़ियों की निगाह अपने शिकार की तरफ़ थी, घोड़ों की या अपनी थकावट का उन्हें ख़याल ही कहाँ था।

कुछ देर तक और चलने के बाद उन्हें भागे हुए अँगरेज़ों के घोड़े दिखाई देने लगे। इधर अँगरेज़ों ने भी देखा कि बाग़ी पीछा किए आ रहे हैं। दिन-भर की कड़ी धूप के कारण ८-१० जीवों का वह गोरा क़ाफ़िला थक गया था। पर प्राणों का प्यार इतना अधिक रहता है कि मरते-मरते भी मनुष्य एक बार और अपने को बचाने का प्रयत्न करता है। उन अँगरेज़ों ने भी यही किया। अपने घोड़ों को उन्होंने भगाया। उनमें से लगभग सभी लोग आगे निकल गए, पर एक मेम का घोड़ा पीछे रह गया। वह अपने प्राणों के लिये घोड़े को बराबर मारने लगी, पर कुछ न हुआ, वह बिलकुल ही थक गया था। आख़िर उस मेम ने घोड़े को छोड़ दिया, और वह पैदल भागने लगी। पीछे बाग़ी लोग पास-पास आ रहे थे। उनमें से एक आदमी सिर्फ़ एक मील के फ़ासले पर रह गया था। उसने मेम को पैदल भागते हुए देख लिया था। उसने अपना घोड़ा बढ़ाया। १०-५ मिनट के अंदर ही यह बेचारी उसके क़ब्ज़े में आनेवाली थी। इतने में सड़क के पास एक गाँव दिखाई दिया। वह गाँव की तरफ़ चली और पासवाले एक मकान में घुस गई। उस घर में एक किसान अपनी स्त्री-सहित रहता था। मेम के एकाएक घर में घुस पड़ने पर वह घबराया; पर जब उसने उसकी दीन मुद्रा देखी, और उसकी टूटी-फूटी हिंदी में उसके भय का कारण सुना, तब उसका

तथा उसकी स्त्री का हृदय दया से भर आया। उसने निश्चय कर लिया कि हर तरह से इस बेचारी को बचाना चाहिए।

उपाय सोचते-सोचते पाँच मिनट बीत गए। इधर बलवाई लोग सड़क से मेम को एकदम ग़ायब होते देखकर उस गाँव की तरफ़ आए और उन्होंने उस किसान के दरवाज़े पर खड़े होकर पूछा—"एक मेम अभी यहाँ से गई है ?"

"नहीं।"

"अभी तो वह इधर आई है। तेरे घर में तो नहीं है ?"

"नहीं।"

बाग़ियों को उसकी बात पर विश्वास न हुआ। वे उसके घर में घुसने लगे। किसान ने घर के किवाड़ बंद कर दिए। बाग़ियों का संदेह और भी बढ़ गया। दो-तीन मिनट के अंदर उन्होंने किवाड़ों को उखाड़ फेंका और घर में घुस गए।

बाग़ियों ने उसके घर की पूरी-पूरी तलाशी ली। उन्होंने नाज भरने की कोठियाँ तक देख डालीं। कहीं भी मेम का पता नहीं था। उन्हें पक्का शक था कि वह इस घर में घुसी, पर वह तो घर में कहीं नहीं थी। घर के एक कोने में किसान की स्त्री मुँह ढके हुए खड़ी थी, निश्चय ही वह मेम नहीं थी ; क्योंकि उसके सभी कपड़े मोटे, गज़ी के बने हुए और हिंदोस्तानी ढंग के थे। फिर मेम गई कहाँ ? क्या वह कोई भुतनी है, जो देखते-देखते ग़ायब हो गई ?

इतने में एक बाग़ी की निगाह मकान के दूसरी ओर पड़ी। उसने देखा, सफ़ेद कपड़े पहने कोई भागा जा रहा है। शाम हो चुकी थी ; पर गर्मी के दिनों में शाम का प्रकाश भी थोड़ी-बहुत रोशनी लिए हुए होता है। उस बाग़ी ने निगाह जमाकर देखा, तो उसे मालूम हुआ कि वह व्यक्ति और कोई नहीं, विलायती लहँगा, हैट और बूट पहने हुए मेम ही है। वह अपने अन्य साथियों के साथ दौड़कर उस मेम के पास गया, और उस निर्दय पशु ने एक ही हाथ में उसका काम तमाम कर दिया।

दो-तीन घंटों के बाद जब बलवाई लोग गाँव से रवाना हो चुके थे, तब एक स्त्री को साथ लिए हुए वह किसान बाहर निकला। उसको मालूम हुआ कि अन्य अँगरेज़ गाँव की गढ़ी में ज़मींदार के घर पर छिपे हुए हैं। वह उस स्त्री को लेकर गढ़ी में गया, और वहाँ के समस्त अँगरेज़ों के आश्चर्य की सीमा न रही। जब लहँगे और लुगड़े के अंदर से वही गोरी मेम, जिसका उन्हें कोई पता नहीं लगा था, जिसे बाग़ियों द्वारा मरा हुआ जानकर उसके पाने की आशा उन्होंने छोड़ दी थी, उन्हें दिखाई दी।

रात को अँगरेज़ वहाँ से भागकर दूसरे स्थान को चले गए, और बेचारा किसान अपनी साध्वी स्त्री की मृत्यु के दुःख में रोकर दिन बिताने लगा। अपनी स्त्री को योरपियन वेश पहनाकर उसने मरवा डाला था, और गोरी मेम की रक्षा की थी।

सिद्धनाथ माधव आगरकर 'निरंजन' बी० ए०

× × ×

६. वैभव-भार

कुसुम में भी है काफ़ी भार,—
सँभलकर लाद, सँभलकर लाद।
लादकर समधिक सुख-शृंगार
न कर दे वह छवि यों बरबाद !

गुच्छ-के-गुच्छ मुकुल मत साज,
मिटा बल्ली-बहार बेकार।
छलक जाएगा जीवन-पात्र,—
अधिक अब ढाल न मधुमय प्यार।

कहाँ इतने वैभव का बोझ
सँभालेंगे उनके कल अंग,—
एक हलकी झकोर ही जिन्हें
हवा की, कर देती है भंग ?

ललित लोनी लतिका सुकुमार
अभी वह क्या समझे नादान,—
कि दुर्भर मेरा यौवन-भार
कभी कर देगा बेसुध प्राण !!

लता अलसाई वह दब, हाय !
लोट जाएगी धरती में।

बढ़ाते गए कांतियाँ कोंच—
कोंच करके जो भरती में ।

सुमन-सुख उन्हें चाहिए, किंतु,
हाय रे ! इतना—इतना नहीं—
कि जिसके विकट बोझ से विकल
हो उठे नव लतिका लहलहो ।

विश्वनाथप्रसाद (एम्० ए०)

× × ×

७. ग्राम्य गीत

यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो हमारा वर्तमान हिंदी-संसार अपूर्ण है । जिस प्रकार हमने अपने समाज के आधे अंग (स्त्री-समाज) को बिलकुल ही ठुकरा दिया है, उसी प्रकार उस समाज के गीतों को भी त्याग दिया है । गीतों में स्त्री-समाज के मनोभावों का बड़ा ही हृदयग्राही एवं उच्च स्पष्टीकरण हुआ है । वात्सल्य रस की एक-मात्र अधिकारिणी—करुणा एवं प्रेम की मूर्ति—माताओं के हृदय के उच्छ्वासों से ये गीत पूर्णतः ओत-प्रोत हैं । इनमें स्वाभाविकता है और मिठास—रस है और भाव । ये गीत न तो पिंगल-बद्ध हैं और न तुकांतता ही की बेड़ी से जकड़े गए हैं । यही कारण है कि इनका स्वाभाविक विकास हो पाया है । कृत्रिमता तो पास ही नहीं फकटने पाई है । इनका सबसे प्रधान गुण रस है । ये गीत सरल हैं । इनकी बनावट सीधी है । इनके भाव सीधी-सादी ग्रामीण स्त्रियों के सरल और पवित्र हृदय के सच्चे और मर्मस्पर्शी हैं । अतएव ये बहुत शीघ्र ही हृदय में चुभ जाते हैं । एक बार आप इनके रसों का पान करके परीक्षा कीजिए ।

नीचे दिए हुए गीत को सोहर कहते हैं । यह शुभ अवसरों पर गाया जाता है । जब किसी के पुत्र उत्पन्न होता है, तब आस-पास की सब स्त्रियाँ इकट्ठा होकर इसको गाती हैं । लड़की पैदा होने पर यह नहीं गाया जाता, क्योंकि लड़की पैदा होने पर दंपति अपना दुर्भाग्य समझते हैं । इसका एक-मात्र कारण यही हो सकता है कि विवाह के झंझटों का बढ़ जाना । नीचे का सोहर बनारस-प्रांत में गाया जाता है ।

दुआरे से उठैं सिरी कृस्न बखरियैं जाइक बोलैं ।
रुकामिनि कवने भोजनियाँ क साधि कहउ रुचि आपन ॥ १ ॥
सात पदारथ मोरे घरे एकहु न मने भावै ।
राधा के बेइलिया क फूल हमारे मन भावे ॥ २ ॥
सँझवैं घोड़ा पलाने अधिय रात पहुँचेन ।
खोलु राधा बजर केवार भितरे हम अउबै ॥ ३ ॥
कहउ त सेजिया बिछावउँ फुल छितरावउँ ।
कहउ त दाबा पावँ पयँत लगि सोवउँ ॥ ४ ॥
जिन तुँ हो सेज बिछाव फुल छितराव ।
जिन तुँ हो दाबौ पावँ पयँत जिन सोवउ ।
तोहरे बेइलिया क फूल रुकामिनि मन भावै ॥ ५ ॥
मरहु भ काटौ सिरि कृस्न भ देसवा निसारौ ।
अपनी बेइलिया क फूल सवति नाहीं देबै ॥ ६ ॥

अर्थ—द्वारे से श्रीकृष्णजी उठे और घर में जाकर बोले—"रुक्मिणी, तुम अपनी रुचि बतलाओ, किस खाद्य-पदार्थ की इच्छा है" ॥ १ ॥

रुक्मिणी ने कहा—"हमारे घर में तो सातो पदार्थ हैं, किंतु मुझे एक भी अच्छा नहीं लगता । राधा की लता का फूल हमको अच्छा लगता" है ॥ २ ॥

संध्या ही को घोड़े पर चढ़कर श्रीकृष्णजी आधी रात को राधा के यहाँ पहुँचकर बोले—"राधा, इन कठिन किवाड़ों को खोलो, मैं भीतर आऊँगा" ॥ ३ ॥

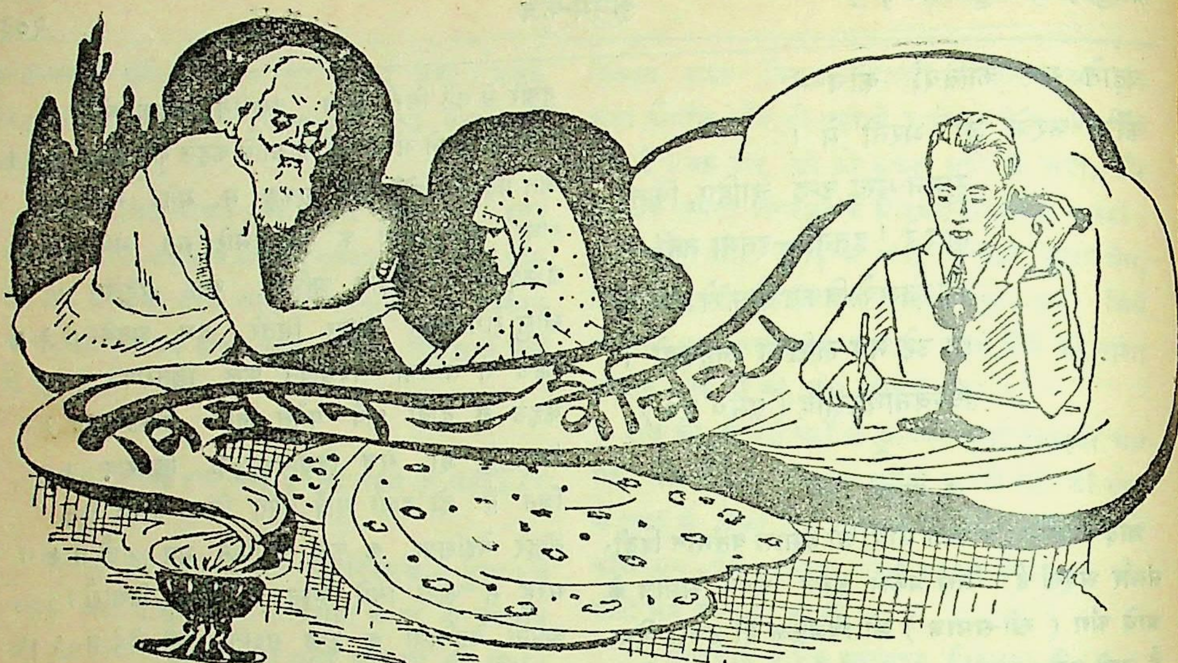
राधा ने कहा—"कहिए तो सेज बिछाऊँ और फूलों से सजाऊँ ; कहिए तो पैर दाबूँ और पैरों के पास सोऊँ" ॥ ४ ॥

कृष्णजी बोले—"न तो सेज बिछाओ, न फूलों से सजाओ, न पैर दाबो और न पैर के पास सोओ । तुम्हारी लता का फूल रुक्मिणी चाहती हैं" ॥ ५ ॥

राधा ने कहा—"श्रीकृष्ण, चाहे मारो, चाहे काटो, और चाहे देश से निकाल दो, किंतु मैं अपनी लता का फूल सौत को नहीं दूँगी" ॥ ६ ॥

सौतों में सौत की किसी भी विशेष वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा होती है । इनमें परस्पर स्वाभाविक द्वेष होता है । इस गति की अंतिम पंक्तियों में कितना सरस उत्तर है । सौत के लिये वह तृण भी नहीं दे सकती है । वह तो सौत को प्रसन्न ही नहीं देखना चाहती ।

नवनिहालसिंह, 'ग्राम्य-साहित्य-संघ', प्रयाग



१. भविष्य में क्या होगा ?

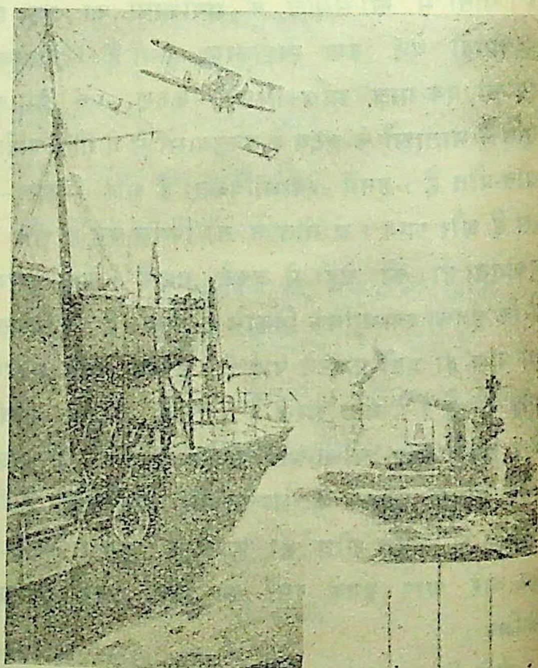
(एक वैज्ञानिक भविष्यवक्ता की बातें)



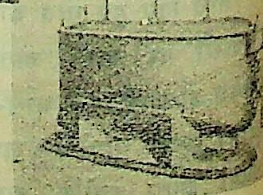
हमारे देश में भविष्य की बातें बतलानेवाले वीर पंडितों की कमी नहीं है। वे दो पैसे में जीवन का रहस्य खोल देते हैं, परंतु उस रहस्य का कितना अंश सत्य रहता है ? भविष्य की बात का अनुमान करना एक बड़ा कठिन काम है। परंतु वैज्ञानिक लोग प्रायः अपने अनुमान में सफल ही हुआ करते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि वे ऊटपटाँग बातें न कहकर अपने सिद्धांतों के आधार पर निर्णय निकालते हैं। परीक्षाएँ करते और इनके द्वारा भविष्य में सफल होनेवाली कलों का मानसिक चित्र देख लेते हैं।

वैज्ञानिक-संसार में निकोलस टेसला का स्थान बहुत ऊँचा है। यह एक संसार-प्रसिद्ध जादूगर कहलाता है। उसके विचित्र आविष्कारों और आश्चर्यमय सत्य सिद्ध होनेवाली भविष्य-वाणियों ने उसे जन-साधारण के दिमाग़ में एक विशेष रूप से भयंकर स्थान दे दिया है।

तीस वर्ष पहले जब टेसला ने कहा था कि आपत्ति में पड़े हुए जहाज़ बे तार के द्वारा, रक्षा की प्रार्थना दूर-



विना नाविक के समुद्र की लहरों पर बे-तार के द्वारा चलनेवाला आधुनिक अँगरेज़ी जहाज़



(टेसला द्वारा) तीस वर्ष पूर्व बनाया हुआ बे तार का जहाज़

दूर तक भेज सकेंगे। लोग इस बात को सुन आपको पागल कहने लगे, परंतु डॉक्टर टेसला की बातों पर अविश्वास करनेवालों ने अपनी आँख से देख लिया कि आरटिक समुद्र के बर्फ़ में भटकनेवाले जहाज़ों ने किस तरह बे-तार के द्वारा अपना संदेशा भेजा था। तीस वर्ष पहले जब आपने एक ऐसे जहाज़ का नमूना बनाया था जो बिना यात्री के चलता था, तब लोग हँसते थे, परंतु हम देखते हैं, आज भी ब्रिटिश नाविक बेड़ा एक ऐसे जहाज़ के पूर्ण करने में लगा हुआ है, जो बे-तार के द्वारा समुद्रों में विचरण कर सके। जर्मनी ने भी इस मार्ग में अपने क़दम बहुत आगे बढ़ा लिए हैं। बीस वर्ष पहले जब टेसला ने एक ऐसी आटोमोबाइल तैयार की थी जो कि धड़ाके के द्वारा जल और भूमि पर चलती थी, तब लोगों का उसकी बात पर विश्वास नहीं होता था, परंतु जर्मनी ने राकेट मोटर बनाकर संसार को चकित कर दिया, तब उनकी आँखें खुल गईं।

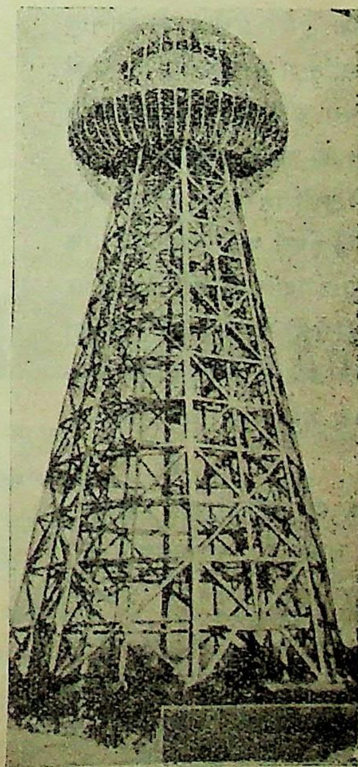
अतएव इन सब घटनाओं को ध्यान में रखते हुए हम एकदम अविश्वास नहीं कर सकते कि टेसला का भविष्य-चित्रण भ्रांति-पूर्ण है। जिस वैज्ञानिक के आविष्कारों ने संसार को इतना लाभ पहुँचाया हो, उसकी बातों को सम्मान-पूर्वक सुनना हमारा काम है।

डॉक्टर साहब का कहना है कि घरों में रोशनी बे-तार के द्वारा हो जाया करेगी, हवाई जहाज़ और मोटर-गाड़ियाँ बे-तार के द्वारा संचालित होंगी। विज्ञान एक ऐसा छोटा-सा यंत्र तैयार कर लेगा जो आसानी से जेब में रक्खा जा सकेगा। इसे लेकर आप सुख-पूर्वक मरुभूमि की सैर कर सकेंगे, बर्फ़ के ढके हुए स्थानों पर घूम सकेंगे और वायुमंडल में विहार कर सकेंगे। आवश्यकता होते ही यह यंत्र आपका भोजन बना देगा और उसके प्रकाश में आप ग्रंथों का अवलोकन कर सकेंगे।

कुछ वर्ष पूर्व डॉक्टर टेसला ने भविष्य-वाणी की थी कि बे-तार के द्वारा, पृथ्वी को माध्यम बनाकर, शक्ति-संचालन की एक ऐसी युक्ति ढूँढी जा सकती है जिसके द्वारा संसार के व्यापार-संबंधी कार्यों में बड़ी सहायता मिल सकेगी। आपने अपने इन वचनों को सिद्ध करके दिखाने के लिये एक दो सौ फ़ुट ऊँची मीनार बनाई। लोग इसे 'टेसला मीनार' कहते थे और यह अफ़वाह दूर-दूर उड़ गई थी कि इसके द्वारा टेसला विद्युत् के भयंकर आवाज़ करनेवाले गोले पृथ्वी पर फेंकेंगे। ऐसा समझने का एक कारण और भी था। कुछ वर्ष पूर्व इस महापुरुष ने विज्ञानशाला में लाखों वोल्ट-शक्ति की विद्युत् तैयार कर परीक्षा की थी। इस परीक्षा में इतनी भयंकर आवाज़ हुई थी जो १३ मील की दूरी तक सुनाई पड़ी थी।

हाँ, टेसला की यह मीनार पूर्ण भी न बन पाई कि वह आकस्मिक घटना से नष्ट हो गई। अब आप एक नई मीनार बनाने में लगे हुए हैं, और आपका विश्वास है कि सन् १९३१ में यह कार्य-रूप में परिणत हो सकेगी। इसके द्वारा पृथ्वी में विद्युत् की इतनी शक्ति पहुँचाई जा सकेगी जो लाखों लैंपों को जला सके, और अन्य सैकड़ों कार्यों को कर सके। न कहीं लंबे-लंबे तारों की आवश्यकता होगी और न लोहे के खंभे ही लगाना पड़ेंगे।

डॉक्टर टेसला का कथन है कि उनकी मीनार विद्युत् के भयानक प्रवाह को पृथ्वी में तो अवश्य ही भेजेगी,



आकाश से विद्युत् के गोले छोड़नेवाली 'टेसला' मीनार

परंतु किसी प्रकार की आवाज़ नहीं होगी, और न विद्युत् की अग्निमय रेखाएँ ही दिखाई पड़ेंगी ; परंतु मीनार से सौ फ़ुट की दूरी पर रहनेवाले मनुष्य के शरीर से विद्युत् की चिनगारियाँ निकलने लगेंगी और उसके बाल खड़े हो जायँगे।

इतना ही नहीं, यह वैज्ञानिक अनेकों स्वप्न देखा करता है। उसका एक अन्य स्वप्न भी कम आश्चर्यमय नहीं। आप इस समय एक ऐसे हवाई जहाज़ के बनाने में लगे हुए हैं, जो एकदम सीधा आकाश में उड़ सके, जिसका वज़न २०० पौंड से अधिक न हो, जो ७ घन फ़ुट स्थान में रक्खा जा सके, और जो ४०० मील प्रति घंटे की गति से दौड़ सके, तथा जिसके संचालन का यंत्र बहुत ही छोटा और भयहीन हो। इत्यादि।

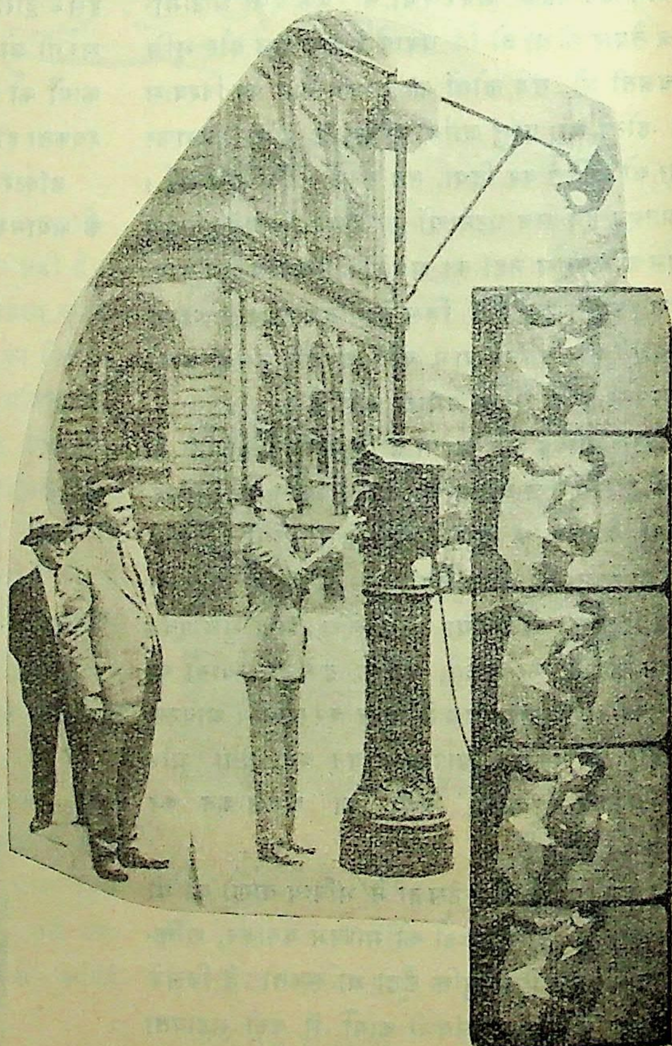
अभी आपने अपनी विज्ञानशाला में यह सिद्ध करके दिखा ही दिया है कि बे-तार के द्वारा विद्युत् के लैंप जलाए जा सकते हैं। यह आविष्कार बड़े ही महत्त्व का है। इसके द्वारा प्रकाश की वर्तमान प्रणाली में क्रांति मच जायगी, ख़र्चे की कमी हो जायगी और थोड़े-से मनुष्य देश-भर के प्रकाश को चालित कर सकेंगे।

टेसला ने इसी तरह की अनेकों बातें प्रकट की हैं। इनसे पता चलता है कि मानव-समाज की शक्तियाँ और प्रकृति पर अधिकार बड़ी तेज़ी से बढ़ रहे हैं। हमारा भविष्य कितना महान् होगा, इसका अनुमान साधारण मनुष्य नहीं कर सकता।

× × ×

२. मज़ाक़ करनेवालों की आफ़त

बड़े-बड़े शहरों में, स्थान-स्थान पर, अग्नि-कांड की सूचना भेजने की 'अलार्म-पेटियाँ' लगी रहती हैं। ज्यों ही किसी स्थान पर आग लग जाती है, त्यों ही कोई व्यक्ति दौड़कर पासवाली 'अलार्म-पेटी' के द्वारा अग्नि-रक्षक दल के पास संदेशा भेज देता है। तत्काल ही अग्नि-रक्षकों का दल अपने समस्त यंत्रों को लेकर घटना-स्थल पर उपस्थित होता है। गत वर्ष केवल न्यूयार्क नगरी में इस तरह के सात हज़ार अलार्म बजाए गए और उनके अनुसार अग्नि-रक्षक-दल उन स्थानों पर पहुँचा, परंतु कई बार उसे अपनी ग़लती के लिये पछताना पड़ा। वास्तव में बात यह होती थी कि कई मज़ाक़ करनेवाले झूठा अलार्म बजा देते थे। चार बार में कम-से-कम एक बार अवश्य ही उन लोगों को व्यर्थ ही आने का कष्ट उठाना पड़ता था। पुलीस इस तरह के अपराधियों का पता नहीं लगा सकती थी। अतएव समय और धन का, आने-जाने में, बहुत ख़र्च हो जाता था। यह



अलार्म की पेटी और केमरा की करतूत

देख न्यूयार्क नगरी के मेयर जेम्स वाकर ने एक नवीन प्रकार की 'अलार्म-पेटी' बनाई। इसके ऊपर एक गतिवान् वस्तुओं के चित्र लेनेवाले केमरे का भी संयोग कर दिया। यहाँ आदमी अलार्म बजाता है और वहाँ ऊपर से केमरा उसके कई चित्र ले लेता है। यदि अलार्म झूठा होता है, तो उन चित्रों के द्वारा पुलीस अपराधी को खोजने का प्रयत्न करती है। मज़ाक़ करनेवालों को अब अपने मज़ाक़ का फल शीघ्र ही मिल जाया करेगा, तथा नगर के प्रबंध में भी सहायता मिला करेगी।

× × ×

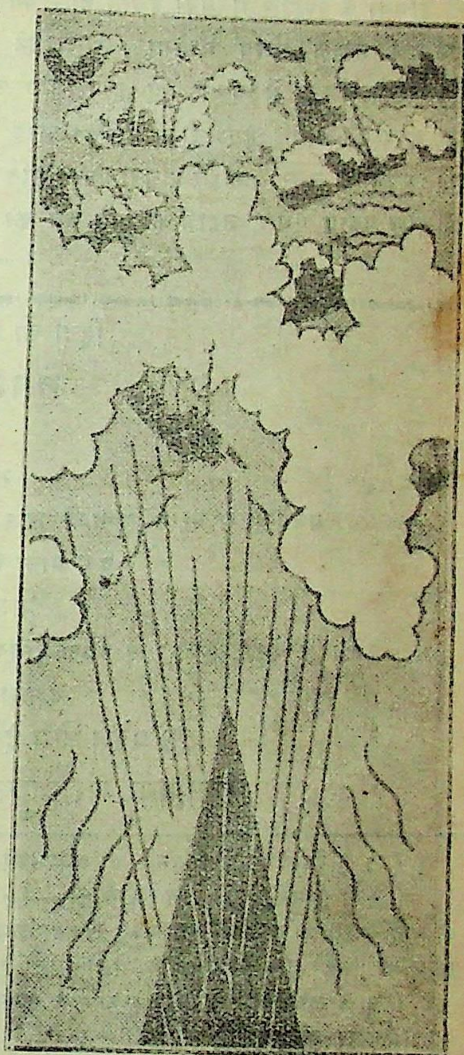
३. वायुयान से टक्कर लेनेवाले जहाज़

(लहरों के हृदय को विदीर्ण कर एक दिन में लंदन से न्यूयार्क)

हर आटो प्रोब (Herr Otto Probst) नामक एक जर्मन वैज्ञानिक ने अपने एक लेख में नवीन प्रकार के जहाज़ का वर्णन किया है। वैज्ञानिक संसार में नवीनता चार दिन की चाँदनी हुआ करती है। जिसे आज नवीन कहकर संसार प्रशंसा के पुल बाँध देता है, उसे ही वह कल पुरानी कहकर परवा भी नहीं करता। अभी इस जर्मन वैज्ञानिक की घोषणा को सुनकर संसार की नाविक शक्तियों के कान खड़े हो गए हैं। परंतु कई लोग उसकी बात पर अविश्वास दिखाने में ही अपना गौरव समझते हैं।

आपने लिखा है कि यह जहाज़ संसार की एक बड़ी ही अद्भुत वस्तु होगा। योरप के लोग सप्ताह का अंतिम दिन बड़े आराम से नवीन दुनिया में बिता सकेंगे, और समय पर अपने देश को लौट आवेंगे। युद्ध के समय में तो ये जहाज़ अत्यंत ही काम के सिद्ध होंगे। इन जहाज़ों का एक छोटा-सा बेड़ा बड़े-से-बड़े समुद्री बेड़े को वश में कर सकेगा। और, दृष्टिगोचर होनेवाले शत्रु के ७० फ़ी सदी जहाज़ों को वह निस्संदेह नष्ट कर सकेगा। इस कार्य के लिये जहाज़ के ऊपर एक विशेष प्रकार का यंत्र लगा होगा। इस तरह नवीन जहाज़ भविष्य में होनेवाले युद्ध का एक भयंकर शस्त्र सिद्ध होगा।

एक घंटे में इस जहाज़ की गति ३०० नाट (knot) होगी, तथा लहरों की दीवालें उसकी गति में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न कर सकेंगी। उसके संचालन की विधि इन बाधाओं से स्वतंत्र होगी।



समुद्री बेड़े की धज्जियाँ उड़ा दीं

उस समय की कल्पना कीजिए, जब इस तरह के जहाज़ समुद्र के विशाल आँगन में खेलते हुए दृष्टिगोचर होंगे। वे अपनी तीव्र गति के द्वारा भूमध्य-रेखा की समुद्रीय यात्रा ८० घंटे में कर सकेंगे। जो समय आज जर्मनी से लंदन पत्र ले जाने में लगता है, उसी समय में वे इँगलैंड से न्यूयार्क सामान ले जा सकेंगे, और लौट भी आवेंगे। एक सेकंड में इनकी गति १५० मीटर होगी। [(एक मीटर=एक गज़ ३ इंच) अर्थात् ५६ मील प्रति घंटे चलनेवाली एक्सप्रेस-

गाड़ी से छै गुनी अधिक ।] इस गति के कारण समय की समस्या शीघ्र ही हल हो जायगी। अतएव नई और पुरानी दुनिया के व्यापार में बड़ी उन्नति हो सकेगी।

एक बार जहाज़ योरप छोड़ेगा । उसमें बैठे हुए मुसाफ़िरों को समुद्र में बिखरे हुए द्वीप तथा अन्य जहाज़ छाया-से भागते हुए दीख पड़ेंगे। बारह घंटे के बाद न्यूयार्क नगरी की स्वतंत्रता की मूर्ति का प्रकाश दीख पड़ेगा। बस, जहाज़ की गति कम कर दी जायगी और आप अमेरिका में पदार्पण करेंगे। इस तरह व्यापार के क्षेत्र में, युद्ध के क्षेत्र में, केवल यात्रा के क्षेत्र में और रक्षा के कार्य में यह जहाज़ बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। वैज्ञानिक का कथन है कि मैंने सब प्रकार से अपनी विज्ञानशाला में इस आविष्कार की परीक्षा कर ली है, और शीघ्र ही संसार की नाट्य-शाला में इसकी करामात दिखलाऊँगा।

नाथूराम शुक्ल

बच्चों को पढ़ाइए

बाल-विनोद वाटिका

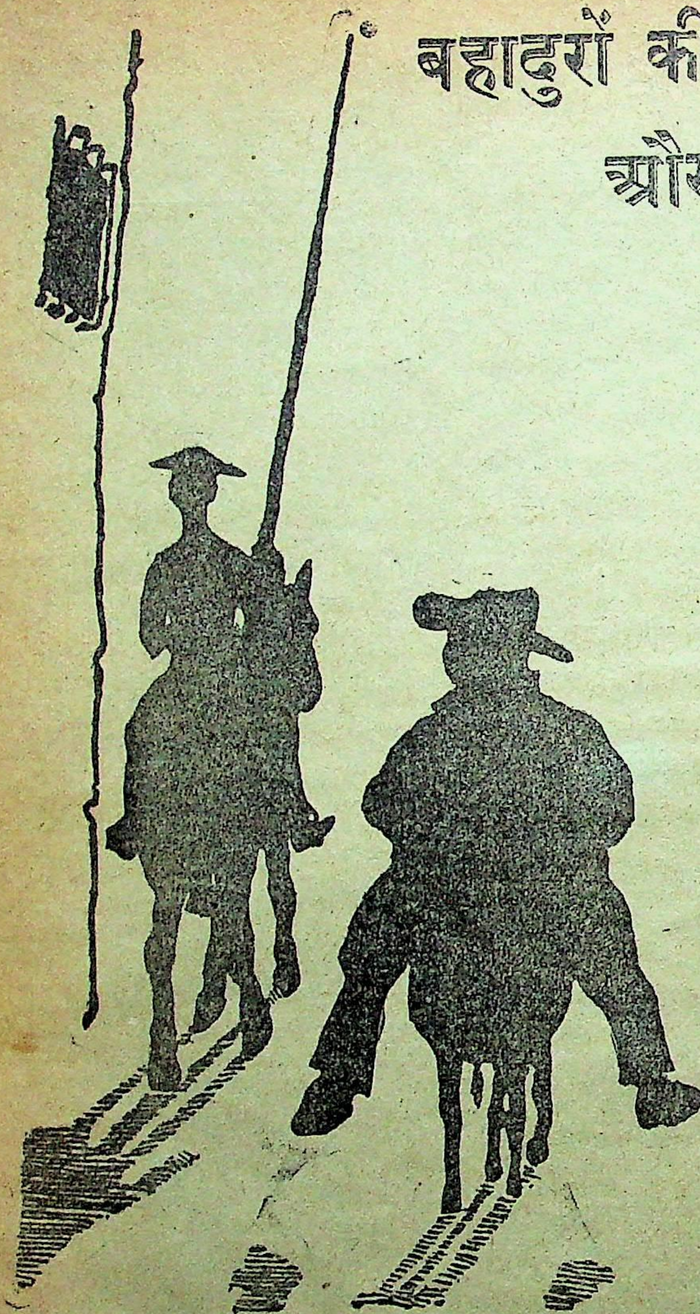
की सुंदर पुस्तकें

इस माला में ६ वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक के लड़की-लड़कों के लिये उपयोगी उत्तमोत्तम और सचित्र पुस्तकें निकल रही हैं। उनकी भाषा इतनी सरल, सीधी, सुंदर और मनोरंजक रहती है कि बालवृंद किसी अध्यापक या कोष की सहायता के बिना उन्हें पढ़ और समझ सकते हैं। सभी पुस्तकें नयनाभिराम एकरंगे और तिरंगे चित्रों से युक्त होती हैं। पढ़ने से खासा ज्ञान होता है। कविता, कहानी, इतिहास, जीवनी आदि सभी विषयों की पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं।

☞ कुछ पुस्तकों का परिचय भीतर पढ़िए



बहादुरों की मनगढ़ंत और फ़ालतू बातें

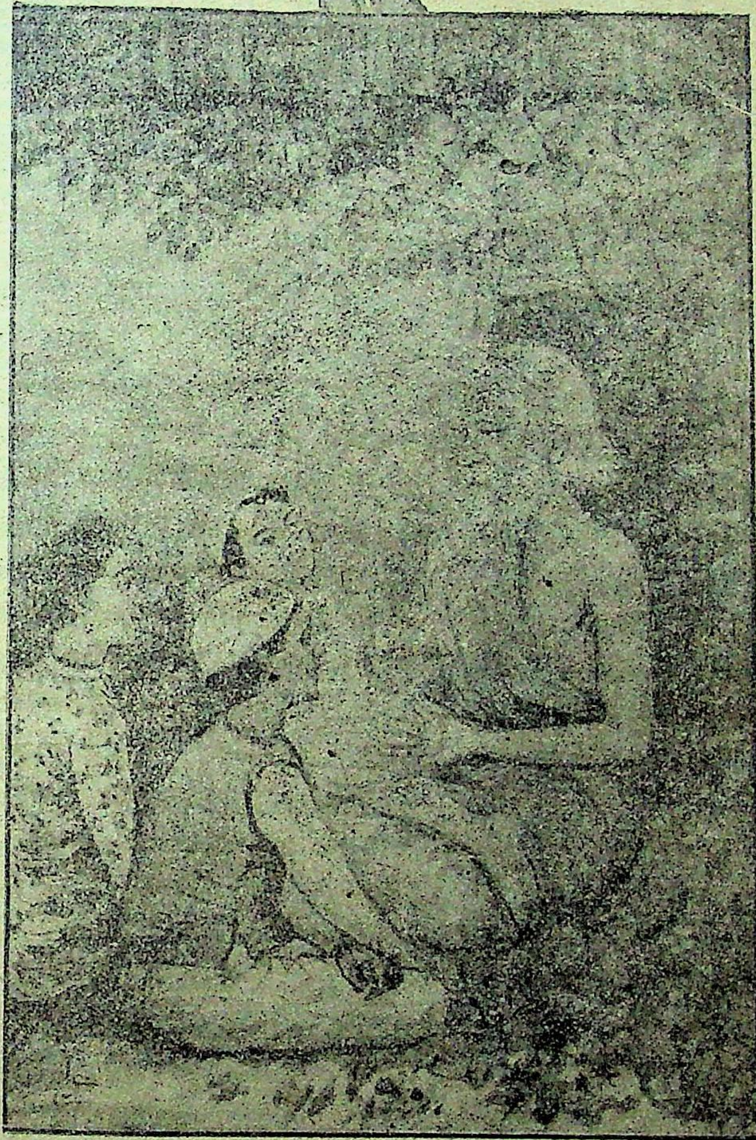


पढ़कर किंज्योति पर ऐसी सनक सवार हुई कि वह ख़ुद ही बहादुर सवार बनना ठानकर जल्द ही सफ़र के लिये तैयार हो गया। इसी बहादुर सवार की यात्रा का दिलचस्प हाल नीचे लिखी पुस्तक में लिखा है। पढ़ते जाइए और हँसते-हँसते लोटते जाइए। इसमें हास, परिहास, व्यंग्य की पूर्ण मात्रा है। मीठी चुटकियों में ज्ञान का भंडार है। मूल्य केवल ॥।), सजिल्द १।)

विचित्र वीर

यह पुस्तक सुप्रसिद्ध उपन्यास Don Ouiyote का, जो कि संसार-भर के १२ सर्वोत्तम उपन्यासों में से एक है, अनुवाद है। स्वनामधन्य हास्य-रसावतार पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीजी ने यह अनुवाद किया है। अतः इसकी रोचकता के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। अवश्य पढ़िए। ५ चित्र। लगभग १५० पृष्ठ।

सभी प्रधान मतों और देशों की उत्तमोत्तम कथाएँ



यह पुस्तक हिंदी-विश्वविद्यालय, काशी के प्रिंसिपल और प्रो-वाइस-चांसलर श्री ए० बी० ध्रुव एम्० ए०, एल्-एल्० बी० की लिखी तथा पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, अध्यापक लखनऊ-युनिवर्सिटी द्वारा अनुवादित है। पुस्तक कितनी उच्च कोटि की है और बालकों के चरित्र पर इसका कितना अच्छा असर पड़ेगा, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि विद्वान् लेखक इस विषय के प्रकांड पंडित हैं, और चरित्रगठन संबंधी पुस्तकें लिखने के लिये आपसे बड़ा अधिकारी इस देश में मुश्किल से मिलेगा। आपने इस पुस्तक में सभी प्रधान मतों और देशों से उत्तम कथाएँ चुनकर संग्रह की हैं और हरएक कथा से निकलनेवाले उपदेश भी नोट-रूप में दिए हैं, जिससे यह पुस्तक पाठ्य-क्रम में रक्खे जाने के लिये बहुत ही उपयुक्त हो गई है। पुस्तक दो भाग में है। प्रत्येक भाग का मूल्य १।) है।

बच्चों के लिये तीन खेल



मँगाइए तो सही फिर बच्चों से पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जायगा।



हँसी-खेल

इस रंग-बिरंगी पुस्तक को देखकर बच्चे तो दौड़ ही पड़ेंगे। गद्य और पद्य, दोनों में, बड़ी ही सरल भाषा में, मज़ेदार कहानियाँ दी गई हैं। बड़ी बढ़िया पुस्तक है। एक-एक प्रति अपने बच्चों के हाथ में ज़रूर दीजिए। पृष्ठ-संख्या १२०; दर्जनों चित्र। मूल्य ॥=)



बाल-विलास

सरल, मनोरंजक और विनोदपूर्ण कविताओं की इस सुंदर पुस्तक के लिये छोटे-छोटे बालक ऐसे मचल जाते हैं, जैसे कि खिलौने लेने के लिये एक बच्चा उलझ जाता है।

मूल्य केवल ।=), राजसंस्करण ।॥=)

खिलवाड़

इसको कभी भुला मत देना,
चीर-फाड़कर फेंक न देना;
चित्र देखना, क़िस्से पढ़ना,
पढ़कर अपना दिल ख़ुश करना।

मूल्य केवल ।)

बच्चों को बहुत पसंद आवेंगी

इतिहास की कहानियाँ

[लेखक, मुं० जहूरबख्श]

इस पुस्तक में संसार के प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन से संबंध रखनेवाली, अलौकिक साहस, वीरता, दया आदि की कथाएँ लिखी गई हैं। भाषा अत्यंत रोचक है। ४ चित्र भी हैं।

मूल्य ॥)

भारत के सपूत

[लेखक, मुं० जहूरबख्श]

इस पुस्तक में भारत के महान् पुरुषों जीवन से संबंध रखनेवाली ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह किया गया है। भाषा अत्यंत सरल है, और कहानियाँ बहुत ही रोचक। लड़के इसे बड़े शौक़ से पढ़ते हैं। पुस्तक में ६ चित्र भी दिए गए हैं। द्वितीय संस्करण

मूल्य ॥)

सुघड़ चमेली

[ले०, पं० रामजीदास भार्गव]

हिंदी एवं उर्दू संसार भली भाँति जानता है कि आप बालोपयोगी पुस्तकें लिखने में कैसे पटु हैं। आप इस सचित्र पुस्तक को अपनी लड़कियों को पढ़ाइए और फिर देखिए कि वे चमेली की तरह कैसी सुघड़ हो जाती हैं!

मूल्य =)



भगिनी-भूषण

[ले०, स्व० गोपालनारायण सेन सिंह बी० ए०]

यह पुस्तक बच्चों को पढ़ाने-लायक़ है। इसमें छोटी-छोटी कहानियों के बहाने बच्चों को बहुत-सी शिक्षाएँ दी गई हैं।

मूल्य =)

परोपकारी हातिम

[लेखक मुंशी जहूरबख्श]

भारत में जैसे कर्ण और हरिश्चंद्र दान-वीर और वचन के सच्चे महात्मा हुए हैं, वैसे ही दानी और सत्यवादी पुरुष ईरान में हातिम हुआ है। उसी हातिम की यह कथा है। कथा इतनी रोचक है कि अलिफ़-लैला भी इसके सामने मात है!

मूल्य १)

लड़कियों का खेल

[लेखक श्रीगिरिजाकुमार घोष]

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस पुस्तक की रचना विशेषकर लड़कियों के लिये ही हुई है। वे इसे बड़े चाव से पढ़ेंगी, और इससे बहुत कुछ सीखेंगी। हिंदी में ऐसी बहुत कम पुस्तकें निकली हैं।

मूल्य ।=)

बालकों के लिये सचित्र पुस्तकें



यह एक नटखट लड़के की आत्मकथा है। आदि से अंत तक एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं, जो नीरस और रूखा हो। एक-एक शब्द में हास्य-रस भरा हुआ है। सारी कहानी इतनी अनूठी और दिलचस्प है कि जिस लड़के ने किताब खोलने की क़सम खा ली हो, वह भी इसे समाप्त किए बिना नहीं रह सकता। कितने ही प्रसंग तो ऐसे हैं, जहाँ मारे हँसी के पेट में बल पड़ जायँगे। पुस्तक में १४ तिरंगे और हाफ़टोन चित्र हैं, जिनसे उसकी सुंदरता और भी बढ़ गई है। मूल्य १॥), २)

खेल पचीसी

लेखक, श्रीप्रतिपालसिंहजी। इस क में उन २५ खेलों का संग्रह किया है, जो लड़के साधारणतः शौक़ से ते थे। अँगरेजी शिक्षा के फैलने से रे पुराने खेल दिन-दिन मिटते जा हैं। शायद कुछ दिनों के बाद उन ों के जानकार भी न रहेंगे। इनके लड़कों की कुछ कसरत भी हो ी है। सचित्र मूल्य ।=)

खेलों की सूची

हूल (गेंद का खेल) अगड़ बादशाह (गेंद का खेल) हूचामारी (गेंद का खेल) घत्ता (गेंद का खेल) गेंद बल्ला (अथवा क्रिकेट) गड्डी अथवा गद (गेंद का खेल) पिलौवा (पैसे का खेल) राधे फँसुवा (कौड़ी का खेल) कौवा (कौड़ी का खेल) सागर पिल्लू (कौड़ी का खेल) उबान झल्ला (कौड़ी का खेल) चाचर अथवा पाई (डंडे का खेल) गेंडी (डंडे का खेल) गपई (लकड़ी का खेल) रँच कुवा पत्थर फोरा (पत्थर का खेल) नागिन (कंकड़ का खेल) साधारण गोली चँदियाटोर (गोली का खेल) अंधा भैंसा (घड़े का खेल) घूँमा (घास का खेल) आती पाती (निर्भयता का अभ्यास) बिजमक्खों (शब्द-ज्ञान) फूल-फूला (फूलों का खेल) सिलोर डंडा (वृक्ष या पानी का खेल)

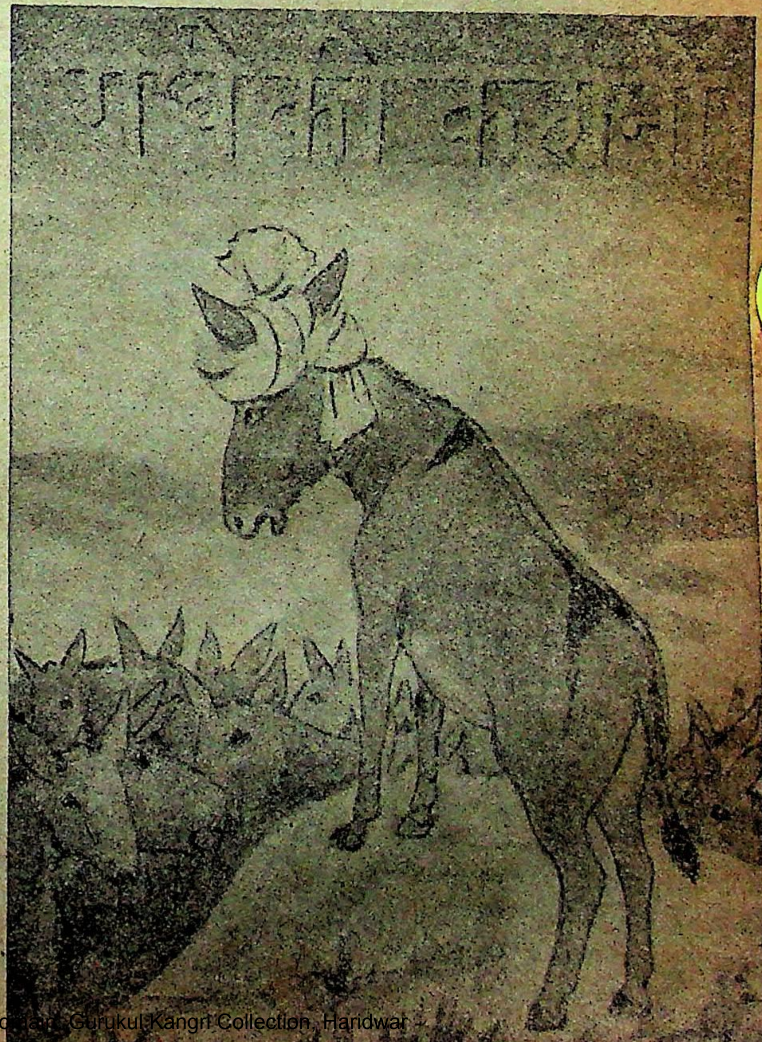


कीड़े-मकोड़े

चींटी, बर्र, टिड्डी आदि कीड़े मकोड़ों का ऐसा सुंदर वर्णन किया गया है कि पढ़ने में क़िस्से-कहानी से कहीं अधिक आनंद आता है। बालकों के योग्य इस विषय की अब तक कोई पुस्तक न थी। पुस्तक में ९ हाफ़टोन और एक रंगीन चित्र है । मूल्य ||=), सजिल्द १=)



इस पुस्तक को लिखकर लेखक ने बाल-साहित्य के एक मुख्य अंग की पूर्ति की है। गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक ढंग से कही है। उसने अपनी भाषा में मानव-समाज पर कैसी हास्य जनक आलोचनाएँ की हैं, यह देखने ही योग्य है । भाषा ख़ूब सरल और मुहाविरेदार है। पुस्तक सचित्र है । मूल्य |||), सजिल्द १|)





यह एक नटखट लड़के की आत्मकथा है। आदि से अंत तक एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं, जो नीरस और रूखा हो। एक-एक शब्द में हास्य-रस भरा हुआ है। सारी कहानी इतनी अनूठी और दिलचस्प है कि जिस लड़के ने किताब खोलने की क़सम खा ली हो, वह भी इसे समाप्त किए बिना नहीं रह सकता। कितने ही प्रसंग तो ऐसे हैं, जहाँ मारे हँसी के पेट में बल पड़ जायँगे। पुस्तक में १४ तिरंगे और हाफ़टोन चित्र हैं, जिनसे उसकी सुंदरता और भी बढ़ गई है। मूल्य १॥), २)

खेल पचीसी

लेखक, श्रीप्रतिपालसिंहजी। इस [पुस्त]क में उन २५ खेलों का संग्रह किया [गया] है, जो लड़के साधारणतः शौक़ से [खेल]ते थे। अँगरेजी शिक्षा के फैलने से [सा]रे पुराने खेल दिन-दिन मिटते जा [रहे] हैं। शायद कुछ दिनों के बाद उन [खेलों] के जानकार भी न रहेंगे। इनके [खेलने से] लड़कों की कुछ कसरत भी हो [जा]ती है। सचित्र मूल्य ।=)

खेलों की सूची

हूल (गेंद का खेल) अगड़ बादशाह (गेंद का खेल) हूचामारी (गेंद का खेल) घत्ता (गेंद का खेल) गेंद बल्ला (अथवा क्रिकेट) गड्डी अथवा गद (गेंद का खेल) पिलौवा (पैसे का खेल) राधे फँसुवा (कौड़ी का खेल) कौवा (कौड़ी का खेल) सागर पिल्लू (कौड़ी का खेल) उड़ान झरना (कौड़ी का खेल) चाचर अथवा पाई (डंडे का खेल) गेंडी (डंडे का खेल) गपई (लकड़ी का खेल) रैंच कुचा पत्थर फोरा (पत्थर का खेल) नागिन (कंकड़ का खेल) साधारण गोली चँदियाटोर (गोली का खेल) अंधा भैंसा (घड़े का खेल) घूँमा (घास का खेल) आती पाती (निर्भयता का अभ्यास) बिजमक्खों (शब्द-ज्ञान) फूल-फूला (फूलों का खेल) सिलोर डंडा (वृक्ष या पानी का खेल)

बालकों के मनोरंजन के लिए अद्वितीय



कीड़े-मकोड़े

चीटी, बर्र, टिड्डी आदि कीड़े मकोड़ों का ऐसा सुंदर वर्णन किया गया है कि पढ़ने में क़िस्से-कहानी से कहीं अधिक आनंद आता है। बालकों के योग्य इस विषय की अब तक कोई पुस्तक न थी। पुस्तक में ९ हाफ़टोन और एक रंगीन चित्र है। मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

卐 卐 卐 卐



इस पुस्तक को लिखकर लेखक ने बाल-साहित्य के एक मुख्य अंग की पूर्ति की है। गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक ढंग से कही है। उसने अपनी भाषा में मानव-समाज पर कैसी हास्य जनक आलोचनाएँ की हैं, यह देखने ही योग्य है। भाषा ख़ूब सरल और मुहाविरेदार है। पुस्तक सचित्र है। मूल्य ।।।), सजिल्द १।)



तीनों पुस्तकें हाल ही में प्रकाशित हुई हैं।

(१) भगवान् गौतम बुद्ध

जगद्विख्यात "अहिंसा परमो धर्मः" के प्रचारक भगवान् गौतम बुद्ध का आदर्श चरित्र। भगवान् गौतम बुद्ध की गणना संसार के बहुत थोड़े से श्रेष्ठ पुरुषों में की जाती है, और उनका चलाया हुआ बौद्ध धर्म संसार के बहुत बड़े भाग में प्रचलित है। अतः उन भगवान् बुद्ध की जीवन-सबंधी घटनाओं आदि से परिचित होना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। पढ़िए और अशांतिपूर्ण हृदय में स्वर्गीय शांति और सुख का अनुभव कीजिए! मूल्य ।~), रंगीन जिल्द ॥)

(२) युधिष्ठिर

इसमें महाभारत के धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मगाथा तथा उनका आदि से अंत तक का चरित लिखा गया है। चरित के साथ-साथ सारे महाभारत पढ़ने का भी आनंद मिलता है। भाषा सरल, छपाई सुंदर, काग़ज़ अच्छा एंटिक, टाइटिल पर बढ़िया तिरंगा चित्र। मूल्य ॥), रंगीन जिल्द १)।

(३) दिलावर सियार

यह Reynard the fox नामक अँगरेज़ी की पुस्तक का अनुवाद है। बाल साहित्य में मूल पुस्तक का ऊँचा स्थान है, और हिंदी में उसका यह पहला ही अनुवाद है। सियार पाँड़े की दिलावरी की बातें पढ़कर बालकों का मनोरंजन कीजिए। मूल्य ॥), रंगीन जिल्द ॥)

आज ही आर्डर भेज दीजिए—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ



उपन्यास



धुनिक हिंदी-साहित्य में उपन्यास को विशेष स्थान प्राप्त है। प्राचीन कवियों ने काव्य-ग्रंथ तथा नाट्य-कारों ने नाटक लिखकर साहित्य-भांडार को भरा था। परंतु नए युग में लेखकों ने अधिकतर अपना समय और मस्तिष्क उपन्यास लिखने ही में लगाया। हिंदी-साहित्य की जो नवीन पुस्तकें निकली हैं, उनमें प्रायः ६० प्रतिशत उपन्यास हैं। लेखक, प्रकाशक तथा पाठक, सबने ही उपन्यास को विशेष करके अपनाया है, यह उसका सौभाग्य है।

कोई मासिक पत्रिका ऐसी नहीं, जिसमें अनेकानेक उपन्यासों के भाँति-भाँति के विज्ञापन न निकलते हों। 'काव्य-ग्रंथों' तथा 'नाटकों' को तो 'उपन्यास' ने प्रायः निस्तेज-सा कर दिया है। यदि यही क्रम रहा, तो अति शीघ्र हिंदी के पुस्तकालय उपन्यास से ही भरे हुए दीख पड़ेंगे।

इन पंक्तियों के लिखने से मेरा यह तात्पर्य नहीं कि उपन्यास घृणित विषय है—या उसको इतनी उन्नति देना अनुचित है।

किंतु यह अवश्य है कि पश्चिमीय सभ्यता के विकास के साथ ही उपन्यास ने भी भारतीय हिंदी-साहित्य में अपना पैर जमाया है। उपन्यास साहित्य-सदन में एक नया भवन है, जो वर्षों से निरंतर परिश्रम करने पर भी अभी पूर्ण रीति से निर्माण नहीं हुआ है।

साहित्य का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में 'उपन्यास' को कोई भी नहीं जानता था। आजकल 'सर कानन डायल', 'रेनाल्डस्', 'बंकिम', 'प्रेमचंद', 'शरत्' आदि उपन्यास-लेखकों के नाम की साहित्य-संसार में धूम मची हुई है, परंतु प्राचीन समय के किसी उपन्यास-लेखक का नाम आज तक सुनने में भी नहीं आया। यही इस बात का प्रमाण है कि उपन्यास साहित्य-सदन का प्राचीन भवन नहीं है। साहित्याचार्य ऋषियों ने काव्य-ग्रंथों तथा नाटकों के विषय में अनेकशः नियम निर्धारित किए हैं, किंतु उपन्यास के विषय में उनके लेख सर्वथा मौन हैं, इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन साहित्य में 'उपन्यास' को कोई स्थान प्राप्त नहीं था।

हिंदी के उपन्यासकारों ने बँगला से विशेषकर और मराठी तथा गुजराती आदि भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद करके हिंदी-साहित्य-भांडार भरने का श्रीगणेश किया। जब स्वतंत्र रूप से हिंदी-भाषा में उपन्यास लिखे गए, तब भी बँगला के उपन्यास ही आदर्श माने

गए, और उसी प्रणाली पर हिंदी-उपन्यासकार लेखनी-बद्ध हुए।

एक समय था, जब उपन्यास पढ़ना समाज में घृणित समझा जाता था। तब "उत्तम-उत्तम उपन्यास लिखकर पाठकों के कर-कमलों में पहुँचाना चाहिए", इस उद्देश्य से बहुत-से अच्छे सामाजिक उपन्यासों के लिखने तथा लिखवाने की आयोजना की गई। इस आयोजना में, अधिकांश में, हिंदी प्रचारकों को सफलता प्राप्त हुई। आज हिंदी के बहुत-से स्वतंत्र रूप से लिखे हुए मौलिक उपन्यास दूसरी भाषाओं के प्रथम श्रेणी के उपन्यासों से टक्कर ले सकते हैं। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि प्रचुर धन व्यय करने, प्रखर मस्तिष्क लगाने तथा अधिक काल तक निरंतर परिश्रम करने पर भी हिंदी के उपन्यासों में ९९ प्रतिशत आखोर की भर्ती है। इसका कारण है। नवीन लेखक को कीर्ति-प्राप्ति की उत्कट इच्छा होती है। वह चटपट एक या दो उपन्यास लिखकर यशार्जन करना चाहता है। नवीन प्रकाशक को एक-दो उपन्यास छापकर पाठकों से धन-प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा होती है, वह एक-दो नाटक छाप-कर धनार्जन करना चाहता है, तब ये यशेच्छु तथा धनेच्छु महोदय "ख़ूब गुज़रेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो" की तरह चटपट उपन्यास छाप डालते हैं और पत्रिकाओं में 'अपूर्व उपन्यास', 'हाथ में लेकर छोड़ देना विरले ही पुरुष-पुंगव का काम है', 'हमारा दावा है कि ऐसा उपन्यास आज तक नहीं निकला', 'प्रचुर धन व्यय करके बढ़िया हाफ़टोन ब्लाक बनवाए हैं' आदि शीर्षकों से सुसज्जित विज्ञापन देना प्रारंभ करते हैं। उनका उद्देश्य केवल धनार्जन तथा यशार्जन है। केवल इतना ही, इससे अधिक कुछ नहीं।

क्या ऐसे उपन्यास वास्तव में उपन्यास कहलाने योग्य हैं? क्या ऐसे उपन्यासों से साहित्य-भांडार की वृद्धि हो सकती है? क्या ऐसे उपन्यास समाज को उन्नति के मार्ग पर ले जा सकते हैं? नहीं।

क्योंकि ऐसे उपन्यास केवल नाम के उपन्यास हैं, किंतु अंदर ढोल की पोल है—ऐसे उपन्यास उस 'चतुर्वेदी' उपाधि-संयुक्त नामवाले ब्राह्मण की नाईं हैं, जो 'को नामाऽसि' प्रश्न करने पर खीसें काढ़कर अपने निरक्षर-भट्टाचार्यत्व का परिचय देता है।

'उपन्यास' इन सब बातों से ऊपर होना चाहिए। 'उपन्यास' यदि ऐतिहासिक दृष्टि से लिखा जाय, तो वह भूत-काल की सामाजिक अवस्था का चित्र बन जाता है। यदि उसमें वर्तमान अवस्था चित्रित की गई है, तो वर्तमान काल की 'हिस्ट्री शीट' है। उपन्यास-कार यदि समाज को किसी विशेष मार्ग पर ले जाना चाहता है, तो उन विचारों को वह उपन्यास द्वारा समाज के कान तक पहुँचा सकता और अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है।

मुझे एक मुक़द्दमे की 'पेपरबुक' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह मुक़द्दमा बरेली-प्रांत का है। अभि-युक्त ने अपने बयान में कहा कि 'पीतल की मूर्ति'-नाम का उपन्यास पढ़ने से मेरे दिल में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं अपने वृद्ध पिता को डाकुओं द्वारा मरवा डालूँ, तो मैं उनकी भू-संपत्ति इत्यादि का स्वामी हो सकता हूँ। उसने यह भी कहा कि उक्त उपन्यास का कथानक भी ऐसा ही है (मैंने उपन्यास नहीं देखा है, अतः उसके संबंध में कुछ नहीं कह सकता)।

देखिए, एक साधारण उपन्यास से कितना भयंकर परिणाम निकला। कहने का तात्पर्य यह है कि उप-न्यास के कथानक सामाजिक अवस्था को उन्नत बनाने-वाले हों।

उपन्यास लिखने का उद्देश्य सामाजिक अवस्था के साथ चलता है। उपन्यासकार को चाहिए कि अपनी लेखनी द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करे। यदि समाज किसी बुरे मार्ग पर जाता हो, तो उसको जाने से रोकना चाहिए।

उपन्यास लिखने से पूर्व जिस विषय पर प्रकाश डालना हो, उसको पूर्ण रूप से जान लेना आवश्यक है। उस विषय को अच्छी तरह जाने बिना उस पर कुछ लिखना पाठकों को धोका देना है। अँगरेज़ी-भाषा के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार से किसी प्रकाशक ने पेरिस की सामाजिक अवस्था का अपने उपन्यास में चरित्र-चित्रण करने को कहा। वह उपन्यासकार प्रकाशक महोदय से धन लेकर पेरिस के एक होटल में जाकर

बसने लगा। लगभग एक वर्ष तक वहाँ रहने पर उसको वहाँ की अवस्था का पर्याप्त ज्ञान हो गया। उन बातों को उसने अपने उपन्यास में व्यक्त किया। उस उपन्यास की अत्यधिक बिक्री हुई, दोनो ने यशार्जन तथा धनार्जन किया। यही वास्तविक यशार्जन तथा धनार्जन है।

उपन्यासकार को आवश्यक है कि किसी दृश्य का चित्र खींचने से पूर्व भूगोल आदि की पुस्तकों का अध्ययन कर ले, तब उसके विषय में कुछ लिखे। दिल्ली के चाँदनी चौक का हाल लिखते समय अमीनाबाद पार्क-लखनऊ का हाल लिख देने से पाठकों को भ्रम हो सकता है। खेद की बात यह है कि हमारे बहुत-से उपन्यासकार आजकल यही कर रहे हैं और फिर भी अपने उपन्यास को मौलिक बताते हैं।

उपन्यासकार को भाषा पर पूरा अधिकार होना चाहिए। अशुद्ध भाषा लिखना सर्वथा अनुचित है। मुझे कई प्रसिद्ध सिद्धहस्त लेखकों की भाषा देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ। उन्होंने मुहावरों पर लेखनी द्वारा वह कुठार चलाया कि साहित्य-रसज्ञों की दृष्टि में वह पाप है। मुहावरों की गर्दन तोड़कर या उनके अन्य अंग मरोड़कर उनको अपना मुहावरा बना लेना वैसा ही है जैसा कि कोई पशु-चोर एक भैंस को चुराकर उसकी सींगें मोड़ ले अथवा उसकी पूँछ काटकर दूसरी भैंस की पूँछ उसके जोड़कर उस भैंस को अपनी बताने लगे। 'घर फूँककर तमाशा देखना', यह मुहावरा हमारे दैनिक बोलचाल में प्रयुक्त होता है, किंतु एक स्वनामधन्य उपन्यासकार महोदय ने 'घर बेंचकर तमाशा देखना' प्रयोग किया है। यह मौलिकता नहीं है। नवीन मुहावरे बनाकर उनको भाषा में प्रयोग करना, यह मौलिकता हो सकती है।

उपन्यासकार का कर्तव्य है कि वह विशुद्ध भाषा में उन्नत भाव व्यक्त करके सुंदर मौलिक चरित्रों का चित्रण करके साहित्य-भांडार की वृद्धि करे। यह सत्य है कि बहुधा उपन्यासकार के मार्ग में कतिपय ऐसी बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, जो उसको कर्तव्य-पथ से डिगा देती हैं। पुस्तक के दाम अधिक न हों, ताकि सब लोग सरलता से क्रय कर सकें। भाषा क्लिष्ट न हो, जिससे साधारण ज्ञानवाले भी पढ़ सकें। भाव सरल हों, जिससे समझने में कठिनाई न हो। ये ऐसी बातें हैं, जिनको ध्यान में रखकर उपन्यासकार उत्तम उपन्यास नहीं लिख सकता। इन बातों पर कार्य-बद्ध होकर जो उपन्यास लिखा जायगा, वह निस्संदेह चार आनावालों को ही रुचिकर हो सकता है। साहित्य-रमज्ञ तथा शिक्षित-समुदाय को इन उपन्यासों से कुछ लाभ नहीं हो सकता।

चरित्र-चित्रण करते समय बड़ी सावधानी से काम करना आवश्यक है। कई उपन्यासों में इतने गंदे चरित्र व्यक्त किए गए हैं कि वे साहित्य-समाज के लिये कलंक का विषय हैं। उपन्यास के चरित्रगण पाठक के साथी हो जाते हैं। पढ़ते समय कई चरित्रों से उसकी मैत्री हो जाती है। कुछ चरित्रों से उसे सहानुभूति, अन्यों से घृणा उत्पन्न हो जाती है। पाठक किसी चरित्र की वीरता पर वाह-वाह तथा किसी की सुंदरता पर विमुग्ध हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि उत्तम उच्च आदर्श को लेकर चरित्र चित्रित किए जायँ। पाठक और उपन्यास का घनिष्ठ संबंध है, जैसा कि कवि ने कहा है—

My days among the days are passed
Around me I behold
And wherever these casual eyes are cast
The mighty maids of old.
My never failing friends are they
With whom I converse day by day.

यदि किसी भले आदमी का संग किसी नीच व्यभिचारी, कामी, जुआरी, चोर, शराबी अथवा कुकर्मी मनुष्य से पड़ जाय, तो उसकी संगति का प्रभाव उसके हृदय, उसके चरित्र, उसकी कीर्ति आदि पर अवश्य पड़ेगा। इसी प्रकार उपन्यास के दुश्चरित्रों अथवा सच्चरित्रों का प्रभाव पाठक पर अवश्य पड़ेगा—बल्कि पड़ता है, जैसाकि उपरि-लिखित दृष्टांत में कहा गया है।

पश्चिमीय देशों में 'उपन्यास' साहित्य-संसार तथा समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। अच्छे सिद्ध-हस्त उपन्यासकार का आदर किसी ज़मींदार, राजा या रईस से कम नहीं होता। वहाँ उपन्यासकार को पथ-प्रदर्शक, सुदशा-प्रवर्तक तथा साहित्य-भांडार-

वर्द्धक समझते हैं। हमारे यहाँ दुर्भाग्य से अभी तक उपन्यास तथा उपन्यासकार को वह मान, आदर तथा श्रेय प्राप्त नहीं हुआ है। यह एक प्रकार की बाधा है। उपन्यास पढ़ना समय नष्ट करने की बात है—उपन्यास पढ़नेवालों को समाज समुचित आदर से नहीं देखता—यह भूल है।

प्रत्येक मनुष्य न तो सारे संसार में जा सकता है, न भिन्न-भिन्न सभा-समाजों में जाकर वहाँ के मनुष्यों की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अतः उसको आवश्यक है कि वह उपन्यास का अध्ययन करे।

उपन्यास पढ़कर आप भिन्न-भिन्न देशों की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। घर बैठे हुए आप पेरिस अथवा लंदन के जगमगाते हुए होटलों में निवास का आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

हिंदी-साहित्य में यद्यपि उपन्यास को उच्चासन प्राप्त है, तथापि हमको इतनी उन्नति से संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। यह मान भी लिया जाय कि हिंदी में भी उत्तमोत्तम उपन्यास विद्यमान हैं, तथापि संसार की अन्य भाषाओं के उपन्यासों की अपेक्षा हिंदी-उपन्यास उतने उच्च नहीं हैं, अतः हिंदी-उपन्यासकारों को अपनी लेखनी वेग तथा उत्साह से चलाना चाहिए, ताकि साहित्य का यह अंग शीघ्र ही पूर्ण रीति से परिपक्व हो जाय।

चंद्रनारायण सक्सेना
बी० ए० "साहित्य-भूषण"

स्त्री-समाज

बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ



अब वह समय नहीं रहा कि हम स्त्रियों के सामने वह रूप रक्खें, जिसके लिये गोस्वामी तुलसीदासजी ने "चित्र-लिखे कपि देखि डेराती" लिखा है। सारल्य तथा कोमलता के भीतर की वह सृष्टि निस्संदेह अनुपम थी। उस त्रेता-काल की कल्पना की ही तरह कोमल विलास के मंजु अंक पर पली हुई स्त्रियों को प्राप्त करके तन्य के कठोर पुरुषों को संसार के यथार्थ सुख का अनुभव होता था, और उस समय के चित्रण में अत्यंत कठोर और अत्यंत कोमल का ही सम्मिश्रण समाज तथा काव्यों में किया गया है। परंतु अब आवश्यकता है, हरएक मनुष्य के पुतले में, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, कोमल और कठोर, दोनों भावों का विकास हो। अब दोनो के लिये एक ही धर्म होना चाहिए। पुरुष के अभाव में स्त्री हाथ समेटकर निश्चेष्ट बैठी न रहे। उपार्जन से लेकर संतान-पालन, गृह-कार्य आदि वह सँभाल सके, ऐसा रूप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए। पहले दोनो के भाव और कार्य अलग-अलग थे, अब दोनो के भाव और कार्यों कार्य एक ही में साम्य होना आवश्यक है। इस तरह गार्हस्थ्य धर्म में स्वतंत्रता बढ़ेगी। परावलंबन न रह जायगा। स्त्रियाँ भी मेधा की अधिकारिणी होंगी। हृदय और मस्तिष्क, दोनो का दोनो में एकीकरण होगा। एक ही में हम उभय धर्मों को देख सकेंगे। इस समय जो हम यह देखते रहते हैं कि किसी कारण पुरुष से एक दीर्घकाल के लिये विच्छेद हो जाने पर स्त्री बिलकुल निस्सहाय हो जाती है, अपने घर का काम नहीं सँभाल पाती, अनेक प्रकार की असुविधाएँ आ जाती हैं; बदमाशों की उन पर दृष्टि पड़ती है, मन-ही-मन वे डरी रहती हैं, घर उन्हें जेल से भी बढ़कर हो जाता है, यह सब न होगा। पुरुष के अभाव में स्त्री स्वयं उसका स्थान अधिकृत करेगी।

इसके लिये प्रथम आवश्यक साधन है शिक्षा। हमारे देश में स्त्रियों की शिक्षा के अभाव से जैसी दुर्दशा हो रही है, उसकी वर्णना असंभव है। उनका लांछन देखकर पाषाण भी गल जाते हैं। प्रतिदिन भारतवर्ष का आकाश स्त्रियों के क्रंदन से गूँजता रहता

है। युवती विधवाओं के आँसुओं का प्रवाह प्रतिदिन बढ़ता जाता है। प्राचीन शीर्णता ने नवीन भारत की शक्ति को मृत्यु की हो तरह घेर रक्खा है। घर की छोटी-सी सीमा में बँधी हुई स्त्रियाँ आज अपने अधिकार, अपना गौरव, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य, सब कुछ भूली हुई हैं। उनके साथ जो पाशविक अत्याचार किए जाते हैं, उनका कोई प्रतिकार नहीं होता। वे चुपचाप आँसुओं को पीकर रह जाती हैं। उनका जीवन एक अभिशप्त का जीवन बन रहा है। उन्हें जो यह शिक्षा दी जाती है कि तुम्हें अपने पुरुष के सिवा किसी दूसरे पुरुष का मुख नहीं देखना चाहिए, यह उनके अंधकार जीवन में टार-पेंटिंग है। सिर झुकाए हुए ही उन्हें तमाम जीवन पार कर देना पड़ता है। इस उक्ति का यथार्थ तत्त्व तो उन तक नहीं पहुँचता। यह तो आत्मा का सर्वोत्तम विकास है। फल यह होता है कि उन पर हमला करने के लिये गुंडों को काफ़ी सुयोग मिलता है। उनका स्वास्थ्य उनके अवरोध के कारण क्रमशः क्षीण ही होता रहता है। शिक्षा से यह सब दूर होगा। देवियाँ अपना दिव्य रूप पहचानेंगी। उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान होगा। वे नदियों की तरह समाज के करारों से बहती हुई सहस्रों जीवन प्रतिदिन पवित्र कर जायँगी। उनका जो स्थान संसार की स्त्रियों में है, उसे प्राप्त करेंगी। राष्ट्र की स्वतंत्रता की उपासना में उनके जो अधिकार हैं, उन्हें ग्रहण कर अपने कर्तव्य का पालन करेंगी। बच्चों की पीड़ा के समय उन्हें तड़पना न होगा। वे उनकी दवा कर उन्हें रोग-मुक्त कर सकेंगी। समाज की नृशंसता, जो प्रतिदिन बढ़ती जाती है, उन पर अपना अधिकार न जमा सकेगी। विदेश जाने पर मकान में उनकी जो दुर्दशा होती रहती है, उससे वे बची रहेंगी। ज़रूरत पड़ने पर वे स्वयं उपार्जन करके अपना निर्वाह कर सकेंगी। प्रतिदिन एक ही प्रकार का भोजन खाते-खाते जो जी ऊब जाता है, ऐसा न होगा। वे अनेक प्रकार के भोजन पकाने की विधियाँ सीख लेंगी, और संसार में रह संसार के यथार्थ सुखों का अनुभव करेंगी। कहा है, संसार में जितने प्रकार की [illegible] हैं, शिक्षा सबसे बढ़कर है। शिक्षा में शब्द-विद्या का स्थान और उच्च है। यही विद्या ज्ञान की धात्री कहलाती है। जितने प्रकार के दैन्य हैं, जितनी कमज़ोरियाँ हैं, उन सबका शिक्षा के द्वारा ही नाश हो सकता है। अशिक्षित, अपढ़ होने के कारण ही हमारी स्त्रियों को संसार में नरक-यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं—उनके दुःखों का अंत नहीं होता।

"कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः", मनु महाराज के इस कथन का अब पालन नहीं किया जाता। यह सच है कि इसका बहुत कुछ कारण देश का दैन्य ही है; पर पुरुषों की अश्रद्धा भी कहीं कम नहीं। जो संपन्न हैं, जिन्हें दोनो वक्त मज़े से भोजन मिल जाता है, वे भी बालिकाओं की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते, बल्कि उच्च स्वर से यही घोषणा करते हैं कि लड़कियों को शिक्षा देना पाप है, वे बिगड़ जाती हैं। पीछे पिता-माता को समाज में रहने-लायक़ भी नहीं रखतीं। इनके दिमाग़ में 'सारंगा-सदावृक्ष' की कहानी पढ़ लेने तक ही विद्या परिमित है। ये लोग रूढ़ियों के ऐसे ग़ुलाम हैं कि जीते-जी उन्हें छोड़ नहीं सकते, और इससे समाज का पहिया ज़रा भी आगे नहीं बढ़ने पाता। देहात में शिक्षा की बहुत कमी है, वहाँ लड़कों को ही मदरसा भेजना दुश्वार है। गाँवों से कोस-कोस की दूरी पर मदरसे हैं। हरएक तहसील में मुश्किल से एक मिडिल स्कूल है। आठ-आठ, दस-दस कोस के लड़के मिडिल स्कूल के बोर्डिंग-हाउस में ठहरकर पढ़ नहीं सकते। अधिकांश लोगों की आर्थिक स्थिति वैसी नहीं है। जो लोग संपन्न हैं, उनमें अकारण प्यार की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि वे बच्चे को अपने से अलग नहीं कर सकते, वह मूर्ख भले ही रह जाय। जहाँ लड़कों का यह हाल है, वहाँ लड़कियों की बात ही क्या? हरएक गाँव से प्रतिदिन जितनी भीख निकलती है, यदि उतना अन्न रोज़ एकत्र कर लिया जाय, तो गाँव में ही एक छोटी-सी पाठशाला खोल दी जा सकती है। एक शिक्षक की गुज़र उससे हो जायगी। अविद्या का जो यह प्रबल मोह फैला हुआ है, यह न रह जायगा। बालिकाओं के लिखने-पढ़ने का गाँव ही में प्रबंध हो सकता है। इस तरह उनके प्रति सच्चा न्याय गाँववाले

कर सकते हैं। शहरों में तो लड़कियों को पढ़ाने के अनेक साधन हैं।

अब घर के कोने में समाज तथा धर्म की साधना नहीं हो सकती। ज़माने ने रुख़ बदल दिया है। हमारे देश की लड़कियों पर बड़े-बड़े उत्तरदायित्व आ पड़े हैं। उन्हें वायु की तरह मुक्त रखने में ही हमारा कल्याण है। तभी वे जाति, धर्म तथा समाज के लिये कुछ कर सकेंगी। उन्हें दबाव में रखकर इस देश के लोग अपने जिस कल्याण की चिंतना में पड़े हैं, वह कल्याण कदापि नहीं, प्रत्युत निरी मूर्खता ही है। आज तक जितने अत्याचार, बलात्कार आदि हुए हैं, वे सब पर्दानशीन स्त्रियों पर ही हुए हैं। पर्दे के भीतर जितना तीव्रता से दृष्टि प्रवेश करना चाहती है, खुले मुख पर उतनी तीव्रता से नहीं आक्रमण करती। पाशविक प्रवृत्तियाँ अंधकार में ही प्रबल वेग धारण करती हैं। प्रकाश को देखकर वे दब जाती हैं, उनका साहस नहीं होता। इसलिये स्त्रियों को हर बात में प्रकाश को सम्मुखीन करना चाहिए। ज्ञान के विना जीवन व्यर्थ है। निर्वाह होना कठिन है। स्वावलंबन नहीं आता। स्वावलंब कोई पाप नहीं, प्रत्युत पुण्य है। हमारे देश के लोग इस समय आधे हाथों से काम करते हैं। उनके आधे हाथ निष्क्रिय हैं। जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जायँगे, कार्य को सफलता हमें तभी प्राप्त होगी। अभी जो काम स्त्रियाँ करती हैं, वह काम नहीं; वह संस्कारों का प्रवर्तन है। उससे मेधा और नष्ट होती है। मनुष्य-जाति मशीन के रूप में बदल जाती है। हमारी स्त्रियों की यही दुर्दशा है। उनका कार्य ज्ञान-संयुक्त नहीं होता। कारण, एक ही कार्य की प्रदक्षिणा उन्हें प्रतिदिन करते रहना पड़ता है। उससे उनको बुद्धि का संयोग नहीं हो पाता। बुद्धि को कभी एक ही कार्य पसंद भी नहीं। वह नित्य नए आविष्कार करना चाहती है। विद्या के न रहने से हमारे देश की स्त्रियाँ मेधा बुद्धि तथा कला-कौशल को भी खो चुकी हैं। विद्या-बुद्धि से रहित मनुष्य मनुष्यता से गिरकर इतर श्रेणी में चला जाता है। उस पर दूसरे लोग ही प्रभुत्व करते हैं। धार्मिक संस्कारों के चक्र की प्रदक्षिणा करते रहने के कारण ही हम पराधीन हैं, हम पर दूसरी-दूसरी जातियों के बुद्धिमान् लोग प्रभुत्व कर चुके हैं, और कर रहे हैं। हम लोग स्वयं जिस तरह ग़ुलाम हैं, उसी तरह अपनी स्त्रियों को भी ग़ुलाम बना रक्खा है, बल्कि उन्हें दासों की दासियाँ कर रक्खा है। इस महादैन्य से उन्हें शीघ्र मुक्ति देनी चाहिए। तभी हमारी दासता की बेड़ियाँ कट सकती हैं। जो जीवन बाहरी स्वतंत्रता नहीं प्राप्त कर सकता, वह मुक्ति-जैसी सार्वभौमिक स्वतंत्रता कब प्राप्त कर सकता है? उसकी धर्म की साधना भी ढोंग है। धर्म तो वह है जिससे अर्थ, काम तथा मोक्ष, तीनो मिल सकें। सच्चा धर्म इस समय स्त्रियों के सब प्रकार के बंधन ढीले कर देना, उन्हें शिक्षा की ज्योति से निर्मल कर देना ही है, जिससे देश को तमाम कामनाओं की सिद्धि होगी, और स्वतंत्र-सुखी जीवन बाह्य सुतंत्रता से तृप्त होकर आत्मिक मुक्ति के संधान में लगेगा। रूढ़ियाँ कभी धर्म नहीं होतीं, वे एक-एक समय की बनी हुई सामाजिक शृंखलाएँ हैं। वे पहले की शृंखलाएँ जिनसे समाज में सुथरापन था—मर्यादा थी, अब ज़ंजीरें हो गई हैं। अब उनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं। अब उन्हें तोड़कर फेंक देना चाहिए। जिन लोगों ने ऐसा किया है, वही लोग देश में पूजनीय हो रहे हैं। वे ही कहते हैं, और शास्त्रों के उद्धरण देते हुए कहते हैं कि अब हर तरह से स्त्रियों को शिक्षित देवियों के रूप में परिणत करो, जिससे वे स्वयं अपने कल्याण की कल्पना कर सकें; नहीं तो, हे देशवासियो, प्रतिदिन तुम्हारे ऊपर स्त्री-हत्या का पाप चढ़ रहा है। इससे तुम्हारा निस्तार न होगा।

जब तक स्त्रियों में नवीन जीवन की स्फूर्ति भर नहीं जायगी, तब तक ग़ुलामी का नाश नहीं हो सकता। यहाँ एक समय था, जब ज्ञान का इतना प्रकाश फैला हुआ था कि बच्चों को पालने पर झुलाती हुई माता गाती थी—"त्वमसि निरंजनः।" क्या कोई इस समय कल्पना भी कर सकता है कि वह कितना उज्ज्वल युग था? मुक्ति का यथार्थ सूत्र स्त्रियों के ही हाथ में है। स्त्रियों का आदर-सम्मान जब तक नहीं होता, तब तक देवता भी संतुष्ट नहीं होते, भगवान् मनु ने स्वयं कहा है। स्त्रियाँ यदि अपढ़ रह गईं, यदि उन्हीं की ज़बान न मँजी, तो बच्चा पढ़कर भी कुछ कर नहीं सकता। मौलिकता का

मूल बच्चे की माता है। भाषा का सुधार, संशोधन स्त्रियाँ ही करती हैं। जब तक वर्तमान खड़ी बोली स्त्रियों के मुख से मँजकर नहीं निकलती, तब तक उसमें कोमलता का आना स्वप्न है। वही बच्चा भविष्य के हिंदी-साहित्य का महाकवि है, जिसे अपनी माता के मुख से साफ़-शुद्ध, मार्जित, सरल, श्रुतिमधुर तथा मनोहर खड़ी बोली के सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। हमारे देश की ललित कलाओं का विकास भी हमारी स्त्रियों के विकास की ओर अनिमेष दृष्टि से हेर रहा है। जब तक हमारी गृह-देवियाँ लक्ष्मी तथा सरस्वती के रूपों में हमारे गृह का अंधकार दूर नहीं करतीं, तब तक सुख तथा शांति की कल्पना पुरुषों के मस्तिष्क की एक बहुत बड़ी भूल है, यह हरएक भारतवासी को समझ लेना चाहिए। लक्ष्मी और सरस्वतियों को क़ैद करना भी अपने ही अंधकार के दीपक को गुल कर देना है। राष्ट्र की स्वतंत्र भावना कैसे पैदा हो? घर की देवियाँ आँसू बहाएँ और आप बहादुर हो जायँ! ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ, और न कभी हो सकता है। कोई भी सोच सकता है, स्त्रियों को उत्साह देने से पुरुषों में कितनी बड़ी शक्ति का जागरण हो सकता है। फिर आज उत्साह देना तो दूर रहा, राष्ट्र के कल्याण के लिये नारियों को भी पुरुषों के साथ रहने की आवश्यकता आ पड़ी है। श्रीकृष्ण के नाम पर निछावर होनेवाली हिंदू-जाति बिलकुल भूल गई है कि श्रीकृष्ण का जन्म कहाँ और कैसे हुआ था। इस घटना में जो सत्य छिपा हुआ है, उनके बंदीगृह में जन्म लेने का जो अर्थ है, जहाँ से स्वतंत्रता पैदा होती है, उसका उपयोग कितने मनुष्य आज कर रहे हैं? श्रीकृष्ण का नाम लेना तो बहुत सहज है; पर उनके आदर्श पर काम करना उतना ही कठिन। पर कठिनता का सामना किए बिना कभी महान् फल की प्राप्ति हो भी नहीं सकती। हमारे शास्त्रों के प्रति पृष्ठ में उदारता तथा स्वतंत्रता का शंख-नाद सुन पड़ता है। पर उसके दुरुपयोग की भी हद नहीं। रूढ़ियों में पड़कर ज्ञान का जो दुरुपयोग किया जा रहा है, उसके मानी ही दासता के हो गए हैं। यह उसी का फल-भोग चल रहा है। ज्ञान का निरादर अपने ही मस्तिष्क का अपमान है, और स्त्रियों की मान-हानि साक्षात् लक्ष्मी और सरस्वती की मान-हानि है। हिंदुओं ने दोनो का अनादर किया। वैसा ही फल भी मिला। अब, जब कि तमाम संसार स्त्रियों की मर्यादा तथा विकास को सामने कर, हर तरह की समृद्धि का अधिकारी हो रहा है, हमें अपने शास्त्रों से शिक्षा लेनी चाहिए, स्त्रियों की योग्यता के बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील होना चाहिए, संसार में अपने विकास की ज्योति फैलानी चाहिए। स्पर्द्धा ही जीवन है। उसमें पीछे रहना जीवन की प्रगति को खोना है। जीवन में विजय प्राप्त करना हर जाति और हर धर्म की शिक्षा है। वहाँ स्त्रियाँ ही प्रधान सहायक के रूप से संसार के रंग-मंच की अभिनेत्री के रूप से आती हैं। स्त्रियों का शव लेकर विजयी होना असंभव है। वे ही स्त्रियाँ, जो बाह्य विभूति की मूर्तियाँ हैं, लक्ष्मी तथा सरस्वती की कृतियाँ हैं, अपने पुरुषों में शक्ति-संचार कर सकती हैं। स्त्रियों के रूप में जो विजय घर में मौजूद है, वही बाहर भी मिलती है। घर का अभागा कभी बाहर प्रसिद्धि नहीं पाता। अतएव हमें स्त्रियों की बाह्य स्वतंत्रता, शिक्षा-दीक्षा आदि पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है। अन्यथा अबके पुरुषों की तरह उनके बच्चे भी, गुलामी की अँधेरी रात में उड़नेवाले, गीदड़ होंगे; स्वाधीनता के प्रकाश में दहाड़नेवाले शेर नहीं हो सकते। और, हमारी मातृ-भाषा का मुख उज्ज्वल नहीं हो सकता।

"निराला"



कटहल का अचार



टहल को उबालकर राई, नोन, धनिया, लाल मिर्च, मेथी और हल्दी अंदाज़ से लेकर कूट-पीसकर कटहल में मिलावे, फिर मिट्टी के घड़े में रख ऊपर से कड़ुआ तेल भर दे, और घड़े का मुँह कपड़े से ढक घाम में रख दे। पद्रह दिन बाद काम में लावे।

मूली का अचार

कोमल मूली लेकर टुकड़े कर डाले और मिट्टी या काठ के बर्तन में रखकर थोड़ा नमक बारीक पीसकर मिला दे, और दो-तीन दिन घाम में रखकर हिला-डुला दिया करे। तीसरे दिन हल्दी, राई, मिर्चा, धनिया, नमक और भुना हींग बारीक पीसकर मिला दे और थोड़ा-सा पानी गरम करके छोड़ दे, फिर घाम में रखकर एक सप्ताह प्रतिदिन दो-चार बार हिला-डुला दिया करे। इस प्रकार अचार तैयार हो जायगा।

गाजर का अचार

देशी गाजर मँगाकर लंबी-लंबी बीच से चीर ले और उनके बीच की कड़ी गाँठ निकाल डाले, फिर धीमी-धीमी आँच में उबाले। जब उबल जायँ, तो उतारकर पानी निचोड़ डाले, और घड़े में भरकर राई, नमक, लाल मिर्च, हल्दी, धनिया सबको पीसकर डाले, और मेथी तथा हींग भूनकर पीसे, फिर गाजरों में मसाला डालकर थोड़ा-सा गरम पानी डाल दे, और घाम में एक सप्ताह रखकर दिन में कई बार हिला-डुला दिया करे। एक सप्ताह बाद काम में लावे।

कैथे का अचार

कच्चे कैथे लेकर फोड़ डाले और उनके भीतर का गूदा निकालकर उबाल डाले। ऊपर से हल्दी, मेथी, राई, धनिया, मिर्चा, कुल मसाला भूनकर नमक अंदाज़ से मिलाकर एक बड़े बरतन में कैथे के गूदे को लौटकर सब मसाला खूब मिला दे। ऊपर से एक सेर तेल डालकर एक मिट्टी के बरतन में भरकर धूप में रख दे।

करौंदे का अचार

बड़े-बड़े पके हुए ताज़े करौंदे मँगाकर उबाल डाले। फिर हल्दी, नमक, राई, मिर्च आदि पीसकर मिला दे, और थोड़ा तेल डालकर घाम में रख हिला-डुला दिया करे। यह अचार भी तेल या नोन-पानी का डाला जाता है। करौंदे सिरके में भी डाले जाते हैं।

कमरख का अचार

कमरख के टुकड़े कर थोड़ा नमक मिलाकर घाम में रख दे। फिर हल्दी, मिर्चा, नमक, धनिया, ज़ीरा, हींग भूनकर पीसकर मिला दे। इसमें पानी या तेल डालने की ज़रूरत नहीं है। ऊपर लिखा सब मसाला डालकर घाम में रखकर हिला-डुला दिया करे। दो-तीन दिन बाद काम में लावे।

छुहारे का अचार

छुहारे मँगाकर साफ़ करके उबाल डाले। फिर गुठली निकालकर सब मसाला पीसकर छुहारों में भर दे, और डोरे से बाँधकर अमृतबान में भरकर काग़ज़ी नींबू का अर्क़ ऊपर तक भरके कपड़े से बाँधकर घाम में रक्खे। दो-तीन दिन बाद उठाकर साया में रख दे, और एक सप्ताह बाद काम में लावे।

मोहनभोग

(१) सूजी के बराबर घी डालकर कड़ाई में भून ले। जब भुन जाय, तो खौलता हुआ गरम पानी व दूध सूजी से तिगुना उसमें डाल दे और सूजी से ड्योढ़ा बूरा डालकर चला दे। ऊपर से मेवा डाल दे।

(२) मैदा या सूजी और घी को कड़ाई में चढ़ाकर मध्यम आँच से भून ले। जब कुछ-कुछ सुर्ख़ी आ जाय, तब छिले और कतरे हुए बादाम डाल दे। जब बादाम में भी सुर्ख़ी आ जाय तब मिसरी की चाशनी में (जो पहले से बनाकर तैयार कर लेना चाहिए) डालकर चलाता रहे। थोड़ी देर बाद पिस्ता और किशमिश भी डाल दे और गुलाब-जल का छींटा देता रहे। जब हलवा गाढ़ा हो जाय, तो उतार ले।

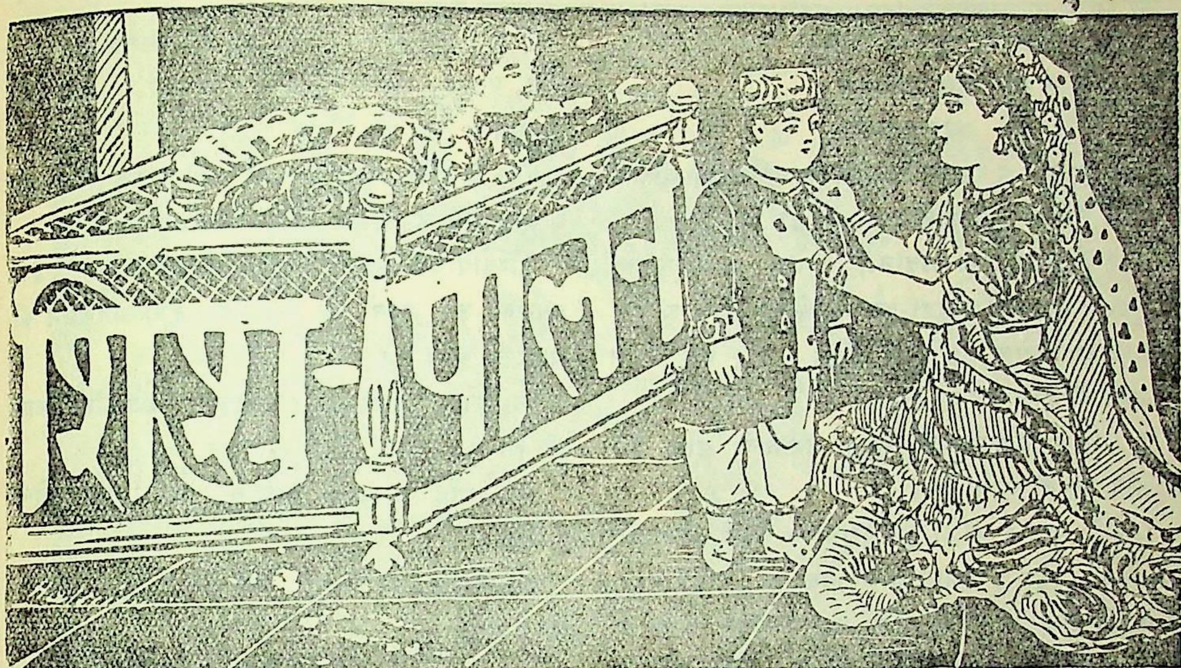
आलू के पापड़

आलू को उबालकर पीस लो। उसमें अंदाज़ से नमक, मिर्च, गर्म मसाला और भुना ज़ीरा मिलाकर छोटी-छोटी टिकियाँ बनाकर एक साटे कपड़े पर रखकर धूप में सुखा लो। टिकियाँ यदि आसानी से न बनें, तो थोड़ा पानी डालकर गीला कर लो। जब सूख जायँ, तो कपड़े को उलटकर पानी के छींटे देकर टिकियों को छुड़ा लो और उन्हें सुखाकर रख दो। जब जी चाहे, घी में भूनकर खाओ।

क़ुलफ़ी

दूध को ख़ूब औटा ले और मिसरी मिलाकर गुलाब या केवड़ा के इतर के बूँद डाल दे और टीन की क़ुलफ़ियों में भरकर ऊपर से ढकन बंद करके उनका मुँह आटे से ख़ूब बंद कर दे और एक बरतन में चुनकर रख दे, और ऊपर-नीचे बरफ़ भर दे। दो घंटे में क़ुलफ़ियाँ तैयार हो जायँगी।

श्रीत्रिपुरारिशरण श्रीवास्तव



बच्चों की पसली चलना



अफ़ीम को गरम करके पेट पर लेप करने से बंद हो जाती है।

(२) गंदाबिरोज़ा की पट्टी बराबर बाँधने से पसली चलना बंद हो जाता है।

(३) बारहसिंघा को पानी में घिसकर गरम करके लगाने से आराम होता है।

(४) खाने का सोडा ४ मा०, आक की जड़ की छाल ३ मा०, असगंध ६ मा०, सबको पीसकर चूर्ण करे। एक रत्ती मा के दूध में देने से पसली चलना बंद हो जाता है।

होम्योपैथिक—एकोनाइट की ४-६ ख़ूराकें देने से आराम हो जाता है।

ब्राइनिया, हेपर सल्फ़र भी दिया जाता है।

बाईकेमिक—'कालीम्यूर'—यह ख़ास दवा है। अगर ज्वर हो, तो 'फेरम फ़ास' के साथ देनी चाहिए।

बच्चों के दाँत

(१) सँभालू की जड़ का एक छोटा टुकड़ा बच्चों के गले में बाँधने से दाँत सहज में निकल आते हैं।

(२) चूना और शहद मिलाकर मसूढ़ों पर लगाने से बालक के दाँत जल्दी निकल आते हैं।

होम्योपैथिक की ख़ास दवा—बिलाडोना, केमेमिला और चाइना।

बाईकेमिक—केलकेरिया फ़ास। यह ख़ास दवा है। दूसरे-तीसरे दिन एक-दो ख़ूराक दे देने से दाँत जल्दी निकलते हैं। मैगनेशिया फ़ास भी केलकेरिया फ़ास के साथ देते हैं। अगर मुँह से राल ज़्यादा बहे, तो नैटरमस्यूर भी दिया जाता है।

बच्चों की हिचकी

(१) यदि बालक को हिचकी अधिकता से आने लगे तो कलौंजी एक माशा बारीक पीसकर शहद में मिलाकर चटावे।

(२) सौंफ़ और शक्कर पीसकर पिलाने से भी हिचकी बंद हो जाती है।

(३) हिचकी के रोगी को कच्चा सिंघाड़ा खिलाने से भी आराम होता है।

(४) मुलहठी के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से हिचकी बंद हो जाती है।

(५) गर्म घी मलने से भी आराम होता जाता है।

(६) नारियल पीसकर शक्कर मिलाकर चटावे, और गीला कपड़ा तालू पर रक्खे ।

दस्त आना

(१) ज़रा-से प्याज़ के रस में बाजरे-बराबर अफ़ीम घोलकर देने से बालक के दस्त बंद हो जाते हैं ।

(२) ज़ीरा, हरा पोदीना, मुनक्का, काला नमक, उपर्युक्त तीनों चीज़ें बराबर-बराबर लेकर नमक अंदाज़ से डालकर बारीक पीस डाले । दिन में ४-५ बार चटाने से बच्चों के दस्त बंद हो जाते हैं ।

(३) मरोड़फली को सेंधा नमक के साथ देने से आँव बंद हो जाती है ।

(४) सोंठ १ तोला, गुड़ पुराना २ तोले, दोनो को मिलाकर झड़बेर के समान गोली बना ले । प्रत्येक दस्त आने के बाद एक गोली ठंडे जल से सेवन करने से दस्त या आँव का पड़ना, दोनो को लाभ करता है ।

(५) जब आँव आती हो, तो बायबिड़ंग, अजमोद, पीपल महीन पीसकर चावलों के पानी में खिलावे ।

(६) यदि लोहू आता हो, तो सफ़ेद ज़ीरा, कुड़े के बीज जल में पीसकर मिसरी मिलाकर खिलावे ।

होम्योपैथिक—कैमोमिला । यह ख़ास दवा है । ख़ासकर उन दस्तों के लिये, जो दाँत निकलने की वजह से आते हैं ।

चाइना, पलसेटला, एपीकाक, कलकेरिया कार्ब भी देते हैं ।

जब आँव के दस्त आते हों, तो मयूरिग्रस देना चाहिए ।

बाइकेमिक—कालीम्यूर, कलकेरिया फ़ास, मेगनीशिया फ़ास ।

श्रीत्रिपुरारिशरण श्रीवास्तव



गर्भवती स्त्रियों के लिये उपयोगी नियम

१. बादी, बासी अथवा वायु बढ़ानेवाली और दस्त को रोकनेवाली चीज़ें न खानी चाहिए।

२. गर्भिणी स्त्रियों को लंघन, मैथुन, बहुत भोजन, रात में जागरण, शोक, सवारी, रक्त-मोचण, मल-मूत्र आदि वेगों का रोकना, उत्कट आसन से बैठना अत्यंत हानिकारक हैं।

३. मलिन, विकृत आकार और अंग-हीन किसी स्त्री का स्पर्श न करे।

४. परिश्रम बहुत भी न करे, और बिलकुल थोड़ा भी नहीं। देहात की परिश्रमी स्त्रियों की संतान स्वस्थ होती है, और उन्हें प्रसव-कष्ट की पीड़ा कम होती है।

५. दिन को ज़्यादा न सोवे और न रात में ज़्यादा जागे।

६. मैले और बहुत चुस्त कपड़े न पहने।

७. भयानक स्थानों में जाना-आना और भयंकर कर्मों का देखना वर्जित है।

८. दुर्गंधित पदार्थों को न सूँघे और न ऐसे पदार्थों को देखे, जो देखने में बुरे लगें और न 'कर्ण-अप्रिय' वाणी सुने।

९. भावी माता के शरीर और हृदय की जैसी अवस्था होगी, वैसी ही भिन्न-भिन्न स्वभाव और योग्यता वाली संतान होती है। अतएव लड़ाई-झगड़े, क्रोध, चिंता और बुरे विचारों से सदा दूर रहना आवश्यक है। पौष्टिक पदार्थ शरीर का भोजन है। और उत्तम विचार मन का।

१०. कभी दौड़कर न चले और न धमक से उतरे या चढ़े, और न कोई भारी चीज़ उठावे।

११. चंद्र या सूर्य-ग्रहण कभी न देखे।

१२. सब नियमों से श्रेष्ठ नियम स्वच्छ वायु का सेवन करना है।

सौर का प्रबंध

ज़च्चाख़ाना साफ़ व सुथरा और अच्छी जगह होना चाहिए। इसके लिये कोई सड़ी-बदबूदार कोठरी, जहाँ बहुत ही नमी हो और कई साल तक बंद रही हो, नहीं होना चाहिए।

जाड़ों में ज़च्चाख़ाना गरम रहे और उसमें हवा के आमने-सामने दो-तीन बड़े-बड़े रोशनदान या खिड़की अवश्य हों, वर्ना कमरे की हवा गंदी होकर बच्चे और मा दोनो के लिये हानिकारक होगी।

ज़च्चाख़ाने की ज़मीन साफ़ और सूखी होनी चाहिए।

दरवाज़ा दक्षिण व पूर्व की ओर हो। कमरे की लंबाई कम-से-कम आठ हाथ और चौड़ाई चार हाथ होना चाहिए।

बच्चा पैदा होने से पहले ये सामान तैयार कर लेना चाहिए—

(१) ख़ूब कसा हुआ पलँग जिस पर गुदगुदा बिछौना हो और उस पर मोमजामा बिछा हो।

(२) पेट पर लपेटने के लिये मोटा और साफ़ कपड़ा।

(३) पुराना धुला हुआ बहुत-सा साफ़ कपड़ा।

(४) रेशम का तागा बटा हुआ, नाल बाँधने के लिये।

(५) तेज़ क़ैंची या चाक़ू नाल काटने के लिये (इसको गर्म पानी में ख़ूब उबाल डालना चाहिए। ऐसा करने से नाल काटने में कुछ ख़राबी नहीं होने पाती)।

(६) गुनगुना पानी।

(७) कारबालिक साबुन दाई वग़ैरह के हाथ धुलाने के लिये।

(८) साफ़ धुनकी हुई रुई ज़च्चा के मुक़ाम पोछने और उस पर फ़ाहा रखकर बाँधने के लिये।

(९) "लाइसोल"—यह एक अँगरेज़ी दवा है। इसके लोशन से दाई के हाथ धुलाना चाहिए, और बाद में ज़च्चा को पिचकारी देने के लिये।

दाई को सौर में भेजने से पहले उसके कपड़े बदलवा देना चाहिए और उसके नाख़ून यदि बड़े हों, तो कटवा देना चाहिए। नाख़ून बड़े रहने से गर्भस्थान में खरोंच लग जाने का भय रहता है। उसके हाथ कारबालिक साबुन और गर्म पानी से ख़ूब धुला देना चाहिए।

सौर में बहुत-से मनुष्य न रहना चाहिए।

रोशनी ऐसी जगह रक्खी जाय, जो ज़च्चा के आँखों के पीछे हो।

श्रीत्रिपुरारिशरण श्रीवास्तव

समाज-सुधार

वर्ण-विभाग

(गत अंक से आगे)



प्रश्न—क्यों घबराते हो ? हिंदू-संगठन हो रहा है । हिंदू-महासभा काम कर रही है । अब तो अवश्य ही हिंदू-जाति एक सूत्र में बद्ध हो जायगी ।

उत्तर—हिंदू-संगठन और हिंदू-महासभा के होने से उन्नति के कुछ चिह्न तो अवश्य दिखाई पड़ते हैं, परंतु रोग की निवृत्ति की यह एकमात्र औषधि नहीं है। प्रथम त्रुटि तो यह है कि हिंदू-सभा की विद्वन्मंडली का दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं हुआ । विद्वन्मंडली यह तो चाहती है कि उसको वही सम्मान-युक्त पद दे दिया जाय, जो मुसलमानों में जमीयतुल-उलमा को है, और जिस प्रकार जमीयतुल-उलमा के फ़तवे मुसलमान लोग अक्षरशः मानने को उद्यत हो जाते हैं, उसी प्रकार हिंदू लोग भी विद्वन्मंडली की व्यवस्थाओं को मानने लगें । परंतु इस विद्वन्मंडली में मुसलमानी जमीयतुल-उलमा के-से गुण विद्यमान नहीं । वह अपने अधिकार तो चाहती है, परंतु कर्तव्यों का पालन नहीं करती । मुसलमानी जमीयतुल-उलमा का प्रत्येक सदस्य प्रत्येक मुसलमान से प्रेम रखता है । उसे किसी से घृणा नहीं । उसको मुसलमान-जाति की वृद्धि की हर समय चिंता है । वह मुसलमानों की आवश्यकताओं पर हर घड़ी दृष्टि रखता है, परंतु हिंदू-सभा की विद्वन्मंडली में कोई ऐसा सदस्य नहीं, जिसको नीच ऊँच का विचार न हो, जो हिंदुओं की हीन दशा और संख्या की न्यूनता पर आँसू बहाता हो और जिसने मिथ्या जाति-अभिमान को छोड़ दिया हो ।

प्रश्न—यह तुमने पहला दोष बताया । दूसरा दोष क्या है ?

उत्तर—दूसरा इससे भी बड़ा दोष यह है कि हिंदू-सभा के नेताओं ने यह निश्चित नहीं किया कि हिंदुत्व का सामान्य लक्षण क्या है । इस समय केवल यह पुकार हो रहा है कि हिंदू निर्बल हैं, हिंदुओं की संख्या कम हो रही है, इसलिये संगठन करना चाहिए, परंतु याद रखना चाहिए कि कोई संगठन बिना भावों की एकता के अधिक समय तक नहीं चल सकता । कम-से-कम नेताओं में तो अवश्य भावों की एकता होनी चाहिए, तभी साधारण जनता उनका अनुसरण कर सकेगी ।

अभी तक यही निश्चय नहीं हुआ कि हिंदू है कौन ?

प्रश्न—इस झमेले से क्या लाभ। जो अपने को हिंदू कहे, वह हिंदू है।

उत्तर—नहीं-नहीं। यह व्यर्थ का झमेला या वाक्-जाल नहीं है। इसके भीतर एक तत्त्व है, जिसको आप समझे ही नहीं। यदि केवल हिंदू कहने से ही कोई हिंदू हो जाय और उसके सम्मुख कोई विशेष हिंदू-आदर्श न रक्खा जाय, तो वह हिंदू बनेगा कैसे। क्या तुम कभी किसी से कह सकोगे कि वह अच्छा हिंदू है, और वह बुरा। फिर तो जो तुमको अपने पीछे चलाना चाहेगा, वह अपने को हिंदू कहलाने लगेगा।

प्रश्न—क्या तुमको ज्ञात नहीं कि हिंदू-महासभा से निश्चित हो चुका है कि जो धर्म भारतवर्ष के भीतर उत्पन्न हुए हैं, उनके माननेवाले हिंदू हैं ?

उत्तर—ज्ञात तो है, परंतु इससे हमारी संतुष्टि नहीं होती। क्योंकि हम देखते हैं कि क़ादियानी मुसलमानों का मत भी पंजाब के क़ादियान-स्थान से आरंभ हुआ है। सर आग़ाख़ाँ की पूजा भी इसी अभागे भारत-वर्ष में आरंभ हुई है। यदि वह भी किसी दिन अपने को हिंदू कहकर हिंदू-सभा में मिल जायँ और कहें कि हम अछूतों को उठावेंगे, तो तुम्हें मालूम है, क्या हाल होगा ? वस्तुतः बात यह है कि स्थान का एक होना कभी संगठन उत्पन्न नहीं कर सकता। विचारों की समानता ही संगठन उत्पन्न कर सकती है। आज-कल 'हिंदू' का जो लक्षण किया जाता है, वह विध्यात्मक नहीं, किंतु निषेधात्मक है। हिंदू कौन है ? जो मुसल-मान और ईसाई नहीं, वह हिंदू है। यह कोई लक्षण है, और क्या इतने से आप हिंदुओं में उत्तम गुणों का संचार कर सकते हैं ? लक्षण ऐसे होने चाहिए, जिनको दृष्टि के सम्मुख रखकर मनुष्य में उन गुणों के धारण करने के लिये उत्साह हो। मुसलमानों से पूछो, तो वह बतलावेंगे कि मुसलमान वह है, जो पैग़ंबर मुहम्मद साहब को मानता हो और क़ुरान शरीफ़ पर ईमान लावे। उनके लिये अच्छा मुसलमान वह है, जो मुहम्मद साहब को अधिक माने, क़ुरान शरीफ़ के अनुकूल अधिक चले। इसी प्रकार जितना जो मनुष्य ईसा-मसीह पर अधिक ईमान लावे और बाइबिल को अधिक माने, वही उतना ही अधिक अच्छा ईसाई है। क्या इस प्रकार हिंदुओं को भी कह सकते हो ? जब कोई निश्चित उद्देश्य ही सामने नहीं रक्खा, तो क्या कहकर उत्साह दिलावें, लोगों को क्या मालूम हो कि क्या बनना है।

प्रश्न—तुम हिंदुओं का उद्देश्य निश्चित करके उनको संकुचित बनाना चाहते हो। हिंदू उदार हैं, उनके नियम विश्वव्यापी हैं। हिंदू-धर्म ऐसा उदार धर्म है, जिसमें उच्च कोटि के आत्मवाद से लेकर नीच कोटि का जड़वाद तक उपस्थित है। हिंदू-धर्म में यही तो गुण है।

उत्तर—ऐसी उदारता को दूर से ही प्रणाम। तुम जानते हो कि ऐसी उदारता ने ही हिंदुओं को अनेक प्रकार के ढोंगों और आडंबरों का शिकार बना दिया। यदि ऐसी ही उदारता हो, तो ईसाई और मुसलमानों को भी हिंदू कहने लगो। क्या यह लोग "उच्च कोटि के आत्मवाद से लेकर नीच कोटि के जड़वाद" तक किसी श्रेणी में नहीं आते। फिर क्या है ? इन लोगों की चढ़ बनेगी, और थोड़े ही दिनों में भी गो-मांसभक्षी मुहम्मद साहब के भक्त हिंदू ही भारतवर्ष में दीखने लगेंगे। इसी उदार शिक्षा का परिणाम है कि हिंदू-लीडरों को हिंदू-धर्म पर वह विश्वास नहीं जो मुसलमान-लीडरों को मुसलमानी धर्म पर है। इसलिये हिंदू-लीडरों को अपनी आव-श्यकताओं का इतना परिज्ञान नहीं, जितना मुसलमान-लीडरों को है। इसलिये जब कभी हिंदू और मुसल-मानों की संयुक्त सभा हिंदू-मुसलमानों के पारस्परिक झगड़े निबटाने के लिये होती है, तो हिंदू-लीडर अवि-श्वासियों की भाँति अपने उद्देश्य को जल्दी छोड़ बैठते हैं, और मुसलमान चींटे की तरह चिपटते हैं। कारण यह है कि उनका उद्देश्य निश्चित है और हिंदुओं का अनिश्चित। हिंदुओं ने 'अनिश्चित' का नाम 'उदार' रख छोड़ा है। हिंदुओं के बड़े-बड़े लीडर कह बैठते हैं—"यदि हिंदू मुसलमान हो जायँ, तो हानि ही क्या ? रहेंगे तो वह इसी देश के निवासी। यदि बाईस करोड़ हिंदुओं में से लाख-दो लाख मुसलमान हो भी गए, तो किसी का क्या बिगड़ा। यदि कुछ हिंदू ताज़िया पूजते हैं, तो पूजने दो। इससे

तो मेल अधिक होगा।" इस प्रकार के ऊटपटाँग वचन हिंदुओं के बड़े-बड़े नेताओं के मुख से नित्यप्रति सुनने में आते हैं। इसको वे उदारता और सहिष्णुता कहते हैं। जानते हो कि इसका कारण क्या है? इन लीडरों को कभी यह नहीं बताया गया कि हिंदू-धर्म क्या है? उसके महत्त्व पर उनको विश्वास भी कभी नहीं हुआ। उनको यह भी मालूम नहीं हुआ कि हिंदू-धर्म की क्या विशेषता है और किसी मनुष्य को हिंदू-धर्म छोड़ने से क्या हानि होती है। मुसलमानों को इसका पता है। प्रत्येक मुसलमान जानता है कि किसी व्यक्ति का मुसलमानी धर्म से बाहर रहना उसके तथा अन्य मुसलमानों के लिये कितना हानिकारक है, अतः वे अपना दृष्टिकोण कभी नहीं छोड़ते। फिर एक तमाशा और है। हिंदुओं की उदारता और सहिष्णुता बेचारे अछूतों पर नहीं, भंगी-चमारों पर नहीं, नाई धोबियों पर नहीं किंतु हिंदू-धर्म के विरुद्ध मतावलंबियों पर है। यह उदारता नहीं, किंतु कायरता है। कायर मनुष्य अपनी वीरता अपनी स्त्री पर, अपने बच्चों पर और अपने नौकरों पर ही दिखाता है। बाहरवालों के लिये वह भीगी बिल्ली ही रहता है। ये हिंदू लोग भी अपनी सहिष्णुता दूसरों पर ही दिखाते हैं, अपनों पर तो इनकी छुरी ही चलती रहती है। यदि इनको हिंदू-धर्म की विशेषताओं का पता होता, तो ये स्वयं भी उन्हें ग्रहण करते और दूसरों को उनके ग्रहण करने से ख़ुश और परित्याग करने से दुखी होते। जिसको ये विश्व-व्यापी और उदार हिंदू-धर्म कहते हैं, वह वस्तुतः लक्षण-रहित, अनिश्चित, ऊटपटाँग हिंदू-धर्म है। जो कहता है कि हमारे हिंदू-धर्म की यह श्रेष्ठता है कि उसमें नीच कोटि के जड़वाद से उच्चकोटि का आत्मवाद तक विद्यमान है, उस भलेमानस को आत्मवाद की श्रेष्ठता और जड़वाद की नीचता का ही परिज्ञान नहीं, और न उसे आत्मवाद की श्रेष्ठता पर विश्वास है। उसकी तो ऐसी उदार थाली है, जिसमें हलवा, पकौड़ी, मांस, घास और मल सभी रक्खे हुए हैं। वह ख़ुश हो रहा है कि देखो मेरी कैसी बड़ी थाली है जिसमें उच्च ब्राह्मण से लेकर पशु, पक्षी और वाराहजी तक का भोजन उपस्थित है। वस्तुतः उस ख़ुश होनेवाले को हलवे का सुगंध और मल की दुर्गंध का पता नहीं है। यही हाल हमारे उदार हिंदुओं का है। यदि वह किसी हिंदू को ताज़िया-दारी करते देखते हैं, तो ख़ुश होते हैं कि चलो अच्छी मेल-मिलाप की सूरत निकल आई। इनको यह पता नहीं कि हिंदू-धर्म में क्या विष मिलाया जा रहा है।

गंगाप्रसाद उपाध्याय



१. उपन्यास-कहानी

शेलकश—लेखक, मैक्सिम गोर्की; अनुवादक, श्री 'श्रीकांत'; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; प्रकाशक से ही प्राप्य; मूल्य ॥=)

प्रस्तुत पुस्तक 'साहित्य-मणिमाला'-नामक एक नई पुस्तकमाला की छठी मणि है। सुंदर छपाई, बढ़िया जिल्द और आकर्षक रूप है। पुस्तक एक रूसी कहानी का अनुवाद है।

मूल-पुस्तक के लेखक मैक्सिम गोर्की रूसी साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। क्रांतिकारी रूस की 'प्रोलिटारियट' सोसाइटी, दरिद्र समाज का जैसा सुंदर चित्र वे चित्रित कर सके हैं, वैसा अब तक संसार का दूसरा कोई लेखक नहीं कर सका। शराबी, चोर, उचक्कों और ग़रीब मज़दूरों का ऐसा सजीव और सुंदर चित्रण अँगरेज़ी और फ्रेंच-साहित्य में भी हमें नहीं मिला है। साम्राज्यवादी इँगलैंड की भाषा होने के कारण अँगरेज़ी-साहित्य विलासिता और अमीरी के चित्रों से भरा पड़ा है। चार्ल्स डिकेंस के उपन्यासों के सिवा बहुत कम लेखकों की कृतियों में दरिद्र-समाज ने स्थान पाया है। इसी प्रकार विक्टर ह्यूगो, गस्टव फ़्लावर्ट आदि दो-एक उच्चकोटि के फ्रेंच-साहित्यिकों को छोड़कर बहुत कम फ्रेंच-लेखकों ने दुःख-दरिद्रता के चेरे इस दरिद्र-समाज पर कुछ लिखने की चेष्टा की है। इन लेखकों के दारिद्र्य-चित्र अधिकतर घृणा-व्यंजक ही हैं। उनसे दरिद्र-समाज पर हमारी सहानुभूति का उद्रेक नहीं होता। हम उसकी ओर आकर्षित नहीं होते। किंतु रूसी साहित्य ने दरिद्र-समाज के चित्रण करने में कमाल कर दिया है। केवल पिछले सौ वर्षों में ही ज़ारशाही के फ़ौजी बूटों की ठोकर से जागी हुई रूसी राष्ट्रीयता ने अपने असली आधार दरिद्र-समाज को अपनाकर सर्वक्षेत्र-व्यापिनी क्रांति का जो बीजारोपण कर दिया था, उसी बीज के विविध अंकुरों में से रूसी साहित्य भी एक है। वह इस समय केवल अपने दरिद्र-समाज के चित्रों के कारण ही संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यों में गिना जाता है। डास्ट्रोवस्की, टार्जनीव्, शेखभ्, गारशिन, कारोलेंको, मैक्सम गोर्की, टॉलस्टाय आदि लेखकों ने उसे अमर कर दिया है। इन लोगों के शब्द-चित्रों से रूसी दरिद्र-समाज सजीव हो गया है। सोवियट रूस की सफल क्रांति का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं औपन्यासिकों को है।

ऐसे प्रसिद्ध साहित्य से हिंदी के पाठक अभी तक बहुत कम परिचित हैं। गोर्की का तो वे नाम तक नहीं

जानते। अतएव साहित्य-सदन के संचालकों का यह प्रथम प्रयास अत्यंत स्तुत्य है। 'साहित्य-मणिमाला' में, अन्य मालाओं के समान, क्षीण बंग-साहित्य की कायरता-पूर्ण प्रेम-कहानियाँ न गूँथी जायँ, तो अत्युत्तम हो। उनके स्थान पर वीरता-पूर्ण और देश को जागृति की ओर ले जानेवाली पुस्तकें ही गूँथने से समाज का बड़ा उपकार होगा। गोर्की के अन्य ग्रंथ भी इसी प्रकार जनता के सामने लाकर—जैसा कि उनका इरादा है—वे बड़ा उपकार करेंगे। हिंदी के अंधे, प्रेम-कहानी को ही गल्प का उच्चतम आदर्श माननेवाले नए और पुराने गल्प-सम्राटों को इससे पता तो चलेगा कि कहानी होती क्या चीज़ है। दो-चार सौ-डेढ़ सौ पेज की कहानियाँ लिखकर चट गल्प साम्राज्य पर छापा मारने की तब उनकी हिम्मत न होगी।

अनुवाद की भाषा अत्यंत उत्तम और चलती हुई है। उसमें मूल-भाषा रूसी की ओज-रक्षा ख़ूब हुई है। कहीं-कहीं तो वह काव्य का-सा मज़ा दे जाता है। जैसे—(पृ० ७०)

"सुदूर क्षितिज पर, नाव से आगे, समुद्र के काले जल में से नील-वर्ण की एक विशाल ज्वालामयी खड्ग बाहर निकलती जान पड़ती थी। उसका फल अंधकार का हृदय भेदता हुआ, बादलों में इधर-से-उधर, चमक रहा था।" इत्यादि।

पृष्ठ १३ का प्रथम पैरा भी इसी काव्यमयी भाषा का एक बहुत ही उत्तम उदाहरण है।

इस सफल अनुवाद के लिये अनुवादक महोदय को बधाई।

× × ×

प्रत्यागत—लेखक, श्रीवृंदावनलालजी वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट, झाँसी; प्रकाशक, श्री-अयोध्याप्रसाद शर्मा, स्वाधीन-प्रेस, झाँसी; मूल्य १॥); पृष्ठ-संख्या ३०० से ऊपर

अभी हाल में ही वर्माजी के दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। यह उनका तीसरा उपन्यास है। पिछले दो उपन्यासों ने हिंदी-साहित्य में एक ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। 'लगन' को तो लोगों ने हिंदी-साहित्य का सर्वोत्तम रोमांस बतलाया है। वर्माजी की क़लम से निकले हुए इस तीसरे उपन्यास में भी उत्तम औपन्यासिकता का निदर्शन होता है। भाषा और भावों का सम्मिश्रण बहुत ही उत्तम हुआ है। वर्माजी के अन्य उपन्यासों के समान इस उपन्यास में भी बुंदेलखंडी समाज का ही एक चित्र चित्रित किया गया है। बुंदेलखंड-जैसे अशिक्षित प्रदेश में गँवार ब्राह्मणों का समाज पर बड़ा गहरा अधिकार है। वे उसमें मनमाने उलट-फेर किया करते हैं। कभी रामायण-सभा को लेकर और कभी सहभोज को लेकर वे ऐसी ऐसी लीलाएँ दिखलाते हैं कि लीलामय को भी उनसे झेंप मालूम होता है। निरपराध व्यक्तियों को बिरादरी से निकाल देना, नृशंस बॉयकॉट करवा देना तथा सदा अपने हाथ में अधिकार-सूत्र बनाए रखने की चेष्टा करना ही उनके ब्राह्मणत्व का लक्षण रह गया है। जिस प्रकार कुत्ता सूखी हड्डी को नहीं छोड़ना चाहता, उसी प्रकार वे भी इस निरर्थक अधिकार-चिंता, पद-प्राप्ति की चेष्टा से मुख नहीं मोड़ना चाहते। बल्कि कभी-कभी तो वे ऐसे भयानक कृत्य कर बैठते हैं कि दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। स्वार्थ-सिद्धि के लिये भगवान् की मूर्ति को उलट देने, उसे सिर के बल खड़ा कर देने, में भी उन्हें संकोच नहीं मालूम होता।

बुंदेलखंडी ब्राह्मण-समाज के इन्हीं सद्गुणों को लेकर इस उपन्यास की रचना हुई है। सुधार-प्रेमी, राष्ट्रवादी मंगलदास घर से रूठकर, ब्राह्मण-पिता का आश्रय छोड़कर, मलाबार जा पहुँचता है। वहाँ मोपला-विद्रोह में मुसलमान बनाया जाता है। किंतु पुलीस की कृपा से फिर घर आता है। वहाँ वह पंडितपन का शिकार होता है। उसका सब घर बहिष्कृत होता है। प्रायश्चित्त करने को तैयार होने पर भी पंडित लोग उसे लेने को तैयार नहीं होते। तब नई रोशनी के नौ-जवानों की शरारत से इन पुराने ठूँठों की मरम्मत होती है। इन महाशयों में एक धूर्त नवलबिहारी भी हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा क़ायम रखने के लिये मूर्ति के पैर उलट देते हैं। किंतु जनता को पता लग जाता है कि यह दैवी कोप नहीं है, किंतु मानवी क्रोध है। उनका बहिष्कार करके मरम्मत की जाती है। बस, यही कथा है। आदि से अंत तक घटना-क्रम ख़ूब आकर्षक है। वर्माजी

की प्रौढ़ लेखनी के रथ पर बैठा हुआ पाठक का मन बड़े मज़े में घटना-क्रम की उलझी सड़क पर चला जाता है।

पुस्तक प्रत्येक समाज-सुधार-प्रेमी के अवश्य पढ़ने योग्य है। जाग्रत् युवक-समाज में ऐसी पुस्तकों का नित्य पाठ होना चाहिए।

× × ×

वेदना—लेखक, श्रीविश्वनाथसिंह शर्मा ; प्रकाशक, सत्साहित्य-प्रसारक मंडल १५५।१ ए मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता ; मूल्य २॥) : पृष्ठ-संख्या ३२८ ; सजिल्द।

'वेदना' भी एक सामाजिक उपन्यास है। अछूतों के प्रति बड़ी जातियों के भयानक अत्याचारों का यह चित्र है। एक अस्पृश्य कहलानेवाला अछूत-नामधारी हिंदू भोला किस प्रकार उच्च कोटि का धर्म-प्रेम प्रदर्शित करता है। वह कैसा सच्चरित्र, दृढ़-विश्वासी और धर्म-भक्त है, तथा अपने को ऊँची जाति का कहनेवाले जनार्दन ब्राह्मण और हृदयनारायण आदि नीच, दुश्चरित्र, व्यभिचारी, झूठे, कायर और दुष्ट प्रकृति के मनुष्य किस प्रकार उस पर अनंत अत्याचारों का बोझ लादकर उसे पीस डालना चाहते हैं, केवल इस अपराध के लिये कि उसके घर में एक सुंदर पुत्री है और वह स्वयं एक अछूत है। यही इस उपन्यास का विषय है। धर्म के ढोंगी हिंदू-समाज और उसके नेता पेटू, पतित और कर्म-हीन ब्राह्मण-नामधारी नर-पशुओं की संकीर्ण-हृदयता का चित्र चित्रण करने में लेखक ने सफलता पाई है। यही शायद उनका उद्देश्य भी था। किंतु यदि सफल उपन्यास-लेखक कहलाने के लिये ही उन्होंने यह प्रयत्न किया है, तो उन्हें अभी काफ़ी समय तक साहित्य-सेवा करना चाहिए तथा उपन्यास-लेखन-कला का तुलनात्मक अध्ययन भी करना चाहिए। सफल उपन्यास अभी हिंदी के लिये दुर्लभ-से ही हैं। हाँ, शिक्षा तथा मनोरंजन के लिये उसका उपन्यास-भंडार अच्छी पुस्तकों से भरा जा रहा है। उन्हीं उपयोगी उपन्यासों में 'वेदना' को भी गिना जा सकता है।

कुछ खटकनेवाली बातें आ जाने के कारण कथा में भारीपन आ गया है। लेखक की पुराने ढंग की स्वगत बातचीत, कहीं-कहीं प्रच्छन्न उपदेश देने के ढंग की-सी भाषा और कहीं पादरी साहब के-से 'वाज़' का लहज़ा कथा के प्रवाह में कुछ बाधा देता है। इन दो-एक बातों का ज़माना अब नहीं है। आधुनिक उपन्यास में लेखक के मनोगत भावों और उसके व्यक्तित्व की खुली हुई छाप नहीं होती। वह पात्रों के कार्य-कलाप, भाव-भंगी, समालाप और पारस्परिक व्यवहार से ही उचित रीति में प्रकट की जाती है। लेखक स्वयं किसी पात्र के रूप में ही प्रकट होता है, वह ऊँचाई पर खड़ा हुआ उपदेश नहीं देता।

आशा है, लेखक महोदय हमारी इन पंक्तियों से बुरा न मानकर ईमानदारी की सम्मति और सलाह के रूप में ही इन्हें ग्रहण करेंगे।

पुस्तक की छपाई, काग़ज़, जिल्द तथा बहिरंग ख़ूब सुंदर है। लेकिन २॥) दाम शायद हिंदोस्तानियों के लिये ज़्यादा है।

× × ×

पाथेयिका—गल्प-संग्रह। लेखक, श्री ठा० श्रीनाथ-सिंह ; प्रकाशक, तरुण भारत-ग्रंथावली कार्यालय, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य १)

पुस्तक का बहिरंग जितना सुंदर है, उतना उसका अंतरंग नहीं है। कहानियाँ अजीब ढंग की और बिलकुल नौसिखियों की लिखी-सी मालूम होती हैं। उनमें इस बात का ख़याल ही नहीं रक्खा गया कि आधुनिक गल्प जीवन का एक सजीव चित्र होती है। कल्पना और अनुमान की भोंडी उड़ान को उसमें कोई स्थान नहीं। इसीलिये शायद कहीं-कहीं ऐसी अस्वाभाविकता आ घुसी है कि बस देखते ही बनता है। भूमिका-लेखक महोदय ने शायद आँख मूँदकर मित्रता का कर्तव्य निबाहा है, जो इस प्रकार की 'थर्ड क्लास' कहानियों की अद्वितीय प्रशंसा में इतनी स्याही को सफ़ेद कर डाला है। हिंदी-साहित्य में इस प्रकार का फ़ेवरिटिज़्म एकदम बंद होना चाहिए। प्रत्येक भूमिका-लेखक, समालोचक और प्रशंसक को सदा सत्य बात का ही अनुमोदन करना चाहिए। मित्र-भाव से प्रेरित होकर जनता को धोका देना भारी अन्याय है। इससे लेखक महोदय के हृदय में अस्वाभाविक अभिमान तो उत्पन्न होता ही है, जनता को भी ख़ूब धोका हो जाता है।

हाँ, 'पाथेयिका' की गल्पें क़िस्सा तोता-मैना पढ़नेवाले युवकों के मनोरंजन की अच्छी सामग्री है। ये उस प्रसिद्ध क़िस्से से हज़ारगुना अच्छी हैं।

× × ×

दिल्ली-एक्सप्रेस—लेखक, श्रीहरद्वारप्रसादजी जालान ; मूल्य १)

'दिल्ली-एक्सप्रेस' रेलवे सीरीज़ का उपन्यास है। लंबी यात्रा में केवल समय व्यतीत करने के लिये यह कथानक अच्छा और मनोरंजक है। किंतु औपन्यासिक दृष्टि से यह बिलकुल साधारण-सी चीज़ है। एक नव-युवक मारवाड़ी पहले केवल मज़ाक़ में ही एक वेश्या को अपने दिल्ली-एक्सप्रेस के रिज़र्व्ड डिब्बे में बैठने की आज्ञा दे देता है। फिर मामला गहरा होता देख घबराता है। आगे उसकी पत्नी एक स्टेशन पर उसे मिलती है, तब वेश्या और पत्नी के लिये उसके मन में संघर्ष उत्पन्न होता है। पत्नी और वेश्या के हृदयों में भी मानसिक बवंडर उठकर एक दूसरे की यात्रा को अशांतिमय बना देते हैं। बमुश्किल तमाम यात्रा समाप्त होती है। लेकिन लोगों के दिलों में वह अपना डंक छोड़ जाती है। कलकत्ता वापस आने पर फिर वही मानसिक उलझन प्रारंभ होती है, और हमारे भोले, बुद्धू मारवाड़ी युवक महोदय अपनी सती पत्नी के लिये सौत-रूप में उस वेश्या को ग्रहण करने का इरादा करते हैं। पत्नी बेचारी अपनी बेवक़ूफ़ी-भरी झूठी पति-भक्ति के कारण उन्हें अनुमति दे देती है, और ख़ुद आत्म-हत्या कर लेती है। उधर उस वेश्या को मारवाड़ीजी दिल्ली-एक्सप्रेस की लाइन पर आत्म-हत्या करते हुए पाकर बचा लाते हैं और बाद को पत्नी-रूप में ग्रहण करते हैं। सब काम दिल्ली-एक्सप्रेस में ही होता है। अंत में परिणाम भी दिल्ली-एक्सप्रेस के द्वारा ही निकलता है। इसीलिये शायद पुस्तक का यह नामकरण हुआ। ऐसी सदाचार और नीति को तिलांजलि देनेवाली पुस्तकें न-मालूम लोग क्यों लिखते हैं। बक़ौल 'चाँद' मारवाड़ी लोग वैसे ही बहुत पाकदामन हैं, उस पर "दिल्ली-एक्सप्रेस" की शह उनमें और भी पवित्र विचार उत्पन्न करेगी, ऐसा हमारा विश्वास तो है नहीं भाई! हाँ, जालानजी अपने युवकों के विचार अच्छी तरह जानते हैं। उनका ही ऐसा विश्वास हो सकता है।

× × ×

२. नाटक

स्वप्नवासवदत्ता—लेखक, महाकवि भास ; अनुवादक, राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त ; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी ; मूल्य ॥=)

'स्वप्नवासवदत्ता' संस्कृत के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व लिखे हुए इस नाटक में महाकवि भास की प्रौढ़ प्रतिभा का पूर्ण विकास हुआ है। भारतीय नाटक-साहित्य का यही सबसे पहला सफल नाटक है। इससे पहले के लिखे अन्य कवियों के नाटकों का पता ही नहीं लगता। ऐसे प्रसिद्ध और सुंदर नाटक को हिंदी में प्रकाशित करके साहित्य-सदन ने बड़ा अच्छा काम किया है।

अनुवादकर्ता श्रद्धेय श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त स्वयं प्रसिद्ध कवि हैं। अतएव अनुवाद की सफलता निश्चित ही है। भाषा के अलावा मूल-श्लोकों का पद्य-बद्ध अनुवाद तो और भी उत्तम हुआ है। उन्हें पढ़ने में मूल पाठ का-सा ही आनंद आता है। १२ वर्ष पहले गुरु-मुख से स्वप्नवासवदत्ता का अध्ययन करते समय हमें जो आनंद आया था, वही इस हिंदी-अनुवाद के पढ़ने से भी प्राप्त हुआ। ऐसा मालूम हुआ, मानो हम कोई मौलिक रचना पढ़ रहे हैं। ऐसे सुंदर नाटक को हिंदी-प्रेमियों द्वारा अवश्य आदर मिलना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-मणिमाला की ३री मणि है। माला में भास के अन्य नाटकों के भी प्रकाशन की बात भूमिका में कही गई है। हम इस प्रयत्न का हृदय से स्वागत करते हैं।

× × ×

३. कविता

दूर्वादल—संग्रह। लेखक, श्रीसियारामशरणजी गुप्त ; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी ; मूल्य ॥=) ; सजिल्द।

श्रीसियारामशरणजी हिंदी के नवीन कवि-समुदाय में अग्रणी हैं। 'मौर्य-विजय', 'आर्द्रा' आदि उच्च कोटि की कविता ने आपकी पर्याप्त प्रसिद्धि कर दी है। आपकी

कविता में प्रवाह, भाव-प्रवणता और संगीत ख़ूब होता है। भाषा की विशुद्धता तो गुप्त-परिवार की कविताओं का एक ख़ास गुण है। जिन्होंने आपकी 'आर्द्रा' का अध्ययन किया है, वे कहते हैं कि उसमें गुप्तजी की प्रतिभा का ख़ूब विकास हुआ है। 'दूर्वादल' गुप्तजी की समय-समय पर लिखी हुई तथा हिंदी-पत्रों में प्रकाशित कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं का पाठकों ने ख़ूब आदर किया था। सभी प्रसिद्ध पत्रिकाओं में वे प्रकाशित होती रही हैं। अतएव इन बिखरी हुई कणिकाओं का संग्रह करके एक सुसंबद्ध मणि-रूप में जनता के सामने रखने के लिये साहित्य-सदन धन्यवादार्ह है। पुस्तक 'साहित्य-मणिमाला' की ९वीं मणि है।

वैसे तो 'दूर्वादल' की सभी कविताएँ पढ़ने योग्य हैं, किंतु उनमें से 'वृद्ध', 'बाढ़', 'घट', 'कोजागर पूर्णिमा', 'तुलसीदास', 'गत दिवस', 'गृहप्रदीप', 'मृत्युभय', 'लेखनी', 'जननी', 'मूर्ति', 'समीर के प्रति'-नामक कविताएँ बहुत ही सुंदर हैं।

× × ×

विषाद—संग्रह। लेखक, श्रीसियारामशरणजी गुप्त ; साहित्य-सदन, चिरगावँ से प्रकाशित ; मूल्य ।~)

यह भी श्रीसियारामशरणजी गुप्त की नई तथा प्रौढ़ कविताओं का संग्रह है। हार्दिक भावों के चित्रण करने में इस संग्रह में उन्होंने ख़ूब कुशलता दिखलाई है। प्रत्येक कविता में मूर्तिमान् विषाद के दर्शन होते हैं। निम्न-लिखित कुछ कविताएँ तो बहुत ही उत्तम हुई हैं—'किरण', 'स्मृति', 'मौनालाप', 'अभिसार', 'घनाह्लाद'। 'घनाह्लाद' की पंक्तियाँ तो इतनी सुंदर मालूम हुई हैं कि उन्हें उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सका। देखिए, कैसी सुंदर पंक्तियाँ हैं—

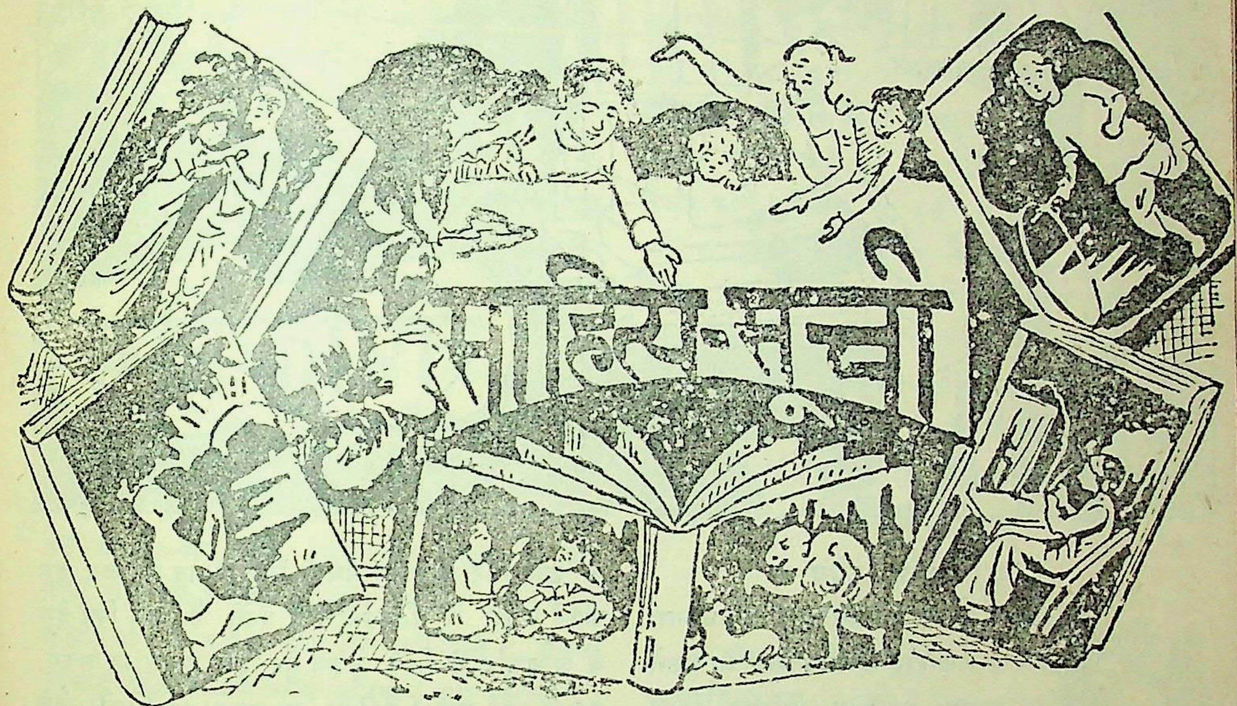
पावस का यह घनघटा पुंज
कर स्निग्ध धरा का नव निकुंज
बरसा बरसाकर सुरसधार,
करता है नभतल में विहार।
भरकर नव मौक्तिक बिंदुमाल,
वसुधा का यह अंचल विशाल
आनंदविकंपित है अधीर ;
क्रीड़ा-रत है सुरभित समीर।
नव-सूर्य-करोज्ज्वल, रजत-गात,
झर-झरकर यह निर्झर प्रपात
कर उथलित प्रचुर प्रमोदपान
करता है कलकल कलित गान।
रह-रहकर यह पिक बार-बार,
कर रहा मधुरिमा का प्रसार ;
है हरित धरा का हेम-गात्र
भर ओतप्रोत प्रमोदपात्र।

× × ×

अमर शहीद यतींद्र—लेखक, श्रीमंगलदेव शर्मा ; प्रकाशक, राष्ट्र-भारती मंडल (पुस्तक-विक्रेता और प्रकाशक), प्रयाग ; मूल्य ॥=) ; पृष्ठ-संख्या १७८

जो जाति अपने वीरों का सम्मान करना नहीं जानती, जो उनकी जीवनी का पारायण नहीं करती, वह कभी जीवित नहीं रह सकती। उसकी वीरात्माएँ ही उसके जीवन का प्रधान साधन हुआ करती हैं। आत्मोत्सर्ग के अनुपम कार्यों द्वारा जिन माता के लालों ने भारतीय राष्ट्र का मुख उज्ज्वल किया है, जिनके अदम्य साहस और अभूतपूर्व त्याग के कारण उसका नाम अमर हो गया है, उन्हीं भारतीय वीरात्माओं में वीरवर यतींद्र की भी गणना है। पं० मंगलदेव शर्मा ने उन वीराग्रणी देश-भक्त यतींद्र की जीवनी लिखकर हिंदी का बड़ा उपकार किया है। यतींद्र की यह जीवनी अब तक प्रकाशित जीवनियों में सर्व-श्रेष्ठ कही जा सकती है। इसमें दत्त और भगतसिंह-जैसे देश के लिये सर्वस्व निछावर करनेवाले युवकों का भी परिचय देकर शर्माजी ने और भी अच्छा किया है। भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में—विशेषतः राजनीतिक बंदियों के अधिकारों के संबंध में—इन तीन वीर युवकों का नाम सदा अमर रहेगा। आगामी भारतीय संतति इनके नाम पर गर्व से फूल उठेगी। ऐसी वीरात्माओं का एक ओजः-पूर्ण जीवनचरित्र लिखकर शर्माजी ने भी भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास के लिये उत्तम सामग्री इन पृष्ठों में जुटा दी है। प्रत्येक देश-प्रेमी तथा कायर भारतीय युवक को इन वीरात्माओं की इस जीवनी का अवश्य पाठ करना चाहिए।

सुधींद्र वर्मा



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुई—

(१) 'आत्मकथा' (द्वितीय खंड)—लेखक, महात्मा गांधी; मूल्य १।)

(२) 'क्या करें?' (दूसरा भाग)—मूल-लेखक, श्रीटॉलस्टाय; अनुवादक, श्रीक्षेमानंद 'राहत'; मूल्य १)

(३) 'खेलो भैया'—लेखक, श्रीविद्याभूषण 'विभु'; मूल्य ।)

(४) 'सफलता का रहस्य'—मूल-लेखक, मिस्टर वर्नार मैकफेडन; अनुवादक, श्रीठाकुर शिवनाथसिंह; मूल्य १)

(५) 'आकाश-दीप'—लेखक, श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'; मूल्य १॥)

(६) 'मयूख'—मूल-लेखक, श्रीराखालदास वंद्योपाध्याय एम्० ए०; अनुवादक, श्रीबजरंगबली गुप्त 'विशारद'; मूल्य १)

(७) 'योग-दर्पण'—लेखक, श्रीलाला कन्नोमल एम्० ए०; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव; मूल्य १), सजिल्द १॥)

(८) 'हृदय की परख' (उपन्यास, द्वितीयावृत्ति)—लेखक, प्रो० चतुरसेन शास्त्री; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव मूल्य १), सजिल्द १॥)

(९) 'घिरचा'—लेखक, श्रीयुत 'व्यग्र'; मूल्य १)

(१०) 'उत्सर्ग' (नाटक)—लेखक, श्री प्रो० चतुरसेन शास्त्री; संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव; मूल्य सादी ।=), सजिल्द ।)

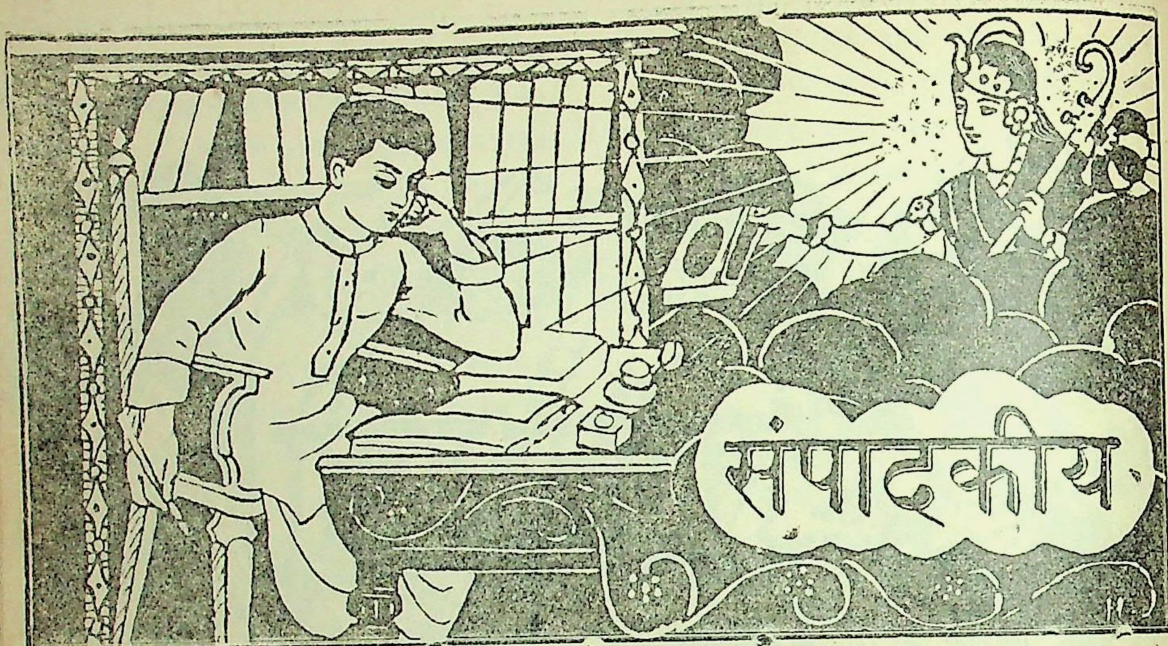
(११) 'राष्ट्रपति जवाहर' (जीवनी) मूल्य ॥=)

(१२) 'यौवन, सौंदर्य और प्रेम'—लेखक, श्रीनाथसिंह; मूल्य सादी १॥), सजिल्द २)

(१३) 'ऋग्वेदालोचन'—प्रणेता, पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ; मूल्य १॥)

(१४) 'सुधांशु'—लेखक, श्रीयुत राय कृष्णदास; मूल्य ।)

(१५) 'प्रताप-प्रतिज्ञा'—लेखक, श्रीजगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'; मूल्य ॥≡)



१. कांग्रेस का ध्येय

कांग्रेस का ध्येय अब पूर्ण स्वाधीनता है। लाहौर के अधिवेशन में उसने अपना यह ध्येय निश्चित किया है। उस ध्येय की प्राप्ति के लिये उसने कुछ उपाय भी निर्दिष्ट किए हैं। वे उपाय हैं—

१. सविनय क़ानून-भंग तथा सत्याग्रह का अवलंबन।

२. कौंसिलों और अदालतों का बॉयकॉट।

३. स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार और विदेशी का बहिष्कार।

पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये इन उपायों का पूर्णतः उपयोग अत्यंत आवश्यक बतलाया गया है।

हमारी सम्मति में ये उपाय स्वाधीनता-प्राप्ति के लिये उत्तम होते हुए भी क्रियात्मक रूप में बड़ी कठिनाई से लाए जा सकते हैं। सविनय क़ानून-भंग और सत्याग्रह के लिये जिस उच्च कोटि की आत्मिक शक्ति, संयम और नियंत्रण की आवश्यकता होती है, उसका भारतीय जनता में एकांत अभाव है। छोटे-छोटे कामों के करने में भी जब हम नियंत्रण-पूर्वक नहीं चल सकते, तब सत्याग्रह और क़ानून-भंग-जैसे उत्तरदायित्व-पूर्ण क्रिया-कलाप में हम क्योंकर सफल हो सकेंगे? आपस के छोटे-मोटे अधिकार-संबंधी वाद-विवाद में जब हम अपने संयम को तिलांजलि दे बैठते हैं, तब फिर देश के अधिकारों के लिये लड़ते हुए हम संयत रह सकेंगे, इसकी कोई गारंटी नहीं दी जा सकती। चौरीचौरा-जैसे हत्याकांडों की फिर भी संभावना रहती ही है। आपस के लड़ाई-झगड़ों का प्रश्न बना ही रहता है। ऐसी दशा में यदि हमने सत्याग्रह प्रारंभ कर दिया, और कहीं कोई ज़रा-सी भी गड़बड़ हुई, तो फ़ौरन् ही महात्माजी के आग्रह से हमें सत्याग्रह बंद कर देना पड़ेगा। महीनों का काम बरसों के लिये पिछड़ जायगा, और स्वाधीनता का रास्ता काफ़ी लंबा हो जायगा।

कौंसिलों और अदालतों के बॉयकॉट का प्रश्न भी ऐसा ही टेढ़ा है। जब तक हमारी राष्ट्रीय अदालतों की स्थापना नहीं होती और जब तक उन अदालतों की आज्ञा प्रचारित तथा प्रतिपालित कराने के साधन हम नहीं उपस्थित कर लेते, तब तक वर्तमान अदालतों का—वे चाहे जितनी दोष-पूर्ण क्यों न हों—बॉयकॉट करना, हमारी समझ में, एक नासमझी का काम है। इसी प्रकार कौंसिलों द्वारा देश की भलाई करने का प्रयत्न करनेवाले देश-भक्त मेंबरों को कौंसिलों का परित्याग करने के लिये मजबूर करना—उस समय तक जब तक कि हम स्वयं अपनी कौंसिलों का निर्माण न कर लें—बड़ी ही अदूरदर्शिता है। सरकारी कौंसिलों

की कुर्सियाँ कभी ख़ाली नहीं रह सकतीं । यदि इनके लिये योग्य सभासद् प्राप्त नहीं होंगे, तो निकम्मे और देश-द्रोही अयोग्य पुरुषों द्वारा ही वे भर दी जायँगी, और तब जो क़ानून पास होंगे, वे हमारे लिये अत्यंत भयंकर सिद्ध होंगे । इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार की गड़बड़ी मचाने से हम जनता और संसार के सामने सरकारी संस्थाओं का नग्न रूप रख सकेंगे, किंतु इससे जो फ़ायदा होगा, वह इनसे होनेवाले नुक़सान के सामने कुछ भी न होगा । ब्रिटेन के साम्राज्यवाद से दुनिया ख़ूब परिचित है । संसार का बच्चा-बच्चा ब्रिटेन की क्षुद्राशय नीति से अभिज्ञ है । उसकी चाल-बाज़ियाँ और शरारतें प्रत्येक देश में विख्यात हो चुकी हैं । अतएव यदि हम उसकी क़लई खोलने का प्रयत्न करेंगे, तो उससे कोई विशेष लाभ न होगा । हम तो तभी फ़ायदा उठा सकेंगे, जब हम उसके दिए हुए अस्त्रों द्वारा ही उसका मुक़ाबला करेंगे । सन् १६१६ के बाद से जो नवीन अधिकार हमें मिले हैं, उनका उपयोग करके ही हम अन्य अधिकार प्राप्त कर सकेंगे । कौंसिलों में रहकर ही हम सरकार के कार्य को एक-दम स्थगित कर सकने में समर्थ हो सकते हैं । उसके अन्याय-पूर्ण कार्यों को रोकने का यही एक वैध उपाय हमारे पास है । इस उपाय को छोड़कर बेकार गाल बजाने से हमारा कुछ भला नहीं हो सकता ।

यह कहा जा सकता है कि हमारे राजनीतिक नेता कौंसिलों का कार्य करते हुए देश का काम नहीं कर सकते । इसका एक उपाय है । यदि हम अन्य ऐसे कांग्रेस के सभासदों से, जिन पर हम पूर्ण विश्वास रखते हैं, कौंसिलों को भरकर अपने राजनीतिक नेताओं को फ़ुर्सत दे दें, तो हम दोनों काम बड़ी आसानी से कर सकते हैं । हमारे राजनीतिक नेताओं की देख-रेख में कौंसिलों के अंतर्गत हमारा वैध युद्ध भी ठीक तौर से चल सकता है, और बाहर का ग्राम-संगठन और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक युग-परिवर्तन का कार्य भी ख़ूब तेज़ी से किया जा सकता है ।

रही विदेशी और स्वदेशी की बात, सो वह भी इस हालत में बड़ी आसानी से निबाही जा सकती है । राजनीतिक नेताओं की देख-रेख में कार्य करनेवाले हमारे स्वयंसेवकों का दल देश-भर में धरना और प्रचार-कार्य के द्वारा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम और अनुराग तथा विदेशी वस्तुओं के प्रति उपेक्षा और परित्याग के भाव उत्पन्न कर सकता है । हमारे भावी सत्याग्रह-संग्राम के लिये उपयुक्त वायु-मंडल उत्पन्न करने का कार्य भी इसी के साथ-ही-साथ किया जा सकता है । इस प्रकार केवल एक साल-भर के अंदर ही कांग्रेस देश को अपने ध्येय के बहुत कुछ निकट ले आ सकती है । किंतु यदि वह सत्याग्रह और सविनय क़ानून-भंग आदि कठिन उपायों का पहले से ही अवलंबन करेगी, तो उसे पिछले असहयोग के दिनों की-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा । उसका मार्ग तब एकदम कंटकाकीर्ण हो जायगा ।

× × ×

२. स्वाधीनता के पथ पर

२६ जनवरी को युवक भारत ने आज़ादी का झंडा खड़ा किया था । कांग्रेस के युवक राष्ट्रपति जवाहरलाल के नेतृत्व में, उस दिन, हिंदोस्तान के नौजवानों ने देश को स्वतंत्र करने की शपथ ली थी । उस दिन हमारे देश की वीर माताओं और बहनों ने भारत-माता पर अपने प्राणों तक का बलिदान देने की प्रतिज्ञा की थी । इतिहास में वह दिन भारतीय स्वतंत्रता का दिन कहलायगा । सदियों से राजाओं, बादशाहों और शाहंशाहों की जूतियों के नीचे पले हुए हम हिंदोस्तानियों ने उस दिन ग़ुलामी के बोझ से दबे हुए अपने सिर को पहले-पहल ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया था । उस दिन पुराने भारत के दक़ियानूसी रीति-रिवाजों, अंध-विश्वासों और रूढ़ियों तथा पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और वर्णविच्छेद आदि ढकोसलों की क़ब्र पर नवीन भारत के क्रांति के युग ने मृतात्मा की शांति के लिये शांति-पाठ किया था । परतंत्र भारत उस दिन स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्र-सर हुआ था ।

मार्ग बड़ा ही विपदाकीर्ण है । पग-पग पर सरकारी पहरे-चौकी हैं । चारो ओर ख़ुफ़िया पुलिस का भयानक जंगल है । थोड़ी-थोड़ी ही दूर पर मेशीनगनों के भयावह मुहरे मुँह खोले खड़े हैं । सामने ही जेल की

तमिस्रामयी कंदराएँ हैं। दूर पर फाँसी की टिकटी और रस्सी का छोर नज़र आ रहा है। माता, पुत्र और स्नेहमयी पत्नी के रुदन से आकाश भी थर्रा रहा है। सामने ही हहराती हुई अपने साथियों के ख़ून की नदी और दहाड़ता हुई ब्रिटिश-सिंह की भयानक मूर्ति है। सिर पर विपत्ति के काले बादल गरज रहे हैं। केवल आशा और आत्मविश्वास के धुँधले आलोक के सहारे युवक भारत इस मार्ग पर अग्रसर हुआ है। वह निस्सहाय है, निरस्त्र है, और है बड़ा ही निर्धन। किंतु उसके पास केवल एक निधि है—आत्मबल। वह आत्म-बल, जिसके सामने विपत्तियाँ काई के समान फट जाती हैं, जिसके सामने सम्राटों के मुकुट भी झुक जाते हैं; और है उसका युवक हृदय, जो मुसीबतों के पहाड़ों को क्षण-भर में उलाँघ जाता है।

ऐ जवान बटोही, भगवान् तुम्हारा मंगल करें, विजय-श्री तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। जाओ, शीघ्र जाओ। 'शुभास्ते संतु पंथानः'।

× × ×

३. स्वाधीनता और हिंसा

हिंसा और स्वाधीनता का अनिवार्य संबंध है। जब कोई परतंत्र राष्ट्र स्वतंत्र होने का प्रयत्न करता है, तो उसके लिये युद्ध और उसकी आनुषंगिकी हिंसा अनिवार्य हो जाती है। सदियों का अनुभव इस बात का साक्षी है कि संसार के इतिहास में किसी भी जाति ने विना रक्तपात के स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की। आत्मिक बल का दृढ़ विश्वासी भारत इस ऐतिहासिक सत्य का अपवाद बनने जा रहा है। आज तक जो संभव नहीं था, वह उसे संभव करने जा रहा है। आत्म-बलिदान के उच्च आदर्श को सामने रखकर वह ब्रिटेन की फ़ौजी शक्ति का सामना करेगा। भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये वह सत्याग्रह करेगा। कितनी विचित्र बात वह करने जा रहा है!

सरकार की जेल की दीवारों की दृढ़ता का वह अपने हृदय की दृढ़ता से मुक़ाबला करेगा। वह पुलिस के डंडों की शक्ति अपनी पीठ की मज़बूती से आज़माएगा। सरकार के गोलों का जवाब वह अपने कटे हुए सिर से देगा। वह छाती खोलकर संगीनों के वार झेलेगा, और सहर्ष स्वीकार करेगा दुनिया-भर के अत्याचारों को, किंतु अपने सत्याग्रह से वह तिल-भर भी पीछे नहीं हटेगा।

संसार के इतिहास में यह एक नया युग होगा। आत्मिक बल और पशु-बल का यह संघर्ष एक अभूतपूर्व घटना होगी। किंतु क्या वास्तव में हिंदोस्तान सफल होगा? क्या संसार का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र इँगलैंड फ़क़ीर भारत के चिमटे की आवाज़ से डर जायगा? क्या सत्याग्रह वास्तव में हिंसात्मक उपायों से अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा?

भविष्य ही इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। किंतु इतना तो निश्चित ही है कि वर्तमान परिस्थिति में सत्याग्रह के अतिरिक्त उसके पास कोई और अस्त्र है ही नहीं। हिंसात्मक उपायों का अवलंबन वे ही राष्ट्र कर सकते हैं, जहाँ की जनता एक सुसंगठित क्रांति के लिये तैयार हो। भारतवर्ष-जैसे देश के लिये, और ख़ासकर आजकल की परिस्थिति में, हिंसात्मक उपाय सफल नहीं हो सकते। अभी देश में सामाजिक रूढ़ियों का ऐसा तान-वितान फैला हुआ है कि यहाँ की अधिकांश जनता को चौका-चूल्हे के प्रश्न हल करने से ही फ़ुरसत नहीं मिलती। वर्ण-व्यवस्था के वर्तमान विकृत रूप, वैवाहिक अत्याचार, खान-पान-संबंधी अनाचार तथा अन्य सामाजिक व्याधियों का समूलोच्छेद हुए विना हमारी राष्ट्रीय एकता एकदम असंभव है, और उसके विना हिंसात्मक अथवा अहिंसात्मक उपायों का सफल होना भी असंभव है। देश को सबसे पहले एक भयानक सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है। समाज के सुधरते ही आर्थिक और राजनीतिक क्रांति स्वयं ही हो जायगी। सुधरे हुए समाज में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के ढकोसले एक मिनट को भी नहीं जीवित रह सकते। समानाधिकार का सिद्धांत ही तब मनुष्य-समाज का आधार होगा। राजा और रंक का तब प्रश्न ही न होगा। उस दशा में समाज के मार्ग में जो संस्थाएँ, जो व्यक्ति तथा जो साम्राज्य बाधक होंगे, उन्हें सुधारने का प्रयत्न किया जायगा। वह प्रयत्न ही स्वाधीनता-प्राप्ति का उपयुक्त मार्ग होगा। तब फिर वह चाहे जो हो।

× × ×

४. दक्षिण-आफ्रिका से लौटे हुए भारतीय

दक्षिण-आफ्रिका में सदा से प्रवासी भारतीयों का अनादर होता आया है। सत्याग्रह-संग्राम आदि अस्त्रों के काम में लाए जाने के कारण आफ्रिकन गवर्नमेंट ने उनके प्रति कुछ सद्व्यवहार दिखलाने का प्रयत्न किया था। किंतु भारतीयों को अधिकार-प्रदान करने के लिये वह कुछ उत्सुक नहीं। वह चाहती है कि जहाँ तक हो, हिंदोस्तानी लोग हिंदोस्तान को ही वापस चले जायँ। इसीलिये वह तरह-तरह के प्रलोभन उनके सामने रख-कर उन्हें भारत वापस जाने के लिये उकसाया करती है। बहुत-से हिंदोस्तानी लोग इन प्रलोभनों में पड़कर यहाँ वापस भी आ चुके हैं। किंतु यहाँ जीवन की समस्या और भी अधिक जटिल होने के कारण तथा स्वभावानुकूल वायु-मंडल न मिल सकने के कारण उन-की दशा अत्यंत शोचनीय हो जाती है। वे बेबस होकर भीख माँगने तक के लिये लाचार हो जाते हैं अतएव उनका यहाँ लौटकर आना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। किंतु इस पर भी सैकड़ों लोग यहाँ आने के लिये तैयार बैठे हैं। उन्हीं की आँखें खोलने के लिये श्रीस्वामी भवानीदयालजी संन्यासी द्वारा अपने पास भेजी हुई एक रिपोर्ट हम प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है, हमारे प्रवासी भाई स्वामीजी से बिना पूछ-ताछ किए कोई जल्दबाज़ी न करेंगे। स्वामीजी लिखते हैं—

'दक्षिण-आफ्रिका से बिदा होते समय वहाँ की जनता ने मुझे एक काम सौंपा था। वह काम था सरकारी ख़र्च से हिंदोस्तान वापस आनेवाले भाइयों की दशा की जाँच करके उसकी सच्ची और निष्पक्ष रिपोर्ट प्रकाशित करना। मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया, हिंदोस्तान में हज़ारों मील की यात्रा करके और सैकड़ों ही लौटे हुए प्रवासी भाइयों से मिलकर उनकी दशा अपनी आँखों देखी। जिस परिणाम पर मैं पहुँचा, उसे यहाँ प्रकाशित करता हूँ। पर आरंभ में ही यह लिख देना मेरा कर्तव्य है कि मेरी यह जाँच पूर्णतया स्वतंत्र थी, और इसकी ज़िम्मेवारी मुझ ही पर है। पूरी और पक्की रिपोर्ट प्रकाशित करने के प्रथम कच्ची रिपोर्ट का सारांश यहाँ दिया जाता है। पक्की रिपोर्ट के लिये मुझे उन लोगों की सम्मति की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जिस-का इस प्रश्न से घनिष्ठ संबंध है, और जो इस विषय पर अधिकार-पूर्वक बोल सकते हैं। प्रश्न गंभीर है, और उसके ठीक तरह से हल होने अथवा न होने का परिणाम दक्षिण-आफ्रिका के केप-टाउनवाले समझौते पर पड़ेगा, इसलिये जो कुछ इस विषय में निश्चय किया जाय, वह बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। इसीलिये पक्की रिपोर्ट प्रकाशित करने के पहले कुछ प्रस्ताव जनता तथा सरकार के सम्मुख रखना उचित समझा है। परिणाम यह है—

(१) जो मज़दूर दक्षिण-आफ्रिका तथा अन्य दूरस्थ उपनिवेशों से लौटकर यहाँ आते हैं, उनके लिये हिंदोस्तान में बस जाना अत्यंत कठिन है। मुझे अपनी इस तीन महीने की जाँच में एक भी आदमी ऐसा न मिला, जो फिर उस उपनिवेश को, जिससे वह लौटा है, जाने को तैयार न हो जाय, यदि उसे साधन मिल जायँ। जो आदमी हिंदोस्तान में ही पैदा हुए थे, उनमें शायद दस-पंद्रह फ़ी-सदी ऐसे आदमी निकल भी आवें, पर उपनिवेशों में पैदा हुए (Colonial born) लड़कों में दो-चार फ़ी-सदी लड़के भी ऐसे नहीं होंगे, जो हिंदोस्तान में रहना पसंद करते हों।

(२) जो लोग दक्षिण-आफ्रिका से लौटकर यहाँ आ रहे हैं, वे प्रायः अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित हैं, और वे उस जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते, जो उन्हें यहाँ आकर व्यतीत करना पड़ेगा। उनमें से अधिकांश के लिये तो यह देश विदेश ही है। इसलिये यह कहना कि ये लोग जान-बूझकर अपनी राज़ी से स्वदेश को लौट रहे हैं, अर्द्ध-सत्य ही है। जो सहस्रों स्त्री-पुरुष दक्षिण-आफ्रिका से यहाँ लौटकर आए हैं, उनमें से यदि सौ आदमियों को भी दक्षिण-आफ्रिका वापस जाने के साधन मिल जायँ और वे वहाँ अपने अनुभव लौटनेवालों को सुना सकें, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि दस फ़ी-सदी आदमी भी हिंदोस्तान को न लौटें।

(३) जो लोग यहाँ लौटकर आ रहे हैं, उनमें से कितनों ही को मलाया और सीलोन को फिर जाना पड़ता है। स्वयं भारत-सरकार द्वारा नियुक्त स्पेशल ऑफ़िसर रायसाहब कुन्हींरमन नैयर का यह अनुमान

है कि तीस फ़ी-सदी आदमी ऐसे होते हैं, जो फिर मलाया और सीलोन को चल देते हैं। वे लिखते हैं—'तीस फ़ी-सदी तो पहले कोई ऐसा काम लेने को राज़ी नहीं होते, जिसे वे उपनिवेश में न करते रहे हों। अगर कोई काम मिल भी जाय, तो उसे शीघ्र ही छोड़ देते हैं, क्योंकि वेतन कम मिलता है। जब उनके पास कुछ भी नहीं रहता, तो फिर वे मलाया या सीलोन चल देते हैं।' मुझे इस बात की आशंका है कि रायसाहब कुन्हींरमन नैयर के अनुमान से कहीं अधिक दक्षिण-आफ्रिका से लौटे हुए आदमी मलाया और सीलोन जा रहे हैं। जब तक भारत-सरकार इस बात की जाँच न करावे, तब तक ठीक-ठीक संख्या का पता नहीं लग सकता।

(४) दक्षिण-आफ्रिका से लौटे हुए आदमियों में कितने फ़ी-सदी आदमी भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में स्थान पा जाते हैं, यह जानने के लिये हमारे पास इस समय कोई साधन नहीं है। रायसाहब कुन्हींरमन नैयर निस्संदेह बड़े परिश्रमी और सहृदय व्यक्ति हैं, पर उनके लिये भी यह निश्चित रूप से पता लगाना कि किस गाँव में कौन कुटुंब बस गया है, अत्यंत कठिन है। वे अकेले इसका पता लगा भी नहीं सकते, इसके लिये जाँच कमीशन की आवश्यकता है।

(५) यह तो हुई दक्षिण-भारत की बात। अभी उत्तर-भारत में लौटे हुए भारतीयों की दशा की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया! मैं स्वयं उत्तर-भारत का निवासी हूँ। यहाँ मैंने सैकड़ों ही आदमियों से बातचीत की है, पर मज़दूरों में ऐसे आदमी मुझे दस फ़ी-सदी भी नहीं मिले, जो उपनिवेशों से लौटने के बाद यहाँ के सामाजिक जीवन में प्रवेश कर सके हों। गुजराती व्यापारियों की बात मैं नहीं कहता, क्योंकि उन्होंने तो अपना संबंध भारत से बनाए रक्खा था। इन सब बातों पर ख़याल करते हुए मेरी समझ में यह अत्यंत आवश्यक है कि भारत-सरकार एक जाँच-कमीशन नियुक्त करे, जिसमें सरकारी और ग़ैर-सरकारी सदस्य हों। यह कमीशन इस बात की जाँच करे कि दक्षिण-आफ्रिका से लौटे हुए कितने फ़ी-सदी आदमी उत्तर तथा दक्षिण भारत में शांति-पूर्वक बस जाते हैं। नई आयोजना को काम में लाते हुए दो वर्ष से अधिक हो गए, इसलिये यह जाँच अब भली प्रकार हो भी सकती है।

(६) जब तक यह जाँच न हो जाय, तब तक एक भी आदमी को दक्षिण-आफ्रिका से नई आयोजना के अनुसार लौटाना अनुचित होगा, इसलिये तब तक के लिये आयोजना का प्रयोग स्थगित कर दिया जाय। हज़ारों मील की यात्रा करके और सैकड़ों ही आदमियों से मिलकर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि बीस पौंड के प्रलोभन में आकर कितने ही दक्षिण-आफ्रिका-प्रवासी भाई हिंदोस्तान को लौट आते हैं, और इस तरह वे अपने जीवन को तो ख़राब करते ही हैं, पर साथ ही अपने बच्चों के जीवन को भी सदा के लिये बरबाद कर देते हैं। अपने इस कथन की पुष्टि के लिये मैंने प्रमाण और बयान इकट्ठे किए हैं। मैं उन्हें किसी भी जाँच-कमीशन के सम्मुख उपस्थित कर सकता हूँ।

(७) दक्षिण-आफ्रिका के सैकड़ों ही आदमी, जिन्होंने मेरे भारत को रवाना होते समय मुझे जाँच का काम सौंपा था, बड़े अधैर्य के साथ मेरी रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रहे हैं। पर मैं यह उचित समझता हूँ कि भारत-सरकार को दो महीने का अवसर दिया जाय कि वह एक जाँच-कमीशन नियुक्त करे। इसीलिये मैं अपनी रिपोर्ट की (जो लिखी हुई क़रीब-क़रीब तैयार है) छपाई एप्रिल के आरंभ तक नहीं करूँगा।

मुझे विश्वास है कि इस बीच में भारत-सरकार इस प्रश्न की गंभीरता का अनुभव करके जाँच-कमीशन नियुक्त कर देगी।

अपने दक्षिण-आफ्रिका-प्रवासी भाइयों से मैं यही प्रार्थना करूँगा कि वे दो-तीन महीने के लिये और धैर्य धारण करें। यदि दो महीने में भारत-सरकार ने कोई कारवाई न की, तो मैं अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दूँगा, और तब आप लोगों से मेरी प्रार्थना होगी कि आप लोग उस रिपोर्ट के बतलाए हुए उपायों को काम में लावें।"

× × ×

५. लंका में भारतीय

श्रीयुत संत निहालसिंह संसार के प्रसिद्ध लेखकों में गिने जाते हैं। विदेशी राष्ट्रों की चालबाज़ियों और

अंतरराष्ट्रीय नीति की गुत्थियों पर उनके लेख प्रायः निकला करते हैं। अभी हाल में ही लाहौर के 'पीपुल'-नामक सहयोगी में उनके दो लेख प्रकाशित हुए हैं। लंका-प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा का उनमें एक अत्यंत करुण चित्र है। इन लेखों में उन्होंने बतलाया है कि किस प्रकार इँगलैंड की मज़दूर-गवर्नमेंट के सहयोग, सहमति और आज्ञा से सीलोन अथवा लंका के गवर्नर महोदय ने वहाँ के प्रवासी भारतीयों के अधिकारों का बलिदान कर डाला है। यह अत्याचार केवल कुछ भारत-विद्वेषी लोगों को प्रसन्न करने के लिये ही किया गया है। क्योंकि ब्रिटिश-सरकार नहीं चाहती थी कि लंका में भी दक्षिण-आफ़्रिका के समान भारत-विद्वेषी लोग उसके विरुद्ध आग उगलने लगें। संत महोदय लिखते हैं—

"मैकडोनाल्ड सरकार ने ऐसे प्रस्तावों पर सहमति प्रदान कर दी है, जिनके द्वारा लंका की कौंसिल के चुनाव-संबंधी अधिकार प्राप्त करने के लिये वहाँ के प्रवासी भारतीयों को अपनी नागरिकता का परित्याग करना पड़ेगा।" (अर्थात् उन्हें भारत-राष्ट्र के नागरिक कहलाने का अधिकार न होगा।)

यदि यह अत्याचार सभी प्रवासी लोगों पर किया जाता, तो हमें कुछ कहने की गुंजायश न थी। लेकिन यह प्रहार तो केवल हिंदोस्तानियों पर ही है, जैसा कि संत महोदय के लेख से मालूम होता है। वे लिखते हैं—

"१. यह त्याग केवल भारतीयों से ही कराया जा रहा है।

२. अँगरेज़ लोगों को विना नागरिकता परित्याग किए ही वोट देने का अधिकार मिल जायगा। उन्हें इसके लिये मजबूर न किया जायगा।

३. अब तक अपने भूमि-संबंधी अधिकारों के कारण भारतीय लोग मताधिकार में अँगरेज़ों और अन्य जातियों का पूरा मुक़ाबला कर सकते थे। अतएव (उनकी परिस्थिति कमज़ोर करने के लिये—सं०) यह पहला ही मौक़ा है कि जब उन पर इस प्रकार का प्रहार किया जा रहा है।

परिणाम बिलकुल स्पष्ट है। लंकेश गवर्नर ने लंका-प्रवासी भारतीयों के अधिकारों का खून कर डाला है। उसके आफ़्रिका में किए हुए कृत्यों के कारण, उससे इससे कम की आशा भी नहीं की जा सकती थी। लेकिन मैकडोनाल्ड साहब की सरकार को हम क्या कहें कि जिसने बिंदु-विसर्ग का भी परिवर्तन किए विना इस गवर्नर के उपदेश को मान लिया!

उस पर तुर्रा यह कि हमारे इँगलिस्तान के दोस्त आशा करते हैं कि हम हिंदोस्तानी मज़दूर-सरकार की भारत-संबंधी सदिच्छाओं पर श्रद्धा और भक्ति बनाए रहें।"

हम संत महाशय के उपर्युक्त कथन से सर्वथा सहमत हैं। उनके इस एकरथ-महायुद्ध के लिये हम उन्हें बधाई देते हैं। लंका-प्रवासी भारतीयों के लिये किया हुआ उनका यह कार्य अत्यंत प्रशंसनीय है। प्रत्येक भारतीय पत्रकार का कर्तव्य है कि वह संत महोदय को उनके इस पवित्र कार्य में सहायता पहुँचावे। जब तक हम हिंदोस्तानी विदेशों में फैले हुए भारतीय भाइयों के अधिकारों की रक्षा का प्रयत्न अभी से नहीं करेंगे, तब तक भावी भारतीय राष्ट्र की मान-प्रतिष्ठा का वहाँ संरक्षण न हो सकेगा। दूर-दूर के उपनिवेशों में बसे हुए भारतीयों के अधिकारों के लिये जहाँ हम इतना लिखते हैं, वहाँ अपने पड़ोस के ही द्वीप में बसे हुए भाइयों के प्रति हमारी इतनी उदासीनता अत्यंत निंदनीय है। हमें आशा है, सभी भारतीय पत्र संत निहालसिंहजी को उनके इस प्रशंसनीय कार्य में सहायता देंगे।

× × ×

६. अली-भाइयों की मूर्खता

जो अली-भाई किसी समय ख़िलाफ़त की चौखट पर सिर दे मारने के लिये तैयार थे, जो किसी ज़माने में भारतीय स्वतंत्रता के सिंहासन के मज़बूत पाए समझे जाते थे, जो सात समुद्र पार तक टर्की के अधिकारों के लिये लड़ने को जा पहुँचे थे, वे ही अली-भाई अपने अंधे कट्टरपन के कारण आज हिंदोस्तान की आज़ादी के सबसे बड़े विरोधी, हिंदू-मुसलिम-एकता के सबसे बड़े कंटक और देश-भर के नासमझ मुसलमानों को गुमराह करनेवाले कहे जाते हैं। अपनी बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ पूरी करने के लिये उन्हें जिधर भी स्थान मिला है, वे उधर ही ढुलक जाने के आदी-से हो गए हैं। उनकी इस विश्वासघातकता के कारण ही देश के समझदार

लोगों में कोई उनका विश्वास नहीं करता। हाँ, केवल देश के जाहिल मुसलमानों को—जिनकी संख्या ज़रूरत से ज़्यादा है—उनकी मूर्खता-पूर्ण बातें अवश्य रुचिकर हुआ करती हैं। अभी हाल में ही इन दोनो भाइयों ने एक और चाल दिखलाई है। स्वातंत्र्य-दिवस मनाने के विरुद्ध इन दोनो भाइयों की जो उक्तियाँ पत्रों में प्रकाशित हुई हैं, उनसे इनके हृदय की चुद्रता का काफ़ी परिचय मिलता है। देश के मुसलमानों को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काकर ये दोनो भाई अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। उनको अच्छी तरह मालूम है कि वे भारत के राजनीतिक रंग-मंच से सदा के लिये धक्के देकर निकाल दिए गए हैं। अतएव वे अब देश की राजनीतिक प्रगति में बाधा डालना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। उसके लिये हथियार भी उन्हें काफ़ी पैने मिल गए हैं। हिंदोस्तान के मुसलमान टर्की और ईरान के मुसलमानों के समान शिक्षित और देशभक्त नहीं हैं। वे कमालपाशा के समान राष्ट्रीय उन्नति में बाधक धार्मिक अंध विश्वासों को ठुकरा देने के आदी नहीं हैं, न वे हिंदोस्तान को अपनी जन्मभूमि समझते हैं। अरब के जलते हुए रेगिस्तान को ही वे मोक्ष-दायक समझते हैं। उसे ही वे अपना सब कुछ जानते हैं। हिंदोस्तान तो उनके लिये एक मुसाफ़िरख़ाना-सा है। उसके लिये कुछ भी त्याग करना उन्हें अखरता है। हिंदोस्तान के निवासी हिंदू उनकी दृष्टि में 'काफ़िर' हैं, उनको क़त्ल करने से उन्हें जन्नत नसीब होती है। बस इन मूर्ख गुंडों को जहाँ ज़रा-सा हदीसों का झूठ-मूठ हवाला दिया, जहाँ उस पाक पैग़ंबर का नाम अपने नापाक गंदे मुँह से निकालकर उकसाया, वहाँ फ़ौरन् वे 'दीन' के नाम पर घृणित-से-घृणित कार्य करने के लिये भी तैयार हो जाते हैं।

इन्हीं पैने हथियारों से हमारे अली-भाई मूर्खता-पूर्ण खेल खेलने चले हैं। इन अंध-विश्वासी, मूर्ख तथा कट्टर मुसलमानों के झुंड को साथ लेकर वे चले हैं भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध का विरोध करने, मुसलिम कान्फ्रेंसों और लीगों में स्वतंत्रता के विरुद्ध प्रस्ताव पास कराने तथा मरी हुई ख़िलाफ़त की क़ब्र ख़िलाफ़त-कान्फ्रेंस में लीडर बनने। लेकिन उन्हें याद रखना चाहिए कि इन क्षुद्र हरकतों से आज़ादी के दीवाने हिंदू-मुसलिम नौजवान अपने प्रयत्नों को बंद नहीं कर देंगे। उनका प्रयत्न बराबर जारी रहेगा। डॉ० किचलू, मौलाना 'आज़ाद', डॉक्टर अंसारी, मि० शेरवानी आदि देश-भक्त मुसलमान गंभीर प्रकृति के समझदार मुसलमान-भाइयों की सहानुभूति और सहयोग से देश में हिंदू-मुसलिम-एकता क़ायम रक्खेंगे, और शीघ्र ही वह समय आएगा, जब देश के अन्य मुसलमान भी इन देशभक्तों के समान ही मुल्क की आज़ादी की लड़ाई में कांग्रेस का साथ देंगे।

तब इन भाइयों को पता चलेगा कि देश-द्रोह और कट्टरपन का क्या मूल्य होता है। राजनीतिक विश्वास-घात के दाम भी तब इन्हें काफ़ी देने पड़ेंगे। परंतु इन दोनो अंधे भाइयों की ग़लती के कारण देश के बेचारे निरपराध, जल्दबाज़, कट्टर और नासमझ मुसलमानों को बहुत नुक़सान उठाना पड़ेगा।

उनके इस देश-द्रोह का उन्हें भयानक नैतिक दंड मिलेगा। संसार में उनका नाम विश्वास-घातकों और देश-द्रोहियों में गिना जायगा। हिंदोस्तान की आज़ादी के सिपाहियों के निकट भी वे अविश्वास के पात्र होंगे। तब इस सब महान् पाप के पुरोहित इन अली-भाइयों को पेट-भर कोसने के सिवा इन भेड़-चाल चलनेवाले मुसलमानों के हाथ में और कोई उपाय न रह जायगा।

सदा आँखों पर पट्टी बाँधकर नेतृत्व करनेवाले अली-भाइयों पर इन पंक्तियों या ऐसी ही अन्य पंक्तियों का शायद ही कोई असर पड़े, क्योंकि वे बहुत मोटी खालवाले जीव हैं। स्वार्थ, प्रसिद्धि की इच्छा और नेतृत्व की भूख, जो उनकी बेवक़ूफ़ियों की जड़ है, उन्हें कभी शांति से बैठा न रहने देगी। अफ़सोस है हमें तो केवल यह कि कुछ मुसलमान भी इनकी इस देश-द्रोहिता में शामिल हैं।

× × ×

७. महात्माजी की शर्तें

लाहौर-कांग्रेस के पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव के कारण महात्माजी के कई दृढ़ भक्तों में भी खलबली-सी मच गई है। उनका विश्वास है कि जनता में संयम और

नियंत्रण की वृद्धि किए बिना इस प्रकार के प्रस्ताव का कार्य-रूप में परिणत होना बड़ा कठिन और भयंकर होगा। देश में गड़बड़ और स्वेच्छाचार का बाज़ार फिर गर्म हो उठेगा, और सरकार के पशु-बल तथा दमन-चक्र को एक बार फिर पूरा मौक़ा मिल जायगा। इसीलिये उन लोगों ने बार-बार महात्माजी का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। महात्माजी पर भी उन लोगों के इस प्रकार के निस्स्वार्थ विरोध का प्रभाव पड़ा है। इसीलिये उन्होंने वायसराय के सामने समझौते के लिये कुछ शर्तें रक्खी हैं। वे लिखते हैं—

"लॉर्ड रीडिंग के सामने मुझे जिन 'बच्चों की-सी' शर्तों को रखने का सौभाग्य मिला था, प्रायः वे ही शर्तें मैं लॉर्ड इर्विन के समक्ष भी पेश करता हूँ।

वे शर्तें निम्न-लिखित हैं—

१. शराब की बिक्री बिलकुल बंद कर दी जाय।

२. विनिमय की दर को घटाकर १ शि० ४ पें० कर दिया जाय।

३. मालगुज़ारी कम-से-कम आधी कर दी जाय, और उस पर धारा-सभा का नियंत्रण कर दिया जाय।

४. नमक-कर उठा लिया जाय।

५. प्रारंभ में फ़ौजी ख़र्च कम-से-कम आधा कर दिया जाय।

६. घटा हुई मालगुज़ारी के अनुसार उच्च कर्मचारियों की तनख़्वाह आधा या उससे भी कम कर दी जाय।

७. विदेशी कपड़े पर इतनी चुंगी लगाई जाय कि वह यहाँ आ ही न पावे।

८. भारतीय जहाज़ों के लिये समुद्र-तट सुरक्षित करने का क़ानून (Coastal Reservation Bill वेला-व्यापार-निरोध बिल) पास कर दिया जाय।

९. जो लोग साधारण न्यायालयों द्वारा हत्या या हत्या करने की चेष्टा के दोषी ठहराए गए हों, उनके सिवा और सब राजनीतिक क़ैदियों को छोड़ दिया जाय; सब राजनीतिक मुक़दमे हटा लिए जायँ। १२४ अ धारा और १८१८ का रेगुलेशन तथा ऐसे ही दूसरे क़ानून रद कर दिए जायँ, और तमाम भारतीय निर्वासितों को स्वदेश लौटने की इजाज़त दी जाय।

१०. ख़ुफ़िया पुलिस का मुहकमा या तो उठा दिया जाय या फिर वह जनता के अधीन कर दिया जाय।

११. जनता के नियंत्रण में आत्मरक्षा के लिये हथियार रखने के परवाने दिए जायँ।"

इन शर्तों के विषय में महात्माजी लिखते हैं—

"देश की ज़रूरतों की यह कोई पूरी सूची तो है नहीं; फिर भी वायसराय साहब इन सीधी-सादा किंतु जीवन-मरण से संबंध रखनेवाली ज़रूरियातों को ही पूरा कर दें। अगर ये माँगें मंज़ूर हुईं, तो फिर उन्हें देश में सविनय-भंग की आवाज़ भी नहीं सुन पड़ेगी। यही नहीं, बल्कि अपने विचार और अपनी माँगें पूरी स्वतंत्रता के साथ प्रकट करने की सुविधा होने पर महासभा किसी भी परिषद् में हृदय से हाथ बटावेगी।"

महात्माजी की उपर्युक्त शर्तें भारतवासियों के दैनिक जीवन से बड़ा घनिष्ठ संबंध रखती हैं। वे हमारे देश की अत्यंत आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। देश के शासन में थोड़ी-बहुत रद्दोबदल कर देने से ही ये शर्तें पूरी हो सकती हैं। इनकी पूर्ति का परिणाम होगा ग़रीब जनता के उदर-पोषण में सुविधा। भारत के लिये यही उदर-पोषण का सवाल बड़ा जटिल है। इसके इस प्रकार हल हो जाने पर ग़रीबों की संस्था कांग्रेस सरकार का सहयोग देने के लिये किसी अंश तक तैयार हो सकती है, तथा इसके साथ ही देश में शीघ्र ही उठनेवाले सत्याग्रह, असहयोग और अशांति के बादल-बवंडर भी शांत किए जा सकते हैं।

किंतु ब्रिटिश-व्यापार और ब्रिटिश-स्वार्थों पर भारत का बलिदान करनेवाली ब्रिटिश-सरकार कभी भी इन शर्तों को मंज़ूर करेगी, ऐसा विश्वास नहीं होता। सन् १८१३ से भारत-वासियों को मद्य पिलाकर लूटने का बंदोबस्त करनेवाले ब्रिटिश-व्यापारी शराब के क्रय-विक्रय से होनेवाली महान् आय को आसानी से नहीं छोड़ सकेंगे। न वे फ़ौज का ख़र्च कम करने के लिये ही सहमत होंगे; क्योंकि भारत के रुपयों से जिन ७०,००० अँगरेज़ सिपाहियों का पोषण होता है, और जो समय-समय पर रोटी कमाकर खिलानेवाले हिंदोस्तानियों के पेट में संगीनें घुसेड़कर अपनी कृतज्ञता प्रकट किया करते हैं, तथा जो अँगरेज़ ब्रिटिश-उपनिवेशों और दूसरे देशों की प्रजा पर

ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का सिक्का जमाने में ब्रिटेन का हाथ बटाते हैं, वे ही सरकार के प्यारे ब्रिटिश-सिपाही, शायद भूखों मरने लगेंगे, अथवा नाराज़ हो जायँगे।

इसी प्रकार कपड़े तथा समुद्र-तट के व्यापार के विषय में भी महात्माजी की शर्तें नहीं मानी जा सकतीं; क्योंकि इससे मैनचेस्टर और लंकाशायर के मिल-मालिक और जहाज़ बनानेवाले एकदम बिगड़ उठेंगे।

तब फिर हम ग़रीबों के पास अपने पेट के सवाल को हल करने के लिये सत्याग्रह के सिवा और कोई उपाय नहीं रह जाता।

यदि सरकार चाहती है कि देश में शांति स्थापित रहे और जनता उसके साथ सहयोग करे, तो उसे ब्रिटिश-व्यापारियों की चिल्ल-पों की परवा न करके महात्माजी की इन शर्तों को मानकर 'गोलमेज़-कान्फ्रेंस' के लिये द्वार खोल देना चाहिए। बिना उसके इन शर्तों को माने कांग्रेस किसी भी कान्फ्रेंस में सम्मिलित न होगी। कांग्रेस के सहयोग के बिना गोलमेज़-कान्फ्रेंस का एक भी निश्चय भारतीय जनता पर लागू न होगा। पद-पद पर उसका विरोध किया जायगा। अतएव लॉर्ड इरविन और मि० बेन को महात्माजी के इस नए मौक़े को हाथ से न जाने देना चाहिए।

× × ×

८. टॉमस मैन

इस साल साहित्य-संबंधी 'नोबल'-पुरस्कार, जिसका मूल्य सवा लाख रुपया होता है, जर्मनी के प्रसिद्ध लेखक टॉमस मैन को दिया गया है। वे जर्मनी के वर्तमान लेखकों में सर्वोत्तम माने जाते हैं। उनकी अधिकांश पुस्तकों का अँगरेज़ी-अनुवाद अमेरिका के एक पुस्तक-विक्रेता ने प्रकाशित किया है।

संसार के अन्य प्रसिद्ध लेखकों के समान मैन का जीवन घटना-चक्र से परिपूर्ण नहीं है। उन्होंने बहुत ही सीधा-सादा जीवन व्यतीत किया है। सन् १८७५ में, लबक-नगर में, उनका जन्म हुआ था। उनके पिता एक पुराने अमीर ख़ानदान के वंशधर थे। लेकिन थे वे निर्धन। इसलिये उन्हें जीविका की खोज में इधर-उधर भटकना पड़ता था। टॉमस मैन जब १६ वर्ष के थे, तब उनके पिता-माता म्यूनिच-शहर में आकर रहने लगे थे। वहाँ ही श्री मैन एक बीमा-कंपनी में काम किया करते थे। काम से बचे हुए समय में वे साहित्य तथा मानव-प्रकृति का अध्ययन किया करते थे। यहाँ से मैन महोदय इटली चले गए, और 'सिम्प्लिसिमस' पत्र के कर्मचारियों में शामिल हो गए। यह काम करते हुए भी उन्होंने अपने साहित्य-प्रेम को उन्नत करने का प्रयत्न सदा जारी रक्खा। जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८६४ में उनका 'जिफ़ालेन'-नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ, और प्रकाशित होते ही इतना प्रसिद्ध हो गया कि टॉमस मैन के पास बधाइयों और धन्यवादों के पत्रों के ढेर लग गए। इससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने अन्य सब काम छोड़कर केवल साहित्य-सेवा करने का ही निश्चय कर डाला। धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि और भी बढ़ी। सन् १६०१ में, जब उनका 'बदन ब्रुक्स'-नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ, तो साहित्य-जगत् में हलचल-सी मच गई। इस उपन्यास की ख़ूबी यह थी कि इसके पात्रों का चरित्र बड़ी ही कुशलता से चित्रित किया गया था, तथा 'लबक'-नगर के आस-पास के समाज का ऐसा सुंदर चित्र खींचा गया था कि कथा ज़रा भी काल्पनिक नहीं प्रतीत होती थी। दूसरी नई बात यह भी थी कि इस उपन्यास का नायक एक व्यक्ति न होकर एक परिवार था। साहित्य-जगत् में होनेवाली क्रांति का यह पहला चिह्न था। उस समय तक पुराने बुड्ढों द्वारा बनाए हुए साहित्यिक नियमों का किसी ने उल्लंघन नहीं किया था। टॉमस मैन ने सबसे पहले इस साहित्यिक क्रांति की ओर पैर बढ़ाया था।

'बदन ब्रुक्स' के कारण टॉमस मैन को यह पुरस्कार अवश्य मिला। किंतु केवल एक इसी पुस्तक के कारण वे उसके अधिकारी नहीं हुए हैं। नोबल-पुरस्कार केवल एक पुस्तक के कारण कभी नहीं दिया जाता। यह सदा उन लोगों को दिया जाता है, जो मनुष्य-जाति के उपकार के लिये किसी महान् विचार-परंपरा को जन्म देते हैं, अथवा जो अपनी अनवरत साहित्य-सेवा से मनुष्य-जाति का महान् उपकार करने में समर्थ होते हैं। टॉमस मैन की साहित्य-सेवा भी ऐसी ही उच्च कोटि की थी। इससे

उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान को सदा वृद्धि ही होती गई। सन् १६०३ में उन्होंने एक गल्पमाला प्रकाशित की, और सन् १६१५ में 'रॉयल हाइनेस'-नामक उपन्यास। उसके बाद 'डेथ इन वेनिस' और 'टोनियो क्रोगर' प्रकाशित हुए। इन दोनो के बाद टॉमस मैन का दूसरा बड़ा उपन्यास 'दि मैजिक माउन्टेन' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में मैन ने आधुनिक मनुष्य के मानसिक रंग-मंच पर अपना अभिनय दिखलानेवाली सभी आधुनिक शक्तियों के ऊहापोह का विश्लेषण कर डाला है। उपन्यास की कथा का आरंभ स्विट्ज़रलैंड के क्षयरोग-संबंधी एक सेनेटोरियम में होता है। इसके द्वारा टॉमस मैन ने सन् १६१४ से पहले की योरपियन सोसाइटी (योरप के सभ्य-समाज) की उस निस्सारता का प्रदर्शन किया था, जिसके सुधार के लिये सन् १६१४ में प्रारंभ होनेवाले योरपियन महासमर की अनिवार्य आवश्यकता थी। इस उपन्यास के बाद मैन ने 'चिल्डून ऐंड फ़ूल्ज़' की भी रचना की, लेकिन 'बडन ब्रुक्स' ही उनकी सर्वोत्तम कृति मानी जाती है।

इस समय मैन की अवस्था ५४ वर्ष की है। वे स्वभावतः मितभाषी और शांत हैं। किंतु उनके उस शांत व्यक्तित्व के नीचे एक ज्वालामुखी की-सी आग सुलगा करती है। उसमें मनुष्य-समाज के दुर्गुणों का अनवरत होम हुआ करता है, तथा उसी में उत्तप्त होकर मैन के पात्र खरे सोने के समान संसार के लिये आकर्षण की सामग्री बन जाते हैं। आज मैन जर्मन-उपन्यासकारों के अग्रणी हैं। मनुष्य-जीवन के दुःखांत नाटक का जैसा अनुभव उन्हें है, वैसा बहुत कम लेखकों को होता है। चरित्र-चित्रण में तो वे सिद्धहस्त हैं ही, कभी-कभी वे ऐसी गहरी चुटकी भी लेते हैं कि बस दाँतों-तले उँगली दबाना पड़ती है। आधुनिक समाज की कमज़ोरियों और मानव-हृदय के गहरे गह्वरों के कोने-कोने से वे परिचित हैं। इसीलिये उनके उपन्यास इतने उत्कृष्ट होते हैं।

× × ×

६. तलाक़ और हिंदू-समाज

पिछले साल बड़ौदा रियासत की धारा-सभा में एक हिंदू-विवाह-विच्छेद (तलाक़)-बिल पेश किया गया था। धारा-सभा ने उस बिल को जनता की सम्मति जानने के लिये प्रकाशित किया था। बड़ौदा की प्रजा तथा अन्य लोगों की सम्मति आ जाने पर वह बिल अब फिर धारा-सभा के सामने आया है। एक विशेष अधिवेशन में उस पर विचार किया जायगा।

मालूम नहीं, बड़ौदा की धारा-सभा उस बिल पर क्या सम्मति दे। संभव है, बिल पास हो जाय। किंतु उसका न पास होना ही अधिक संभव मालूम होता है। हिंदू-धर्मशास्त्र के अनुसार किन्हीं अत्यंत भयानक कारणों के उपस्थित होने पर ही वैवाहिक विच्छेद होता था। अन्यथा विच्छेद करना अत्यंत गर्हणीय समझा जाता था। भयानक कारणों के होने पर भी विना पति-पत्नी दोनो की सहमति के यह विच्छेद नहीं हो सकता था। किंतु आजकल तो यह विच्छेद की प्रणाली एक-दम उठ-सी गई है। केवल द्विजेतर जातियों में ही यह प्रथा प्रचलित है। द्विजों में उसका एकदम अभाव है। इसके विपरीत यदि कोई द्विज-स्त्री आजकल विवाह-विच्छेद का नाम भी लेती है, तो उसकी बड़ी बदनामी होती है। तलाक़ का नाम भी लेना हिंदू-धर्म के विरुद्ध समझा जाता है। हिंदू-समाज की पतित दशा को देखते हुए उसका अपने नारी-समुदाय की पवित्रता का इतना कट्टर संरक्षक होना सचमुच बड़े ही आश्चर्य की बात है! आजकल तो कट्टरता और अंध-विश्वास केवल उन्हीं समाजों में पाया जाता है, जिनका अंतरतम विभाग बिलकुल जीर्ण और खोखला होता है। बाहरी दिखाव और दृढ़ता के द्वारा ही वे समाज संसार में अपना अस्तित्व क़ायम रखने का प्रयत्न किया करते हैं। दुनिया के नए और पुराने धर्म इस प्रवृत्ति के बड़े सुंदर उदाहरण हैं। धार्मिक विचारों की क्रांति के इस युग में जो धर्म युक्ति और तर्क का सामना करते हैं, वे ही जीवित रह सकते हैं। जो इस कठिन अग्नि-परीक्षा से डरते हैं, वे अंध-विश्वास, धर्म-शास्त्र, हदीस, क़ुरान और इंजील तथा कट्टरपन के कठोर कवच में कछुए के समान सर्वांग वेष्टन करके आत्मरक्षा करते हैं। इसलाम इस प्रवृत्ति का सबसे बड़ा उदाहरण है। पैग़ंबर और क़ुरान के शब्दों के विषय में युक्ति और तर्क का नाम भी उसे अत्यंत घृणित मालूम होता है। हिंदू-धर्म के कुछ पुरातन प्रणाली के पंडितों में भी यह

प्रवृत्ति कम देखी जा रही है। प्राचीन रूढ़ियों की संरक्षणशीलता के वे इतने पक्षपाती हैं कि असामयिक शास्त्रीय वचनों में समयानुकूल परिवर्तन करना उन्हें एक जघन्य पाप मालूम होता है। वे भारतीय इतिहास के विभिन्न घटना-क्रम के कारण उत्पन्न हुई अनेक अनिष्ट-कर धार्मिक रूढ़ियों का बहिष्कार करके सनातन हिंदू-धर्म की प्रारंभिक पवित्रता पुनरुज्जीवित करने के घोर विरोधी हैं। हिंदू-धर्म की प्राचीन व्यापकता को जिन विनाश-कारिणी रूढ़ियों ने परिसीमित करके नष्ट कर डाला था, उन्हें एकदम नष्ट करके उसे उसके पूर्व रूप में लाना, उसे व्यापक बनाना उन्हें बहुत ही अखरता है।

ऐसे लोगों को बड़ौदा-धारा-सभा का यह कार्य अत्यंत अनुचित मालूम होगा; किंतु वे लोग जो हिंदू-धर्म में सुधारों के पक्षपाती हैं, उसके इस कार्य को प्रशंसा की दृष्टि से देखेंगे। हिंदू-स्त्रियों की वर्तमान दास्यवृत्ति की ओर देखते हुए यही उचित प्रतीत होता है कि उन्हें भी गार्हस्थ्य जीवन में समानाधिकार प्राप्त होने चाहिए। एक पत्नी के जीवित रहते हुए जो लोग अन्य स्त्रियों से वैवाहिक अथवा अनुचित संबंध स्थापित करके बेचारी पत्नी की छाती पर मूँग दला करते हैं, उनकी मरम्मत करने के लिये स्त्रियों के हाथ में भी कोई अस्त्र होना चाहिए। अपने अपमान का बदला लेने के लिये, अपने उचित क्रोध को प्रकट करने के लिये तथा अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये उसके पास भी कोई साधन होना चाहिए। हिंदू-विवाह-विच्छेद-बिल इसी प्रकार का साधन है, ऐसा ही अस्त्र है। मदांध और कामुक हिंदू-पति के भीषण अत्याचारों और व्यभिचारों का नियंत्रण करने के लिये पत्नी के हाथ में इस सामाजिक अंकुश का होना अत्यंत लाभदायक हो सकता है। अतएव प्रत्येक सुधार-प्रेमी हिंदू, पुरुष और नारी बड़ौदा-धारा-सभा के इस कार्य से सहानुभूति रक्खेगा, चाहे वह उसके इस कार्य को अभी असामयिक भले ही कहे। हम सदा से हिंदू-धर्म में सुधारों के पक्षपाती रहे हैं। अपनी हार्दिक इच्छाओं को जब हम इस प्रकार कार्य-रूप में परिणत होते देखते हैं, तो हमें अत्यंत हर्ष होता है। हिंदू-विवाह-विच्छेद बिल को जनता तथा धारा-सभा के सामने आते देखकर हमें बेहद प्रसन्नता हुई है, किंतु—और यह एक बड़ा किंतु है—हमारी सम्मति में ऐसे बिलों का अभी समय नहीं आया है। अभी हिंदू-समाज का क्षेत्र इतना उपजाऊ नहीं है कि ऐसी नाज़ुक सामाजिक समस्याओं के बीज उसमें उग सकें। वे सड़कर अन्य समाज-सुधार के अंकुरों में भी कीड़े लगा देंगे। अभी तो हमें हिंदू-समाज की उर्वरा-शक्ति बहुत बढ़ाने की आवश्यकता है। उसमें अभी इतने कॉस-कबाड़ खड़े हैं कि उनका मूलोच्छेद किए बिना अन्य उपयोगी बीज बोए ही नहीं जा सकते। अतएव अभी इस प्रकार के बिल पेश होना हम असांप्रतिक समझते हैं।

विवाह-विच्छेद-प्रथा के पनपने के विरुद्ध अभी हमारे समाज में तीन बड़े कारण हैं।

पहला कारण है—हिंदू-स्त्रियों की शोचनीय सामाजिक परिस्थिति। बचपन से मृत्यु तक वे पुरुषों की इच्छाओं और आज्ञाओं के जिस शिकंजे में पलती हैं, उसके कारण उनकी मानसिक तथा शारीरिक बाढ़ में भयानक व्यवधान पड़ता है। वे एक अस्वाभाविक रूप में बढ़ती और अस्वाभाविक रूप में ही जीवन व्यतीत करती हैं। अप्राकृतिक बंधनों के कारण उनका मानसिक विकास बिलकुल मारा जाता है। वे पुरुषों की सामाजिक तथा शारीरिक दासी तो होती हैं, मानसिक विचारों में भी वे पुरुषों की ही दासता स्वीकार करती हैं। स्वतंत्र मानसिक वातावरण में पली न होने के कारण वे स्वयं कुछ भी नहीं सोच सकतीं। अतएव आजकल के जीवन-संघर्ष के युग में—जहाँ कि आत्मनिर्भरता ही विजय का साधन समझा जाता है—इस प्रकार की मानसिक दासता के कारण वे कभी भी जीवित नहीं रह सकतीं, उन्हें पुरुषों का आश्रय लेना ही होगा और दास्य-वृत्ति करनी ही होगी। हम जब तक उन्हें इतना आत्म-निर्भर नहीं बना देते, जिससे वे इस संघर्ष के घोर थपेड़ों का वीरता-पूर्ण सामना कर सकें, तब तक विवाह-विच्छेद-जैसे क़ानूनों का—जिनमें स्त्री का आत्म-निर्भर होना नितांत आवश्यक है—पास होना असामयिक ही समझा जायगा।

इसके अतिरिक्त हिंदू-स्त्रियों की आर्थिक दशा भी इतनी असंतोष-जनक है कि वे अपने पैरों आप खड़ी नहीं हो सकतीं। हिंदू-धर्मशास्त्रों की आधुनिक टीका-

टिप्पणियों ने उनके सब आर्थिक अधिकारों पर हरताल पोत रक्खी है। स्त्री-धन के अतिरिक्त उनके और कोई आर्थिक अधिकार ही वे स्वीकार नहीं करतीं। वर्तमान हिंदू-क़ानून भी स्मृतियों—विशेषतः आधुनिक स्मृतियों—के ही आधार पर बनाया गया है। अतएव उसमें भी उनके अधिकारों की रक्षा नहीं की गई है। रक्षा तो दूर रही, उनके लिये अधिकार ही नहीं रक्खे गए हैं। हिंदू-समाज ने भी उन्हें शिक्षा से वंचित रखकर आर्थिक आत्म-निर्भरता से कोसों दूर हटा दिया है। ऐसी दशा में अत्याचारी पतियों द्वारा वैवाहिक दशा में ही परित्यक्ता स्त्रियाँ जब नितांत दरिद्रता और तज्जन्य कष्टों से पूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं, तो फिर तलाक़ दी हुई स्त्रियों की कठिनाइयों का तो कहना ही क्या। जब तक हम स्त्रियों को इतना शिक्षित नहीं बना देते कि वे पुरुष-रक्षापेक्षिणी न रहें, जब तक हम उन्हें आर्थिक अधिकार देकर आत्म-निर्भर नहीं बना देते, तब तक विवाह-विच्छेद की चर्चा करना नितांत अनावश्यक-सा ही है।

विवाह-विच्छेद-क़ानून के विरुद्ध तीसरी और शायद सबसे मुख्य बात है, हिंदू-समाज का विरुद्ध वातावरण। केवल हिंदू-पुरुष ही नहीं हिंदू-स्त्रियाँ तक स्वयं इस नए क़ानून का उपयोग करने के लिये तैयार नहीं हैं। ऐसी दशा में इस प्रकार के सामाजिक क़ानून पास करना कभी लाभदायक सिद्ध नहीं होता। अतएव हमारी सम्मति में बड़ौदा-धारा-सभा को बड़ी समझदारी से काम लेकर इस क़ानून को अभी न पास करना चाहिए।

× × ×

१०. अफ़ग़ानिस्तान की गृह-कलह

कुछ दिन हुए 'सुधा' में हमने नादिरख़ाँ के अफ़ग़ानिस्तान के शाह बन बैठने पर अपने विचार प्रकट किए थे। अफ़ग़ानिस्तान से हाल में ही आए हुए समाचारों से विदित होता है कि वहाँ फिर विद्रोहाग्नि भड़क उठी है। इस नवीन उत्पात का कारण है जनरल नादिरख़ाँ की कट्टरता और विश्वासघात। अपने पैर मज़बूत करने के लिये उन्होंने वहाँ के गँवार मुल्लाओं को विशेष अधिकार देकर तथा उन्हीं कठमुल्लों की सम्मति से राज्य-प्रबंध करने की अनुमति देकर अमानुल्लाशाह के सब किए-कराए पर चौका फेर दिया है। देश अब फिर जाहिल और अंधे कठमुल्लों के क़ब्ज़े में चला गया है। अतएव वहाँ की सुधार-प्रिय प्रजा उनसे एकदम अप्रसन्न हो उठी है।

इसके साथ ही नादिरख़ाँ ने अमानुल्ला के साथ जो घोर विश्वासघात किया है, उसे भी वहाँ की प्रजा भूली नहीं है। वही नादिरख़ाँ जो कभी अमानुल्ला और अफ़ग़ानिस्तान के उद्धार के ऊँचे आदर्शों की घोषणा किया करते थे, अब कहते हैं कि उनमें और अमानुल्ला में आज तक कभी सद्भाव ही नहीं रहा, मित्रता कैसी? इस धूर्तता और नीचता को अफ़ग़ानिस्तान की प्रजा क्षमा नहीं कर सकी, इसीलिये वह बाग़ी हो उठी है। अमानुल्ला के भाई और व्यापारिक एजेंट की गिरफ़्तारी ने इस प्रज्वलित अग्नि में आहुति का काम किया है। अब शिनवारी पठानों ने नादिरख़ाँ के नाश की प्रतिज्ञा कर ली है। वे उन्हें गद्दी से उतारे

बिना चैन से नहीं बैठेंगे। इधर सुना है, शाह अमानुल्ला भी अफ़ग़ानिस्तान के लिये रवाना हो गए हैं। उनके वहाँ जा पहुँचते ही विद्रोह की प्रचंड ज्वालाएँ और भी अधिक तेज़ हो उठेंगी। तब इन बनावटी शाह नादिर को अपने विश्वासघात का उचित दंड मिलेगा, और तभी हमारी भविष्यवाणी भी पूरी होगी।

ब्रिटिश सरकार न-मालूम क्यों नादिरख़ाँ की सहायता कर रही है। अमानुल्ला के लिये जो सहायता निषिद्ध थी, वही सहायता नादिरख़ाँ के लिये न-मालूम किस क़ानून से विधेय हो गई है। अंतरराष्ट्रीय चालबाज़ियाँ ही इस परिवर्तन का कारण हैं। स्वार्थी ब्रिटेन अपने अफ़ग़ानिस्तान-संबंधी स्वार्थों की रक्षा के लिये घृणित-से-घृणित कार्य करने पर भी उद्यत हो सकता है, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

× × ×

११. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन और नागरी-प्रचारिणी सभा

कुछ दिन हुए, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागत-मंत्री महोदय का एक निमंत्रण-पत्र हमें मिला था। उसमें २री, ३री और ४थी मार्च को सम्मेलन का अधिवेशन होने की बात कही गई थी। उसके कुछ ही दिन बाद नागरीप्रचारिणी सभा के कवि-सम्मेलन और कला-भवनोद्घाटन का एक नोटिस और निमंत्रण-पत्र भी हमारे पास आ पहुँचा। इन दोनो अधिवेशनों की तिथियाँ भी प्रायः वही थीं। जब हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की बैठक की तिथियाँ इतने दिन पहले से ही निश्चित हो चुकी थीं, तब सभा का अपने उत्सव के लिये भी उन्हीं तिथियों का चुनाव ठीक नहीं हुआ। कारण, जो लोग दोनों जगह सम्मिलित होना चाहेंगे, वे ऐसा नहीं कर सकेंगे। आख़िर इस तिथि-साम्यता का क्या रहस्य है या अनायास ही ऐसा हो गया है?

× × ×

१२. साहित्य में नीति का स्थान

आदिम काल से लेकर आज तक के संसार के साहित्य को देखते हुए यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि मनुष्य-जाति ने केवल उसी साहित्य का आदर किया है, जिसने उसकी ज्ञान-पिपासा, उसकी सदाचार-नीति तथा उसकी आत्मरक्षा के विषय में कुछ नवीन सामग्री प्रस्तुत की है। मनुष्य-जाति के इतिहास में सदा उसी कला को सर्वश्रेष्ठ समझा गया है, जिसमें धर्म को प्राधान्य दिया गया हो—जिसमें सदाचार तथा मनुष्य-जाति की हित-कामना के सिद्धांतों की भरपूर रक्षा की गई हो। दुराचार-पूर्ण और मानव-जाति का ह्रास करनेवाले साहित्य का संसार आदर नहीं करता। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि साहित्यिक लेखक धर्म-शास्त्री अथवा स्मृतिकार के समान सदा सदाचार और नीति का ही रोना रोया करे, वह अपने ग्रंथों में धार्मिक उपदेशों के पुल बाँधा करे। कला और नीति के उद्देश्य इतने भिन्न हैं कि साहित्यिक लेखक और नीतिज्ञ का क्षेत्र एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाता है। दोनो का कार्य एक दूसरे से एकदम अलग हो जाता है। धर्म-शास्त्र जीवन के सब पहलुओं का विश्लेषण करता और उनके विषय में शिक्षा तथा आज्ञा देता है। साहित्य जीवन के इन परस्पर भिन्न पहलुओं का समीकरण करके उनको एकरस बनाकर मानव-जीवन को सुंदर, शिव और सत्य बना देता है।

अनादि काल से मनुष्य-जाति सभ्यता की ओर अग्रसर हो रही है। उसका प्रारंभिक जंगलीपन कम होता जा रहा है। इस जंगलीपन के दूर होने से नीति और सदाचार की वृद्धि होती जा रही है। सामाजिक जीवन के लिये जिन नैतिक आवश्यकताओं का अनुभव होता जा रहा है, उनका संरक्षण तथा अनावश्यक नैतिक बंधनों का परित्याग मनुष्य की इस उन्नति का प्रधान गुण है। अतएव नीति और सदाचार के विरुद्ध चलनेवाला साहित्य सभ्य-संसार में आदरणीय नहीं हो सकता। मनुष्य-जाति की उन्नति में बाधक होने अथवा उसकी उन्नति की ओर से उदासीन होने के कारण सभ्य-समाज में उसे कोई नहीं अपनाता। वह केवल उस समाज में आदर पाता है, जिसमें आदिम काल का जंगलीपन, नैतिक अधःपतन तथा पापाचार ख़ूब घर कर चुका है।

हिंदी के उपन्यासों की नई शैली नैतिक दृष्टि से हीनता की ओर अग्रसर हो रही है। उसमें मनुष्य-समाज की गंदी नालियों का कूड़ा-करकट इतना बढ़ चला है कि वे समाज के लिये आशंकाजनक हो उठे हैं।

वासना-लोलुप कुछ युवकों को छोड़कर सभ्य-समाज इन उपन्यासों का आदर नहीं करता। किंतु फिर भी इन उपन्यासों के लेखकों की आँखें नहीं खुलतीं, उन्हें अपने कर्तव्य का ध्यान नहीं आता, वे साहित्य और नीति के उपर्युक्त संबंध की ओर से एकदम उदासीन होकर अपने पतनोन्मुख मार्ग की ओर ही अग्रसर होते जा रहे हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए कि कला और नीति का गहरा संबंध है। कला जीवन से उत्पन्न होती है। जीवन ही उसका भोजन है, और जीवन ही उसकी प्रतिक्रिया।

जब कला और जीवन का इतना गहरा संबंध है, तो मानव-जीवन के प्रति कलाकार का उत्तरदायित्व भी ख़ूब है। उपन्यास-लेखन और मानव-जीवन का संबंध तो और भी घनिष्ठ है। उपन्यास जीवन का प्रतिबिंब होता है। अतएव उपन्यासकार जीवन के तत्त्व, सदाचार और नीति का बहिष्कार नहीं कर सकता। जीवन के नैतिक पहलुओं को लेकर चलने में ही उसकी कला की विशेषता है।

× × ×

१३. नमक और हिंदोस्तानी

नमक दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तु है। उसके विना मनुष्य का जीवन बड़ा ही कठिन हो जाता है। भोजन का सारा रस ही नमक के विना नीरस हो जाता है। स्वास्थ्य के लिये भी वह एक आवश्यक वस्तु है। नमक की कमी के कारण ही कोढ़ और खाज-जैसी त्वचा की बीमारियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। मनुष्य और पशुओं की पाचन-शक्ति ठीक रखने के लिये भी नमक एक आवश्यक वस्तु है। प्रत्येक ग़रीब और अमीर को इसकी प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये हिंदू लोगों में नमक बड़ा ही पवित्र माना गया है। उसका फेंकना और अनादर करना एक बहुत बुरी बात समझी जाती है। कहावत तो यह है कि जो कोई नमक फेंकता है, उसे अगले जन्म में पलकों से उसे बीनना पड़ता है। जीवन की इतनी आवश्यक वस्तु यदि सस्ती नहीं होती, तो ग़रीबों के लिये बड़ी ही विपत्ति का कारण हो जाती है। बरसों से नमक साधारण जनता के लिये उपयुक्त दामों पर बिकता चला आ रहा था। यद्यपि वे दाम भी महँगे अवश्य थे, किंतु तो भी ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी उन दामों नमक ख़रीद सकता था। इधर दो-तीन बरसों से सरकार ने नमक पर नज़रे-इनायत की है, अतएव उसका दाम भी बराबर बढ़ता ही जा रहा है। अभी हाल में उसका दाम फिर बढ़ा है। नमक-जैसी आवश्यक वस्तु पर प्रति सेर एक पैसा दाम बढ़ जाना बड़ी ही चिंता की बात है। इससे ग़रीबों की असंख्य कठिनाइयाँ और भी बढ़ गई हैं। लेकिन सरकार को इससे क्या? चाहे हिंदोस्तानी मरें या जिएँ, उसे तो अपने होम-मेंबरों और व्यापारियों की बेहद बढ़ी हुई तोंद को सहलाने के सिवा और कोई काम ही नहीं। बड़े-बड़े व्यापारियों की सुविधा के लिये वह आयात-कर कम कर सकती है, मोटरों पर टैक्स माफ़ कर सकती है, तथा मैनचेस्टर और शेफ़ील्ड के सामान को कर-मुक्त कर सकती है, किंतु ग़रीबों के लिये नमक और पोस्टकार्ड सस्ते नहीं कर सकती। दुष्टता और हृदयहीनता की हद हो गई। जिनके पास आराम के सारे सामान मौजूद हों, उनकी सुविधा के लिये ग़रीबों को रोगों और मृत्यु के मुख में ढकेल दिया जाय! और फिर विना किसी अपराध के!! नमक-कर और पोस्टकार्डों के दाम बढ़ाने के विषय में सब हिंदोस्तानी मेंबरों के विरुद्ध होने पर भी वायसराय-जैसे उत्तरदायी राज्य-कर्मचारी ने अपने विशेष अधिकारों का उपयोग करके अनुमति दे दी, इससे बढ़कर सरकार की हृदयहीनता का और कौन-सा प्रमाण मिल सकता है। ऐसे अत्याचार-पूर्ण करों का विरोध और प्रबल विरोध किए विना सरकार का यह अंधापन दूर न होगा। अतएव देश के मान्य नेता महात्माजी ने नमक-कर के विरुद्ध सत्याग्रह उद्घोषित करने का निश्चय किया है। वे नमक के गोदामों पर धावा बोलकर सब नमक उठा लाकर ग़रीबों को बाँट देना चाहते हैं। सचमुच सरकार की दुष्टता के लिये इससे बढ़कर और कोई उत्तर नहीं हो सकता। इस लूट-खसोट से होनेवाले दंगों से सरकार का औंधा दिमाग़ शायद कुछ दुरुस्त हो जायगा। हम समझते हैं कि प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि नमक-कर-जैसे सरकार के भीषण अत्याचार का वह प्रबल विरोध करे, और प्रत्येक प्रकार से अपने अपढ़ भाइयों तक महात्माजी की निम्न-लिखित पंक्तियाँ पहुँचा दे—

"भारत-जैसे देश में नमक पर कर लगाने से बढ़-

कर और क्या अन्याय हो सकता है ? तमाम देश-नेताओं ने इस कर की सख़्त मुख़ालिफ़त की है। आर्थिक ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से भी यह कर नितांत अनिष्ट है, और जनता का सर्वनाश करता है। मि० ब्लंट कहते हैं जो लोग बहुत ही ग़रीब हैं, उन्हें ज़रूरत के मुताबिक़ नमक नहीं मिलता ; और बदनसीबी से दक्षिण हिंदोस्तान के ज़्यादातर लोग बहुत ही ग़रीब हैं। दूसरे, दक्षिण में यह कर और भी खटकता है, क्योंकि क़ुदरती नमक ज़मीन पर रहता है, चीज़ लोगों के सामने पड़ी होती है, फिर भी उन्हें तंगी उठानी पड़ती है। बहुतेरे गाँववालों ने मुझसे कहा था, 'जहाँ नमक पड़ा होता है, उस जगह रात को हम अपने ढोर हाँक ले जाते हैं, और इस तरह चोरी करके ढोरों को नमक चटाते हैं, लेकिन पकड़े जाने पर चौकीदार मवेशी को ढब्बों में पूर देता है। और, अभी-अभी यह हुक्म जारी हुआ है कि जहाँ क़ुदरती हालत में ज़मीन पर नमक पाया जाय, वहाँ सिपाही उसे इकट्ठा करके उसका नाश कर दें।' एक और जगह किसी ने मुझसे कहा था कि 'जिन्हें अत्यंत आवश्यक नमक काफ़ी मात्रा में नहीं मिलता, उन लोगों को एक तरह की कोढ़ फूट निकलती है। सरकार लागत क़ीमत से १,२०० फ़ी-सदी से लेकर २,००० फ़ी-सदी तक अधिक क़ीमत पर नमक बेचती है।' कार्य-साधकता की दृष्टि से भी यह कर बुरा है, क्योंकि इसे वसूल करने में आय को २० फ़ी-सदी रक़म ख़र्च हो जाती है। मि० मैकडॉनल्ड कहते हैं—'नमक पर कर लगाने का मतलब धन लूटना और ज़ुल्म करना है। अगर लोग इस बात को समझें, तो असंतोष की मात्रा बढ़ जाय—आग सुलग जाय। मुनाफ़ा कमानेवाले पुराने व्यापारियों की कंपनी भारत के ग़रीबों को लूटती थी, यह उस लूट का बचा हुआ चिह्न-भर है।' अगर लोग राज्य-संबंधी अपनी ज़िम्मेदारी समझें, तो इस कर की आवश्यकता का जो ढोंग किया जाता है, वह एक दिन भी न टिके। मगर सर्व-साधारण इतने अज्ञान और निरक्षर हैं कि वे न तो यह समझते हैं, और न जानते हैं कि नमक पर कर लिया जाता है, और अगर जानते भी हों, तो उनके ज़बान नहीं है। जहाँ राज्य जनता के प्रति ज़िम्मेदार होता है, उसी देश के लिये ये सब बातें हैं। अतएव राजनीतिक दृष्टि से भी यह कर अनुचित है।"

× × ×

१४. राजा महेंद्रप्रताप

काबुल से अभी जो समाचार और पत्र आ रहे हैं, उनसे पता चला है कि सुप्रसिद्ध देश-भक्त, भारत के लाल राजा महेंद्रप्रताप अब काबुल आ पहुँचे हैं। उनके वहाँ पहुँचते ही ब्रिटिश-सरकार का आसन डोल उठा होगा, क्योंकि इसके लिये राजा साहब एक भीषण हौआ हैं। न-मालूम उन्होंने अपने देश के लिये सर्वस्व त्याग-कर उसकी स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न करने में कौन-सा पाप कर डाला कि सरकार उन्हें एकदम अपने जानो-माल का दुश्मन समझने लगी है। उनके जीवन की प्रत्येक घटना आदर्श-त्याग और देश-प्रेम का सजीव उदाहरण है। अतएव सरकार का यह डर एक विचित्र ही पहेली मालूम होता है।

राजा साहब का जन्म सन् १८८६ में मुरसान के राजा श्रीराजाबहादुर घनश्यामसिंह के यहाँ हुआ था। किंतु २½ वर्ष की अवस्था में ही वे हाथरस के राजा हरनारायणसिंह द्वारा गोद ले लिए गए थे। उनके दोनो बड़े भाई राजा दत्तप्रसाद तथा कुँवर बलदेवसिंह मुरसान में ही रहते थे। ६½ वर्ष की अवस्था में राजा साहब के गोद लेनेवाले पिता हरनारायणजी का स्वर्गवास हो गया था, अतएव उनका संरक्षण एवं शिक्षण कोर्ट ऑफ़् वार्ड्स के निरीक्षण में चला गया। प्रारंभ में उनकी शिक्षा उनके वृंदावनवाले महल में ही एक निजू शिक्षक द्वारा हुई। कुछ दिनों बाद हाई स्कूल में भरती होकर उन्होंने इंट्रेंस का परीक्षा पास का, और फिर अलीगढ़-कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त करने चले गए। वहाँ उन्होंने एफ़्०ए० पास किया। १६ वर्ष की अवस्था में झींद रियासत के महाराज की छोटी बहन से इनका विवाह हो गया, और यह बी० ए० में पढ़ने लगे।

बाल्य-काल से ही राजा साहब युद्ध और स्वाधीनता के बड़े शौक़ीन थे। नेपोलियन के समान सेना बनाकर विजय-यात्रा का खेल खेलना उन्हें बहुत ही पसंद था। कॉलेज में भी उनका यह शौक़ बराबर जारी रहा। एक बार तो अपनी इसी स्वातंत्र्य-प्रियता के कारण वे एक ऐसे

घटना-चक्र में पड़ गए कि जिसने उनके जीवन-स्रोत को एकदम बदल दिया। अपने कॉलेज के किसी अन्याय-युक्त कार्य के विरोध में इन्होंने अपने सहपाठियों के साथ हड़ताल कर दी थी, अतएव कॉलेज के अधिकारियों की इन पर कृपादृष्टि हुई थी। उनकी दासत्व-पूर्ण मनोवृत्ति तथा दासत्वमय न्याय-पद्धति को देखकर राजा साहब ने सदा के लिये कॉलेज त्याग दिया, और घर पर आकर अध्ययन करने लगे।

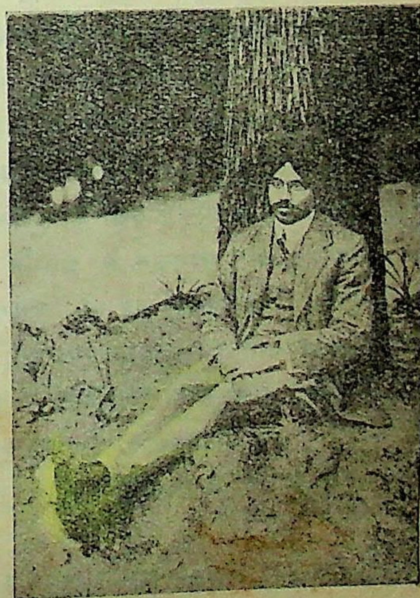
१८ वर्ष की अवस्था में राजा साहब ने अपनी रानी-सहित शिक्षा-संस्थाओं का अध्ययन करने के उद्देश्य से योरप की यात्रा की। वहाँ के शिक्षणालयों में शिल्प तथा उद्योग-धंधों की शिक्षा देखकर उन्हें भी इस प्रकार के शिक्षा-केंद्रों के स्थापन की धुन सवार हुई। भारतवर्ष के कारीगरों की अशिक्षा तथा यहाँ के शिल्प की अवनति देखकर उनके मन में आया कि वह एक ऐसा केंद्र स्थापित करें, जहाँ साहित्यिक और औद्योगिक, दोनो शिक्षाओं का साथ-साथ प्रबंध हो।

योरप से लौटने पर, सन् १९०७ में, इनकी रियासत कोर्ट ऑफ़् वार्ड्स से छूटकर इन्हें मिल गई। रियासत मिलते ही अपने उद्देश्य पूरे करने की इन्हें धुन सवार हुई। सन् १९०९ के मई मास में उन्होंने अपने इष्ट-मित्रों, राजा-महाराजाओं तथा नेताओं को अपने यहाँ पुत्रोत्पत्ति के निमंत्रण-पत्र भेज दिए। २४ मई को नामकरण-संस्कार के दिन सब आमंत्रित सज्जन वृंदावन आ पहुँचे। पं० मदनमोहन मालवीयजी की अध्यक्षता में सभा हुई। वहाँ राजा साहब ने कहा—"मैंने एक निश्शुल्क राष्ट्रीय विद्यालय खोला है। वही मेरा पुत्र है। परंतु अभी वह बेजान है, आप सब लोग मिलकर उसमें जान डालें, और उसका नामकरण करें। अपनी सब रियासत इस विद्यालय को अर्पण करना मैंने निश्चित कर लिया है।" इत्यादि। सभी लोग राजा साहब के इस कार्य पर आश्चर्य-चकित रह गए! सभी ने उन्हें उनका इस सहसा-कारिता से रोकना चाहा। किंतु दृढ़-प्रतिज्ञ राजा साहब ने जो निश्चय कर लिया था, उसे न त्यागा। माताओं और अन्य मित्रों के कहने-सुनने से उन्होंने आधी जायदाद अपने लिये रखकर बाक़ी आधी प्रेम-महाविद्यालय के नाम रजिस्ट्री करा दी।

इसके अतिरिक्त गुरुकुल वृंदावन के लिये भी राजा साहब ने यमुना-तटवर्ती अपना विशाल बाग़ और जायदाद दान कर दी। इस प्रकार दो-दो उपयोगी संस्थाओं की स्थापना के कारण होकर राजा साहब ने अनंत यश कमाया, और राष्ट्रीय शिक्षा-विस्तार के अपने उद्देश्य की पूर्ति की।

सन् १९१२ में राजा साहब फिर योरप गए, और शीघ्र ही लौट आए। वहाँ से आकर राजा साहब ने किसानों के उद्धार के लिये अनेक उपयोगी कार्य किए। अनेक लेख लिखकर तथा स्वयं किसानों से मिलकर उन्होंने उनकी उन्नति के लिये आंदोलन प्रारंभ किया। स्वयं अपने प्रत्येक गाँव में उन्होंने पाठशालाएँ खुलवाईं, और उनके ख़र्च के लिये अलग २० हज़ार रुपए प्रेम-महाविद्यालय के ट्रस्टियों के सुपुर्द कर दिए। अछूतों के लिये भी राजा साहब के हृदय में बड़ा स्थान था। वे उनके साथ स्वयं भोजन करते और उनके लिये लेख लिखते थे। उनके साथ वे सदा समानता का बर्ताव करते थे। वे सच्चे साम्यवादी थे। वे कहते थे कि "भूमि और धन मनुष्य-जाति का साझे का माल रहेगा।"

अपने देश को स्वतंत्र करने की इच्छा राजा साहब के मन में बहुत दिनों से थी, सन् १९१४ के महा-



राजा महेंद्रप्रताप

युद्ध में उस इच्छा की पूर्ति का आभास पाकर वे फ़ौरन् योरप के लिये रवाना हो गए। उन्होंने पासपोर्ट तक नहीं लिया, और न अपने परिवार की ही कोई चिंता की। राजा साहब का कहना है कि "१९१४ में मेरा विचार हुआ कि युद्ध में जर्मनी की सहायता से शायद मैं अपने देश भारत को अँगरेज़ी पंजे से स्वतंत्र कर सकूँ, और इसी भाव से महायुद्ध में गया।" अपने देश की स्वतंत्रता के पीछे इस प्रकार पागल होने के कारण ही राजा साहब आज देश से निर्वासित हैं। आपका अब कहीं घर नहीं है। देश-देशांतर में घूमकर आप अब इँगलैंड के साम्राज्यवाद के विरुद्ध आंदोलन करते रहते हैं। आप मनुष्य-मात्र में प्रेम का संबंध कराना चाहते हैं।

अपार कष्टों और आर्थिक संकटों का न-मालूम किस प्रकार सामना करते हुए राजा साहब अब भी अपनी धुन में लगे हुए हैं। देश को जब तक स्वतंत्र नहीं कर लेंगे, तब तक चैन से न बैठने का इन महान् देश-भक्त का प्रण है। दोनो माताओं और प्रिय सहधर्मिणी की मृत्यु के समाचार भी इन महाव्रती को अपने उद्देश्य से नहीं डिगा सके हैं। परमात्मा देश के लाल राजा साहब को चिरजीवी और सफल-मनोरथ करें, यही हमारी प्रार्थना है।

× × ×

१५. निखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलन, कराँची

गत जनवरी मास में निखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलन का २०वाँ अधिवेशन पटियाला के राजवैद्य पं० रामप्रसाद शर्मा वैद्यरत्न के सभापतित्व में सकुशल और सानंद संपन्न हुआ। देश-भर के प्रसिद्ध वैद्यों की उपस्थिति से सम्मेलन सुशोभित था। सम्मेलन के अंतर्गत अनेक उपयोगिनी परिषदें तथा सभाएँ हुई थीं। लगभग २७ आयुर्वेद की उन्नति करनेवाले प्रस्ताव पास हुए, जिनके द्वारा देश की सरकार तथा बोर्डों से प्रार्थना की गई थी कि वे वैद्यक की उन्नति में सहायता दें। आगामी वर्ष के लिये निम्न-लिखित पदाधिकारियों का चुनाव हुआ—

सभापति—श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादजी राजवैद्य, पटियाला।

प्रधान मंत्री—पं० शिवनारायणजी मिश्र भिषग्रत्न, कानपुर।

पत्रिका-संपादक—पं० शिवशर्माजी आयुर्वेदाचार्य।

इत्यादि।

अपने परमप्रिय मित्र श्रीपं० शिवनारायणजी को हम उनकी इस पद-प्राप्ति के लिये बधाई देते हैं। आशा है, उनके द्वारा वैद्य-सम्मेलन की और भी अधिक श्रीवृद्धि होगी।

१६. प्रेम का नशा

हाफ़िज़ फ़ारसी के बड़े प्रसिद्ध कवि हुए हैं। उन्होंने मानव-जीवन की समस्याओं का बड़ा ही सुंदर अध्ययन किया है। मानवीय हृदय की हर्ष, शोक, चिंता, सुख-दुःख, प्रेम तथा स्नेह की विविध दशाओं पर उन्होंने जो कविता की है, वह इतनी सच्ची और अनुभव-पूर्ण है कि उसे पढ़कर हाफ़िज़ की महती प्रतिभा पर आफ़रीं किए बिना नहीं रहा जा सकता। प्रेम के विषय में तो उनके जितने शेर हैं, वे प्रायः सब-के-सब लोगों को जिह्वाग्र-से ही हैं। उन शेरों में कितना रस और कितना सत्य है, यह उनकी इसी जन-प्रियता से पता लग जाता है। इसी प्रकार के एक नीचे-लिखे लोक-विश्रुत शेर को लेकर चित्रकार ने एक चित्र की रचना की है, जो इसी अंक में प्रकाशित है—

मादर-पियाला अक्से-रुख़े-यार दीदएम ;
ऐ बेख़बर, ज़े लज़्ज़ते शुर् बे मुदामे मा।

(अर्थात् प्याले में हमें अपने प्रियतम के मुखारविंद के जिस प्रतिबिंब के दर्शन होते हैं, वह इतना मादक है कि हम सदैव उसके मद में मस्त रहते हैं। इस मस्ती का, ऐ अनभिज्ञ ! तुझे अनुमान भी नहीं हो सकता।)

इसके द्वारा उन्होंने हाफ़िज़ द्वारा वर्णित प्रेम की मादकता तथा उसके कारण का निदर्शन किया है। प्रेयसी के मुखारविंद का अनवरत ध्यान करते-करते प्रेमी की मानसिक दशा इतनी भावुक हो गई है कि वह मद्य के प्याले में भी अपने मनोराज्य की अधिष्ठात्री प्रेम-प्रतिमा का प्रतिबिंब देखता है। संसार के नश्वर मद्य से भी अधिक मादक 'प्रेम का नशा' उसे इस सांसारिक मद्य से बहुत दूर प्रेम-राज्य के सुंदरतम प्रदेश में खींच ले जाता है!

हमारे यहाँ से प्रकाशित

कुछ बढ़िया पुस्तकें



गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

तुलसीदास

परिवर्द्धित, संशोधित

हिंदी नवरत्न

तृतीय संस्करण

अर्थात्

हिंदी-भाषा के सर्वोत्तम कविरत्नों के आलोचना-पूर्ण जीवन-चरित्र

लेखक—

हिंदी-संसार के प्रख्यातनाम समालोचक "मिश्रबंधु"

इस पुस्तक की प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वानों ने की है। साहित्य-प्रेमी और साधारण-जन, सबको समान भाव से यह पुस्तक आनंद देगी। इस बार यह पुस्तक पहले से लगभग दुगुनी बड़ी और दसगुनी उपयोगी हो गई है! इसे सामयिक और सर्वांगपूर्ण बनाने में कोई भी चेष्टा बाक़ी नहीं रक्खी गई। अब तक की साहित्यिक खोजों के अनुसार संशोधन और संवर्द्धन होने से पुस्तक अप-टु-डेट हो गई है। नवरत्न का यह संस्करण सब तरह आदर्श, अद्वितीय और सर्वांग-सुंदर है। अब की चित्र सब तिरंगे कर दिए गए हैं, पर मूल्य वही रक्खा गया है।

११ रंगीन चित्रों से समलंकृत

मूल्य ४॥)
सुंदर सुनहरी जिल्द ५)

सूरदास, देवदत्त, बिहारीलाल, भूषण, चंदबरदाई, कबीरदास, केशवदास, मतिराम



पढ़ते जाइए और हँसते जाइए

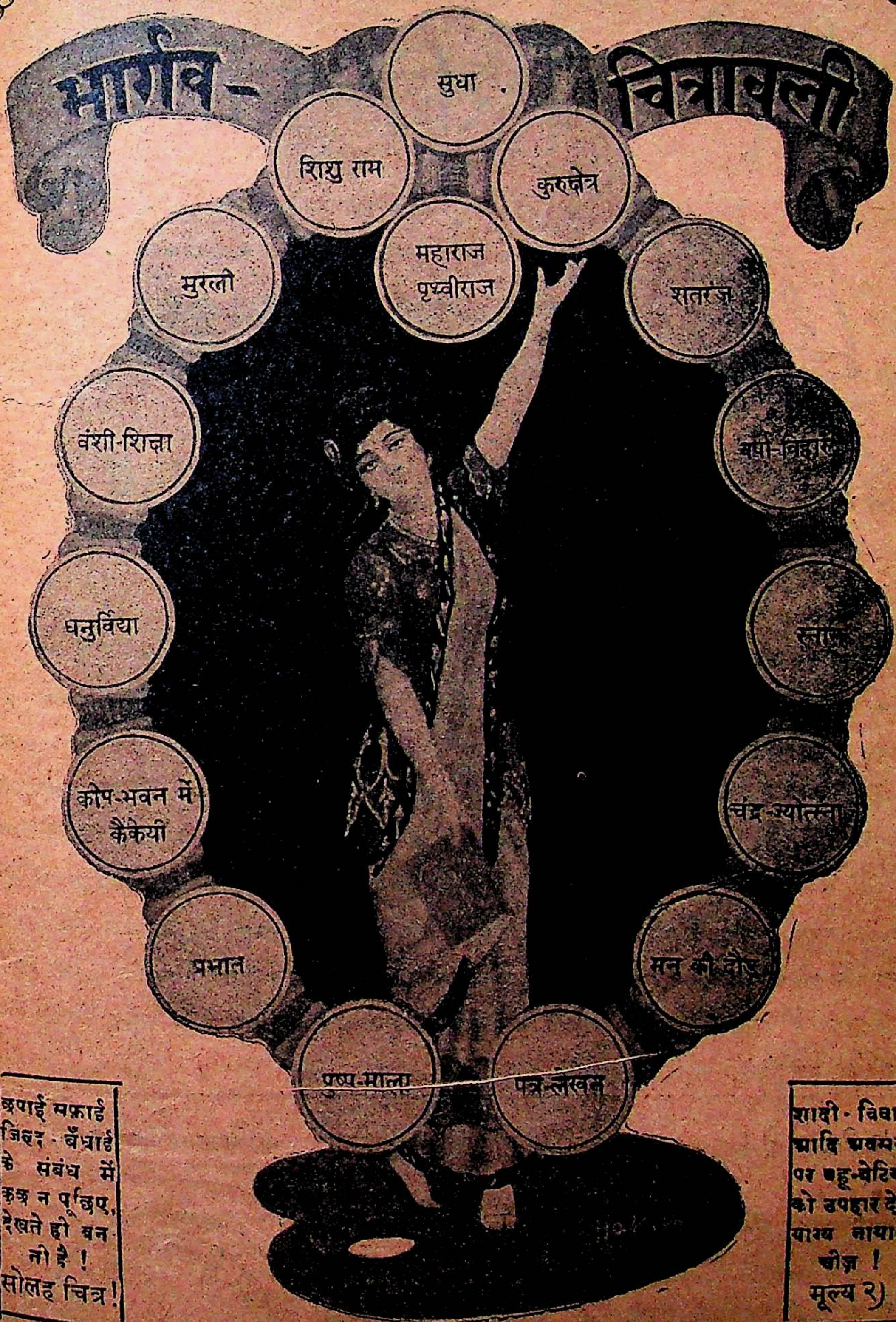
यदि आपको अपना स्वास्थ्य ठीक रखना है, तो नित्य कुछ-न-कुछ हँस लीजिए। इस पुस्तक में स्वास्थ्य ठीक रखने का मिक्श्चर आदि से अंत तक भरा पड़ा है।



मिस्टर व्यास की कथा

हास्य-रस की अलौकिक पुस्तक। लेखक, आनंद-संपादक स्व० श्रीशिवनाथ शर्मा बी० ए०। अन्य रसों की तरह हास्य-रस पर क़लम चलाना सहज नहीं। बिरले ही प्रतिभाशाली, सिद्धहस्त लेखक इसमें सफलता पाते हैं। व्यंग्य और विनोद द्वारा समाज की बुराइयों का चित्र खींचना साधारण लेखक की क़लम से बाहर है। लक्ष्य हीन, उद्देश्य-हीन हँसी के चुटकुले लिख लेना मामूली बात है। यही कारण है कि संसार की सभी भाषाओं में हास्य रस का साहित्य बहुत ही कम है। हिंदी में तो इस प्रकार की मौलिक रचनाएँ नहीं के बराबर हैं। शर्माजी उच्च कोटि के हास्य-लेखक हैं। आपकी इस पुस्तक में व्यंग्य और विनोद द्वारा बड़े ही अच्छे ढंग से समाज की बुराइयों का चित्र खींचा गया है। पुस्तक की पंक्ति-पंक्ति और अक्षर-अक्षर में व्यंग्य और विनोद कूट-कूटकर भरे हुए हैं। हास्य-रस की प्रधानता के साथ-साथ भाषा की सजीवता और ओज ने सोने में सुगंध का काम किया है। सभ्य हँसी, लच्छेदार भाषा में, स्थान स्थान पर भर दी गई है। क्या मजाल कि रोनी सूरतवाले भी इसकी एक-एक पंक्ति पढ़कर हँसते-हँसते लोट-पोट न हो जायँ। एक बार पुस्तक को हाथ में लेकर फिर समाप्त किए बिना उसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। अपने ढंग के इस नए और निराले, हास्य रस-पूर्ण, सचित्र ४३२ पृष्ठ के ग्रंथ का मूल्य केवल २॥) रक्खा गया है। सजिल्द ३)

व्यवस्थापक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ



सजिल्द प्रति २॥)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

समालोचनात्मक तथा महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह

पृष्ठ-संख्या पौने तीन सौ

मू[illegible] सजिल्द [illegible]२)

साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी-लिखित

साहित्य-सन्दर्भ

द्विवेदीजी की अब तक की प्रकाशित रचनाओं में यह सर्वश्रेष्ठ है।

हिंदी-प्रेमियों को यह पुस्तक एक बार अवश्य आद्योपांत पढ़नी चाहिए।

इस साहित्यिक संग्रह में

कालिदास का स्थिति-काल, श्रीहर्ष का कलियुग, आर्यों की जन्म-भूमि, विवाह-विषयक विचार-व्यभिचार, धनुर्वेद, माघ की राजनीति, माघ का प्रभात-वर्णन, जर्मनी में संस्कृत-भाषा का अध्ययन-अध्यापन और दिक्पालों की गृह-व्यथा आदि लेख हैं।

कोई लेख ज्ञातव्य बातों से रिक्त नहीं है

मनोरंजन की सामग्री भी काफ़ी है

कार्यालय

श्रीयुत बलभद्र शर्मा द्विवेदी, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीहनूमान शर्मा और पं० लज्जाराम मेहता (बूँदी) ... ६५
१४. विज्ञान-वैचित्र्य—[लेखक, पं० नाथूराम शुक्ल १०५
१५. स्त्री-समाज—[लेखिका, श्रीमती कुमारी शकुंतला गुप्ता "हिंदी-प्रभाकर" ... ११०



"सुधा, मार्च, १६३०—फाल्गुन १६८६, पूर्ण संख्या ३२"

(नमूना क़ाबिल फ़तेह्ख़त)

सम्मन बिनाबर इनफ़िसाल मुक़द्दमा

(आर्डर ५ क़ायदा १ व ५)

नंबर मुक़द्दमा २३६० स० १६३०

ब-अदालत ख़लीफ़ा मुनसफ़ी दोयम ज़िला बुलंद शहर

अबदुल मजीद वल्द ईदा क़ौम बैपारी साकिन खानपुर परगना अहार

बनाम

इतवारी वल्द बौलो ख़ाकरोब साकिन खानपुर परगना अहार हाल टीटा गढ़ पेपर मिल्स ज़िला कलकत्ता

मुद्दामले

हरगाह कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ४१॥।≡) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तु[म] बतारीख़ ४ माह अप्रैल सन् १६३० ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे [के] हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिस[के] साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे इज़हार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है, पस तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत पर वो नीज़ तमाम दस्तावेज़ात को जिन प[र] तुम अपनी जवाबदेही के ताईद में इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो—तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा।

ब-सब्त मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत के आज बतारीख़ २१ माह फ़रवरी सन् १६३० ई० जारी किया गया।

जज

पृष्ठ-संख्या पोने तीन सौ

समालोचनात्मक तथा महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह

साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी-लिखि

मूल्य सजिल्द २)

"सुधा, मार्च, १९३०—फाल्गुन १९८६, पूर्ण संख्या ३२"

इत्तलानामा बनाम रिस्पाडंट मशअर इत्तला

तारीख़ मुकर्ररह समायत अपील,

बअदालत जनाब बाबु सीतलासहाए साहेब जज मातहत बहादुर उन्नाव मुक़ाम उन्नाव,

मुकद्दमा अपील नंबर $\frac{35}{42}$ सन् १९२९ ई०

चंदर भूखन वग़ैरह अक़वाम ब्रह्मनान साकिनान मौज़ा, पाइन परगना पाइन तहसील पूर्वा ज़िला उन्नाव अपीलांट

बनाम

रिस्पाडंट

शिवकंठ वग़ैरह

अपील बअराज़ी डिगरी, अदालत जनाब मुनसिफ़ साहेब बहादुर पुरवा मुक़ाम उन्नाव,

मौरख़े २९ माह मार्च सन् १९२९ ई०

बनाम मुसम्मात सुखदेई बेवा लाला क़ौम ब्रह्मन साकिन सेमरा बाज़ार परगना निघासन ज़िला खीरी रिस्पाडंट नंबर २

मुत्तिला रहो के अपील बनाराज़ी डिगरी व तजवीज़ इस मुक़द्दमा में मोसम्मा चंद्र भूखन वग़ैरह ने पेश किया और वह इस अदालत में दर्ज रजिस्टर्ड हुआ और इस अदालत ने तारीख़ २५ पचीस माह मार्च सन् १९३० ई० वास्ते समाअत इस अपील के मुक़र्रर की है और अगर ख़ुद तुम या तुम्हारा वकील या कोई और शख़्श जो क़ानूनन तुम्हारी तरफ़ से अपील हज़ा में जवाब व सवाल करने का मजाज़ हो हाज़िर न आएगा तो उसकी समाअत और तजवीज़ तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में एकतरफ़ा की जाएगी

आज बतारीख़ २७ माह फ़रवरी सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सफ़ा रिक्त नहीं है

... वर्ष, जर्मनी में संस्कृत-भाषा का अध्ययन-अध्यापन और दिक्पालों की रहस्य-व्यथा आदि लेख हैं।

मी काफ़ी है

कार्यालय

श्रीयुत बलभद्र शर्मा द्विवेदी, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीहनूमान शर्मा और पं० लज्जाराम मेहता (बूँदी) ... ६५
१४. विज्ञान-वैचित्र्य—[लेखक, पं० नाथूराम शुक्ल १०५
१५. स्त्री-समाज—[लेखिका, श्रीमती कुमारी शकुंतला गुप्ता "हिंदी-प्रभाकर" ... ११०
१६. न्याय...—[
४. वर्ण-व्यवस्...
जीवनशंकर



सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ८८१ सन् १९३० ई०

बअदालत मुंसिफ़ साहब बहादुर रामसनेहीघाट मुक़ाम बाराबंकी

शिवभीख

बनाम

बुद्धू वग़ैरह

बनाम बुद्धू वल्द नामालूम क़ौम पासी साकिन अखयापुर परगना व तहसील हैदरगढ़ ज़िला बाराबंकी हाल वा[...] शहर बंबई बी० बी० रेलवे लोअर परेलपोस्ट मादरा इंजनखाना ज़रिये ख़ुशहाल पासी

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ४७॥=)॥ के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि [...] बतारीख़ २० माह मार्च सन् १९३० ई० बवक्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से [...] वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई [...] शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह [...] तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है, पस तुमको लाज़िम [...] कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाह[...] हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ ७ माह मार्च सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

समालोचनात्मक तथा महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह

पृष्ठ-संख्या पौने तीन सौ

साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी-लिखि

सजिल्द

"सुधा, मार्च, १९३०—फाल्गुन १९८६, पूर्ण संख्या ३२"

(नमूना क़ाबिल फ़रोख़्त)
सम्मन वास्ते क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब
(आर्डर ५ क़ायदा १ व ५)

नंबर मुक़द्दमा ३९८ सन् १९२९
बअदालत मुंसिफ़ी दोयम बुलंद शहर ज़िला बुलंद शहर
ललेकचंद वल्द रामचंद्र क़ौम वैश्य साकिन सिकंद्राबाद ज़िला बुलंद शहर — मुद्दई

बनाम

सुखदेव वग़ैरह

मुसम्मात बिंदो उर्फ़ फ़तेह बाबू जौज़ा अलीहसन शेख़ साकिन हाल,नज़रअली वल्द अलावतअली शेख़ साकिन हाल बर मकान अलीहुसेन साहब } सुपरिंटेंडेंट पुलीस ज़िला सीतापूर — मुद्दाअलेहुम

...हरगाह कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत तसही खेवट के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम ...रोज़ १७ माह मार्च सन् १९३० ई० बवक्त १० बजे दिन के असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमा के ...त से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके ... कोई और शख़्स हो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो। और जवाबदिही दावा की करो ...ो लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला दस्तावेज़ात पेश करो जिन पर तुम बताईद अपनी जवाबदेही के इस्तं... ...ल करना चाहते हो।

...तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और ... होगा।

...ब-सब्त मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत के आज बतारीख़ २४ माह फ़रवरी सन् १९३० ई० जारी किया गया।

जज

स रिक्त नहीं है

...का प्रभाव... ...र्ष, जर्मनी में संस्कृत-भाषा का अध्ययन-अध्यापन और दिक्पालों की ...-व्यथा आदि लेख हैं।

...श्री... काशी है

कार्यालय

श्रीयुत बलभद्र शर्मा द्विवेदी, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीहनूमान शर्मा और पं० लज्जाराम मेहता (बूँदी) ... ९९
१४. विज्ञान-वैचित्र्य—[लेखक, पं० नाथूराम शुक्ल १०५
१५. स्त्री-समाज—[लेखिका, श्रीमती कुमारी शकुंतला गुप्ता "हिंदी-प्रभाकर" ... ११०
१६. न्यायाम—[लेख
४. वर्ण-व्यवस्था
जीवनशंकर

सम्मन वास्ते क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब,
(आर्डर ५ क़ायदा १ व ५)

मुक़द्दमा नंबर १६ सन् १९३० ई०

अदालत जनाब पंडित हरिशंकर चतुर्वेदी हवाली मुक़ाम फ़ैज़ाबाद

मुसम्मात नरायण देवी साकिन मौज़ा धारूपूर परगना तोखमराएना मुद्दई

बनाम

सुखराज उपाध्या वग़ैरह मोक़िर मुद्दाअलेहुम

बनाम नंबर १ सुखराज उम्र ४० साल वल्द गयाराम नंबर २ रामदुलारे वल्द गयाराम साकिनान मौज़ा जानेपूरा लोटनलाल परगना तोखमिराएना तहसील बीकापूर ज़िला फ़ैज़ाबाद,

वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत बटवारा के दायर की है, लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २५ माह मार्च सन् १९३० ई० वक़्त १० बजे पर असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ा मुक़द्दमा का जवाब दे सकें या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो, और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर तुम बताईद अपनी जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो ।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में मसमूअ और फ़ैसल होगा ।

आज बतारीख़ ६ माह मार्च सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया ।

जज

समालोचनात्मक तथा महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह

साहित्य-महारथी पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी-लिखित

पृष्ठ-संख्या पोने तीन सौ

सजिल्द

…स, जर्मनी में संस्कृत-भाषा का अध्ययन-अध्यापन और दिक्पालों की …ह-व्यथा आदि लेख हैं।

…रिक नहीं है

कार्यालय

श्रीयुत बलभद्र शर्मा द्विवेदी, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीहनूमान शर्मा और पं० लज्जाराम मेहता (बूँदी) ... ९५

१४. विज्ञान-वैचित्र्य—[लेखक, पं० नाथूराम शुक्ल १०५

१५. स्त्री-समाज—[लेखिका, श्रीमती कुमारी शकुंतला गुप्ता "हिंदी-प्रभाकर" ... ११०

१६. ...

४. वर्ण-व्यवस्था (१)—[लेखक, प्रोफ़ेसर जीवनशंकर याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, इँगलिश-अध्यापक काशी-विश्व० विद्यालय ४७

५. प्रसादजी का एक नाटक—[लेखक, श्रीयुत कृष्णानंद गुप्त ५२

६. पावस-प्रमोद (कविता)—[लेखक, साहित्य-रत्न ठाकुर गुरुभक्तसिंह 'भक्त' बी० ए०, एल्-एल्० बी० ... ६५

... ७८

लेखक, श्रीयुत ८१

... गहरी निगाह (कविता)—[लेखक, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" ... ८२

१२. संगीत-साधना—[शब्दकार, अज्ञात; स्वरकार, कुमारी गोपालदेवी 'हिंदी-प्रभाकर' ८३

१३. कुसुम-कुंज—[लेखकगण, प्रो० विश्वनाथप्रसाद एम्० ए०, साहित्य-रत्न, श्रीयुत ब्रह्मदत्त मिश्र एम्० ए०, श्रीयुत "अधीर",

श्रीयुत बलभद्र शर्मा द्विवेदी, श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त "कुसुमाकर" बी० ए०, एल्-एल्० बी०, श्रीहनूमान शर्मा और पं० लज्जाराम मेहता (बूँदी) ... ९५
१४. विज्ञान-वैचित्र्य—[लेखक, पं० नाथूराम शुक्ल १०५
१५. स्त्री-समाज—[लेखिका, श्रीमती कुमारी शकुंतला गुप्ता "हिंदी-प्रभाकर" ... ११०
१६. व्यायाम—[लेखक, पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इंद्र" ... ११२
१७. व्यंग्य-विनोद—[लेखक, महामहोपाध्याय श्रीमान् जटाटवी प्रसाद ... ११८
१८. समाज-सुधार—[लेखक, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम्० ए० ... ... १२१
१९. पाक-शास्त्र—[लेखिका, श्रीमती कृष्णवतीदेवी श्रीवास्तव १२५
२०. शिशु-पालन—[लेखक, श्रीयुत अत्रिदेव गुप्त १२६

२१. गृह-चिकित्सा—[लेखक, भिषक् महावीरप्रसाद चतुर्वेदी १२६
२२. पुस्तक-परीक्षा—[लेखकगण, श्रीयुत सुधींद्र वर्मा एम्० ए०, श्रीयुत कालिदास कपूर एम्० ए० और श्रीयुत भगीरथप्रसाद दीक्षित १३०
२३. साहित्य-सूची १३५
२४. संपादकीय १३६

चित्र-सूची

(क) रंगीन — पृष्ठ

१. नंद-दुलारे (तिरंगा)—[संपादक के चित्र-संग्रह से १
२. गंगा-पुस्तकमाला का पूर्णोत्सव (दुरंगा) ३२
३. एक सुशिक्षित परिवार (दुरंगा) ... ३३
४. नूरजहाँ और जहाँगीर (तिरंगा)—[संपादक के चित्र-संग्रह से ... ७३
५. नारद-मोह (तिरंगा)—[रामायण-चित्रावली से १०५
६. श्रीमती ऊर्मिलादेवी शास्त्री (दुरंगा) १२८
७. श्रीमती इंदुमती गोयनका (दुरंगा) १२९
८. कुमारी रामेश्वरीदेवी गोयल बी० ए० (दुरंगा) १३०
९. पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० (दुरंगा) १४४
१०. ट्रिब्यून के उप-संपादक श्रीयुत जंगबहादुरसिंह बी० ए० और उनकी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती ज्ञानदेवी स्नातिका, विशारदा (दुरंगा) ... १४५

२१. गृह-चिकित्सा—[... ग्य
वीरप्रसाद चतुर्वेदी ... शौकतअली का,
२२. पुस्तक-प... ... ... १५६
सुधी... की मिठाई—[चित्रकार, श्रीयुत
डी० चटर्जी १६०

(ग) सादे

१. श्रीपृथ्वीपालसिंह बी० ए० ... ... २६
२. सर हारकोर्ट बटलर के० सी० आई० ई०, के० सी० एस्० आई० ... ३०
३. कैनिंग कॉलेज-भवन का मनोहर दृश्य ... ३२
४. किंग-जॉर्ज मेडिकल कॉलेज-भवन ... ३२
५. सर हारकोर्ट बटलर चैंसलर (भूतपूर्व) तथा श्रीडॉक्टर जी० एन्० चक्रवर्ती वाइस-चैंसलर (भूतपूर्व) ३४
६. डॉक्टर एम्० बी० कैमरन एम्० ए०, डी० लिट्, सी० आई० ई०, भूतपूर्व वाइस-चैंसलर ३५

पृष्ठ

७. पं० जगतनारायणजी मुल्ला ... ३६
८. पं० जगमोहननाथ चक बी० ए० ... ३७
९. डॉक्टर वलीमोहम्मद एम्० ए०, पी-एच्० डी०... ... ... ३७
१०. डॉक्टर राधाकुमुद एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० आर० एस्०, विद्या-वैभव, इतिहास-शिरोमणि ३७
११. डॉक्टर राधाकमल मुकर्जी एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० आर० एस्० ... ३७
१२. मिस्टर के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर एम्० ए० ३८
१३. श्री० प्रो० के० एस्० हजेला एम्० ए०, एम्० एस्-सी०, एल्-एल्० एम्० ... ३८
१४. पं० बदरीनाथ शास्त्री एम्० ए० ... ३८
१५. डॉक्टर एम्० बी० रहमान एम्० ए०, पी-एच्० डी० ... ... ३८
१६. सैयद मसूदहुसेन रिज़वी एम्० ए० ... ३९
१७. श्री० वी० के० नंदन मेनन ... ३९
१८. डॉक्टर ई० अशीरवादम बी० ए०, बी० डी०, पी-एच्० डी० ... ... ३९

	पृष्ठ
२१. गृह-चिकित्सा—[... वीरप्रसाद चतुर्वे... आल डी० फ़िल,	
२२. पुस्तक-प... ॥०	४०
... युनिवर्सिटी-सेना के भीम ...	४१
२१. श्रीमती फूलवतीजी शुक्ला एम्० ए० ...	४२
२२. 'लखनऊ-युनिवर्सिटी-यूनियन' की कार्यकारिणी समिति (१९२९-३०) ...	४३
२३. छुट्टी के दिन विश्वविद्यालय के कुछ विद्यार्थी 'रेज़ीडेंसी-उद्यान' में ...	४५
२४. सूर्य-मोटर	१०६
२५. नई बंदूक़	१०७
२६. विचित्र घड़ी	१०८
२७. सौंदर्य की कुंजी	१०८
२८. बुड्ढों को जवान बनानेवाला डॉ० वेरोनाफ़	१०९
२९-३१. व्यायाम-संबंधी तीन चित्र ...	११४, ११६ और ११७

नोट—ऑर्डर देते समय ...

नव वर्ष का नम्र निवेदन !!

इस अंक से 'सुधा' अपने [illegible] वर्ष में प्रवेश कर रही है। अब तक उसने हिंदी की जो कुछ थोड़ी-बहुत सेवा की, [illegible] भली भाँति परिचित है। अपने सुंदर सचित्र [illegible] विवरणों, गूढ़ ऐतिहासिक विवेचनों, [illegible] मनोमोहक गाथाओं तथा सामाजिक [illegible] भरी नोटों द्वारा उसने अपने लिये हिं[illegible] स्थान बना लिया है। भारत के प्रत्येक प्रांत में, सुदूरवर्ती जर्मनी और अमेरिका [illegible] एक बहुत बड़ी संख्या इन्हीं [illegible] न वर्षों में, उत्पन्न हो गई है। 'सुधा' की लोकप्रियता [illegible] बढ़कर और कौन-सा [illegible] हो सकता है ?

किंतु 'सुधा' को अपनी इस सफलता पर हर्ष नहीं। उसे अपनी [illegible] ज्ञान है। अतएव वह प्रति वर्ष उन्हें दूर करने का प्रयत्न करती रही है। इस [illegible] बदल डालने का निश्चय कर लिया है।

अब सुधा नए रूप में, अनुपम सज-धज के साथ, निकला करेगी। इस वर्ष की [illegible]

१. प्रतिमास १५० पृष्ठ।
२. प्रतिमास ४-५ तिरंगे और दुरंगे चित्र।
३. भारतवर्ष के प्रसिद्ध नर-नारी-रत्नों के फ़ोटो।
४. प्रतिमास ३ श्रेष्ठ लेखकों की सुंदर गल्पें।
५. हिंदी के महाकवि बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त का बिलकुल नया खंड काव्य "सिद्धराज" और सुकवि पाठकजी का "विभूति" नाम का काव्य (भाद्रपद से) क्रमशः निकलेंगे। पुस्तकाकार छपने पर इन दोनों का मूल्य ११) से कम न होगा।
६. हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्री'निराला'जी [illegible] के धारावाहिक अंश। पुस्तकाकार छपने पर इसका मूल्य १) होगा।
७. 'स्त्रियों के सचित्र व्यायाम'-नामक एक धारावाहिक लेख। छपने पर मूल्य होगा ११)
८. 'प्रसूति-तंत्र'-नामक एक उपयोगी जनन-विषयक धारावाहिक लेख। लेखक डॉक्टर रामदयाल कपूर एम्० बी०, बी० एस्०, प्रोफ़ेसर गुरुकुल काँगड़ी। छपने पर मूल्य होगा १)
९. इनके अतिरिक्त हिंदी के प्रसिद्ध विद्वानों के लेखों का विशेष प्रबंध किया गया है।
१०. महिलाओं और बालकों के लिये पाक-शास्त्र, गृह-प्रबंध, घरेलू दवाइयाँ आदि चीज़ों के अतिरिक्त अन्य कई स्तंभों का नया आयोजन।
११. नवीन तथा पुराने ग्राहकों को श्रीकृष्णानंद गुप्त-लिखित 'केन'-नामक प्रसिद्ध [illegible] उपन्यास का उपहार। मूल्य १)। अर्थात् उपहार का मूल्य निकाल देने पर सुधा का वार्षिक मूल्य [illegible] ही [illegible] जाता है। और, साल-भर में ४१) की तो पुस्तकें ही सुधा में निकल जायँगी। बाक़ी मैटर मुफ़्त। [illegible] में है कोई ऐसी सस्ती पत्रिका।

इन क्रांतिकारी परिवर्तनों के कारण अब 'सुधा' हिंदी के गौरव की वस्तु हो जायगी। समय की पाबंदी का भी समुचित प्रबंध कर लिया गया है। सुधा प्रतिमास अंतिम सप्ताह में निकलेगी। सितंबर का अंक भी १०-१२ दिन में, ३० सितंबर तक, निकल जायगा। ग्राहकों को मनीआर्डर या वी० पी० का रुपया मिलते ही भेजा जायगा।

कृपया उधर पढ़िए।

नोटिस

सुधा की आकार-वृद्धि !

नव वर्ष का नम्र निवेदन !!

इस अंक से 'सुधा' अपने छोटे-से जीवन के ४थे वर्ष में प्रवेश कर रही है। अब तक उसने हिंदी की जो कुछ थोड़ी-बहुत सेवा की, उससे हिंदी-संसार भली भाँति परिचित है। अपने सुंदर सचित्र यात्रा-विवरणों, गूढ़ ऐतिहासिक विवेचनों, प्रगाढ़ दार्शनिक लेखों, मनोमोहक गाथाओं तथा सामाजिक उन्नति-कारी नोटों द्वारा उसने अपने लिये हिंदी-प्रेमी हृदयों में एक विशेष स्थान बना लिया है। भारत के प्रत्येक प्रांत में, सुदूरवर्ती जर्मनी और अमेरिका तक में, उसके प्रेमियों की एक बहुत बड़ी संख्या, इन्हीं तीन वर्षों में, उत्पन्न हो गई है। 'सुधा' की लोक-प्रियता और उपादेयता का इससे बढ़कर और कौन-सा प्रमाण हो सकता है ?

किंतु 'सुधा' को अपनी इस सफलता पर हर्ष नहीं। उसे अपनी बहुत-सी त्रुटियों का पूरा ज्ञान है। अतएव वह प्रति वर्ष उन्हें दूर करने का प्रयत्न करती रही है। इस वर्ष तो उसने अपना कलेवर ही बदल डालने का निश्चय कर लिया है।

अब सुधा नए रूप में, अनुपम सज-धज के साथ, निकला करेगी। इस वर्ष की विशेषताएँ होंगी—

१. प्रतिमास १५० पृष्ठ।

२. प्रतिमास ४-५ तिरंगे और दुरंगे चित्र।

३. भारतवर्ष के प्रसिद्ध नर-नारी-रत्नों के फ़ोटो।

४. प्रतिमास ३ श्रेष्ठ लेखकों की सुंदर गल्पें।

५. हिंदी के महाकवि बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त का बिलकुल नया खंड काव्य "सिद्धराज" और सुकवि पाठकजी का "विभूति" नाम का काव्य (भाद्रपद से) क्रमशः निकलेंगे। पुस्तकाकार छपने पर इन दोनो का मूल्य १।।) से कम न होगा।

६. हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्री'निराला'जी-लिखित 'अप्सरा'-उपन्यास के धारावाहिक अंश। पुस्तका-कार छपने पर इसका मूल्य १) होगा।

७. 'स्त्रियों के सचित्र व्यायाम'-नामक एक धारावाहिक लेख। छपने पर मूल्य होगा १।।)

८. 'प्रसूति-तंत्र'-नामक एक उपयोगी जनन-विषयक धारावाहिक लेख। लेखक, डॉक्टर रामदयाल कपूर एम्० बी०, बी० एस्०, प्रोफ़ेसर गुरुकुल काँगड़ी। छपने पर मूल्य होगा १।।)

९. इनके अतिरिक्त हिंदी के प्रसिद्ध विद्वानों के लेखों का विशेष प्रबंध किया गया है।

१०. महिलाओं और बालकों के लिये पाक-शास्त्र, गृह-प्रबंध, घरेलू दवाइयाँ आदि स्तंभों के अति-रिक्त अन्य कई स्तंभों का नया आयोजन।

११. नवीन तथा पुराने ग्राहकों को श्रीकृष्णानंद गुप्त-लिखित 'केन'-नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक उप न्यास का उपहार। मूल्य १)। अर्थात् उपहार का मूल्य निकाल देने पर सुधा का वार्षिक मूल्य ५।।) ही रह जाता है। और, साल-भर में ५।।) की तो पुस्तकें ही सुधा में निकल जायँगी। बाक़ी मैटर मुफ़्त। हिंदी में है कोई ऐसी सस्ती पत्रिका।

इन क्रांतिकारी परिवर्तनों के कारण अब 'सुधा' हिंदी के गौरव की वस्तु हो जायगी। समय की पाबंदी का भी समुचित प्रबंध कर लिया गया है। सुधा प्रतिमास अंतिम सप्ताह में निकलेगी। सितंबर का अंक भी १०-१२ दिन में, ३० सितंबर तक, निकल जायगा। ग्राहकों को मनीआर्डर या वी० पी० का रुपया मिलते ही भेजा जायगा।

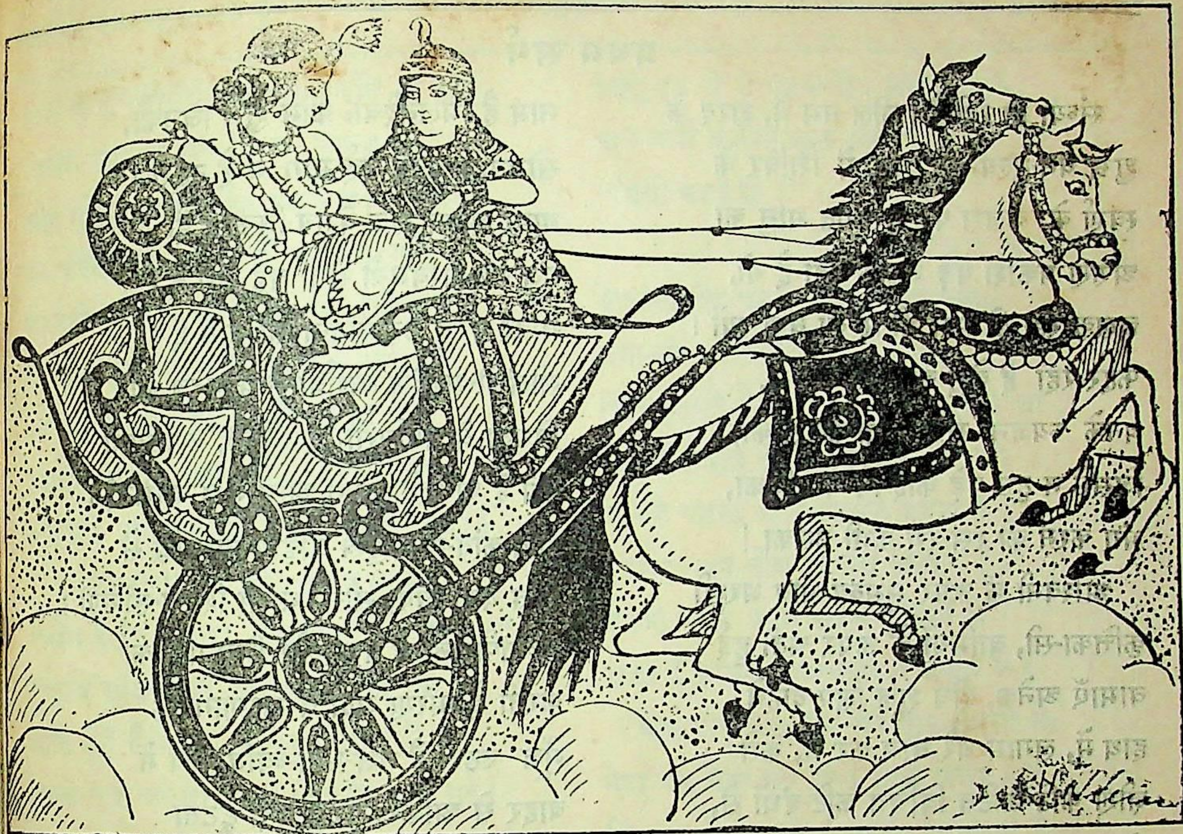
कृपाया उधर पढ़िए।

हमें पूर्ण आशा है, अब आप अवश्य ही 'सुधा' के अनन्य भक्त हो जायँगे तथा अपने इष्ट-मित्रों में भी उसकी अनवरत चर्चा करके उन्हें उसका ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करेंगे।

आपकी सहानुभूति और सहायता से 'सुधा' की दिनों-दिन श्री-वृद्धि होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। आशा है, आप हमारा हाथ बँटावेंगे।

सुधा-कार्यालय,
लखनऊ, १५।६।३०

दुलारेलाल भार्गव
प्रधान संपादक और अध्यक्ष



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष ४ खंड १ — श्रावण, ३०८ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०)— अगस्त, १९३० — संख्या १ पूर्ण संख्या ३७

सिद्धराज

(खंड काव्य)

[श्रीमैथिलीशरण गुप्त]

मंगलाचरण

आप अवतीर्ण हुए दुःख देख जन के;
भ्रातृ-हेतु राज्य छोड़ वासी बनें वन के।
राक्षसों को मार मार मेटा धरा-धाम का;
वंश बढ़े दया-दान-युद्ध-वीर राम का।

प्रथम सर्ग

संध्या हो रही है। नील नभ में, शरद के
शुभ्र घन-तुल्य, हरे वन में शिविर के
स्वर्ण के कलश पर अस्तंगत भानु का
अरुण प्रकाश पड़ झलक रहा है यों,
छलक रहा हो भरा भीतर का वर्ण ज्यों।
फहर रहा है केतु उस पर धीरे से,
बनके व्यजन राज-मंगल-कलश का,
जिसमें न टूट पड़े कोई विघ्न-मक्षिका,
भंग करने को रस-रंग कभी उसका !
अश्विनी के ऊपर सुभव्य भाव भरणी
कृत्तिका-सी, वामियों के ऊपर चढ़ी हुई
वामाएँ अनेक, दीर्घ शूल लिए दाहने
हाथ में, लगाम धरे वाम कर में, कसे
क्षीण कटि जटित विचित्र कटि-बंधों से,
पीठ पर बाल छोड़े ढाल के-से ढंग से,
हैम शिरस्त्राण बाँधे, मोतियों की कलगी,
जिन पर खेलती है स्वच्छ गुच्छरूपिणी।
कंचुक-कवच सब एक ही-से पहने,
गहने हैं बेंदी, कर्णफूल, हार जिनके,
कंकण करों में और नूपुर पदों में हैं,
शौर्य-वीर्य-साहस की प्रतिमा सजीव-सी
मंदिर-समान उस सुंदर शिविर की
मंडल बनाकर परिक्रमा हैं करती !
स्वप्न नहीं, सत्य; किंतु गत वे दिवस हैं,
विक्रम की द्वादश शताब्दि की ये बातें हैं;
वामा-व्यूह आज हमें जान पड़े सपना;
देश था स्वतंत्र तब, राजा आप अपना।
जननी प्रसिद्ध सिद्धराज जयसिंह की,
नाम है मिलनदेवी, काम शुभ जिनका,
सोमनाथ जाती हुई मार्ग में हैं ठहरी।
बाहर अपूर्व राज-वैभव-विकास है,
गज-रथ-अश्वमयी सेना बहु संग है;
भीतर परंतु उदासीनता की मूर्ति हैं।
सोलंकी-शशांक स्वर्गवासी कर्णदेव की
विधवा वे वर्षीयसी, त्यागिनी, तपस्विनी
बैठी हैं अकेली, खड़ी आड़ में हैं दासियाँ।
शांत-कांत-रूप, मुख प्रौढ़ पक्व बुद्धि से
दीप्त यथा दीप, सौम्य नासा शिखा-रूपिणी;
संध्योपासना में प्रभु और निज पति का
करती हैं स्मरण सदा वे शरणागता;
गूँज उठती है गज-घंटा-ध्वनि बीच में
बाहर से आकर, परंतु नहीं टूटता
ध्यान जा लगा है पतिदेव में जो उनका;
नीचे बैठ ऊपर को देख कहती हैं वे—
"छोड़ा तीन वर्ष का था नाथ, जिसे तुमने
और हतभागिनी को छोड़ा यहाँ जिसके
कारण, तुम्हारा जयसिंह वही अधुना
हो गया युवक, इस योग्य—निज राज्य जो
आप ही सँभाले और पाले प्रजा प्रीति से—
नीति से, उचित रीति रक्खे, भीति छोड़ के
कर सके योग्य व्यवहार शत्रु-मित्र से।
रोता रहा मेरा मृदु माँ का मन, फिर भी
मैंने दृढ़ होकर दिलाई उसे शिक्षा है;
दे जो सकती थी एक नारी, कुल-दीक्षा दी,
जानेगी परिस्थिति परीक्षा करके उसे,
प्रस्तुत है प्रभु की कृपा से वह सर्वदा।

स्वर्ग से हे स्वामी, तुम आशीर्वाद दो उसे,
जिससे तुम्हारा सुत संतत सफल हो,
और मुझे आज्ञा दो कि आऊँ पद-पद्मों में,
उन चरणों की बन जाऊँ अनुचारिणी,
जा रही हूँ नाथ, सोमनाथ यही माँगने।"

कहते हुए यों, भक्ति-भाव से भरी हुई,
पृथ्वी पर माथा टेक रानी नत हो गई,
उज्ज्वल सजल तारा, नाति शुभ्रवसना,
मूर्तिमती मानो सौम्य संध्या प्रकटी वहाँ।

उठकर राजमाता बैठी स्वस्थ भाव से,
"कौन है?" पुकारा, दौड़ आईं बहु दासियाँ,
"आज रात्रि-यात्रा नहीं होगी, यह कह दो,
श्रांति मेटें सैनिकाएँ जाकर शिविर में।"
कहके "जो आज्ञा" एक किंकरी चली गई।

शब्द हुआ सहसा—"दुहाई राजमाता की!"
चौंक उठीं और बढ़ीं तत्क्षण वे द्वार की
ओर, कुछ सैन्यजन एक बली बाल को
घेरे लिए आ रहे थे और माता उसकी
देती थी दुहाई—"यह कैसी अनरीति है!"
बोली राजजननी—"बुलाओ इन्हें, कौन हैं?"
लाए गए माता-पुत्र दोनों झट सामने,
बोला एक सैनिक कि "ये हैं राज-विद्रोही।"
"राम-राम!" बोली वह नारी घृणा-भाव से;
"तो फिर तुम्हें ये घर लाए क्यों, तुम्हीं कहो,
सच बतलाना।"

"देवि, मैं हूँ एक क्षत्राणी,
जनती हैं जूझने के अर्थ ही जो पुत्र को।
मृत्यु-भय से भी फिर झूठ क्यों कहूँगी मैं?
विधवा हूँ, जीवन का मोह नहीं मुझको।
आई दूर से हूँ पुण्य-तीर्थ करने यहाँ,
पाप क्यों करूँगी झूठ कहकर आपसे?"
"रहती कहाँ हो?"

["उस विश्रुत जुझौती में]
वेत्रवती-तीर पर, नीर धन्य जिसका,
गंगा-सो पुनीत जो सहेली यमुना की है;
किंतु रखती है छटा दोनों से निराली जो;
जिसमें प्रवाह हैं, प्रपात और ह्रद हैं;
काटके पहाड़ मार्ग जिसने बनाए हैं;
देवगढ़-तुल्य तीर्थ जिसके किनारे हैं;
देवश्री मदन वर्मा सदन सुकर्मों के
राजा हैं हमारे, राजधानी है महोबे में।

वीर-गति पाई जब मेरे शूर स्वामी ने,
मेरा यह बेटा तब दुग्ध-पोष्य शिशु था।
सिहर उठी हैं अहा! आप, दया-मूर्ति हैं।
अनुचित लाभ, किंतु आपकी दया का मैं
लेना नहीं चाहती हूँ कहकर बातें वे।
पाला इसे मैंने, किंतु अबला थी, इससे
आँखों से हटा सकी न दूर, तो भी गाँव में
पंडित हैं एक, वे पुरोहित हमारे हैं;
उनसे दिलाई इसे शिक्षा निज धर्म की,
सीखा कुल-कर्म ज्ञाति-बंधुओं में इसने।

अब इस योग्य हो गया है, यह अपनी
सेवा करे अर्पित स्वदेश को, स्वराज्य को;
किंतु तीर्थ-यात्रा करने की मुझे इच्छा थी,
व्रज तो हमारे प्रांत का ही प्रतिवेशी है;
जाके वहाँ इच्छा हुई—द्वारका भी जाऊँ मैं,
माखन चुराकर हमारे हरि भागके
राजा बन बैठे जहाँ!"

नारी भक्ति-गद्गदा
आँखें पोंछ मानो साँस लेने लगी रुकके।
मानस तरंगित था राजजननी का भी,
किंतु हँस बोली वे कि "गोकुल की गोपी-सी
आईं तुम खोजने को चित्त-चोर अपना,
किंतु याद रखना, यहाँ भी हैं सपत्नियाँ !"
"देवि, मेरे हरि पर स्वत्व नहीं किसका ?
चाहे जहाँ विचरें—रहें वे, मौज उनकी।
किंतु प्रार्थना है यही, रक्खें सुध सबकी,
और इस जन की भी संग-संग सबके।
हरि के हृदय हर, सोमनाथ भेटने
जा रही थी, किंतु मिले बहु जन मार्ग में,
दर्शन विना ही फिरे आ रहे थे दुःखी जो।
जैसे किसी वृक्ष पर पक्षी दूर-दूर से
उड़कर आश्रयार्थ आवें, किंतु देखके
लिपटा विशाल एक अजगर उससे,
भागें सब भीत होके। ज्ञात हुआ पूछा जो,
राजकर लगता है यात्रियों से, उसको
दे जो नहीं सकते हैं, लौटा दिए जाते हैं
दर्शन विना ही। यह सुनकर सहसा
बोली मैं, 'यहाँ भी क्या निपूता राजकर है ?'
शांति-मूर्ति आप भ्रू चढ़ावें नहीं, सोच लें,
राज का या कर का विशेषण निपूता है,
पुत्रवती शत्रु को भी ऐसा शाप देगी क्या ?
मेरे पुत्र ने भी कहा—'ईश पर भी यहाँ
राज्य ने किया है अधिकार मानो अपना !'
उस समुदाय में था गुप्तचर आपका।
वह कुछ इससे विवाद करने लगा।
घेर हम दोनो यहाँ लाए गए अंत में;
दीजे योग्य आज्ञा आप, आपकी विजय हो।"
क्षण-भर मौन रही रानी स्तब्ध भाव से,
मानो किसी भावी भावना से हुई भाविता।
बोली फिर नारी से कि "मुक्ति मिली तुमको,
किंतु यदि सच्ची तुम पुत्रवती माता हो,
तो मनाओ मेरा पुत्र पावे पुत्र वैसा ही।"
"देवि, मेरे बच्चे को जिन्होंने यों बचाया है,
प्रार्थना करूँगी क्यों न पुत्र-हेतु उनके ?
माँगूँगी प्रथम यही जाके सोमनाथ से।"
"किंतु अब सोमनाथ जाना नहीं होगा मा !"
"जाना क्यों न होगा लाल ?" बाल चुप ही रहा।
राजजननी ने अब देखा उसे ध्यान से।
सुंदर युवक बाल निर्भय खड़ा था यों,
गढ़कर मानो उसे विधि ने बनाया है।
बोली राजमाता, "भद्र, जाओगे न क्यों वहाँ ?"
"देवि, क्षमा चाहता हूँ, दर्शनार्थ जिसके
देके कुछ रौप्य-खंड आज्ञा-पत्र लेना हो,
नंदीश्वर है या वह बंदी तुच्छ नर का—
राजा या पुजारी फिर कोई वह क्यों न हो ?
मेरे चित्रकूट ही में मेरे राम आए थे,
मेरे शिवशंकर भी मेरे घर आयँगे।"
"देना नहीं होगा तुम्हें राजकर, उलटा
दूँगी पुरस्कार तुम्हें मैं सौ स्वर्ण-मुद्राएँ।"
"आपकी दया है देवि, किंतु मेरी माता ने
आप अपना ही सब द्रव्य किया दान है,
आपकी उदारता के भागी भूरि-भूरि हैं।"
"क्या तुम्हारे अर्थ कुछ रक्खा नहीं माता ने ?"
"देवि, मैंने रक्खा कुल-मान-धन इसका,
और पुरखों की धरा धन्य धान्य-जननी;

द्रव्य तो हमारे महाराज के निधान में
इसके अपेक्षा-योग्य रक्षित यथेष्ट है,
पारस प्रसिद्ध है महोबे के महीपों का।"
"किंतु जयसिंह के भी कोष में कमी नहीं,
चाहो तो बनाऊँ मैं सहेली तुम्हें अपनी ;
पुत्र को तुम्हारे उच्च सैन्य पद दूँ अभी ?
गर्व नहीं करती हूँ, मेरे जयसिंह की
समता करे जो आज, ऐसा कौन राजा है ?
पृथिवी पृथुल, और पार्थिव अनेक हैं,
कोई देव और कोई दैत्य होंगे उनमें ;
किंतु मनुष्यत्व मेरे पुत्र का ही भाग है ;
क्षुद्र अमरत्व मृत-रूप है नरत्व का,
और प्रभुता तो असुरत्व में भी होती है।"
"जैसे न हों, थोड़े वही लाल ऐसी माई के !
सेवा में रहें जो आपके-से सेवनीयों की,
ईर्ष्या करने के योग्य उनका सुकृत है।
आकर्षण किंतु जन्म-भूमि का प्रबल है।
देवि, वह बंधन भी है संबंध सबका।"
"किंतु यह देश तो है ऐसा, जहाँ व्रज को
छोड़के तुम्हारे भगवान भी पधारे थे !"
"देवि, वे हमारे ही नहीं थे, आपके भी थे !
मानती हूँ यह भी मैं, बाहर निकलके
व्रज के गुपाल द्वारका के धनी होते हैं।
होती घर बैठने से उन्नति नहीं कभी।
विश्व परिवार है उदार वृत्तवालों का।
राम की अयोध्या सदा राम के ही साथ है।
तो भी देवि, सेवाएँ हमारी, जो नगण्य हैं,
अर्पित उन्हीं के लिये हो चुकी हैं पूर्व ही,
पीढ़ियों से पा रहे हैं वृत्ति हम जिनकी।

फिर भी सदैव शुभ कामना करूँगी मैं
आपकी, न भूलूँगी कदापि कृपा-करुणा।
सर्व सुख पावें महाराज पुत्र आपके ;
हाथ जोड़ माँगूँगी यही मैं सोमनाथ से।"
बोली फिर पुत्र को निहार वह नारी यों—
"सोमनाथ जाना क्यों न होगा लाल, विभु तो
विश्व-भर में हैं व्याप्त, किंतु किसी क्षेत्र का
उनके प्रभाव से प्रताप बढ़ जाता है,
जाते हैं उसे ही हम मस्तक झुकाने को।
सबमें रमे हैं राम, तदपि अयोध्या में,
चित्रकूट, पंचवटी और रामेश्वर में
उनके चरित्र हमें करते पवित्र हैं।
ऐसे शुभ स्थानों का मिला है भार जिनको,
वे भी पूजनीय हैं हमारे धन्य सुकृती।
कर कहो, शुल्क कहो, भेट कहो, उनको
यदि हम दे सकें, तो देंगे नम्र भाव से।
शिव के लिये ही सोमनाथ नहीं जाती मैं,
वे तो हैं विराजे सदा मेरे ही शिवाले में।
उनके उपासकों के भावों की विभूति को
भेटने मैं जा रही हूँ भेटने को लालसा ;
आते खजुराहो यथा आर्य, बौद्ध, जैन हैं।
तर्क-बुद्धि से ही सब काम किए जाते हैं,
किंतु भगवान में तो श्रद्धा-भक्ति ही भली ;
नास्तिकों के हेतु लोष्ट-मात्र जो है, उसमें
पाती भगवान को है भावुकों की भावना।
मानिए तो शंकर हैं, कंकर हैं अन्यथा।"
बोला हँस बाल—"मा, तुम्हें जो सत्त्वपूत हो,
बाधा नहीं देगा कभी मेरा तर्क उसमें ;
जो तुम्हारी इच्छा।" तब राजमाता बोली यों—

"किंतु अब रात हुई, मेरे ही अतिथि हो,
मैं भी जा रही हूँ सोमनाथ, साथ चलना।"
मस्तक झुकाया उन्हें माता और पुत्र ने,
और पहुँचाए गए दोनो एक डेरे में,
पाके राजभोग वहाँ सोए नींद सुख की।
किंतु उस रात राजमाता नहीं सो सकीं,
हो सकीं न स्वस्थ वे विचारों के प्रवाह में!
लौटा दिया भोजन का थाल बिना खाए ही,
पीकर रहीं वे एक पात्र जल-मात्र ही।
था मुंजाल मंत्री साथ, पूछा जब उसने
उनसे अभोजन का हेतु तब बोलीं वे—
"कैसे वह पाप-अन्न खाऊँ अब और मैं,
ऐसे पाप-कर से कमाते तुम हो जिसे?"
"पाप-कर कैसे देवि, यात्रियों को कितनी
सुविधा सयत्न दिन-रात हम देते हैं!"
"साधु-साधु! सुविधा क्या साधारण? तुम तो
अपनी अवनि पर, अपने गगन के
नीचे उन्हें आश्रय दे अपने पवन में
साँस लेने देकर न केवल जिलाते हो,
अपने महेश से भी उनको मिलाते हो!
प्रस्तुत हों लोग कुछ और तुम्हें देने को
तो तुम न-जाने और क्या-क्या सुविधा न दो!
देव, विप्र, वणिक तुम्हारे सब उनसे
पाते हैं यथेष्ट पूजा, दान, लाभ, फिर क्यों
कोरे रह जाओ तुम्हीं करके भी इतना!
और दीन मानवो, अकिंचन ओ साधुओ,
लौट जाओ, तुमको कहीं भी ठौर है नहीं,
भेट गए-हेतु कुछ गाँठ में नहीं है तो
हर के यहाँ भी सुनवाई बस हो चुकी!
जानती थी मैं कि मेरे राज्य-भर में कहीं
कोई अनरीति नहीं और इसी हेतु मैं
करती थी शांतिमयी मृत्यु की ही कामना,
जाऊँ सुनिश्चित ससंतोष जहाँ जाना है।
किंतु यह तो दिए के नीचे ही अँधेरा है!"
"श्रीकौटिल्य ने भी निज 'अर्थ-शास्त्र' ग्रंथ में
पूर्ण प्रतिपादन किया है तीर्थ-कर का।"
"श्रीकौटिल्य तो थे राजनीतिक ही सर्वथा,
किंतु धर्म-यात्रा करने को जा रही हूँ मैं।"
"तो जो चाहिए सो देवि, आज्ञा मुझे दीजिए,
पालन करूँ मैं, किंतु प्रार्थना है इतनी
कर को जो 'बलि' कहते हैं, सो यथार्थ है,
बलि है सदैव बलि, कर है कठिन ही,
सहज कहीं भी उसे देते नहीं लोग हैं।"
"तब तो जहाँ-तहाँ न लेना उसे चाहिए,
डाकिनी नहीं है राजनीति, वह धात्री है,
डाइन भी एक घर छोड़ चली जाती है,
किंतु आज्ञा देना, यह मेरा नहीं राजा का
काम है, भले ही उसे सम्मति मैं दे सकूँ।"
"आप तो हैं राजप्रसू, आपका निदेश तो
राजा भी करेंगे शिरोधार्य, आप कृपया
भोजन न छोड़ें, अहा! अन्नमय प्राण हैं।"
बोली हँस देवी—"आत्मघातिनी न हूँगी मैं,
जानो उपवास इसे, चारों ओर चित्त के
कूड़ा और कर्कट इकट्ठा जब होता है,
तब जठराग्नि की सहायता से उसको
दग्ध कर आत्म-शुद्धि पाता उपवासी है—
साधारण अग्नि में ज्यों सोना शुद्ध होता है।
जानती हूँ, जो कुछ करूँगी, जयसिंह को

होगा शिरोधार्य वह, किंतु हम सबको
मान्य हैं स्वतंत्र अधिकार सदा सबके।
मेरी गोद में है सदा मेरा पुत्र राजा भी,
किंतु मेरा राजा वही मेरे सिर-माथे है !
जब युवराज है बनाता पिता पुत्र को,
बनता है आप तब छत्रधर उसका।
"एक माता-पुत्र यहाँ मेरे दो अतिथि हैं,
उनका प्रबंध कर देना, सोमनाथ की
यात्रा सब भाँति शांति-सौख्यकर हो उन्हें,
सुंदर सिरोही शस्त्र-वस्त्र मेरी ओर से
देना पुरस्कार उस क्षत्रिय-कुमार को,
जाऊँगी अभी मैं लौट।"
"दर्शन किए बिना ?"
"किसके ? तुम्हारी उस पत्थर की पिंडी के,
जिसको दिखाकर कमाते तुम लाखों हो ?
मंदिर का द्वार जो खुलेगा सबके लिये,
होगी तभी मेरी वहाँ विश्वंभर-भावना।"
लौट गई राजमाता प्रातःकाल-पूर्व ही
रथ में विराज, शत सैनिकाएँ संग ले ;
पीछे रही अन्य सेना, कोलाहल आगे था।
पाके वीर-नारियों का गुल्फ-स्पर्श हींसके
ग्रीवा-भंग-पूर्वक तुरंग चले नाचते,
देते हुए ताल लय बाँध टाप-थापों से।
मानो उड़ जाते अश्व, यदि गज-शुण्डों-सी
दो-दो ऊरुओं से कसे होतीं वे न उनको !
हाथों में विशाल शूल चमचम होते थे,
भालों पर भृकुटि-सुचाप चढ़े आप थे,
दमक रहे थे मुख-दर्पण ज्यों धूप में,
देख सकता था कौन आँखवाला सामने ?

झनन-झनन नाद हो रहा था रथ का !
किंतु जयसिंह मिला बीच में ही माता से,
आ रहा था आप भी जो पीछे चल उनके।
दोनों दल एक हुए मिल दो प्रवाह से ;
युवक उदार वीर उच्च उदयाद्रि के
शिखर-समान, चित्रभानु-सा किरीट था,
सहज प्रसन्न-मुख, लोचन विशाल थे,
भाल पर भौंहें दृढ़ निश्चय की रेखा-सी,
लाल-लाल होंठों पर सूक्ष्म मसि-लेखा थी।
किंतु पड़ती थी दृष्टि जाके वहीं उलटी,
हेतु हो रहा था आप डीठ का डिठौना ही !
पीन वृष-स्कंध, क्षीण सिंह-कटि, साहसी,
दीर्घ हस्ति-हस्त, मानो पशुता के गुण्य की
देव-साधना का वह पुण्य नर-क्षेत्र था !
सत्वर ससंभ्रम बढ़ा यों वीर माता की
ओर उत्तरीय फहराता हुआ अपना,
जैसे लता-क्रोड़ पर फैलाकर पक्षों को
टूटे कलकंठ ! मा ने उस नत होते को
बल से समेट झट छाती से लगा लिया।
"दर्शन करूँगा माँ, तुम्हारे साथ, सोच के
आ रहा था, किंतु तुम लौटी हुई जा रहीं !"
"वत्स, मुझे साहस न हो सका कि जाऊँ मैं
भीम विरूपाक्ष के समक्ष, विश्वनाथ वे,
विश्व के लिये है खुला द्वार सदा उनका,
किंतु हम द्वारी उन्हें देते नहीं घुसने,
घूँस नहीं पाते हाय ! जिन हतभागों से।
देव-कर राज्य का चुका जो नहीं सकते,
दर्शन विना ही उन्हें लौटा दिया जाता है।
रोते हैं, कलपते हैं, कोसते हैं वे हमें,

होते हैं निराश।" भर आए अश्रु अंबा के !
"आहा ! यह बात है ? परंतु अपराध की
अंब, क्षमा माँगनी पड़ेगी हमें, अन्यथा
और भी बढ़ेगा वह, लौट चलो, चिंता क्या ?
जो हैं आशुतोष, क्षमा कर देंगे वे हमें।"
लौटाकर माँ को वीर बाहुलोड़ पहुँचा।
पंचकुल लोगों से मँगाया वहाँ उसने
कर का निदेश-पत्र और लेखा उसका
देखा, उससे है प्रतिवर्ष लाभ लाखों का।
फाड़ फेंका तो भी वह पत्र मातृभक्त ने,
माँ के चरणों पर चढ़ाया पत्र-पुष्प-सा !

गद्गद हो माँ ने उसे छाती से लगा लिया,
और कहा—"पूर्ति कैसे होगी राजकोष की ?"
"राजकोष रिक्त हो, तो चिंता नहीं मुझको,
राज्य में प्रजा की सुख-सिद्धि, निधि-वृद्धि हो;
पुष्ट प्रजा-जन ही हैं सच्चे धन राजा के।"
"हर-हर महादेव ! जै-जै राजमाता की !"
गूँज उठा सोमनाथ-मंदिर सुनाद से।
पाके कर-बाधा-मुक्ति धनियों के साथ ही
दर्शन अकिंचनों ने पाया और गाया यों—
"हर-हर महादेव ! जै-जै राजमाता की !"

[क्रमशः

अप्सरा

(सामाजिक उपन्यास)

[श्रीयुत पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"]

(१)



इडन-गार्डेन में, कृत्रिम सरोवर के तट पर, एक कुंज के बीच, शाम सात बजे के क़रीब, जलते हुए एक प्रकाश-स्तंभ के नीचे पड़ी हुई एक कुर्सी पर, सत्रह साल की चंपे की कली-सी एक किशोरी बैठी हुई, सरोवर की लहरों पर चमकती हुई चाँद की किरणें और जल पर खुले हुए, काँपते, बिजली की बत्तियों के कमल के फूल एकचित्त से देख रही थी। और दिनों से आज उसे कुछ देर हो गई थी। पर इसका उसे ख़याल न था।

युवती एकाएक चौंककर काँप उठी। उसी बेंच पर एक गोरा बिल्कुल उससे सटकर बैठ गया। युवती एक बग़ल हट गई। फिर कुछ सोचकर, इधर-उधर देख, घबराई हुई, उठकर खड़ी हो गई। गोरे ने हाथ पकड़कर ज़बरन बेंच पर बैठा लिया। युवती चीख़ उठी।

बाग़ में उस समय इक्के-दुक्के आदमी रह गए थे। युवती ने इधर-उधर देखा, पर कोई नज़र न आया। भय से उसका कंठ भी रुक गया। अपने आदमियों को पुकारना चाहा, पर आवाज़ न निकली। गोरे ने उसे कसकर पकड़ लिया।

गोरा कुछ निश्छल प्रेम की बातें कह रहा था कि पीछे से किसी ने उसके कालर में उँगलियाँ घुसेड़ दीं, और गर्दन के पास कोट के साथ पकड़कर साहब को एक बित्ता बेंच से ऊपर उठा लिया, जैसे चूहे को बिल्ली। साहब के क़ब्ज़े से युवती छूट गई। साहब ने सर घुमाया। आगंतुक ने दूसरे हाथ से युवती की तरफ़ सर फेर दिया—"अब कैसी लगती है ?"

साहब झपटकर खड़ा हो गया। युवक ने कालर छोड़ते हुए ज़ोर से सामने रेल दिया। एक पेड़ के सहारे साहब सँभल गया, फिरकर उसने देखा, एक युवक अकेला खड़ा है। साहब को अपनी वीरता का ख़याल आया। "टुम पीछे से हमको पकड़ा" कहते-कहते साहब युवक की ओर लपका। "तो अभी दिल की मुराद पूरी नहीं हुई ?" युवक तैयार हो गया। साहब को बाक्सिंग (घूँसेबाज़ी) का अभिमान था, युवक को कुश्ती का। साहब के वार करते ही युवक ने कलाई पकड़ ली, और यहीं से बाँधकर बहल्ले में दे मारा, छाती पर चढ़ बैठा, कई रद्दे कस दिए। साहब बेहोश हो गया। युवती खड़ी सविस्मय ताकती रही। युवक ने रूमाल भिगो-कर साहब का मुँह पोछ दिया। फिर उसी को सर पर रख दिया। जेब से काग़ज़ निकाल बेंच के सहारे एक चिट्ठी लिखी, और साहब की ज़ेब में रख दी। फिर युवती से पूछा—"आपको कहाँ जाना है ?"

"मेरी मोटर रास्ते पर खड़ी है। उस पर मेरा ड्राइवर और बूढ़ा अर्दली बैठा होगा। मैं हवाख़ोरी के लिये आई थी। आपने मेरी रक्षा की। मैं सदैव—सदैव आपकी कृतज्ञ रहूँगी।"

युवक ने सर झुका लिया। "आपका शुभ नाम ?" युवती ने पूछा।

"नाम बतलाना अनावश्यक समझता हूँ। आप जल्द यहाँ से चली जायँ।"

युवक को कृतज्ञता की सजल दृष्टि से देखती हुई युवती चल दी। रुककर कुछ कहना चाहा, पर कह न सकी। युवती फ़ील्ड के फाटक की ओर चली, युवक हाईकोर्ट की तरफ़ चला गया। कुछ दूर जाने के बाद युवती फिर लौटी। युवक नज़र

से बाहर हो गया था। वहीं गई, और साहब की जेब से चिट्ठी निकालकर चुपचाप चली आई।

(२)

कनक धीरे-धीरे सोलहवें वर्ष के पहले चरण में आ पड़ी। अपार, अलौकिक सौंदर्य, एकांत में, कभी-कभी अपनी मनोहर रागिनी सुना जाता; वह कान लगा उसके अमृत-स्वर को सुनती, पान किया करती। अज्ञात एक अपूर्व आनंद का प्रवाह अंगों को आपाद-मस्तक नहला जाता, स्नेह की विद्युत्-लता काँप उठती। उस अपरिचित कारण की तलाश में विस्मय से आकाश की ओर ताककर रह जाती। कभी-कभी खिले हुए अंगों के स्नेह-भार में एक स्पर्श मिलता, जैसे अशरीर कोई उसकी आत्मा में प्रवेश कर रहा हो। उस गुदगुदी में उसके तमाम अंग काँपकर खिल उठते। अपनी देह के वृंत पर अपलक खिली हुई, ज्योत्स्ना के चंद्र-पुष्प की तरह, सौंदर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु से डोल उठती। आँखों में प्रश्न फूट पड़ता, संसार के रहस्यों के प्रति विस्मय।

कनक गंधर्व-कुमारिका थी। उसकी माता सर्वेश्वरी बनारस की रहनेवाली थी। नृत्य-संगीत में वह भारत में प्रसिद्ध हो चुकी थी। बड़े-बड़े राजे-महाराजे जल्से में उसे बुलाते, उसकी बड़ी ख़ातिर करते थे। इस तरह सर्वेश्वरी ने अपार संपत्ति एकत्र कर ली थी। उसने कलकत्ता-बहूबाज़ार में आलीशान अपना एक ख़ास मकान बनवा लिया था, और व्यवसाय की वृद्धि के लिये, उपार्जन की सुविधा के विचार से, प्रायः वहीं रहती भी थी। सिर्फ़ बुढ़वा-मंगल के दिनों, तवायफ़ों तथा रईसों पर अपने नाम की मुहर मार्जित कर लेने के विचार से, काशी आया करती थी। वहाँ भी उसकी एक कोठी थी।

सर्वेश्वरी की इस अथाह संपत्ति की नाव पर एक-मात्र उसकी कन्या कनक ही कर्णधार थी। इसलिये कनक में सब तरफ़ से ज्ञान का थोड़ा-थोड़ा प्रकाश भर देना भविष्य के सुख-पूर्वक निर्वाह के लिये, अपनी नाव खेने की सुविधा के लिये, उसने आवश्यक समझ लिया था। वह जानती थी, कनक अब कली नहीं, उसके अंगों के कुल दल खुल गए हैं, उसके हृदय के चक्र में चारो ओर के सौंदर्य का मधु भर गया है। पर उसका लक्ष्य उसकी शिक्षा की तरफ़ था। अभी तक उसने उसकी जातीय शिक्षा का भार अपने हाथों नहीं लिया। अभी दृष्टि से ही वह कनक को प्यार कर लेती, उपदेश दे देती थी। कार्यतः उसकी तरफ़ से अलग थी। कभी-कभी, जब व्यवसाय और व्यवसायियों से फ़ुर्सत मिलती, वह कुछ देर के लिये कनक को बुला लिया करती थी। और, हर तरफ़ से उसने कन्या के लिये स्वतंत्र प्रबंध कर रक्खा था। उसके पढ़ने का घर ही में इंतज़ाम कर दिया था। एक अँगरेज़-महिला, श्रीमती कैथरिन, तीन घंटे उसे पढ़ा जाया करती थीं। दो घंटे के लिये एक अध्यापक आया करते थे।

इस तरह वह शुभ्र-स्वच्छ निर्झरिणी विद्या के ज्योत्स्नालोक के भीतर से मुखर शब्द-कलरव करती हुई ज्ञान के समुद्र की ओर अबाध बह चली। हिंदी के अध्यापक उसे पढ़ाते हुए अपनी अर्थ-प्राप्ति की कलुषित कामना पर पश्चात्ताप करते, कुशाग्रबुद्धि शिष्या के भविष्य का पंकिल चित्र खींचते हुए मन-ही-मन सोचते, इसकी पढ़ाई ऊसर पर वर्षा है, तलवार में शान, नागिन का दूध पीना। इसका काटा हुआ एक क़दम भी नहीं चल सकता। पर नौकरी छोड़ने की चिंता-मात्र से व्याकुल हो उठते थे। उसकी अँगरेज़ी की आचार्या उसे बाइबिल पढ़ाती हुई, बड़ी एकाग्रता से उसे देखती और मन-ही-मन निश्चय करती थीं कि किसी दिन उसे प्रभु ईसा की शरण में लाकर कृतार्थ कर देंगी। कनक भी अँगरेज़ी में जैसी तेज़ थी, उन्हें अपनी सफलता पर ज़रा भी द्विधा न थी। उसकी माता सोचती, इसके हृदय को जिन तारों से बाँधकर मैं इसे सजाऊँगी, उनके स्वर-झंकार से एक दिन संसार के लोग चकित हो जायँगे; इसके द्वारा अप्सरा-लोक में एक नया ही

परिवर्तन कर दूँगी, और वह केवल एक ही अंग में नहीं, चारो तरफ़; मकान के सभी शून्य छिद्रों को जैसे प्रकाश और वायु से भरते रहते हैं, आत्मा का एक ही समुद्र जैसे सभी प्रवाहों का चरम परिणाम है।

इस समय कनक अपनी सुगंध से आप ही आश्चर्य-चकित हो रही थी। अपने बालपन की बालिका-तन्वी कवयित्री को चारो ओर केवल कल्पना का आलोक देख पड़ता था, उसने अभी उसकी किरण-तंतुओं से जाल बुनना नहीं सीखा था। काव्य था पर शब्द-रचना नहीं, जैसे उस प्रकाश में उसकी तमाम प्रगतियाँ फँस गई हों, जैसे इस अवरोध से बाहर निकलने की वह राह न जानती हो। यहीं उसका सबसे बड़ा सौंदर्य, उसमें नैसर्गिक एक अतुल विभूति थी। संसार के कुल मनुष्य और वस्तुएँ उस-की दृष्टि में मरीचिका के ज्योति-चित्रों की तरह थातीं, अपने यथार्थ स्वरूप में नहीं।

कनक की दिन-चर्या बहुत साधारण थी। दो दासियाँ उसकी देख-रेख के लिये थीं। पर उन्हें प्रतिदिन दो बार उसे नहला देने और तीन-चार बार वस्त्र बदलवा देने के इंतज़ाम में ही जो कुछ थोड़ा-सा काम था, बाक़ी समय यों ही कटता था। कुछ समय साड़ियाँ चुनने में लग जाता था। कनक प्रतिदिन शाम को मोटर पर क़िले के मैदान की तरफ़ निकलती थी। ड्राइवर की बग़ल में एक अर्दली बैठता था। पीछे की सीट पर अकेली कनक। कनक प्रायः आभरण नहीं पहनती थी। कभी-कभी हाथों में सोने की चूड़ियाँ डाल लेती थी, गले में एक हीरे की कनी का जड़ाऊ हार; कानों में हीरे के दो चंपे पड़े रहते थे। संध्या-समय, सात बजे के बाद से दस तक, और दिन में भी इसी तरह सात से दस तक पढ़ती थी। भोजन-पान में बिल्कुल सादगी, पर पुष्टिकारक भोजन उसे दिया जाता था।

(३)

धीरे-धीरे, ऋतुओं के सोने के पंख फड़का, एक साल और उड़ गया। मन के खिलते हुए प्रकाश के अनेक झरने उसकी कमल-सी आँखों से होकर बह गए। पर अब उसके मुख से आश्चर्य की जगह ज्ञान की मुद्रा चित्रित हो जाती, वह स्वयं अब अपने भविष्य के पट पर तूलिका चला लेती है। साल-भर से माता के पास उसे नृत्य और संगीत की शिक्षा मिल रही है। इधर उसकी उन्नति के चरण क्रम को देख सर्वेश्वरी पहले की कल्पना की अपेक्षा शिक्षा के पथ पर उसे और दूर तक ले चलने का विचार करने लगी, और गंधर्व-जाति के छूटे हुए पूर्व-गौरव को स्पर्द्धा से प्राप्त करने के लिये उसे उत्साह भी दिया करती। कनक अपलक ताकती हुई माता के वाक्यों को सप्रमाण सिद्ध करने की मन-ही-मन निश्चय करती, प्रतिज्ञाएँ करती। माता ने उसे सिखलाया—"किसी को प्यार मत करना। हमारे लिये प्यार करना आत्मा की कमज़ोरी है। यह हमारा धर्म नहीं।"

कनक ने अस्फुट वाणी में मन-ही-मन प्रतिज्ञा की—"किसी को प्यार नहीं करूँगी। यह हमारे लिये आत्मा की कमज़ोरी है, धर्म नहीं।"

माता ने कहा—"संसार के और लोग भीतर से प्यार करते हैं, हम लोग बाहर से।"

कनक ने निश्चय किया—"और लोग भीतर प्यार करते हैं, मैं बाहर से करूँगी।"

माता ने कहा—"हमारी जैसी स्थिति है, इस पर ठहरकर भी हम लोक में वैसी ही विभूति, वैसा ही ऐश्वर्य, वैसा ही सम्मान अपनी कला के प्रदर्शन से प्राप्त कर सकती हैं; साथ ही, जिस आत्मा को और लोग अपने सर्वस्व का त्याग कर प्राप्त करते हैं, उसे भी हम लोग अपनी कला के उत्कर्ष के द्वारा, उसी में, प्राप्त करती हैं; उसी में लीन होना हमारी मुक्ति है। जो आत्मा सभी सृष्टियों की सूक्ष्मतम तंतु की तरह उनके प्राणों के प्रियतम संगीत को झंकृत करती, जिसे लोग बाहर के कुल संबंधों को छोड़, ध्यान के द्वारा तन्मय हो प्राप्त करते, उसे हम अपने बाह्य यंत्र'

के तारों से झंकृत कर, मूर्ति में जगा लेती, फिर अपने जलते हुए प्राणों का गरल, उसी शिव को, मिलकर पिला देती हैं। हमारी मुक्ति इस साधना के द्वारा होती है। इसीलिये ऐश्वर्य पर हमारा सदा ही अधिकार रहता है। हम बाहर से जितनी सुंदर, भीतर से उतनी ही कठोर इसीलिये हैं। और-और लोग बाहर से कठोर पर भीतर से कोमल हुआ करते हैं, इसीलिये वे हमें पहचान नहीं पाते, और, अपने सर्वस्व तक का दान कर, हमें पराजित करना चाहते हैं, हमारे प्रेम को प्राप्त कर, जिस पर केवल हमारे कौशल के शिव का ही एकाधिकार है। जब हम लोग अपने इस धर्म के गर्त से, मौखरिए की रागिनी सुन मुग्ध हुई नागिन की तरह, निकल पड़ती हैं, तब हमारे महत्त्व के पति भी हमें कलंकित अहल्या की तरह शाप से बाँध, पतित कर चले जाते हैं; हम अपनी स्वतंत्रता के सुखमय विहार को छोड़ मौखरिए की संकीर्ण टोकरी में बंद हो जाती हैं, फिर वही हमें इच्छानुसार नचाता, अपनी स्वतंत्र इच्छा के वश में हमें गुलाम बना लेता है। अपनी बुनियाद पर इमारत की तरह तुम्हें अटल रहना होगा, नहीं तो फिर अपनी स्थिति से ढह जाओगी, बह जाओगी।"

कनक के मन के होंठ काँपकर रह गए—"अपनी बुनियाद पर मैं इमारत की तरह अटल रहूँगी।"

(४)

अख़बारों में बड़े-बड़े अक्षरों में सूचना निकली—

"कोहनूर थिएटर में"

शकुंतला ! शकुंतला !! शकुंतला !!!

शकुंतला—मिस कनक

दुष्यंत—राजकुमार वर्मा एम्० ए०

प्रशंसा में और भी बड़े-बड़े आकर्षक शब्द लिखे हुए थे। थिएटर के शौक़ीनों को हाथ बढ़ाकर स्वर्ग मिला। वे लोग थिएटरों का तमाम इतिहास कंठाग्र रखते थे, जितने ऐक्टर (अभिनेता) और मशहूर बड़ी-छोटी जितनी भी ऐक्ट्रेस (अभिनेत्रियाँ) थीं, उन्हें सबके नाम मालूम थे, सबकी सूरतें पहचानते थे। पर यह मिस कनक अपरिचित थी। विज्ञापन के नीचे कनक की तारीफ़ भी ख़ूब की गई थी। लोग टिकट ख़रीदने के लिये उतावले हो गए। टिकट-घर के सामने अपार भीड़ लग गई, जैसे आदमियों का सागर तरंगित हो रहा हो। एक-एक झोंके से बाढ़ के पानी की तरह वह जन-समुद्र इधर-से-उधर डोल उठता था। बाक्स, आर्केस्ट्रा, फ़र्स्ट क्लास में भी और-और दिनों से ज़्यादा भीड़ थी।

विजयपुर के कुँवर साहब भी उन दिनों कलकत्ते की सैर कर रहे थे। इन्हें स्टेट से छः हज़ार मासिक जेब-ख़र्च के लिये मिलता था। वह सब नई रोशनी, नए फ़ैशन में फूँककर ताप लेते थे। आपने भी एक बाक्स किराए कर लिया। थिएटर की मिसों की प्रायः आपकी कोठी में दावत होती थी, और तरह-तरह के तोहफ़े आप उनके मकान पहुँचा दिया करते थे। संगीत का आपको अज़हद शौक़ था। ख़ुद भी गाते थे। पर आवाज़ जैसे ब्रह्मभोज के पश्चात् कड़ाह रगड़ने की। लोग इस पर भी कहते थे, क्या मँजी हुई आवाज़ है! आपको भी मिस कनक का पता मालूम न था। इससे और उतावले हो रहे थे। जैसे ससुराल जा रहे हों, और स्टेशन के पास गाड़ी पहुँच गई हो।

देखते-देखते संध्या के छः का समय हुआ। थिएटर-गेट के सामने पान खाते, सिगरेट पीते, हँसी-मज़ाक़ करते हुए बड़ी-बड़ी तोंदवाले सेठ, छड़ियाँ चमकाते, सुनहली डंडी का चश्मा लगाए हुए कॉलेज के छोकड़े, अँगरेज़ी अख़बारों की एक-एक प्रति लिए हुए हिंदी के संपादक, सहकारियों पर अपने अपार ज्ञान का बुख़ार उतारते, पहले ही से कला की कसौटी पर अभिनय की परीक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हुए टहल रहे थे। इन सब बाहरी दिखलावों के अंदर सबके मन की आँखें मिसों के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं; उनके चकित दर्शन, चंचल चलन को देखकर चरितार्थ होना चाहती थीं। जहाँ बड़े-बड़े आदमियों का यह हाल

था, वहाँ थर्ड क्लास तिमंज़िले पर, फटी-हालत, नंगे-बदन, रूखी-सूरत बैठे हुए बीड़ी-सिगरेट के धुएँ से छत भर देनेवाले, मौक़े-बेमौक़े तालियाँ पीटते हुए इनकोर-इनकोर के अप्रतिहत शब्द से कानों के पर्दे पार कर देनेवाले, अशिष्ट, मुँह-फट, कुली-क्लास के लोगों का बयान ही क्या ? वहाँ इन धन-कुबेरों और संवाद-पत्रों के सर्वज्ञों, वकीलों, डॉक्टरों, प्रोफ़ेसरों और विद्यार्थियों के साथ ये लोग भी कला के प्रेम में साम्यवाद के अधिकारी हो रहे थे ।

देखते-देखते एक लॉरी आई । लोगों की निगाह तमाम बाधाओं को चीरती हुई, हवा की गोली की तरह, निशाने पर, जा बैठी। पर, उस समय, गाड़ी से उतरने पर, वे जितनी, मिस डली, मिस कुंदन, मिस हीरा, पन्ना, मोती, पुखराज, रमा, चमा, शांति, शोभा, किशमिस और अंगूर बालाएँ थीं, जिनमें किसी ने हिरन की चाल दिखाई, किसी ने मोर की, किसी ने हस्तिनी की, किसी ने नागिन की, सब-की-सब जैसे डामर से पुती, आफ़्रिका से हाल ही आई हुई, प्रोफ़ेसर डोवर या मिस्टर चटर्जी की सिद्ध की हुई, हिंदोस्तान की आदिम जाति की ही कन्याएँ और बहनें थीं, और ये सब इतने बड़े-बड़े लोग इन्हें ही कला की दृष्टि से देख रहे थे । कोई छः फ़ीट ऊँची, तिस पर नाक नदारद ; कोई डेढ़ ही हाथ की छटंकी, पर होंठ आँखों की उपमा लिए हुए आकर्ण-विस्तृत ; किसी की साढ़े तीन हाथ की लंबाई-चौड़ाई में बदली हुई—एक-एक क़दम पर पृथ्वी काँप उठती, किसी की आँखें मक्खियों-सी छोटी और गालों में तबले मढ़े हुए ; किसी की उम्र का पता नहीं, शायद सन् ५७ के ग़दर में मिस्टर हडसन को गोद खिलाया हो, इस पर जैसी दुलकी चाल सबने दिखाई, जैसे भुल-भुल में पैर पड़ रहे हों । जनता गेट से उनके भीतर चले जाने के कुछ सेकेंड तक तृष्णा की विस्तृत अपार आँखों से कला के उस अप्राप्य अमृत का पान करती रही ।

कुछ देर के बाद एक प्राइवेट मोटर आई । बिना किसी इंगित के ही जनता की क्षुब्ध तरंग शांत हो गई, सब लोगों के अंग रूप की तड़ित् से प्रहत निश्चेष्ट रह गए । यह सर्वेश्वरी का हाथ पकड़े हुए कनक मोटर से उतर रही थी । सबकी आँखों के संध्याकाश में जैसे सुंदर इंद्र-धनुष अंकित हो गया । सबने देखा, मूर्तिमती प्रभात की किरण है । उस दिन घर से अपने मन के अनुसार सर्वेश्वरी उसे सजा-कर लाई थी । धानी रंग की रेशमी साड़ी पहने हुए, हाथों में सोने की, रोशनी से चमकती हुई चूड़ियाँ, गले में हीरे का हार, कानों में चंपा, रेशमी फ़ीते से बँधे, तरंगित खुले लंबे बाल, स्वस्थ सुंदर देह, कान तक खिंची, किसी की खोज-सी करती हुई बड़ी-बड़ी आँखें, काले रंग से कुछ स्याहकर तिरछाई हुई भौंहें, पैरों में लेडी स्टाकिंग और सुनहले रंग के जूते । लोग स्टेज की अभिनेत्री शकुंतला को मिस कनक के रूप में अपलक नेत्रों से देख रहे थे । लोगों के मनोभावों को समझकर सर्वेश्वरी देर कर रही थी । मोटर से सामान उतरवाने, ड्राइवर को मोटर लाने का वक़्त बतलाने, नौकर को कुछ भूला हुआ सामान मकान से ले आने की आज्ञा देने में लगी रही । फिर धीरे-धीरे कनक का हाथ पकड़े हुए, अपने अर्दली के साथ, ग्रीन-रूम की तरफ़ चली गई । लोग जैसे स्वप्न देखकर जागे । फिर चहल-पहल मच गई । लोग मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे । धन-कुबेर लोग दूसरे परिचितों से आँख के इशारे बतलाने लगे । इन्हीं लोगों में विजयपुर के कुँवर साहब भी थे । और न-जाने कौन-कौन-से राजे-महाराजे सौंदर्य के समुद्र से असंद्र अम्लान निकली हुई इस अप्सरा की कृपा-दृष्टि के भिक्षुक हो रहे थे । जिस समय कनक खड़ी थी, कुँवर साहब अपनी आँखों से नहीं, ख़ुर्दबीन की आँखों से उसके बृहत् रूप को देख, रूप के अंश में अपने को सबसे बड़ा इक़दार साबित कर रहे थे, और इस कार्य में उन्हें संकोच नहीं हुआ । कनक उस समय मुस्किरा रही थी । भीड़ तितर-बितर होने लगी । अभिनय के लिये पौन घंटा और रह गया ।

लोग पानी-पान-सोडा-लेमनेड आदि खाने-पीने में लग गए। कुछ लोग बीड़ियाँ फूँकते हुए खुली असभ्य भाषा में कनक की आलोचना कर रहे थे।

ग्रीन-रूम में अभिनेत्रियाँ सज रही थीं। कनक नौकर नहीं थी, उसकी मा भी नौकर नहीं थी। उसकी मा उसे स्टेज पर, पूर्णिमा के चाँद की तरह, एक ही रात में, लोगों की दृष्टि में खोलकर प्रसिद्ध कर देना उचित समझती थी। थिएटर के मालिक पर उसका काफ़ी प्रभाव था। साल में कई बार उसी स्टेज पर टिकट ज़्यादा बिकने के लोभ से थिएटर के मालिक उसे गाने तथा अभिनय करने के लिये बुलाते थे। वह जिस रोज़ उतरती, रंग-मंच दर्शक-मंडली से भर जाता था। कनक रिहर्सल में कभी नहीं गई, यह भार उसकी माता ने ले लिया था।

कनक को शकुंतला का वेश पहनाया जाने लगा। उसके कपड़े उतार दिए गए। एक साधारण-सा वस्त्र वल्कल की जगह पहना दिया गया, गले में फूलों का हार। बाल अच्छी तरह खोल दिए गए। उसकी सखियाँ अनसूया और प्रियंवदा भी सज गईं। उधर राजकुमार को दुष्यंत का वेश पहनाया जाने लगा। और-और पात्र भी सजाकर तैयार कर दिए गए।

राजकुमार भी कंपनी में नौकर नहीं था। वह शौक़िया बड़ी-बड़ी कंपनियों में उतरकर प्रधान पार्ट किया करता था। इसका कारण वह ख़ुद मित्रों से बयान किया करता। वह कहा करता था, हिंदी के स्टेज पर लोग ठीक-ठीक हिंदी-उच्चारण नहीं करते, वे उर्दू के उच्चारण की नक़ल करते हैं, इससे हिंदी का उच्चारण बिगड़ जाता है, हिंदी के उच्चारण में जीभ की स्वतंत्र गति होती है, यह हिंदी ही की शिक्षा के द्वारा दुरुस्त होगी। कभी-कभी हिंदी में वह स्वयं नाटक लिखा करता। यह शकुंतला-नाटक उसी का लिखा हुआ था। हिंदी की शुभ-कामना से प्रेरित हो, उसने विवाह भी नहीं किया। इससे उसके घरवाले उस पर नाराज़ हो गए थे। पर उसने परवा नहीं की। कलकत्ता सिटी-कॉलेज में वह हिंदी का प्रोफ़ेसर है। शरीर जैसा हृष्ट-पुष्ट, वैसा ही वह सुंदर और बलिष्ठ भी है। कलकत्ते की साहित्य-समितियाँ उसे अच्छी तरह पहचानती हैं।

तीसरी घंटी बजी। लोगों की उत्सुक आँखें स्टेज की ओर देखने लगीं। पहले बालिकाओं ने स्वागत-संगीत गाया। पश्चात् नाटक शुरू हुआ। पहले-ही-पहल कण्व के तपोवन में शकुंतला के दर्शन कर दर्शकों की आँखें तृप्ति से खुल गईं। आश्रम के उपवन की वह खिली हुई कली अपने अंगों की सुरभि से कंपित, दर्शकों के हृदय को, संगीत की एक मधुर मींड़ की तरह काँपकर उठती हुई देह की दिव्य द्युति से, प्रसन्न-पुलकित कर रही थी। जिधर-जिधर चपल तरंग की तरह डोलती, फिरती, लोगों की अचंचल अपलक दृष्टि, उधर-ही-उधर, उस छवि की स्वर्ण-किरण से लगी रहती। एक ही प्रत्यंग-संचालन से उसने लोगों पर जादू डाल दिया। सब उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उसे गौरव-पूर्ण आश्चर्य से देखने लगे।

महाराज दुष्यंत का प्रवेश होते ही, उन्हें देखते ही कनक चौंक उठी। दुष्यंत भी अपनी तमाम एकाग्रता से उसे अविस्मय देखते रहे। यह मौन अभिनय लोगों के मन में सत्य के दुष्यंत और शकुंतला की झलक भर गया। कनक मुस्किराई। दोनो ने दोनो को पहचान लिया।

उनके आभ्यंतर भावों की प्रसन्नता की छाया दर्शकों पर भी पड़ी। लोगों ने कहा—बहुत स्वाभाविक अभिनय हो रहा है। क्रमशः आलाप-परिचय, रंग-रस-प्रियता आदि अभिनीत होते रहे। रंगशाला में बिलकुल सन्नाटा था, जैसे सब लोग निर्वाक्, कोई मनोहर स्वप्न देख रहे हों। गांधर्व रीति से विवाह होने लगा। लोग तालियाँ पीटते, सीटियाँ बजाते रहे। शकुंतला ने अपनी माला दुष्यंत को पहना दी; दुष्यंत ने अपनी, शकुंतला को। स्टेज खिल गया।

ठीक इसी समय, बाहर से भीड़ को ठेलते, नेकरों की परवा न करते हुए, कुछ कांस्टेब्लों को साथ ले, पुलिस के दारोग़ाजी, बड़ी गंभीरता से, स्टेज के सामने, आ धमके। लोग विस्मय की दृष्टि से एक दूसरा नाटक देखने लगे। दारोग़ाजी ने मैनेजर को पुकारकर कहा—"यहाँ, इस नाटक-मंडली में, राजकुमार वर्मा कौन है? उसके नाम वारंट है, हम उसे गिरफ़्तार करेंगे।"

तमाम स्टेज थर्रा गया। उसी समय लोगों ने देखा, राजकुमार वर्मा, दुष्यंत की ही सम्राट्-चाल से, निश्शंक, वन्य दृश्य-पट के किनारे से, स्टेज के बिल्कुल सामने, आकर खड़ा हो गया, और वीर की दृष्टि से दारोग़ा को देखने लगा। वह दृष्टि कह रही थी, हमें गिरफ़्तार होने का बिल्कुल ख़ौफ़ नहीं। शकुंतला-कनक भी अभिनय को सार्थक करती हुई, किनारे से चलकर अपने प्रिय पति के पास आ, हाथ पकड़, दारोग़ा को निस्संकोच दृप्त दृष्टि से देखने लगी। कनक को देखते ही शहद की मक्खियों की तरह दारोग़ा की आँखें उससे लिपट गईं। दर्शक नाटक देखने के लिये चंचल हो उठे।

"हमने रुपए ख़र्च किए हैं, हमारे मनोरंजन का टैक्स लेकर फिर उसमें बाधा डालने का सरकार को कोई अधिकार नहीं। यह दारोग़ा की मूर्खता है, जो वह अभियुक्त को यहाँ क़ैद करने आया। उसे निकाल दो।" कॉलेज के एक विद्यार्थी ने ज़ोर से पुकारकर कहा।

"निकाल दो—निकाल दो—निकाल दो" हज़ारों कंठ एक साथ कह उठे।

ड्राप गिरा दिया गया।

"निकल जाओ—निकल जाओ" पटापट तालियों के वाद्य से स्टेज गूँज उठा। सीटियाँ बजने लगीं। "अहा हाहा! क़ुर्बान जाऊँ साफ़ा! क़ुर्बान जाऊँ डंडा!! छछूँदर-जैसी मूँछें! यह कद्दू-जैसा मुँह!!"

दारोग़ाजी का सर लटक पड़ा। "भागो—भागो—भागो" के बीच उन्हें भागना ही पड़ा। मैनेजर ने कहा, नाटक हो जाने के बाद आप उन्हें गिरफ़्तार कर लीजिए। मैं उनके पास गया था। उन्होंने आपके लिये यह संवाद भेजा है। दारोग़ा को मैनेजर गेट पर ले जाने लगे, पर उन्होंने स्टेज के भीतर रहकर नाटक देखने की इच्छा प्रकट की। मैनेजर ने टिकट ख़रीदने के लिये कहा। दारोग़ा-जी एक बार शान से देखकर रह गए। फिर अपने लिये एक आर्केस्ट्रा का टिकट ख़रीद लिया। कांस्टेब्लों को मैनेजर ने थर्ड-क्लास में ले जाकर भर दिया। वहाँ के लोगों को मनोरंजन की दूसरी सामग्री मिल गई।

थिएटर होता रहा। मिस कनक द्वारा किया हुआ शकुंतला का पार्ट लोगों को बहुत पसंद आया। एक ही रात में वह शहर-भर में प्रसिद्ध हो गई।

नाटक समाप्त हो गया। राजकुमार ग्रीन-रूम से निकलने पर गिरफ़्तार कर लिया गया।

(५)

एक बड़ी-सी, अनेक प्रकार के देश-देश की अप्सराओं, बादशाहज़ादियों, नर्तकियों के सत्य तथा काल्पनिक चित्रों तथा बेल-बूटों से सजी हुई दालान; फ़ाड़-फ़ानूस टँगे हुए; फ़र्श पर क़ीमती ग़लीचे-सा कारपेट बिछा हुआ; मख़मल की गद्दीदार कुर्सियाँ, कोच और सोफ़े तरह-तरह की मेज़ों के चारो ओर क़ायदे से रक्खे हुए; बीच-बीच बड़े-बड़े, आदमी के आकार के ड्योढ़े, शीशे, एक तरफ़ टेबल-हारमोनियम और एक तरफ़ पियानो रक्खा हुआ; और-और यंत्र भी—सितार, सुर-बहार, एसराज, वीणा, सरौद, बैंजो, बेला, क्लारिओनेट, कार्नेट, मँजीरे, तबले, पखावज, सरंगी आदि यथास्थान सुरक्षित रक्खे हुए; कहीं-कहीं छोटी-छोटी मेज़ों पर चीनी मिट्टी के क़ीमती बर्तन साज के तौर पर रक्खे हुए; किसी-किसी में फूलों के तोड़े; रंगीन शीशे-जड़े तथा फ़ँफ़रियोंदार डबल दरवाज़े लगे हुए, दोनो किनारों पर मख़मल की सुनहरी जालीदार फूलें चौथ के चाँद के आकार से

पड़ी हुई ; बीच में छः हाथ की चौकोर क़रीब डेढ़ हाथ की ऊँची गद्दी, तकिए लगे हुए, उस पर अकेली बैठी हुई, रात आठ बजे के लगभग, कनक सुर-बहार बजा रही है। मुख पर चिंता की एक रेखा स्पष्ट खिंची हुई उसके बाहरी सामान से चित्त बहलाने का हाल बयान कर रही है। नीचे लोगों की भीड़ जमा है। सब लोग कान लगाए हुए सुर-बहार सुन रहे हैं।

एक दूसरे कमरे से एक नौकर आया। कहा, माजी कहती हैं, कुछ गाने के लिये कहो। कनक ने सुन लिया। नौकर चला गया। कनक ने अपने नौकर से बाक्स हारमोनियम दे जाने के लिये कहा। हारमोनियम ले आने पर उसने सुर-बहार बढ़ा दिया। नौकर उस पर गिलाफ़ चढ़ाने लगा। कनक दूसरे सप्तक के "सी" स्वर पर अँगुली रख बेलो करने लगी। गाने से जी उचट रहा था, पर माता की आज्ञा थी, उसने गाया —

"प्यार करती हूँ आलि, इसलिये मुझे भी करते हैं वे प्यार,
बह गई हूँ अजान की ओर, इसलिये बह जाता संसार।
रुके नहीं धनि चरण घाट पर,
देखा मैंने मरण बाट पर,
टूट गए सब आट-ठाट घर,
छूट गया परिवार—
तभी सखि, करते हैं वे प्यार।
आप बही या बहा दिया था,
खिंची स्वयं या खींच लिया था,
नहीं याद कुछ कि क्या किया था,
हुई जीत या हार—
तभी री करते हैं वे प्यार।
खुले नयन जब रही सदा तिर,
स्नेह-तरंगों पर उठ-उठ गिर,
सुखद पालने पर मैं फिर-फिर,
करता थी शृंगार—
मुझे तब करते हैं वे प्यार।
कर्म-कुसुम अपने सब चुन-चुन,
निर्जन में प्रिय के गिन-गिन गुण,
गूथ निपुण कर से उनको सुन,
पहनाया था हार—
इसलिये करते हैं वे प्यार।"

कनक ने कल्याण में भरकर इमन गाया। नीचे कई सौ आदमी मंत्र-मुग्ध-से खड़े हुए सुन रहे थे। गाने से प्रसन्न हो सर्वेश्वरी भी अपने कमरे से उठकर कनक के पास आकर बैठ गई। गाना समाप्त हुआ। सर्वेश्वरी ने प्यार से कन्या का चिंतित मुख चूम लिया।

नीचे से एक नौकर ने आकर कहा, विजयपुर के कुँवर साहब के यहाँ से एक बाबू आए हैं, कुछ बातचीत करना चाहते हैं।

सर्वेश्वरी नीचे अपने दो मंज़िलेवाले कमरे में उतर गई। यह कनक का कमरा था। अभी थोड़े ही दिन हुए, कनक के लिये सर्वेश्वरी ने सजाया है।

कुछ देर बाद सर्वेश्वरी ऊपर आई। कनक से कहा, कुँवर साहब, विजयपुर, तुम्हारा गाना सुनना चाहते हैं।

"मेरा गाना सुनना चाहते हैं ?" कनक सोचने लगी। "अम्मा !" कनक ने कहा—"मैं रईसों की महफ़िल में गाना नहीं गाऊँगी।"

"नहीं, वे यहीं आएँगे। बस, दो-चार चीज़ें सुना दो। तबियत अच्छी न हो, तो कहो, कह दें, और कभी आएँगे।"

"अच्छा अम्मा, किसी पत्ते पर, क़ीमती—ख़ूबसूरत पत्ते पर पड़ी हुई ओस की बूँद अगर हवा के झोंके से ज़मीन पर गिर जाय, तो अच्छा या प्रभात के सूरज से चमकती हुई उसकी किरणों से खेलकर फिर अपने मकान, आकाश को चली जाय, तो अच्छा ?"

"दोनो अच्छे हैं उसके लिये। हवा के झूले का आनंद किरणों से हँसने में नहीं, वैसे ही किरणों से हँसने का आनंद हवा के झूले में नहीं। और, घर तो वह पहुँच ही जाती है, गिरे या डाल ही पर सूख जाय।"

"पर अगर हवा में झूलने से पहले ही वह सूखकर उड़ गई हो।"

"तब तो बात ही और है।"

"मैं उसे यथार्थ रंगीन पंखोंवाली परी मानती हूँ।"

"क्या तू ख़ुद ऐसी ही परी बनना चाहती है?"

"हाँ अम्मा, मैं कला को कला की दृष्टि से देखती हूँ। उससे अर्थ-प्राप्ति करना उसके महत्त्व को घटा देना नहीं?"

"ठीक है, पर यह एक प्रकार बदला है। अर्थ-वाले अर्थ देते हैं, और कला के जानकार उसका आनंद। संसार में एक-दूसरे से ऐसा ही संबंध है।"

"कला के ज्ञान के साथ-ही-साथ कुछ ऐसी गंदगी भी हम लोगों के चरित्र में रहती है, जिससे मुझे सख़्त नफ़रत है।"

माता चुप रही। कन्या के विशद अभिप्राय को ताड़कर कहा—"तुम इससे बची हुई भी अपने ही ज़ीने से छत पर जा सकती हो, जहाँ सबकी तरह तुम्हें भी आकाश तथा प्रकाश का बराबर अंश मिल सकता है।"

"मैं इतना यह सब नहीं समझती। समझती भी हूँ, तो भी मुझे कला को एक सीमा में परिमित रखना अच्छा लगता है। ज़्यादा विस्तार से वह कलुषित हो जाती है, जैसे बहाव का पानी, उसमें गंदगी डालकर भी लोग उसे पवित्र मानते हैं। पर कुएँ के लिये यह बात नहीं। स्वास्थ्य के विचार से कुएँ का पानी बहते हुए पानी से बुरा नहीं। विस्तृत व्याख्या तथा अधिक बढ़ाव के कारण अच्छे-से-अच्छे कृत्य बुरे धब्बों से रँगे रहते हैं।"

"प्रवृत्ति के वशीभूत होकर पश्चात् लोग अनर्थ करने लगते हैं। यही अत्याचार धार्मिक अनुष्ठानों में प्रत्यक्ष हो रहा है। पर बृहत् अपनी महत्ता में बृहत् ही है। बहाव और कुएँवाली बात जँचकर फीकी रही।"

"अम्मा, बात यह, तुम्हारी कनक अब तुम्हारी नहीं रही। उसके सोने के हार में ईश्वर ने एक नीलम जड़ दिया है।"

सर्वेश्वरी ने तअज्जुब की निगाह से कन्या को देखा। कुछ-कुछ उसका मतलब वह समझ गई। पर उसने कन्या से पूछा—"तुम्हारे कहने का क्या मतलब?"

"यह।"

कनक ने हाथ की एक चूड़ी, कलाई उठाकर, दिखाई।

सर्वेश्वरी हँसने लगी।

"तमाशा कर रही है? यह कौन-सा खेल?"

"नहीं अम्मा।" कनक गंभीर हो गई, चेहरे पर एक प्रकार स्थिर प्रौढ़ता झलकने लगी—"मैं ठीक कहती हूँ, मैं ब्याही हुई हूँ, अब मैं महफ़िल में गाना नहीं गाऊँगी। अगर कहीं गाऊँगी भी, तो ख़ूब सोच-समझकर, जिससे मुझे संतोष रहे।"

सर्वेश्वरी एक दृष्टि से कनक को देखती रही।

"यह विवाह कब हुआ, और किससे हुआ? किया किसने?"

"यह विवाह आपने किया, ईश्वर की इच्छा से, कोहनूर-स्टेज पर, कल, हुआ, दुष्यंत का पार्ट करने-वाले राजकुमार के साथ, शकुंतला सजी हुई तुम्हारी कनक का। ये चूड़ियाँ (एक-एक दोनो हाथों में) इस प्रमाण की रक्षा के लिये मैंने पहन लीं। और देखो"—कनक ने ज़रा-सी सेंदुर की एक बिंदी सर पर लगा ली थी, "अम्मा, यह एक रहस्य हो गया। राजकुमार को—"

माता ने बीच ही में हँसकर कहा—"सुहागिनें अपने पति का नाम नहीं लिया करतीं।"

"पर मैं लिया करूँगी। मैं कुछ घूँघट काढ़नेवाली सुहागिन तो हूँ नहीं; कुछ पैदायशी स्वतंत्र हक़ मैं अपने साथ रक्खूँगी। नहीं तो कुछ दिक़्क़त पड़ सकती है। गाने-बजाने पर भी मेरा ऐसा ही विचार रहेगा। हाँ, राजकुमार को तुम नहीं जानतीं, इन्हीं ने मुझे इडन-गार्डेन में बचाया था।"

कन्या की भावना पर, ईश्वर के विचित्र घटनाओं के भीतर से इस प्रकार मिलाने पर, कुछ देर तक

सर्वेश्वरी सोचती रही। देखा, उसके हृदय के कमल पर कनक की इस उक्ति की किरण सूर्य की किरण की तरह पड़ रही थी, जिससे आप-ही-आप उसके सब दल प्रकाश की ओर खुलते जा रहे थे। तरंगों से उसका स्नेह-समुद्र कनक के रेखा-तट को छाप जाने लगा। इस एकाएक स्वाभाविक परिवर्तन को प्रत्यक्ष कर सर्वेश्वरी ने अप्रिय विरोधी प्रसंग छोड़ दिया। हवा का रुख़ जिस तरफ़ हो, उसी तरफ़ नाव को बहा ले जाना उचित है, जब कि लक्ष्य केवल सैर है, कोई गम्य स्थान नहीं।

हँसकर सर्वेश्वरी ने पूछा—"तुम्हारा इस प्रकार स्वयंवरा होना उन्हें भी मंज़ूर है न, या अंत तक शकुंतला ही की दशा तुम्हें भोगनी होगी? और वे तो क़ैद भी हो गए हैं?"

कनक संकुचित लज्जा से द्विगुणित हो गई। कहा—"मैंने उनसे तो इसकी चर्चा नहीं की। करना भी व्यर्थ। इसे मैं अपनी ही हद तक रक्खूँगी। किसके कैसे ख़यालात हैं, मुझे क्या मालूम? अगर वे मुझे मेरे कुल का विचार कर ग्रहण न करें, तो इस तरह का अपमान बरदाश्त कर जाना, मेरी शक्ति से बाहर है। वे क़ैद शायद उसी मामले में हुए हैं।"

"उनके बारे में और भी कुछ तुम्हारा समझा हुआ है?'

"मैं और कुछ भी नहीं जानती अम्मा। पर कल तक......सोचती हूँ, थानेदार को बुलाकर कुल बातें पूछूँ। और पता लगाकर भी देखूँ कि क्या कर सकती हूँ।"

सर्वेश्वरी ने कुँवर साहब के आदमियों के पास कहला भेजा कि कनक की तबियत अच्छी नहीं, इसलिये किसी दूसरे दिन गाना सुनने की कृपा करें।

(६)

बड़ा बाज़ार थाने में एक पत्र लेकर नौकर दारोग़ाजी के पास गया। दारोग़ाजी बैठे हुए एक मारवाड़ी को किसी काम में शहादत के लिये समझा रहे थे कि उनके लिये और ख़ास तौर से सरकार के लिये यह इतना-सा काम कर देने से वे मारवाड़ी महाशय को कहाँ तक पुरस्कृत कर सकते हैं, सरकार की दृष्टि में उनकी कितनी इज़्ज़त होगी, और आर्थिक उन्हें कितने बड़े लाभ की संभावना है। मारवाड़ी महाशय बड़े नम्र शब्दों में, डरे हुए, पहले तो इनकार कर रहे थे, पर दारोग़ाजी की वक्तृता के प्रभाव से अपने भविष्य के चमकते हुए भाग्य का काल्पनिक चित्र देख-देख, पीछे से हाँ-ना के बीच खड़े हुए मन-ही-मन हिल रहे थे, कभी इधर, कभी उधर। उसी समय कनक के जमादार ने ख़त लिए हुए ही घुटनों तक झुककर सलाम किया। दारोग़ा साहब ने "आज तख़्त बैठो दिल्लीपति नर" की नज़र से क्षुद्र जमादार को देखा। बढ़कर उसने चिट्ठी दे दी।

दारोग़ाजी उसी समय चिट्ठी को फाड़कर पढ़ने लगे। पढ़ते हुए मुस्किराते जाते थे। पढ़कर जेब में हाथ डाला। एक नोट पाँच रुपए का था। नौकर को दे दिया। कहा तुम चलो। कह देना, हम अभी आए। अँगरेज़ी में पत्र यों था—

३, बहू बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता,
३—४—१८

प्रिय दारोग़ा साहब,

आपसे मिलना चाहती हूँ। जब से स्टेज पर से आपको देखा—आहा! कैसी ग़ज़ब की आपकी आँखें—दोबारा जब तक नहीं देखती, मुझे चैन नहीं। क्या आप कल नहीं मिलेंगे?

आप ही की
कनक

थानेदार साहब ख़ूबसूरत नहीं थे। पर उन्हें उस समय अपने सामने शाहज़ादे सलीम का रंग भी फीका और किसी परीज़ाद की आँखें भी छोटी जान पड़ीं। तुरंत उन्होंने मारवाड़ी महाशय को बिदा कर दिया। तहक़ीक़ात करने के लिये मछुआ बाज़ार जाना था, काम छोटे थानेदार के सिपुर्द कर दिया, यद्यपि वहाँ बहुत-से रुपए गुंडों से मिलनेवाले थे।

उठकर कपड़े बदले और सादी सफ़ेद पोशाक में वह बाज़ार की सैर करने चल पड़े। पत्र जेब में रखने लगे, तो फिर उन्हें अपनी आँखों की बात याद आई। झट शीशे के सामने जाकर खड़े हो गए, और तरह-तरह से मुँह बना-बनाकर, आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। उनके मन को, उस सूरत से, उन आँखों से, तृप्ति न थी; पर ज़बरन मन को अच्छा लगा रहे थे। दस मिनट तक इसी तरह सूरत देखते रहे। शीशे के सामने वैसलीन ज़्यादा-सा पोत लिया। मुँह धोया। पाउडर लगाया। एसेंस छिड़का। फिर आईने के सामने खड़े हो गए। मन को फिर न अच्छा लगा। पर ज़ोर दे-देकर अपने को अच्छा साबित करते रहे। कनक के मंत्र ने स्टेज पर ही इन्हें वशीभूत कर लिया था। अब पत्र भी आया, और वह भी प्रणय-पत्र के साथ-साथ प्रशंसा-पत्र, उनकी विजय का इससे बड़ा और कौन-सा प्रमाण होता? कहाँ उन्हें ही उसके पास प्रणय की भिक्षा के लिये जाना था, कहाँ वही उनके प्रेम के लिये, उनकी जादू भरी निगाह के लिये पागल है। उस पर भी उनका मन उन्हें सुंदर नहीं मानता। यह उनके लिये सहन कर जानेवाली बात थी? एक कांस्टेबुल को टैक्सी ले आने के लिये भेज दिया था। बड़ी देर से खड़ी हुई टैक्सी हार्न कर रही थी, पर उस समय वे अपने बिगड़े हुए मन से लड़ रहे थे। कांस्टेबुल ने आकर कहा, दारोग़ाजी, बड़ी देर से टैक्सी खड़ी है। आपने छड़ी उठाई, और थाने से बाहर हो गए। सड़क पर टैक्सी खड़ी थी। बैठ गए, कहा, बहूबाज़ार। ड्राइवर बहू-बाज़ार चल दिया। जब ज़करिया स्ट्रीट के बराबर टैक्सी पहुँची, तब आपको याद आई कि टोपी भूल गए। कहा, अरे ड्राइवर, भई ज़रा फिर थाने चलो। गाड़ी फिर थाने आई। आप अपने कमरे से टोपी लेकर फिर टैक्सी पर पहुँचे। टैक्सी बहूबाज़ार चली।

तीन नंबर के आलीशान मकान के नीचे टैक्सी खड़ी हो गई। पुरस्कृत जमादार ने लौटकर अपने पुरस्कार का हाल कनक से कह दिया था। कनक ने उसे ही द्वार पर दारोग़ा साहब के स्वागत के लिये रक्खा था, और समझा दिया था, बड़े अदब से, दो मंज़िलेवाले कमरे में, जिसमें मैं पढ़ती थी, बैठाना, और तब मुझे ख़बर देना। जमादार ने सलाम कर थानेदार साहब को उसी कमरे में ले जाकर एक कोच पर बैठाया, और फिर ऊपर कनक को ख़बर देने के लिये गया।

उस कमरे में, शीशेदार आलमारियों में, कनक की किताबें रक्खी थीं। उनकी जिल्दों पर सुनहरे अक्षरों से किताबों के नाम लिखे हुए थे। दारोग़ाजी विद्या की तौल में कनक को अपने-से जितना छोटा, इसलिये अमान्य समझ रहे थे, उन किताबों की तरफ़ देखकर उसके प्रति उनके दिल में कुछ इज़्ज़त पैदा हो गई। उसकी विद्या की मन-ही-मन बैठे हुए थाह ले रहे थे।

कनक ऊपर से उतरी। साधारणतः जैसी उसकी सज्जा मकान में रहती थी, वैसी ही थी, सभ्य तरीक़े से एक ज़री की किनारीदार देशी साड़ी, लेडी मोज़े और जूते पहने हुए।

कनक को आते देखकर थानेदार साहब खड़े हो गए। कनक ने हँसकर कहा—"गुड मॉर्निंग।" थानेदार कुछ झेंप गए। डरे कि कहीं बातचीत का सिलसिला अँगरेज़ी में इसने चलाया, तो नाक ही कटेगी। इस व्याधि से बचने के लिये उन्होंने स्वयं ही हिंदी में बातचीत छेड़ी—"आपका नाटक कल देखा, मैं सच कहता हूँ, ईश्वर जाने, ऐसा नाटक ज़िंदगी-भर मैंने नहीं देखा।"

"आपको पसंद आया, मेरे भाग्य। माजी तो उसमें तरह-तरह की त्रुटियाँ निकालती हैं। कहती हैं, अभी बहुत कुछ सीखना है—तारीफ़वाली कोई बात नहीं हुई।"

कनक ने रुख़ बदल दिया। सोचा, इस तरह व्यर्थ ही समय नष्ट करना होगा।

"आप हम लोगों के यहाँ जलपान करने में शायद संकोच करें?"

मोटी हँसी हँसकर दारोग़ा ने कहा—"संकोच!

संकोच का तो यहाँ नाम नहीं और फिर तु—आ—आपके यहाँ।"

कनक ने दारोग़ाजी को पहचान लिया। उसने नौकर को आवाज़ दी। नौकर आया। उससे खाना लाने के लिये कहकर, आलमारी से, ख़ुद उठकर एक रेडलेबल और दो बोतलें लेमोनेड की निकालीं।

शीशे के एक ग्लास में एक पेग शराब ढालते हुए कनक ने कहा—"आप मुझे तुम ही कहें। कितना मधुर शब्द है तुम! 'तुम' मिलानेवाला है, 'आप' शिष्टता की तलवार से दो जुड़े-हुओं को काटकर जुदा कर देनेवाला।"

दारोग़ाजी बाग़-बाग़ हो गए। बादल-से काले मुँह की हँसी में सफ़ेद दाँतों की क़तार बिजली की तरह चमक उठी। कनक ने बड़े ज़ोर से सिर गड़ाकर हँसी रोकी।

थानेदार साहब की तरह अपने जीवन का पहला ही कटाक्ष कर कनक ने देखा, तीर अचूक बैठा। पर उसके कलेजे में बिच्छू डंक मार रहे थे।

कनक ने ग्लास में लेमोनेड कुछ डालकर थानेदार साहब को दिया। उन्होंने हाँ-ना बिना किए ही लेकर पी लिया।

कनक ने दूसरा पेग ढाला। उसे भी पी गए। तीसरा ढाला, उसे भी पी लिया।

तब तक नौकर खाना लेकर आ गया। कनक ने सहूलियत से मेज़ पर रखवा दिया।

थानेदार साहब ने कहा—"अब मैं तुम्हें पिलाऊँ?"

कनक ने भौंहें चढ़ा लीं। "आज शाम को नवाब साहब मुर्शिदाबाद के यहाँ मेरा मोजरा है, माफ़ कीजिएगा। किसी दूसरे दिन आइएगा, तब पिऊँगी। पर मैं शराब नहीं पीती, पोर्ट पीती हूँ। आप मेरे लिये एक लेते आइएगा।"

थानेदार साहब ने कहा—"अच्छा, खाना तो साथ खाओ।" कनक ने एक टुकड़ा उठाकर खा लिया। थानेदार भी खाने लगे। कनक ने कहा—"मैं नाश्ता कर चुकी हूँ, माफ़ फ़र्माइएगा, बस।" उसने वहीं, नीचे रक्खे हुए, ताँबे के एक बड़े-से बर्तन में हाथ-मुँह धोकर डब्बे से निकालकर पान खाया। दारोग़ाजी खाते रहे। कनक ने डरते हुए चौथा पेग तैयार कर सामने रख दिया। खाते-खाते थानेदार साहब उसे भी पी गए। कनक उनकी आँखें देख रही थी।

थानेदार साहब का प्रेम धीरे-धीरे प्रबल रूप धारण करने लगा। शराब की-जैसी वृष्टि हुई थी, उनकी नदी में वैसी ही बाढ़ भी आ गई। कनक ने पाँचवाँ पेग तैयार किया। थानेदार साहब भी प्रेम की परीक्षा में फ़ेल हो जानेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने इनकार नहीं किया। खाना खा चुकने के बाद नौकर ने उनके हाथ धुला दिए।

धीरे-धीरे उनके शब्दों में प्रेम का तूफ़ान उठ चला। कनक डर रही थी कि वह इतना सब सहन कर सकेगी या नहीं। वह उन्हें माता की बैठक में ले गई। सर्वेश्वरी दूसरे कमरे में चली गई थी।

गद्दी पर पड़ते ही थानेदार साहब लंबे हो गए। कनक ने हारमोनियम उठाया। बजाते हुए पूछा—"वह जो कल दुष्यंत बना था, उसे गिरफ़्तार क्यों किया आपने, कुछ समझ में नहीं आया।"

"उससे हैमिल्टन साहब सख़्त नाराज़ हैं। उस पर बदमाशी लगाई गई है।" करवट बदलकर दारोग़ाजी ने कहा।

"ये हैमिल्टन साहब कौन हैं?"

"ये सुपरिंटेंडेंट पुलिस हैं।"

"कहाँ रहते हैं?" कनक ने एक गत का एक चरण बजाकर पूछा।

"रौडन स्ट्रीट नं० ५ इन्हीं का बँगला है।"

"क्या राजकुमार को सज़ा हो गई?"

"नहीं, कल पेशी है, पुलिस की शहादत गुज़र जाने पर सज़ा हो जायगी।"

"मैं तो बहुत डरी, जब आपको वहाँ देखा।"

आँखें मूँदे हुए दारोग़ाजी मूछों पर ताव देने लगे।

कनक ने कहा—"पर मैं कहूँगी, आपके-जैसा

ख़ूबसूरत जवान बना-चुना मुझे दूसरा नहीं नज़र आया।"

दारोग़ाजी उठकर बैठ गए। इसी सिलसिले में प्रासंगिक-अप्रासंगिक, सुनने-लायक़, न-सुनने-लायक़ बहुत-सी बातें कह गए। धीरे-धीरे लड़कर आए हुए भैंसे की आँखों की तरह आँखें ख़ून हो चलीं। भले-बुरे की लगाम मन के हाथ से छूट गई। इस अनर्गल शब्द-प्रवाह को बेहोश होने की घड़ी तक रोक रखने के अभिप्राय से कनक गाने लगी।

गाना सुनते-ही-सुनते मन विस्मृति के मार्ग से अंधकार में बेहोश हो गया।

कनक ने गाना बंद कर दिया। उठकर दारोग़ाजी के पॉकेट की तलाशी ली। कुछ नोट थे, और उसकी चिट्ठी। नोटों को उसने रहने दिया, और चिट्ठी निकाल ली।

कमरे के तमाम दरवाज़े बंद कर ताली लगा दी।

(७)

कनक घबरा उठी। क्या करे, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। राजकुमार को जितना ही सोचती, चिंताओं की छोटी-बड़ी अनेक तरंगों, आवर्तों से मन मथ जाता। पर उन चिंताओं के भीतर से उपाय की कोई भी मणि नहीं मिल रही थी, जिसकी प्रभा उसके मार्ग को प्रकाशित करती। राजकुमार के प्रति उसके प्रेम का यह प्रखर बहाव, बँधी हुई जल-राशि से छूटकर अनुकूल पथ पर बह चलने की तरह, स्वाभाविक और सार्थक था। पहले ही दिन, उसने राजकुमार के शौर्य का जैसा दृश्य देखा था, उसके सबसे एकांत स्थान पर, जहाँ तमाम जीवन में मुश्किल से किसी का प्रवेश होता है, पत्थर के अक्षरों की तरह उसका पौरुष चित्रित हो गया था। सबसे बड़ी बात जो रह-रहकर उसे याद आती थी, वह राजकुमार की उसके प्रति श्रद्धा थी। कनक ने ऐसा चित्र तब तक नहीं देखा था। इसीलिये उस पर राजकुमार का स्थायी प्रभाव पड़ गया। माता की केवल ज़बानी शिक्षा इस प्रत्यक्ष उदाहरण के सामने पराजित हो गई। और, वह जिस तरह की शिक्षा के भीतर से आ रही थी, परिचय के पहले ही प्रभात में किसी मनोहर दृश्य पर उसकी दृष्टि का बँध जाना, अटक जाना, उसके उस जीवन की स्वच्छ अबाध प्रगति का उचित परिणाम ही हुआ। उसकी माता शिक्षित तथा समझदार थी। इसीलिये उसने कन्या के सबसे प्रिय जीवनोन्मेष को बाहरी आवरण द्वारा ढक देना उसकी नाड़ के साथ ही जीवन की प्रगति को भी रोक देना समझा था।

सोचते-सोचते कनक को याद आया, उसने साहब की जेब से एक चिट्ठी निकाली थी, फिर उसे अपनी फ़ाइल में रख दिया था। वह तुरंत चलकर फ़ाइल की तलाशी लेने लगी। चिट्ठी मिल गई।

साहब की जेब से यह राजकुमार की चिट्ठी निकाल लेना चाहती थी, पर हाथ एक दूसरी चिट्ठी लगी। उस समय घबराहट में वहीं उसने पढ़कर नहीं देखा। घर में खोला, तो काम की बातें न मिलीं। उसने चिट्ठी को फ़ाइल में नत्थी कर दिया। उसने देखा था, युवक ने पेंसिल से पत्र लिखा है। पर यह स्याही से लिखा गया था। इसकी बातें भी उस सिलसिले से नहीं मिलती थीं। इस तरह, ऊपरी दृष्टि से देखकर ही, उसने चिट्ठी रख दी थी। आज निकालकर फिर पढ़ने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार पढ़ा। बड़ी प्रसन्न हुई। यह वही हैमिल्टन साहब थे। वे हों, न हों, पर यह पत्र हैमिल्टन साहब ही के नाम लिखा था उसके एक दूसरे अँगरेज़ मित्र मिस्टर चर्चिल ने। मज़मून रिश्वत और अन्याय का, कनक की आँखें चमक उठीं।

इस कार्य की सहायता की बात सोचते ही उसे श्रीमती कैथरिन की याद आई। अब कनक पढ़ती नहीं, इसलिये श्रीमती कैथरिन का आना बंद है। कभी-कभी आकर मिल जातीं, मकान में पढ़ने की किताबें पसंद कर जाया करती हैं। कैथरिन अब भी कनक को वैसे ही प्यार करती हैं। कभी-कभी पश्चिमी आर्ट, संगीत और नृत्य की शिक्षा के लिये साथ

योरप चलने की चर्चा भी करती हैं। सर्वेश्वरी की उसे योरप भेजने की इच्छा थी। पर पहले वह अच्छी तरह उसे अपनी शिक्षा दे देना चाहती थी।

कनक ने ड्राइवर को मोटर लगाने के लिये कहा। कपड़े बदलकर चलने के लिये तैयार हो गई।

मोटर पर बैठकर ड्राइवर से पार्क स्ट्रीट चलने के लिये कहा।

कितनी व्यग्रता! जितने भी दृश्य आँखों पर पड़ते हैं, जैसे बिना प्राणों के हों। दृष्टि कहीं भी नहीं ठहरती। पलकों पर एक ही स्वप्न संसार की अपर कल्पनाओं से मधुर हो रहा है। व्यग्रता ही इस समय यथार्थ जीवन है, और सिद्धि के लिये वेदना के भीतर से काम्य साधना। अंतर्जगत् के कुल अंधकार को दूर करने के लिये उसका एक ही प्रदीप पर्याप्त है। उसके हृदय की लता को सौंदर्य की सुगंध से भर रखने के लिये उसका एक ही फूल बस है। तमाम भावनाओं के तार अलग-अलग स्वरों में झंकार करते हैं, उसकी रागिनी से एक ही तार मिला हुआ है। असंख्य ताराओं की उसे आवश्यकता नहीं, उसके झरोखे से एक ही चंद्र की किरण उसे प्रिय है। तमाम संसार जैसे अनेक कलरवों के बुद्बुद-गीतों से समुद्वेलित क्षुब्ध और पैरों को स्खलित कर बहा ले जानेवाला विपत्ति-संकुल है। एक ही वर को हृदय से लगा तैरती हुई वह पार जा सकेगी। सृष्टि के सब रहस्य इस महाप्रलय में डूब गए हैं, उसका एक ही रहस्य, तपस्या से प्राप्त अमर वर की तरह, उसके साथ संबद्ध है। शंकित दृष्टि से वह इस प्रलय को देख रही है।

पार्क स्ट्रीट आ गया। कैथरिन के मकान के सामने गाड़ी खड़ी करवा कनक उतर पड़ी। नौकर से ख़बर भेज दी। कैथरिन अपने बँगले से निकल आई, और बड़े स्नेह से कनक को भीतर ले गई।

कैथरिन से कनक की अँगरेज़ी में बातचीत होती थी। आने का कारण पूछने पर कनक ने साधारण कुल क़िस्सा बयान कर दिया। कैथरिन सुनकर पहले कुछ चिंतित हो गई। फिर क्या सोचकर मुस्किराई। प्रेम की सरल बातों से उसे बड़ा आनंद हुआ। "तुम्हारा विवाह चर्च में नहीं, थिएटर में हुआ; तुमने एक नया काम किया।" उसने कनक को इसके लिये धन्यवाद दिया।

"कल पेशी है" कनक उत्तर-प्राप्ति की दृष्टि से देख रही थी।

"मेरे विचार से मिस्टर हैमिल्टन के पास इस समय जाना ठीक नहीं। वे ऐसी हालत में बहुत बड़ा ज़ोर कुछ दे नहीं सकते। और, उन पर इस पत्र से एक दूसरा मुक़द्दमा चल सकता है। पर यह सब मुफ़्त ही दिक़्क़त बढ़ाना है। अगर आसानी से अदालत का काम हो जाय, तो इतनी परेशानी से क्या फ़ायदा?"

"आसानी से अदालत का काम कैसे?"

"तुम मकान जाओ, मैं हैमिल्टन को लेकर आती हूँ, मेरी उनकी अच्छी जान-पहचान है। ख़ूब सजकर रहना और अँगरेज़ी तरीक़े से नहीं, हिंदोस्तानी तरीक़े से।" कहकर कैथरिन हँसने लगी।

आचार्या से मुक्ति का अमोघ मंत्र मिलते ही कनक ने भी परी की तरह अपने सुख के काल्पनिक पंख फैला दिए।

कैथरिन गैरेज में अपनी गाड़ी लेने चली गई, कनक रास्ते पर टहलती रही।

कैथरिन हँसती हुई, "जल्दी जाओ" कहकर रोडन स्ट्रीट की तरफ़ चली; कनक बहूबाज़ार की तरफ़।

घर में कनक माता से मिली। सर्वेश्वरी को दारोग़ा की गिरफ़्तारी से कुछ भय था। पर कनक की बातों से उसकी शंका दूर हो गई। कनक ने माता को अच्छी तरह, थोड़े शब्दों में, समझा दिया। माता से उसने कुल ज़ेवर पहना देने के लिये कहा। सर्वेश्वरी हँसने लगी। नौकर को बुलाया। ज़ेवर का बाक्स उठवा तिमंज़िले पर कनक के कमरे को चली।

सब रंगों की रेशमी साड़ियाँ थीं। कनक के स्वर्ण-रंग को दोपहर की आभा में कौन-सा रंग ज़्यादा खिल सकता है, सर्वेश्वरी इसकी जाँच कर रही थी। उसकी देह से सटा-सटाकर उसकी और साड़ियों की चमक देखती थी। उसे हरे रंग की साड़ी पसंद आई। पूछा—"बता सकती हो, इस समय यह रंग क्यों अच्छा होगा?"

"ऊहूँ" कनक प्रश्न और कौतुक की नज़र से देखने लगी।

"तेज़ धूप में हरे रंग पर नज़र ज़्यादा बैठती है, उसे आराम मिलता है।"

उस बेशक़ीमत कामदार साड़ी को निकालकर रख लिया। कनक नहाने चली गई।

माता एक-एक सब बहुमूल्य, हीरे-पन्ने-पुखराज के जड़ाऊ ज़ेवर निकाल रही थी; कनक नहाकर धूप में खड़ी चारदीवार के सहारे, पीठ के बल खड़ी, बाहर बालों को खोले हुए सुखा रही थी। मन राजकुमार के साथ अभिनय के सुख की कल्पना में लीन था। वह अभिनय को प्रत्यक्ष की तरह देख रही थी, उन्होंने कहा है, सोचती, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूँगा। अमृत से सर्वांग तर हो रहा था। बाल सूख गए, वह खड़ी ही रही।

माता ने बुलाया। ऊँची आवाज़ से कल्पना की तंद्रा छूट गई। वह धीरे-धीरे माता के पास चली।

सर्वेश्वरी कन्या को सजाने लगी। पैर, कमर, कलाई, बाज़ू, वक्ष, गला और मस्तक अलंकारों से चमक उठे। हरी साड़ी के ऊपर तथा भीतर से रत्नों के प्रकाश की छटा, छुरियों-सी निकलती हुई, किरणों के बीच उसका सुंदर, सुडौल चित्र-सा खिंचा हुआ मुख, एक नज़र आपाद-मस्तक देखकर माता ने तृप्ति की साँस ली।

कनक एक बड़े आईने के सामने जाकर खड़ी हो गई। देखा, राजकुमार की याद आई, कल्पना में दोनों की आत्माएँ मिल गईं; देखा, आईने में वह हँस रही थी।

नीचे से आकर नौकर ने ख़बर दी, मेम साहब के साथ एक साहब आए हुए हैं।

कनक ने ले आने के लिये कहा।

कैथरिन ने हैमिल्टन साहब से कहा था कि उन्हें ऐसी एक सुंदरी भारतीय पढ़ी-लिखी युवती दिखाएँगी, जैसी उन्होंने शायद ही कहीं देखी हो, और वह गाती भी लाजवाब है, और अँगरेज़ों की ही तरह उसी लहजे में अँगरेज़ी भी बोलती है।

हैमिल्टन साहब, कुछ दिल से और कुछ पुलिस में रहने के कारण, सौंदर्योपासक बन गए थे। इतनी ख़ूबसूरत पढ़ी-लिखी समझदार युवती से, बिना परिश्रम के ही, कैथरिन उन्हें मिला सकती हैं, ऐसा शुभ अवसर छोड़ देना उन्होंने किसी सुंदरी के स्वयंवर में बुलाए जाने पर भी लौट आना समझा। कैथरिन ने यह भी कहा था कि आज अवकाश है, दूसरे दिन इतनी सुगमता से भेंट भी नहीं हो सकती। साहब तत्काल कैथरिन के साथ चल दिए थे। रास्ते में कैथरिन ने समझा दिया था कि किसी अशिष्ट व्यवहार से वह अँगरेज़ जाति को कलंकित नहीं करेंगे, और यदि उसे अपने प्रेम में ला सकें, तो यह जाति के लिये गौरव की बात होगी। साहब दिल-ही-दिल प्रेम की परीक्षा में कैसे उत्तीर्ण होंगे, इसका प्रश्न-पत्र हल कर रहे थे। तब तक ऊपर से कनक ने बुला भेजा।

कैथरिन आगे-आगे, साहब पीछे-पीछे चले। साहब भी मर्दानी पोशाक से ख़ूब लैस थे। चलते समय चमड़े के कलाई-बंद में बँधी हुई घड़ी देखी। बारह बज रहे थे।

नौकर दोनों को तिमंज़िले पर ले गया। मकान देखकर साहब के दिल में अदेख सुंदरी के प्रति इज़्ज़त पैदा हुई थी, कमरा देखकर साहब आश्चर्य में पड़ गए। सुंदरी को देखकर साहब के होश उड़ गए। दिल में कुछ घबराहट हुई। पर कैथरिन कनक से बातचीत करने लगी, तो कुछ सँभल गए। सामने दो कुर्सियाँ पड़ी थीं। कैथरिन और साहब बैठ गए। यों दूसरे दिन उठकर कनक कैथरिनि मिलती थी,

पर आज वह बैठी ही रही। कैथरिन इसका कारण समझ गई। साहब ने इसे हिंदोस्तानी कुमारियों का ढंग समझा। कनक ने सूरत से साहब को पहचान लिया। पर साहब उसे नहीं पहचान सके। तब से इस सूरत में साज के कारण बड़ा फ़र्क था।

साहब अनिमेष आँखों से उस रूप की सुधा पीते रहे। मन-ही-मन उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। उसके लिये, यदि वह कहे तो, साहब सर्वस्व देने को तैयार हो गए। श्रीमती कैथरिन ने साहब को समझा दिया था कि उसके कई अँगरेज़ प्रेमी हैं, पर अभी उसका किसी पर प्यार नहीं हुआ, यदि वे उसे प्राप्त कर सकें, तो राजकन्या के साथ ही राज्य भी उन्हें मिल जायगा; कारण, उसकी मा की जायदाद पर उसी का अधिकार है।

कैथरिन ने कहा—"मिस, एक गाना सुनाओ, ये मि० हैमिल्टन पुलिस सुपरिंटेंडेंट, २४ परगना, हैं, तुमसे मिलने के लिये आए हैं।"

कनक ने उठकर हाथ मिलाया। साहब उसकी सभ्यता से बहुत प्रसन्न हुए।

कनक ने कहा—"हम लोग पृथक्-पृथक् आसन से वार्तालाप करेंगे, इससे आलाप का सुख नहीं मिल सकता। साहब अगर पतलून उतार डालें, मैं उन्हें धोती दे सकती हूँ, तो संग-सुख की प्राप्ति पूरी मात्रा में हो। कुर्सी पर बैठकर पियानो, टेब्ल हार-मोनियम बजाए जा सकते हैं, पर आप लोग यहाँ हिंदोस्तानी गीत ही सुनने के लिये आए हैं, जो सितार और सुर-बहार से अच्छी तरह अदा होंगे, और उनका बजाना बराबर ज़मीन पर बैठकर ही हो सकता है।"

कनक ने अँगरेज़ी में कहा। कैथरिन ने साहब की तरफ़ देखा।

नायिका के प्रस्ताव के अनुसार ही उसे ख़ुश करना चाहिए, साहब ने अपने साहबी ढर्रे से समझा, और उन्हें वहाँ दूसरे प्रेमियों से बढ़कर भी अपने प्रेम की परीक्षा देनी थी। उधर कैथरिन की मौन चितवन का मतलब भी उन्होंने यही समझा।

साहब तैयार हो गए। कनक ने एक धुली ४८ इंच की बढ़िया धोती मँगा दी। साहब को कैथरिन ने धोती पहनना बतला दिया। दूसरे कमरे से साहब धोती पहन आए, और कनक के बराबर, गद्दी पर, बैठ गए, एक तकिए का सहारा कर लिया।

कनक ने सुर-बहार मँगवा लिया। तार स्वर से मिलाकर पहले एक गत बजाई। स्वर की मधुरता के साथ-साथ साहब के मन में उस परी को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा भी दृढ़ होती गई। कैथरिन ने बड़े स्नेह से पूछा—"यह किससे सीखा?—अपनी मा से?"

"जी हाँ।" कनक ने सिर झुका लिया।

"अब एक गाना गाओ, हिंदोस्तानी गाना; फिर हम जायँगे, हमको देर हो रही है।"

कनक ने एक बार स्वरों पर हाथ फेर लिया। फिर गाने लगी—

गाना

(सारंग)

याद रखना, इतनी ही बात।
नहीं चाहते, मत चाहो तुम,
मेरे अर्घ्य-सुमन-दल नाथ।
मेरे वन में भ्रमण करोगे जब तुम,
अपना पथ-श्रम आप हरोगे जब तुम,
ढक लूँगी मैं अपने दृग-मुख,
छिपा रहूँगी गात—
याद रखना, इतनी ही बात।
सरिता के उस नीरव निर्जन तट पर,
आओगे जब मंद चरण तुम चलकर,
मेरे शून्य घाट के प्रति करुणाकर,
हेरोगे नित प्रात—
याद रखना, इतनी ही बात।
मेरे पथ की हरित लताएँ, तृण-दल
मेरे श्रम-सिंचित, देखोगे, अचपल
पलकहीन नयनों से तुमको प्रतिपल
हेरेंगे अज्ञात—
याद रखना, इतनी ही बात।

मैं न रहूँगी जब, सूना होगा जग,
समझोगे तब यह मंगल-कलरव सब,
था मेरे ही स्वर से सुंदर जगमग ;
चला गया सब साथ—
याद रखना इतनी ही बात ।

साहब एकटक मन की आँखों से देखते, हृदय के कानों से सुनते रहे। उस स्वर की सरिता अनेक तरंग-भंगों से बहती हुई जिस समुद्र से मिली थी, वहाँ तक सभी यात्राएँ पर्यवसित हो जाती थीं।

श्रीमती कैथरिन ने पूछा—"कुछ आपकी समझ में आया ?" साहब ने अनजान की तरह सिर हिलाया, कहा—"इनका स्वरों से खेलना मुझे बहुत पसंद आया। पर मैं गाने का मतलब नहीं समझ सका।"

कैथरिन ने मतलब थोड़े शब्दों में समझा दिया।

"हिंदोस्तानी भाषा में ऐसे भी गाने हैं ?" साहब तअज्जुब करने लगे।

कनक को साहब देख रहा था, उसकी मुद्राएँ, भंगिमाएँ, गाने के समय, इस तरह अपने मनोभावों को व्यंजित कर रही थीं, जैसे वह स्वर के स्रोत में बहती हुई, प्रकाश के द्वार पर आ गई हो, और अपने प्रियतम से कुछ कह रही हो, जैसे अपने प्रियतम को अपना सर्वस्व पुरस्कार दे रही हो। संगीत के लिये कैथरिन ने कनक को धन्यवाद दिया, और साहब को अपने चलने का संवाद ; साथ ही उन्हें समझा दिया कि उनकी इच्छा हो, तो कुछ देर वह वहाँ ठहर सकते हैं। कनक ने सुर-बहार एक बग़ल रख दिया। एकांत की प्रिय कल्पना से, अभीप्सित की प्राप्ति के लोभ से साहब ने कहा—"अच्छा, आप चलें, मैं कुछ देर बाद आऊँगा।"

कैथरिन चली गई। साहब को एकांत मिला। कनक बातचीत करने लगी।

साहब कनक पर कुछ अपना भी प्रभाव जतलाना चाहते थे, और दैवात् कनक ने प्रसंग भी वैसा ही छेड़ दिया, "देखिए, हम हिंदोस्तानी हैं, प्रेम की बातें हिंदी में कीजिए। आप २४ परगने के पुलिस-सुपरिंटेंडेंट हैं।"

"हाँ।" ठोढ़ी ऊँची करके साहब से जहाँ तक तनते बना, तन गए।

"आपकी शादी तो हो गई होगी ?"

साहब की शादी हो गई थी। पर मेम साहब को कुछ दिन बाद आप पसंद नहीं आए, इसलिये इनके भारत आने से पहले ही वह इन्हें तलाक़ दे चुकी थीं, एक साधारण से कारण को बहुत बढ़ाकर, पर यहाँ साहब साफ़ इनकार कर गए, और इसे ही उन्होंने प्रेम बढ़ाने का उपाय समझा।

"अच्छा, अब तक आप अविवाहित हैं ? आपसे किसी का प्रेम नहीं हुआ ?"

"हमको अभी टक कोई पसंड नईं आया ! हम टुमको पसंड करटा है।" साहब कुछ नज़दीक खिसक गए।

कनक डरी। उपाय एक ही उसने आज़माया था, और उसी का उपयोग वह साहब के लिये भी कर बैठी।

"शराब पीजिएगा ? हमारे यहाँ शराब पिलाने की चाल है।"

साहब पीछे क़दम रखनेवाले न थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। कनक ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

नौकर से शराब और सोडावाटर मँगवा लिया।

"तो अब तक किसी को नहीं प्यार किया ?—सच कहिएगा।"

"हम सच बोलटा, किसी को नहीं।"

साहब को तैयार कर एक ग्लास में उसी तरह दिया। साहब बड़े अदब से पी गए। दूसरा, तीसरा, चौथा। पाँचवें ग्लास पर इनकार कर गए। अधिक शराब जल्दी में पी जाने से नशा बहुत तेज़ होता है। यह कनक जानती थी। इसीलिये वह फ़ुर्ती कर रही थी। उधर साहब को भी अपनी शराब-पाचन-शक्ति का परिचय देना था, साथ ही अपने अकृत्रिम प्रेम की परीक्षा।

कनक ने सोचा, भूत-सिद्धि की तरह, हमेशा भूत

को एक काम देते रहना चाहिए। नहीं तो, कहा गया है, वह अपने साधक पर ही सवारी कस बैठता है।

कनक ने तुरंत फ़र्माया--"कुछ गाओ और नाचो, मैं तुम्हारा नाच देखना चाहती हूँ।"

"टब टुमबी आओ ; हियाँ डांसिंग-स्टेज कहाँ ?"

"यहीं नाचो, मुझे नाचना नहीं आता, मैं तो सिर्फ़ गाती हूँ।"

"अच्छा, टुम बोलटा, तो हम नाच सकटा।"

साहब अपनी भोंपू-आवाज़ में गाने और नाचने लगे। कनक देख-देखकर हँस रही थी। कभी-कभी साहब का उत्साह बढ़ाती—बहुत अच्छा हो रहा है।

साहब की नज़र पिआनो पर पड़ी। कहा—"डेखो, आबी हम पिआनो बजाटा, फिर टुम कहेगा, टो हम नाचेगा।"

"अच्छा बजाओ।"

साहब पिआनो बजाने लगे। कनक ने तब तक अँगरेज़ी गीतों का अभ्यास नहीं किया था। उसे, कविता के यतिभंग की तरह, सब स्वरों का सम्मिलित विद्रोह असह्य हो गया। उसने कहा--"साहब, हमें तुम्हारा नाचना गाने से ज़्यादा पसंद है।"

साहब अब तक औचित्य की रेखा पार कर चुके थे। आँखें लाल हो रही थीं। प्रेमिका को नाच पसंद है, सुनकर बहुत ही ख़ुश हुए, और शीघ्र ही उसे प्रसन्न कर वर प्राप्त कर लेने की लालसा से नाचने लगे।

नौकर ने बाहर से संकेत किया। कनक उठ गई। नौकर को इशारे से आदेश दे लौट आई।

धड़-धड़-धड़, कई आदमी ज़ीने पर चढ़ रहे थे। आगंतुक बिल्कुल कमरे के सामने आ गए। हैमिल्टन को नाचते हुए देख लिया। हैमिल्टन ने भी देखा, पर उस दूसरे की परवा न की, नाचते ही रहे।

"ओ! टुम दूसरे हो, रॉबिंसन।" हैमिल्टन ने पुकारकर कहा।

"नहीं, मैं चौथा हूँ" रॉबिंसन ने बढ़ते हुए जवाब दिया।

तितलियों-सी मूछें, लंबे, तगड़े रॉबिन्सन साहब मैजिस्ट्रेट थे। कैथरिन के पीछे कमरे के भीतर चले गए। कई और आदमी साथ थे। कुर्सियाँ ख़ाली थीं, बैठ गए। कैथरिन ने कनक से रॉबिंसन साहब से हाथ मिलाने के लिये कहा। कहा—"यह मैजिस्ट्रेट हैं, तुम अपना कुल क़िस्सा इनसे बयान कर दो।"

हैमिल्टन को धोती पहने नाचता हुआ देख रॉबिंसन बारूद हो गए थे। कनक ने हैमिल्टन की जेब से निकाली हुई चिट्ठी साहब को दे दी। पहले ही आग में पेट्रोल पड़ गया। कनक कहने लगी—"एक दिन मैं इडन गार्डेन में तालाब के किनारेवाली बेंच पर अकेली बैठी थी। हैमिल्टन ने मुझे पकड़ लिया, और मुझे जैसे अशिष्ट शब्द कहे, मैं कह नहीं सकती। उसी समय एक युवक वहाँ पहुँच गया। उसने मुझे बचाया। हैमिल्टन उससे बिगड़ गया, और उसे मारने के लिये तैयार हो गया। दोनो में कुछ देर हाथापाई होती रही। उस युवक ने हैमिल्टन को गिरा दिया, और कुछ रद्दे जमाए, जिससे हैमिल्टन बेहोश हो गया। तब उस युवक ने अपने रूमाल से हैमिल्टन का मुँह धो दिया, और सिर में उसी की पट्टी लपेट दी। फिर उसने एक चिट्ठी लिखी, और इनकी जेब में डाल दी। मुझसे जाने के लिये कहा। मैंने उससे पता पूछा। पर उसने नहीं बतलाया। वह हाईकोर्ट की राह चला गया। अपने बचानेवाले का पता मालूम कर लेना मैंने अपना फ़र्ज़ समझा। इसलिये वहीं फिर लौट गई। चिट्ठी निकालने के लिये जेब में हाथ डाला। पर भ्रम से युवक की चिट्ठी की जगह यह चिट्ठी मिली। एकाएक कोहनूर-स्टेज पर मैं शकुंतला का अभिनय करने गई। देखा, वही युवक दुष्यंत बना था। थोड़ी ही देर में दारोग़ा सुंदरसिंह उसे गिरफ़्तार करने गया, पर दर्शक बिगड़ गए थे। इसलिये अभिनय समाप्त हो जाने पर गिरफ़्तार किया। राजकुमार का क़ुसूर कुछ नहीं, अगर है, तो सिर्फ़ यही कि उसने मुझे बचाया था।"

अक्षर-अक्षर साहब पर चोट कर रहे थे। कनक ने

कहा—"और देखिए, यह हैमिल्टन के चरित्र का दूसरा पत्र।"

कनक ने दारोग़ा की जेब से निकाला हुआ दूसरा पत्र भी साहब को दिखाया। इसमें हैमिल्टन के मित्र, सुपरिंटेंडेंट मिस्टर मूर ने दारोग़ा को बिला वजह राजकुमार को गिरफ़्तार कर बदमाशी के सुबूत दिलाकर सज़ा करा देने के लिये लिखा था। उसमें यह भी लिखा था कि इस काम से तुम्हारे ऊपर हम और हैमिल्टन साहब बहुत ख़ुश होंगे।

मैजिस्ट्रेट रॉबिंसन ने उस पत्र को भी ले लिया। पढ़कर दोनो की तिथियाँ मिलाईं। सोचा। कनक की बातें बिल्कुल सच जान पड़ीं। रॉबिंसन कनक से बहुत ख़ुश हुए।

कनक ने उभड़कर कहा—"वह दारोग़ा साहब भी यहीं तशरीफ़ रखते हैं। आपको तकलीफ़ होगी। चलकर आप उनके भी उत्तम चरित्र के प्रमाण ले सकते हैं।"

रॉबिंसन तैयार हो गए। हैमिल्टन को साथ चलने के लिये कहा। कनक आगे-आगे नीचे उतरने लगी। सुंदरसिंह के कमरे की ताली नौकर को दी, और कुछ दरवाज़े खोल देने के लिये कहा। सब दरवाज़े खोल दिए गए। भीतर सब लोग एक साथ घुस गए। दारोग़ा साहब करवट बदल रहे थे। रॉबिंसन ने एक की छड़ी लेकर खोद दिया। तब तक नशे में कुछ उतारा आ गया था। पर फिर भी वे सँभलने लायक़ नहीं थे। रॉबिन्सन ने डाँटकर पुकारा। साहबी आवाज़ से वह घबराकर उठ बैठे। कई आदमियों और अँगरेज़ों को सामने खड़ा हुआ देख चौंककर खड़े हो गए। पर सँभलने की ताब न थी। काटे हुए पेड़ की तरह वहीं ढेर हो गए। होश दुरुस्त थे। पर शक्ति नहीं थी। दारोग़ा साहब फूट-फूटकर रोने लगे।

"साहब खड़े हैं, और आप लेटे रहिएगा?" कनक के नौकर खोद-खोदकर दारोग़ा साहब को उठाने लगे। एक ने बाँह पकड़कर खड़ा कर दिया। उन्हें विवश देख रॉबिंसन दूसरे कमरे की तरफ़ चल दिए, कहा—"इसको पड़ा रहने दो, हम समझ गया।"

यह वही कमरा था, जहाँ कनक पढ़ा करती थी। पुस्तकों पर नज़र गई; रॉबिंसन खोलकर देखने के लिये उत्सुक हो गए। नौकर ने आलमारियों की ताली खोल दी। साहब ने कई पुस्तकें निकालीं, उलट-पुलटकर देखते रहे। इज़्ज़त की निगाह से कनक को देखकर अँगरेज़ी में कहा—"अच्छा मिस," कनक मुस्किराई, "तुम क्या चाहती हो?"

"सिर्फ़ इंसाफ़।" कनक ने मँजे स्वर से कहा।

साहब सोचते रहे। निगाह उठाकर पूछा—"क्या तुम इन लोगों पर मुक़द्दमा चलाना चाहती हो?"

'नहीं।"

साहब कनक को देखते रहे। आँखों में तअज्जुब और सम्मान था। पूछा—"फिर कैसा इंसाफ़?"

"राजकुमार को बिला वजह के तकलीफ़ दी जा रही है, वह छोड़ दिए जायँ।" कनक की पलकें झुक गईं।

साहब कैथरिन को देखकर हँसने लगे। कहा—"हम कल ही छोड़ देगा। तुमसे हम बहुत ख़ुश हुआ है।"

कनक चुपचाप खड़ी रही।

"तुम्हारी पतलून क्या हुई मिस्टर हैमिल्टन?" हैमिल्टन को घृणा से देखकर साहब ने पूछा।

अब तक हैमिल्टन को होश ही नहीं था कि वह धोती पहने हुए हैं। नशा इस समय भी पूरी मात्रा में था। जब एकाएक यह मुक़द्दमा पेश हो गया, तब उनके दिल से प्रेम का मनोहर स्वप्न सूर्य के प्रकाश से कटते हुए अंधकार की तरह दूर हो गया। एकाएक चोट खाकर नशे में होते हुए भी वह होश में आ गए थे। कोई उपाय न था, इसलिये मन-ही-मन पश्चात्ताप करते हुए यंत्र की तरह रॉबिंसन के पीछे-पीछे चल रहे थे। मुक़द्दमे के चक्कर से बचने के अनेक प्रकार के उपायों का आविष्कार करते हुए वे अपनी हालत को भूल ही गए थे। अब पतलून की जगह धोती होने से, और वह भी एक दूसरे अँगरेज़ के सामने, उन्हें कनक पर बड़ा ग़ुस्सा आया। मन में बहुत ही

लुब्ध हुए। अब तक वीर की तरह सज़ा के लिये तैयार थे, पर अब लज्जा से आँखें झुक गईं।

एक नौकर ने पतलून लाकर दिया। बग़ल के एक दूसरे कमरे में साहब ने पहन लिया।

कनक को धैर्य देकर रॉबिसन चलने लगे। हैमिल्टन और दारोग़ा को शीघ्र निकाल देने के लिये एक नौकर से कहा।

कनक ने कहा—"ये लोग शायद अकेले मकान तक नहीं जा सकेंगे। आप कहें, तो मैं ड्राइवर से कह दूँ, इनको छोड़ आवे।"

रॉबिसन ने सर झुका लिया, जैसे इस तरह अपना अदब ज़ाहिर किया हो। फिर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। कैथरिन से उन्होंने धीमे शब्दों में कुछ कहा, नीचे उसे अलग बुलाकर। फिर अपनी मोटर पर बैठ गए।

कनक ने अपनी मोटर से हैमिल्टन और दारोग़ा को उनके स्थान पर पहुँचवा दिया ❀।

[क्रमशः

❀ यह उपन्यास आगामी तीन संख्याओं में समाप्त हो जायगा।—संपादक

लखनऊ-विश्वविद्यालय

[श्रीपृथ्वीपालसिंह बी० ए०]



कास का युग था। देश-भर में उथल-पुथल मची हुई थी, चारो ओर विभिन्न आंदोलनों की सृष्टि हो रही थी। लखनऊ अपनी पुरानी रफ़्तार से चला जा रहा था। इस सुंदर सलोने रम्य नगर में कई छोटे-छोटे स्कूल थे और दो-तीन छोटे-छोटे कॉलेज भी।

संक्षिप्त इतिहास

एक दिन की बात है, हमारे सुप्रसिद्ध महाराज महमूदाबाद साहब के हृदय में सहसा एक विचार उठा। आपने लखनऊ को शिक्षा का एक बड़ा केंद्र बनाने का विचार किया। विश्वविद्यालय स्थापित करने की लगन आपके हृदय में पैदा होने की देरी थी कि आंदोलन प्रारंभ हो गया। आपने प्रयाग के सुप्रसिद्ध दैनिक 'पायोनियर' में इसी आशय का एक लेख भी छपवाया। दैवयोग से इसी समय सर हारकोर्ट बटलर महोदय इस प्रांत के गवर्नर होकर आ गए। कहते हैं, आपका मिज़ाज बचपन ही से आशिक़ाना था। लखनऊ की काट-छाँट और मनमोहनी बनावट देखकर आप मुग्ध हो गए। उसी घड़ी से आप लखनऊ से प्रेम करने लगे। कुछ ही काल में लखनऊ को सर हारकोर्ट बटलर ने चमन बना दिया, और अपने हाथों सींची फुलवाड़ी के बीच अपने स्मृति-स्वरूप एक विश्वविद्यालय भी स्थापित कर गए।

❀ ❀ ❀

१० नवंबर, १९१९ को लखनऊ-गवर्नमेंट-हाउस में इस प्रांत के प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी विद्वान् इकट्ठा हुए, और उन्होंने लखनऊ में, १९१७ के 'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-कमीशन' के बताए हुए ढंग पर, एक 'स्थानीय विश्व-



श्रीपृथ्वीपालसिंह बी० ए० ❀

❀ चिरंजीव पृथ्वीपालसिंह से 'सुधा' के पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। आप हिंदी के बड़े ही होनहार लेखक हैं। आपके लेख 'सुधा' में निकलते रहते हैं। १९२९ ई० में कॉलेज-होस्टेल की एक प्रतियोगिता में आप प्रथम हुए और रजत 'ट्राफ़ी' तथा पदक से पुरस्कृत किए गए। इसी तरह लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिंदी-संस्कृत-विभाग की एक वाक्-प्रतियोगिता में भी आपने प्रथम पुरस्कार (स्वर्ण-पदक) प्राप्त किया। आप लखनऊ-विश्वविद्यालय की ज्ञानवर्द्धिनी सभा के भूतपूर्व मंत्री हैं, और लखनऊ-युनिवर्सिटी-जर्नल, हिंदी-विभाग के संपादक। आशा है, आप दत्तचित्त होकर हिंदी की सेवा करते रहेंगे। हम आपकी उन्नति के इच्छुक हैं। —सुधा-संपादक

विद्यालय' (Residential University) स्थापित करने का प्रस्ताव पास कर दिया।

उस समय प्रांत के 'डाइरेक्टर ऑफ़् पब्लिक इंस्ट्रक्शन' (Director of Public Instruction) थे श्रीयुत महाशय सी० एफ़्० डेलाफ़ोस। उन्होंने १२ अगस्त, १९२० को लखनऊ-विश्वविद्यालय-स्थापन-संबंधी प्रस्ताव प्रांतीय व्यवस्थापिका-सभा में पेश किया। प्रस्ताव ८ ऑक्टोबर, १९२० को पास हो गया, और १९ नवंबर को गवर्नर जनरल के उ... र हस्ताक्षर भी हो गए।

१७ जुलाई, १९२१ से लखनऊ-विश्वविद्यालय ने कला, विज्ञान, व्यापार आदि विभागों में शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया। १ जुलाई, १९२२ को कैनिंग कॉलेज तथा १ मार्च, १९२२ को मेडिकल कॉलेज और चिकित्सालय (King George's Medical College & King George's Hospital) प्रांतीय सरकार ने विश्वविद्यालय के सिपुर्द कर दिए।

लखनऊ-विश्वविद्यालय ने अपने जन्म-दिवस के उपलक्ष में बड़े बहुमूल्य उपहार पाए। कैनिंग कॉलेज और मेडिकल कॉलेज सरकार ने भेंट किए। ताल्लुक़ेदारों ने विश्वविद्यालय को तीस लाख के लगभग रुपया प्रदान किया। महाराजा महमूदाबाद ने अकेले ही एक लाख की थैली भेंट की।

सचमुच लखनऊ-विश्वविद्यालय के जन्म और स्थापन का सारा श्रेय श्रीऑनरेबुल महाराजा सर मोहम्मद-अली मोहम्मदख़ाँ के० सी० आई० ई० आदि तथा सर हारकोर्ट बटलर के० सी० आई० ई०, के० सी० एस्० आई० को ही प्राप्त है।

७ जनवरी, १९२४ को सर आशुतोष मुकर्जी ने सर हारकोर्ट बटलर की मूर्ति उद्घाटन करते हुए कहा था—

"........I maintain that he (Sir Harcourt Butler) has created a record which it will be difficult to beat. But when all is said and done I do not hesitate to maintain that ever if the public services of Sir Harcourt Butler should fade away from the memory of the people of this country still his greatest achievement will be the foundation of the Lucknow University."

'मैं दावे के साथ कहता हूँ कि उन्होंने (श्रीमान् हारकोर्ट बटलर ने) जो कार्य संपन्न किया है, उसका उन्मूलन करना अति दुष्कर ही नहीं, वरन् असंभव होगा। किंतु यदि यह भी मान लिया जाय कि श्रीमान् बटलर महोदय के सर्व सार्वजनिक कार्यों की स्मृति जनता के हृदय-पटल से कभी मिट जायगी, तो भी मुझे दृढ़ विश्वास है कि लखनऊ-विश्वविद्यालय की स्थापना का सेहरा सदैव उनके सिर पर ही बाँधा जायगा।"

❀ ❀ ❀

लखनऊ-विश्वविद्यालय की आधार-शिला बटलर महोदय ने ही रक्खी थी। इस विश्वविद्यालय का सबसे पहला उपाधि-वितरण-महोत्सव ३० ऑक्टोबर,



सर हारकोर्ट बटलर के० सी० आई० ई०, के० सी० एस्० आई०

(लखनऊ-विश्वविद्यालय के जन्मदाता तथा प्रथम कुलपति)

१९२२ को हुआ था। लखनऊ-विश्वविद्यालय के जन्म दाता तथा विश्वविद्यालय के सर्वप्रथम कुलपति श्रीसर हारकोर्ट बटलर को विश्वविद्यालय ने इस अवसर पर 'डॉक्टर ऑफ़् लेटर्स' (Doctor of Letters) की उपाधि से सम्मानित किया था। कर्मवीर बटलर का लगाया वृक्ष आज हरा-भरा और पल्लवित हो रहा है।

लखनऊ-विश्वविद्यालय के अंतर्गत दो कॉलेज हैं—

सांकेतिक विवरण

एक तो सुप्रसिद्ध 'किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज' और दूसरा 'कैनिंग-कॉलेज'। चिकित्सा-विभाग के विद्यार्थियों के लिये मेडिकल कॉलेज है, तथा अन्य विभागों के छात्रों के लिये कैनिंग कॉलेज; पास ही में देवियों के लिये 'आइसोबेला थोबर्न-कॉलेज' है। लखनऊ-विश्वविद्यालय 'स्थानीय विश्वविद्यालय' (Residential University) है। अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिये बँगले और छात्रालय युनिवर्सिटी की सीमा के अंदर ही बने हैं। लगभग तीस बँगले इस समय तक बन चुके हैं। प्रोफ़ेसरों को इन बँगलों का ख़ासा किराया देना पड़ता है। छात्रालयों के निरीक्षक, कॉलेज के अधिष्ठाता आदि इस दंड से मुक्त हैं।

सन् १९२८ की लखनऊ-विश्वविद्यालय की रिपोर्ट से पता चलता है कि उस वर्ष मेडिकल कॉलेज में २७० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। उनमें से २१८ विद्यार्थी छात्रालयों में रहते थे, शेष अपने माता-पिता और संबंधियों के साथ नगर में। इसी तरह कला (Arts), विज्ञान (Science) और व्यापार (Commerce)-विभाग में कुल मिलाकर ८८४ छात्र थे, और केवल क़ानून-विभाग (Faculty of Law) में ३७७। इनमें से ४१४ छात्र छात्रालयों में रहते थे। आइसोबेला थोबर्न कॉलेज की ३६ देवियाँ भी छात्रालय में ही निवास करती थीं। प्रत्येक वर्ष विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जाती है, संस्था उन्नति कर रही है।

यद्यपि यह 'रेज़ीडेंशल युनिवर्सिटी' है, फिर भी

रहने का प्रबंध

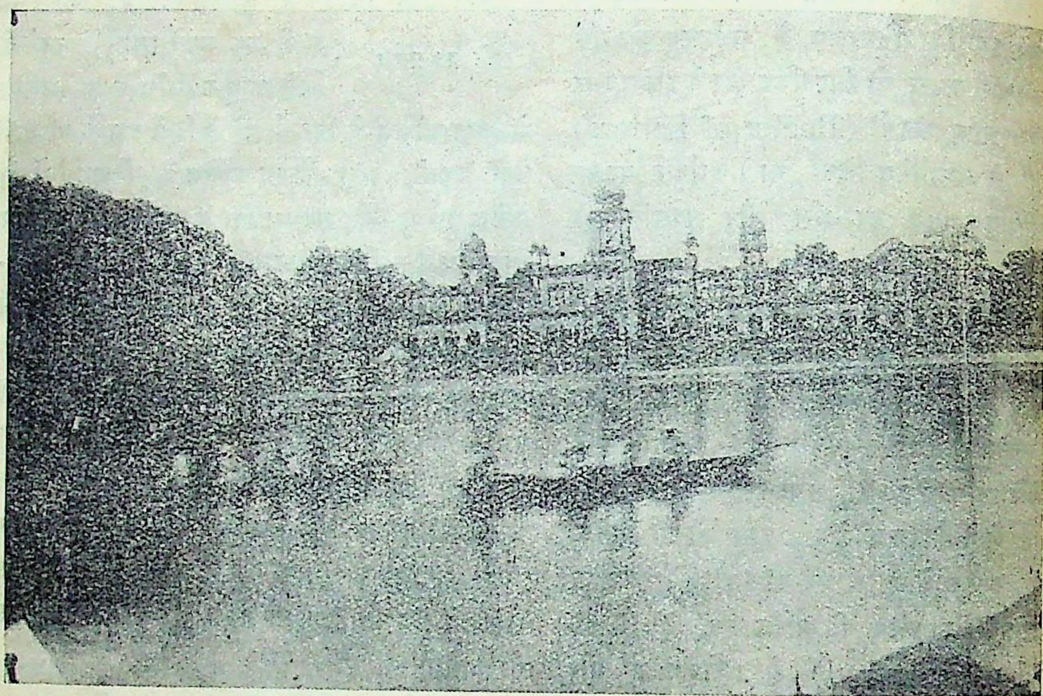
अभी तक अपने छात्रों के रहने के लिये उपयुक्त प्रबंध न कर सकी। मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों के लिये कमरों की कमी नहीं पड़ती, परंतु कैनिंग-कॉलेज के विद्यार्थियों को प्रत्येक वर्ष मुसीबत का सामना करना पड़ता है। चार छात्रालय हैं—डिवट-होस्टल, हारकोर्ट-होस्टल, मेस्टन-होस्टल तथा महमूदाबाद-होस्टल। प्रत्येक 'होस्टल' में सौ से अधिक छात्रों के रहने का प्रबंध है। छात्रों की संख्या-वृद्धि हो रही है। बेचारे इन होस्टलों में कमरे नहीं पाते; कहीं लोहे के पुल के निकटवाले 'लाल बँगले' में ठहरा दिए जाते हैं, तो कहीं किसी अन्य कोठी में। विश्वविद्यालय के अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित है। एक पाँचवाँ छात्रालय भी बनकर तैयार है। आशा है, शीघ्र ही कमरों का अकाल दूर हो जायगा।

❀ ❀ ❀

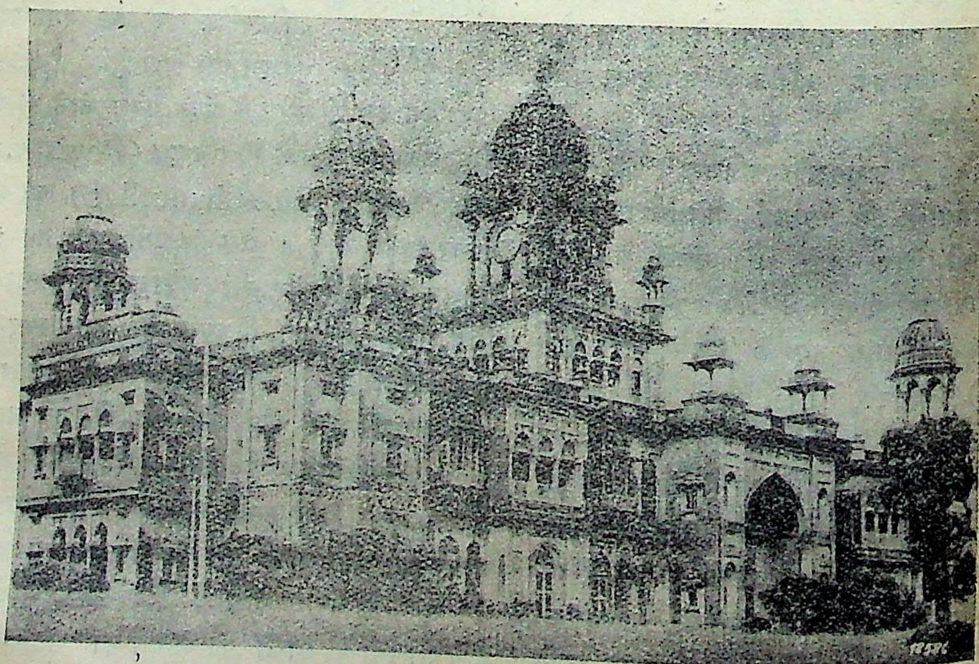
लखनऊ-विश्वविद्यालय गोमती नदी के तट पर, उस

विश्वविद्यालय का दृश्य

पार, बसा है। दूर ही से लखनऊ-विश्वविद्यालय की गगन-स्पर्शी अट्टालिका दिखाई देने लगती है। विश्वविद्यालय की सीमा के अंदर प्रवेश करते ही बाईं ओर एक इमारत मिलती है। रजिस्ट्रार (Registrar), वाइस-चैंसलर (Vice-Chancellor) आदि के दफ़्तर इसी में हैं। गेरू से पुती हुई यह क्षुद्र इमारत वाइस-चैंसलर और रजिस्ट्रार के दफ़्तर के लिये सर्वथा अयोग्य, निकम्मी और हास्यास्पद है। सच बात तो यह है कि अपने विशाल दफ़्तर को देखकर अधिकारी स्वयं ही लज्जा से गड़े जा रहे हैं। विश्वविद्यालय के पास कोई 'सेनेट हॉल' (Senate Hall) भी नहीं। उपाधि-वितरण-उत्सव सदा शामियाने के नीचे ही मनाया जाता है। सुनते हैं, बहुत शीघ्र ही इसके लिये आयोजन होने जा रहा है, लाखों की लागत का भवन बननेवाला है।



कैनिंग कॉलेज-भवन का मनोहर दृश्य



किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज-भवन



गंगा-पुस्तकमाला का पूर्णोत्सव [वसंत-पंचमी १९८६]

बाईं ओर से, बैठे हुए—१. पं० रमाशंकर मिश्र श्रीपति २. पं० भागीरथप्रसाद दीक्षित ३. पं राधेनारायण वाजपेयी ४. पं० रूपनारायण पांडेय ५. पं० दुलारेलाल भार्गव ६. प्रो० आद्यादत्त ठाकुर एम्० ए० ७. प्रो० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ८. कवि श्री 'निराला' ९. पं० उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' बी० ए० (ऑनर्स)



एक सुशिक्षित परिवार

कुमारी शीलवतीदेवी (भानजी) | कुमारी सुमित्रादेवी 'हिंदीरत्न' (पुत्री)
श्रीमती गार्गीदेवी 'हिंदीरत्न' (पुत्री) | श्रीमती दिग्विजयादेवी 'हिंदीरत्न' (धर्मपत्नी) | कुमारी सुशीलादेवी 'हिंदीरत्न' (साली)

लड़कपन में, नादानी से, हस्त-मैथुन प्रभृति प्रकृति-विरुद्ध कुकर्मों द्वारा पुंसत्व या मर्दानगी खो बैठनेवाले निराश न हों।

क्योंकि

स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्सा-चंद्रोदय सात भाग के लेखक

बाबू हरिदास वैद्य

नपुंसकता-नामर्दी, धातुक्षीणता, प्रमेह-जिरियान, स्वप्नदोष, उपदंश या गर्मी, सोज़ाक, शीघ्रपतन और वातरोगों की चिकित्सा में

सिद्धहस्त और अनुभवी हैं।

हजारों जिंदगी से मायूस रोगी, जिन्होंने अज्ञानता-वश, स्कूली लड़कों की सुहबत से, हस्त-मैथुन-मास्टरबेशन और अति-मैथुन आदि द्वारा अपनी जिंदगी खराब कर ली थी, अपनी पुंसत्व-शक्ति खो दी थी, सांसारिक सच्चा सुख भोगने के बिलकुल नाक़ाबिल हो गए थे, बाबू हरिदासजी की सुचिकित्सा से फिर से मर्द हो गए हैं। और संसारी सुख भोगते हुए सुख से जीवन यापन कर रहे हैं।

सचाईका सुबूत

आजकल विज्ञापनबाजों के चटकीले-भड़कीले विज्ञापनों के धोखे में आकर लाखों लोग ठगा चुके हैं, इसलिये उनका सच्चे लोगों पर भी विश्वास नहीं। सचाई का सुबूत यही हो सकता है कि विज्ञापनदाता जिन रोगियों को फ़ायदा पहुँचा हो, उनके प्रशंसा-पत्रों की नक़ल भी विज्ञापनों में दे दिया करें। पर प्रमेह, धातुरोग एवं नामर्दी वगैरः रोगों के रोगी अपने ऐसे रोगों के संबंध की बातें सर्वसाधारण के सामने आने में शर्म की बात और बेइज्ज़ती समझते हैं। तो भी कुछ सज्जन ऐसे भी होते हैं, जिन्हें अपने रोग की बातें प्रकाशित कराने में कोई बुराई नहीं दीखती। हमारे बुरे काम और उनके अंजामों को देखकर, अगर दूसरे लोग उनसे बचें और सुखी हों, तो इससे बढ़कर पुण्य की बात और क्या हो सकती है? जिन सज्जनों ने हमें अपने प्रशंसा-पत्र प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी है, उनमें से एक धनी-मानी, मध्यप्रदेश के मालगुज़ार बाबू कन्हैयालालजी पँवार महोदय के पत्रों का सारांश यहाँ प्रकाशित करते हैं। उन्होंने हमें ऐसा करने की आज्ञा दे दी है।

ध्यान रहे

सभी रोगियों का पत्र-व्यवहार गुप्त रक्खा जाता है। इस नियम का पालन कड़ाई से किया जाता है। अधिकांश बंद लिफ़ाफ़े की चिट्ठियाँ स्वयं बाबू हरिदासजी देखते हैं, चाहे विलंब क्यों न हो जावे, क्योंकि बुढ़ापे के कारण उनकी शक्ति दिन-पर-दिन घटती जाती है। जिनका उनपर दृढ़ विश्वास और श्रद्धा है, वे अधीर भी नहीं होते और चिढ़ते भी नहीं।

लीजिए, देखिए--

बाबू कन्हैयालाल साहब पँवार, मालगुज़ार मौज़ा पिंडरई (Pindrai) पोस्ट खवासा, जिला सिवनी-छपारा क्या लिखते हैं—

मैं नीचे की चंद लाइनें ईश्वर को साक्षी करके शपथपूर्वक लिखता हूँ। उद्देश्य यही है कि मेरे अन्य भाई मेरी तरह खड्डे में गिरने और जीवन नाश करने से बचें और जो गिर पड़े हों, वे बाबू हरिदासजी से इलाज कराकर निरोग, निर्दोष और तंदुरुस्त हों।

मैंने अज्ञानावस्था में, मुष्टि-मैथुन (हस्त-मैथुन) द्वारा अपना सत्यानाश आप कर लिया था। जब कि शरीर की वृद्धि और विकाश का समय था। मैंने अप्राकृतिक कुकर्मों द्वारा उसकी वृद्धि और विकाश में बाधा डाली और उसे बेकाम बना लिया। मेरा सब कुछ खो गया था, कुछ भी बाक़ी नहीं था। मुझे एक-एक रात में तीन-तीन बार स्वप्न-दोष होते थे, हर बार पेशाब के साथ सफ़ेद-सफ़ेद धातु गिरती थी। शरीर पीलिएवाले की तरह पीला हो गया था। कोई काम करने की ताक़त न रहती थी। सच्चे संसारी सुख के लिये तो रोता और तरसता था। मैं अपनी ज़िंदगी से आरी और सब तरह से निराश था। पर मेरे भाग्य में संसार का सुख बदा था, इसलिये मेरी तक़दीर ने ज़ोर खाया। बाबू साहब की लिखी चिकित्सा-चंद्रोदय मेरी नज़र आई। ईश्वर की कृपा से, मेरा बाबू साहब से पत्र-व्यवहार हुआ। आपके पहले ही पत्र से, आपके प्रति, मेरे हृदय में अखंड श्रद्धा और विश्वास का उदय हुआ।

मैंने बाबू साहब के पास २००) दो सौ रुपए के दो नोट और अपने रोग का पूरा विवरण लिख भेजा। आपने मुझे समय-समय पर अनेक दवाइयाँ दीं। मैंने उन्हें विधिवत् पथ्यापथ्य का ध्यान रखकर सेवन किया। शुरू से ही दवाओं ने फ़ायदा दिखाना शुरू किया और अंत में ८। १० महीने दवा सेवन करके मैं सब तरह से निरोग और सुखी हो गया। पहले स्वप्न-दोष बंद हुए। धातु का पेशाब के आगे गिरना रुका। चंदनादि तेल की मालिश से शरीर लाल हो गया और कुंदन की तरह दमकने लगा। शरीर में शक्ति का स्रोत उमड़ने लगा। आनंद-वर्द्धक और सुधावलेह के सेवन से सुस्ती एकदम रफूचकर हो गई तथा दिमाग़ में तरी, हृदय में शांति का संचार हुआ। शरीर में चौगुनी शक्ति और चेहरे पर रौनक़ आ गई। बहुत क्या, मुझे बेहद फ़ायदा हुआ। धातुक्षीणता, प्रमेह, स्वप्न-दोष, निर्बलता, शरीर का पीलापन, इंद्रिय का बाँकपन और उसकी कमज़ोरी वग़ैरः रोग जो मेरे सत्यानाशी कामों से उत्पन्न हुए थे, एक-एक करके रफ़ा हो गए। अब मैं पूर्ण स्वस्थ और निरोग हूँ। बाबू साहब दीर्घजीवी हों, यही मेरी ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है।

बाबू कन्हैयालालजी सकसेना, हेडमास्टर, स्कूल महीदपुर, परगना पछार रियासत गवालियर लिखते हैं—"श्रीमान् के औषधालय से यह सेवक तख़मीनन २०) की दवा मँगाकर इस्तेमाल कर चुका। मुझे आपकी दवाओं से अच्छा लाभ हुआ। कितने ही सज्जन मेरी शकल देखकर कहते हैं कि पहले से आपकी शकल बहुत ही अच्छी है। मैं श्रीमान् का कृतज्ञ हूँ और रहूँगा।"

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

बाबू कामताप्रसादजी साहब, वकील, आनरेरी मैजिस्ट्रेट व सुपरिंटेंडेंट जेल, बस्ती लिखते हैं—"पहले मैं बिलकुल काम न कर सकता था, पर अब आपकी दवाओं के सेवन से सब काम कर लेता हूँ। आपके "एरंड-पाक" से कब्ज़ में भी विशेष लाभ हो रहा है।

परमात्मा आपको चिरंजीवी रक्खे। भारतवर्ष का जो महान् उपकार आपने "चिकित्सा-चंद्रोदय" (सात भाग) और "स्वास्थ्य-रक्षा" इत्यादि अमूल्य पुस्तकों की रचना करके किया है, वह मेरे ऐसे तुच्छ मनुष्य की लेखनी से बाहर है। वास्तव में, इन पुस्तकों ने आपके नाम और कीर्ति को अचल-अमर कर दिया है।"

बस, समझदारों के लिये इतना ही क्या कम है ?

हमारी दो बातें

अगर आपको सचमुच ही अपनी ज़िंदगी प्यारी है, अगर आप गृहस्थ-सुख भोगने के अभिलाषी हैं, तो चिंता न कीजिए। बाबू हरिदासजी को अपने रोग का पूरा विवरण, साफ़ काग़ज़ पर साफ़ नागरी-अक्षरों में, लिख भेजिए। साथ ही रोग की व्यवस्था के लिये कम से कम ।) या एक रुपए के पोस्टेज स्टाम्प भेजिए, आपको लिख भेजा जायगा कि क्या रोग है, कितने समय में, किन-किन दवाओं से आराम होगा और कितना ख़र्च पड़ेगा। फिर आपकी मर्ज़ी हो, जहाँ इलाज कराना। ग़रीबों के पत्रों पर पहले ध्यान दिया जाता है। पर धातुरोगों का इलाज कम-से-कम २५) रु० और अधिक में ५००) पांच सौ तक में हो सकता है। मजबूरी है। २५) रु० वालों का काम भी ईमानदारी और सचाई के साथ किया जाता है; पर गारंटी नहीं की जा सकती। हाँ, २००) या ५००) वालों को गारंटी की जा सकती है। क्योंकि जड़मूल से बिगड़े हुए के सुधार में ख़र्च पड़ता ही है। अनेक रक़म की क़ीमती दवाएँ देने से कहीं वही पुरानी जीवनी शक्ति वापस आती है।

विशेष सूचना

यद्यपि कारोबार कलकत्ते में ही है, तथापि बुढ़ापे के कारण बाबू हरिदासजी ज्यादातर "मथुरा" में ही रहते हैं। अतः पत्र-व्यवहार नीचे के पते पर करना चाहिए—

हरिदास एंड कंपनी,

लाल दर्वाज़ा—गंगा-भवन, मथुरा (यू० पी०)

हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर के नए ग्रंथ-रत्न

साहित्य

साहित्य-सम्राट् रवींद्रनाथ ठाकुर के नव निबंधों का अनुवाद। १ साहित्य का तात्पर्य, २ साहित्य की सामग्री, ३ साहित्य के विचारक, ४ सौंदर्यबोध, ५ विश्व-साहित्य, ६ सौंदर्य और विश्व-साहित्य, ७ साहित्य-सृष्टि, ८ ऐतिहासिक उपन्यास, ९ कवि-जीवनी। **माधुरी**-संपादक लिखते हैं—"यह साहित्य-समालोचना का बहुत उत्कृष्ट कोटि का ग्रंथ है। रवींद्र बाबू की प्रतिभा बहुत व्यापक है। वे जिस विषय पर लेखनी चलाते हैं, उसमें जीवन डाल देते हैं। सभी समालोचनाएँ परम रोचक हैं। रोचक होते हुए भी इनमें गंभीरता है और पढ़ने में गद्य-काव्य का-सा आनंद आता है।" छपाई अत्यंत सुंदर मू० ॥।), सजिल्द का १)

परख

हिंदी के उदीयमान कहानी-लेखक बाबू जैनेंद्रकुमार का अतिशय हृदय-द्रावक मौलिक उपन्यास। हिंदी के मौलिक उपन्यासों में यह सर्वश्रेष्ठ गिना जायगा। बहुत ही पवित्र करुण-रसपूर्ण और मनोभावों का सुंदर चित्रण करनेवाला। एक नामी चित्रकार के चार सुंदर चित्रों से सुशोभित। मूल्य १), सजिल्द का १।)

मध्यप्रदेश का इतिहास और नागपुर के भोंसले

मध्यप्रदेश (सी० पी०) पर राज्य करनेवाले मौर्य, आंध्र, गुप्त, परिव्राजक, उच्छकल्प, राजर्षितुल्यकुल, सोमवंश, वाकाटक, हैहय, राठौर, सोलंकी, शैल, परमार, चंदेल, गौंड और मुसलमान राजवंशों का संक्षिप्त तथा भोंसलों का विस्तृत इतिहास। भोंसलों का इस प्रकार का इतिहास अबतक प्रकाशित नहीं हुआ। इस राजवंश के अनेक ऐतिहासिक और दुर्लभ चित्र इसमें दिए गए हैं। मूल्य लगभग १।)

घृणामयी

श्रीइलाचंद्र जोशी का मौलिक उपन्यास। आधुनिक सभ्यता से दोलित एक धनी कुटुंब की शिक्षित कन्या की आत्म-कथा। भावों के घात-प्रतिघात का बढ़िया चित्र। मू० १) सजिल्द का १।)

विधाता का विधान

इसे बँगला-भाषा की सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखिका श्रीमती निरुपमा देवी ने लिखा है और इसमें कई आदर्श और अपूर्व चरित्रों की सृष्टि की गई है। स्त्री और पुरुष दोनों के लिये पढ़ने योग्य है। मूल्य २।) सजिल्द का ३)

मानव-हृदय की कथाएं

फ्रांस के जगत्प्रसिद्ध लेखक मोपासाँ की चुनी हुई कहानियों का संग्रह। **सरस्वती**-संपादक लिखते हैं—"मोपासाँ की मौलिकता, सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा सजीव एवं आकर्षक रचना-प्रणाली संसार में अपना सानी नहीं रखती।"

सुप्रसिद्ध समालोचक **पं० अवध उपाध्याय** लिखते हैं—"मैं दावे के साथ कहता हूँ कि आजतक हिंदी में कहानियों का ऐसा अच्छा संग्रह नहीं निकला।" **प्रताप** की राय है—"कला की दृष्टि से मोपासाँ की कृति बहुत ऊँचे दर्जे की है। उसके कमाल से इनकार करना आसान नहीं है।" मू० १) सजिल्द १।)

चंद्रकला

गुरुकुल यूनीवर्सिटी के स्नातक पं० चंद्रगुप्त विद्यालंकार की आठ मौलिक कहानियाँ। प्रत्येक कहानी एक नया भाव लेकर लिखी गई है। एक बार आरंभ करने के पश्चात् पुस्तक रख देने की इच्छा नहीं होती। सम्मतियाँ देखिए—

माधुरी—"कहानियाँ भावपूर्ण और रोचक हैं।"

महारथी—"चन्द्रगुप्तजी की कल्पना उर्वरा है, भाषा में भाव है, चित्रण में रंग है और उनके हृदय में सहानुभूति है।"

चाँद—इसकी सब कहानियाँ वास्तव में रोचक हैं। चंद्रगुप्तजी नए लेखक हैं, तथापि इनकी कहानियाँ वास्तव में सुंदर होती हैं।" मू० ॥=), सजिल्द का १।=)

नोट—हमारे यहाँ अन्यान्य प्रकाशकों की भी उत्तमोत्तम पुस्तकें मिलती हैं। सूचीपत्र मँगाकर देखिए। नीचे लिखे ग्रंथ भी हमसे मँगाइए—

पद्म-पराग—पं० पद्मसिंहजी शर्मा के एक-से-एक बढ़कर सुंदर लेखों का संग्रह है। मूल्य सजिल्द ग्रंथ का २॥)

मेरी हजामत—हास्यरस की सुंदर और अनूठी कहानियाँ। साहित्य-मर्मज्ञ पं० पद्मसिंह शर्मा ने इसकी भूमिका लिखी है और कहानियों की जी खोलकर प्रशंसा की है। मू० ॥=)

संचालक—हिंदी-ग्रंथरत्नाकर-कार्यालय हीराबाग, पो० गिरगाँव, बंबई

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

विश्वविद्यालय के मुख्य दफ़्तर के आगे बढ़ते ही हमें कैनिंग-कॉलेज की ख़ास इमारत दृष्टि-गोचर होती है। कला, व्यापार तथा क़ानून-विभाग की शिक्षा-दीक्षा इसी भवन में होती है। युनिवर्सिटी-कॉलेज के अधिष्ठाता (Principal) का आफ़िस, विश्वविद्यालय का पुस्तकालय तथा सुप्रसिद्ध 'बेनेट-हॉल' इसी भवन में है।

पुस्तकालय

लखनऊ-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का प्रबंध इतना सुगढ़ और इतने कमाल का है कि देखकर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। इस समय लखनऊ-विश्वविद्यालय में लगभग चालीस हज़ार पुस्तकें हैं। नित्य-प्रति ढाई-तीन सौ पुस्तकों की निकासी होती है। साल-भर में चालीस हज़ार से ऊपर पुस्तकें, पढ़ने के लिये, बाहर जाती हैं, और अस्सी हज़ार के लगभग पुस्तकालय के अंदर पढ़ने के लिये निकाली जाती हैं। दिनोदिन पुस्तकालय विकास कर रहा है। पुस्तकालय की उन्नति का श्रेय इसके अध्यक्ष श्रीडॉक्टर वलीमोहम्मद को ही प्राप्त है।

बेनेट हाल

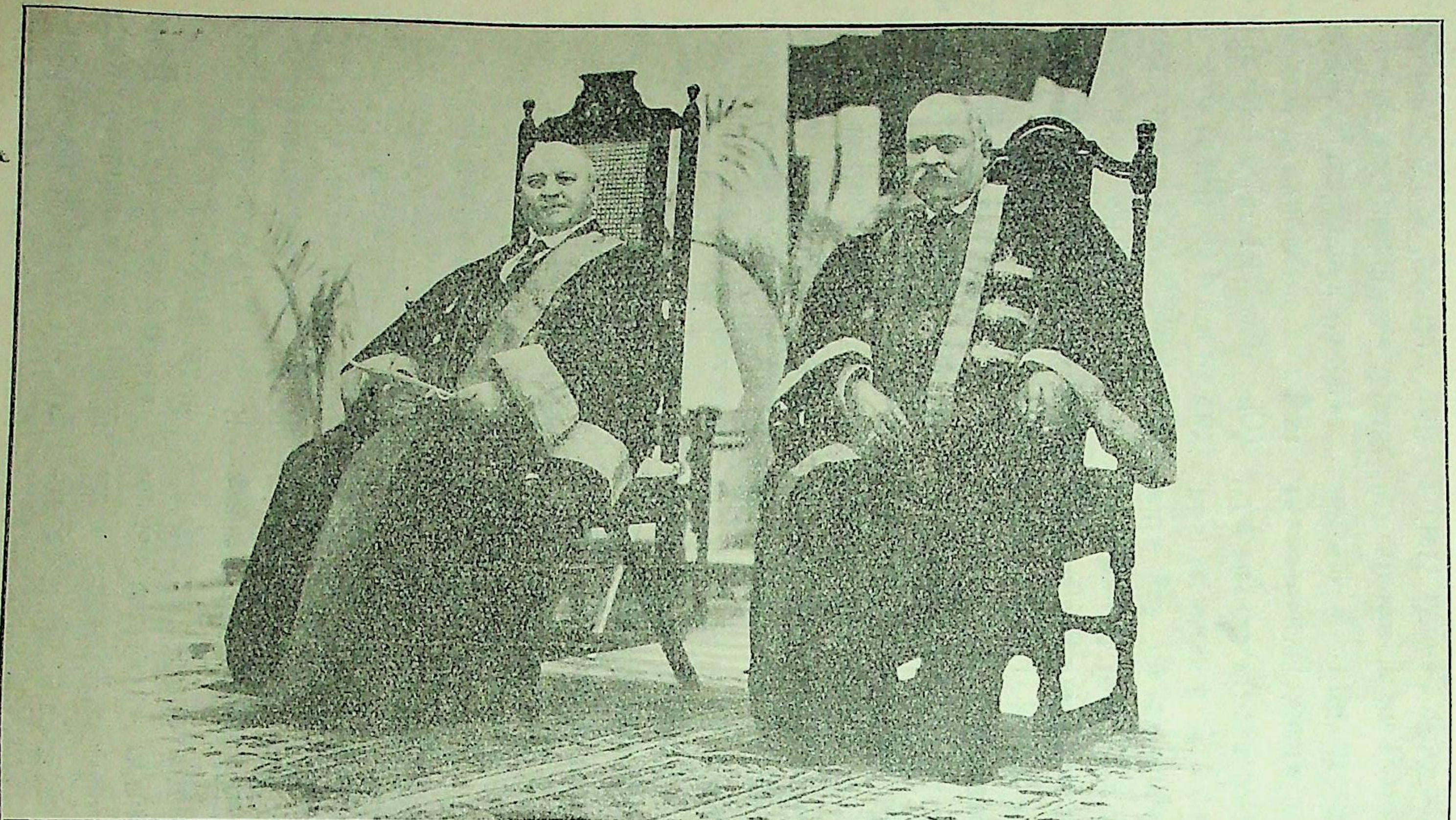
कैनिंग-कॉलेज-भवन के मध्य-भाग में विश्वविद्यालय का विशाल बेनेट-हॉल स्थित है। बेनेट-हॉल एक लंबा-चौड़ा विशाल कमरा है। इसी कमरे में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की सभाएँ, वाद-विवाद, कवि-सम्मेलन, मुशायरा आदि होते हैं। बेनेट-हॉल श्रीबेनेट महोदय, सर हारकोर्ट बटलर, लार्ड कैनिंग तथा भूतपूर्व वाइस-चँसलर आदि के चित्रों से सुसज्जित है। छत के किनारे-किनारे, दीवाल में, संसार के सुप्रसिद्ध विद्वानों के नाम बड़े सुंदर अक्षरों में अंकित हैं। बेल-बूटों के बीच कालिदास, फ़िरदौसी, अरिस्टाट्ल आदि के दिव्य नामों की मनोहर मणिमाला-सी लटक रही है। नीचे चारो ओर दीवाल पर चमकता हुआ काष्ठ मढ़ा है, और उन पर सुनहले अक्षरों में कॉलेज के उन विद्यार्थी-रत्नों का नाम अंकित है, जो विविध परीक्षाओं में अब तक सर्वप्रथम उत्तीर्ण होते आए हैं।

विश्वविद्यालय का सबसे विराट्, विशाल तथा विस्तृत कमरा यही है। बेनेट-हॉल ही युनिवर्सिटी का मुख्य परीक्षा-भवन, सेनेट-हाल तथा विद्यार्थियों का पार्लामेंट-भवन आदि-आदि सब कुछ है।

कैनिंग-कॉलेज-भवन के आगे विज्ञान-विभाग की इमारतें हैं। कई लाख की लागत का रसायन-शास्त्र-ब्लाक (Chemistry Block) अभी हाल ही में बना है। इसके बन जाने से युनिवर्सिटी की आभा द्विगुणित हो गई है। विज्ञान-विभाग में बेतार का तार तथा अजायब-घर दर्शनीय हैं। विज्ञान-विभाग के एक कमरे में बैठकर हज़ारों मील दूर के गाने की मधुर ध्वनि का आनंद उठाइए, तथा अजायब-घर में कीड़े-मकोड़ों, पशु-पक्षियों के मृत शरीर, अस्थि-पिंजर देखिए। एम्० एस्० सी० के विद्यार्थियों को 'बेतार के तार' की शिक्षा प्राप्त करनी होती है। तथा विज्ञान-विभाग के विद्यार्थी पशु-पक्षियों के अस्थि-पिंजरों को देख-भालकर उनके भिन्न-भिन्न अवयवों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। और वनस्पति-शास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र आदि का अध्ययन करते हैं।

विज्ञान-विभाग की इमारतों के बाँई ओर पर नव्वाबी ज़माने की बारादरी दिखाई पड़ती है। इसकी बनावट, काट-छाँट, रूप-रंग सब कुछ नव्वाबी है। इस बारादरी का एक भाग 'विश्वविद्यालय सैनिक-संघ' (University Training Corps) के हाथ में है, तथा दूसरा 'लखनऊ-विश्वविद्यालय-विद्यार्थी-संघ' (Lucknow University Union) के हाथ में। इसी बारादरी में लखनऊ विश्वविद्यालय की व्यायामशाला तथा विद्यार्थी-संघ का वाचनालय, 'क्रीड़ा कुटीर' (Sports Room) तथा 'जलपानशाला' (Refreshment Room) हैं। लखनऊ-विश्वविद्यालय का डाकख़ाना भी इसी बारादरी में है।

बारादरी के आगे चलने पर हमें 'प्रिंसपल', 'प्रौक्टर', प्रोफ़ेसरों के बँगले तथा छात्रालय मिलते हैं। नगर के जिस भाग में ये इमारतें बनी हैं, तथा यह विश्वविद्यालय स्थापित है, वह 'बादशाह-बाग़' के नाम से प्रसिद्ध है।



सर हारकोट बटलर चसलर (भूतपूर्व) तथा श्रीडॉक्टर जी० एन० चक्रवर्ती वाइस-चैंसलर (भूतपूर्व)

[ऑक्टोबर ३०, १९२२ के उपाधि-वितरण-उत्सव के अवसर पर]

अधिकारी, अध्यापक, शिक्षा आदि

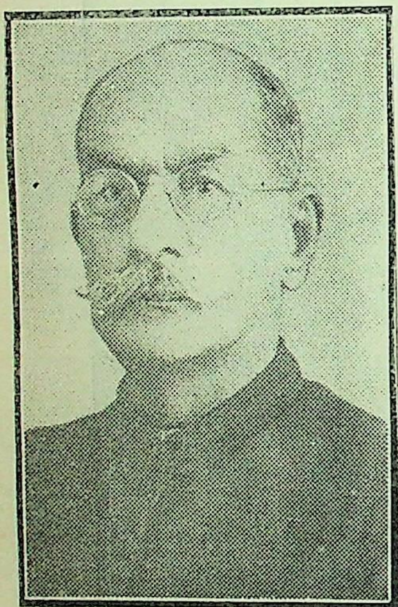
वर्तमान समय में श्रीसर माल्कम हेली इस प्रांत के गवर्नर ही लखनऊ-विश्वविद्यालय के कुलपति (Chancellor) हैं। श्रीडॉक्टर एम्० बी० कैमरन सी० आई० ई० * वाइस-चैंसलर हैं। जब लखनऊ-विश्वविद्यालय का जन्म नहीं हुआ था, तभी से आप कैनिंग-कॉलेज की सेवा कर रहे हैं। आप प्रोफ़ेसर, प्रिंसपल और वाइस-चैंसलर की हैसियत से



डॉक्टर एम्० बी० कैमरन एम्० ए०, डी० लिट, सी० आई० ई०, भूतपूर्व वाइस-चैंसलर

* अब आपके स्थान पर श्री० पं० जगतनारायणजी मुल्ला वाइस-चैंसलर नियुक्त हुए हैं। वयो-वृद्ध श्रीडॉक्टर कैमरन रिटायर होकर अपनी मातृ-भूमि चले गए।—संपादक

कैनिंग-कॉलेज के विद्यार्थियों के प्रति अथाह प्रेम का परिचय देते रहे। डॉक्टर कैमरन शीघ्र ही रिटायर होकर अपनी मातृ-भूमि जानेवाले हैं, सभी को इसका दुःख है। पर यह सचमुच बड़े हर्ष की बात है डॉक्टर कैमरन के स्थान पर लखनऊ के मौरमुकुट श्री पं० जगतनारायणजी मुल्ला उप-कुलपति नियुक्त हुए हैं। आप हिंदी के परम हितैषी और राष्ट्र-भाषा के बड़े प्रेमी हैं।



पं० जगतनारायणजी मुल्ला
[वाइस-चैंसलर लखनऊ युनिवर्सिटी]

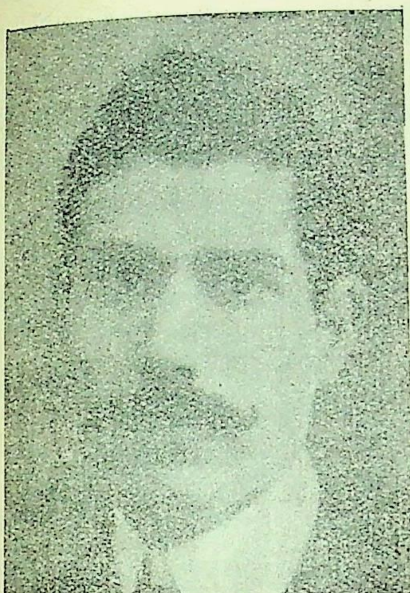
लखनऊ-विश्वविद्यालय में अभी तक हिंदी की बड़ी उपेक्षा हुई है, परंतु अब पूर्ण आशा है कि श्री पं० जगतनारायणजी मुल्ला की छत्र-छाया में हिंदी ख़ूब फूले-फलेगी। हिंदी-संसार नवीन कुलपति की ओर आशा-भरे नेत्रों से देख रहा है।

युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार हैं श्री० मिस्टर आर० आर० खन्ना एम्० एस्-सी०। आप पहले नागपुर-विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार थे, अब आप लखनऊ-विश्वविद्यालय का कार्य बड़ी कुशलता से कर रहे हैं। प्रोफ़ेसर जे० ए० स्ट्रैंग युनिवर्सिटी के अवैतनिक 'प्रौक्टर' हैं। 'प्रोक्टर' की हैसियत से विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के शील, आचार-व्यवहार और चरित्र की देख-रेख करते हैं।

कैनिंग-कॉलेज के प्रिंसपल हैं प्रोफ़ेसर एम्० बी० स्मिथ, मेडिकल-कॉलेज के हैं लेफ़्टीनेंट कर्नल एच्० स्टॉट तथा आइसोबेला थोबर्न-कॉलेज की प्रिंसपल हैं मिस मेरी ई० शैनन।

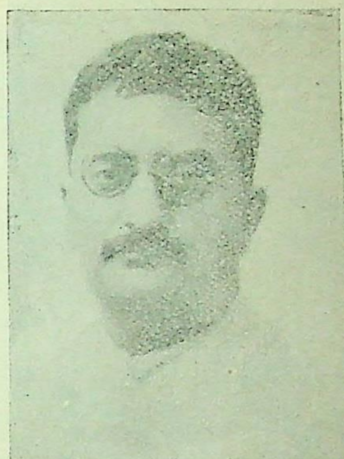
युनिवर्सिटी के अंतर्गत पाँच विभाग हैं— चिकित्सा (Medicine), कला (Arts), विज्ञान (Science), व्यापार (Commerce) तथा क़ानून (Law)-विभाग। प्रत्येक विभाग का एक-एक अध्यक्ष है, जिसे 'डीन' (Dean) कहते हैं। हर विभाग में भिन्न-भिन्न विषयों के अलग-अलग प्रधान अध्यापक (Head of the Department), अध्यापक (Reader) और उप-अध्यापक (Lecturer) होते हैं। इस विश्वविद्यालय में अधिकारियों तथा प्रोफ़ेसरों को वेतन-स्वरूप बड़ी-बड़ी लंबी रक़में मिलती हैं।

लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग में भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध विद्वान् इस समय काम कर रहे हैं। उदाहरणार्थ डॉक्टर राधाकुमुद मुकर्जी एम्० ए० पी० एच्० डी०, पी० आर० एस्०, 'विद्या-वैभव' आजकल भारतीय इतिहास-विभाग के प्रधान अध्यापक हैं। डॉक्टर राधाकमल मुकर्जी एम्० ए०, पी० एच्० डी०, पी० आर० एस्० अर्थशास्त्र (Economics) तथा समाज-शास्त्र (Sociology)-विभाग के प्रधान अध्यापक हैं। संस्कृत, हिंदी और प्राकृत भाषा के प्रधान अध्यापक हैं श्री० के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर। इसी विभाग में हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री पं० बदरीनाथजी भट्ट, श्री पं० अद्यादत्तजी ठाकुर, श्री पं० बद्रीनाथजी शास्त्री आदि अध्यापक हैं। उर्दू, परशियन और अरबी-विभाग के प्रधान अध्यापक सुप्रसिद्ध डॉक्टर एम्० बी० रहमान एम्० ए०, पी० एच्० डी०। श्री प्रो० एन० के० सिद्धांत एम्० ए० अंगरेज़ी-विभाग के प्रधान अध्यापक हैं। राजनीति-विभाग के प्रधान



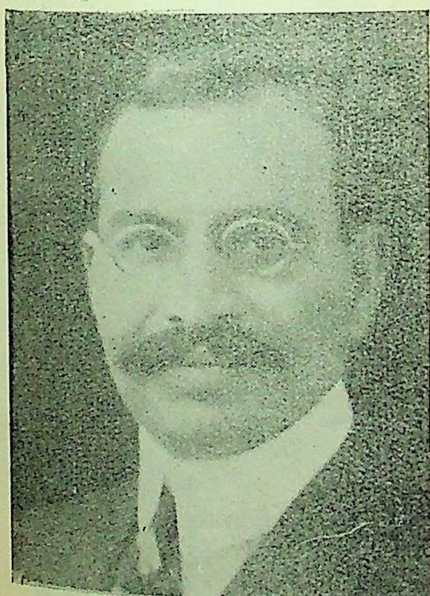
पं० जगमोहननाथ चक बी० ए०

[क़ानून-विभाग के डीन]



डॉक्टर राधाकुमुद एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० आर० एस०, विद्या-वैभव, इतिहास-शिरोमणि

[प्रधान अध्यापक 'भारतीय इतिहास-विभाग']



डॉक्टर वलीमोहम्मद एम्० ए०, पी-एच्० डी०,

[विज्ञान-विभाग के डीन तथा विश्वविद्यालय के लाइब्रेरियन]



डॉक्टर राधाकमल मुकर्जी एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० आर० एस०

[अर्थशास्त्र तथा समाज-शास्त्र-विभाग के प्रधान अध्यापक]

मिस्टर के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर एम्० ए०
[संस्कृत, प्राकृत तथा हिंदी-विभाग के प्रधान अध्यापक]

पं० बदरीनाथ शास्त्री एम्० ए०
[अध्यापक संस्कृत-हिंदी-विभाग]

श्री० प्रो० के० एस्० हजेला एम्० ए०, एम्० एस्-सी०, एल्-एल्० एम्०
[अध्यापक क़ानून-विभाग]

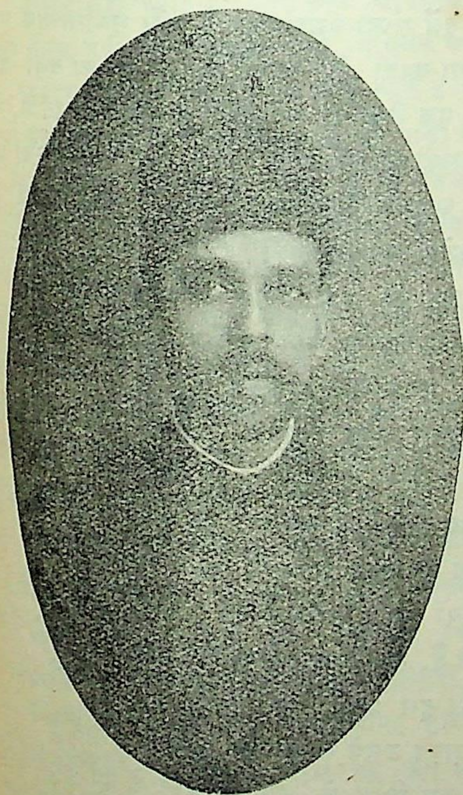
डॉक्टर एम्० बी० रहमान एम्० ए०, पी-एच्० डी०

अध्यापक डॉक्टर बी० एस्० राम एम्० ए०, पी-एच्० डी० तथा अध्यापक श्री० वी० के० नंदन मेनन, डॉक्टर ई० अशीरवादम आदि का नाम भी उल्लेखनीय है। क़ानून-विभाग में श्रीप्रोफ़ेसर कृपाशंकर हजेला एम्० ए०, एम्० एस्-सी०, एल्-एल्० एम्० तथा डॉक्टर जयकरणनाथ मिश्र प्रभृति विद्वान् काम कर रहे हैं। क़ानून-विभाग के डीन हैं श्रीपं० जगमोहननाथ चक बार-एट-ला।

उधर विज्ञान-विभाग में डॉक्टर वलीमोहम्मद एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आई० ई० एस्, डॉक्टर बीरबल साहनी एम्० ए०, एस्० सी० डी०, डी० एस्-सी०, एफ़्० जी० एस्०, एफ़्० ए० एस्० बी०, डॉक्टर करमनारायण भाल डी० फ़िल, डी० एस्० सी० आदि



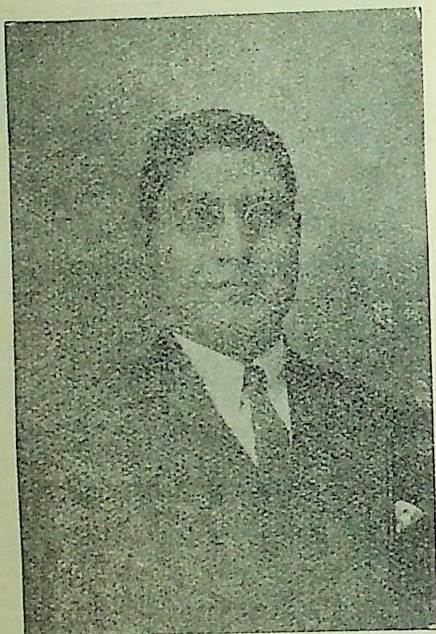
श्री० वी० के० नंदन मेनन
[अध्यापक राजनीति-विभाग]



सैयद मसूद हुसेन रिजवी एम्० ए०
[अध्यापक उर्दू-विभाग]



डॉक्टर ई० अशीरवादम बी० ए०, बी० डी०, पी-एच्० डी०
[अध्यापक राजनीति-विभाग]



डॉ० करमनारायण भाल डी० फ़िल, डी० एस्० सी०
[विज्ञान-विभाग के अध्यापक]

भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में से हैं। इसी प्रकार विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग में देश के चुने हुए माणिक-मुक्ता जगमगा रहे हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति का परिचय अलग-अलग दिया जाय, तो कदाचित् पाठक पढ़ते-पढ़ते ऊब जायँगे।

संयुक्त प्रांत-भर में चिकित्सा की शिक्षा के लिये केवल 'किंग जार्जमेडिकल कॉलेज' ही एक ख़ास संस्था है। इस कॉलेज में भरती होने के लिये प्रति वर्ष सहस्रों प्रवेश-पत्र आते हैं। इन सहस्रों उम्मीद-वार विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाती है, और चुने हुए उत्तीर्ण विद्यार्थी ही एम्० बी० बी० एस्०-कक्षा में लिए जाते हैं।

लखनऊ-विश्वविद्यालय के कला-विभाग में अँगरेज़ी, दर्शन-शास्त्र, इतिहास, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, संस्कृत, हिंदी, अरबी, फ़ारसी, उर्दू आदि की शिक्षा दी जाती है। हिंदी-उर्दू के अतिरिक्त यहाँ अन्य विषयों में एम्० ए० तक शिक्षा दी जाती है। भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा की अभी तक उपेक्षा की गई है, यह लखनऊ-विश्वविद्यालय के लिये बड़ी लज्जा की बात है। अभी तक हिंदी में एम्० ए०-क्लास नहीं खोला गया है, बेचारी उर्दू की भी वैसी ही अवहेलना की गई है। सुनते हैं, इसका सारा दोष है प्रांतीय सरकार के सिर पर। अभी तक हिंदी-उर्दू में एम्० ए०-क्लास खोलने के लिये धन की मंज़ूरी ही नहीं हुई। प्रांतीय सरकार को अपने कोष की रक्षा का एकमात्र यही साधन दिखाई पड़ा! अधिकारियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

विश्वविद्यालय में वकालत के दर्जे ख़ूब हरे-भरे रहते हैं। एम्० ए० और एल्० एल्० बी० दोनो ही उपाधियाँ साथ-ही-साथ दो ही वर्ष के व्यय से मिल जाती हैं। यह एक बड़ी सुविधा की बात है। वकालत के दर्जे संध्या-समय लगते हैं, और सूर्यास्त तक पढ़ाई हुआ करती है। दो सौ विद्यार्थियों का दर्जा होता है, एक मेला-सा लग जाता है। इस जमघट में, कौन किसकी हाज़िरी बोल रहा है, पता नहीं चलता।

लखनऊ-विश्वविद्यालय की शिक्षा-प्रणाली 'विशेष पाठन-प्रणाली' (Tutorial System) शिक्षा की एक नवीन उल्लेखनीय विधि है। जब डाक्टर कैमरन कैनिंग-कॉलेज के प्रिंसपल थे, तब यह नवीन-रीति प्रचलित हुई थी। इस नीति के अनुसार प्रत्येक कक्षा के विद्यार्थी पाँच-पाँच, छः-छः की टोलियों में विभाजित कर दिए जाते हैं, और भिन्न-भिन्न विषयों के अध्यापक प्रत्येक टोली को प्रति सप्ताह एक घंटे अपने विषय में विशेष शिक्षा देते हैं। विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ दूर करते हैं, लेख लिखने को देते हैं, तथा उनके साप्ताहिक लेखों पर नंबर देते हैं और इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी की योग्यता का अंदाज़ा उसके साप्ताहिक काम से लगाते हैं।

इस विधि के प्रचलित होने के पूर्व कुछ और ही दशा थी। प्रोफ़ेसर अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को पहचानते तक न थे। विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों में बड़ा फ़ासला था। विद्यार्थियों को अपनी कठिनाइयों को

और शंकाओं का समाधान करवाने का कोई साधन ही न था। इस 'ट्यूटोरियल सिस्टम' को सभी लाभदायक माना है, सभी ने पसंद किया है। अभी तक क़ानून-विभाग में ही यह नीति प्रचलित नहीं की गई है। सुनते हैं, कदाचित् कुछ बात-चीत हो रही है।

❀ ❀ ❀

स्वास्थ्य, व्यायाम, खेल-कूद।

विद्यार्थियों के शारीरिक गठन के लिये कॉलेज में हॉकी, फुटबाल, क्रिकेट, टेनिस आदि खेलों का प्रबंध है। व्यायाम-शाला भी है। विश्वविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी के शरीर और स्वास्थ्य की परीक्षा ली जाती है। जो विद्यार्थी दुर्बल अथवा अति क्षीण पाए जाते हैं, उनके माता-पिता को इसकी सूचना दे दी जाती है। विश्वविद्यालय में एक औषधालय भी है। मामूली ज्वर आदि के लिये इसी औषधालय से दवा मिल जाती है। विशेष रोगी मेडिकल कॉलेज के 'स्टूडेंट्स वार्ड' में भरती करवा दिए जाते हैं। वहाँ बड़ी सावधानी से रोगी की देख-भाल की जाती है।

विश्वविद्यालय में सैनिक शिक्षा का भी प्रबंध है। "बी० कंपनी थर्ड (यू० पी०) बटैलियन युनिवर्सिटी ट्रेनिंग कार्प्स इंडियन टेरीटोरियल फ़ोर्स" के नाम से एक सेना है, जिसमें इच्छुक विद्यार्थी सैनिक शिक्षा के लिये भरती होते हैं। इस सेना के सेनापति हैं कैप्टन जे० ए० स्ट्रैंग। सैनिक विद्यार्थियों को वर्दी, अस्त्र-शस्त्र सब निःशुल्क दिए जाते हैं। विद्यार्थी बड़े उत्साह से इस सेना में भरती होते हैं। भारत के लिये सैनिक शिक्षा की कितनी आवश्यकता है, यह बताना व्यर्थ है।

बी० ए० और बी० एस्-सी० के सभी विद्यार्थियों को प्रत्येक दूसरे दिन एक घंटा शारीरिक व्यायाम करना पड़ता है। नियम-पूर्वक शिक्षक हाज़िरी लेता है, उड़ जानेवाले विद्यार्थियों पर जुर्माना होता है। सैनिक विद्यार्थी शारीरिक व्यायाम की क़ैद से मुक्त कर दिए जाते हैं। स्वास्थ्य के हित के लिये व्यायाम सचमुच अनिवार्य है। लेकिन शारीरिक गठन का सारा भार विश्वविद्यालय अपने मस्तक पर ले ले,

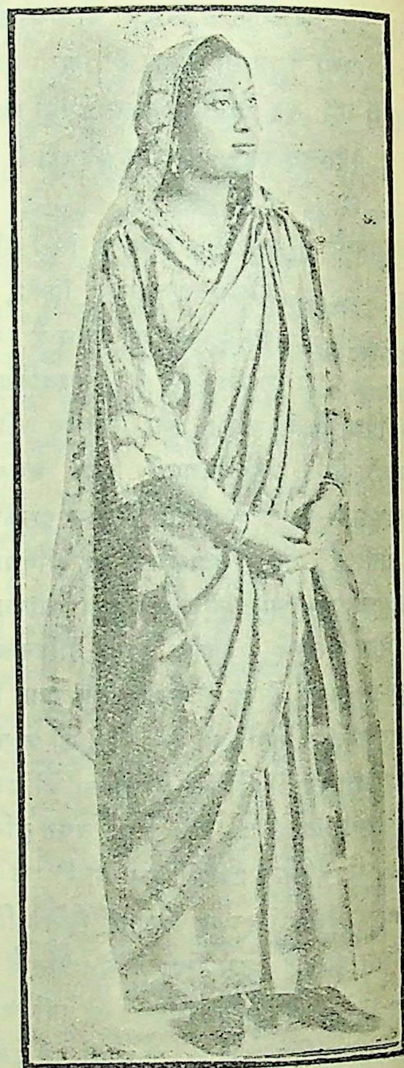


युनिवर्सिटी-सेना के भीम
[सुहृदवर श्री० जी० एन्० सिंह—बी० ए० के एक विद्यार्थी]

यह भी सर्वथा अवांछनीय है। कुछ विद्यार्थियों को प्रातः ७ बजे भी व्यायाम करने जाना पड़ता है। भला पूछिए कि प्रातःकाल पढ़ने के समय एक घंटे डंड निकलवाना, उठक-बैठक करवाना यह कहाँ की बुद्धि-मत्ता है। जो विद्यार्थी सात से आठ तक व्यायाम करेगा, उसकी एक-एक नस तो खिंच जायगी, ऐसी अवस्था में प्रातःकाल वह क्या ख़ाक पढ़ सकेगा? यह ज़बरदस्ती, और फिर शारीरिक व्यायाम के लिये, सर्वथा अनुचित है। प्रत्येक विद्यार्थी इस अवस्था में अपना हानि-लाभ समझने लगता है। शारीरिक व्यायाम एक बंधन बना देना मूर्खता है। किसी हद तक अपने पैरों खड़े होने की नीति का भी प्रयोग करना अच्छा ही होता है। शारीरिक व्यायाम को बंधन बनाकर अधिकारियों ने इसे एक खिलवाड़ बना दिया है। कोई भी विद्यार्थी इस बंधन-युक्त शारीरिक व्या-याम को अच्छी दृष्टि से नहीं देखता।

युनिवर्सिटी में एक 'बोट-क्लब' भी है। युनिवर्सिटी की ओर से कई हल्की-हल्की नौकाएँ और पतवार मिले हैं। विद्यार्थी तीन रुपए वार्षिक चंदा देकर इस 'बोट-क्लब' के सदस्य हो जाते हैं। केवल तैराक विद्यार्थी ही इस क्लब के सदस्य बनाए जाते हैं। फूल-सी नौकाएँ हैं, तनिक भी अव्यवस्थित हो जाने में लुढ़क जाने का ख़तरा रहता है। संध्या के समय नवयुवक 'आक्सफ़ोर्ड' और 'कैंब्रिज' के विद्यार्थियों की तरह गोमती में छोटी-छोटी नौकाओं पर क्रीड़ा करते दृष्टि-गोचर होते हैं।

विश्वविद्यालय में खेल-कूद के लिये विस्तृत क्षेत्र है। शारीरिक, मानसिक, सभी वृत्तियों के विकास के लिये साधन मौजूद हैं। विश्वविद्यालय के अंतर्गत अनेकों छोटी-छोटी सभाएँ हैं। छोटी-छोटी सभाओं में संस्कृत-हिंदी-विभाग की 'ज्ञानवर्द्धिनी सभा' का नाम उल्लेखनीय है। यह सभा संस्कृत और राष्ट्र-भाषा हिंदी में व्याख्यान और वाद-विवाद संगठित करती रहती है। सबसे बड़ी संस्था है 'लखनऊ-युनिवर्सिटी-यूनियन'। इस यूनियन की स्थापना हुई थी सन् १९२२ में। आजकल यह यूनियन, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के सामाजिक जीवन में, एक विशेष स्थान रखती है। विश्वविद्यालय का प्रत्येक विद्यार्थी इस संस्था का सदस्य है। प्रति वर्ष प्रत्येक सदस्य को तीन रुपए मासिक चंदा देना होता है। इस संघ की वार्षिक आय लगभग तीन हज़ार के होती है। यह सब धन 'युनिवर्सिटी-यूनियन-जनरल' (त्रैमासिक पत्रिका), वाद-विवाद, कवि-सम्मेलन, मुशायरा, नाटक आदि करने में व्यय हो जाता है। साल ख़त्म होने के पहले ही कोष लगभग ख़ाली हो जाता है। संघ ने बारादरी में अपना वाचनालय, पुस्तकालय आदि स्थापित कर रक्खा है। इसी संघ की देख-रेख में एक 'रेस्टोराँ' भी है, जहाँ विद्यार्थी चाय-पानी करते हैं। समय-समय पर देश के नेता इस सभा की ओर से निमंत्रित किए जाते हैं, और उनके शिक्षाप्रद व्याख्यान होते हैं। उपाधि-वितरण-सप्ताह में बड़ी चहल-पहल रहती है।



श्रीमती फूलवतीजी शुक्ला एम्० ए०
[सर्व प्रथम महिला-प्रेसिडेंट लखनऊ-युनिवर्सिटी यूनियन]

नाटक, मुशायरा सब कुछ इसी सप्ताह में होता है। 'अंतर-विश्वविद्यालय ट्राफ़ी-वाद-विवाद' बड़ा मज़ेदार होता है। देश के कोने-कोने से कॉलेजों और विश्व-विद्यालयों के प्रतिनिधि आते हैं। राष्ट्र के भावी 'बर्क' और 'शेरीडनों' के गर्जन-तर्जन सुनने का सुअवसर मिलता है। विश्वविद्यालय-जीवन का यह संघ एक

मुख्य अंग है। प्रत्येक विद्यार्थी इस संघ में बड़े उत्साह से भाग लेता है। पदाधिकारियों के चुनाव में कौंसिल और एसेंबली के चुनाव से भी अधिक आनंद आता है।

✿　✿　✿

रहन-सहन और वातावरण

लखनऊ की शान-शौकत, बाह्य आडंबर, तड़क-भड़क प्रसिद्ध है। बाहर के लोग इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के रहन-सहन और ठाठ-बाट का बड़ा ऊँचा अनुमान लगाते हैं। लखनऊ-विश्वविद्यालय



'लखनऊ-युनिवर्सिटी-यूनियन' को कार्यकारिणी समिति (१९२९-३०)

बैठे हुए—(बाईं ओर से) डॉक्टर एम्० बी० रहमान, श्री० अनादिनाथ बनर्जी (भूतपूर्व प्रधान), डॉक्टर एम्० बी० कैमरन (भूतपूर्व उप-कुलपति), प्रो० एन्० के० सिद्धांत, डॉक्टर एस० के० बनर्जी

द्वितीय पंक्ति—श्री० एम्० डी० राय, श्री० एस० सी० मुकर्जी, श्री० एम्० के० किदवाई, श्री० पृथ्वीपालसिंह, श्रीवलीमोहम्मद, श्री० जे० के० बनर्जी ('मंत्री', जेल में)

तृतीय पंक्ति—श्री० सी० ए० बक, श्री० क्यू० एम्० फ़रीद, श्री० एस० एन्० सान्याल, श्री० रामप्रसाद शर्मा

के विद्यार्थी न तो कोरे 'भगवन्' ही हैं, और न बिल्कुल लखनऊवे नवाब ही। ठाट-बाट साधारण रखते हैं, वित्त-भर चलते हैं। सूट-बूट पहनना शास्त्र-विरुद्ध नहीं समझते और पाश्चात्य वेश-भूषा के बिल्कुल ग़ुलाम भी नहीं हैं। राजनीतिक जागृति और स्वदेशी आंदोलन का बड़ा प्रभाव पड़ा है, सूट-बूट की प्रथा उठ-सी रही है। आजकल तो युनीवर्सिटी-सीमा के अंदर अधिकता खद्दरधारी ही नज़र आते हैं। छैला बनकर आनेवालों को आजकल सब घृणा की दृष्टि से देखते हैं। लखनऊ-विश्वविद्यालय में देवियाँ भी युवकों के साथ पढ़ती हैं। देवियाँ स्वभाव ही से वेश-भूषा और शृंगार की ओर विशेष ध्यान रखती हैं, कुछ इने-गिने युवक भी अपनी वेश-भूषा और केश-कलाप का बड़ा ख़याल रखते हैं। संगति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है।

छात्रालय में रहनेवाले विद्यार्थी का प्रतिमास साधारणतया पचास रुपए मासिक व्यय होता है। जो एम्० ए० और एल्०-एल्० बी० दोनो के विद्यार्थी होते हैं, उनका व्यय इससे भी अधिक होता है। छात्रालय में रहने के लिये एक कमरे का छः रुपए मासिक देना पड़ता है। छात्रालय की सुंदर अट्टालिका में बिजली से आलोकित एक कमरा प्रत्येक विद्यार्थी को मिलता है। कमरे में एक निवाड़ का पलंग, एक बड़ी मेज़, एक चाय की मेज़, एक बेंत की कुर्सी, आलमारी आदि होती हैं। नित्य प्रातःकाल छात्रालय का एक सेवक कमरा साफ़ कर जाता है। प्रत्येक छात्रालय में कई सेवक और चपरासी होते हैं, जो सदैव छात्रों का हुक्म बजाने के लिये हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। प्रत्येक छात्रालय में स्नानागार, भोजनालय, वाचनालय आदि होते हैं। विद्यार्थियों की सुविधा और सुख के लिये यहाँ क्या सुलभ नहीं? खाने-पीने के लिये सात-आठ विद्यार्थी मिलकर अपना भोजनालय स्वयं ही चलाते हैं। मांसाहारी और वैष्णवी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न भोजनालयों के सदस्य हो जाते हैं। खाने-पीने का प्रति छात्र मासिक व्यय जुदा-जुदा होता है। जैसा भोजन, वैसा ही व्यय, दोनो एक दूसरे पर निर्भर हैं।

छुट्टियों के दिन विद्यार्थियों में स्फूर्ति-सी पैदा हो जाती है। उनकी रग-रग में चुलबुलाहट होने लगती है। लोग टोलियाँ बनाकर नगर के बाहर किसी उद्यान में अथवा सरिता-तट पर जा पहुँचते हैं। दिन-भर खेलते-कूदते हैं, वहीं जलपान करते हैं, और संध्या को हँसते-खेलते, गाते बजाते वापस आते हैं। ऐसा स्वच्छंद और बेफ़िक्री का जीवन गृहस्थी और संसार के माया-जाल में फँसे हुए जीवों के लिये स्वप्न की बात है।

लखनऊ-विश्वविद्यालय के छात्रालयों में जो सुख और स्वतंत्रता है, वह इस प्रांत के किसी भी विश्वविद्यालय के छात्रालयों में प्राप्य नहीं। सुनते हैं, प्रयाग और काशी-विश्वविद्यालयों के छात्रालयों में काठ के तख़्त सोने के लिये मिलते हैं, छोटी-छोटी मेज़ें और लकड़ी की तख़्तेदार कुर्सियाँ दी जाती हैं तथा विद्यार्थियों को दस बजे रात्रि के बाद छात्रालय से बाहर जाने के लिये अध्यक्ष से आज्ञा लेनी होती है। लखनऊ-विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को पूर्ण स्वतंत्रता है। यद्यपि नित्य विद्यार्थियों की हाज़िरी भर ली जाती है, परंतु उनके ऊपर रखवाली नहीं की जाती। पढ़े-लिखे शिक्षित और समझदार नवयुवकों को इतनी स्वतंत्रता होना सर्वथा वांछनीय है। देख-भाल और रखवाली तो अबोध बालकों की होती है।

दो-एक बातें बड़ी खटकनेवाली हैं। सभ्यता के इस युग में शिक्षित समुदाय में ऐसी बातें होते देखकर विस्मय होता है। कुछ छात्रालयों में वर्ष के प्रारंभ में नवागत छात्रों से मिलने के लिये पुराने छात्र 'मिलन-रात्रि' (Introduction Night) मनाते हैं। यह 'मिलन-रात्रि' नारकीय अकांड-तांडव का-सा दृश्य उपस्थित करती है। नवागत विद्यार्थियों का बलात् चुंबन करना और कभी-कभी अश्लीलता की सीमा उल्लंघन कर जाना, यही इस 'मिलन-रात्रि' की



छुट्टी के दिन विश्वविद्यालय के कुछ विद्यार्थी 'रेज़ीडेंसी-उद्यान' में

विशेषता है। इस प्रकार की मिलन-रात्रि केवल मेस्टन-होस्टल और मेडिकल कॉलेज के छात्रालयों में मनाई जाती है। हिवट-होस्टल तथा महमूदाबाद-होस्टल का वातावरण रहन-सहन और मिलने-जुलने के ख़याल से बड़ा ही अच्छा है। यह सब इन छात्रालयों के निरीक्षक डॉक्टर एम्० बी० रहमान, तथा श्री वे० के० नंदन मेनन आदि के सदुद्योग का ही परिणाम है।

दूसरी ओर जातीय भाव-भेद और वैमनस्य की विषैली पवन के भी कभी-कभी झोंके आ जाते हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के सिर उठाते ही यह दूषित हवा रुक-सी जाती है, फिर भी कभी-कभी हिंदू, मुसलमान, कायस्थ, क्षत्री का प्रश्न छोटी-मोटी सभाओं और संघों के पदाधिकारियों के चुनाव में उठते हुए दिखाई देता है। भाई-भाई में महाभारत कैसे छिड़ती है, इसकी पूर्ण शिक्षा छात्र-जीवन में ही प्राप्त हो जाती है, और ये ही छात्र भविष्य में, राष्ट्र के नेताओं के रूप में, देश के राजनीतिक क्षेत्र में, इसी कलह-नाट्य का अभिनय करते हैं। राष्ट्र के भावी विधाताओं को अभी से सावधान हो जाना चाहिए। यह पथ घातक है, इसे त्याग देना चाहिए।

ख़ाली समय में नवयुवक इकट्ठे बैठकर आपस में हँसी-दिल्लगी भी करते हैं। उनकी हँसी-दिल्लगी में बहुधा गंभीरता का अभाव होता है। नवयुवकों में ऐसी हँसी-दिल्लगी होना कोई नवीन बात नहीं, सभी देशों के नवयुवक ऐसी हँसी-ठठोली करते हैं।

विश्वविद्यालय के विद्यार्थी ख़ाली समय केवल हास्य-विनोद ही में नहीं व्यतीत कर देते। आज-कल उनकी भी दृष्टि भारत के स्वातंत्र्य-युद्ध की ओर दौड़ रही है। वे भी अपनी मातृ-भूमि की शोचनीय दशा पर आँसू बहाते हैं, वर्तमान शासन-प्रणाली की तीव्र आलोचना करते हैं, भारत के स्वातंत्र्य-युद्ध में हाथ बटाने की सोचते हैं, और माता की पुकार सुनकर बलिदान होने को भी उद्यत हो जाते हैं। भारत में नवयुवक-आंदोलन का प्रादुर्भाव हाल ही में हुआ है। लखनऊ-विश्वविद्यालय के विद्यार्थी बड़ी धूम से इस आंदोलन में भाग ले रहे हैं, नवयुवक ही

राष्ट्र के निर्माता होते हैं । राष्ट्र की दीन दशा पर उनका विकल होना, अपनी मातृ-भूमि की अवस्था पर सोच-विचार करना सर्वथा स्वाभाविक है ।

सर आशुतोष मुकर्जी ने ३० जनवरी, १६२४ को, उपाधि-वितरण-उत्सव के अवसर पर, अपने व्याख्यान में, शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए कहा था—

'The function of this education, all the world over, in all the worlds there are and in all ages, is what may fittingly be called emancipation. Education in the phraseology of archaic Law is monuments and edifices; first it frees the slave, next it builds the man.'

अर्थात् 'शिक्षा का कर्तव्य है स्वतंत्रता प्रदान करना, प्राचीन कहावत के अनुसार शिक्षा का कर्तव्य है सर्व प्रथम मनुष्य को परतंत्रता से मुक्त करना, फिर मनुष्य को आदर्श बना देना ।'

सर आशुतोष के इन शब्दों को लखनऊ-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने बड़े ध्यान से सुना था, और आशा की जाती है, लखनऊ-विश्वविद्यालय के विद्यार्थी निकट-भविष्य में ही सर आशुतोष के शब्दों को सार्थक करेंगे ।*

* १ जनवरी, १६३० का भेजा हुआ यह लेख, आज इस अंक में चित्रों के प्राप्त करने और उनका ब्लाक बनवाने में पर्याप्त समय लग जाने के कारण, प्रकाशित हो रहा है । इतने समय में लखनऊ-विश्वविद्यालय की स्थिति में कुछ-न-कुछ अंतर हो जाना स्वाभाविक ही है । संपादकीय टिप्पणी में इस त्रुटि को दूर करने की हमने यथा-शक्ति कोशिश की है । विलंब के लिये हमें दुःख है ।—संपादक

वर्ण-व्यवस्था

[प्रोफ़ेसर जीवनशंकर याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, इँगलिश-अध्यापक काशी-विश्वविद्यालय]

(१)



र्ण-व्यवस्था हिंदू-जाति की एक विशेषता है। अन्य देशों में भी समाज में कई श्रेणियाँ पाई जाती हैं, परंतु उनका आधार सामाजिक व राजनीतिक होता है। हमारे देश में वर्ण-व्यवस्था हिंदू-धर्म के आधार पर स्थित है। बौद्ध लोगों ने इसका विरोध किया, वैष्णवों ने इसकी उपेक्षा की, और सिक्खों ने इसे समूल नष्ट करने का यत्न किया। फिर भी वह आज विद्यमान है, और उसका अखंड प्रभाव हिंदू-जाति पर बना हुआ है। जब से इस देश में पाश्चात्य सभ्यता का रंग जमा, वर्ण-व्यवस्था का विरोध और भी प्रबल हो गया। परंतु यह कहना बड़े साहस का काम है कि इस व्यवस्था का अंत होना अवश्यंभावी है।

इस व्यवस्था के विषय में कई मत होना और उनमें परस्पर घोर विरोध होना एक स्वाभाविक बात है। परंतु दुराग्रह और पक्षपात ने तत्संबंधी विवाद को ऐसा दूषित कर दिया है कि तत्त्व-जिज्ञासु के लिये सत्य खोज निकालना एक गुरुतर कार्य हो गया है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह निश्चयात्मक निर्णय चाहता है, और उसके लिये बुद्धि-शक्ति के अनुसार यत्न भी करता है, और जब वह एक पक्ष को सत्य मान लेता है, तो विवेक की उपेक्षा कर अपनी सारी बुद्धि उसी के समर्थन में लगा देता है। फिर सांगोपांग विचार उसके लिये असंभव हो जाता है, और विचार-शक्ति एक संकुचित वृत्त में घिरकर संतोष कर लेती है। वर्ण-व्यवस्था के प्रश्न के संबंध में भी, जो दीर्घ काल से विवाद का विषय बन गया है, लोगों की प्रायः यही धारणा है कि जो मान बैठे हैं, वही सत्य है। वर्ण-व्यवस्था को नितांत निर्मूल और समाज के लिये सर्वथा हानिकर प्रमाणित करना उतना ही कठिन है, जितना कि उसका सर्व प्रकार से समर्थन करना असंभव है।

दो पक्ष तो बड़े तने हुए हैं, और एक दूसरे से खिंचकर हद तक पहुँच गए हैं। एक का विश्वास है कि हिंदुओं की दुर्बलता और अवनति का मूल कारण जाति-विभाग है, और वह एक ओर स्वार्थ और दूसरी ओर अज्ञान पर अवलंबित है। किसी देश में ऐसी अस्वाभाविक और प्रकृति-विरुद्ध व्यवस्था देखने में नहीं आती।

हिंदू-जाति को यदि अपने कल्याण की चिंता है, तो किसी प्रकार जाति-विभाग का शीघ्र अंत होना चाहिए। इस रोग ने समाज को जर्जर बना दिया है। दूसरा पक्ष शास्त्र का आधार लेकर इस व्यवस्था को परमात्मा-कृत मानता और हिंदू-धर्म का उसे प्रधान अंग समझता है। उसका यह भी विश्वास है कि अनेक दुर्घट-नाओं और आक्रमणों के समय समाज की रक्षा इसी ने की थी। हज़ारों वर्ष तक यदि हिंदू-सभ्यता और हिंदू-जाति संसार में जीवित रहे हैं, तो वे केवल वर्ण-व्यवस्था के कारण।

इन दोनो पक्षों में सत्य का अंश खोज निकालना प्रस्तुत लेख का आशय नहीं। दोनो को ही अपनी बात का पूर्ण आग्रह है। एक उसे समूल नष्ट करना चाहता है, तो दूसरा उसमें किसी प्रकार के सुधार की आवश्यकता ही नहीं समझता। काल-प्रभाव इस झगड़े का अंत कर सकेगा, और उभय पक्ष में सत्य के अंश की रक्षा करेगा। इन दोनो के मध्यवर्ती पक्षवालों का यहाँ संक्षेप में विचार किया जाता है। संभव है, परिस्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ सके।

जो वर्ण-विभाग को किसी रूप में समाज के लिये आवश्यक समझते हैं, उनमें से कुछ लोगों का कहना है कि गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार किसी व्यक्ति के वर्ण का निश्चय होना चाहिए। एक वर्ण से दूसरे वर्ण में प्रवेश करने का अधि-कार सबको समान रीति से प्राप्त है। जैसे सांसारिक बातों में मनुष्य उन्नति और अवनति करता है, ग़रीब से धनवान्, मूर्ख से विद्वान् तथा इसके विरुद्ध बन जाता है, वैसे ही गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार वह नीच वर्ण से उत्तम वर्ण में पहुँचने का अधिकारी है। स्वभाव, प्रकृति संयम से बदले जा सकते हैं। पापी भी सुकृती बन सकता है, तो वर्ण-परिवर्तन भी हो सकता है, अतएव जाति-बंधन उनकी दृष्टि में शिथिल हो सकता है। और, किसी वर्ण में केवल जन्म लेने-मात्र से ही आजन्म वही वर्ण बना रहे, ऐसा प्रकृति का कोई नियम नहीं। किसी परिवार में जन्म ग्रहण करना विशेष गुणों के उत्कर्ष में सहायक हो सकता है, परंतु यह कोई अनिवार्य नियम नहीं कि माता-पिता के समस्त गुण संतान में पाए जाते हों। प्रगति का आरंभ कहाँ से होगा, जन्म केवल इतना ही निर्णय कर सकता है। ये लोग कर्म को प्रधानता देते हैं, और अपनी बात के समर्थन में प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं कि यह प्रतिदिन का अनुभव है कि ब्राह्मणोचित कर्म और प्रकृति इतर जातियों में भी पाई जाती है, और शूद्र से भी अधम ब्राह्मण आदि की कोई कमी समाज में नहीं है। अस्तु, ये लोग वर्ण मानते तो हैं, परंतु उसका विभाग जन्म से न मानकर व्यक्तियों के गुण-कर्म पर छोड़ते हैं।

यदि इसी सिद्धांत के अनुसार समाज का विभाग और संगठन किया जाय, तो उसमें क्या हानि है ? इसमें हानि यही है कि इस प्रकार की व्यवस्था चल नहीं सकती । यदि उसका चलाना संभव भी हो, तो फिर वर्ण-विभाग की आवश्यकता ही नहीं रह जाती । असंभव तो इस कारण है कि किसी व्यक्ति के किसी समय वर्ण-निश्चय करने का अधिकार किस संस्था को दिया जा सकता है, और उसका निर्णय व्यक्ति और समाज के लिये कैसे मान्य बनाया जा सकता है । कोई संस्था इस कार्य को कर ही नहीं सकती । गुण-कर्म-स्वभाव की परीक्षा और वह भी यथार्थ अचूक परीक्षा के साधन किसी संस्था के पास नहीं हो सकते । यदि बाह्य कर्म से ही किसी व्यक्ति की वर्ण-परीक्षा की जाय, तो उसमें भी त्रुटि होना आसान है, और सही जाँच कठिन है । फिर मनुष्य के मन की गति जानना तो और भी कठिन है । गीता में जिस-को मिथ्याचार कहा है, उससे कौन व्यक्ति बचा हुआ है ? समाज और लोक-भय से मर्यादा का पालन प्रत्यक्ष तो हम करते हैं, परंतु मन की गति कौन जान सकता है ? जेल में पड़े सभी दोषी नहीं, वैसे ही बहुत-से भले समझे जानेवाले भले नहीं । उनको पाप करते यदि किसी ने कभी नहीं देखा, तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने पाप किया ही नहीं, या उनका मन भी, जैसा हम समझते हैं, वैसा ही शुद्ध है । फिर यह भी कठिनाई है कि किन गुणों के विशेष होने पर और वह भी कितनी मात्रा या परिमाण में विद्य-मान हों, तब वर्ण का निश्चय हो सकेगा । सब जातियों के मनुष्यों में गुण-अवगुण तो वे ही हैं, केवल उनकी मात्रा में घट-बढ़ होती है । इतनी बारीक छान-बीन क्या संभव है, और किस प्रकार हम बिना भूल किए निश्चय रूप से किसी के वर्ण का निश्चय कर दें ? निर्णायक संस्था भी तो मनुष्यों की ही होगी । उन निर्णायकों में पक्षपात बिल्कुल न हो, तत्त्व को देखने में बिल्कुल भूल उनसे न हो, ऐसा भी कब संभव है । एक ही व्यक्ति में शूद्रोचित और ब्राह्मणोचित गुणों का समान रूप से विद्यमान होना असंभव नहीं, तो क्या ऐसा व्यक्ति किसी क्षण ब्राह्मण और किसी क्षण शूद्र हो सकता है ? यदि ऐसा हो सकता है, तो फिर वर्ण-विभाग की आव-श्यकता ही क्या रह जाती है, और जो उसका एक ही वर्ण निश्चित है, तो यह भी भ्रम है, भूल है । गुण-कर्म-स्वभाव की जाँच के लिये और उनकी बारीकियों को समझने के लिये समाज के पास कोई उपाय नहीं । और भी बहुत-सी उलझनें ऐसी व्यवस्था में उत्पन्न हो सकती हैं । उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं । केवल कर्म से जाति माननेवालों को इसी निश्चय पर पहुँचना पड़ेगा कि पहले तो ऐसी व्यवस्था

असंभव है, और फिर यदि ऐसा हो भी सकता, तो वर्ण-विभाग बिल्कुल निरर्थक है। कर्म के आधार पर व्यवस्था करनेवालों में और जाति को एकदम उड़ा देनेवालों में फिर वास्तविक कोई अंतर ही नहीं रह जाता। बिना चाहे भी वे वर्ण-व्यवस्था का सर्वथा नाश ही कर देंगे। उनकी धारणा चाहे बुद्धि-ग्राह्य मालूम होती हो, परंतु उनके सफल होने पर जाति-विभाग का सुधार न होकर अंत ही होना संभव है।

प्राय: विश्वामित्रजी का उदाहरण दिया जाता है, और वर्ण-परिवर्तन की बड़ी प्रामाणिक मिसाल दी जाती है कि वे क्षत्रिय थे, और ब्राह्मण बन गए, और अंत में उनके विपक्षियों को भी उन्हें ब्रह्मर्षि मानना पड़ा। इस लेख में शास्त्र के प्रमाण और आशय का आधार नहीं लिया गया है, तो भी विश्वामित्र के संबंध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके अतिरिक्त और एक भी ऐसे व्यक्ति का उल्लेख नहीं मिलता, जिसका वर्ण बदला हो। फिर जहाँ यह लिखा मिलता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे, और घोर तपस्या से ब्राह्मण बन गए, वहाँ इस बात का इशारा तक नहीं कि किस तपस्या से और किन उपायों से वह सफल-मनोरथ हुए थे। वह विधि क्या थी, इसका पता किसी शास्त्र या पुस्तक से नहीं चल सकता। फिर उसका अनुकरण ही कैसे हो सकता है? यह तो निश्चय है कि वर्ण-परिवर्तन के लिये कोई साधन नहीं बनाया गया, और प्राचीन काल में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में जाने की प्रथा नहीं पाई जाती। किसी संस्कार-विशेष का विधान भी कहीं नहीं मिलता। अपने वर्ण से पतित होने का तो उल्लेख बहुत मिलता है, परंतु नीचे वर्ण से ऊपर के वर्ण में जाने की एक ही मिसाल मिलती है, और वह है विश्वामित्र की।

पतित होने के कारण तो शास्त्रों में मिलते हैं, परंतु उच्च वर्ण का मनुष्य पतित होकर द्विजातियों के किसी नीचे वर्ण में प्रवेश कर सके, ऐसी भी प्रथा नहीं थी, और न शास्त्र की आज्ञा है। अर्थात् कोई ब्राह्मण यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य बनना चाहे, तो नहीं बन सकता था। पतित हो जाना और अपने से नीचे वर्ण में चले जाना एक ही बात नहीं थी। इसका कारण यह था कि प्राचीन काल में वर्ण जन्म से ही माना जाता था। यदि जन्म से वर्ण न माना जाता, तो कम-से-कम ऊपर के वर्ण से नीचे के वर्ण में जाने के लिये कोई विशेष बाधा न होती। ऊपर के वर्ण में जाने की रोक होती भी, परंतु नीचे के वर्ण में उतरने में कोई अड़चन न डाली जाती। वास्तव में ऐसा नहीं था। इससे यह तो निश्चय कहा जा सकता है कि वर्ण-विभाग जन्म पर निर्भर था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, केवल गुण, कर्म

और स्वभाव से वर्ण-विभाग संभव नहीं, उसी प्रकार केवल जन्म पर भी वह अवस्थित नहीं। यदि केवल जन्म पर ही वह निर्भर होता, तो कर्म और गुण की उपेक्षा की जाती। आजकल यही दशा हो रही है। जन्म से वर्ण माननेवाले वर्णोचित कर्म की ओर उचित ध्यान नहीं देते। समाज के भ्रष्ट होने का कारण यही है कि जन्म-सिद्ध अधिकार समझकर हम वर्ण-विशेष के आदर्श को भूल बैठे हैं। समाज में जो आज अनेक जातियाँ और उप-जातियाँ बन गई हैं, वे शास्त्र-सम्मत कदापि नहीं, और न शास्त्र का यही आशय रहा है कि केवल जन्म लेने से ही किसी वर्ण-धर्म के प्रति हमारे कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है।

विचार करने पर यह मालूम होता है कि एक ओर जन्म और दूसरी ओर गुण-कर्म-स्वभाव, दोनों के ही सहारे वर्ण-व्यवस्था चल सकती है, अन्यथा नहीं। जाति-विभाग को किसी रूप से न मानना न्याय-संगत हो सकता है। ईमानदारी से बहुत-से लोग इसका विरोध करते हैं, परंतु जो इसकी किसी भी रीति से रक्षा करना चाहते हैं, उनके लिये एक ओर जन्म और दूसरी ओर गुण, कर्म आदि का सहारा लेना पड़ेगा। केवल जन्म के भरोसे रहने में मनुष्य गुण-हीन होकर वर्ण के आदर्श से भ्रष्ट हो जायँगे, जैसा कि आजकल देखा जाता है, और दूसरी ओर केवल गुण-कर्म का आश्रय लेकर व्यवस्था हो ही नहीं सकती, और ऐसा करने से वर्ण-व्यवस्था समूल नष्ट हो जायगी।

अतएव व्यवस्था माननेवालों के लिये एक ही मार्ग रह जाता है कि जन्म से वर्ण मानें, और गुण-कर्म से उसकी रक्षा करें। वर्ण-निर्णय में जन्म माननीय हो, और उसके निबाहने में, अपने उत्कर्ष में, गुण-कर्म की सहायता ली जाय। इसके अतिरिक्त और जो कुछ हो सकता है, वह वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण विरोध ही है, दूसरी बात के लिये अवकाश नहीं। वर्ण-विशेष का कर्तव्य होना चाहिए कि उसके अंतर्गत जो मनुष्य हों, उनकी धार्मिक, नैतिक आदि उन्नति के लिये उप-युक्त वातावरण उपस्थित करे, और व्यक्तियों पर लोकमत का ऐसा प्रभाव डाले कि वे अपने वर्ण में रहते हुए सर्व प्रकार अपनी उन्नति कर सकें।

फिर वर्ण-संबंधी और भी कई प्रश्न हैं, जो उपर्युक्त मत को स्वीकार करने पर विचारणीय हैं। वर्तमान स्थिति देखकर हिंदू-समाज की रक्षा और हित के लिये जिन उपायों को काम में लाना अत्यावश्यक है, और जिनसे वर्ण-व्यवस्था को वर्तमान दुरवस्था से बचकर जाति की उन्नति हो सकती है, उन पर स्वतंत्र विचार फिर किया जायगा। जो निष्कर्ष निकाला जायगा, उसका आधार उपर्युक्त निश्चय पर निर्भर है। इसी को मानकर आगे विचार करना है।

प्रसादजी का एक नाटक

[श्रीयुत कृष्णानंद गुप्त]



जयशंकरप्रसादजी की प्रतिभा बहु-मुखी है। वे कवि हैं, नाटक-कार हैं, कहानी-लेखक हैं, और औपन्यासिक भी हैं। पर मुझे केवल नाटककार प्रसादजी से प्रयोजन है।

प्रसादजी की सर्व-प्रसू लेखनी से अब तक कई नाटक प्रसूत हो चुके हैं। कहानियों की भाँति इन नाटकों को भी किसी ने विश्व-साहित्य की चीज़ें बताया है या नहीं, इसका मुझे पता नहीं। पर उनके एक नाटक स्कंदगुप्त को पढ़कर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि कहानी-लेखक प्रसादजी की यह रचना सर्वथा उनकी कहानियों के अनुरूप हुई है। उनके समालोचक उनकी प्रत्येक नई रचना के संबंध में लिखा करते हैं—अद्भुत है, अपूर्व है, अद्वितीय है, अतुलनीय है, विश्व-साहित्य की चिरस्थायी सामग्री है, और उसमें कसक है, टीस है, मसोस है, वेदना है, पीड़ा है, दुःख है, शोक है, संक्षेप में हृदय को अभिभूत और चकनाचूर कर देने के लिये जितने तीव्र आवेग और विकार पर्याप्त हो सकते हैं, वे सभी हैं। पर उन्होंने कभी यह बताने की चेष्टा नहीं की कि प्रसादजी की रचनाओं में क्या नहीं है। आज मैं अपने पाठकों को यही बताना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि मेरे इस प्रयत्न से, आजकल प्रसादजी की कला-पूर्ण कृतियों को लेकर हिंदी में आलोचनात्मक साहित्य-सृष्टि का जो आयोजन हो रहा है, उसकी आंशिक नहीं, तो शतांश अथवा सहस्रांश पूर्ति अवश्य हो जायगी।

मैं स्कंदगुप्त को ही लूँगा। यह लेखक की एक प्रसिद्ध रचना है। एक समालोचक ने—जिनके हृदय में लेखक की कला के प्रति बड़ी भारी श्रद्धा है—द्विजेंद्र बाबू के मेवाड़-पतन के साथ इसका नामोल्लेख किया है। उनकी सम्मति में मेवाड़-पतन और स्कंद-गुप्त ये दोनो ही भारतीय साहित्य के श्रेष्ठ जातीय नाटक हैं। मेवाड़-पतन हमने बहुत दिन हुए तब पढ़ा था। हमें एक बार उसका अभिनय देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। वह द्विजेंद्र बाबू की सफल रचना है अथवा नहीं, इस पर विचार करना हमें अभिप्रेत नहीं। पर इसमें संदेह नहीं कि वह नाटक है। उसके साथ स्कंदगुप्त का नाम जुड़ा देखकर हम तो आश्चर्य से अवाक् होकर रह गए। हम तो यह समझते थे कि हिंदी के बुरे दिन बीत गए। उस पर अंध विश्वास की जो अँधियारी छाई थी, वह हट गई, और अब हम प्रकाश की नई ज्योति देख रहे हैं, जो हमें ज्ञान और विज्ञान, विवेक और विवेचना, शील और साहस की ओर अग्रसर कर रही है। पर जिस हिंदी में स्कंदगुप्त के लेखक की प्रत्येक रचना विश्व-साहित्य की चीज़ बन जाती है, और जिसके पाठक उस रचना को निस्संकोच भाव से वैसा ही स्वीकार कर लेते हैं, उस हिंदी का ईश्वर ही मालिक है। अन्य देशों के साहित्य-सेवी हमारी इस दयनीय दशा का यही अर्थ लगा सकते हैं कि या तो हमने अभी विश्व-साहित्य की कोई चीज़ ही नहीं पढ़ी, या हमारी साहित्यिक रुचि ऐसी अविकसित और अप्रौढ़ है कि हम सत् और असत्, उत्कृष्ट और निकृष्ट का भेद-भाव ही नहीं समझ सकते, अतएव हम इस योग्य भी नहीं कि विश्व-साहित्य की कोई रचना हमारे हाथ में दी जाय। क्योंकि यहाँ तो सब धान बाईस पसेरी हैं।

वास्तव में स्कंदगुप्त इस योग्य ही नहीं है कि यहाँ उसकी चर्चा की जाय, और न वह ऐसी चीज़ है कि उसकी आलोचना करने जाकर नाट्य-कला के उच्च

और भारी-भरकम सिद्धांतों को कष्ट दिया जाय। नाटक के साथ लेखक की इस रचना का वही संबंध है, जो किसी रंगीन क़ालीन का चित्र के साथ। क़ालीन में ऐसे रंग होते हैं, जिनके सदुपयोग से सदैव ही एक दर्शनीय और कला-पूर्ण चित्र अंकित किया जा सकता है। उसी भाँति लेखक के स्कंदगुप्त में भी ऐसी सामग्री मौजूद है, जिसे लेकर सदैव ही एक सुंदर और सुपाठ्य नाटक की रचना की जा सकती है। इस प्रकार की सामग्री को, भानमती के बट्टों की तरह, दर्शकों के सम्मुख बिखेर देना ही यदि उच्च कोटि की नाट्य-कला का चरम निदर्शन है, तो स्कंदगुप्त निस्संदेह एक उत्कृष्ट रचना है, और प्रसादजी एक श्रेष्ठ नाट्यकार हैं, और सदैव रहेंगे।

पर इस प्रकार काम नहीं चलेगा। मैं देखता हूँ कि मुझे ये पन्ने रँगने ही पड़ेंगे। नाट्य-कला के उच्च सिद्धांत में विद्यार्थियों की विवेचना के लिये छोड़ता हूँ। मैं तो केवल ऐसी बातों का उल्लेख करूँगा, जिनके प्रकाश में मैं और मेरे पाठक, दोनो ही इस बात को देख सकें कि स्कंदगुप्त भारतीय साहित्य का एक चमकता हुआ रत्न है या झूठा मोती।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं स्कंदगुप्त के प्लाट को संक्षेप में लिखकर उसकी विवेचना करता। पर ऐसा करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। क्योंकि नाटक में वर्णित घटनाएँ ऐसी अविकसित और विशृंखल हैं कि उनको एकता के सूत्र में ग्रथित करना कठिन ही है।

स्कंदगुप्त को आप घटनाओं की काल-कोठरी कह सकते हैं, जिसके भीतर लेखक ने निर्दयता-पूर्वक इतनी घटनाएँ लेकर ठूँस दी हैं कि स्थानाभाव के कारण उनका दम घुट रहा है। कई तो चेतना-हीन होकर निर्जीव हो गई हैं, और कुछ कथानक की बंद कोठरी के भीतर स्थान न पाकर बाहर पड़ी हुई अपना सिर धुन रही हैं। उदाहरण के लिये आप १२१ पेज के दृश्य को किसी तरह भी कथानक के भीतर नहीं ठूँस सकते। पृष्ठ १२७ के दृश्य की भी कोई अधिक उपयोगिता हमारी समझ में नहीं आई। ब्राह्मणों और बौद्धों के शुष्क और निरर्थक वाद-विवाद की अपेक्षा यदि हूणों और भारतीयों का संघर्ष दिखाया जाता, तो कथा-वस्तु की अधिक पुष्टि होती। पहला अंक इतना बढ़ गया है कि उसकी वजह से नाटक की नाक कुछ अधिक लंबी हो गई है। संभव है, कुछ लोगों की दृष्टि में इससे नाटक का सौंदर्य बढ़ गया हो। पर प्रारंभ के नौ पेज किसलिये रँगे गए हैं? केवल स्कंदगुप्त को उसके अधिकारों का भान कराने के लिये? साम्राज्य की स्थिति डावाँडोल है। पुष्यमित्रों (!) से युद्ध हो रहा है। इधर शक अपना सिर उठा रहे हैं। देश में बड़ी-बड़ी घटनाएँ घटित हो रही हैं। परंतु स्कंदगुप्त को किसी का ज्ञान नहीं। वह एक ही साथ अनेक बातें सुनता है। बात यह है कि अनभिज्ञ पाठकों को तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का ज्ञान कराना आवश्यक था, इसलिये लेखक ने पाठकों की अनभिज्ञता स्कंदगुप्त के मत्थे मढ़ दी। पर प्रसादजी को यह जानना चाहिए कि दर्शक केवल कथोपकथन सुनने के लिये किसी नाटक का अभिनय देखने नहीं जाता। वह कार्य-व्यापार देखना चाहता है। और जिस नाटक के प्रारंभ में ही उसे शीघ्र-से-शीघ्र आगे होनेवाली किसी घटना का पूर्वाभास नहीं मिल जाता, उसका अभिनय देखने के बजाय वह आराम से पैर फैलाकर ऊँघना ज़्यादा पसंद करता है।

लेखक को मानवी भावों के सूक्ष्म विश्लेषण का उतना ही ज्ञान है, जितना दसवें दर्जे के विद्यार्थी को जटिल रासायनिक सम्मिश्रणों के विश्लेषण का। स्कंदगुप्त अधिकार-सुख को मादक और सार-हीन समझता है। उसे साम्राज्य का लोभ नहीं। वह केवल दस्युओं और लुटेरों के हाथ से देश की रक्षा करना चाहता था। निस्संदेह ऐसे व्यक्ति का हृदय विशाल होना चाहिए, और बल, विक्रम, साहस तथा वीरता से भरा हुआ भी। पर लेखक के स्कंदगुप्त

में इनमें से किसी भी गुण का विकास नहीं हुआ। उसके स्कंदगुप्त में वीरोचित भावों का भारी अभाव है। वह विपत्ति को सम्मुख देखकर अधीर हो जाता है। यह जानकर कि भटार्क ने विश्वासघात किया है, वह घबरा उठता है। यह घबराहट क्या एक वीर सेना-नायक के योग्य है ? एक जगह वह कहता है—"आह ! मैं वही स्कंद हूँ, अकेला, निस्सहाय !" निस्संदेह यह उद्गार उसके योग्य नहीं हुआ। तभी तो एक स्त्री उसे उद्बोधित करने की आवश्यकता समझती है! देवसेना को बचाने में भी स्कंद के पौरुष की आवश्यकता नहीं पड़ी। नेपथ्य में 'बचाओ, बचाओ' का शब्द होता है। स्कंद तुरंत खड्ग लेकर जाता है। देवसेना का पीछा करते हुए हूण प्रवेश करता है। देवसेना आत्महत्या का प्रयत्न करती है। पर्णदत्त सहसा न-जाने कहाँ से आकर उसकी रक्षा करता है। यह सब कुछ सूर्य के खुले प्रकाश में हो जाता है। बेचारा स्कंद ! बावले की तरह कहता है—"कोई नहीं मिला ! कहाँ से पुकार आई थी !" क्या देवसेनावाली घटना किसी बंद कोठरी के भीतर घटित होती है ? अथवा स्कंदगुप्त स्वयं ही उस घटना के साथ आँख-मिचौनी खेलता है ?

सबसे बढ़कर मज़े की बात तो यह है कि जो स्कंदगुप्त अधिकार-सुख को मादक और सार-हीन समझता है, वही मालवेश्वर बंधुवर्मा के सिंहासन को विना किसी नकार के चुपचाप स्वीकार कर लेता है। शुरू में वह बंधुवर्मा से कहता है—"मित्र मालवेश ! बढ़ो, सिंहासन पर बैठो ! हम लोग तुम्हारा अभिनंदन करें।" यह कथन कितना भद्दा है, कहने की आवश्यकता नहीं, पर इससे इतना प्रकट हो जाता है कि अभी सिंहासन पर स्कंदगुप्त के बैठने की बात तय नहीं हुई है। पाठक अथवा दर्शक अब यह देखना चाहते हैं कि बंधुवर्मा के यह कहने पर कि "सम्राट् ! सिंहासन आप ही ग्रहण कीजिए।" वीरमना और निस्पृही स्कंदगुप्त के हृदय में कर्तव्य और कामना के बीच कैसा द्वंद्व मचता है। यह एक ऐसा स्थल है, जहाँ स्कंदगुप्त के चरित्र के विकास के लिये बड़ी गुंजाइश है। इस जगह उसके और गोविंदगुप्त के बीच का कथोपकथन बहुत ही विदग्ध और सुंदर बनाया जा सकता था। पर लेखक ने इसकी ज़रूरत नहीं समझी। वह वीर स्कंद के मुँह से केवल इतना कहलाकर कि "तात ! विपत्तियों के बादल घिर रहे हैं, अंतर्विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित है, इस समय मैं केवल एक सैनिक बन सकूँगा, सम्राट् नहीं", उसे हाथ पकड़कर सिंहासन पर बिठाल देता है। लेखक की इस अनहोनी चेष्टा से स्कंदगुप्त पहले तो मानो कुछ स्तंभित-सा रह जाता है, और फिर सजग होने पर विना कुछ कहे बंधुवर्मा के गुरुभार उत्तरदायित्व को अपने कंधों पर उठा लेता है। धन्य है स्कंदगुप्त का त्याग !

स्कंदगुप्त को मैं यहीं छोड़ता हूँ। मातृगुप्त का चरित्र और भी विशद है। उस कवि-शिरोमणि के सूक्ष्म मनोभावों को व्यक्त करने में लेखक ने क़लम तोड़ दी है। हम यह नहीं कहते कि लेखक में प्रतिभा नहीं है। पर उसका उपयोग कैसा हुआ है, यही देखने की बात है।

लेखक की कल्पना विविध चित्र उद्भावित करती है। परंतु उसका विवेक किसी चित्र की रूप-रेखा तक को नहीं सँभाल पाता। उसमें रंग भरने की तो बात ही क्या, कार्य-कारण-संबंध तक का, जान पड़ता है, उसको बोध नहीं। किस भाव के उदय होने पर कार्य-स्वरूप कौन-सा भाव जन्म लेता है, इस पर शायद उसने कभी विचार ही नहीं किया। और, आनुषंगिकता (Sense of proportion) से तो कदाचित् उसका परिचय ही नहीं।

रघुवंश और शकुंतला के रचयिता, उस कवियों के भी कवि कालिदास के संबंध में हम तो कुछ कह ही नहीं सकते। केवल उसके नाम के सम्मुख श्रद्धा से अपना मस्तक झुका सकते हैं। उसे किसी भी रूप में रंगमंच पर उपस्थित करना बड़े कौशल का

काम है, और मैं तो समझता हूँ, दुस्साहस भी है। स्कंदगुप्त के लेखक ने मातृगुप्त के रूप में कालिदास को अवतरित किया है। निस्संदेह उसकी प्रतिभा बड़ी उग्र और निरंकुश है ; कला-कुशल न हो, यह दूसरी बात है। वह मातृगुप्त को एक भूखे भठियारे से ऊँचा नहीं उठा सकी। इससे बढ़कर और क्या होगा ?

प्रथम अंक के सोलहवें पृष्ठ में मातृगुप्त सड़क पर फेरी-सी देता हुआ स्वगत भाषण करता है—

"कविता करना अनंत पुण्य का फल है। इस दुराशा और कवि-अनंत-उत्कंठा से जीवन व्यतीत करने की इच्छा हुई। संसार के समस्त अभावों को असंतोष कहकर हृदय को धोखा देता रहा। परंतु कैसी विडंबना ! लक्ष्मी के लालों का भ्रू-भंग और क्षोभ की ज्वाला के अतिरिक्त मिला क्या ? एक काल्पनिक प्रशंसनीय जीवन, जो कि दूसरों की दया से अपना अस्तित्व रखता है। संचित हृदय-कोष के अमूल्य रत्नों की उदारता, और दारिद्र्य का व्यंग्यात्मक कठोर अट्टहास, इस विषम अवस्था की कौन व्यवस्था करेगा ? मनोरथ को—भारत के प्रकांड बौद्ध पंडित को—परास्त करनेवाले लोगों में मैं भी सबकी प्रशंसा का भाजन बना। परंतु क्या हुआ ?"

कविता करना अनंत पुण्य का फल अवश्य है। पर 'इस दुराशा और कवि-अनंत-उत्कंठा' में किस ज़मीन-आसमान के क़ुलाबे मिला दिए हैं ? अनंत पुण्य के फल के बाद भी दुनिया में रोटियों के लाले पड़े रहना एक संभव तथ्य है, और 'अनंत पुण्य के फल' के बाद अनंत उत्कंठा कवि का स्वाभाविक लक्षण होता। परंतु 'दुराशा' ने दिमाग़ में ज़ोर का धक्का दिया ; 'अनंत उत्कंठा' पिछड़ गई और दुराशा पहले टपक पड़ी ; और फिर दुराशा और अनंत उत्कंठा से जीवन व्यतीत करने की इच्छा ! कैसा भीषण दार्शनिक सत्य खोज निकाला ! लेखक परवशता और इच्छा में कोई अंतर ही नहीं समझता। फिर संसार के समस्त अभावों को यह बेचारा बुद्धू असंतोष की संज्ञा देता रहा ! कहने की आवश्यकता नहीं कि दिमाग़ के भीतर कुश्ती लड़के "अभावों के असंतोष" को पछाड़-पछाड़कर 'दुराशा' पहले भाग निकली, तब लेखक को पता चला कि कवि को जिन ज़रूरी चीज़ों का अभाव दुनिया में रहा, उनके संबंध में उस बेचारे से कहलाओ कि—उँह, यह ज़रूरी नहीं है—उनकी दुष्प्राप्यता या अलभ्यता ही मेरे जी की मसोस का कारण है। पहले जब यह अभाव अखरा होगा, उसको असंतोष का रूप देकर मनसमझौती की होगी, तब समष्टि-रूप में कई मर्तबा के कटु अनुभव के बाद वह भाव दुराशा की संज्ञा प्राप्त कर सका होगा। पर इससे लेखक को क्या ? अनंत-पुण्य एक खनकता हुआ पद है, और अनंत-उत्कंठा में ढोल के बजने की ढमकार है। किसी तरह दोनो पद पास-पास आ जायँ, बस इतने ही उद्देश्य की प्रेरणा के वशीभूत होकर यह विपर्यय उपस्थित किया गया। और देखिए, कैसी विडंबना ! "लक्ष्मी के लालों का भ्रू-भंग और क्षोभ की ज्वाला" कितना अनंत, अखंड, प्रचंड—और कितनी थापें मृदंग पर दी जावें ?—दुःखांत वीभत्स इस वाक्य में है। "लक्ष्मी के लाल !" ओफ़्, जो कवि रुपयों के चलते-फिरते ढेरों को लक्ष्मी का लाल कहे, कितना लोलुप, लालची, उठाईगीरा होना चाहिए वह ! और उनका 'भ्रू-भंग' ! कोमल-कांत-पदावली और कोमल कांततर कल्पनाएँ जिसके जीवन का आधार हों, वह 'भ्रू-भंग' को किसी कोमल-कांत-स्थली से उखाड़कर चाँदी के घूरे पर फेंक दे ! किसकी उपासना करते-करते किसके पैर चूमने झुक गया ! ग़नीमत यह है कि लेखक को इस बात का आग्रह नहीं कि यह मातृगुप्त ही कालिदास है ! ईश्वर करे, लेखक का यह आग्रह दुराग्रह में परिवर्तित होकर अटल और अचल बना रहे। पर इतिहास-प्रसिद्ध, राजतरंगिणी के मातृगुप्त के साथ जैसा अत्याचार प्रसादजी ने किया है, वैसा किसी के साथ कभी न किया गया

होगा। "लक्ष्मी के लालों" का भ्रू-भंग इस भिखारी के मन में क्षोभ की ज्वाला उत्पन्न करता है! अरे भाई, जब झोली डालकर ही निकले, तब एक घर पर एक टुकड़ा न मिला, न सही। दूसरा घर देखो। फिर तीसरा। फिर भी न मिले, तो लीला विसर्जन करते कितनी देर लगती है! लेखक के कुमारामात्य पृथ्वीसेन, महाप्रतिहार और दंडनायक कुछ भी कारण न होते हुए किस सफ़ाई के साथ अपनी छाती में छुरी को स्थान दे देते हैं! पर जहाँ मुद्गल मातृगुप्त से इस तरह की बातें कहता है कि 'भाई, मुझे तुम पर बड़ी दया आती है। चलो तुम्हारा कहीं ठिकाना लगा दूँ। पर एक बात है, राजकृपा का अधिकारी होने के लिये समय और चापलूसी की आवश्यकता है', वहाँ बेचारे मातृगुप्त को लेखक ने यह साधन भी नसीब न होने दिया। मुद्गल की बात सुनकर भूखा और भिखारी मातृगुप्त खुश होकर कहता है—"आपकी बड़ी दया हुई। मैं आपके साथ अवश्य चलूँगा।" फिर चाहे कविता करने की "कवि-अनंत-उत्कंठा" को घूरे पर फेंककर राजाओं के तलवे ही क्यों न चाटना पड़ें! छिः-छिः क्या राजतरंगिणी में वर्णित मातृगुप्त ऐसा ही था? और, मुद्गल के साथ उज्जयिनी जाकर उसे करना क्या पड़ता है? जासूसी, हूणों से युद्ध और सेना का संचालन। तब तक बेचारे की कविता सिर ही धुनती रही!

फिर इस मातृगुप्त के मुँह से 'संसृति के वे सुंदरतम क्षण यों ही भूल नहीं जाना'-वाली कविता तो बहुत ही अद्भुत और अपूर्व बनी है। देखकर एक बार कालिदास भी शरमा जायँ। पर, क्यों भाई, क्या यह कविता उस ज़माने के भावों के अनुकूल है? अजी, लेखक से तो ऐसी बात ही पूछना व्यर्थ है। प्रसादजी का मुद्गल आजकल के पंडितों की भाषा में बात करता है, 'काणाम करके', और 'जो है सो' के तकियाकलाम के साथ! क्या गुप्त-काल के किसी शिला-लेख में इसका भी उल्लेख मिला है? और, इस मुद्गल को लेकर लेखक ने हास्य-रस की सृष्टि करने का जो प्रयास किया है, उसकी विफलता ही हमारे लिये हास्य की प्रचुर सामग्री जुटा देती है। इस दृष्टि से मुद्गल एक सफल पात्र है।

अनंतदेवी बिलकुल ही निर्जीव स्त्री है। उसका कोई रूप ही हमारे सामने खड़ा नहीं होता। वह गुप्त-साम्राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र रच रही है। वह मगध के सिंहासन को अपनी मुट्ठी में करना चाहती है। उसे अपनी शक्ति पर इतना विश्वास है कि अपनी नियति का पथ अपने पैरों चलेगी। पर उसकी वह शक्ति क्या है, इसका हमें कहीं पता नहीं चलता। उसमें न तो तेज है, न साहस है, न कूटनीतिज्ञता है, और न रहस्य-भेदिनी तीक्ष्ण बुद्धि। भटार्क के सामने बिना किसी संगत कारण के ही वह अपनी दुर्बलता प्रकट कर देती है, और आँसू बहाने लगती है। और, भटार्क ऐसा बुद्धू है कि इस प्रकार कातर हो उठनेवाली स्त्री को साहसशीला समझता है। वास्तव में यह भटार्क है भी कुछ अजीब आदमी। एक जगह तो वह कहता है कि "मुझे अपने ही बाहु बल से मगध के महाबलाधिकृत का माननीय पद मिला है", फिर उसके बाद ही तुरंत अनंतदेवी की चापलूसी करता हुआ अपने पूर्व कथन को भूलकर कहता है—"और यह भी मुझे स्मरण है कि पृथ्वीसेन के विरोध करने पर भी आपकी कृपा से मुझे महाबलाधिकृत का पद मिला है। मैं कृतघ्न नहीं हूँ, महादेवी!" बेचारे का दिमाग़ ठिकाने नहीं। ऐसा व्यक्ति यदि साधारण-सी बातचीत को विद्रूप और व्यंग्य-बाण की वर्षा समझकर अकारण ही मगध-साम्राज्य को उलट-पुलट कर देने पर उतारू हो जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अनंतदेवी की एक मनोवृत्ति हमारी समझ में नहीं आई। वह सबके समक्ष महाराज से—अपने पति से—नर्तकियों को बुलाकर लाने की बात कहती है। क्या उसका हृदय स्त्री-जन-सुलभ कोमल भावों से ऐसा ही शून्य है? अथवा वह जान-बूझकर पति का सर्वनाश करने के उद्देश्य से उसे भोग-विलास के पथ पर अग्रसर करना चाहती है? तब तो यह बात इस

प्रकार खोलकर कहने की नहीं । इसी दृश्य में कुमारगुप्त मगध-साम्राज्य की पट्ट महादेवी को संवाद भेजता है कि "आज तो कुछ पारसीक नर्तकियाँ आनेवाली हैं, आपानक भी है ! महादेवी से कह देना, असंतुष्ट न हों, कल चलूँगा । समझा न मुद्गल ।" छिः-छिः ! आज तक किसी भी लंपट, शराबी और वेश्याचारी नृपति पति ने अपनी पत्नी के लिये—जिसके उच्च पद-गौरव से वह परिचित हो—ऐसा कुत्सित और हृदय को विक्षोभित करनेवाला समाचार न भेजा होगा । कुमारगुप्त की बात सुनकर युवराज भट्टारक की कल्याण-कामना के हेतु, चक्रपाणि भगवान् की पूजा के लिये बैठी हुई महादेवी के हृदय पर क्या बीती होगी, इसे भगवान् ही जाने ।

विजया पहले स्कंदगुप्त और फिर भटार्क के प्रति आकृष्ट क्यों हुई, और देवसेना के लिये कृत्या-अभिशाप की ज्वाला क्यों बन गई, पाठकों के संमुख इसका कोई संतोषजनक कारण उपस्थित नहीं किया गया । किया भी गया हो, तो भाषा के घटाटोप के भीतर उसे खोज निकालना बहुत सहज नहीं । नाटककार, अपने पात्रों के मुँह से, जब जो मन में आता है, वही कहलवा देता है । उनको हँसाना, रुलाना और बात करते-करते उनकी लीला विसर्जन कर देना उसके हाथ में है । शर्वनाग की स्त्री रामा कभी तो शिष्ट बन जाती है, कभी तू-तड़ाक करने लगती है, और कभी मधुर 'स्वामी' संबोधन पर आ जाती है । देवसेना युद्ध के समय "भरा नैनों में, मन में रूप ।" यह गीत गाकर अपने भैया को अंतःपुर का भार सँभाल लेने का विश्वास दिलाती है । बेचारा बंधुवर्मा बात करते-करते दम तोड़कर संसार की असारता का बढ़िया निदर्शन उपस्थित करके चला जाता है । देवकी भी "आह ! गया मेरा स्कंद !! मेरा प्राण ।" कहकर अपने प्राण छोड़ देती है । वह जीवित रहती और स्कंद उससे फिर आकर मिलता, तो क्या इससे घटना में कुछ चमत्कार न आ जाता ! परंतु पात्रों की जटिलता में से बिना प्रयास के एक टल गया, यह क्या बुरा हुआ !

प्रकृति भी लेखक के वश में जान पड़ती है । पृष्ठ २६ में बादल की गरज सुनकर भटार्क कहता है—"ओह, ठीक समय हो गया ।" बादल न हुआ, अलार्म टाइमपीस हुई । चाबी भर दी । ठीक वक्त पर आवाज़ हुई, 'और समय हो गया !'

एक और तमाशा देखिए । हूण बड़े वीर, बड़े नृशंस और बड़े आततायी हैं । पर स्कंदगुप्त अथवा गोविंदगुप्त की तलवार खिंची नहीं कि उनकी नानी मर जाती है । और, हथियार रखकर उनसे भागते ही बनता है ।

स्टेज पर कब कौन आता है, क्यों आता है, और कब भाग जाता है, इसका भी कुछ नियम नहीं । पहले दृश्य में ही पर्णदत्त स्टेज पर क्यों आया है ? क्या उसे स्कंदगुप्त से कोई विशेष कार्य था ? या केवल उसके अधिकारों का ज्ञान कराने ही आया है ? और चक्रपालित ? जो आकर कहता है—"अरे, युवराज भी यहाँ हैं ?" फिर वह खोज किसे रहा था ? पिता को ? पर पर्णदत्त से उसने कहा क्या ? पृष्ठ ८३ में सैनिकों से घिरे हुए भटार्क और शर्वनाग के साथ विजया को प्रवेश करते देखकर जयमाला अथवा देवसेना किसी प्रकार का आश्चर्य प्रकट नहीं करती । पृष्ठ ८० में स्कंदगुप्त देवकी का चरण वंदन करता है । यह देवकी कहाँ से आ गई ? या तो प्रवेश-समय इसका उल्लेख होने से रह गया या किसी अलौकिक क्रिया द्वारा रंगमंच पर सहसा प्रकट हो गई है ।

नाटक के पात्रों को बातचीत करना तो आता ही नहीं । उनका कथोपकथन रूढ़ और अस्वाभाविक ही नहीं होता, अपितु वह अपनी नादानी के कारण ऐसी असंभव परिस्थितियाँ उपस्थित कर लेते हैं, जिनकी वजह से उन्हें आगे बात करना मुश्किल पड़ जाता है । पता नहीं, ऐसा क्यों हुआ । प्रसादजी को अपने कर्म-रत जीवन में नित्य ही अनेक प्रकार के मनुष्यों से मिलने, भेंटने और बात करने का मौक़ा मिलता होगा । वार्तालाप करने में

वह अवश्य ही पटु होंगे। नाटक में उन्होंने अपनी इस वाक्-पटुता का परिचय क्यों नहीं दिया? परिचय देने की, जान पड़ता है, चेष्टा भी नहीं की। नाटक में कई स्थल ऐसे हैं, जिनको थोड़े-से प्रयास से ही बहुत ही सुंदर और प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता था, पर कथोपकथन की कृत्रिमता के कारण वह बिलकुल ही बेजान हो गए हैं। पृष्ठ ३४ को देखिए, जहाँ कुमारामात्य पृथ्वीसेन, सम्राट् के निधन का समाचार पाकर, अंतःपुर में प्रवेश करना चाहते हैं, और पुरगुप्त तथा भटार्क उन्हें जाने से रोकते हैं। वास्तव में बड़ी अच्छी घटना-परिस्थिति है। यहाँ नाट्यकार यदि चाहे, तो अपने नाट्य-नैपुण्य को जी खोलकर प्रदर्शित कर सकता है। पर लेखक का यह लक्ष्य नहीं। उसे तो अपने पात्रों के मुँह से कुछ कहला देना-भर अभिप्रेत है। पात्रों की बातचीत उनके भावों के साथ और उनके भाव उनके कार्यों के साथ मेल खा रहे हैं या नहीं, इससे मतलब नहीं। पहले दृश्य में विशाल मगध-राज्य का महानायक वृद्ध पर्णदत्त आकर कहता है—"युवराज की जय हो।"

स्कंदगुप्त—आर्य पर्णदत्त को अभिवादन करता हूँ। सेनापति की क्या आज्ञा है?

वृद्ध पर्णदत्त बेचारा तुरंत सकपका जाता है, और युवराज के सामने अपनी बौखलाहट को सँभाल न पाकर कहता है—"मेरी आज्ञा! युवराज! आप सम्राट् के प्रतिनिधि हैं, मैं तो आज्ञाकारी सेवक हूँ! इस वृद्ध ने गरुड़ध्वज लेकर आर्य चंद्रगुप्त की सेना का संचालन किया है। अब भी गुप्त-साम्राज्य की नासीर-सेना में पवित्र क्षात्र-धर्म का गरुड़ध्वज की छाया में पालन करते हुए, उसके मान के लिये मर मिटें—यही कामना है। गुप्त-कुल-भूषण! आशीर्वाद दीजिए, वृद्ध पर्णदत्त की माता का स्तन्य लज्जित न हो।"

❀ ❀ ❀

स्कंदगुप्त—क्या अयोध्या का कोई नया समाचार है?

पर्णदत्त—संभवतः सम्राट् पुष्पपुर चले गए हैं, और कुमारामात्य महाबलाधिकृत वीरसेन को स्वर्ग-लाभ हो गया!

स्कंदगुप्त—क्या कहा! महाबलाधिकृत अब नहीं हैं? शोक!

पर्णदत्त—अनेक समरों के विजेता, महामानी, गुप्त-साम्राज्य के महाबलाधिकृत अब इस लोक में नहीं हैं! इधर प्रौढ़ सम्राट् के विलास की मात्रा बढ़ गई है!

स्कंदगुप्त—चिंता क्या! आर्य! अभी तो आप हैं, तब भी हमीं सब विचारों का भार वहन करें, अधिकार का उपयोग करें! वह भी किसलिये?

अभी आप भाषा-सौष्ठव पर दृष्टि मत डालिए। पहले इस कथोपकथन की विदग्धता और सजीव स्वाभाविकता पर विचार कीजिए। मगध-साम्राज्य के जिस महानायक ने चंद्रगुप्त की सेना का संचालन किया था, वह वयोवृद्ध पर्णदत्त स्कंदगुप्त से आशीर्वाद माँगता है! किसलिये? कि उसकी माता का स्तन्य लज्जित न हो। क्या गुप्त-कालीन शिष्टाचार ऐसा ही था? और यह पर्णदत्त है भी कैसा महानायक, जो महाबलाधिकृत की मृत्यु का समाचार आते ही स्कंदगुप्त को नहीं सुनाता! यदि स्वयं स्कंदगुप्त अयोध्या का समाचार जानने की इच्छा प्रकट न करता, तो वीरसेन की मृत्यु का दुःखद समाचार शायद ही पर्णदत्त के मुँह से बाहर निकलता। और, फिर भी वह साम्राज्य के एक प्रधान और विशिष्ट व्यक्ति की मृत्यु के सामने सम्राट् के पुष्पपुर चले जाने की बात को प्रधानता देता है, और उस समाचार को सुनकर स्कंदगुप्त भी केवल "शोक!" शब्द कहकर अपने हृदय का समस्त शोक प्रदर्शित कर देता है! क्या यह शब्द उसके हृदय की स्थिति का बोधक है? जान तो ऐसा पड़ता है कि महाबलाधिकृत की मृत्यु से उसका कुछ आता-जाता नहीं। वह तुरंत कहता है—"चिंता क्या! आर्य! अभी तो आप हैं!" नाट्यकार ने इस एक वाक्य की सहायता से ही

स्कंदगुप्त के हृदय की क्षणिक खिन्नता को कोसों दूर खदेड़ दिया है। और स्कंद फिर स्वयं ही अधिकारों के उपयोग की चर्चा छेड़ देता है। यह किसलिये? एक बार तो इस अधिकार की चर्चा हो चुकी है। वह क्या पर्याप्त नहीं थी? या अभी इसका कचूमर निकालकर ही छोड़ा जायगा? बात यह है कि लेखक स्वयं नहीं जानता कि एक पूर्व कथन के फल-स्वरूप अब आगे कौन-सी नई बात कहकर नाटक के कार्य-व्यापार की गति को तीव्र किया जाय। आगे चलकर युवक स्कंदगुप्त से आशीर्वाद चाहनेवाला वही पर्णदत्त रोब से बातें करने लगता है, और स्कंदगुप्त भी अपने आर्य पर्णदत्त को डाटकर कहता है—"सेनापते! सावधान! प्रकृतिस्थ होइए!" बस, ख़त्म हो गया भाषा का सारा ओज और सौष्ठव! क्या मजाल जो ओजस्विता बेचारी इस 'सावधान' की डिबिया को खोलकर बाहर निकल जाय! जहाँ भाषा को बहुत ज़ोरदार बनाना हुआ, या किसी पात्र के मनोभाव को तीव्रता के साथ प्रकट करना हुआ, वहाँ यह 'सावधान!' लेखक की सहायता करने को झट से पहुँच जाता है!

और भाषा? न्योछावर हैं उसके लालित्य और पद-विन्यास पर सौ-सौ कालिदास! एकदम देशी ठर्रे के कुल्हड़-सी नशीली और भोथरी छुरी के समान हृदय को छेदनेवाली और विकल कर देनेवाली। अभागे हैं वे लोग, जो उसे समझ नहीं पाते!

पहले अंक के पहले सफ़े की पहली ही पंक्तियाँ लीजिए—

"स्कंदगुप्त—अधिकार-सुख कितना मादक और सार-हीन है! अपने को नियामक और कर्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है! उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी, अधिकार-लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं?......"

पता ही नहीं, कौन किससे और क्यों बेगार कराता है? और फिर उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल, ये दोनो क्या बुरे होते हैं, जो अधिकार-लोलुप मनुष्य से इनकी तुलना की गई? इस समानता की समीचीनता क्या है?

एक दूसरा वाक्य देखिए, जिसमें लेखक ने शब्द-निर्वाचन की कला का कैसा सुंदर उदाहरण उपस्थित किया है—

"आर्य! आपकी वीरता की लेखमाला शिप्रा और सिंधु की लोल लहरियों से लिखी जाती है—"

लिखी जाती है या गाई जाती है? आपका यह लोल लहरियों का लिखा हुआ कौन पढ़ेगा?

एक वाक्य है—

"गुप्त सेना की मर्यादा को पर्णदत्त-सदृश महावीर अभी रक्षा के लिये प्रस्तुत हैं—"

ज़रा विश्लेषण कीजिए। कारक क्रिया ग़ोते लगाते फिरें।

पृष्ठ २५ में अनंतदेवी कहती है—"आँधियों से खेलता है, बातें करता है, बिजलियों से आलिंगन! ऊँह भटार्क!"

इसका कोई सिर-पैर भी है?

चुस्त और मुहावरेदार भाषा का और भी मज़ा लेना हो, तो पृष्ठ १२३ से १३५ तक के लंबे-चौड़े भाषण पढ़ जाइए, और लेखक के भाषा-नैपुण्य की भूरि-भूरि प्रशंसा कीजिए।

वाक्-संयम अच्छी भाषा लिखनेवालों का लक्षण समझा जाता है। पर यहाँ व्याकरण-संयम का करिश्मा देखने को मिलता है। उससे जितना कम काम लिया जाय, उतनी ही ख़ूबी! और यदि व्याकरण को बालाएताक़ धर दिया जाय, तो भाषा का चमत्कार कैसा बढ़ जाय! और, कविता की तुक मिलाना बाएँ हाथ का खेल हो जाय—

हृदय धूल में मिला दिया है,
उसे चरण-चिह्न-सा किया है।
खिले फूल सब गिरा दिया है,

प्रसादजी को यह कौन बताए कि 'हाथी आई है', 'घोड़े गया है', इस प्रकार की व्याकरण-संगत भाषा का शिष्ट-समाज में प्रचार नहीं। और, इस पूरी

कविता का मतलब क्या है ? "न तो मघा की फुहार कोकिल।" यह एक ही रही। "मानहु मघा मेघ झर लागी।" यह कई युग पहले की बात है। इस कलियुग में तो अब सावन सूखा ही चला जाता है ! क्यों न ?

'स्कंदगुप्त' की भाषा को साहित्य कहना विडंबना-मात्र है। उसमें न तो गति है, न छंद है, और न पद-लालित्य ही है। अर्थ-गांभीर्य तो उससे कोसों दूर रहता है। एक बार दाड़िम के धोखे श्रीफल को भेदने जाकर एक तोते को अपनी चंचु-हानि के उपरांत उस फल के भीतर का सरस और सुमधुर द्रव्य खाने को मिल गया था। पर प्रसादजी के शब्द-जाल को भेदकर हम-जैसे साधारण पाठक, लाख प्रयत्न करने पर भी, कोई भाव-माधुर्य नहीं खोज पाते।

पृष्ठ १६, २० और २१ में कवि मातृगुप्त और कुमारदास के बीच जो बातचीत कराई गई है, वह विक्षिप्तों के प्रलाप-समान अनर्गल और असंबद्ध, अर्थ-हीन शब्द-जाल का एक उत्तम उदाहरण है। कवि मातृगुप्त के मुख से कहलाई गई भाषा जैसी जटिल है, वैसी ही कर्कश भी है। उसे पढ़कर कान और मन दोनो ही पीड़ित होते हैं। कारण, उसमें ध्वनि के साथ ध्वनि संयुक्त नहीं, और न शब्द के साथ शब्द अन्वित हैं। उसमें कोई भाव-सौकर्य भी नहीं। वह केवल खोखले ढोल की तरह ढम-ढम करती है।

"उस हिमालय के ऊपर सवेरे सूर्य की सुनहरी प्रभा से आलोकित बर्फ़ का पीले पुखराज का-सा एक महल था, उसमें नवनीत की पुतली झाँककर देखती थी। वह हिम की शीतलता से सुसंगठित थी। सुनहरी किरणों को जलन हुई। तप्त होकर महल को गला दिया। पुतली ! उसका मंगल हो, हमारे अश्रु की गर्म शीतलता उसे सुरक्षित रक्खे। कल्पना की भाषा के पंख गिर जाते हैं, मौन नीड़ में निवास करने दो। छेड़ो मत, मित्र !"

सूर्य की तप्त किरणों ने बर्फ़ का पीले पुखराज का-सा महल तो गला दिया, पर उसमें नवनीत की जो पुतली झाँककर देख रही थी, उसे आँच तक नहीं आई ! कवि के अश्रु की गर्म शीतलता उसे सुरक्षित रक्खेगी ! यह सब क्या है ? हम तो कुछ भी नहीं समझे। इस प्रकार के असंबद्ध वाक्यों और कुछ खनकते हुए शब्दों को एक स्थान पर एकत्र करके रख देने से ही क्या गद्य की विदग्धता, सुकुमारता और भाव-प्रचुरता बढ़ जाती है ? मातृगुप्त कालिदास के इस भाषण में कौन-सा चमत्कार है ? कौन-सा भाव है ? यदि कुछ हो भी, तो वह शब्द-जाल के भीतर ऐसा फँस गया है कि दम घुट जाने के कारण उसका कुछ अस्तित्व ही नहीं रह जाता। भाव भाषा का जितना कम सहारा लें, वे उतने ही उच्च होते हैं, और जो लेखक अपनी रचना में इस प्रकार के उच्च भावों का जितना अधिक समावेश कर सकता है, वह उतना ही ऊँचा कलाकार है। क्या स्कंदगुप्त के लेखक में यह बात है ?

स्कंदगुप्त ऐतिहासिक नाटक है। अतएव इसके ऐतिहासिक आधार पर विचार किए बिना निबंध अधूरा ही रहेगा। ऐतिहासिक सामग्री के उपयोग द्वारा कथा-साहित्य की सृष्टि करनेवाले लेखक से इस बात की आशा करना कि उसे अपने विषय का पंडित होना चाहिए, मैं समझता हूँ, उसके साथ अत्याचार करना नहीं है। स्कंदगुप्त के लेखक ने ज़रूर ही गुप्त-कालीन इतिहास का गंभीरता-पूर्वक मनन किया होगा। परंतु स्कंदगुप्त को उज्जयिनी-पति विक्रमादित्य मानना, उसे शकारि बताना, विश्ववर्मा और बंधुवर्मा को स्वतंत्र मालव-नरेश बताकर उनकी अधीनता-स्वीकृति द्वारा स्कंदगुप्त की उत्कर्ष-सिद्धि की चेष्टा करना, शक क्षत्रप रुद्रसिंह तृतीय के नाश का श्रेय समुद्रगुप्त को देना और बेचारे प्रसिद्ध विक्रमादित्य के श्रेय पर परदा डाल देना, पुष्यमित्रों के काल्प-निक युद्ध की अवतारणा, मातृगुप्त-जैसे कवि पर कालिदासत्व की थोपथाप, हर्ष विक्रमादित्य का स्कंद विक्रमादित्य में अध्याहार, काव्यकार कालिदास को नाटककार कालिदास से भिन्न मानना, आदि बातें ऐसी

हेर-फेर की हैं, जिनसे इस नाटक की प्रकांड ऐतिहासिकता पर भारी संदेह होने लगता है।

क्या प्रसादजी हमें यह बताने की कृपा करेंगे कि स्कंदगुप्त को दंतकथाओं और आख्यायिकाओं का आधार उज्जयिनी-पति विक्रमादित्य मानने के लिये उनके पास क्या प्रमाण है? स्कंदगुप्त राज्य की ओर से उदासीन था, और उसने मगध का सिंहासन अपने सौतेले भाई पुरगुप्त के लिये त्याग दिया था, यह ऐतिहासिक सत्य उन्हें कहाँ से प्राप्त हुआ? क्या राखाल बाबू के करुणा उपन्यास से? नष्टप्राय गुप्त-साम्राज्य का अंतिम सम्राट् स्कंदगुप्त किस आधार पर महापराक्रमी विक्रमादित्य माना जा सकता है? हस्ती, संक्षोभ, उच्छकल्प के जयनाथ, सर्वनाथ और बलभीर, धरसेन आदि सामान्य राजाओं का स्वतंत्र हो जाना स्पष्ट प्रमाणित करता है कि स्कंदगुप्त विक्रमादित्य की उपाधि के योग्य न था। वह शकारि भी न था। उसका स्वयं विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर लेना एक वंश-परंपरागत कृत्य मालूम होता है। उसके बाद के कई छोटे-मोटे गुप्त राजाओं को भी विक्रमादित्य बनने की साध हुई थी। उन्होंने भी तो स्कंदगुप्त के समान अपने नाम के आगे विक्रमादित्य की उपाधि जोड़ डाली है। इसके अतिरिक्त इतिहास में और भी बहुतेरे स्वयंभू विक्रमादित्यों का पता चलता है। किंतु वास्तविक विक्रमादित्य शकारि तो तीन ही हैं। एक तो १२० ई० पू० में आई हुई शकों की दो शाखाओं में से मथुरावाली शाखा का नाश करनेवाले आदि विक्रम, जो ५७ ई० पू० में हुए, दूसरे अंतर्वेदी से शकों का बहिष्कार करनेवाले गुप्तवंशी प्रथम चंद्रगुप्त और तीसरे शकों की सौराष्ट्रवाली शाखा का मूलोच्छेद करनेवाले सम्राट् चंद्रगुप्त द्वितीय—यह अंतिम विक्रमादित्य थे। इसके बाद शकारि विक्रम कोई नहीं हुआ, ऐसा विद्वानों का मत है।

शायद प्रसादजी को पता नहीं कि शकों के मूलोच्छेद का श्रेय स्मिथ, फ्लीट, एलन, ओझा और हाल ही में सुधींद्र वर्मा बी० ए० ने अपने-अपने विभिन्न लेखों, युक्तियों और प्रमाणों द्वारा महाविक्रमशाली सम्राट् चंद्रगुप्त द्वितीय के लिये ही प्रमाणित कर दिखाया है। समुद्रगुप्त का शकराज स्वामी रुद्रसिंह तृतीय से कोई भी युद्ध नहीं हुआ। लेखक की विचित्र सूझ ने हरिषेण के शिला-लेख के जिस रुद्रदेव में इस शकराज रुद्रसिंह का अध्यारोप कर डाला है, वह वाकाटक-वंशी रुद्रसेन माना जाता है, स्वामी रुद्रसिंह नहीं। सम्राट् समुद्रगुप्त पश्चिम समुद्र-तट की ओर गया ही न था। वह तो कांची से लौटकर सीधा मध्यप्रदेश में होता हुआ पद्मावती, प्रतिष्ठान और कौशांबी होकर यमुना के किनारे-किनारे पंजाब की ओर चला गया था। मालव, सौराष्ट्र और बलभी आदि का उसने विजय ही नहीं किया। शकों से उसकी मुठभेड़ ही नहीं हुई। उन्होंने स्वयं कर-प्रदान से उसे संभावित किया था। संसार-प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी द्वारा हाल ही में लिखित 'Men and Thought in Ancient India'-नामक पुस्तक के समुद्रगुप्त निबंध से तथा डॉ० हेमचंद्र राय चौधरी-लिखित 'Political History of Northern India' से यह बात स्पष्ट प्रमाणित हो जाती है।

अतएव पाँचवीं शताब्दि के प्रारंभ में होनेवाले विशाखदत्त के देवी चंद्रगुप्त नाटक के नायक शकारि विक्रमादित्य श्रीसम्राट् चंद्रगुप्त द्वितीय ही हैं, समुद्रगुप्त अथवा स्कंदगुप्त नहीं। स्कंदगुप्त से बहुत पहले ही सम्राट् चंद्रगुप्त ने शकों का मूलोच्छेद कर डाला था। अतएव स्कंदगुप्त शकारि नहीं कहा जा सकता। उसके समय में तो शकों के राज्य का अस्तित्व ही नहीं था। इतिहास में वह विक्रम के नाम से प्रसिद्ध भी नहीं है। उसे शकारि विक्रमादित्य कहना एक विडंबनामात्र है।

प्रसादजी लिखते हैं कि नरवर्मा और विश्ववर्मा मालव के स्वतंत्र नरेश थे, परंतु नरवर्मा के समय

के मालव (विक्रम) सं० ४६१ के शिला-लेख में उसको महाराज लिखा है, और प्रसादजी को जानना चाहिए कि उस समय महाराज प्रशस्ति का उपयोग अधीन राजाओं के लिये होता था, जिससे अनुमान होता है कि वह किसी राजा का सामंत था। और, मंदसोर में कुमारगुप्त और बंधुवर्मा का जो लेख मिला है, उससे स्पष्ट है कि संवत् ४९३ (ई० सन् ४३६) में विश्ववर्मा का पुत्र बंधुवर्मा कुमारगुप्त के अधीन था। अतएव विश्ववर्मा और बंधुवर्मा स्वाधीन भूपति नहीं थे। वे गुप्तवंशी सम्राट् चंद्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा विजित मालव के सामंत-मात्र थे। फिर, अपनी नाटकीय सुविधा के लिये लेखक ने इस ऐतिहासिक तथ्य पर किस के सहारे पानी फेर दिया ?

हर्ष विक्रमादित्य-नामक राजतरंगिणी में वर्णित राजा को स्कंद बना देने का असफल प्रयत्न और भी उपहास्य है। क्यों साहब, यदि वह हर्ष विक्रमादित्य स्कंद ही था, तो फिर वह विक्रमादित्य कौन था, जिसके पुत्र प्रतापशील शिलादित्य का राजतरंगिणी में उल्लेख है, और जिसके संबंध में लिखा है कि उसको जब शत्रुओं ने राज्य से मार भगाया, तब प्रवरसेन ने उसकी सहायता की और उसे पितृराज्य दिला दिया ? और, वह विक्रमादित्य कौन था, जिसके पुत्र के संबंध में चीनी यात्री ह्वेनचांग लिख गया है कि उसके मालवा में उपस्थित होने से ६० वर्ष पहले वहाँ शिलादित्य प्रबल प्रताप से राज्य करता था ? कल्हण ने भूल ज़रूर की है। हर्ष विक्रमादित्य और शकारि विक्रमादित्य दोनो को गड्डमड्ड कर दिया है। वह हर्ष कौन था, इसका भी इतिहास में पता नहीं चलता। पर जिस विक्रमादित्य की सभा में उसने मातृगुप्त का जाना लिखा है, वह स्कंदगुप्त कदापि नहीं हो सकता। राजतरंगिणी के विवरण के अनुसार मातृगुप्त, हर्ष विक्रमादित्य और काश्मीर-नरेश प्रवरसेन द्वितीय का समय एक है। प्रवरसेन सन् ई० ५३१ के बाद काश्मीर के सिंहासन पर बैठे थे। स्कंदगुप्त की मृत्यु तो इससे बहुत पहले ही (सन् ४६७ ई० में) हो गई थी। पर लेखक को इससे क्या ?

और यह पुष्यमित्रों का युद्ध कौन-सी बला है ! पाँचवीं शताब्दि में पुष्यमित्र नाम की कौन-सी जाति पैदा हो गई थी, जिसे स्कंदगुप्त ने पराजित किया था ? अजी, फ़्लीट साहब की खोज का वह ज़माना चला गया। फ़्लीट साहब ने मंदसौर के जिस शिला-लेख में "समुदितबलकोषान्पुष्यमित्रांश्च जित्वा"— पढ़ा था, उसका शुद्ध पाठ अब 'समुदितबलकोषा-न्युष्यमित्रांश्च जित्वा' है। इसे हमारे ओझाजी भी मानते हैं, श्रीयुत दिवेकर भी मानते हैं, और अन्य भारतीय विद्वान् भी मानते हैं। प्रसादजी न मानें, तो लाचारी है।

मातृगुप्त के संबंध में हमें कुछ नहीं कहना। मातृगुप्त और कालिदास दो भिन्न व्यक्ति थे। और स्कंदगुप्त-नाटक में आपने जिन मातृगुप्त की सृष्टि की है, वह तो कालिदास कदापि नहीं हो सकते। पर प्रसादजी को इसका आग्रह नहीं है। तब हम क्यों दुराग्रह-पूर्वक आपकी अचर दलीलों का खंडन करने बैठ जायँ। परंतु काव्य-कार कालिदास को नाटककार कालिदास से भिन्न मानने की कल्पना बड़ी ही विचित्र है। यह क्या लेखक की निजी ऐतिहासिक खोज है ? या उसने केवल नाटकीय सुविधा के लिये ऐसी निराधार कल्पना की है ?

प्रवरसेन, तुंजीन और तोरमाण नामों की लेखक ने, अपने ऐतिहासिक परिशिष्ट में, जो खिचड़ी तैयार की है, वह बहुत ही मज़ेदार है। प्रवरसेन और तोरमाण नामधारी राजा कई हुए हैं। प्रसादजी कब किसका उल्लेख कर जाते हैं, इसका पता ही नहीं चलता। पर जिस प्रवरसेन के लिये आपके कालिदास ने महाराष्ट्री भाषा का 'सेतुबंध'-काव्य बनाया था, वह काश्मीर का राजा प्रवरसेन नहीं था। अपितु, चंद्रगुप्त द्वितीय का दौहित्र वाकाटक-वंशी कुंतलेश प्रवरसेन द्वितीय था। सेतुबंध काव्य कालिदास का नहीं, बल्कि इसी कुंतलेश प्रवरसेन का लिखा माना जाता है। फिर प्रसादजी ने जिस काश्मीर-

नरेश प्रवरसेन की चर्चा की है, वह मेघवाहन का पुत्र नहीं, बल्कि तोरमाण का पुत्र प्रवरसेन द्वितीय था। काश्मीर-नरेश इस प्रवरसेन द्वितीय के सिंहासनारोहण का समय विद्वानों ने सन् ई० ५११ के बाद या उसके आसपास कूता है। मातृगुप्त, विक्रमादित्य की मृत्यु का समाचार पाने पर, इसी प्रवरसेन द्वितीय को काश्मीर का राज्य सौंपकर काशी-वास करने चला गया था। इस ऐतिहासिक तथ्य के एक ही आघात से लेखक के कपोल-कल्पित ऐतिहासिक सिद्धांतों की सारी इमारत भरभराकर नीचे गिर पड़ती हैं।

और तो सब ठीक है, पर जान पड़ता है, लेखक को काल-ज्ञान भी नहीं है। नाटक के पृष्ठ ४ में बंधुवर्मा के पिता विश्ववर्मा के शरीरांत की ख़बर आती है। बंधुवर्मा के समय का मंदसौर का शिला-लेख मालव (विक्रम)-संवत् ४९३ (ई० सन् ४३६) का है। इससे स्पष्ट है कि उसके पिता विश्ववर्मा की मृत्यु अधिक-से-अधिक ४३५ ई० में हुई होगी। इसके उपरांत उसका जीवित रहना संभव नहीं। अतएव नाटक में वर्णित यह घटना ४३५ ई० की है। इससे पूर्व की हो सकती है, बाद की नहीं। फिर उसी नाटक के पृष्ठ ३३ में हमें पता लगता है कि सम्राट् कुमारगुप्त महेंद्रादित्य भी किसी से कुछ कहे-सुने बिना ही इस संसार को छोड़कर स्वर्गलोक चले गए। प्रसादजी के मतानुसार ही यह दुःखद घटना सन् ई० ४५५ के आसपास हुई। ४३५ और ४५५, कैसी लंबी छलाँग है! ये बीस वर्ष कौन-सी घटना के गर्भ में विलीन हो गए? या मुद्गल की अक्षय-मंजूषा के उदर में समा गए? बेचारा स्कंदगुप्त तब तक पुष्यमित्रों से युद्ध ही करता रहा!

पृथ्वीसेन यदि ऐतिहासिक व्यक्ति है, तो क्या यह बात भी ठीक है कि उसने मगध-साम्राज्य की रक्षा का कोई समुचित उपाय न सोच पाकर कायरों की भाँति अपनी छाती में छुरी भोंक ली थी? शिला-लेख में यह पहले कुमारामात्य और फिर महाबलाधिकृत बताया गया है। पर नाट्यकार के हाथ में पड़कर उस बेचारे को कुमारामात्य के पद से ही त्याग-पत्र सौंपकर परलोक की यात्रा करनी पड़ी।

भटार्क सेनापति था या महाबलाधिकृत? क्या इन दो पदों में कुछ अंतर नहीं है? शिला-लेख में उसे सेनापति ही लिखा गया है। उसने गुप्त-साम्राज्य की उतरती अवस्था देखकर बलभीपुर में अपना राज्य स्थापित किया था। क्या लेखक के भटार्क ने ऐसा किया होगा? और, जिस वीरसेन की मृत्यु का समाचार पर्णदत्त लाता है, वह चंद्रगुप्त द्वितीय के समय का वीरसेन उपनाम शाब तो नहीं है? पर शिला-लेख में उसे महा संधिविग्रहिक लिखा है, कुमारामात्य या महाबलाधिकृत नहीं। जो लेखक इस प्रकार के ऐतिहासिक प्रमादों से नहीं बच सकता, उसकी बीसवीं सदी की आँखें पाँचवीं शताब्दि की सामाजिक अवस्था का चित्र क्या खींचें? ऐतिहासिक नाटक अथवा उपन्यास लिखना सहज बात नहीं। वर्तमान अवस्था और समय से जब तक लेखक अपने को बिल्कुल अलग करके लेख्य विषय की अवस्था में नहीं डाल देता, तब तक ऐतिहासिक विपर्यय, दोष से नहीं बच सकता।

अनातोल फ्रांस ने 'ताई' (Thais)-नामक प्रसिद्ध उपन्यास लिखा है। अद्भुत चीज़ है। इसकी ख़ूबी वही समझ सकते हैं, जिनका दूसरी शताब्दि की ईसाई दुनिया से थोड़ा-बहुत परिचय हो। जिस समय और जिस सामाजिक अवस्था का वर्णन लेखक ने किया है, संपूर्ण चित्र बना दिया है। उस समय की विचार-परंपरा और भाषण की परिपाटी तक को ज्यों-का-त्यों आधुनिक शब्द-चित्रों में फ्रांस ने उतार दिया है। सिनकिवीज़ का 'क्यू वेडिस'-नामक उपन्यास भी ऐसा है। उसमें लेखक ने नीरो के ज़माने का चित्र खींचकर रख दिया है। वही भाव, वही विचार, वही शैली, वही सामाजिक अवस्था, केवल भाषा का रूप आधुनिक है। पर स्कंदगुप्त के रचयिता को इतनी तकलीफ़ उठाने की ज़रूरत क्या!

गुप्त-काल में व्यवहृत होनेवाले दस-बीस नाम खोज-कर रख लिए, थोड़े-से ऐसे कठिन शब्द ढूँढ़ लिए, जो कोष में भी मुश्किल से मिलें, और बस सब काम हो गया।

मैं एक बात कहना भूल गया। कुछ लोग अभिनेय नाटकों के अलावा पठनीय नाटकों की अलग सत्ता स्वीकार करते हैं। मैं इसे मानता हूँ। कुछ नाटक ऐसे हैं, जो कभी रंगमंच पर खेले ही नहीं गए। यह भी ठीक है। पर क्या इसका यह आशय है कि यदि वे नाटक रंगमंच पर खेले जायँ, तो अभिनेता रंगमंच पर जाकर कठपुतलियों का तमाशा दिखा दें और दर्शक पैसों के बदले सिर-दर्द मोल लेकर अपने घर जायँ? इससे तो यही अच्छा है कि इस प्रकार के नाटक-रचयिता नाटक लिखना छोड़कर उपन्यास लिखना आरंभ कर दें। पर ईश्वर बचाए उनके उपन्यासों से! बीस साल के अनेक प्रयोगों के बाद इब्सन को पता चला था कि उसका एक नाटक 'Lady Inger of Ostraat' पठनीय तो है, पर अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हुआ। अतः उचित परिवर्तन करके उसे अपनी रचना स्टेज के योग्य बनानी पड़ी थी। क्या प्रसादजी भी कभी ऐसा करेंगे?

लेख बहुत लंबा हो गया है। मैं प्रसादजी की कविता पर विचार ही नहीं कर सका। कविता का नाटक से घनिष्ठ संबंध है। पर उसे मैंने फिर के लिये रख छोड़ा है।

मुझे एक बात और कहनी है। कुछ लोग कहते हैं कि प्रसादजी की रचनाएँ साधारण कोटि के पाठकों के लिये नहीं होतीं। वो शायद उच्च कोटि के पाठकों के लिये होती हैं! यही सही। पर इन लोगों से मेरा एक अनुरोध है कि यदि समय मिले, और वे पढ़ सकें, तो एक बार भास का 'प्रतिमा' अथवा 'स्वप्नवासवदत्ता', या बर्नर्ड शा का 'The Devil's Disciple' या 'Saint Joan' नाटक पढ़ जायँ, और देखें कि नाटक क्या चीज़ है, कथोपकथन किसे कहते हैं, हृदय के सूक्ष्म और सुकुमार भावों को प्रकट करना कैसा होता है, और यह भी देखें कि विश्व-साहित्य की चीज़ होने के लिये यह कोई ज़रूरी नहीं कि वह साधारण पाठकों की समझ में ही न आवे।

इस निबंध में मैंने आदरणीय प्रसादजी की नहीं, उनके नाटक, स्कंदगुप्त की, आलोचना की है। यदि भूल से उनके संबंध में कुछ निकल गया हो, तो आशा है, वह क्षमा करेंगे।

पावस-प्रमोद

[साहित्य-रत्न ठाकुर गुरुभक्तसिंह 'भक्त' बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

बिल्व-वृत्त नव दल से सजकर
जब कलियाँ चिटकाता है,
वायु-विकंपित पुष्प-भार से
बकुल झूम झुक जाता है।
फुलचुंभी चिड़ियों के जोड़े
जब रस लेने आते हैं,
फूल अछूते छूते ही बस
आँसू-से गिर जाते हैं।
ताप-निवारण करने को जब
श्याम मेघ छा जाते हैं,
तब पावस का स्वागत गाकर
हम कितना हर्षाते हैं।
हवा चली, पानी भी आया,
जलामयी सब भूमि हुई;
बाल-मंडली में काग़ज़ की
नावों की बस धूम हुई।
छोड़ समाधि निकल आए हैं
पीत-वर्ण दादुर बाहर;
चिड़ियों की चाँदी हो आई,
चींटों के उग आए पर।
नाला उबल-उबल, मटमैला,
चक्कर खाता, बढ़ा हुआ,
जाकरके मिल गया नदी से,
शोर मचाता, चढ़ा हुआ।
धार-विरुद्ध मीन अड़वारी
पानी काट, मोद में भर,
डूब-डूब, फिर-फिर उतराकर
चढ़ती जाती है जल पर।
धानों की क्यारी भर आई,
मेंड़ बाँधकर रोका जल;
पानी ही में भीग-भीगकर
कृषक चलाता जाता हल।
ललना एक धान-क्यारी में
मैली-सी पहने सारी,
जिसमें कई रंग के पेवँद
की थी की पच्चीकारी,
धानों के कुछ नए पौध को
निज उभरे सीने से दाब
(मानो उसको सींच रही है
देकर निज यौवन का आब),
चलती थी सँभालती तन को;
करने पर भी लाख यतन
कई ठौर से मसकी सारी,
आभा फूट चली छन-छन।
पानी बरस रहा है रिम-झिम,
भीग रही बेचारी है;
बूँद-बाण के भय से उसके
तन में लिपटी सारी है।
अंग-अंग सब झलक रहा है,
लज्जा से सकुचाती है;
धानों के पौधों से ज्यों-त्यों
करके देह छिपाती है।

पवन छेड़कर और सताता,
देता केश-राशि लहरा ;
मानो ये घन भी नभ चढ़कर
बरसेंगे घहरा - घहरा ।
क्यारी भरी हुई है जल से,
मिट्टी खूब बनाई है ;
पुष्य-नखत में वृष्टि हुई है,
धान रोपने आई है ।
एक - एक पौधा लेकरके
झुक - झुक पौध लगाती है,
मानो मलमल की चादर में
बेल काढ़ती जाती है ।
हलकी होकर, निज गोदी से
शिशु को क्यारी में बिठला,
मुक्त करों से केशाच्छादित
मुख से कुंचित केश हटा,
बैठ किनारे लगी निरखने
अपने खेतों की माया ;
माथे पर श्रम - बिंदु तथा जल-
बिंदु मोतियों - सा छाया ।
जब उसने देखा निज सन्मुख
हरे-हरे धानों का कोष,
मधुर उछलते हुए हृदय को
मिली शांति, आया संतोष ।
बोली पौधों से—शिशु प्यारे,
क्यों इतने मुरझाए हो ?
हरे-भरे थे अभी गोद में,
क्यों अब मुँह लटकाए हो ?
धैर्य धरो, पृथ्वी मा देगी
तुमको अपने उर में स्थान ;
लालन-पालन सदा करेगी,
वत्स ! तुम्हारा एक समान ।
भाई पवन झुलाएगा नित
आकरके तेरा पलना ;
सूर्य - किरण की लकड़ी दे
सिखलाएगा ऊपर चलना ।
गौवें तेरी श्याम घटाएँ
पय से अपना थन भरकर,
दक्षिण के जल-भरे, हरे,
लहराते खेतों से चरकर ।
आकरके नित तेरे मुख में
बरसावेंगी जीवन - धार ;
फिर तुम क्यों अनमने हुए हो ?
खेलो, उठो-उठो सुकुमार !
तेरे निकट घास का तिनका
भी जो कहीं उठावे सर ;
वहीं क़लम कर दूँगी गर्दन,
नहीं छोड़ सकती छन - भर ।
शीश उठावे कोई राज्य में
तेरे, तेरा बाग़ी हो ;
खटकेगा मेरे सोने में,
नहीं सकूँगी तब तक सो,
नहीं जब तलक विद्रोही के
टुकड़े-टुकड़े लूँगी काट ;
निष्कंटक बस राज्य करो तुम,
हे मेरे छोटे सम्राट !
तेरी लूँ मैं लाख बलैयाँ
बाल शालि, मेरे धन-धान ।
फूलो-फलो, हँसो-खेलो तुम,
हरा-भरा रक्खे भगवान ।

शिल्प और जीवन का योगसूत्र

[प्रसिद्ध चित्रकार श्रीअसितकुमार हाल्दार, प्रिंसिपल स्कूल आफ़ आर्ट एंड क्राफ़्ट, लखनऊ]



भारत की शिल्प-कला की बातें करते हुए हमारे मन में अनेक बातें उठती हैं। एक साथ, एक ही साँस में, कुल उपयोगी शिल्प (Applied art) और ललित शिल्प (Fine art) की समस्या का समाधान करना हमारा इस वक़्त का उद्देश्य नहीं। सिर्फ़ उसका सामंजस्य या जीवन के साथ उसका जितना संयोग है, उसी के संबंध में दो-चार बातें कहने की इच्छा है।

देखा जाता है, आधुनिक युग में कला-देवी के मंदिर में कल-दानव का उपद्रव इतना बढ़ गया है कि काले मेघों की आड़ में चाँद की तरह वह मलिन-प्रभ हो रही है। इन बादलों के कटने-छटने का कोई भी लक्षण नहीं नज़र आता। बल्कि उत्तरोत्तर वे घनीभूत हो रहे हैं। उपयोगी कला (Applied art) ही क्यों, ललित कला (Fine art) भी अब उसी कल-दानव के कर-कवलित हो रही है। किसी एक की तस्वीर खींचने की ज़रूरत हुई, तो तत्काल उसकी काँच को आँखों के सामने रखने ही से काम हो गया। यहाँ तक कि यदि उस तस्वीर को सैकड़ों योजन कहीं दूर भी भेजना हुआ, तो तत्काल उसकी अलौकिक शक्ति से वह तस्वीर वहाँ भी छप गई। हम सब लोगों ने देखकर कहा—"हे कल-दानव, ख़ूब ! तुम्हारा कारख़ाना निहायत आला है, अब हम लोग तुम्हें ही पूजेंगे। नियत साधना द्वारा शरीर को तकलीफ़ देते हुए, उसे नष्ट करते हुए कला-देवी की आराधना से हमें कोई लाभ नहीं। हम कला-देवी के वर-पुत्र नहीं होना चाहते। हम कल-दानव के उपासक बनना चाहते हैं।"

एक ने कहा—"देखा, कैसा सुंदर हूबहू (Landscape) भूमि-दृश्य उस चित्रकार ने चार महीने खटकर खींचा है। जान पड़ता है, जैसे ठीक उसी स्थान-विशेष को चित्रकार ने कैंची से काटकर दीवार पर लटका लिया हो—कैसा सुंदर और स्वाभाविक है !" कल-दानव के उपासक ने हँसकर कहा—"किस जगह का हूबहू चित्र तुम्हें चाहिए ? बतलाओ, एक सेकंड में तुम्हें उतार देते हैं।" इसी समय एक ऐसे अस्थि-चर्मावशिष्ट वृद्ध शिल्पी ने, जिसने माता की साधना में अपनी ज़िंदगी पार कर दी है, नाक से चश्मा उतारकर विनय-भाव से धीरे-धीरे कहा—"अच्छा भाई, जगह की हूबहू तस्वीर

तो एक सेकंड में तुमने उतार ली, परंतु यह तो बतलाओ, ठीक उस जगह को देखकर मेरे-जैसे बुड्ढे के मन में जैसे पुलक का संचार हुआ था, मुझे उसके भीतर से और भी जितने रूपलोक के अरूप चित्रों का आभास मिला, उसका क्या कोई यथार्थ फ़ोटो इसके साथ तुम उतार सके ?" अब सब लोग बिल्कुल चुप रह गए। शिल्पी प्रकृति के साथ छंद मिलाना चाहता है, परंतु वह उसके साथ बराबर हो जाना नहीं चाहता, यही है शिल्पी के भीतर की बात।

हमारे देश का चारु शिल्प जैसे अपना आदर्श छोड़कर दूसरी दिशा को चला है, उसी तरह अब उपयोगी शिल्प की दशा भी कुछ-कुछ वैसी ही हो चली है। भारतवर्ष और विदेशों की बनी वस्तुओं में आकाश-पाताल का भेद है। इसका कारण एक है। एक तो ख़ास ढर्रे की और समय द्वारा बनी हुई, और दूसरी विचित्र तरह की और हाथ की बनी हुई है। प्रधान समस्या यह खड़ी हुई है कि विदेश हमारे इस उपयोगी शिल्प को सहज ही क़ब्ज़े में कर लेना चाहता है, अपना शौक़ पूरा करने के लिये; परंतु हम लोग उल्टे दूसरों की चीज़ों से अपना घर भरना चाहते हैं। इसका फल जैसा हुआ है, वह सब लोगों को विदित है। देश के अच्छे-अच्छे ललित तथा उपयोगी शिल्प सस्तेपन की दुर्दशा के रूप में देश-विदेशों को भेज दिए जाते हैं, और हम लोग उन-की नक़ल-की-नक़ल की हुई चीज़ों को ज़्यादा-से-ज़्यादा दाम लगाकर ख़रीदते, उनसे अपने घरों को भरते तथा सजाते रहते हैं। विदेशी व्यवसायी अपने देश के उपयोगी तथा ललित शिल्प की क़ीमत अच्छी ही तरह समझते हैं, क्योंकि उन लोगों ने आज तक उन्हें कल-दैत्य के हाथों नहीं सौंपा। उपयोगी शिल्प को कल से बनाकर सस्ते दामों में उन्हें बेचकर लाभवान् होने के बजाय उनके स्वरूप की रक्षा करना वे ज़्यादा ज़रूरी समझते हैं। परंतु हमारे उपयोगी शिल्प के लिये उन्हें दर्द बिल्कुल ही नहीं। जिस तरह भी हो, कल के भीतर डालकर, अधिक संख्या में, उसके सस्ते, नक़ली रूप तैयार कर बेचने की ही राह वे लोग देख रहे हैं। और सबसे तअज्जुब की बात यह है कि हम लोग उनकी इस राय में राय मिलाकर गौरव का अनुभव कर रहे हैं, और सोच रहे हैं, हम लोग ख़ूब progressive हैं, हम लोग ख़ूब तरक़्क़ी कर रहे हैं। इस तरह जीवन के साथ वस्तु-संसार का जो यथार्थ योग है, उसे हम लोग खोते जा रहे हैं। हर चरण में, उसके छंद में, यतिभंग हो रहा है। हमारे वस्त्र, आभूषण, गृह, गृह-शय्या में इसके जीते-जागते प्रमाण मिलते हैं। इधर के गत बीस वर्षों के अंदर

हम लोग जैसी द्रुत गति से इस विपरीत मार्ग की ओर बढ़ रहे हैं, यह क्रम अगर और कुछ दिनों तक रहा, तो हम लोग अपने आप ही को, मुमकिन है, फिर न पहचान सकें।

मूल समस्या यह है कि सौंदर्य और शोभा का आदर्श यदि मनुष्य के भीतर से तिल-तिल करके जाग न उठे, तो कभी भी जीवन के लिये वह कल्याणकर नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न देशों की शोभा के आदर्श में जो विशेषता देख पड़ती है, उसका कारण यह है कि उन सब देशों की पारिपार्श्विक भिन्न-भिन्न अवस्था के साथ सामंजस्य रखकर यह आदर्श जातीय जीवन के भीतर से युगों से क्रमशः गढ़कर तैयार हुआ है। भारतवर्ष में भी ठीक इसी तरह सौंदर्य और स्वातंत्र्य एक ही साथ खुला था, और इसीलिये वह जातीय जीवन के लिये कल्याणकर हो गया था। परंतु इस समय हम लोग जिस शोभनता के आदर्श की आमदनी कर रहे हैं, हमारी पारिपार्श्विक स्थितियों के साथ, हमारे जोवन के साथ, उसका तिल-मात्र भो कोई संयोग नहीं। इसोलिये वह न तो शोभन ही है, और न कल्याणकर हो। वह बिल्कुल ही अंतःसार-शून्य है, और जीवन की प्रगति के प्रतिकूल है।

सोचिए, शस्य-श्यामला वंगदेश के किसी नदी-तट पर एक शांत ग्राम के बीच में एक शिव-मंदिर है, और उसी की बग़ल में जटाजूट-शोभित वट और पीपल छाया दे रहे हैं। ऐसे वक़्त उसके किनारे यदि कोई अभ्रभेदी आधुनिक ढंग का विराट् प्रासाद उठा लें, और उसके साथ उसके आस-पास का कोई संयोग न रहे, इसके अलावा वसन-भूषण, अदब-क़ायदे आदि में विदेशीपन आ जाय, और असबाब और विदेशी सुगंध से मकान भरा रहे, गूँजता रहे, तो उसकी कैसी दशा होती है! वे क्रमशः अपने देश की नाड़ियों के साथ जो स्वाभाविक संयोग है, उसे सहज ही खो बैठते हैं।

योरप में देखा है, महिलाओं की पोशाक का फ़ैशन रोज़ बदलता रहता है। इसके अलावा एक महिला दूसरी महिला की तरह पोशाक नहीं पहनती, कोई कंधे पर फ़्रिल (झालर) रखती है, कोई सात टुकड़े चुनवाकर बहार दिखलाती है। इस तरह की विचित्रता हम लोग कल्पना में भी नहीं ला सकते; परंतु आश्चर्य की बात है कि देश की आधुनिक महिलाओं के भीतर भी कोई-कोई ठोक उसी तरह के फ़ैशन की हवा देश में बहा रही हैं। सनातन साड़ी को टाँगों के ऊपर ही तक रखकर अथवा उसे पैरों से लपेटकर पहनकर न-जाने कितने आकार और कितने प्रकार की बहार दिखलाने की कोशिश करती हैं। यह सब क़लम की नोक से लिख देना असाध्य है। परंतु शिल्पी की निगाह से देखने पर इसकी तरह अशोभन और असंगत कुछ भी नहीं। भारतवर्ष के पुरुषों की पोशाक जैसी

भी हो, महिलाओं की पोशाक, परिच्छद और शोभा के विचार से, निहायत उत्तम है, यह केवल भारत के आर्टिस्ट ही नहीं, विदेशी कला-विद् भी समस्वर से स्वीकार करते हैं। जब हमारे देश में अपनी प्रादेशिकता की रक्षा करते हुए महिलाओं की ऐसी शोभावाली पोशाकें मौजूद हैं, तब सिर्फ़ फ़ैशन की ख़ातिर बह जाने की तरह की और कौन-सी दुर्बलता हो सकती है? हम लोग अगर अफ़्रीक़ा के हबशी होते, यदि पोशाक के नाम से हमारी जड़ ही नदारद होती, तो और बात थी। ज़रूरत की तरफ़ से, परिवर्तन जब कभी-कभी ज़रूरी हो जाता है, तब उसका अर्थ अवश्य ही समझ में आ जाता है। परंतु शोभा और सौंदर्य के नाम से जो परिवर्तन का व्यभिचार हुआ करता है, वह केवल निरर्थक ही नहीं, अमार्जनीय और बीभत्स है।

इसी तरह तैजस पत्र और गृह-सज्जा की बात भी हमें कहनी है। जब हम लोग घर को सजाने के लिये दीवार पर तस्वीरें टाँगते हैं तब हमारे अंदर इतनी कल्पना का रहना तो अवश्य ही ज़रूरी है कि हम लोग सिर्फ़ अपने ही आनंद के लिये उन्हें नहीं टाँग रहे, उनसे मकान के छोटे-छोटे शिशुओं की कोमल चित्त-वृत्तियों को भी हम गढ़ते जा रहे हैं, और साथ ही अपने इष्ट-मित्रों को अपनी रुचि का परिचय भी दे रहे हैं। लड़के यदि बालपन से दीवार पर सिगरेट या कैलेंडर की तस्वीरें ही देखते रहे, और कुछ मनुष्यों का ही उन्हें परिचय मिला, तो इससे उनके मन की ख़ूराक कहाँ पूरी हुई! उन बच्चों के नज़दीक वह फ़ोटो ही सबसे बड़ा आर्ट रहा, और वह कैलेंडर ही चित्र-कला का चरम आदर्श! उनके पास किसी मुसव्विर का क़लम ले जाने पर वे उसका एक वर्ण भी नहीं समझेंगे, न उससे कोई रस ही उन्हें मिल सकता है। शैशवावस्था से लगातार जो वस्तु हम लोग देखते आते हैं, उसके प्रति हमारा ऐसा मोह पैदा हो जाता है कि वही दूसरी वस्तु के देखने और पहचानने का नाप-दंड हो जाता है। इसी कारण हमारे देश के लिये सबसे ज़रूरी है, हमारे भविष्य के वंशधरों के मन की ख़ूराक पूरी करना। दुःख का विषय है कि लड़कों के लिये जो सब विलायती दूकानों के कल से चलनेवाले खिलौने हम लोग लाते हैं, उनसे उनका बड़ा ही अहित होता है। हम लोग यह नहीं समझते कि हमारे बाज़ार में जो देशी खिलौने, मिट्टी की मूर्तियाँ बिकती हैं, उनसे बालकों के चित्त में जैसा रँग लगता है, वैसा विलायती खिलौनों से नहीं होता। हमारे देश के खिलौने सिर्फ़ खिलौने हैं। उनका कोई छद्मवेश नहीं। वह कहते नहीं कि हम जीते हैं। परंतु विलायती खिलौने लड़कों को धोखे में डाल देते हैं। इसीलिये वे शैशव की कल्पना के लिये,

जानने-पहचानने के लिये, कौतूहल और कल्पना को जगाने के लिये, बिल्कुल उपयोगी नहीं। हमारे देश के बालक शैशव से ही इस तरह कल-दैत्य के चरणों को पूजना सीख रहे हैं। उनके शैशव से ही विदेशी खिलौने, विदेशी असबाब, विदेशी कला से तैयार मकान, विदेशी रीतियाँ और आचार-पद्धतियाँ, विदेशी वाद्य, विदेशी उत्सव आदि दिखा हम उन्हें कृत्रिम कर डालते हैं। भीतर के स्वाभाविक और सहज मनुष्य का विकास देश ही के परिवेष्ठन और देश ही की आबोहवा में नहीं हो पाता। वह सुयोग हम बालकों को नहीं देते। उन्हें शरीर और मन से विदेशी भावों का गुलाम बना डालते हैं। देश के मंगल और उन्नति के लिये, जातीय वैशिष्ट्य और प्रसार के लिये वक्तृताएँ तो खूब देते हैं, परंतु दुर्भाग्य की बात है कि कार्यतः हम लोग उस उद्देश्य को पद-पद पर मसल जाते हैं। इसके अलावा आजकल विश्व-जनीनता का जो आदर्श देश में प्रचारित हो रहा है, इससे बहुतों को यह भ्रम हो गया है कि विश्व-जनीनता एक बिल्कुल पृथक् कुछ है, और जातीयता तथा जातीय रूढ़ियों का विसर्जन विना किए उसे प्राप्त करना असंभव है। परंतु विश्व-जनीनता यदि एक पेड़ हो, तो जातीयता और जातीय रूढ़ियाँ उसके डाल-पल्लव हैं; इन्हें छोड़ देने पर किस तरह एक पूर्ण वृक्ष की प्राप्ति हो सकती है? क्या यह एक कठिन समस्या नहीं? यदि हमें विश्व-जनीनता के आदर्श से देश का संगठन करना हो, तो जातीय विशेषत्व तथा जातीय इतिहास के साथ सामंजस्य रखकर जातीय पूर्णता के भीतर से ही हमें उसकी प्राप्ति हो सकती है।

संग्रहणी अथवा **अतिसार**

वमन अथवा **विशूचिका**

अरुचि अथवा **अजीर्ण**

इनकी रोकथाम
तत्काल आराम
अचूक इलाज

के लिये सदा

Amritdhara

अमृतधारा

का सेवन करें। एक शीशी का दाम २॥), अर्ध शीशी १।), नमूना ॥) एक भरपूर परिवार के लिये केवल १ शीशी घरेलू डॉक्टर का काम करती है। नज़ला, ज़ुकाम, ज्वर, हर प्रकार की भीतरी व बाहरी पीड़ा के लिये, अथवा चोट, फोड़े के लिये भी इसका प्रयोग लाभकारी है। विस्तृत विवरण के लिये "अमृत पुस्तक" मुफ़्त मँगाएँ।

पत्र-व्यवहार व तार का पता—अमृतधारा १३, लाहौर।

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा सड़क, अमृतधारा डाकख़ाना, लाहौर।

लखनऊ के एजेंट—एफ़० मिर्ज़ा ऐंड संस, खजवा। इंदरचंद ऐंड कंपनी, चौक।

स्त्री-पुरुषों के लिये स्वर्ण-योग—(रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क शंख)

कविराज, डॉक्टर्स आर० जी० मिश्र राजवैद्य, ऐंड एम्‌-एल्‌; गुप्त वैद्यराज, गोंदिया

की

अचूक गुणकारी प्रसिद्ध चंद दवाइयाँ

१. अबला-संजीवन—स्त्रियों के प्रदर, प्रसूत, सोमरोग, हिस्टेरिया की रामबाण दवा क़ी० १।)

२. तरुण सुधा—पुरुषों को होनेवाले, शीघ्रपतन, नपुंसकता, वीर्य-क्षरण, स्वप्न-दोष, शुक्र-क्षय आदि रोग की अचूक दवा २॥)

३. मिश्र-मोहनांजन पेनबाम—सरदर्द, गठिया, कमर-दर्द, चोट, मोच आदि पर शर्तिया दवा क़ी० ॥=)

४. मिश्रमोहनराग्यूमिक्श्चर—जूड़ी बुख़ार, मलेरियाफ़िवर की अनफ़्लेज, शर्तिया दवा क़ी० बड़ी बोतल ।॥=), छो० ॥=)

५. मिश्रमोहन बाल-सुधा—छोटे बच्चों के सुखौंडी, जीर्ण बुख़ार, पिलिया, दाहरोग की अचूक दवा क़ी० ॥।)

६. मिश्रमोहन द्राक्षासव—क्षय, खाँसी, हृदयगत उष्णता, जीर्णज्वर, पिलिया-नाशक, रक्त-वर्धक क़ी० ॥।)

७. महानारायण तैल—जगत्‌-प्रसिद्ध वात-नाशक तैल क़ी० २)

८. ब्राह्मी तैल—जगत्‌-विख्यात, मस्तिष्क-विकार-नाशक, मृगी, उन्माद को खोनेवाला प्रसिद्ध तैल क़ी० १)

९. महाविषगर्भ तैल—वातरोग पर विख्यात अचूक गुणकारी तैल क़ी० बड़ी बोतल २) रु० छो० १) रु०

१०. आमला हेयर ऑइल—कच्चे आँवलों से बना परम विशुद्ध, मनोहर सुगंधिवाला तैल क़ी० १) रु०

११. पंकजपुष्प तैल १) रु०, मोहनमल्लिका तैल १) रु०, तिल-तैल १) रु०, पुष्पराज-प्रसारणी वात-नाशक तैल १॥) रु०, दाद का मलहम ।)

इसके अतिरिक्त कार्यालय में आयुर्वेदिक चूर्ण, गुटी, वटी, आसव, अरिष्ट, तैल, घृत, भस्म, खरवटी औषधियाँ, कुपिस्थ औषधियाँ, मोदक, पाक सदा तैयार मिलते हैं—रोग लक्षण-सहित पत्र-व्यवहार करें—हर जगह एजेंट चाहिए—

हमारे सोल एजेंट—दी पेरोडाइज परफ़्यूमरी हाउस नं० ७५ कोलूटोला स्ट्रीट, कलकत्ता।

मशहूर स्वदेशी रेशमी खादी

हाथ का बुना हुआ। यह सूटों के लिये निहायत सुंदर और मज़बूत है। बार-बार धुलने पर ख़ुशनुमा चमकदार निकलता है। आजकल के फ़ैशन का ७ गज़ लंबा २७ इंच चौड़ा एक सूट या दो कोटों के लिये मूल्य केवल ६) रु० पैकिंग व डाक-ख़र्च मुफ़्त। यदि नापसंद हो, तो दाम वापस। एक दफ़ा अवश्य मँगाकर आज़माइए और स्वदेशी वस्त्र के प्रचार में हमारी सहायता कीजिए।

मँगाने का पता—द्वारका स्वदेशी स्टोर नं० २६, लुधियाना (पंजाब)



विशेष सूचना



देशी सूती बारीक धोतियाँ—कशीदार इसको हरएक बहुत पसंद करता है। पाँच गज़ लंबी, सवा गज़ चौड़ी। प्रत्येक जोड़ा दो रुपया बारह आना।

सिल्की रूमाल—नए नमूने के भिन्न-भिन्न रंगों के। प्रति दर्जन दो रुपया बारह आना।

सिल्की चादर—स्त्रियों के लिये अति मनोहर ३ गज़ लंबी, १॥ गज़ चौड़ी मूल्य ३) प्रति चादर।

सिल्की मफ़लर (अर्थात् गुलूबंद):—अति सुंदर प्रति गुलूबंद एक रुपया आठ आना।

सिल्की नकटाइयाँ—भिन्न-भिन्न रंग। प्रति दर्जन ४॥)

नोट:—डाक-ख़र्च अलग। माल नापसंद हो, तो दाम वापस।

पता:—प्रेमकटिया कंपनी, लुधियाना (पंजाब)

हिंदुस्तानी एकेडेमी संयुक्त-प्रांत

इलाहाबाद

त्रैमासिक पत्रिका

हिंदुस्तानी एकेडेमी ने निश्चय किया है कि एक त्रैमासिक पत्रिका हिंदी में प्रकाशित करे। पत्रिका में साहित्य, इतिहास, भाषा, पुरातत्त्व, दर्शन, विज्ञान आदि पर मौलिक और ऊँचे दर्जे के लेख होंगे, प्रकाशित पुस्तकों की समालोचना भी रहेगी, पत्रिका के हर अंक में रॉयल साइज़ (अठपेजी) के १०० पृष्ठ और समय-समय पर चित्र रहेंगे, सालाना चंदा केवल ८) आठ रुपया होगा।

अच्छे लेखों पर उचित पुरस्कार दिया जायगा। समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। साहित्य-संबंधी विज्ञापनों को ही पत्रिका में छापा जायगा।

लेखकों और ग्राहकों से निवेदन है कि नीचे-लिखे हुए पते से पत्र-व्यवहार करें।

पत्रिका का पहला अंक जुलाई, १९३० में निकलनेवाला था, पर हमें खेद है कि कुछ विशेष कारणों से पहला अंक जुलाई में न निकलेगा। निकलने की तारीख़ का विज्ञापन दिया जायगा।

जेनरल सेक्रेटरी,

हिंदुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०,

इलाहाबाद

बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रदेश और युक्तप्रांत की सरकारों द्वारा स्वीकृत

वार्षिक ३)

बालक

नमूना ।=)

बालोपयोगी अद्वितीय सचित्र मासिक पत्र

हिंदी-संसार के आचार्यों की सम्मान्य सम्मतियाँ—

डॉक्टर गंगानाथ झा, एम्० ए०, डि० लिट्०—

लेख के विषय बहुत सोच-विचारकर चुने गए हैं, और भाषा बालकों ही के लायक़ है।

देशभक्त बाबू राजेंद्रप्रसाद, एम्० ए०, एम्० एल्०—

मासिक पत्र-पत्रिकाओं में बच्चों के पढ़ने लायक़ सर्वांग-सुंदर 'बालक' है।

रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा—

'बाल-सखा', 'शिशु' आदि बालक-संबंधी जो पत्र निकलते हैं, उनमें 'बालक' सर्वश्रेष्ठ है।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी (भूतपूर्व 'सरस्वती'-संपादक)—

पत्र सुंदर, बच्चों के चित्त का आकर्षक, उनके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन की सामग्री है।

श्रीयुत प्रेमचंदजी, बी० ए०, 'माधुरी'-संपादक—

बालकों के लिये जितनी पत्रिकाएँ निकल रही हैं, 'बालक' उन सभों से अच्छा है।

यशस्वी समालोचक पं० पद्मसिंहजी शर्मा—

शिशु-साहित्य के निर्माण का 'बालक' अभिनंदनीय उद्योग कर रहा है। बहुत सुंदर पत्र है।

राय साहब प्रोफ़ेसर श्यामसुंदरदासजी, बी० ए०—

'बालक' ने अच्छी उन्नति की है।

सभी भाषाओं के प्रसिद्ध पत्रों की एक ही सम्मति—

'अमृतबाजार-पत्रिका' (अँगरेज़ी-दैनिक), कलकत्ता—

'बालक' की तुलना बँगला-भाषा के 'संदेश' (सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी मासिक पत्र) से मज़े में की जा सकती है।

'वंदेमातरम्' (उर्दू-दैनिक), लाहौर—

इसके मज़ामीन निहायत सबक़-आमेज़, दिलचस्प और मुफ़ीद होते हैं।

'महाराष्ट्र' (मराठा-साप्ताहिक), नागपुर—

मराठी-भाषा में बालकों के लिये निकलनेवाले 'आनंद' आदि पत्रों से 'बालक' का रूप-रंग अवश्य ही आकर्षक और सुंदर है।

'महाशक्ति' (गुजराती-साप्ताहिक), सूरत—

पृष्ठ-पृष्ठ में चित्रवाला, खिलौने के ऐसा मनोहर मासिक पत्र बालकों को मनबहलाव के साथ-साथ ज्ञान भी प्रदान करेगा, इसमें संदेह नहीं।

'आज' (हिंदी-दैनिक), काशी—

छोटे बच्चों के मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन—दोनो के लिये इसमें यथेष्ट सामग्री है।

सुप्रभातम् (संस्कृत-मासिक), काशी—

अद्वितीयमिदं बालकानां पत्रम्। शिशुसाहित्ये सार्वभौममद्वितीयं पत्रम्। भाषा नितान्तसरला, मुद्रणमपि नयनमनोहरम्।

मैनेजर, 'बालक', हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहारप्रान्ते)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त-प्रांत, प्रयाग

प्रकाशित ग्रंथ—

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था— लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़-अली एम्० ए०, एल्-एल्० एम्० । सुंदर छपाई, बढ़िया कागज़, कपड़े की जिल्द, रॉयल साइज़ के १०० पृष्ठ, उर्दू या हिंदी-संस्करण, मूल्य १)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति— लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा । सुंदर छपाई, बढ़िया कागज़, कपड़े की जिल्द, रॉयल साइज़ के २३० पृष्ठ तथा २४ हाफ़टोन चित्र, मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य— लेखक, डॉक्टर गंगानाथ झा । सजिल्द, रॉयल पृष्ठ ११६, मूल्य १)

(४) हड़ताल (Strife by J.Galsworthy)—अनुवादक, बाबू प्रेमचंद बी० ए० । सुंदर छपाई, बढ़िया कागज़, कपड़े की जिल्द, डबल क्राउन १६-पेजी साइज़ के ३०४ पृष्ठ, मूल्य २)

(५) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट— लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए० । मूल्य १।)

(६) जंतु-जगत्— लेखक, बाबू व्रजेशबहादुर बी० ए०, एल-एल्० बी० । मूल्य ६।)

(७) चर्म बनाने के सिद्धांत— लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा । मूल्य ३)

ये पुस्तकें छप रही हैं—

(१) भारत की पुरानी सभ्यता— लेखक, डॉ० बेनीप्रसाद एम्० ए०, डी० एस्-सी० ।

(२) बेलि श्रीरुक्मिणीरी— संपादक, श्रीयुत सूर्यकरण पारीक ।

(३) अरब और भारत के संबंध— लेखक, मौलाना सैयद सुलेमान साहब नदवी । मूल्य ४)

नाटकों के अनुवाद:—

(४) धोखा-घड़ी (Skin Game by J-Galsworthy)—अनुवादक, पंडित ललिताप्रसाद शुक्ल एम्० ए० ।

(५) चाँदी की डिबिया (Silver Box by J. Galsworthy)—अनुवादक, बाबू प्रेमचंद बी० ए० । मूल्य १।)

(६) न्याय (Justice by J.Galsworthy)—अनुवादक, बाबू प्रेमचंद बी० ए० ।

अन्य पुस्तकें तैयार हो रही हैं ।

मिलने का पता—

हिंदुस्तानी एकेडेमी यू० पी०

इलाहाबाद

कोटर और कुटीर

[श्रीसियारामशरण गुप्त]

कोटर



पहर का समय था । सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था । वृक्षों के पत्ते निस्पंद थे । मानो और किसी भयंकर कांड की आशंका से साँस-सी साधे खड़े थे । इसी समय अपने छोटे-से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा—"पिता !"

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्थली के वर्तमान रूखेपन की तरह ही वह स्वर अनाकर्षक था । चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—"क्या है बेटा ?"

"है और क्या ? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गए हैं ।"

"बेटा, अधीर न हो, समय सदा एक-सा नहीं रहता ।"

"सो यही तो मैं भी कहता हूँ, समय सदा एक-सा नहीं रहता । पुरानी बातें पुराने समय के लिये थीं । आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाए हुए हैं, जिस तरह वानरी मरे बच्चे की खाल चिपकाए रहती है । घनश्याम की बाट आप जोहते रहिए। अब मुझसे यह नहीं सध सकता ।"

"घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते, यही हमारे कुल का व्रत है । इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई, और न कोई दूसरा अनर्थ ।"

"आप कहते हैं, कोई अनर्थ नहीं हुआ । मैं कहता हूँ, प्यास की इस यंत्रणा से बढ़कर और अनर्थ क्या होगा ? जहाँ से भी होगा, मैं जल ग्रहण करूँगा ही ।"

चातक सिहरकर पंख फड़फड़ाने लगा । मानो उसने उन अश्रव्य वचनों और कानों के बीच में कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी चाही ! थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला—"बेटा, धैर्य रख । अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है, और धरती माता की गोद हरी-भरी होती है । यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की चीज़ नहीं है ।"

लाड़ले लड़के ने कहा—"व्रत पालन करते हुए इतने दिन तो हो गए, पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है । गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गए । फिर सूर्य के और निकट रहनेवाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है ?"

"बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है । इसी पुण्य से उसे जीवन-दान मिलेगा । भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिये थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है ।"

"पिताजी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता । परंतु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा-ही-क्षुधा सहन करूँ । मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ । देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूँगा । घनश्याम को भी तो सोचना चाहिए था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं । आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिये नहर, तालाब और कुओं का बंदोबस्त कर लिया है । कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी, हमीं क्यों इस तरह

कष्ट सहें ? आप चाहे मुझे रक्खें या छोड़ें, मैं यह झंझट न मानूँगा ।"

चातक ने देखा, मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—"यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?"

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था, जिस तरह लाखों जीव-जंतु जल पीते हैं, उसी प्रकार मैं भी पिऊँगा। परंतु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा, कमज़ोरी यहीं है। वह जानता था कि कमज़ोरी के ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढ़ी है। बोला—"चुप कैसे रह गए ? बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?"

हिचकिचाकर—अपनी बात स्वयं ही खंड-खंड करते हुए लड़के ने कहा—"जहाँ से और दूसरे करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा।"

पिता ने कहा—"वह पड़ोस में पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं। तुम वहाँ जल पी सकोगे ? बोलो है हिम्मत ?"

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई। आह, उसमें कितनी गंदगी है ! पत्ते, सूखी डंठलें आदि गिरकर उसमें सड़ती रहती हैं। कीड़े बिलबिलाते हुए उसमें साफ़ दिखाई दे सकते हैं। लोग उसमें कपड़े निखारने आते हैं या गंदे करने, कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था। एक बार एक आदमी को अंजुली से पानी पीते देख उसने पिता से कहा था—"देखो पिताजी, ये कैसे घृणित जीव हैं।" अवश्य ही उसने अपने व्रत का ज़िक्र उस समय नहीं किया था, परंतु उसके मन में उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का जल पिऊँगा ?

चातक बोला—"बेटा, अभी तुम नासमझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना, इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परंतु जब तुम इसके लिये बाहर निकलोगे, तब तुम्हें मालूम पड़ेगा, हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है, और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुमसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा ?"

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा—"मैं गंगा-जल ग्रहण करूँगा।"

चातक ने कहा—"गंगाजी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता, तो जा। परंतु यदि तूने और कहीं एक बूँद भी ली, तो हमें मुँह न दिखाना।"

चातक-पुत्र प्रणाम करके फुर्र से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुककर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दत्तक' से पूरा करना चाहती थीं !

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य, नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिये वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातक-पुत्र को उसके निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पक्की निंबौरी की तरह उस वेदना में भी माधुर्य था !

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास से ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों में, जीवन-यात्रा की इतनी ही मंज़िल तय कर सकने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने

उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने सुलह करके मानो आधे-आधे शरीर का बँटवारा कर लिया! स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एक-मात्र पुत्र गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी की सहायता से उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन संध्या-समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिये बुद्धन उसके लिये छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे टिम-टिमा रहे थे। इधर-उधर चारो तरफ़ सन्नाटा था, और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट से नीचे उतरने तक की शक्ति नहीं थी, तो भी उसका मन न-जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सवेरे थोड़े-से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिये भी थोड़े-से चने और पीने का पानी यथास्थान रख गया था। आज खाने के लिये घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था, शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा। परंतु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल हो उठा। जो समय आनंद की स्निग्ध शीतल छाया में, शीत-काल के दिन की तरह, मालूम भी नहीं होने पाता और निकल जाता है, वही दुःख की दाहक ज्वाला में निदाघ के दीर्घ दिनों की तरह अकाट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परंतु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों का समय हो गया। बार-बार अपने कान खड़े करके रात के उस सन्नाटे में वह गोकुल के पद-शब्द खोजने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज़ सुनकर वह चौंका। वास्तव में यह गोकुल ही था। उसने कहा—"कौन, गोकुल? बेटा, आज बहुत देर लगाई।"

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास जाकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबराकर पूछा—"क्या हुआ, बेटा, क्या हुआ?"

"आज मजूरी नहीं मिली। अब कैसे काम चलेगा?"

"एँ मज़दूरी नहीं मिली! फिर इतनी देर क्यों हुई?"

प्रकृतिस्थ होकर गोकुल ने उसे अपना सब हाल सुनाया।

❀ ❀ ❀

सवेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले पड़ गए। सोचा, आज भगवान् ही मालिक है। काम पर पहुँच-कर उसने देखा, ओवरसियर साहब आज कुछ ज़्यादा ख़फ़ा हैं। इंजीनियर साहब काम देखने आए थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वह ओवरसियर साहब को ही देख गए थे! अन्याय का यह बोझ उन्होंने दिन-भर मज़दूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मज़दूरी देने के समय भी साफ़ इनकार कर दिया, आज दाम नहीं दिए जायँगे। उस अदालत के फ़ैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती, ओवर-सियर साहब का हुक्म मानकर मज़दूर अपने-अपने घर लौट गए।

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा हुआ दिखाई दिया। पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपए-पैसे रखने का बटुआ है। उठाकर देखा तो काफ़ी वज़नदार था। वह सोच में पड़ गया, इसे खोलकर देखना चाहिए या नहीं। न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा। कौतूहल-निवृत्ति करने के लिये उसने उसे टटोला। टटो-लने से जान पड़ा, रुपए हैं, और बहुत कम भी नहीं। थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा, इसका क्या करूँ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले। वह यही सोच रहा था कि यह बटुआ किसका है?

जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है, तब उसकी क्या दशा होगी ? रुपए-पैसे का क्या मूल्य है, यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की, उस समय की, दशा का विचार करके वह इस प्रकार सिहर उठा, मानो उसी का बटुआ खो गया हो !

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर पर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी। उस पर कान में मोती-पिरोई सोने की बाली पहने हुए एक महते बैठे थे। संभव है, यह बटुआ उन्हीं का हो। और किसी के पास इतने रुपए होना आसान भी नहीं है। यहाँ कुएँ पर गाड़ी रोककर उन्होंने पानी पिया होगा, और आग जलाकर तमाखू भरी होगी। एक जगह आग जलाई जाने के चिह्न मौजूद थे। उसने इस बात का विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा, और वह दौड़ पड़ा।

लगभग आध घंटे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास पहुँचा। गोकुल ने हाँफते-हाँफते पूछा—"महते, तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया ?"

महते ने चौंककर गाड़ी में इधर-उधर देखा। साथ ही जेब पर हाथ रक्खा, तो पाषाण की तरह निस्पंद हो गया। गोकुल से महते की वह अवस्था देखी न गई। वह बटुआ दिखाकर उसने झट से प्रश्न कर दिया—"यह तुम्हारा है ?"

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वंद्व-सा हो गया। मानो बिजली के खटके से प्रकाश बुझाकर घर फिर से उद्दीप्त कर दिया गया हो ! महते ने कहा—"भगवान् तुझे सुखी रक्खें, भैया ! इसे कहाँ पाया ?"

"रास्ते में पड़ा था। इसमें कितने रुपए हैं ?"

महते ने हिसाब लगाकर बताया—"बयालीस रुपए, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने पैसे, एक काग़ज़, एक चाँदी का छल्ला—"

गोकुल ने बटुआ खोलकर रुपए गिने। सब ठीक निकले। बटुआ हाथ में लेकर महते की आँखों में आँसू भर आए। बोले—"इतनी बड़ी रक़म पाकर भी जिसे उसका लोभ न हो भैया, मैंने आज तक ऐसा आदमी नहीं देखा। यदि और किसी को यह बटुआ मिला होता, तो मेरा तो मरण हो जाता। मेरे रोम-रोम से यह बात उठ रही है, भगवान् तुम्हें सदा सुखी रक्खें।" यह कहकर महते ने बटुए से निकालकर गोकुल को दो रुपए देने चाहे। उसने सिर हिलाकर कहा—"मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिये मुझे मना कर दिया है। मुफ़्त के ये रुपए मैं न लूँगा।"

महते के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गए। गोकुल थोड़ी ही देर में, उस अंधकार में, उनकी आँखों से ओझल हो गया।

सब वृत्तांत सुनाकर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा होकर बोला—"बप्पा, आज खाने के लिये कुछ नहीं है। महते से कुछ उधार माँग लाता, तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।"

बुद्धन की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनो भुजाओं में भरकर उसने छाती से लगा लिया। आनंदातिरेक ने उसका कंठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा, वह दो-एक दिन की तो बात ही क्या, जीवन-भर की क्षुधा शांत कर सकती है। धन, संपत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे। मानो एकाएक उसके सब दुःख-रोग दूर हो गए हैं। अब वह बिना किसी चिंता के मृत्यु का आलिंगन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को सँभालकर बुद्धन बोला—"अच्छा ही किया बेटा, जो तू महते से रुपए उधार नहीं लाया। वह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता। भगवान् ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही

देखकर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया, यह तू मुझसे भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ, सदा ऐसी ही मति रखना। चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नीयत न डुलाना।"

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी झर-झर आँसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सबेरे वह फिर उड़ा। परंतु आज वह विपरीत दिशा को चला; उसी दिशा को, जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज़ हो गई थी। फिर भी अपने सहकार तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गए। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठकर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुककर वह अपने कोटर तक पहुँच सका।

मारवाड़-नरेश महाराजा अजितसिंह

[साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ]

(५)



वि० सं० १७७७ (ई० सन् १७२०) में सैयदहुसेन-अली मारा गया, और इसके क़रीब एक मास बाद ही सैयद अब्दुल्ला-ख़ाँ* भी क़ैद कर लिया गया† । अतः महाराज ने स्वयं मारवाड़ से बाहर जाना अनुचित समझ भंडारी अनोपसिंह को गुजरात के प्रबंध की देख-भाल के लिये भेज दिया । वहाँ पर उसके और अहमदाबाद के एक बड़े व्यापारी कपूरचंद भंसाली के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ, और वह व्यापारी अनोपसिंह के कार्य में गड़बड़ करने लगा । इससे क्रुद्ध होकर अनोप ने भंसाली को मरवा डाला ‡।

इस प्रकार गुजरात के सूबे का प्रबंध हो जाने के बाद महाराज स्वयं मेड़ते होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया । इस-के बाद यह बादशाह की परवा छोड़ स्वाधीनता-पूर्वक आनासागर के शाही महलों में रहने लगे* और इन्होंने अपने दोनो सूबों में गोवध का होना भी बंद कर दिया †।

इन कामों से निपटकर महाराज ने राजकुमार अभयसिंहजी को और भंडारी रघुनाथ को साँभर की तरफ़ भेजा । उन्होंने भी वहाँ के शाही फ़ौज-दार को भगाकर साँभर पर अपना अधिकार कर लिया । इसी प्रकार महाराज की सेनाओं ने डोडवाना, टोडा, झाडोद और अमरसर पर भी कब्ज़ा कर लिया ‡ ।

महाराज के इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देखकर बादशाह ने आगरे के शासक सआदतख़ाँ को अजमेर की सूबेदारी देने के साथ ही इन पर चढ़ाई करने की आज्ञा भी दी । परंतु इस कार्य में एक भी शाही अमीर उसका साथ देने को तैयार न हो सका । इससे उसकी चढ़ाई करने की हिम्मत न ¶ हुई । इसके बाद क्रमशः शम्सा-मुद्दौला, कमरुद्दीनख़ाँ बहादुर और हैदरक़ुलीख़ाँ

---

* वि० सं० १७७९ (ई० सन् १७२२) में यह भी मार डाला गया । इसी बीच एक बार महाराज ने बादशाह मोहम्मदशाह से मिलकर अपने मित्र अब्दुल्लाख़ाँ को छुड़वाने की कोशिश करने का इरादा किया था, परंतु उस समय देहली के शाही दरबार में विरोधी पक्ष का प्रभाव देख इन्हें यह विचार छोड़ देना पड़ा ।

† लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ५९-६० और ६१ ।

‡ बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०१ ।

* अजितोदय, सर्ग २९, श्लो० ६७-६८ और सर्ग ३०, श्लो० १ ।

† लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८ ।

‡ अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० २-५ ।

¶ मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ९३६-९३७ ।

बहादुर को इस कार्य के लिये तैयार किया गया। परंतु इनमें के प्रत्येक व्यक्ति ने चढ़ाई करने का वादा करके भी देहली से आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। ख़ासकर शम्सामुद्दौला तो अपना पेशख़ेमा देहली के बाहर खड़ा करवाकर भी इधर-उधर के बहाने करनगर से बाहर न निकला। वह अच्छी तरह जानता था कि एक तो इस समय शाही ख़जाना ख़ाली पड़ा है। अतः सैनिकों के वेतन और रसद आदि का प्रबंध करना ही कठिन होगा। दूसरे यदि इस कार्य में असफलता हुई, तो दूसरों को भी सिर उठाने का साहस हो जायगा। इन हालतों में महाराज अजितसिंह-जैसे प्रबल शत्रु से भिड़ना मूर्खता ही होगी ❀।

कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि बुद्धिमान् और दूरदर्शी शम्सामुद्दौला को यह भी भय था कि यदि ऐसे अवसर पर महाराज ने स्वयं ही देहली पर चढ़ाई कर दी, तो यह घुन लगी हुई शाही इमारत बहुत शीघ्र गिरकर नष्ट हो जायगी। अतः जहाँ तक संभव हो सका, उसने नम्रतापूर्ण पत्र भेज-भेजकर महाराज को संतुष्ट रक्खा †, और इस प्रकार देहली को भावी संकट से बचा लिया।

शम्सामुद्दौला का यह भी विचार था कि यदि बादशाह का ऐसा ही आग्रह हो, तो महाराज से अजमेर का सूबा लेकर गुजरात का सूबा उन्हीं की अधीनता में छोड़ दिया जाय। परंतु हैदरक़ुलीख़ाँ आदि को यह बात पसंद न थी। इसीलिये सआदतख़ाँ को महाराज पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई थी। परंतु जब वह पहले लिखे-अनुसार कृतकार्य न हो सका, तब यह काम कमरुद्दीनख़ाँ को सौंपा गया। इस पर उसने बादशाह से प्रार्थना की कि सैयद अब्दुल्लाख़ाँ और उसके रिश्तेदारों के अपराधों को क्षमा कर उन्हें उसके साथ जाने की आज्ञा दी जाय। परंतु बादशाह ने यह बात स्वीकार न की।

इसके बाद वि० सं० १७७८ के कार्तिक (ई० सन् १७२१ के ऑक्टोबर) में हैदरक़ुलीख़ाँ को गुजरात की और सैयद मुजफ़्फ़रअलीख़ाँ को अजमेर की सूबेदारी दी गई ❀। इस पर हैदरक़ुली ने तो अपना नायब भेजकर महाराज के प्रतिनिधि अनोपचंद और नाहरख़ाँ से गुजरात का शासन ले लिया; परंतु मुजफ़्फ़रख़ाँ ने स्वयं जाकर अजमेर पर अधिकार करने का इरादा किया। इसी के अनुसार जिस समय वह मनोहरपुर † पहुँचा, उस समय तक उसके पास क़रीब २०००० सैनिक जमा हो गए थे। इसकी सूचना पाते ही

❀ लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८, सैरुल मुताख़रीन, पृ० ४५४, और मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ९३७।

† सैरुल मुताख़रीन से भी इस बात की बहुत कुछ पुष्टि होती है। (देखो पृ० ४५४)

❀ लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८ और सैरुल मुताख़रीन, पृ० ४५२।

† यह नगर जोधपुर से ३५ मील उत्तर और अजमेर से १३० मील ईशान कोण में है।

महाराज ने भी महाराजकुमार अभयसिंहजी को मुज़फ़्फ़र का मार्ग रोकने के लिये रवाना किया ❀।

बादशाह को ख़याल था कि शाही सेना की चढ़ाई का समाचार पाते ही महाराज डरकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। परंतु जब उसे अपनी यह इच्छा पूर्ण होती न दिखाई दी, तब उसने मुज़फ़्फ़र को मनोहरपुर में ही ठहर जाने की आज्ञा लिख भेजी। इसके अनुसार उसे तीन मास तक वहाँ रुकना पड़ा। इसी बीच उसका सारा ख़ज़ाना समाप्त हो गया, और रसद की कमी हो जाने के कारण उसकी सेना के बहुत-से सिपाही भी उसे छोड़कर अपने-अपने घरों को लौट गए। उसकी यह दशा देख आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने अपने सेनापति के द्वारा उसे आँबेर बुलवा लिया। परंतु अपनी असमर्थता का विचार कर मुज़फ़्फ़र को इतनी ग्लानि हुई कि वहीं से उसने अजमेर की सूबेदारी का फ़रमान और ख़िलअत तो बादशाह को लौटा दिया और स्वयं फ़क़ीर हो गया †।

इसके बाद सैयद नुसरतयारख़ाँ बाराह को अजितसिंहजी पर चढ़ाई करने को आज्ञा दी गई। इसी बीच (भरतपुर-राज्य के संस्थापक) चूड़ामन जाट ने अपने पुत्र मोहकमसिंह को सेना देकर महाराज के पास अजमेर भेज दिया। अनंतर जैसे ही महाराज को नुसरतयारख़ाँ के चढ़ाई करने के विचार की सूचना मिली, वैसे ही इन्होंने महाराजकुमार अभयसिंहजी को उत्तर की तरफ़ आगे बढ़ नारनौल को और देहली तथा आगरे के आस-पास के प्रदेशों को लूटने की आज्ञा दी। इसके अनुसार वह बारह हज़ार शुतर ❀ सवारों के साथ नारनौल जा पहुँचे। यद्यपि पहले तो वहाँ के फ़ौजदार बयाज़िदख़ाँ मेवाती के प्रतिनिधि ने इनका यथा सामर्थ्य सामना किया, तथापि अंत में राठौरों की तीक्ष्ण तलवार के सामने से उसे मेवात की तरफ़ भागना पड़ा। महाराजकुमार भी नारनौल को लूटने के बाद अलवर, तिजारा और शाहजहाँपुर को लूटते हुए देहली से केवल नौ कोस के फ़ासले पर स्थित सराय अलीवर्दीख़ाँ तक जा पहुँचे †।

❀ लेटर मुग़ल्स भा० २, पृ० १०८-१०९।

† लेटर मुग़ल्स भा० २, पृ० १०९-११० और सैहरुल मुताख़रीन, पृ० ४५४। पिछले इतिहास में यह भी लिखा है कि महाराज अजितसिंहजी के दो कुमारों ने मुज़फ़्फ़र का पीछा कर ४-५ शाही गाँवों को लूट लिया। परंतु उसमें इस घटना के बाद शाही अमीरों को अजमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा का मिलना और उनका बहाने बनाकर इस कार्य को टालना लिखा है।

अजितोदय सर्ग ३०, श्लो० ६-११। उक्त काव्य में अभयसिंहजी की चढ़ाई का समाचार सुनकर मुज़फ़्फ़र का मनोहरपुर से भागना और इसके बाद अभयसिंहजी का साँभर की तरफ़ जाना लिखा है।

❀ इनमें के प्रत्येक ऊँट पर बंदूक़ों या तीर-कमानों से सजे दो-दो सवार चढ़े हुए थे।

† लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११०। अजितोदय में महाराजकुमार अभयसिंहजी का नारनौल को लूटकर साँभर को लौटना और इसके बाद जाकर शाहजहाँपुर को लूटना लिखा है। इसके बाद वे फिर साँभर लौट आए थे। (देखो सर्ग ३०, श्लो० १२-२१)।

इससे देहली के शाही दरबार में फिर गड़बड़ मच * गई। इस पर सबसे पहले शम्सामुद्दौला ने महाराज से भयंकर बदला लेने की क़समें खाकर बादशाह से अजमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा प्राप्त की और इसी के अनुसार वह अपने डेरे (एक बार फिर) देहली के बाहर खड़े करवाकर बड़े ज़ोर-शोर से चढ़ाई की तैयारी करने लगा। परंतु इतना सब कुछ होने पर भी उसकी आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। यह देख बादशाह उससे नाराज़ हो गया। अतः शम्सामुद्दौला को अपना दरबार में जाना ही बंद करना पड़ा। इसके बाद बादशाह ने हैदरक़ुलीख़ाँ को इस कार्य के लिये तैयार किया। यद्यपि पहले तो उसने बादशाह के सामने अनेक प्रबंध-संबंधी प्रार्थनाएँ उपस्थित कर इस कार्य में बड़ी तत्परता दिखाई, तथापि अंत में जब सारा शाही तोपखाना ही उसके अधिकार में दे दिया गया, और उसके डेरे भी नगर से बाहर खड़े करवा दिए गए, तब उसने आगे बढ़ने से एकाएक इनकार कर दिया। इसके बाद कमरुद्दीनख़ाँ को भी इसी प्रकार अपनी असमर्थता प्रकट करनी पड़ी। अंत में बहुत कुछ कहा-सुनी के बाद नुसरतयारख़ाँ ने किसी तरह महाराज के विरुद्ध चढ़ाई की। परंतु इसी बीच महाराज स्वयं ही अजमेर से जोधपुर लौट आए *। अतः यह झगड़ा यहीं शांत हो गया।

इस घटना के क़रीब एक मास बाद (ई० सन् १७२२ की २१ मार्च = वि० सं० १७७९ की आषाढ़-वदी २ को) महाराज ने बादशाह के पास अपने प्रतिनिधि भेजकर कहलाया कि तख़्त पर बैठते समय आपने गुजरात और अजमेर के उपद्रव को दबाने के लिये उक्त दोनो सूबे मुझे सौंपे थे। इसके बाद जब सारे उपद्रव शांत हो चुके, तब गुजरात का सूबा हैदरक़ुली को दे दिया गया। फिर भी मैंने इस पर कुछ आपत्ति नहीं की। परंतु अब आप अजमेर का सूबा भी मुझसे लेना चाहते हैं। यह कहाँ तक न्याय्य है। इसे आप स्वयं ही सोच देखें †।

* लेटर मुग़ल्स भा० २, पृ० ११०।

अजितोदय में लिखा है कि इसी अवसर पर आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने महाराजकुमार के बढ़ते हुए प्रताप को देख अपने प्रधान पुरुषों को महाराज के पास भेजा, और उनके द्वारा बहुत कुछ कह-सुन और क्षमा माँगकर महाराज से मैत्री कर ली। इसी समय महाराज ने आँबेर-नरेश की तरफ़ से आए हुए खंगारोत श्यामसिंह के बड़े पुत्र को नराणा गाँव जागीर में दिया था। (देखो सर्ग ३०, श्लो० २२-२४)

* लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११०-१११। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि निज़ामुलमुल्क के दक्षिण से देहली के निकट पहुँचने की सूचना मिलने से ही महाराज अजमेर से जोधपुर लौट गए थे।

† लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १११। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि अजितसिंहजी ने बादशाह को यह भी सूचित किया था कि यदि मुज़फ़्फ़रअली यहाँ आ जाता, तो मैं उसे अजमेर भी सौंप देता। परंतु वह तो यहाँ तक पहुँचा ही नहीं। इसके अलावा नारनौल पर के हमले का कारण केवल मेवातियों के साथ का व्यक्तिगत मनोमालिन्य ही था। शत्रु लोग इससे बादशाह से विरोध करने का तात्पर्य बतलाकर अन्याय करते हैं।

इस पर बादशाह ने भी सहज ही झगड़ा मिटता देख उत्तर में महाराज के नाम एक फ़रमान लिख भेजा। उसमें इनके पहले के किए कार्यों की प्रशंसा के बाद दोनो सूबों के ले लेने के विषय में इधर-उधर के बहाने बनाए गए थे। अंत में यह भी लिखा था कि अजमेर का सूबा तो तुम्हारे ही अधीन रक्खा जाता है, कुछ दिनो में अहमदाबाद का सूबा भी तुम्हें लौटा दिया जायगा। इस फ़रमान के साथ ही बादशाह की तरफ़ से महाराज के लिये ख़ासा ख़िलअत, जड़ाऊ सरपेच, एक हाथी और एक घोड़ा भी उपहार में भेजा गया ॐ।

वि० सं० १७७६ के मँगसिर (ई० सन् १७२२ के दिसंबर) में † बादशाह ने नाहरख़ाँ को अजमेर की दीवानी और साँभर की फ़ौजदारी तथा उसके भाई रुहल्लाखाँ को गढ़बीटली की क़िलेदारी दी। अतः वे दोनो महाराज के वकील खेमसो भंडारी के साथ देहली से अजमेर चले आए ॐ। इस घटना को अभी एक महीना भी न होने पाया था कि एक रोज़ नाहरख़ाँ ने महाराज के सामने कुछ अनुचित † शब्द कह दिए। इससे क्रुद्ध होकर इन्होंने उसे और उसके भाई को मरवा डाला, और उसका शिविर लूट लिया। उसके साथ के यवनों में से भी कुछ तो हमले में मारे गए और कुछ बचकर निकल भागे ‡।

इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने शरफ़ुद्दौला इरादतमंदख़ाँ को ७,००० जात और ६,००० सवारों का मनसब तथा २,००,००० रुपए नक़द देकर महाराज पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। साथ ही ५०,००० शाही सवार और अनेक अमीर भी उसके साथ कर दिए। इनके अलावा उसने आँबेर-नरेश जयसिंहजी, मुहम्मदख़ाँ बंगश और राजा गिरधर बहादुर आदि अमीरों को भी उसके साथ जाने को लिख दिया। इसके बाद ही वि० सं० १७८० की ज्येष्ठ-सुदी १३ (ई० सन् १७२३ की ५ जून) को नागौर का परगना भी राव इंद्रसिंह को दे दिया

ॐ लेटर मुग़ल्स भा० २, पृ० १११—११२। ग्रांटडफ़ की 'हिस्ट्री ऑफ़् मरहटाज़' में लिखा है कि इसी समय ख़ाँ दौराँ के कहने से बादशाह ने आगरे के सूबे का प्रबंध भी महाराज को सौंप दिया था। (देखो भा० १, पृ० ३५१)

† वि० सं० १७७६ की मँगसिर-बदी १ के महाराज के दयालदास के नाम साँभर से लिखे पत्र से प्रकट होता है कि गेसूख़ाँ ने हिंडौन से जयपुर-नरेश जयसिंहजी का थाना उठाकर वहाँ पर अधिकार कर लिया था। इस पर महाराज ने अपनी सेना को आँबेरवालों की फ़ौज के साथ भेजकर कार्तिक-बदी ५ को वहाँ पर फिर जयसिंहजी का अधिकार करवा दिया। गेसूख़ाँ मय फ़ौज के मारा गया।

ॐ लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११२। नाहरख़ाँ और रघुनाथ भंडारी ये दोनो ही महाराज का पत्र लेकर संधि के लिये पहले बादशाह के पास गए थे।

† अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३१-३३।

‡ लेटर मुग़ल्स, में नाहरख़ाँ के मुख से अनुचित शब्दों के निकलने का उल्लेख नहीं है। (देखो भा० २, पृ० ११२)

गया*। परंतु उस समय उसके शाही सेना के साथ दक्षिण में होने के कारण समयानुसार नज़र आदि का कार्य उसके पौत्र मानसिंह ने पूरा किया †।

इसी समय हैदरक़ुलीख़ाँ भी अहमदाबाद से लौटकर रिवाड़ी आ पहुँचा। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उसे अजमेर की सूबेदारी और साँभर की फ़ौजदारी देकर उधर जाने की आज्ञा दी। अतः वह भी वहीं से लौटकर नारनौल में इरादतख़ाँ के साथ हो लिया ‡।

इस प्रकार शाही दल को आता देख महाराज ने गढ़बीटली (के क़िले) की रक्षा का भार तो ऊदावत-वीर अमरसिंह को सौंप दिया और स्वयं साँभर होते हुए जोधपुर चले आए ¶।

* कुछ दिन बाद जयपुर-नरेश जयसिंहजी ने आकर शाही सेना की सहायता से नागौर पर इंद्रसिंह का अधिकार करवा दिया। इस पर राज्य की तरफ़ से महाराज कुमार आनंदसिंह उसके मुक़ाबले को भेजे गए। परंतु इन्होंने डीडवाने पहुँच स्वयं ही स्वतंत्रता का झंडा खड़ा कर दिया। अंत में बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर यह तो शांत हो गए, पर इस गड़बड़ के कारण नागौर इंद्रसिंह के अधिकार में ही रह गया।

† लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३३-४० और ४२-४४।

‡ लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ४१।

¶ लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और पृ० ११४ का फ़ुटनोट *।

अजितोदय में महाराज का शाही सेना से युद्ध करने के लिये त्रिवेणी से आगे पहुँचना, जयसिंहजी का बीच में पड़, इन्हें युद्ध से रोकना और इनका वापस अजमेर लौट आना लिखा है। (देखो सर्ग ३०, श्लो० ४६-५२) पर यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

वि० सं० १७८० के आषाढ़* (ई० सन् १७२३ के जून) में शाही सेना के अजमेर पहुँचने पर ऊदावत-वीर अमरसिंह ने क़िले का आश्रय लेकर उसका सामना किया। कुछ दिनों तक तो बराबर युद्ध होता रहा, परंतु इसके बाद आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने बीच में पड़ उक्त क़िला तो शाही सेना को दिलवा दिया †, और बादशाह को संधि का विश्वास कराने के लिये महाराजकुमार अभयसिंहजी को देहली भिजवा

* राजरूपक में सावन में फ़ौज का आना और ४ मास तक युद्ध होना लिखा है। (देखो पृ० २३८)

वि० सं० १७७९ (चैत्रादि १७८०) की वैशाख-सुदी १५ के बूँदी के, राव राजा बुधसिंहजी के लिखे महाराज के नाम के पत्र से प्रकट होता है कि उस समय उन्होंने भी कुछ सेना महाराज की सहायता में भेजने का प्रबंध किया था।

† अजितोदय सर्ग ३०, श्लो० ५३-६५। परंतु राजरूपक में जयसिंहजी के बीच में पड़ने का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० २३९)।

कर्नल टाड के राजस्थान के इतिहास से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि ४ महीने के युद्ध के बाद अजमेर शाही अमीरों के हवाले किया गया। परंतु उसमें क़िले का नाम तारागढ़ लिखा है। (देखो भा० २, पृ० १०२८)

लेटर मुग़ल्स में 'मीराते वारिदात' के आधार पर लिखा है कि यद्यपि इस क़िले में केवल ४०० योद्धा ही थे, तथापि आपस की बातचीत के बाद ही यह क़िला शाही लश्कर को सौंपा गया था, और क़िलेवाले अपने-अपने शस्त्र लिए निशान उड़ाते और नक़ारा बजाते हुए क़िले से बाहर निकले थे। (देखो भा० २, पृ० ११४ का फ़ुटनोट*)

दिया ❀। बादशाह ने भी महाराजकुमार के देहली पहुँचने पर उनकी बड़ी ख़ातिर की †। इसके बाद महाराज स्वयं भी, जो इन दिनो मेड़ते के मुक़ाम पर थे, जोधपुर लौट आए ‡।

यद्यपि बादशाह ने महाराज से अजमेर ले लिया था, तथापि उसे हर समय इनका भय बना रहता था और वह इनको मारकर निश्चिंत होने का मौक़ा ढूँढ़ता था। इसीलिये उसने महाराजकुमार अभयसिंहजी से घनिष्ठता बढ़ानी प्रारंभ की, और राजा जयसिंहजी के द्वारा भंडारी रघुनाथ को भी अपनी तरफ़ मिला लिया। इसके बाद इन्हीं दोनो के द्वारा वह अभयसिंहजी को उनके पिता के विरुद्ध भड़काने का षड्यंत्र रचने लगा। परंतु इस पर भी जब महाराजकुमार ने उसके भय और प्रलोभनों पर ध्यान नहीं दिया, तब एक रोज़ उसने राजा जयसिंहजी और भंडारी रघुनाथ के द्वारा एक जाली पत्र लिखवाकर किसी तरह उस पर उन (महाराजकुमार) के दस्तख़त करवा लिए। इसके बाद वही पत्र गुप्त रूप से अभयसिंहजी के छोटे भ्राता बख़तसिंहजी के पास भेज दिया गया। इसमें राज्य की रक्षा के लिये वृद्ध महाराज को मार डालने का आग्रह किया गया था। जैसे ही यह पत्र उनको मिला, वैसे ही एक बार तो वे चकित और किंकर्तव्य-विमूढ़-से हो गए। परंतु अंत में देश और भ्राता पर आनेवाले भावी संकट का विचारकर उन्होंने भवितव्यता के आगे सिर झुकाना ही स्थिर किया। इसी के अनुसार वि० सं० १७८१ की आषाढ़-सुदी १३ (ई० सन् १७२४ को २३ जून) को रात्रि के पिछले पहर निद्रित अवस्था में ही महाराजा अजित इस लोक से विदा हो गए ❀।

महाराज के प्रताप से मुसलमान लोग जितना भय खाते थे, हिंदू उतना ही निर्भय रहते थे। इन्होंने बालकपन से ही संसार के अनेक परिवर्तन देखे थे। एक समय वह था कि जब यह अपनी माता के गर्भ में ही थे कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद इनके जन्म लेते ही

❀ राजरूपक में मँगसिर-सुदी ७ को इनका देहली को रवाना होना लिखा है। (देखो पृ० २४१)

† अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ६६-८४। उसमें यह भी लिखा है कि जिस समय यवन-सेना रीयाँ में थी, उस समय महाराज ने जयसिंहजी के आग्रह से संधिकर महाराजकुमार को बादशाह के पास जाने की आज्ञा दी थी।

‡ अजितोदय, सर्ग ३१, श्लो० १।

❀ मआसिरुल उमरा भा० ३ पृ० ७५८। (इसी पृष्ठ की टिप्पणी में 'तारीख़े मुज़फ़्फ़री' का हवाला देकर लिखा है कि कुछ लोगों का कहना है कि महाराजा अजितसिंह बादशाह की कुछ भी परवा नहीं करते थे। इसी से बादशाह ने और उसके वज़ीर ऐतमादुद्दौला—क़मरुद्दीनख़ाँ ने उसके बेटे बख़्तसिंह को बाप का उत्तराधिकारी बना देने का प्रलोभन देकर उसको मारने के लिये तैयार कर लिया) इंडियन ऐंटिक्वेरी भा० ५८, पृ० ४७-५१।

महाराज के साथ कुल मिलाकर ६२ या ६६ प्राणियों ने अपनी ख़ुशी से चिता में प्रवेशकर हृदय-ज्वाला को शांत किया था। इनमें ६ रानियाँ थीं। (देखो अजितोदय सर्ग ३१, श्लो० ३२-३३ और राजरूपक पृ० २४७-२५४)

औरंगज़ेब जैसा प्रबल बादशाह इनका शत्रु बन बैठा, और उसी की शत्रुता के कारण इनकी वीर माता को भी प्राणों से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद ८ वर्ष की आयु तक तो ये अज्ञातवास में रहे, और इनके पैतृक राज्य पर यवनों का अधिकार रहा। परंतु इनके स्वामि-भक्त सरदार उस समय भी प्राणों का मोह छोड़कर विना नायक के ही शत्रुओं से लोहा लेते रहे। इसके बाद २० वर्षों तक इनके सरदारों और इन्होंने समय-समय पर यवनों के दाँत खट्टे कर अंत में अपने गए हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। परंतु आश्चर्य तो उस समय होता है, जब एक मातृ-पितृ-हीन नवजात बालक कालांतर में ऐसा प्रतापी निकलता है कि जिसकी सहायता से फ़र्रुख़सियर-सा बादशाह देहली के शाही तख़्त से हटाया जाता है और उसके रिक्त स्थान पर क्रमशः तीन नए बादशाह बिठाए जाते हैं।

यहाँ पर एक बार फिर यह प्रकट करना कुछ अनुचित न होगा कि उस संकट के समय मारवाड़ के अधिकतर सरदारों ने अपने स्वामि-धर्म का स्मरण कर बड़ी निर्भीकता से महाराज का साथ दिया था। यह उन्हीं की वीरता का फल था कि औरंगज़ेब-जैसा प्रबल बादशाह भी मारवाड़ राज्य को नहीं पचा सका, और उसके उत्तराधिकारी को उसे उगलना ही पड़ा।

महाराज के १२ पुत्र※ थे। इनमें से बड़े पुत्र अभयसिंहजी तो राज्य के स्वामी हुए, द्वितीय पुत्र बख़्तसिंहजी को नागौर का प्रांत मिला और तृतीय पुत्र आनंदसिंहजी ※ ने फिर से ईडर का राज्य प्राप्त किया।

※ १ अभयसिंहजी, २ बख़्तसिंहजी, ३ अखैसिंहजी, ४ बुधसिंह, ५ प्रतापसिंह, ६ रत्नसिंह, ७ सोनग (सोभागसिंह), ८ रूपसिंह, ९ सुल्तानसिंह, १० आनंदसिंह [इनका जन्म वि० सं० १७६५ की आषाढ़-सुदी ५ (ई० सन् १७०८ की ११ जून) को हुआ था] (देखो अजितोदय सर्ग १७, श्लो० २०२१), ११ किशोरसिंह [इनका जन्म वि० सं० १७६६ की आश्विन-वदी ११ (ई० सन् १७०९ की १८ दिसंबर) को हुआ था], और १२ रायसिंह [इनका जन्मः वि० सं० १७६७ की श्रावण-बदी ३० (ई० सन् १७१० की १५ जुलाई) को हुआ था]। (देखो अजितोदय सर्ग १६, श्लो०, ६३-६४)

※ ख्यातों से ज्ञात होता है कि स्वर्गवासी महाराजा अजितसिंहजी की दाहक्रिया हो जाने पर उनके पुत्र आनंदसिंहजी अपने छोटे भ्राता किशोरसिंह और रायसिंह को लेकर रायपुर की तरफ़ चले गए थे। परंतु अजितोदय में इनका घाणेराव की तरफ़ जाना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि जोधा मोहकमसिंह इनका अभिभावक होकर इनके साथ गया था। (देखो सर्ग ३२, श्लो० २-३)। इसके बाद वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में आनंदसिंहजी और रायसिंहजी ने जाकर ईडर पर अधिकार कर लिया। संभवतः उस समय उक्त प्रांत इनके बड़े भ्राता अभयसिंहजी के मनसब की जागीर में रहा होगा।

किशोरसिंह अपने ननिहाल जयसलमेर चला गया था। अजितोदय में लिखा है कि जयपुर-नरेश जयसिंहजी ने इन्हें देहली बुलवाकर बादशाह से तोड़े का अधिकार दिलवा दिया था। (देखो सर्ग ३२, श्लो० ५)

महाराज ने ३५ गाँव * दान दिए थे और कई नवीन स्थान † आदि ‡ भी बनवाए थे।

कर्नल टाड ने अपने राजस्थान के इतिहास* में लिखा है कि अजितसिंहजी ने अपने सिक्के अलग ढलवाए थे, और इसी तरह अपना नाप (गज), अपना तोल, अपनी अदालतें और अपने ओहदे (पद) भी अलग क़ायम किए थे।

परंतु अब तक उस समय का एक भी सिक्का देखने में नहीं आया है।

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व यहाँ पर महाराज अजितसिंहजी के इतिहास से संबंध रखनेवाले दो संस्कृत काव्यों और एक भाषा काव्य का संक्षिप्त वर्णन कर देना भी अनुचित न होगा।

पहला काव्य अजित-चरित्र है। यह महाराज की आज्ञा से औदीच्य जाति के बालकृष्ण शर्मा दीक्षित ने बनाया था। इसमें १० सर्ग हैं। ग्रंथारंभ में कवि ने लिखा है—

> एवं विचार्य त्तुभिता नितांतं,
> स्थितासि किं मत्कविते मनोज्ञे।

---

* १ पाल्ही ब्यासों की (नागौर प्रांत की) श्रीमाली ब्राह्मण को; १ हीरावास (सोजत प्राँत का), २ हाडेचा (साँचोर परगने का), ३ बेडा-बड़ी (मेड़ता प्रांत की), ४ पुरियों का खेड़ा (जस-वंतपुरा प्रांत का) स्वामियों को; १ गोइँदलाव (सोजत प्रांत का), २ ढाढरवा (फलौधी प्रांत का), ३ नाँखड़ाँ और ४ समद डाउ-इरंडिया (फलौधी प्रांत के), ५ मेलावास, ६ भुवाँणा, ७ काछेड़ा, ८ पादरड़ी और ६ पनोरिया (साँचोर प्रांत के), १० मंडली (जोधपुर का), ११ कोड़िया और १२ गोरेरी (डीडवाने के), १३ टीबाणिया (पचपदरा प्रांत का), १४ घोड़ारन, १५ नौसरिया और १६ सूरपुरा-इंटावा (नागौर प्रांत के), १७ गूँदीसर बड़ा और १८ अमरपुरा (परवतसर प्रांत का), १६ बासणी (जैतारण प्रांत की) चारणों को १ माँमा-बास (सोजत प्रांत का) २ सिवाने का बास और ३ बाग़ावासिया (सिवाना प्रांत के) मेवाड़ के एक-लिंग (इकलंजी) महादेव के मंदिर के लिये; १ बाग़ावास सूनाखेड़ा (सिवाना प्रांत का) २ डोली ३ भेसेर खुर्द, ४ मोडी और ५ मोड़ी दूसरी (जोध-पुर की) पुरोहितों को, १ गरडाली (साँचोर प्रांत की), २ अंबाली (नागौर की) साँइयों को तथा १ धाँगडा भाट (दसूँदी) को दिया था।

† महाराज अजितसिंहजी के बनवाए हुए स्थान—

जोधपुर के क़िले में—फ़तैपौल और गोपाल पौल के बीच का कोट, नई फ़तैपौल (वि० सं० १७७४ में), दौलतख़ाना फ़तैहमहल, भोजनसाल, बीच का महल, ख़्वाबग़ाह के महल, रँगसाल और २४ छोटे ज़नाने महल। (इन्होंने चामुंडा के मंदिर की मर-म्मत भी करवाई थी।) नगर में घनश्यामजी का मंदिर (पंच मंदिरोंवाला), मूल नायकजी का मंदिर, मंडोर में—एक थंभे के आकार का महल, वहाँ के ज़नाने मकानात (वि० सं० १७७५ में), जसवंतसिंहजी का देवल, गणेशजी की मूर्ति सहित भैरवोंवाला दालान और पहाड़ में काटकर बनाई हुई वीरों की मूर्तियोंवाला दालान। (यह दालान वि० सं० १७१७ में बनवाया था)।

‡ क़िले में की चाँदी की पूरे क़द की मुरलीमनो-हर, शिवपार्वती, चतुर्भुज विष्णु और हिंगलाज की मूर्तियाँ भी इन्होंने ही वि० सं० १७७६ में बन-वाई थीं।

* ऐनाल्स एंड एंटिक्विटीज ऑफ़् राजस्थान (क्रुक संपादित) भा० २, पृ० १०२६

अजीतसिंहो धरणी जलेऽस्मिन्,
जातस्तदर्थं कुरु काव्यबंधम्।
(सर्ग १, श्लो० ६)

आज्ञाकृता तेन नराधिपेन,
राठोडवंशाभरणोत्तमेन ।
औदीच्यजं दीक्षितबालकृष्ण,
शर्माणमेनं विबुधैकभक्तम्।
(सर्ग १, श्लो० ८)

इसके बाद कवि ने सूर्यवंशी इक्ष्वाकु के कुल में मरुनामक नरेश का होना और उसका मारवाड़ को अपनी राजधानी बनाना लिखा है। उसका वंशज शल्य था। उसके विषय में कवि लिखता है—

श्रीभारते सर्वपुराणवर्ये,
सत्कारपूर्वं खलु वर्णितो यः।
शल्यो रिपूणामितिनामसार्थं,
चकार राजा कुरुराजयुद्धे।
(सर्ग ३, श्लो० २)

इसके बाद इस वंश में रावजोधा, रावसूजा और बाघा का होना लिखकर अंतिम नरेश का पुत्र-कामना से गंगाराधन करना लिखा है। उस स्थल का एक श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

मातर्मदीयं शृणु दुःखमेकं,
वदंति लोकाः कुलमस्यनष्टम्।
मद्दत्तमम्भः पितरः पिबंति,
निःस्वस्य निःस्वस्य कथंचिदेव।
(सर्ग ४, श्लो० १२)

अनंतर कवि ने रावगंगाजी, मालदेवजी*, उदयसिंहजी, शूरसिंह जी, गजसिंहजी और जसवंतसिंहजी के उल्लेख के बाद अजितसिंहजी के जन्म का वर्णन कर औरंगज़ेब द्वारा बुलाए जाने पर राठौरों का देहली पहुँचना लिखा है, कवि लिखता है—

तथा प्रस्थितं सैन्यमेतत्सुराज्ञो
यथा मेघमाला घना भाद्रमासे।
मरोश्चंडवातेरितारेणुसंघाः
प्रवृद्धस्य सिंधोर्यथोच्चास्तरंगाः॥
(सर्ग ७, श्लो० २६)

इसके बाद कवि ने राठौर वीरों के, अपने बालक महाराज की रक्षार्थ, युद्ध के लिये तैयार होने का वर्णन किया है—

शालिग्रामशिलाच्च केऽपि हृदये मूर्तिं भवान्याः परे,
पीत्वा गांगजलं दधुश्च तुलसीपत्रं वरांगे परे॥
सन्नद्धाश्च बभूवुरस्त्रनिवहान् बध्वा रणायोत्सुकाः।
पत्न्योन्तः पुरगास्तथैव रचनां चक्रुस्तथा साजिताः॥
(सर्ग ८, श्लो० १७)

इसके बाद कवि ने बादशाह के अजमेर आने, महाराना के यहाँ महाराज के विवाह होने, महाराज के जोधपुर पर अधिकार करने, औरंगज़ेब की मृत्यु पर बहादुरशाह के गद्दी बैठने, उसके अजितसिंहजी से संधि करने, महाराज के नर्मदा तक उसके साथ जाने, वहाँ से जयसिंहजी के साथ मेवाड़ होते हुए लौटने, दोनो नरेशों के साँभर विजय करने और फिर अपने-अपने देशों को जाने का संक्षिप्त उल्लेख कर महाराज के अजमेर, नागोर और साँभर आदि पर चढ़ाई करने, बादशाह के अजमेर के निकट आकर आँबेर और मारवाड़ के नरेशों से संधि करने, दोनो नरेशों के पुष्कर तक साथ लौटकर अपने-अपने देशों को जाने और महाराज

* इसमें चंद्रसेनजी का उल्लेख नहीं है।

के राज्याभिषेक के होने का वर्णन किया है। ग्रंथांत में कवि लिखता है—

भूपालोजीतसिंहः क्षितितलमधुना वर्ततेर्थिप्रदाता।
तावत्त्वं रोहिणाद्रे कुरु सुखमतुलं भीक्षुकास्ते समीपम्॥
नायास्यन्त्यादितेयद्रुमशमनुभवत्त्वं मणे तिष्ठ गेहे।
त्वं श्रीमत्कामधेनो कलय निजसुतं कामना नास्ति भूमौ॥
(सर्ग १०, श्लो० ४५)

इसके बाद निम्न-लिखित आशीर्वादात्मक श्लोक लिखकर काव्य समाप्त कर दिया गया है—

यावच्चन्द्रदिवाकरौ गतिपरौ यावद्ध्रुवो निश्चलो।
यावत्सागरसप्तकं शिखरिणो यावत्सुमेर्वादयः॥
गंगाद्याः सरितो वहन्ति परितो यावद्धरामंडलम्।
श्रीमद्राजशिरोमणे तव यशस्तावत्सदा वर्द्धताम्॥
(सर्ग १०, श्लो० ४६)

और अंत में लिखा है—

इति श्रीदीक्षितबालकृष्णकृतौ महाराजअजित-चरित्रे महाकाव्ये अजदुर्ग, नागपुरजय, दिल्लीपति-संधि, राज्याभिषेक, कविसूक्तिरचनं, नाम दशमः सर्गः॥

यह ग्रंथ न तो महाकाव्य की श्रेणी में ही आ सकता है, न इससे इतिहास में ही विशेष सहायता मिल सकती है। इसकी कविता का नमूना पाठकों के सामने रख दिया गया है। यदि यह अधिक चमत्कारपूर्ण नहीं है, तो बुरी भी नहीं है।

दूसरा अजितोदय-नामक ३२ सर्गों का काव्य है। इसके कर्ता का नाम भट्ट जगजीवन था। कवि ने नियमित मंगलाचरण के बाद लिखा है—

राज्ञेऽनेक गुणार्णवस्य सकलक्षोणीश चूडामणे।
राठोडान्वयजाम्बुजव्रजवनप्रोल्लासकाहर्म्मणेः॥
वक्ष्ये चित्रमयाजितस्य नृपतेः प्रीत्या चरित्रं शुभम्।
यद्यस्मि प्रतिबद्ध वागपि मुदा वाग्देविसं प्रेरितः॥
(सर्ग १, श्लो० ४)

इसके बाद कवि ने जोधपुर का और महाराजा जसवंतसिंहजी का वर्णन कर लिखा है कि औरंगज़ेब के राज्य में मीरजुमला के पुत्र महम्मद अमीन को, जो काबुल का सूबेदार था, वहाँवालों ने लूट लिया। इस पर उसने महाराज से सहायता की प्रार्थना की। अतः महाराज ने वहाँ पहुँच पठानों को दबा दिया, और महम्मद अमीन की स्त्री और बाल-बच्चे जो लूट लिये गए थे, उसे वापस दिलवा दिए।

इसके बाद कवि ने अजितसिंहजी के गर्भ-प्रवेश का वर्णन इस प्रकार किया है—

जाने तु पुष्ये समयेऽस्य चतुर्दशेऽह्नि,
श्रीयादवेंद्रतनया नृपतेर्मनस्तः।
गर्भं दधौ त्वमितधामचयावभासं
प्राचीव षोडशकलं तु शरच्छशांकम्॥
(सर्ग ४, श्लो० १)

अनंतर पेशावर में महाराज जसवंत के स्वर्ग-वास का उल्लेख कर अजितसिंहजी के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु-पर्यंत का इतिहास दिया गया है। इसका विशद वर्णन पहले लिखे गए इति-हास को टिप्पणियों में यथास्थान हो चुका है। यहाँ तक इस काव्य के ३१ सर्ग समाप्त होते हैं।

३२ वें सर्ग में अजितसिंहजी के उत्तराधि-कारी महाराजा अभयसिंहजी का देहली में राज्याभिषेक होना, और इसके बाद उनका मथुरा में जाकर जयसिंहजी की कन्या से विवाह करना, तथा वहाँ से देहली लौट जाना लिखा है—

घाटेष्वन्येषु गत्वा मरुधरपातिरास्नायदानं विधाय।
संवीक्ष्यादौ वनान्वै द्विजजननिकरान्साधुवर्य्यान्प्रपूज्य॥

तत्रोषित्वा त्रिरात्रं तदनु समधिगम्यैव राधाख्यकुंडे ।
स्नात्वा गोवर्द्धनाद्रिं विधिवदपि तथा पश्य दिल्लीमगात्सः॥
(सर्ग ३२, श्लो० ४०)

यहीं पर यह काव्य समाप्त हुआ है ।

इस काव्य में ग्रंथकर्ता ने कहीं भी अपना परिचय नहीं दिया है। केवल सर्गांत में लिखी पंक्तियों में उसका उल्लेख मिलता है । ३२ वें सर्ग के अंत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

इति श्रीमदजितोदयमहाकाव्ये भट्टजगजीवनकृतेऽभयनृपोद्वाहो नाम द्वात्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३२ ॥

यद्यपि इस काव्य की कविता विशेष चमत्कार-पूर्ण नहीं कही जा सकती, तथापि इसके ऐतिहासिक काव्य होने में तो कोई संदेह नहीं है ।

अजित-ग्रंथ—यह ग्रंथ किस कवि का बनाया हुआ है, इसका राजकीय इतिहास-कार्यालय की कापी में कहीं उल्लेख नहीं है। इसके अंत में लिखा है कि यह पुस्तक पौकरण-ठाकुर के संग्रह में थी। एक बार जब भायल कुशालसिंह पौकरण गए, तब कुछ दिन बाद उन्होंने पौकरण-ठाकुर से कहा कि मेरा जी यहाँ बिल्कुल नहीं लगता है। इसलिये या तो आप मुझे घर जाने की इजाजत दें या कुछ मन-बहलाव का काम बतलावें । इस पर उन्होंने अपने संग्रह में-से कुछ पुस्तकें निकलवाकर कुशालसिंह को पढ़ने के लिये दीं। उन्हीं में यह पुस्तक भी थी। अनंतर जब कुशालसिंह जोधपुर आए, तब इस पुस्तक को भी अपने साथ ले आए, और लेखक को उसकी नक़ल कर देने के लिये कहा। इस पर लेखक ने उसकी दो नक़लें तैयार कर एक तो उनको दी और दूसरी अपने पास रख ली ।

यह नक़ल वि० सं० १९०७ की प्रथम वैशाख-बदी २ से प्रारंभ की जाकर ज्येष्ठ-बदी १३ को समाप्त की गई थी ।

वास्तव में इस ग्रंथ का क्या नाम था, इसका भी इस कापी में कहीं उल्लेख नहीं है। केवल सुभीते के लिये किसी ने इसपर 'अजित-ग्रंथ' लिख दिया है ।

यह काव्य साहित्य की दृष्टि से अधिक महत्त्व का न होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ण महत्त्व का है ।

इस कापी में राजा गजसिंहजी के गद्दी पर बैठने के समय से वि० सं० १७५४ के आषाढ़ तक का इतिहास है। इसका अंतिम कवित्त यह है—

जीव सुद्ध अगजीत संप दुरगासूं साहै ,
वलेज आवै वांण मुंक इण मसलत मांहै ।
कुलचँापे करनोत कांम कीयासूं कहसी ,
धरमाधरम अधंम राह दोय वर्ताँ रहसी ।
सांमताँ तणी वाताँ सुपह घरविध सुण धीजै घणो ।
आसाढ़ लगे सहि अखियौ तत तिपन* संवत तणौ।

इसके आगे एक पृष्ठ पर गद्य में ही अगला औरंगज़ेब के मरने की सूचना मिलने तक का बहुत ही संक्षिप्त हाल लिखा गया है। इसके बाद का अंतिम दोहा यह है—

आई खबर अचिंतरी, मिट गइ तनरी दाह;
कासीदाँ इम भाखियो, मर गयो औरंगसाह ।

---

* यहाँ पर मारवाड़ में प्रचलित श्रावणादि संवत् का उल्लेख होने से इसे वि० सं० १७५४ का आषाढ़ ही समझना चाहिए ।

आगे इस काव्य की कविता के कुछ और भी अवतरण दिए जाते हैं—

उज्जैन-युद्ध का वर्णन—कवित्त

दुय शाहिजादा उठी अठी एक धँणी मंडोवर ;
ऊगौ ज्यौँ रै अरक उभैदल मंडी अरवर ।
गोलां नालां गाज सिंधुवौ राग सुणायो ;
बाणाँ सोक वजाग धुंध मचि गयण ढकायो ।
ताट-तड सोक तीराँ तणी धारसेल वागा धकै ;
राँम मुख राँम हिंदू रटै म्लेच्छ रटै मुँह हामकै ?

महाराज जसवंतसिंह के स्वर्गवास के बाद मारवाड़ की रक्षा के लिये सरदारों का विचार—

दोहा

सोचो मत को सामताँ, कमध कहै सहकोय ;
असपति जो चढ़ आवसी, लड़साँ साँमा होय ।

महाराज अजित की बाल्यावस्था में उनके सामंतों की शत्रु पर की चढ़ाई का वर्णन—

छंद मोतीदाम

सफे भथ बाँण कबाँण सकज्ज ;
वले खग बाँबे अंग विरज्ज ।
जड़े कर त्यार जमंधर जोर ;
फबे हथसेल झिलामल फोर ।
ढले गल माँहि अली बँध ढाल ;
वणे अति जोध महा विकराल ।
फरूकत सीस-धजा फरुकार ;
चढ़ी मुँह साँवत वाँन चकार ।

छंद झूलणा

इतरै जोध अजीतरा, दल हूआ भेला;
कमधज ऊदा खींवकन, मिल संघ समेला ।
खंडप मारे खाक, स्याह की जेलम जेला;
पछै उठाथा हालिया, हुय द्रब्ब सचेला ।

फुटकर (चौपाई)

मुनसब ले जागीर मँगाई, खोटे थके घणा दिन खाई ;
गतने अवगत दुहूँ गमाई, दीठा भव दोनूँ दरगाई ।
करतो पहला बुरी कमाई, पाप धर्मरी परखा पाई ;
इणथा कुबद जीव में आई, खाँणो खायो अखत खुदाई ।

उक्त काव्य में घटनाओं के शीर्षक की तौर पर लिखे गए गद्य का नमूना—

वार्ता—श्रीमहाराजा प्रगटिया इनायतखांन जोधपुर था, कूच कर पाछे थांणोराख अजमेर गयो धरती में चौथरो सरसतो कीयो दौडा धावो मेट श्रीजो सिवाणेदिस पधार बैठा सु समै कह्यो। हिमे दुरगदासजी दखणथा अकबरजीनूं विलायत दिसीनूं मेलनैं आप धरतीनूं आया दौडिया श्रीजीनूं अरज लिखी सु समै ।

(समाप्त)

गीत

[श्रीयुत "निराला"]

कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना ?--
सीखा केवल हँसना—केवल हँसना—
शुभ्र-किरण-वसना ।

मलय मंद भर अंग-गंध मृदु,
बादल अलकावलि कुंचित-ऋजु,
तारक हार, चंद्र मुख, मधु ऋतु,—
सुकृत-पुंज-अशना ।

नहीं लाज, भय, अनृत, अनय, दुख,
लहराता उर मधुर प्रणय-सुख,
अनायास ही ज्योतिर्मय-मुख
प्रणय-पाश कसना ।

चंचल कैसे रूप-गर्व-बल
तरल सदा बहतीं छल-छल-छल,
रूप-राशि में टलमल-टलमल,
कुंद-धवल-दशना ।

गहरी निगाह

[पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"]

चौपदे

रंग रह सका रंग बदले।
बन गई बात, बात बिगड़े।
रहा पानी पानी खोकर।
मिटे सारे झगड़े, झगड़े।१।

बच गया गला, गला उतरे।
खुलीं आँखें, आँखें मूँदे।
हाथ के विना, हाथ मारा।
विना पाँवों के ही कूदे। २।

बने अंधा सब कुछ देखा।
बने बहरा सब सुन पाया।
राख मिट्टी हो जाने पर।
मिली सोने की-सी काया।३।

चेत आया अचेत होकर।
चित्त खो चेतनता आई।
राह मिल गई राह भूले।
सब गँवा सारी सिध पाई।४।

सिर कटे हरे हुए, पनपे।
फले-फूले मिट्टी में मिल।
जल गए मिली जोत न्यारी।
हिले, दिल गया फूल-सा खिल।५।

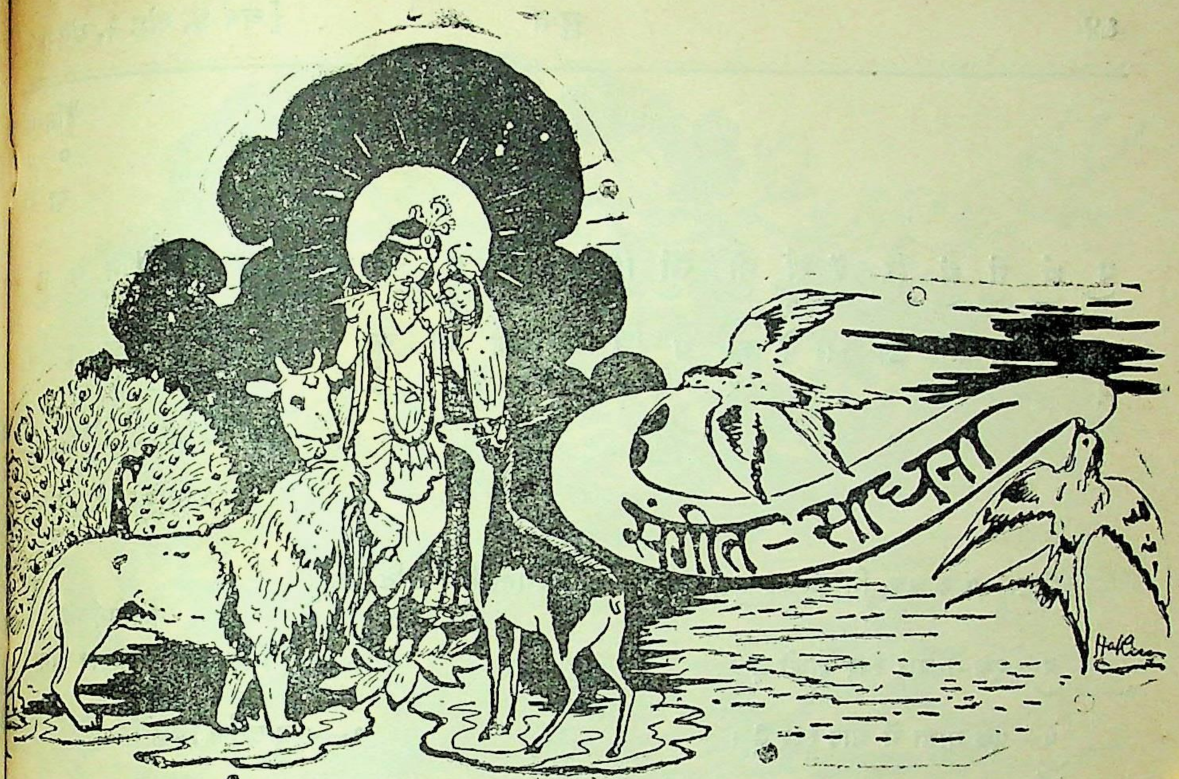
घर गँवा करके घर पाया।
बने सबके बंधन टूटे।
किसी की लहर बहर में पड़।
मोह की लहरों से छूटे।६।

चाँदनी बिना चाँद निकली।
बिना सूरज किरणें फूटीं।
हवा में हवा बाँध अपनी।
निराली फुलझड़ियाँ छूटीं।७।

अँधेरे में सूरज निकला।
घरों में चाँद उतर आया।
जगमगाईं काली रातें।
हुई उजली मैली छाया।८।

नहीं जो दिखलाई देता।
उसे हमने देखा-भाला।
फेंक करके सारी कुंजी।
खोल पाया सच्चा ताला।९।

जी उठे मर जाने पर हम।
उठा नीचे गिरकर पारा।
बूँद में दरिया दिखलाया।
समाया तिल में जग सारा।१०।



शब्दकार—अज्ञात] [स्वरकार—कुमारी गोपालदेवी 'हिंदी-प्रभाकर'

राग संकीर्ण मल्लार—तीन ताल।

मात्रा ८

छम छम छम छम बदरिया बरसन लागी रे लागी रे।
बदरिया बरसन लागी रे लागी रे लागी रे।
सरर सरर रर बरसत वारी, रिमझिम रिमझिम डोले फुलवारी।
अँबुवा की डाली पै कोयली बैठे, कूक कूक कर लागी रे।

स्थायी

प सं सं ॥नि ध प म ॥नि ध प म ग रि स म म प म ॥नि ध ॥नि प
०

छम् छ म छम् छ म ब द रि या ब र स न ला गी रे ला ऽ गी ऽ रे
३ २ १ २

म म म म प प नी नी ना गं रें गं सं ॥नि सं ॥नि ध प म ॥नि ध ॥नि प

ब द रि या ब र स न ला ऽ गी ऽ रे ला ऽ गी ऽ रे ला ऽ गी ऽ रे
३ २ १ २

अंतरा

म म म म प प नी नी सं सं सं सं सं सं सं मं गं मं रि सं निं सं रिं सं

स र र स र र र र ब र स त वा री रि म झि म रिम् झिम् डो ले फु ल
३ २ १ २

नि प
वा री

प मं गं मं रिं रें सं नी सां रिं स नि प प सं सं सं सं नि प म
अँ बु वा की डा ली पै को य लि या बै ठी कू ऽ क कू क क र ला
३ २ १ २

नि प म ग रि स
ऽ गी ऽ रे ऽ ऽ

नोट—ग कोकल, नि दो एक शुद्ध दूसरी कोमल लगती है । जाति संपूर्ण ।

लिपि-चिह्न

प—एक में चार स्वर बोलो १/४ ।

प—एक मात्रा में आठ स्वर १/८ ।

प—एक मात्रा पूरी ।

प—आधी मात्रा १/२ ।

सं—यह चिह्न तार-सप्तक का होगा।

१—सम-दर्शक चिह्न ।

२—ताली-दर्शक चिह्न ।

३—ख़ाली-दर्शक चिह्न ।



१. कवि और संसार

(१)

कवि के अथाह हृदय में भावों की मंदाकिनी अठखेलियाँ करती हुई बह रही थी। ज्ञान-सूर्य की किरणें नीचे उतर-उतरकर उसकी ललित लोल लहरियों को चूम रही थीं। किनारे पर खड़े-खड़े संसार इस छबीली छटा को देखकर मचल रहा था। पर कवि को स्वयं इसका कुछ अनुभव नहीं था। वह उदास बैठा था।

(२)

समय तेज़ी के साथ बीतता जाता था। कवि की अभी तक अपनी प्रियतमा से भेंट नहीं हुई। वह प्रतीक्षा में मौन बैठा था। प्रेमावेश के कारण एकाएक उसके होठ हिल उठे, और उनसे कुछ दुःख-पूर्ण अस्फुट किशोर स्वर निकल पड़े, जिनके प्रत्येक कोमल टुकड़े अपने सुनहले डैने फैलाए हुए शून्य वायु-मंडल के बीच उड़-उड़कर प्रियतमा की खोज में विचरने लगे। मूर्ख संसार ने उसे गीत समझा, और ख़ुशी के मारे चिल्ला उठा—"शाबाश !" पर वाहवाही की वह तुमुल ध्वनि यों ही हवा चीरती हुई निकल गई। उससे कवि को तनिक भी उत्साह नहीं हुआ। उलटे उसके दुःख की मात्रा और भी बढ़ गई।

(३)

कवि को चैन नहीं था। विरही के लिये पल-पल पहाड़ होते हैं। अभागा वियोगी सिसक-सिसककर रो पड़ा। उसकी आँखों से गर्म-गर्म आँसुओं का सोता फूट निकला। पर अंधे और अबोध मानव-संसार ने उन अश्रु-बूँदों को मोती समझा,—और कवि की करुण सिसकन को सितार की झनकार समझ वह मस्ती में झूम उठा।

(४)

जीवन की घड़ियाँ बीतती जाती थीं। संध्या अंधकार की चादर ओढ़े आगे बढ़ती आ रही थी। कवि हृदयेश्वरी के लिये व्याकुल हो उठा था। शक्तियाँ

क्षीण होती जा रही थीं। आँखें मुँदी जाती थीं। कवि अधीर था। पर दुनिया इसे एक सुंदर तमाशा समझकर हँस रही थी!

(५)

अब असह्य हो उठा। एकटक प्रियतमा की राह देखते-देखते कवि की आँखें चौंधिया गईं। उसने आँखें मूँद लीं। आँखों को बंद करते ही कवि ने एक नया ही नूर देखा। उसने सहसा एक तेज-पूर्ण आलोक के बीच प्रियतमा को मुस्किराते हुए पाया।

आनंद-मग्न संसार नेत्र खोलकर भी कुछ नहीं देख सका। पर कवि ने आँखें मूँदकर दुर्लभ प्रियतमा की मोहिनी मंजुल मूर्ति देख ली।

(६)

कल्पना के करों से खींचकर कवि ने प्रियतमा को गले लगाया, और उसे अपने हृदय की साम्राज्ञी बनाया।

(७)

प्रियतमा की छाती में छाती चिपकाए कवि मौन-मुग्ध था। मस्त था। वही प्रियतम था। वही प्रियतमा थी। बड़ी देर के बाद जब उसने आँखें खोलीं, तो संसार का रंग फीका पड़ गया था। वह बिल्कुल नीरस हो रहा था।

(८)

दुनिया मन-मारे चुपचाप उदास बैठी थी। उसकी सारी हँसी कवि के होठों पर जा अड़ी थी। कवि हँस रहा था। पर संसार की उदासी उससे देखी नहीं गई। उसने अपनी वीणा उठाई। उसके तार-तार के मधुर झंकार शून्य वायु-मंडल में ठुमक-ठुमककर नाचने लगे।

(९)

संसार तलमला उठा। पर अब की उसके मुख पर उस विचार-शून्य ओछी हँसी की रेखा नहीं थी। विमुग्ध होकर गंभीरता में वह अमृत की घूँट पी रहा था।

(१०)

कवि हँस रहा था। संसार भी हँस रहा था। इस बार शायद वह कवि के मर्म को कुछ-कुछ समझ सका था। बदले में सहृदय कवि ने जीवन-मकरंद टपकाया, जिसकी एक-एक बूँद, कोमल कुसुम-दल के ऊपर ओस-कण की तरह, संसार के हृदय पर बिखर गई, और फिर अपार सागर की तरह लहराने लगी। उनकी लहरियों पर संसार का हृदय, अनंत की ओर जाती हुई नौका की तरह, थिरकने लगा।

(प्रो०) विश्वनाथप्रसाद (एम्० ए०, साहित्य-रत्न)

× × ×

२. एक मुसलमान वीरांगना का चरित्र

फ़ारिस के यज़्द (Yezd)-प्रांत से उच्चवंश के एक मनुष्य सत्रहवीं शताब्दि के आरंभ में भारत-वर्ष में आकर बस गए। उन्होंने मुग़ल बादशाहों के दरबार में उच्च-पद प्राप्त किया। इनमें से एक प्रसिद्ध व्यक्ति, जिसका नाम ख़लीलुल्लाख़ाँ था, एक सूबे का शासक हो गया था, और उसका विवाह साम्राज्ञी मुमताज़ महल की भतीजी से हुआ था। उनके पुत्र ने, जिसका नाम अमीरख़ाँ था, अफ़ग़ानिस्तान में २२ वर्ष तक, सम्राट् औरंगज़ेब के शासन-काल में, प्रांतिक शासक का कार्य बड़ी योग्यता और सफलता से संपादन किया था। वह राजनीति में इतना कुशल था कि उसने अफ़ग़ानिस्तान की उद्दंड जातियों पर पूर्णतया अपना आतंक जमा रक्खा था, और उसके शासन-काल में किसी प्रकार का उपद्रव (अशांति) न हुआ। उसके कठोर शासन से वहाँ लूट-मार बंद हो गई। वह जिस कार्य को आरंभ करता था, उसी में उसे सफलता प्राप्त होती थी; उसके सब मनोरथ सिद्ध होते थे।

एक बार अफ़ग़ान जातियों ने ऐमलख़ाँ (Aimal Khan) के नेतृत्व में एक महान् विद्रोह कर दिया था, परंतु उसने एक बढ़िया युक्ति काम में ली। उसने प्रत्येक जाति के सरदार को इस आशय का पत्र लिखवाया कि तुम अपने सरदार से यह पूछो कि वह जीती हुई भूमि को अपने सब सैनिकों और संबंधियों को बिना पक्ष-

पात के बराबर बाँट देगा या नहीं। इससे तुम्हें यह ज्ञात हो जायगा कि वह कहाँ तक पक्षपात-रहित और न्यायी है। उसके सिपाहियों ने ऐसा ही किया। ऐमलख़ाँ ने पहले तो यह कहा कि इतनी थोड़ी भूमि इतने बहुसंख्यक मनुष्यों में नहीं बाँटी जा सकती। इससे सैनिक बिगड़ गए, जिसका फल यह हुआ कि उसे भूमि का विभाग करना पड़ा। परंतु उसमें भी उसने यह भूल की कि अपने संबंधियों को अधिक भूमि का भाग दिया और सैनिकों को कम। इससे लोगों का विश्वास जाता रहा, और उनमें से अधिकांश उसका साथ छोड़-कर चले गए। इस उपाय से शासक ने उस महान् विद्रोह को बिना युद्ध ही शांत कर दिया। वह प्रत्येक राज-कार्य में अपनी पत्नी (बेगम) की, जिसका नाम साहिबाजी था, सलाह लेता था। वह अलीमर्दानख़ाँ की पुत्री थी, जो शाहजहाँ के दरबार में उच्चकोटि का कर्मचारी था। वह राज-कार्य में बड़ी कुशल थी। यथार्थ में वही काबुल की शासन करनेवाली थी। उपर्युक्त विद्रोह भी उसकी ही चातुरी से शांत किया गया। एक दिन औरंगज़ेब ने यह समाचार काबुल से सुना कि अमीरख़ाँ की मृत्यु हो गई है। उसने शीघ्र अरशदख़ाँ (Arshad Khan) को, जो पहले काबुल का दीवान रह चुका था, बुलाकर कहा कि "एक आपत्ति प्रकट हुई है। अमीरख़ाँ की मृत्यु हो गई है। उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति के पूर्व ही वहाँ उपद्रव होने की आशंका है।"

भूतपूर्व दीवान ने शीघ्र उत्तर दिया कि आप कुछ चिंता न करें। जब तक साहिबाजी जीवित हैं, तब तक आप किसी प्रकार की अशांति का भय न करें। वही वास्तव में अफ़ग़ानिस्तान में शासन करती थीं, अमीरख़ाँ तो नाम-मात्र का शासक था। सम्राट् ने शीघ्र बेगम साहिबाजी के नाम यह आज्ञा-पत्र भेज दिया कि जब तक ख़ाँसाहब का उत्तराधिकारी न आवे, तब तक तुम्हीं उस प्रांत का शासन करो। यह अधिकारी उक्त घटना के दो वर्ष उपरांत भेजा जा सका।

अमीरख़ाँ की मृत्यु एक घाटी में हुई थी। उसकी चतुर भार्या ने किसी को यह समाचार प्रकट नहीं होने दिया, जब तक कि वह पहाड़ियों से निकलकर अपनी राजधानी के निकट सुरक्षित स्थान में न पहुँच गई। एक मनुष्य को अमीरख़ाँ के भेष में पालकी में बैठा दिया, और आप प्रतिदिन सेना का निरीक्षण करती और सलामी लेती। इस प्रकार निर्विघ्न अपने स्थान राजधानी में आकर फिर अपने पति की मृत्यु का समाचार उसने प्रकट किया।

विभिन्न सरदारों ने उसके शोक में सहानुभूति प्रकट करने को अपने दूत भेजे। उन्हें उस चतुर स्त्री ने यह कहलाया कि तुम अपना उचित वेतन लेते रहो, लूट-मार मत करो और पूर्ववत् आज्ञा-पालन करते रहो, नहीं तो तुमको इसका उचित दंड दिया जायगा। सब सरदारों ने उसकी न्याय-प्रियता से संतुष्ट होकर उसके प्रति अपने राज्य-भक्ति के भाव प्रकट किए, और किसी प्रकार का उपद्रव नहीं किया।

युवावस्था में भी वह इतनी ही चतुर और साहस-युक्त थी। एक समय की घटना है कि वह एक पालकी में सवार जा रही थी कि उधर से बादशाह का हाथी, जो मस्त था, मार्ग में सामने आया। ज्यों ही वह हाथी पालकी की तरफ़ उसको सूँड़ से उलट देने के अभिप्राय से आगे बढ़ा, त्यों ही वह पालकी से उतर पड़ी, और मार्ग के निकट एक व्यापारी की दूकान में चली गई, और किवाड़ बंद कर लिए। इस प्रकार का व्यवहार उस समय की पर्दे की प्रथा के प्रतिकूल था। इस धृष्टता पर उसका पति उससे रुष्ट हुआ, परंतु जब बादशाह शाहजहाँ को इसकी सूचना हुई, तब उसने ख़ाँसाहब को बुलाकर समझाया कि तुम्हारी गृह-पत्नी ने यह साहस का कार्य करके तुम्हारी आबरू बचाई, क्योंकि यदि हाथी उसे पालकी पर से गिराता और उसका वस्त्र दूर होकर उसे नग्नावस्था में लोगों के सम्मुख कर देता, तो कितनी

मान-हानि होती। ख़ाँसाहब ने यह बात मान ली, और अपनी अप्रसन्नता दूर कर दी। काबुल के उच्च पद से जब उसने अवसर ग्रहण किया, तब यात्रा के निमित्त मक्का और मदीना गई। वहाँ दरिद्रों और फ़क़ीरों को प्रचुर द्रव्य दान किया, और बड़ा यश प्राप्त किया।

ब्रह्मदत्त मिश्र एम्० ए०

× × ×

३. डाली

मत छूना इनको माली!

(१)

कलियों से पूछा जाकर,
भ्रमरों ने आँख मिलाकर,
चाहती हो यौवन कितना ?
"कह देंगी सब, मुरझाकर।"
तब, छलक पड़ेगी लाली;
यह बोली डाली-डाली।

(२)

मत्त अनिल फैलाए कर,
थोड़ी-सी पत्ती लेकर।
गूँथे, नन्हीं मालाएँ—
बदले में सर्वस देकर।
"मत समझो भोली-भाली"
कह उट्ठी डाली-डाली।

(३)

मधुकर की गुंजारों में,
वीणा-सी झंकारों में,
रह-रहकर फिर बज उठतीं—
नव यौवन के तारों में—
"हा! उजड़ रही हरियाली!"
कँपती है डाली-डाली।

(४)

(पंखड़ियाँ हिला-हिलाकर,
गरदन को करके ऊपर,
सौरभ से पलकें नोची—
कर, अपनी तानों से भर।
फूलीं, मतवाली-ख़ाली;
चुपके-से डाली-डाली।)

(५)

"उजियाली-बीच अँधेरा,
संध्या में मुग्ध सवेरा,
मत छेड़ो, लेगा कोई—
इसमें भी आन बसेरा।"
श्यामल-से पत्तोंवाली;
फिर बोली डाली-डाली।

श्रीयुत "अधीर"

× × ×

४. कालिदास और शूद्रक

साहित्य-सुधा की ग्यारहवीं संख्या में "कालिदास और शूद्रक" शीर्षक एक संपादकीय सम्मति प्रकाशित हुई है। उसमें शूद्रक कवि को कालिदास तथा भवभूति से प्राचीन सिद्ध करने के लिये "वसुमती" के आधार पर शूद्रक कविकृत मृच्छकटिक नाटक में वसंतसेना का चारुदत्त के साथ और मदनिका का शर्विलक के साथ विवाह कराके शूद्रक के समय में वेश्या-विवाह का रिवाज होना प्रकट किया गया है और यही शूद्रक की बहुप्राचीनता का प्रकृष्ट प्रमाण माना है।

इस लेख में लिखा है कि यह निर्विवाद है कि उस समय वेश्या-विवाह प्रचलित था। मृच्छकटिक में ब्राह्मण-पुत्र शर्विलक वेश्या मदनिका के साथ और ब्राह्मण चारुदत्त वेश्या वसंतसेना के साथ विवाह करता है। शर्विलक मदनिका से कहता है—

स्वस्ति भवत्यै, मदनिके,

सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वंद्यतां जनः

यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुंठनम् ॥

हे मदनिके, तुम्हारा कल्याण हो, इस जन पर सुदृष्टि डालो, और इसकी शिर से बंदना करो, जिससे तुम्हें दुर्लभ वधू-शब्द का अवगुंठन प्राप्त हुआ है।

यह सब देखकर अनुमान होता है कि शूद्रक कवि के समय वेश्या-विवाह का चलन था, किंतु कालिदास आदि के ग्रंथों में गणिका-विवाह का प्रसंग तक नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि शूद्रक के समय पहले वेश्या-विवाह का चलन समाज में था, पीछे उठ गया इत्यादि।

शूद्रक की रचना से तत्कालीन समाज में वेश्या-विवाह का प्रचलित होना अनुमान किया गया है। इससे साहित्य तथा समाज दोनो का संबंध है। इस कारण प्रत्येक समाज-साहित्य-सेवक के लिये यह विषय विचारणीय है, और इसी नाते हम भी इस विषय में यथामति अपना मत विद्यानुरागियों के विचारार्थ प्रकट करने का साहस करते हैं।

शूद्रक के इस नाटक में युवा चारुदत्त और गुणानुरक्ता गणिका का सुरतोत्सव वर्णन किया गया है। इनके दांपत्य-प्रेम की कथा इसमें किंचिन्मात्र भी नहीं दीख पड़ती।

प्रथम अंक के इन दो श्लोकों से स्पष्टतया प्रमाणित हो जाता है कि प्रेमी और प्रेमिका में परस्पर अनुराग था, किंतु दांपत्य-व्यवहार नहीं था। श्लोक ये हैं—

अवंतिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसंतशोभेव वसंतसेना ॥६॥

तयोरिदं तत्सुरतोत्सवाश्रयं नयप्रचारं व्यवहारदुष्टताम् ।
खलस्वभावं भवितव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः ॥ ७ ॥

चारुदत्त विलासी ब्राह्मण था। उसमें ब्राह्मणोचित पूज्यत्व का अभाव था। वसंतसेना ब्राह्मणों को पूज्य समझती थी, ब्राह्मणों से ऐसा अनुराग करना पाप समझती थी। विलासी, गुणवान् और श्रोत्रियत्व-शून्य होने के कारण ही इसमें प्रेमांकुर प्ररोहित हुआ था। वसंतसेना उसको द्यूतकर शब्द से संबोधित करती थी, और अपने आपको उसकी गुणक्रीता दासी मानती और कहती थी।

इसके सिवा चारुदत्त की विवाहिता पत्नी धूता और औरस पुत्र रोहसेन भी मौजूद थे। नायक-नायिका की संपत्ति, स्थान और परिवार भी पृथक्-पृथक् थे।

इन सब बातों पर दृष्टिपात करने से यह सिद्ध नहीं होता कि वसंतसेना चारुदत्त की विवाहिता भार्या थी।

नाटक के दशम अंक के ४३वें श्लोक में विवाह शब्द आता है। संभव है, उसी के आश्रय से विवाह-संबंध का अनुमान किया जाता हो, अतः उस श्लोक के शब्द, अर्थ और भाव पर भी विचार कर लेना चाहिए।

जिस समय चारुदत्त फाँसी पर खड़ा है, मृत्यु-समय के सूचक लाल वस्त्र और फूल-माला गले में पहने हुए है, सूली की घोषणा करनेवाले अमंगल-सूचक बाजे बज रहे हैं, जीवन अवशेष एक-एक क्षण गिन रहा है, उसी समय एक भिक्षुक के साथ वसंतसेना वहाँ पर लाई जाती है, जिसको देख, पहचान एकाएक अत्यंत प्रसन्न और प्रफुल्लित होता हुआ चारुदत्त वसंतसेना से कहता है, और उसके जीवित होने के कारण जो इसके भी प्राण बच गए, उसकी प्रसन्नता प्रकट करता है। प्रिये, पश्य।

रक्तं तदेव वरवस्त्रमियं च माला,
कांतागमेन हि वरस्य यथा विभाति ।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव,
जाता विवाहपटहध्वनिभिः समानाः ॥४३॥

हे प्रिये, देखो। वर के धारण करने योग्य वस्त्र और माला जिस प्रकार विवाह के समय शोभा देती है, उसी प्रकार यह वस्त्र और माला इस समय तुम्हारे आने से शोभा दे रही है। यह वध्यपटह की ध्वनियाँ भी इस समय विवाह-पटहध्वनियों के समान हो गई हैं।

इस श्लोक में "यथा", "तथैव", "समानाः" पदों से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि रक्त वस्त्र, माला और बाजे प्राण-दंड के लिये थे, किंतु विवाह के लिये न माला पहनाई गई, न बाजा बजाया गया। विवाह-संबंध होने की इसमें कोई चर्चा नहीं है। बल्कि विवाह का निषेध है।

इस श्लोक में तो रूपकालंकार के द्वारा वध्य स्थान को विवाह-स्थान का रूपक देकर एक अमंगल-सूचक सामग्री को मंगलमय बनाते हुए बड़ी कुशलता के साथ दुःखांत रूप में समाप्त होते हुए नाटक को सुखांत बनाकर कवि ने अपनी काव्य-चातुरी प्रदर्शित किया है।

चारुदत्त के विवाह के संबंध में विचार करने के पश्चात् अब शर्विलक के विवाह-संबंधी प्रमाणों पर विचार करना चाहिए।

शर्विलक ब्राह्मण-पुत्र, विलासी और मदनिका में अनुरक्त था। वसंतसेना की सेविका वेश्या मदनिका भी इसको प्यार करती और चाहती थी। मदनिका के बदले में वसंतसेना को निष्क्रय रूप द्रव्य देकर प्रसन्न करने के निमित्त उसने चारुदत्त के घर चोरी की। उसमें वसंतसेना का धरोहर-रूप में रक्खा हुआ आभूषण उसके हाथ पड़ा। आभूषण लेकर वह प्रसन्नता के साथ मदनिका के पास आया, और प्रेमालाप के साथ उसको दिखलाकर कहा कि अब तो तेरी स्वामिनी इस द्रव्य को लेकर तुझे मेरे साथ जाने और स्वच्छंदता से रहने की आज्ञा दे देगी? इस पर मदनिका आभूषणों को देखकर व्याकुल हो उठी; अलंकार पहचानकर घबराई। चारुदत्त के घर चोरी करना भी उसे अच्छा नहीं लगा। यह देख शर्विलक अप्रसन्न होकर वहाँ से जाने लगा। तब मदनिका ने रोककर सब वृत्तांत सुनाया, और इस चोरी के दोष से बचाने के लिये यह उपाय बतलाया कि शर्विलक चारुदत्त का आदमी बनकर वसंतसेना को उसका आभूषण लौटाने के लिये चारुदत्त की ओर से आना प्रकट करे। शर्विलक ने इसे स्वीकार किया। मदनिका ने वसंतसेना के कमरे में जाकर कहा, आर्ये! आर्य चारुदत्त के यहाँ से यह ब्राह्मण आया है। वसंतसेना ने पूछा—तूने कैसे जाना कि वहाँ से आया है? उत्तर मिला कि आत्म-संबंधियों को भी क्या मैं नहीं जानती! वसंतसेना शर्विलक और मदनिका की प्रणय-लीला जान चुकी थी, गुप्त बातें सुन चुकी थी, और उनके मनोभावों को समझ चुकी थी, इस कारण उसने मदनिका की मनोरथ-सिद्धि और चारुदत्त की अनुरक्ति से प्रसन्न होते हुए शर्विलक को अंदर बुला लिया। वह अंदर गया और विलक्षणता से स्वस्ति भवत्यै कहकर आभूषण देते हुए बोला—सार्थवाह (चारुदत्त) ने तुमसे निवेदन कराया है कि मकान के जर्जर होने के कारण इसकी रक्षा नहीं हो सकती, इसलिये अपनी धरोहर वापस सँभाल लीजिए। इतना कहकर मदनिका के हाथ में आभूषण देकर चल दिया। वसंतसेना ने उसे फिर बुलाया और कहा, चारुदत्त के पास मेरा भी प्रति-संदेश ले जाओ। वह बोला, क्या प्रति-संदेश है? वसंतसेना ने कहा, तुम मदनिका को ले जाओ, और कहना कि मुझे मदनिका मिल गई। शर्विलक बोला, मेरी समझ में यह बात नहीं आई। उसने कहा, मैं समझती हूँ। देखो, आर्य चारुदत्त ने मुझसे कहा था कि जो इन आभूषणों को लेकर आवे, उसे तुझको मदनिका देनी चाहिए, अतः वही तुमको इसे दे रहा है, ऐसा समझिए। शर्विलक ने मन में सोचा, अरे! इसने मेरी सब चालाकी जान ली, यह तो मेरे गुप्त रहस्य को समझ गई। प्रकट में बोला, धन्य चारुदत्त धन्य। गुणवान् ऐसे ही होते हैं। उसी समय वसंतसेना ने रथवान को बुलाकर रथ तैयार कराया, और मदनिका से कहा, हंजे मदनिके! सुदृष्टां मां कुरु। दत्तासि। आरोहप्रवहणम्। स्मरसि माम्। हे मदनिके, मुझे अच्छी तरह देख। तू दे दी गई है। अब रथ पर चढ़। मुझे याद करती रहना। मदनिका यह वाक्य सुनकर रोने लगी, और उसके पाँवों पड़ती है। कहती

है, मुझे तुमने त्याग दिया। इस पर वसंतसेना ने कहा कि इस समय तो तू ही वंदनीया है। जा, रथ पर चढ़। मुझे स्मरण करती रहना।" तब शर्विलक वसंतसेना से कहता है—स्वस्ति भवत्यै (तुम्हारा कल्याण हो) और हे मदनिके, "सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वंद्यतां जनः ; यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुंठनम्।" इस जन (वसंतसेना) को अच्छी तरह देख लो, और इसकी शिर से वंदना करो, जिससे तुम्हें दुर्लभ वधू शब्द का अवगुंठन प्राप्त हुआ है।

इतनी बातचीत होने के पश्चात् मदनिका और शर्विलक वसंतसेना से बिदा होकर रथ में चढ़कर प्रस्थानित हुए।

इस अवतरण से पाठक स्पष्ट समझ गए होंगे कि नायक-नायिका के मनोभावों को पहचानकर उदाराशया वसंतसेना ने तस्कर को भी अभिलषित पुरस्कार-रूप मदनिका को दिया है, नकि उसका विवाह विधि से करके कन्यादान किया है।

एक बात और। वह यह कि इस श्लोक में 'दुर्लभ' शब्द आया है। सर्व-साधारण स्त्रियों को वधू-शब्द दुर्लभ क्योंकर हो सकता है। उनको तो विवाह-संबंध अवश्यंभावी है, और वेश्या-स्त्रियों को 'बहू' शब्द की प्राप्ति सुलभ नहीं है, क्योंकि उनके विवाह की प्रथा नहीं, न कोई एक पतिवाली वेश्या ही हो सकती है। इसी आशय को लेकर यह 'दुर्लभ' शब्द आया है, जब कवि 'बहू' के साथ दुर्लभता का प्रयोग एक वेश्या के लिये कर रहा है, तो कैसे कहा जा सकता है कि उस समय में वेश्या-विवाह का रिवाज था, बल्कि यही कहा जायगा कि ऐसा रिवाज नहीं था। अन्यथा उस समय की स्थिति बतलाने के लिये दुर्लभ शब्द लाने की क्या आवश्यकता थी। हम तो यही समझते हैं कि इस घटना से कोई वेश्या-विवाह के भ्रम में न पड़ जाय, इसी के निराकरणार्थ पहले ही कवि ने "यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुंठनम्" लिखा है।

इसमें संदेह नहीं कि शूद्रक कवि एक प्राचीन कवि है। उसके समय का पता लगाने के लिये उसी के नाटक में बहुत कुछ सामग्री भरी हुई है, जिससे कवि-काल का निर्णय करने में सहायता मिल सकती है। उसकी प्राचीनता के प्रमाण में जो उसी की रचना से तत्कालीन समाज में वेश्या-विवाह प्रचलित होना कहा जाता है, यह विचारणीय है। कवि के शब्दों से स्पष्टतया यह प्रथा सिद्ध नहीं होती। आशा है, विद्यानुरागी और साहित्य-सेवी विद्वज्जन इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे।

बलभद्र शर्मा द्विवेदी

× × ×

५. हृदयोद्गार

कौन हाय! खिरकी में थिरकी फिरेगी अब,
कौन नित्त सैनन सों चित्त बहरावेगी ;
कौन कंज-लोचन कुरंग-मद-भंजन वे,
रंजन रसीले मीन खंजन नचावेगी ?
कौन प्रेम-पाती हिय सुधा बरसाती अब,
'कुसुमाकर' प्रेमी के कारन पठावेगी ;
बाम अलबेली मेरी प्रमुदा नवेली हाय !
कौन दिन फेर अब अंक तू लगावेगी ?

देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर)
बी० ए०, एल्-एल्० बी०

× × ×

६. स्वर्गीय सुठालियाधीश

ईश्वर के विलक्षण नियम किसी की समझ में नहीं आते। जिस घर में चित्र के पुत्र की भी परम अभिलाषा हो, उसमें 'पुत्रः स्वप्ने न दृश्यति' को पक्का कर दिया जाता है। और जहाँ खाने को नाज नहीं, वहाँ पुत्रों की कमी नहीं रहती।

इसी प्रकार संसार-हित से सदैव विमुख मनुष्य

बहुत दिनों तक जीता रहता है, और जाति, देश और नाम को निरंतर समुन्नत और विख्यात करनेवाला मनुष्य बहुधा छोटी अवस्था में ही काल के गाल में चला जाता है।

स्वर्गीय महाराज शंभूसिंहबहादुर सुठालियाधीश दूसरी श्रेणी के पुरुषों से संबंध रखते थे। कुटिल काल ने उनको भी अधिक दिनों तक देश-हित में रत नहीं रहने दिया।

आप मध्यप्रदेश के सुठालिया-नामक एक राज्य के अधीश्वर थे। आपके पिता का नाम माधवसिंह और पितामह का शिवदानसिंह था।

महाराज शंभूसिंह संवत् १९३५ के फाल्गुन-शुक्ल १२ बुधवार, ता० ५ मार्च, सन् १८७६ को उत्पन्न हुए थे।

आपका विद्यारंभ पाँचवें वर्ष में हुआ था। आठवें वर्ष में आपके पिता का स्वर्गवास हो गया।

सोलह वर्ष की आयु तक आप विद्याभ्यास करते रहे। इतने समय में आपने हिंदी, अँगरेज़ी और संस्कृत का व्यवहार योग्य अभ्यास कर लिया था। सत्रहवें वर्ष की अवस्था में आपका प्रथम विवाह हुआ, और उसी समय में आपके ऊपर राज्य-भार आ पड़ा। उन्नीसवें वर्ष में आपकी माता का देहांत हो गया।

पूर्ण युवा होने पर आपका दूसरा विवाह हुआ, और उस स्त्री से एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, किंतु वह अधिक दिनों तक जीवित न रह सका।

स्वर्गीय सुठालियाधीश देश-सेवा और विद्या-प्रसार में सदैव निरत रहे थे। राज्याधिकार प्राप्त होने के बाद से आपने अपने राज्य में अनेक सुधार किए। और इसके फल-स्वरूप राज्य की आय भी बहुत कुछ बढ़ गई थी। प्रजा-हित के लिये स्कूल, पाठशाला, औषधालय तथा संरक्षण के लिये धनागार, शस्त्रागार और सेना-समूह की भी आपने योजना की थी।

विद्या में आपकी बड़ी अभिरुचि थी। आपने ज्ञान-प्रदीप, ज्योतिष-कल्पद्रुम और जिनेंद्रलीला आदि ग्रंथों की रचना करके यह परिचय दे दिया था कि एक से अधिक विषयों में आपकी पैठ है।

आपको संगीत-कला से भी प्रेम था। आपका स्वभाव बड़ा मिलनसार था। आपको रत्नों की भी अच्छी परख थी। एक बार जयपुर से आपने पन्ने मँगवाए थे। जौहरी ने उनमें एक पन्ना अशुभ श्रेणी का भेज दिया। आपने उसे तुरंत वापस लौटाया, उससे होनेवाले अनिष्टकारी कारण लिख दिए, और दूसरा पन्ना मँगवाया। जौहरी ने आपकी परख की बड़ी प्रशंसा की।

हनूमान शर्मा

× × ×

७. दो सहेलियाँ

"बहन, मैं क्या-क्या अपना दुखड़ा तुम्हारे सामने रोऊँ? न मैं जीने में और न मरने में! इस जीने से—इज़्ज़त खोकर जीने से—मरना ही भला है। कभी-कभी इच्छा होती है कि चुपचाप अफ़ीम खाकर सो रहूँ, फिर न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी! यदि मरने के बाद किसी ने मेरी ज़िंदगी में थूका भी, तो मुझे क्या? आप मरे जगत् प्रलय है।"

"नहीं बहन, ऐसा पाप स्वप्न में भी न करना। हाथी के पीछे यों ही कुत्ते भूँका करते हैं। पीठ-पीछे तो बड़ों-बड़ों की भी निंदा होती है। तुम्हारे बाबूजी के सामने—परमेश्वर उन्हें हज़ार वर्ष तक ज़िंदा रक्खे—किसकी मजाल है, जो तुम्हारी बुराई में एक शब्द भी अपनी ज़बान से बाहर निकाल सके।"

"अरे! बाबूजी की भली चलाई। वह भी बेचारे मेरे कारण बहुत दुखी हैं। मेरे ही सबब से—मेरे ही कारण—मेरी बदनामी सुन-सुनकर बेचारी अम्मा ने प्राण दे दिए। उस समय अवश्य ही मुझे बड़ा कष्ट हुआ था। मैं फेंट बाँधकर उनका सामना करने को तैयार हुई थी। मैंने स्पष्ट ही कह दिया था कि मैं ऐसी-ऐसी मिथ्या बदनामी से डरकर कॉलेज का अध्ययन न छोड़ूँगी।"

"परंतु क्या तुम पढ़ने के लिये कॉलेज जाती थीं? तुम्हारे सब गुण मेरे पेट में हैं।"

"और क्या तुम्हारे गुण मेरे पेट में नहीं ?"

"अस्तु, जाने दो इन बातों को ! बाबूजी बेचारे नहीं जानते थे कि मैंने वह इलाज कर लिया है, जिसकी बदौलत ख़ूब गुलछर्रें उड़ाने और आजीवन अविवाहिता रहने पर भी कभी गर्भ नहीं रहने का ! उन्होंने मेरी एक न सुनी। उनके ख़र्च बंद करने पर मैंने छात्रवृत्ति और ट्यूशन से गुज़र कर लेने की धमकी दी, तो उन्होंने न-मालूम प्रिंसिपल से क्या कहकर मुझे कॉलेज से उठा लिया। तब से यह घर भला और मैं भली।"

"तब अब गई-गवाई बातों के लिये क्यों मरने बैठी हो ?"

"अरे गई-गवाई ? बहन, तुम इसे गई-गवाई बताती हो। जिनके यहाँ मेरा संबंध होने जा रहा था, उन्हें मालूम हो गया कि मेरे आजीवन संतान न होगी। अब भला तुम्हीं बतलाओ, मुझसे शादी कौन करेगा ? कॉलेज में जो प्रेमी बनने का दावा करनेवाले थे, वे सब अँगूठा दिखलाकर मुकर गए। एक ऐसा भी है, जो अपने घरवालों की—माता-पिता की—कुछ परवा न कर मुझसे शादी करने को तैयार हो सकता है। हो क्या सकता है, उसे भूख मारकर तैयार होना पड़ेगा; किंतु ऐसे जुआरी, शराबी और क्षय के रोगी से ब्याह करके मैं कितने दिन सुख से जी सकती हूँ, फिर वह चमार का बेटा मुसलमान है। पहले ही कड़वी करेली और फिर नीम चढ़ी। पिताजी कट्टर समाजी होने पर भी इस संबंध से कदापि रज़ामंद नहीं हो सकेंगे। इसलिये उसका प्रतिज्ञा-पत्र—उसका इक़रारनामा—जो समय पर काम-पीड़ा से अंधी होकर लिखाया था, दिया-सलाई लगा, बतला देने योग्य है।"

"अच्छा तो फिर कुछ दिन धैर्य धारण करके चुपचाप ऐसे ही मार्ग की प्रतीक्षा करो। भगवान् कोई-न-कोई रास्ता निकालेगा।"

"हाँ ! यह ठीक है, किंतु वह हज़रत चुप होनेवाले नहीं। लोगों में बदनामी करते हैं, और नालिश करने की धमकी देते हैं।"

"क्यों ? नालिश करने का मतलब ?"

"मतलब यही कि शारदा-क़ानून पास होने से पूर्व उनके यहाँ मेरा संबंध पक्का होकर छः हज़ार रुपया ठहरौनी का क़रार पाया था। उस समय मेरी उमर ११ साल ६ महीने और २० दिन की थी। लड़का पढ़ा-लिखा है। बी० ए० में पढ़ता है। तंदुरुस्त है। होनहार है, और मेरे पिता के केवल एक मैं ही इकलौती पुत्री हूँ। क़ानून पास हो जाने पर उनका आग्रह था कि उसकी अवहेलना करके शादी कर दी जाय। वे लोग स्वयं जेल जाने को तैयार थे। शादी करानेवाले पंडितजी को उन्होंने तैयार कर लिया था। केवल मेरे पिताजी की रज़ामंदी की आवश्यकता थी। पिताजी, जिन्हें मैं बाबूजी कहा करती हूँ, उनके कहने-सुनने से तैयार हो गए थे। अच्छा होता, यदि मैं उसी समय उनके गले मढ़ दी जाती। और तो मैं कुछ नहीं जानती। मैं इन बातों को तब समझती भी ऐसा नहीं थी, किंतु न-मालूम क्यों मुझे उनको देखते रहना—छिप-छिपकर देखना—पसंद था।"

"हाँ ! बहन, वह समय ऐसा ही होता है। परंतु फिर ?"

"फिर यह हुआ कि पिताजी को उनके समाजी मित्रों ने बहकाया। देशोन्नति के लंबे-लंबे लेक्चर सुनाए। बस, इसी का परिणाम यह हुआ कि शारदा-ऐक्ट के इंतज़ार में ज्यों-ज्यों समय निकलता गया, मैं कॉलेज के मित्रों की प्यारी बन गई, और मेरे एक प्रेमी की सलाह से मुझे संतान-निग्रह की औषध सेवन कर प्रेमांधता अथवा कामांधता में आजीवन नष्ट हो जाना पड़ा। मैं किस मुँह से उन्हें अपनी ससुरालवाले कहूँ, अपने इस कालिख लगे मुख से मुझे यह कहने का साहस नहीं होता कि मेरे भावी पति और उनके पिता अवश्य ही शारदा-क़ानून की मार्ग-प्रतीक्षा करने के लिये सिर के बल तैयार थे, किंतु चौदह साल—मेरी उमर के चौदह वर्ष समाप्त होने से पूर्व ही मेरे खुल खेलने का भंडाफोड़ हो गया। सुनती हूँ, मेरे चरित्र से दुःखित होकर उन्होंने आजीवन कुँवारे रहने का व्रत कर लिया है।"

"अच्छी बात है। तब तुम उन्हें पत्र लिखकर क्षमा माँगो। संभव है, शायद वह तुम्हारे रूप-लावण्य पर—तुम्हारी विद्या-बुद्धि पर—लट्टू होकर तुम्हें स्वीकार कर लें।"

"सो मैं सब कर हारी। इन तिलों में तेल निकलने की अब आशा नहीं।"

"बहन, तुमने कॉलेज के डिबेटिंग-क्लब में युवती-विवाह और उनके ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करने पर एक बढ़िया निबंध पढ़कर पदक और पारितोषिक पाया था न?"

"हाँ! ऐसी-ऐसी बातों ने ही तो मेरे बाबूजी पर मेरे चरित्र की पवित्रता के लिये मेरा विश्वास जमाया। वह बेचारे क्या जानें कि इस ढोल के अंदर इतनी पोल है। मैं इधर जब घर पर रहती थी, तब से चरित्र-भ्रष्टा युवतियों का नाम आते ही थूकती थी। मैं अपने माता-पिता के समक्ष बिल्कुल पाक-साफ़ दूध की धोई बनती थी, और अपने युवा और युवती मित्रों में पहुँचते ही सबकी प्यारी बन जाती थी। वहाँ पर भी मेरा अंतरंग और बहिरंग चरित्र भिन्न-भिन्न था। परंतु पाप सच्चा वही, जो सिर पर चढ़कर बोले।"

"हाँ! मैं जानती हूँ। मैं क्या तुमसे अलग थी। तुम्हारे प्रेम के लिये न होती प्यारेलाल और प्रियतमलाल में बहस, और न होता भंडाफोड़। मैं चाहती थी कि प्यारेलाल मेरे होकर रहें और प्रियतमलाल तुम्हारे। तुम प्यारेलाल को चाहनेवाली थीं। बस, इस बात से कुढ़कर—निराश होकर प्रियतमलाल ने तुम्हारा और मेरा कच्चा चिट्ठा लिखकर तुम्हारे बाबूजी को दे दिया।"

"बेशक उसी हत्यारे ने मेरा सर्वनाश किया। जब पिताजी ने उसका भरोसा न किया, तब उसने मेरे भावी पति को लिखा, और उसके ध्यान न देने पर उसके पिताजी को जा सुनाया, और संतान-निग्रह की दवा सेवन करने का पूरा प्रमाण भी दे डाला। बहन, बस इस तरह उस सत्यानासी ने मेरा सत्यानास किया। तुम अवश्य ही भाग्यशालिनी हो—तुमसे वह प्रतिकूल नहीं है, और मेरे अनुभव से तुमने सँभलकर मीठी-मीठी बातें बनाते हुए प्यारेलाल से किनारा कर लिया है, नहीं तो सच मानिए, तुम्हारी मुझसे भी अधिक फ़ज़ीहती करके प्रियतमलाल तुम्हारी इज़्ज़त दो कौड़ी की कर डालता। और तब भी सँभलकर चलना। यह एक भयंकर राक्षस है। सोने का कटोरा हलाहल से भरा है।"

"हाँ! तुम सत्य कहती हो। परंतु बेचारे प्यारेलाल की भी बड़ी दुर्दशा है। उसके ऐसे चरित्र से दुःखित होकर उसके माता-पिता ने उसे निकाल दिया। ख़र्च देना बंद कर दिया। उसका गोदनामा मंसूख़ कराया। पैसे के अभाव से उसका पढ़ना बंद और जहाँ नौकरी के लिये जाता है, वहाँ बस no vacancy।"

"हाँ! मेरी भी शायद यही दुर्दशा होनेवाली है। पिताजी मुझे मेरे अधिकार से ख़ारिज कर अपना धन-दौलत, स्थिर और चल सारा सामान बस कृष्णार्पण करनेवाले हैं।"

"परंतु तुम्हारी ससुरालवाले नालिश करने की धमकी किस सिद्धांत पर देते हैं?"

"पिताजी ने मेरे चौदह साल पूरे होने पर छः हज़ार रुपए दहेज़ के देने और मेरी शादी करने का इक़रारनामा लिख दिया था। ससुरालवालों ने चरित्र का दोष लगाकर संतान-निग्रह की दवा सेवन करने के कारण इस कंट्रैक्ट को तोड़ दिया, और अब अपने हर्जाने का दावा करने पर उतारू हुए हैं।"

लज्जाराम (बूँदी)

"अच्छी बात है । तब तुम उन्हें पत्र लिखकर पता लगाओ । संभव है, शायद वह तुम्हारे रूप-लावण्य पर—तुम्हारी विद्या-बुद्धि पर—मुग्ध होकर तुम्हें स्वीकार कर लें ।"

"अब मैं तब कर चुकी । इन तिलों में तेल निकलने की अब आशा नहीं ।"

"बहन, तुमने कॉलेज के डिबेटिंग-क्लब में युवती-विवाह और उनके ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करने पर एक बढ़िया निबंध पढ़कर बड़क और पारितोषिक पाया था न ?"

"हाँ ! ऐसी-ऐसी बातों से हो तो मैं बाबूजी पर मेरे चरित्र की पवित्रता के लिये [illegible] विश्वास [illegible] । [illegible] बेचारे [illegible] कि इस [illegible] के [illegible] हैं । मैं [illegible] थी, [illegible] चरित्र-[illegible] युवतियों [illegible] थी । मैं [illegible] के [illegible] और [illegible] की [illegible] थी । [illegible] और [illegible] था । परंतु [illegible] नहीं, [illegible] बैठे ।"

"हाँ ! मैं जानती हूँ । मैं क्या तुमसे [illegible] की [illegible] के लिये न होती [illegible] और [illegible] में [illegible], और न होता [illegible] । मैं जानती थी कि [illegible] और [illegible] तुम्हारे [illegible] थी । [illegible] इस [illegible] के [illegible] ने तुम्हारा और [illegible] तुम्हारे बाबूजी को दे दिया ।"

"[illegible] ने मेरा [illegible] किया । [illegible] ने [illegible] न किया, तब उसने मेरे [illegible] और [illegible] न देने पर उसके पिता-जी को जा सुनाया, और संतान-निग्रह की दवा सेवन का पूरा प्रमाण भी दे डाला । बहन, बस इन [illegible] ने मेरा सत्यानाश किया । तुम [illegible] हो—तुमसे यह छिपा नहीं है, और अनुभव से तुमने समझकर मीठी-मीठी बातें [illegible] प्यारेलाल से किनारा कर लिया है, नहीं तो आखिर, तुम्हारी सुरूपे भी अधिक [illegible] विश्वम्भरनाथ तुम्हारी इज्जत दो कौड़ी की [illegible] । और तब भी सँभलकर चलना । यह [illegible] है । सोने का कटोरा हलाहल से भरा है ।"

"हाँ ! तुम सत्य कहती हो । परंतु बेचारे [illegible] की भी यही दुर्दशा है । उसके ऐसे चरित्र से [illegible] होकर उसके माता-पिता ने उसे निकाल दिया । [illegible] बंद कर दिया । उसका [illegible] मंजूर [illegible] के अभाव से उसका पढ़ना बंद और जहाँ [illegible] के लिये जाता है, वहाँ बस no vacancy ।"

"हाँ ! मेरी भी शायद यही दुर्दशा होनेवाली [illegible] मुझे मेरे अधिकार से खारिज कर [illegible] और [illegible] सारा [illegible] जानेवाले हैं ।"

"परंतु तुम्हारी ससुरालवाले नालिश करने को [illegible] किस सिद्धांत पर देते हैं ?"

"पिताजी ने मेरे चौदह साल पूरे होने पर [illegible] दहेज के देने और मेरी शादी करने का [illegible] लिख दिया था । ससुरालवालों ने [illegible] लगाकर संतान-निग्रह की दवा सेवन [illegible] इस कंट्रैक्ट को तोड़ दिया, और [illegible] हर्जाने का दावा करने पर उतारू हुए हैं ।"

[illegible] (

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० १८६ सन् १९३० ई०

बअदालत बाबू जगदंबासरन साहब बहादुर अडीशनल सब जज गोंडा मुक़ाम गोंडा

बअदालत अडीशनल सब जजी गोंडा मुक़ाम गोंडा

श्रीइसरनंद पांडे मुद्दई

बनाम

श्रीभूषन मुद्दाअलेह

बनाम श्रीभूषन वल्द देवकली मिश्र, साकिन अंबरहा थाना त०, पो० उतरौला ज़िला गोंडा

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत १५०) रु० के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १६ माह अक्टूबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन् या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमे का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावे मुद्दई मज़कूर [illegible] करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है, पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ ५ माह सितंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ६६३ सन् १९३० ई० ख़फ़ीफ़ा
बअदालत ख़फ़ीफ़ा मुंसिफ़ी तरबगंज मुक़ाम गोंडा
भगू वल्द हरभजन शुक्ल साकिन मौज़ा धमरिया परगना गोआरज ज़िला गोंडा — मुद्दई

बनाम

रामखेदू — मुद्दाअलेह

रामखेदू वल्द त्रिभुवन क़ौम ब्राह्मण मिश्र साकिन मौज़ा धमरिया परगना गोआरज ज़िला गोंडा वारिद हाल दुकान रामगोपाल ग़रीबराम नयाबाज़ार मेरठ सिटी।

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २६) दो आना के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १२ माह अक्टूबर सन् १९३० ई० बवक्त दस बजे दिन असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ ५ माह सितंबर सन् १९३० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

रूबकार इजलास ठा० सुरेंद्रविक्रमसिंह साहब बहादुर मुंसिफ़ रायबरेली

मुक़द्दमा नं० ८४१ सन् १९३० ई०

दावा दिलापाने मुबलिग़ ५०) रुपया

माधवप्रसाद वल्द गणेशप्रसाद ब्राह्मण साकिन मौज़ा भवानीगढ़ परगना बछरावाँ ज़िला रायबरेली

बनाम मातादीन वल्द केसरी कोरी साकिन शिवदयाल कबीरा मिर्ज़ा ढोंढापुर परगना बछरावाँ

मुक़द्दमा मुंदरजे उनवान में पेशी १७ सितंबर सन् १९३० ई० मुक़र्रर हुई है।

अलमरक़ूम ५ सितंबर सन् १९३० ई०।

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ४२२ सन् १९३० ई०
बअदालत ख़फ़ीफ़ा जनाब पं० हरीशंकर चतुर्वेदी साहब बहादुर मुंसिफ़ी जनूबी मुक़ाम उन्नाव
गंगाचरण वल्द रामचरण क़ौम ब्राह्मण साकिन घल्लापुर मजरा परगना हड़हा ज़िला उन्नाव — मुद्दई

बनाम

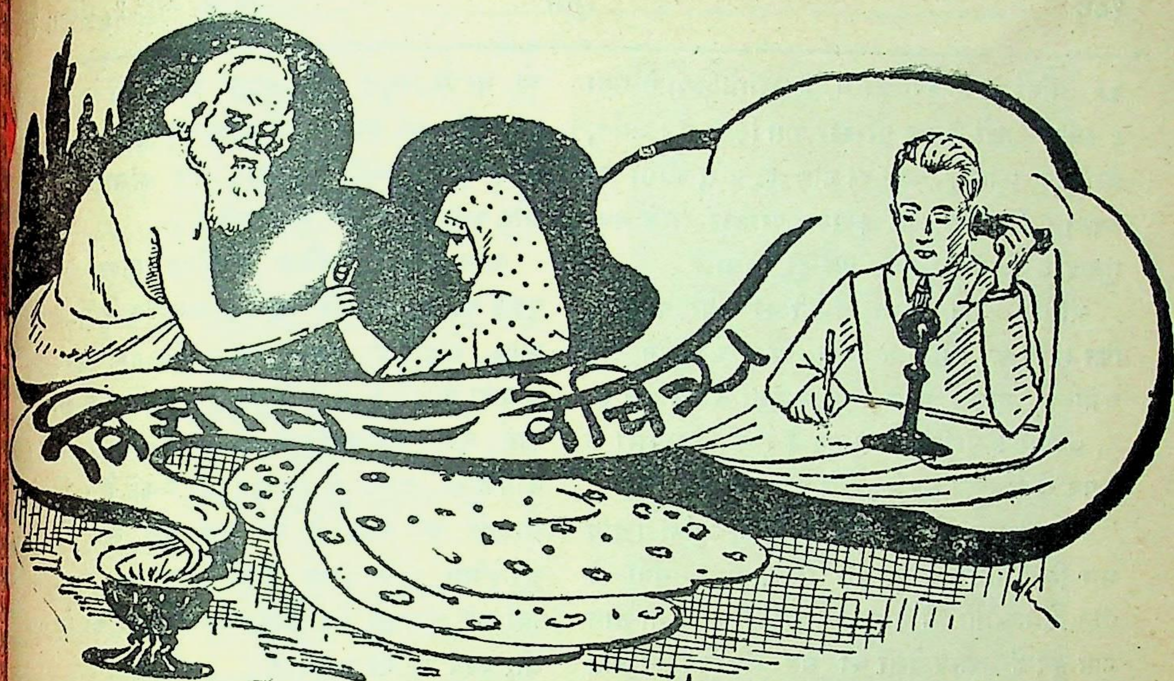
सुल्तान वग़ैरह — मुद्दाअलेहुम

बनाम भब्बू वल्द करीमबख़्श नद्दाफ़ साकिन शहर कानपूर स्वदेशी मिल हवाघर नंबर ४ ज़रिए सौकत मिस्त्री।

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २५०) पुरनोट के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २३ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक्त दस बजे असालतन या मारफ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावे मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १ माह सितंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज



१. विज्ञान-साम्राज्य में जर्मनी का स्थान



रपीय महासमर के समय एक छोटे-से देश जर्मनी ने जो साहस और वैज्ञानिक कौतूहल कर दिखाया था, उसने ही संसार के हृदय पर जर्मनी के वैज्ञानिक वैभव की छाप लगा दी थी । वहाँ की शिक्षा-प्रणाली का इसके अतिरिक्त और क्या परिणाम हो सकता है ? नोवल-पुरस्कार-विजेताओं की नामावली देखने से भी हम एक बड़े ही आश्चर्य-जनक निर्णय पर पहुँचते हैं ।

पाठक जानते ही होंगे कि जिस व्यक्ति ने मनुष्यों के टुकड़े-टुकड़े उड़ा देनेवाले भयंकर पदार्थ बारूद का आविष्कार किया था, उसी ने संसार की सभ्यता के विकास के लिये एक अत्यंत सुंदर चीज़ को स्थापित कर दिखाया था । उसी ने नोवल-पुरस्कार की स्थापना की थी । प्रतिवर्ष दिसंबर माह में इन पाँच पुरस्कारों का वितरण होता है । एक पुरस्कार 'शांति' के लियें, एक साहित्य के लिये और तीन विज्ञान के लिये दिए जाते हैं । विज्ञान के अंदर तीन भाग किए गए हैं—एक भौतिक विज्ञान, दूसरा रसायन-शास्त्र और तीसरा शरीर-विज्ञान तथा वैद्यक-शास्त्र । प्रत्येक पुरस्कार लग-भग ६००० पौंड का होता है ।

इस पुरस्कार को प्राप्त करनेवाले भाग्यशाली को नवंबर माह में तार के द्वारा ख़बर दी जाती है, और वह बड़े दिनों के १० या १५ दिवस पूर्व स्टाक होलम (स्वीडन की राजधानी) में पहुँच जाता है । वहाँ पर उसका ख़ूब स्वागत होता है, और आनंद के दिवस कटते हैं ।

अभी हाल में इन पुरस्कार-विजेताओं की नामावली प्रकाशित हुई है । हमारा संबंध यहाँ केवल विज्ञान-विजेताओं से ही है । गत ३० वर्षों के पुरस्कारों पर ध्यान देने से हम जर्मनी को भाग्यशाली कहे विना नहीं रह सकते ।

पुरस्कार देनेवाली कमेटी के विषय में संसार में बहुत कम मतभेद है, तथा राजनीतिक परिस्थिति आदि के प्रभावों से वह बची रहती है ।

रसायन-शास्त्र में जर्मनी का सबसे प्रथम नंबर है ।

१२ जर्मनों ने, ९ अँगरेज़ों ने, ४ फ़रासीसियों ने तथा ३ स्वीडनवालों ने यह पुरस्कार प्राप्त किया है। जर्मन, ग्रेटब्रिटेन, फ़्रांस इनका नंबर ठीक है, परंतु लोगों का कहना है कि स्वीडन को ज़्यादा पुरस्कार मिले तथा यूनाइटेड स्टेट्स को केवल एक ही मिला।

भौतिक शास्त्र में भी जर्मनी का नंबर प्रथम है, फिर फ़्रांस का आता है और फिर ग्रेटब्रिटेन तथा अमेरिका पदार्पण करते हैं। इन देशों को क्रमशः ६, ८, ७ और ३ पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इन पुरस्कारों के विषय में बिल्कुल मतभेद नहीं है।

वैद्यक-शास्त्र और शरीर-शास्त्र में भी जर्मनी ने हाथ मार लिया। उसे ५ पुरस्कार मिले, फ़रासीसियों को तीन, डेंस लोगों को तीन तथा ग्रटब्रिटेन को भी तीन प्राप्त हुए हैं। अन्य देशों को यह सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ।

इस नामावली में एक देवी का भी नाम आता है। श्रीमती क्यूरी (Curie) ने पहले तो सन् १९०३ में अपने पति के साथ रेडियम का आविष्कार करने में पुरस्कार पाया था, और बाद में, सन् १९११ में, रसायन-शास्त्र में एक पुरस्कार पाया। छोटे-से देश इटली को भी मारकोनी और फरडीनेंड की बदौलत एक पुरस्कार (बे-तार के संबंध में) मिल गया था, परंतु अभागे भारतवर्ष को विज्ञान में अभी तक आधा पुरस्कार भी नहीं मिल पाया। उक्त बातों को देखकर कोई भी व्यक्ति यह कहे बिना नहीं रह सकता कि विज्ञान-जगत् में जर्मनी का स्थान सर्व-श्रेष्ठ है।

× × ×

२. सूर्य पर अधिकार जमानेवाला

संसार के समस्त कार्यों का संचालन करने के लिये सूर्य की शक्ति ही किसी-न-किसी रूप में काम आती है। जब से वैज्ञानिकों को इस बात का पता लगा है, तभी से वे सूर्य की गर्मी पर अधिकार जमाने के प्रयत्न में हैं।

निस्संदेह हमारा आँगन जितनी गर्मी को सूर्य की किरणों के द्वारा दिन-भर में प्राप्त करता है, यदि वह किसी प्रकार एकत्रित की जा सके, तो रात्रि को घर में विद्युत् का प्रकाश किया जा सकता है तथा और भी अन्य कार्य हो सकते हैं। सहारा की मरुभूमि की गर्मी के द्वारा सारे संसार के कल और कारख़ाने चलाए जा सकते हैं।

वाशिंगटन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉक्टर चार्ल्स एबाट का कहना है कि सूर्य से प्रतिदिन में जो शक्ति प्राप्त होती है, वह ५०७,०००,०००,००० टन कोयला जलाने से प्राप्त होगी, तथा संसार के समस्त कार्य तथा कल-कारख़ाने केवल ५०००,००० टन कोयले की शक्ति से चलाए जा सकते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि जब हमें सूर्य से ही अपरिमित शक्ति प्राप्त होती है, तो फिर व्यर्थ ही क्यों हमें कोयला, तेल आदि प्राप्त करने की मेहनत और व्यय उठाना पड़ता है।

क्लार्क-विश्वविद्यालय के प्रधान प्रोफ़ेसर गाडर्ड ने एक ऐसे यंत्र का आविष्कार किया है, जिसके द्वारा लगभग ५० प्रतिशत सूर्य की किरणों की गर्मी का उपयोग किया जा सकता है।



सूर्य-मोटर

इस नए सूर्य-यंत्र के द्वारा विद्युत्-शक्ति, प्रकाश तथा गर्मी प्राप्त हो सकती है। कुछ वर्षों में यह यंत्र एक व्यापारिक सामग्री हो जायगा, तथा छोटे आकार के यंत्र से दस बजे से तीन बजे के भीतर इतनी शक्ति प्राप्त हो सकेगी कि घर का कार्य आसानी से चल जायगा।

इस यंत्र में एक प्रकार का अर्द्धगोल दर्पण लगा रहता है, जिस पर सूर्य की किरणें आकर केंद्रित होती हैं, तथा इस दर्पण के व्यास पर सूर्य की गर्मी की प्राप्ति निर्भर रहती है। जितना ही अधिक दर्पण का व्यास होगा, उतनी ही अधिक किरणों को वह ग्रहण कर सकेगा।

यह यंत्र वज़न में भी बहुत ही हलका बनाया जा सकता है, यहाँ तक कि उसे वायुयान पर लगा सकते हैं। यदि इस यंत्र का विकास हुआ, तो संसार की अनेकों कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी, और घर-घर में विद्युत् का प्रकाश कम ख़र्च में हो सकेगा।

× × ×

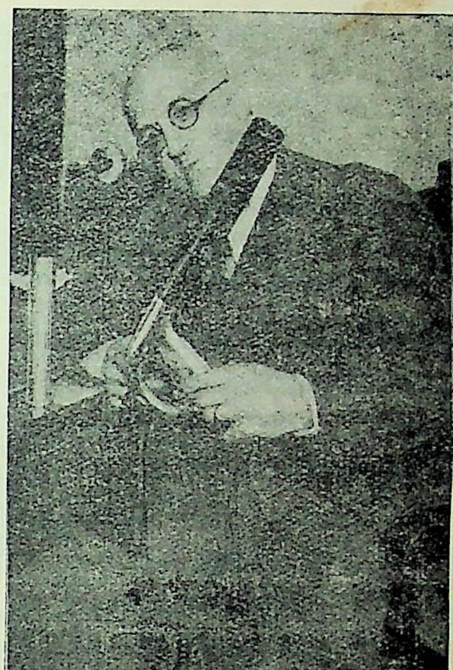
३. अंधा बनानेवाली बंदूक़

प्रायः यह देखा जाता है कि कभी-कभी डाकू पुलिसवालों के साथ युद्ध करते हैं। दोनो ओर से गोलियाँ चलाई जाती हैं। कभी गोली के आघात से कोई अपराधी मर जाता है, और उसके मर जाने से कई बातों के भेद पाने में कठिनाई होती है। इसलिये शिकागो के जासूस-विभाग ने एक नवीन प्रकार की बंदूक़ बनाई है। इस बंदूक़ का आकार तो साधारण बंदूक़ के समान ही है, परंतु गोली के स्थान में यह एक ऐसी गोली फेंकती है, जिसमें एक प्रकार की गैस भरी रहती है। इस गैस के आक्रमण से मनुष्य की आँखों की शक्ति कुछ काल के लिये मारी जाती है। बंदूक़ १५० गज़ की दूरी तक सफल निशाना मार सकती है।

× × ×

४. खोलने और बंद करने से चलेगी

बहुत घड़ियाँ देखी होंगी। ज़रा इसे भी देखिए।



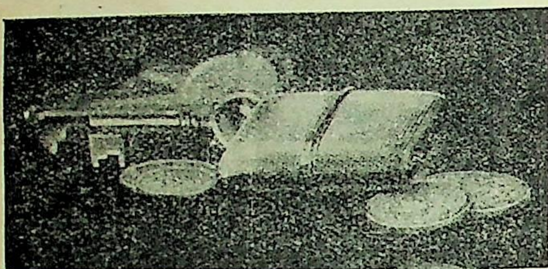
नई बंदूक़

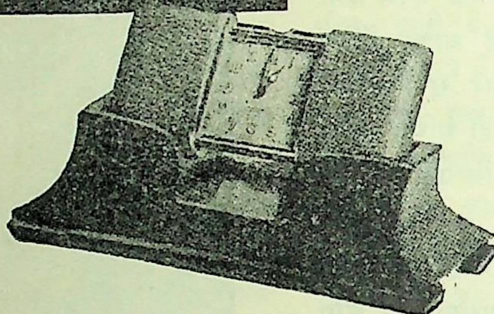
यह एक विचित्र वस्तु है। चाबी देने की मुसीबत से बचाती है। यदि दिन में आठ बार इसे खोलकर समय देखा गया, तो बस चाबी अपने आप भर जाती है। यदि आठ बार से अधिक बार देखने की ज़रूरत पड़ गई, तो कोई चिंता नहीं; अधिक चाबी नहीं भरती। घड़ी केवल अपने मतलब का मसाला ले लेती है। शेष से उसे क्या? छोटी तो यह इतनी है कि कोट की जेब में आसानी से प्रवेश कर सकती है, और दोनो ओर के ढक्कन दबाने से अपने घर में बंद हो जाती है। यदि टेबिल पर रखना हो, तो भी कोई अड़चन नहीं। एक लकड़ी के फ़्रेम में जमा दीजिए।

× × ×

५. सौंदर्य की खोज में

मनुष्य के चेहरे के सौंदर्य को बढ़ाने के लिये लाल-लाल गुलाबी ओठों की बड़ी आवश्यकता समझी जाती है। इसीलिये विदेशों में कुछ स्त्रियाँ अपने ओठों को कई पदार्थों के द्वारा रँगा करती हैं। हमारे





विचित्र घड़ी



सौंदर्य की कुंजी

यहाँ भी कुछ देवियाँ पान के द्वारा अपना मुँह लाल किया करती हैं, और कई तो 'मिस्सी' लगाकर स्वाभाविक गुलाबी रंग के लाने का प्रयत्न करती हैं। विदेशी पदार्थों के द्वारा ओठों को रंगीन करना विशेष स्वास्थ्य-प्रद नहीं। अतएव वहाँ अब लकड़ी के सुंदर ओठों का आविष्कार हुआ है। वे कई आकार के रहते हैं और ओठों के ऊपर ठीक रीति से जम भी जाते हैं। इस तरह सौंदर्य-प्रेमी रमणी की इच्छा की भी पूर्ति हो जाती है, और काम हो जाने पर वे निकालकर भी अलग रक्खे जा सकते हैं।

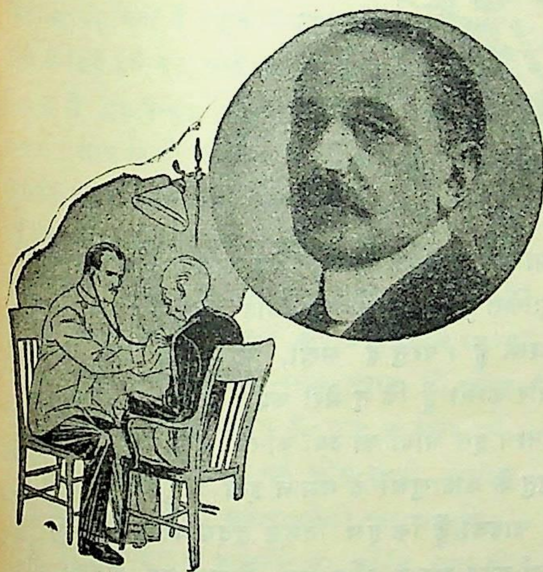
× × ×

६. मानव-मशीन पर विज्ञान के कारनामे (अ)

विज्ञान का क्षेत्र कितना विस्तीर्ण है, इस बात को विज्ञान के विद्यार्थी के सिवा अन्य व्यक्ति आसानी से नहीं समझ सकता। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और शक्ति, इनसे संबंध रखनेवाले समस्त पदार्थों पर विज्ञान अपने यंत्रों को लेकर जुटा ही रहता है। शताब्दियों से मानव-शरीर भी उसकी परीक्षा का केंद्र रहा है। इस क्षेत्र में उसने आशातीत उन्नति कर ली है, और यदि उसकी समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति हो सकी, तो पृथ्वी पर हमारा जीवन एक परिवर्तित जीवन हुए बिना नहीं रहेगा। यहाँ हमारा अभिप्राय पाठकों के सामने संसार के वैज्ञानिकों की मानव-शरीर से संबंध रखनेवाली घटनाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालना है।

मानव-शरीर का सबसे भयंकर शत्रु मृत्यु है, परंतु विज्ञान इस शत्रु को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहा है। मनुष्य-हृदय को ३० घंटे तक शरीर के मर जाने पर जीवित रखने की परीक्षा सफल हुई है। शरीर से जुदा किए गए सिर में भी तीन घंटे तक जीवन-शक्ति का संचालन हो सका है। इसी तरह अन्य परीक्षाओं द्वारा

यह सिद्ध हो गया है कि शरीर की मृत्यु हो जाने पर भी वैज्ञानिक विधियों द्वारा रक्त-संचालन जारी रक्खा जा सकता है। पेरिस के प्रसिद्ध डॉक्टर इसैविओ (Euseleio A. Hernandez) का कथन है कि इन परीक्षाओं से यह स्पष्ट विदित होता है कि मृत्यु, जिसे संसार एक अमिट घटना समझता है, रोकी जा सकती है या सर्वथा नष्ट की जा सकती है। इस तरह मनुष्य की आत्मा नहीं, बल्कि शरीर भी अमर हो सकता है। आपने फ़िलहाल एक ऐसी विज्ञान-शाला बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया है, जहाँ संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैज्ञानिक केवल मृत्यु के संबंध में ही परीक्षा कर सकें।

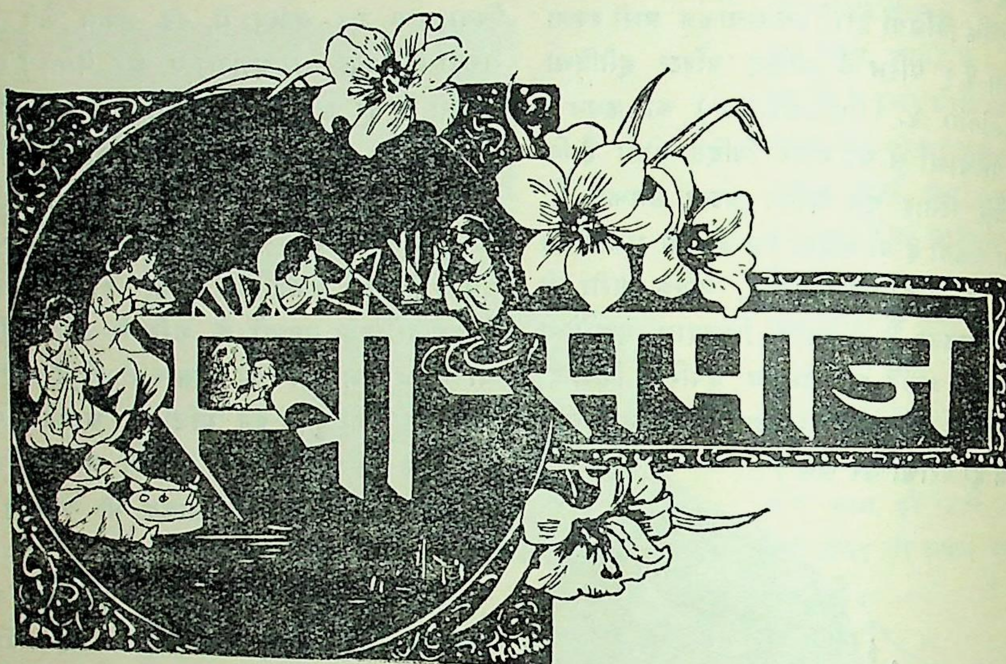


बुड्ढों को जवान बनानेवाला डॉ० वेरोनाफ़

मान लीजिए कि मनुष्य ने मृत्यु से छुटकारा पा लिया, तब उस अवस्था में वह जवान कैसे रह सकता है? क्या उसे बुढ़ापा न आ घेरेगा? इस बीमारी को दूर करने के लिये पेरिस के एक दूसरे संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉक्टर वेरोनाफ़ (Dr Serge Vernoff) ने बंदर की ग्लैंड (gland) की उपयोगिता सिद्ध करके दिखा दी है। लगभग दस वर्षों से वह जानवरों की 'ग्लैंडों' को दूसरे प्रकार के जानवरों तथा मनुष्यों के शरीर में लगाकर चिर यौवन का संचार करने का प्रयत्न करते रहे हैं। सफल भी वह ख़ूब ही हुए। इन 'ग्लैंडों' के लगाने से वृद्ध मनुष्य के शरीर की शक्ति की वृद्धि हो जाती है, भूख बढ़ जाती है, तथा दिमाग़ी ताक़त भी नवीनता को प्राप्त होती है। इस क्रिया का प्रभाव तीन वर्षों तक रहता है। इसके बाद वह घटने लगता है, और पाँच वर्षों के बाद तो बिलकुल ही नष्ट हो जाता है। यौवन प्राप्त करने की क्रिया का यह तो श्रीगणेश ही है। देखें, आगे क्या होता है।

इस यौवन की खोज में पेरिस के एक दूसरे डॉक्टर कासिमिर फ्रंक (Dr Casimir Funk) ने ग्लैंडों से एक 'सत' के समान पदार्थ निकाला है। उसे अँगरेज़ी में 'हारमिन' 'Hermine' कहते हैं। इस पदार्थ की वे गोलियाँ बनाना चाहते हैं, जिनके द्वारा बुढ़ापा दुम दबाकर भागे बिना न रहेगा।

नाथूराम शुक्ल



भाग्यहीन स्त्री-समाज

पुत्रीति जाता महतीव चिंता
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः ;
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेत्ति
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम् ।

प्यारी प्रकृति देवि !

संसार के शांतिमय हृदयों में हलचल मचानेवाला प्रेम-पत्र प्राप्त हुआ । उत्तर देते लेखनी काँपती है, परंतु कर्तव्य पूरा करना ही है । मैं नहीं जानती कि किस प्रकार इस तुच्छ और शोक-पूर्ण हृदय की प्रज्वलित आहों को तुझ-सरीखी सहृदया और कोमल-हृदया सखी के सम्मुख प्रकट करूँ । मैं यह बात उचित नहीं समझती कि मैं अपनी पाप-पूर्ण और करुणामय कथा से तुम्हारे हृदय को कलुषित करके तुम्हारा अमूल्य समय नष्ट करूँ । परंतु तुम्हारे वारंवार प्रेरणा करने से अब मेरा हृदय अपनी शोक-पूर्ण कथा कहने को विवश हो गया ! क्योंकि कहते हैं, अपने मित्र के सम्मुख दुःख रुदन करने से कम हो जाता है । सो आज मैं तुझे ही अपना प्रेम-भाजन समझकर अपने दुःखित हृदय की दो-चार आहें निकालने का प्रयत्न करती हूँ । परंतु हे सखी, मैं तुझसे एक प्रार्थना और करती हूँ कि तू मेरी करुण कथा को नवीन न बना । इन भावों को ज्यों-का-त्यों बना रहने दे । वर्षा-ऋतु के कीटाणुओं के समान इन्हें प्रादुर्भाव न कर । मैं चाहती हूँ कि इस विकल हृदय की आहें किसी के कर्ण-कुहर तक न पहुँच सकें, जिससे यह अकेला ही हृदय शांति-पूर्वक सब कुछ सहन करता हुआ अंतिम समय तक भी इसी भाँति मृत्यु की गोद का आश्रय ले । अच्छा ! यदि तू नहीं मानती, तो तू इसके कठिन कलाप को ध्यान-पूर्वक सुन । यह सहृदयों के लिये व्यथित हृदय की दारुण कथा है, और हृदय-हीन के लिये पागल का प्रलाप है ।

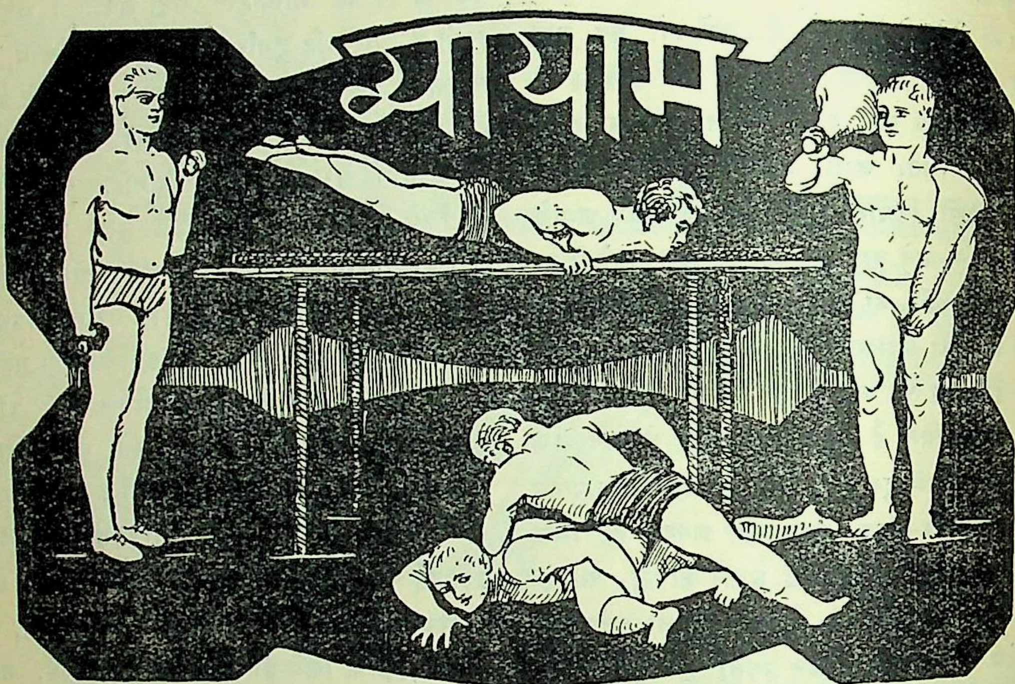
क्या किसी से यह बात छिपी हुई है कि आजकल हिंदू-स्त्री-समाज की क्या दशा है ? बेचारे माता-पिता अपनी लड़कियों के लिये सदा ही शोकातुर हैं । न उन्हें ब्याह करने पर चैन है, और न न करने

हैं। उनके लिये पूर्वोक्त किंवदंती पूर्णतया सत्य है। कन्या के उत्पन्न होते ही माता-पिता के लिये चिंता का बीज बोया जाता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती जाती है, मानो शोक-वृक्ष की वृद्धि होती जाती है, शोक का वृक्ष लहराता है। ब्याह के लिये सदा चिंता लगी रहती है, विवाह करने पर भी इसी विचार-सागर में डुबकियाँ लगाते रहते हैं कि न-जाने वहाँ जाकर भी सुख पावेगी या नहीं ? पति-पत्नी का कैसा व्यवहार होगा, इत्यादि बातों की चिंता सदा भूत की भाँति सवार रहती है। सत्य है, कन्या तो नाम-मात्र से ही माता-पिता के लिये कष्ट-प्रदायिनी है। इन सब बातों के उदाहरण ढूँढने के लिये हमें दूर नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि प्रत्येक हिंदू-घर में एक-न-एक उदाहरण अवश्य ही मिल जायगा। आप किसी भी उच्च घराने को लें, अमीर-से-अमीर परिवार को देखें, स्त्रियों की जो दुर्दशा है, उसे देख आँसू बहाते ही बन पड़ता है। पुरुष अपने भोग-विलास में पड़े हुए आनंद उड़ाते फिरते नहीं अघाते। वर्षा-ऋतु में हरिणों की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर नवीन-से-नवीन स्थान की खोज करते फिरते हैं। अपने यौवन के मद से मस्त हुए, भले-बुरे का विचार तज, एक को छोड़ दूसरी के पीछे भागते हैं। परंतु बेचारी अबलाओं की कुछ न पूछिए, उन पर तो वर्षा-ऋतु के बादलों की भाँति सदा ही शोक छाया रहता है। अपने भाग्य को रोते-रोते दिन काटती हैं। उनके दुःखित हृदय पर कोई भी हाथ रखकर नहीं देखता कि शोक ने किस निर्दयता से उनके कोमल हृदय को जर्जरित कर दिया है ! मरने पर एक बार ही चिता की अग्नि में जलाई जाती हैं, परंतु चिंता-चिता तो सदा ही घुन की भाँति भीतर-ही-भीतर रुधिर जलाती रहती है। उनकी करुणामय गाथा को कोई नहीं सुनता। उस पर भी भारी कठिनता यह कि न तो वे मन खोलकर रो ही सकती हैं, और न हँस ही सकती हैं। यदि रोती है, तो घरवाले सास-ससुर इत्यादि कहते हैं कि यह भाग्य-हीन सदा अपशकुन मनाती रहती है, और यदि दुर्भाग्य-वश सामने आ जाय, तो समझते हैं कि साक्षात् काल ही आ गया। यदि कहीं हँस पड़े, तो कहते हैं कि कैसी निर्लज्ज है, इसे कहाँ की ख़ुशियाँ सूझ रही हैं। हा भाग्यहीन स्त्री-समाज, तेरे लिये विधाता भी वाम है। पुरुष एक स्त्री के रहते हुए चार-चार विवाह करते नहीं अघाते और स्त्रियाँ बेचारी अयोग्य पति के होने पर तथा विधवा हो जाने पर भी दूसरे विवाह की अधिकारिणी नहीं। यदि संसार में भाग्यहीन स्त्री-समाज पैदा ही न होता, तो संभव है कि आकाश को भी नीलिमा का चक्कर न लगता। वे सदा ही आँख की किरकिरी के समान सबकी आँखों में खटकती रहती हैं। जूते में पड़ी हुई कंकड़ी के समान पद-पद पर कष्ट-दायिनी हैं।

सैकड़ों स्त्रियों के जीवन ऐसे देखने में आएँगे, जो केवल दहेज़ के लिये ही तिरस्कृत की गई हैं, तथा सैकड़ों ऐसे उदाहरण हैं, जब कि पुरुष वेश्याओं को रखकर अपनी धर्मपत्नी को तज देते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि कोई-न-कोई बात पुरुष ऐसी बना लेते हैं, जिसके द्वारा स्त्रियों का तिरस्कार होता है। जो स्त्री कुछ सीधी-सादी होती है, उसे तो पागल ही कहकर छोड़ देते हैं। इत्यादि बातें सदा देखते-देखते नेत्र भी श्रमित हो गए। स्त्रियों को अबला कहना आरंभ कर दिया, क्योंकि जब चारो ओर से अत्याचार होने लगे, तो बेचारी स्वयं अबला हुईं। सब प्रकार से पराधीन हो गईं। न उनमें शक्ति रही, न बल रहा। उनका जीवन-सौंदर्य रेगिस्तान में जौहरी के हाथ से खोए हुए अमूल्य रत्न के समान बिलकुल निस्सार हो रहा है।

इतने ही लिखने को बहुत समझना। संक्षेप से तो सभी बातों का वर्णन आ गया, फिर कभी विस्तार से लिखने का प्रयत्न करूँगी।

(कुमारी) शकुंतला गुप्ता ("हिंदी-प्रभाकर")



स्त्रियों के व्यायाम

(४)

व्यायाम



कुछ लोगों की आदत-सी पड़ जाती है कि वे नए परिवर्तनों को बुरा समझते हैं। उन्हें हमेशा उनमें दोष-ही-दोष दिखाई पड़ते हैं। इतना ही नहीं, वे अपनी मानी हुई बातों को घटा-बढ़ाकर दूसरे लोगों को सुनाते हैं, और उन्हें उन बातों को मानने के लिये विवश भी करते हैं। यही हालत स्त्रियों के व्यायाम के संबंध में भी है। व्यायाम का विषय तो एक ऐसी बात है, जिस पर नाक-भौं चढ़ाना कोई बड़ी बात नहीं, परंतु स्त्रियों को पढ़ाना-लिखाना भी आज कई मनुष्यों को अच्छा नहीं लगता। जिस तरह पढ़ने-लिखने के विषय में उनका कहना है कि 'स्त्रियों को पढ़ा-लिखा-कर क्या उन्हें बाबू बनाना है ? या उनसे नौकरी करानी है ? पढ़ने-लिखने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं।' इत्यादि, उसी तरह वे व्यायाम के लिये भी कहते हैं कि 'क्या व्यायाम कराके स्त्रियों को कुश्ती मारनी है ? या फ़ौज में भर्ती होकर युद्ध में जाना है ? अथवा उन्हें मर्द बनाना है ? व्यायाम से उनमें मर्दानापन आ जाता है।' इत्यादि। इस प्रकार की बातें नासमझ मनुष्यों की कही जा सकती हैं। जो लोग अपनी अच्छी-बुरी हालत का विचार नहीं कर सकते, ऐसे ही मनुष्य स्त्रियों के सुधार के विरुद्ध अंट-शंट बातें बका करते हैं। परंतु ऐसे लकीर के फ़क़ीरों की बातों पर आज लोग अधिक विश्वास नहीं करते।

'व्यायाम के द्वारा स्त्रियों का रूप-लावण्य नष्ट हो जाता है', इस बात को भी कोई समझदार व्यक्ति नहीं मानेगा। व्यायाम के द्वारा तो शरीर सुडौल एवं ख़ूबसूरत बनता है। व्यायाम के आचार्यों का दावा है कि

व्यायाम से सौंदर्य बढ़ता है, मुख कांतिमय बन जाता है, रंग निखरता है।' फिर कैसे मान लिया जाय कि व्यायाम के द्वारा स्त्रियों का लावण्य नष्ट हो जाता है ? व्यायाम न करनेवाली स्त्रियाँ सभी लावण्यमयी होती हैं, इसे भी कोई नहीं मान सकता । हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि श्रमशील स्त्रियाँ आलसी स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक लावण्यमयी होती हैं। 'व्यायाम से स्त्रियों में मर्दानगी आ जाती है।' इत्यादि बातें बे-सिर-पैर की हैं। व्यायाम यदि हद से ज़्यादा किया जायगा, तो स्त्री हो या पुरुष, सभी के लिये हानिकारी है। स्त्रियों को चाहिए कि मर्दों के व्यायाम, जिनसे उनके मर्दाना हो जाने का डर हमारे मर्द कहलानेवाले भारतवासियों को है, न करें । कुछ व्यायाम ऐसे हैं, जो मर्दों को लाभ पहुँचाते हैं, तो स्त्रियों को हानिप्रद होते हैं। इसीलिये हमने इस पुस्तक में ऐसे ही व्यायाम बतलाए हैं, जो स्त्रियों के लिये लाभकारी हैं।

स्त्रियाँ पुरुषों के-से व्यायाम भी कर सकती हैं, परंतु ऐसे व्यायाम उन्हीं स्त्रियों को करना चाहिए, जो जीवन-भर ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने की इच्छुक हों। हमारे देश में जीता-जागता उदाहरण श्रीमती मिस ताराबाई हैं। जिन लोगों ने सरकस में उन्हें काम करते देखा है, वे समझ सकते हैं कि स्त्रियाँ ऐसे काम भी कर सकती हैं, जिन्हें मर्द भी नहीं कर सकते । अपनी छाती पर से भरी हुई गाड़ी निकलवाना, भाले की नोक अपने माथे में लगाकर उससे भरी हुई गाड़ी को ढकेलना । अपने बालों में सैकड़ों पौंड के वज़न का पत्थर बाँधकर उठाना, क्या कुछ कम बात है ? माना कि व्यायाम से स्त्रियाँ मर्दानी हो जाती हैं, परंतु यहाँ प्रश्न यह होता है कि इससे हानि क्या है ? देश को इस वक़्त इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि स्त्रियाँ अपनी रक्षा अपने आप कर सकें। हाँ, स्त्रियों के व्यायाम से पुरुषों को चिढ़ने का एक कारण अवश्य हो सकता है। वह यह कि कहीं ऐसा न हो कि औरतें व्यायाम करके सम माँग-पट्टी निकालकर, मुँह पर तेल और कपाल पर लाल बिंदी लगाकर, पतले, महीन, मुलायम और नज़ाकतदार कपड़े तथा ढीली धोती पहनकर गलियों में घूमनेवाले जर्जर-शरीर पुरुषों से बलवान् बन जायँ। संभवतः इसी विचार से वे स्त्री-समाज को अपने से भी निर्बल बनाए रखना चाहते हैं। परंतु यह उनकी भूल है। इससे बड़ी भारी हानि पहुँच रही है। इसलिये क्या स्त्री और क्या पुरुष, प्रत्येक भारतवासी को अपने शरीर की तथा अपनी आनेवाली संतान की उन्नति के लिये व्यायाम अपना एक दैनिक नित्य-कर्म समझना चाहिए।*

यदि स्त्रियाँ मर्दानी हो भी जायँ, तो उससे समाज को कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती। दो-चार स्त्रियाँ यदि मर्दानी हो जायँ, तो क्या हानि है ? जब कि लाखों स्त्रियाँ क्षय, प्रसूतिरोग और निर्बलता के कारण 'मुर्दा'-शक्ल बनी हुई हैं, और बेमौत मर रही हैं। जिस प्रकार आज भारतवर्ष में स्त्रियों के शारीरिक सुधार की ओर किसी का ध्यान नहीं है, उसी प्रकार "प्राचीन समय में, इटाली के लोग भी स्त्रियों की शारीरिक शिक्षा पर ध्यान नहीं देते थे। स्पार्टन लोग मानते थे कि लड़कों की तरह लड़कियों को भी शारीरिक संगठन की आवश्यकता है।" पाश्चात्य देशों में जब तक स्त्री-सुधार की ओर लोगों ने ध्यान नहीं दिया, तब तक वे उन्नत नहीं बन सके। इससे स्पष्ट होता है कि अपने राष्ट्र की उन्नति के लिये स्त्रियों के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक सुधार की अत्यंत आवश्यकता है। स्त्रियों की नैतिक शिक्षा के साथ-ही-साथ उनकी शारीरिक शिक्षा भी होनी चाहिए । माता-पिता का यह परम कर्तव्य है कि अपनी संतान को बलवान् बनावें, चाहे वह पुत्र हो या पुत्री। मनुजी की आज्ञा है कि—

"यैथवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।"

जैसे पुत्र आत्मा के तुल्य है, वैसे ही कन्या भी पुत्र के समान है। इसलिये माता-पिता का कर्तव्य है कि

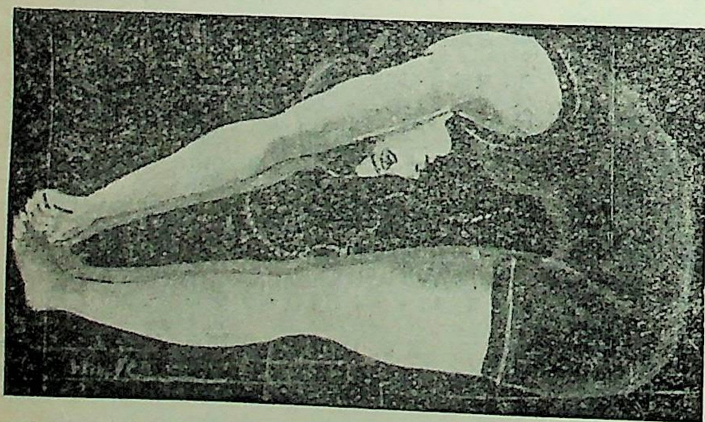
* मेरी लिखी हुई 'शरीर और व्यायाम'-नामक पुस्तक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से मँगाकर अवश्य पढ़ लीजिए।—लेखक

वह लड़कों की भाँति लड़कियों को भी व्यायाम की शिक्षा देकर उन्हें सुदृढ़ एवं पुष्ट बनावें। उन कन्या-पाठशालाओं में, जिनमें व्यायाम का कुछ भी प्रबंध नहीं है, देश के हितैषी लोगों को चाहिए कि व्यायाम की पद्धति प्रारंभ कराने का प्रयत्न करें।

घरू धंधे के अतिरिक्त अब हम ऐसे व्यायाम का वर्णन विधि-सहित करेंगे, जिन्हें स्त्रियाँ सहज ही में करके अपनी शारीरिक उन्नति कर सकें।

व्यायाम नं० १

पृथ्वी पर चित सो जाओ। अपनी टाँगें ज़मीन से सटा दो, और अपने दोनो हाथ सिर के पीछे सीधे लंबे फैला दो। अब उठने का प्रयत्न करो। उठते वक़्त जल्दी नहीं करनी चाहिए, और न झटके के साथ ही उठना चाहिए, बल्कि पेट के स्नायु के बल पर बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता उठने का प्रयत्न करना चाहिए। उठते वक़्त पैर पृथ्वी से न उठ जायँ, और हाथ सीधे पैरों की ओर बढ़ते चले जायँ। यहाँ तक कि दोनो हाथों से पैरों के दोनो अँगूठे को पकड़ लो, जैसा कि चित्र नं० १ में है। इतना करने के बाद अपने सिर को



चित्र नं० १

दोनो घुटनों के बीच में रखने का प्रयत्न करो, जैसा कि चित्र नं० १ में दिखाया गया है।

सिर को घुटनों में रखते वक़्त पैर ज़मीन से नहीं उठने चाहिए। इस वक़्त पीठ, गर्दन और पैरों में काफ़ी तनाव होता है। एक दिन में, एक ही बार में, ऐसा नहीं किया जा सकता। पहले तो धीरे-धीरे उठने में ही बड़ी कठिनाई पड़ेगी; क्योंकि पृथ्वी से पाँव उठाए बिना अथवा झटका लिए बिना उठ जाना सहज बात नहीं है। इसके बाद पैरों को सीधा रखकर हाथों से पैरों के अँगूठे पकड़ लेने में कमर में कष्ट-सा होने लगेगा। फिर घुटनों में माथा टिकाते वक़्त तो और भी कठिन मालूम होगा। एक-दो दिन इस व्यायाम में संभवतः कुछ कष्ट हो, परंतु कुछ दिन के अभ्यास से यह सहज ही में होने लगेगा। न आने पर हताश होकर इसे छोड़ देना ठीक नहीं, बल्कि प्रयत्न द्वारा इसमें सफलता प्राप्त करनी चाहिए। इसे करने से सारे शरीर को तो व्यायाम मिलता ही है, किंतु पृष्ठ-वंश, सिर, गर्दन, पीठ और घुटनों के नीचे के हिस्से की अच्छी तरह शुद्धि होकर वे बलवान् बन जाते हैं। इसको करते समय जब तक थकान न आ जाय, तब तक इसे करना चाहिए। १५-२० मिनट तक घुटनों में सिर टेककर रहने का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए। इस व्यायाम को यौगिक भाषा में "पश्चिमोत्तान आसन" कहते हैं।

व्यायाम नं० २

चित लेट जाना चाहिए। दोनो पैरों को पृथ्वी पर चिपके रखना चाहिए। बाएँ हाथ से दाहने हाथ की भुजा और दाहने से बाएँ हाथ की भुजा पकड़ लो, और अब धीरे-धीरे बैठी होने का प्रयत्न करो। देखना, पैर पृथ्वी से न उठ जायँ, और उठने में झटके से न उठो। बैठने पर फिर उसी तरह धीरे-धीरे लेट जाओ, और फिर पहले की तरह उठो। इस तरह जहाँ तक थकान न मालूम हो, उठो-बैठो। यह व्यायाम नं० १ से कुछ कठिन है।

जिस तरह व्यायाम नं० १ में पैरों के अँगूठों को

पकड़कर सिर घुटनों में रक्खा जाता है, उसी तरह इसमें भी विना अँगूठे पकड़े अर्थात् एक हाथ से दूसरे हाथ का भुजदंड पकड़े हुए ही सिर को पैरों से लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पेट और पीठ के स्नायु शुद्ध हो जाते हैं।

व्यायाम नं० ३

चित लेट जाओ, और दोनो हाथों की अँगुलियों द्वारा क़ैंची फाँसकर गर्दन के नीचे मज़बूती से लगाओ। अब धीरे-धीरे उठना चाहिए, और आगे की ओर सिर को इतना झुकाना चाहिए कि सिर घुटनों से जा लगे। इसमें भी पैरों के ज़मीन से न उठने का तथा हाथों की कुहनियाँ सीधी रखने का ध्यान रखना पड़ेगा।

पहलेपहल इस व्यायाम को करते वक़्त हाथों की कुहनियाँ मुँह की तरफ़ आती हैं, इससे उठने में सहायता मिलती है। किंतु ऐसा नहीं होने देना चाहिए। यथासंभव कुहनियों को बिलकुल सम-सूत्र में गर्दन के पीछे रखने का अभ्यास करना चाहिए। यदि आरंभ में न हो सके, तो कोई हानि नहीं, किंतु बाद में इस भूल को सुधार लेना चाहिए। इस व्यायाम को थकान न आने तक करना चाहिए।

व्यायाम नं० ४

पहले कही हुई रीति से चित लेट जाओ। अब अपने दाहने हाथ की अँगुलियों से पीठ पीछे के बाएँ कंधे की जड़ में छुओ, और वहीं जमा दो। इसी तरह बाएँ हाथ की अँगुलियों से दाहने कंधे की जड़ में स्पर्श करो। फिर दोनो हाथों को इसी तरह रखकर और कुहनियों को न झुकाकर धीरे-धीरे उठो, और सिर को पैरों से लगा देने का प्रयत्न करो। फिर इसी तरह धीरे-धीरे लेट जाओ। कई बार इस व्यायाम को करो। यह व्यायाम पिछले व्यायामों से कुछ कठिन अवश्य है, किंतु अभ्यास द्वारा यही सरल बन जाता है।

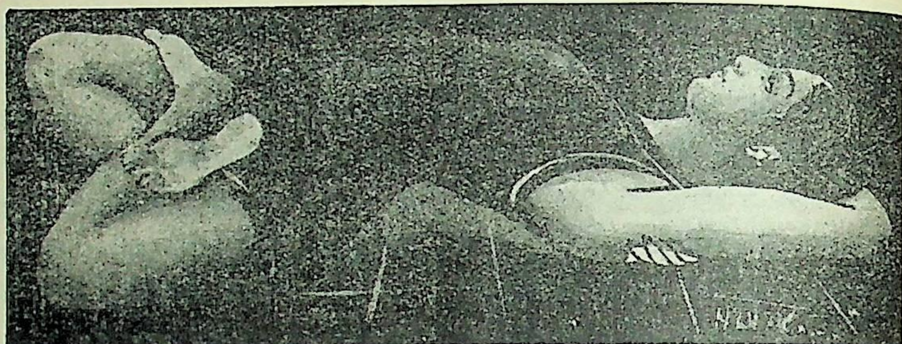
ये सब हमने सोकर उठने के व्यायाम बताए हैं, किंतु समझदार बहनें इनमें हेर-फेर करके इन्हें कई प्रकार से कर सकती हैं। इनमें सिर्फ़ इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता है कि व्यायाम करते वक़् जल्दी न की जाय। झटके के साथ न उठा जाय, पैरों को पृथ्वी से न उठने दिया जाय, और जो पोज़ीशन व्यायाम के लिये बताया गया, उसे न बिगड़ने दिया जाय। स्वास्थ्य-रक्षा के लिये ये व्यायाम बड़े ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इन व्यायामों को यदि गर्भवती बहनें भी करें, तो कोई हानि नहीं हो सकती। परंतु यह न भूलना चाहिए कि "उठते वक़् झटका न दिया जाय।" इन व्यायामों को धीरे-धीरे करने ही से लाभ होता है, जल्दी करने में हानि होती है। इन व्यायामों के करनेवाली बहनों को प्रसव-काल में बिलकुल कष्ट नहीं होता।

व्यायाम नं० ५

चित लेट जाओ और लेटे-लेटे ही पद्मासन लगाओ। अर्थात् अपने दाहने पैर के टख़ने को बाईं जंघा पर और बाएँ पैर के टख़ने को दाहने पैर की जंघा पर रक्खो। इसके बाद अपने सिर के नीचे दाहने हाथ से बाएँ भुजदंड को और बाएँ हाथ से दाहने भुजदंड को पकड़कर उस पर अपना सिर जमा दो। अपनी कमर जितनी हो सके उतनी, पृथ्वी से ऊँची उठाओ। ध्यान रक्खो, इस वक़् दोनो घुटने पृथ्वी से लगे रहें। ऊपर न उठने पावें। जब तक थकान न आ जाय, तब तक इसी स्थिति में पड़े रहना चाहिए (देखो चित्र नं० २)। योग के आसनों में इसका नाम "मीनासन" है। कहते हैं, इस आसन से जल के ऊपर रहनेवाला व्यक्ति कभी डूब नहीं सकता। इस व्यायाम से सारे शरीर की शुद्धि होती है। ख़ास करके पेट और पीठ के स्नायु बलवान् और नीरोग हो जाते हैं। इसके अभ्यासी को कभी क़ब्ज़ की शिकायत नहीं होती। इसे थोड़ा जल-पान करके करने से विशेष लाभ होता है।

व्यायाम नं० ६

इस आसन में भी कई प्रकार के व्यायाम किए जा सकते हैं। सिर के नीचे हाथ लगाए हुए ही, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, धीरे-धीरे उठने का प्रयत्न करना चाहिए, और उठ-बैठकर फिर धीरे-धीरे पीछे की



चित्र नं० २

तरफ़ जाकर लेट जाना चाहिए। जब तक थकान न आ जाय, इसे करना चाहिए। इसमें उठकर बैठी हो चुकने के बाद पैरों पर सिर टिका देने का अभ्यास भी किया जा सकता है।

फिर इसी प्रकार पैरों की पालथी को धीरे-धीरे ज़मीन से उठाकर सिर के ऊपर ले जाना चाहिए। उसके बाद आहिस्ता-आहिस्ता लाकर पृथ्वी पर जमा देना चाहिए। इस व्यायाम को कई बार करना चाहिए।

व्यायाम नं० ७

अभी तक हमने लेटकर करने के कुछ व्यायामों की विधि बताई है, अब हम बैठकर करने के व्यायामों का वर्णन करेंगे। आलथी-पालथी लगाकर अर्थात् पद्मासन से बैठ जाओ। दाहने पैर का पंजा बाईं जंघा पर और बाएँ पैर का पंजा दाहने पैर की जंघा पर रखने से पद्मासन बन जाता है। इसमें सिर्फ़ इसी बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पैरों के घुटने पृथ्वी से लगे हुए रहें, उठने न पावें। इस आसन पर बहुत समय तक बैठने से भी स्वास्थ्य को बहुत लाभ होता है। इसके करने में सिर, पीठ, कमर, गला सभी सम-रेखा में रखने चाहिए। पाँवों के रखने का ढंग चित्र नं० ३ के अनुसार होना चाहिए, और हाथ चित्र नं० ३ के अनुसार न रखकर सीधे घुटनों पर रख देना चाहिए। इस व्यायाम के द्वारा पैरों की नस-नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं। इस प्रकार बैठकर ठोढ़ी को कंठ की जड़ में कुछ देर जमाए रखने से मस्तिष्क का मज्जा-प्रवाह ठीक हो जाता है, विचार-शक्ति बढ़ती है, और स्मरण-शक्ति स्थिर हो जाती है।

इस व्यायाम में हाथों को इधर-उधर फैलाकर भी व्यायाम हो सकता है। दोनो हाथों की हथेलियाँ ठीक सिर पर मिलाने अर्थात् ठीक अपने सिर पर आकाश की ओर हाथ जोड़े रखने से भी अच्छा व्यायाम होता है। इस वक़्त केवल इसी बात का ध्यान रखना चाहिए कि हाथों में ढीलापन न आवे। वे ऊपर की ओर तने हुए ही रहें। इस प्रकार दस-पंद्रह मिनट बैठना चाहिए। यह व्यायाम गर्भवती स्त्रियों के लिये अत्यंत उपयोगी है। गर्भ में इससे किसी प्रकार की बाधा पहुँचने की आशंका नहीं।

व्यायाम नं० ८

पद्मासन से बैठने की विधि हम व्यायाम नं० ७ में बता चुके हैं। उसी विधि के अनुसार बैठ जाइए। अब अपना दाहना हाथ बाएँ घुटने पर रखिए, और अपना धड़ बाईं ओर घुमाइए। अपनी छाती, जितनी पीठ की ओर जा सकती हो, ले जाइए। ऐसा करते वक़्त यदि आवश्यक हो, तो बायाँ हाथ ज़मीन पर रखकर सहारा लिया जा सकता है। जब आपकी छाती पीठ की ओर अच्छी तरह पहुँच जाय, तब वहाँ ही उसी दशा में ठहरी रहिए। इस व्यायाम में इस बात का ध्यान रखना बड़ा आवश्यक है कि पद्मासन जमा रहे।

घुटने इधर-उधर न सरकने पावें । बाईं ओर अच्छी तरह घुमाने के बाद अब बाएँ हाथ को दाहने घुटने पर रखकर अपना धड़ दाहनी ओर उसी तरह घुमाइए। कुछ लोग घुमाने में जल्दी करते हैं, यह अनुचित है। इस व्यायाम से पेट की शुद्धि होती है। यह व्यायाम अत्यंत सरल, किंतु बड़ा ही अच्छा है।

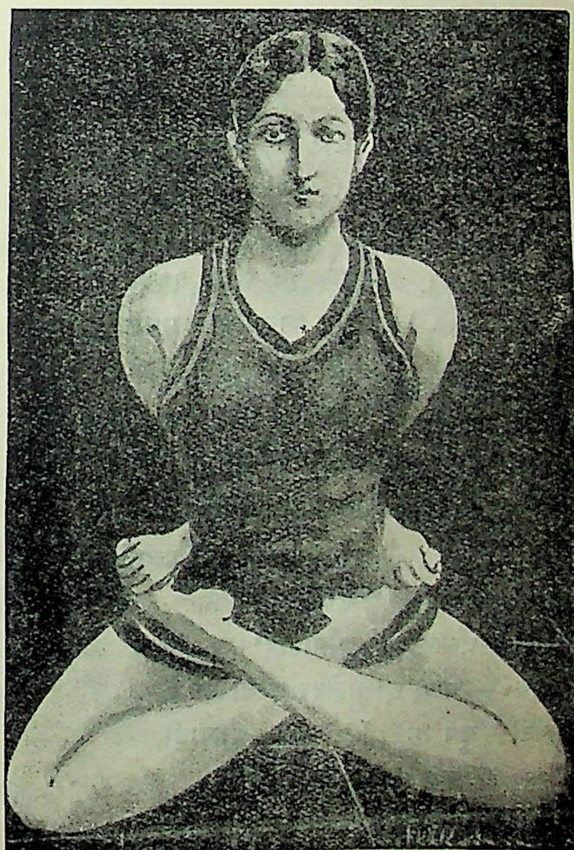
व्यायाम नं० ६

दाहना पैर बाईं जाँघ पर और बायाँ पैर दाहनी जाँघ पर इस तरह रक्खो कि पैरों की एड़ियाँ पेट से अड़ जायँ। इसके बाद पीछे की ओर दाहना हाथ ले जाकर दाहने पैर का अँगूठा पकड़ो, और बाएँ हाथ को पीठ पीछे से ले जाकर बाएँ पैर का अँगूठा पकड़ो। दोनो हाथों से दोनो पैरों के अँगूठे पकड़ने के बाद अपनी ठोड़ी को कंठ के मूल में जमाकर बैठ जाओ (देखो चित्र नं० ३)। इससे सारे शरीर की शुद्धि होती है। इसके करनेवाले को कोई व्याधि नहीं होने पाती। परंतु सिर्फ एक-दो मिनट कर लेने से इस व्यायाम से कोई लाभ नहीं हो सकता। कम-से-कम १५-२० मिनट करने से लाभ हो सकेगा। इससे अधिक बैठने से अधिक लाभ होता है। स्थिरता-पूर्वक ४-६ महीने करने से पूर्ण आरोग्य लाभ किया जा सकता है।

इस व्यायाम से कमर के स्नायु तथा पैरों की नस-नाड़ियाँ अच्छी तरह शुद्ध हो जाती हैं। पीठ के मेरुदंड में जो टेढ़ापन आ जाता है, वह पीठ के दबाव से सीधा हो जाता है। इस व्यायाम से पीठ का मज्जा-प्रवाह उचित रीति से होने लगता है। इसके द्वारा मज्जा-तंतु के समस्त रोग फ़ौरन् नष्ट हो जाते हैं। पृष्ठ-वंश का सीधा होना मनुष्य के लिये एक उत्तम आरोग्य-दायक बात है, क्योंकि इसके टेढ़े हो जाने से मनुष्य में भाँति-भाँति की असंख्य बीमारियाँ हो जाती हैं।

इस व्यायाम के करने में पहलेपहल पीठ पीछे से हाथ अँगूठों तक पहुँचते ही नहीं। इसका कारण यह नहीं है कि हाथ-पैर छोटे हैं। नहीं, शरीर में विजातीय द्रव्यों की अधिकता से ऐसा होता है। ज्यों-ज्यों शुद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों इस व्यायाम में सफलता मिलती जाती है। पहलेपहल यदि बहुत ही कष्ट हो, तो एक हाथ और एक पैर से ही करना चाहिए। एक से कर चुकने पर फिर उतने ही समय तक दूसरे से भी करना चाहिए। दोनो से न करने में किसी दोष के उत्पन्न हो जाने की संभावना है। जब शारीरिक दोष हट जायँ, तब दोनो हाथों से चित्र नं० ३ के अनुसार करना चाहिए। इस व्यायाम से पेट की बढ़ी हुई तिल्ली भी नष्ट हो जाती है।

गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इंद्र"



चित्र नं० ३

व्यंग्य-विनोद

प्र + हस् + अनट्

(१)



(स)दियों का पड़ा हुआ पर्दा उठता है। विक्रम-पूर्व सं० ३६४२ यानी वैदिक काल का सूत्रधार और बीसवीं सदी की नटी नाचते हुए गाते हैं)

दोनो—हिंदी का हो जय-जयकार।

सूत्रधार—स्वामी हलानंदजी से अब होगा हिंदी का उद्धार।

नटी—धन्य हमारे छायावादी।

सूत्र०—चल, छीछालेदर करवा दी।

नटी—चुप रह, old fool, बकवादी,
समझे भी तू रेशम-खादी।
बढ़वा दी इज़्ज़त जिन लोगों ने
उनसे तू खाता ख़ार।
हिंदी का हो जय-जयकार।

सूत्र०—अरी, ज़रा सुन ध्यान लगाकर
लाए हैं ये भाव भगाकर।

नटी—On, I won't care that beggar
Swami Halanand professor.

सूत्र०—और लोग भी तो कहते हैं,
होगा कहाँ तलक इनकार
हिंदी का हो जय-जयकार।

नटी—वे सब लोग डंकवाले हैं,
मेरे poet पंखवाले हैं,
तू भी ज़रा चुराकर लिख तो,
देखूँ, है कितना जाँदार।
जय-जयकार।

(पर्दा उठता है)

(२)

नाटकारंभ गीत—

जब से एल० ए० फ़ेल हुआ,
हमारा कॉलेज का बचुआ।
नाक दबाकर संपुट साधे,

महादेवजी को आराधै,
भंग छानकर रोज़ रात को
खाता मालपुआ।
वाल्मीकि को बाबा मानै,
नाना व्यासदेव को जानै,
चाचा महिषासुर को, दुर्गा
जी को सगी बुआ।
हिंदी का लिक्खाड़ बड़ा वह,
जब देखो तब अड़ा पड़ा वह,
छायावाद - रहस्यवाद के
भावों का बटुआ।
धीरे-धीरे रगड़-रगड़कर,
श्रीगणेश से झगड़-झगड़कर
नत्थाराम बन गया है अब
पहले का नथुआ।
हमारा कॉलेज का बचुआ।
(पट-क्षेप)

(३)

(भगवान् विश्वनाथजी की काशीपुरी। स्वामी हलानंद किराए के मकान में आराम-कुर्सी पर तपस्या कर रहे हैं। सामने एक शिष्य खड़ा है। जब स्वामीजी नई खोज में अपनी जुगनुओं-सी चमकती छोटी-छोटी आँखें मूँद लेते हैं, तब संसार का प्रलय हो जाता है। जब छायावादियों को भस्म कर देने के विचार से वे लाल-लाल आँखें खोल देते हैं, शिष्य अदब से बकुली बन जाता है।)

स्वामी हलानंदजी—(ध्यान से जगकर, अधकटी मूँछों पर आराम के हाथ फेरते हुए, शिष्य से) श्रीमती स्टानली ने अपनी पुस्तक "एसेंस ऑफ़् दी वेस्ट" में लिखा है, सांसारिक सृष्टि को ईश्वर मानने-वाले बेवक़ूफ़ हैं।

शिष्य—(कौवे की निगाह से देखता हुआ झुक-कर) आपकी क्या राय है ?

स्वामी हलानंद—(फूले हुए गाल गंभीरता के भाप से फुलके बन जाते हैं) बहुत ठीक लिखा है।

शिष्य—(अविश्वास से हँसता हुआ) सांसारिक सृष्टि से आपका क्या अभिप्राय है ?

स्वामी हला०—(बेदर्द मुस्किराहट से) सांसारिक मनुष्य, वस्तु आदि। आजकल के जो छायावादी छोकड़े हैं, इन्हीं में ईश्वर देखते हैं ! इनको ज़रा मज़ा चखा देना है। मैंने एक पुस्तक लिखी है। ये जितने हैं, किसी का भी विशेष अध्ययन नहीं। सब बँगला और अँगरेज़ी का भ्रष्ट अनुवाद करके रख देते हैं। अक़्ल के पूरे बैल हैं। तभी तो इनको fool बनाया है।

शिष्य—आप आज्ञा दें, तो मैं आपको एक सलाह दूँ।

हला०—हाँ, कहो। (उत्सुकता से आखें फाड़कर)

शिष्य—इन लोगों की रचनाओं ने नवयुवकों को हिला दिया है। इन्हें हिलाने की कोशिश में आप ख़ुद कहीं औंध गए, तो बड़ी भद्द होगी।

(हलानंद शिष्य को बड़प्पन दिखाने के विचार से गंभीर होकर फूलते हैं। नास्तिक शिष्य खड़ा हँसता है।)

हला०—(भोंपों-मात स्वर से) हिंदी में कौन ऐसा है, जो इन गहन विषयों के उल्लेख समझ सकता हो ?

शिष्य—लेकिन समझ लीजिएगा, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि आप ख़ुद अपनी पोल खोल रहे हैं। कहीं आप ही के दिमाग़ का दिवाला निकाल दिया गया, तो हम लोग आपके सब सुयोग्य शिष्य यह कैसे सहन करेंगे ?

हला०—सहन करना होगा। मेरी बुराई नहीं सहन करोगे, तो और किसकी करोगे ? (हलानंद उत्तेजना में चढ़ी आँखों से शिष्य को देखते हैं)

शिष्य—आप क्या कहते हैं ? इसी तरह आप कभी-कभी अनर्गल लिख जाते हैं। मेरे पास पत्र आया है कि स्वामीजी पहले तुलसीदास को fool साबित करें, और किया ही, जब कि वे संसार में आप हुए राम को ब्रह्म बतलाते हैं, सूरदास दूसरे

fool हैं, इस तरह क़रीब-क़रीब सब हिंदू fool, क्योंकि सांसारिक पत्थर की मूर्तियों में ईश्वर की भावना रखते और पूजते हैं। प्रह्लाद की कहानी किसी fool ने लिखी होगी, क्योंकि खंभे से नर-सिंहदेव निकलते हैं। यह सब कौन वाद या प्रवाद है, अथवा प्रमाद या शुद्ध रहस्यवाद है? गुरुदेव, गुरुदेव, बतलाइए, यह सब हम कैसे सहन कर जायँ? हमारे जीते हुए आपकी ऐसी छीछालेदर हो? और, हम अपनी आँख से देखें। य' मर जाने की बातें हैं। शपथ करके कहता हूँ, ऐसा कभी नहीं होगा, नहीं हो सकता, नहीं हुआ। इस पत्र के उत्तर में, मैं लिखूँगा, तुम मूर्ख हो, हमारे गुरुदेव की बातों को तुम क्या समझो, लंठ? तुमने कितना अध्ययन किया है? हमारे गुरुदेव हैं, स्वामी हलानंद-विशालचो, एल्० ए०-फ़ेल सात बार।

(स्वामी हलानंद परस्त हो गए। कलेजा काँप रहा था। डर रहे थे कि अब बड़ी भद्द होगी। शिष्य उनकी मुद्राएँ देख रहा था। जब वह ताकते थे, तब मारे जोश के उन्हीं पर टूट पड़ता था, और बदले के लिये बदल रहा था। भीतर से चाहता था, गुरुदेव हमेशा के लिये इस तरह की हरकत से बाज़ आवें। स्वामी हलानंद ने शिष्य पर आशीर्वादी प्रभाव रखने के मतलब से कहा।)

स्वामी हला०—ख़ामोश रहो, वत्स, जब तुम्हारा अध्ययन पूरा हो जायगा, तब तुम इस पुस्तक की महत्ता आप समझोगे। जो लोग कहते हैं, उनमें ज्ञान कितना है? अर्थात् नहीं है। उन्हें लिखने दो। तुम मेरी निंदा भी नहीं हज़म कर सकोगे, तो दूसरे की कैसे सहोगे?

शिष्य—(मुस्किराता हुआ एकाएक जोश में आकर, लेकिन गोस्वामीजी ने लिखा है—

गुरुवर-निंदा सुनै जो काना ;
होय पाप गो-घात समाना।

यह पाप मैं अपने ऊपर कैसे चढ़ा लूँ?

स्वामी हला०—मेरी आज्ञा से, वत्स, मैं तुम्हारा गुरु हूँ, तुम मुझे यही दक्षिणा दो।

शिष्य—तो आप मुझे भी आशीर्वाद दीजिए।

हला०—(गद्गद होकर) जो कहो, जिन शब्दों में कहो, मैं तुम्हें आशीर्वाद देने के लिये तैयार हूँ। पर इस प्रसंग को अब आगे मत बढ़ने देना।

शिष्य—आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि ऐसे महान् सत्यों का उद्घाटन अब आप कभी नहीं करेंगे, और छायावाद-रहस्यवाद पर हमेशा के लिये लिखना बंद कर देंगे, तो मैं भी ख़ामोश हो जाऊँ। लेकिन जो हो हो! गुरुवर-निंदा! न, दुष्ट को अभी जवाब दूँगा!

हला०—नहीं, हरगिज़ नहीं, वत्स, मैं अब इस विषय पर कभी नहीं लिखूँगा। तुम जवाब मत देना।

शिष्य—ठीक कहा आपने, मैं जवाब नहीं दूँगा, जवाब देना छोटों का काम है, और मौन धारण करना बड़ों का। आप भी अब सदा के लिये मौन धारण कीजिए।

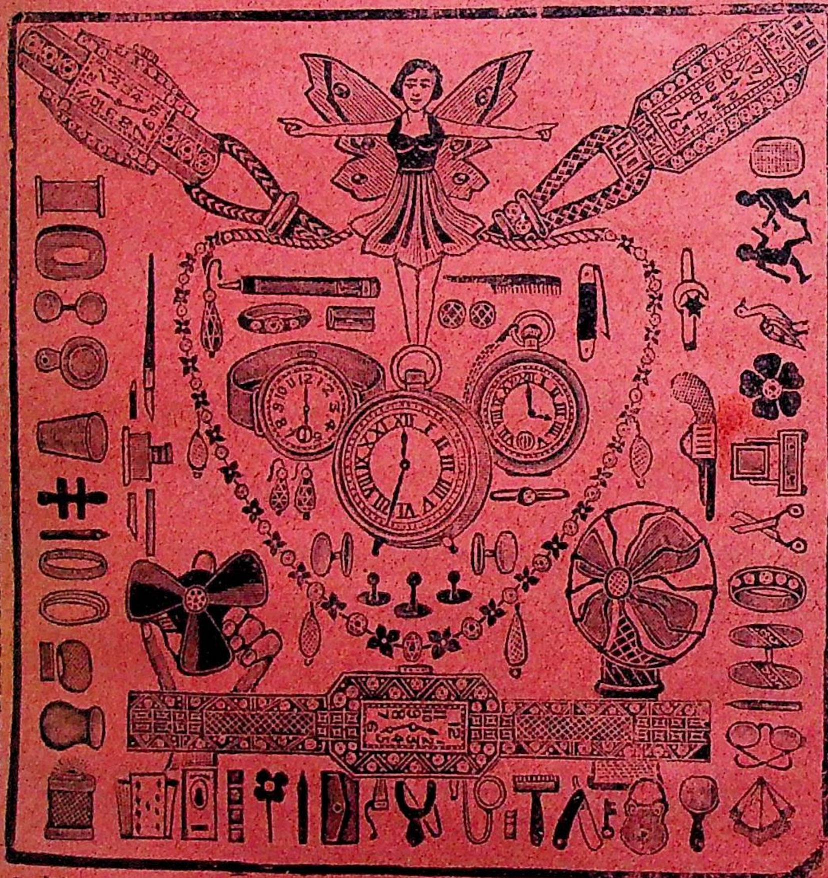
(पट-क्षेप)

महामहोपाध्याय श्रीमान् जटाटवी पत्रा

लूटो ! लूटो !! ५००००) रु० की लूटो !!!

उफ़ ! आश्चर्य ! ग़ज़ब की लूट !

दौलत का ख़ून ५०१ इनाम !



७ घड़ियाँ, दो हवाई पंखों के चित्र, सैकड़ों पिकचरें, सेंट-स्नो, ज़रा-सा मुँह पर मलने से ख़राब-से-ख़राब बदसूरत और बेहद दर्जे का काला चेहरा भी गुलाब का फूल बना अपनी मीठी भीनी-भीनी ख़ुशबू से ४८ घंटे तक तबियत को मस्त बनाए रखती है, दाद को तो ३५ मिनट में साफ़ करती है। १२ शीशी ४।-) की मँगाने से ५०१ खिलौने इनाम मिलेंगे। दुनिया-भर की सैकड़ों तरह-तरह विचित्र काट-छाँट अनोखा रंग रूप ग़ज़ब के डिज़ाइन एक-से-एक बढ़िया दिमाग़ को चक्कर में डाल देनेवाली आश्चर्यजनक चमत्कारपूर्ण, विस्मयकारक चीज़ें जो कभी न देखी हों, आज देखिए वाह-वाह कर उठेंगे। इस थोड़े मूल्य में दुनिया-भर की करामात देख दिल फड़क उठेगा। जो इस मौक़े को चूक जायँगे उन्हें फिर सारी ज़िंदगी में यह फ़ैंसी मारकेट देखने को न मिलेगा। केवल एक पछताना हाथ लगेगा। इन सबके अलावा नए चालान की बहुत बढ़िया गज की काट-छाँट मज़बूत पुर्ज़े, समय को सच्ची जो भारत में पहली ही बार आई, जी० मेकर सुंदर मनमोहक डिज़ाइन टेबुल पर रक्खो, चाहे दीवार में लटकाओ, जहाँ लटको वहाँ की ख़ूबसूरती को दुचंद और फ़ैशन को चौचंद कर देनेवाली घड़ी ५ वर्ष गारंटी सहित मुफ़्त इनाम। सैकड़ों तमाशे दिखानेवाली सैरबीन भी साथ है। डाक महसूल १।)

पताः—मैनेजर फ़ैंसी मारकेट इन इंडिया हाटखोला, कलकत्ता।

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया [illegible] माल मँगाया है।

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

बअदालत जनाब बाबू जगदंबासरन साहब बहादुर अडीशनल सब जज गोंडा मुक़ाम गोंडा
मुक़द्दमा नंबर १११ सन् १९३० ई०
बअदालत अडीशनल सब जज साहब मुक़ाम गोंडा
अडीशनल सब जज साहब बहादुर गोंडा

बनाम

भिखारीराम मजरागरा साकिन क़दीम बाज़ार तुलसीपुरा परगना तुलसीपुरा — मुद्दई

बनाम इसराइल वल्द चंदन मुसलमान पेशा खेती साकिन मौज़ा गारा परगना तुलसीपुरा ज़िला गोंडा — मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ११३॥=) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १९ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक़्त दस बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर को करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अज़्हार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २० माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

बअदालत जनाब बाबू जगदंबासरन साहब बहादुर अडीशनल सब जज गोंडा मुक़ाम गोंडा
मुक़द्दमा नंबर १७७ सन् १९३० ई०
बअदालत अडीशनल सब जज गोंडा मुक़ाम गोंडा
भगवत — मुद्दई

बनाम

शंकरसिंह — मुद्दाअलेह

बनाम शंकरसिंह वल्द महराजसिंह क़ौम छत्री साकिन मौज़ा सहजोरा परगना मनकापुर तहसील उतरौला ज़िला गोंडा

हरगाह कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत १०९॥) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १९ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर को करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अज़्हार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २० माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ८१६ सन् १९३०

बअदालत ख़फ़ीफ़ा जनाब पंडित ब्रजनाथ जोशी साहब बहादुर मुंसिफ़ सफ़ीपुर मुक़ाम उन्नाव।

बंक पारचा मोहम्मद मज़ीदुलरहमान साकिन सफ़ीपुर

मुद्दई

बनाम

मन्ना वग़ैरह

मुद्दाअलेहुम

बनाम मन्ना वल्द बदलू क़ौम ब्राह्मण साकिन सकनरा जिवमान परगना व तहसील सफ़ीपुर ज़िला उन्नाव

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत मु० १३॥-)॥। के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १९ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक्त दस बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावे मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १ माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

तामील हस्ब आर्डर ५ क़ायदा २० ज़ाबता दीवानी

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० ५१६ सन् १९३० ई०

बअदालत ख़लीफ़ा जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर कुंडा मुक़ाम प्रतापगढ़

सत्यू वल्द सुखलाल क़ौम अहीर साकिन दादुपुर परगना व तहसील पट्टी ज़िला प्रतापगढ़ मुद्दई

बनाम

फ़क़ीर वग़ैरह मुद्दाअलेहुम

बनाम फ़क़ीर वल्द भगवानदीन क़ौम चमार साकिन दादुपुर परगना व तहसील पट्टी ज़िला प्रतापगढ़

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत मु० १२४ ≡) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता कि तुम बतारीख़ ११ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाब-दही दावे मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इन-फ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २३ माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० ६४३ सन् १९३० ई०

बअदालत ख़लीफ़ा जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर सफ़ीपुर मुक़ाम उन्नाव

गयाप्रसाद वल्द मुरलीधर क़ौम ब्राह्मण साकिन हाल मौज़ा अफ़लुसी परगना सफ़ीपुर ज़िला उन्नाव मुद्दई

बनाम

मतुसिंह वग़ैरह मुद्दाअलेहुम

बनाम जगदेवसिंह वल्द कुँवरसिंह क़ौम ठाकुर साकिन अमिरा मज़रा भदयार परगना

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ८≡) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १९ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाब-दही दावे मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इन-फ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २० माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० १०३ सन् १९३० ई०

बअदालत ख़फ़ीफ़ा मुंसिफ़ी सरबगंज ज़िला गोंडा

धनलाल वल्द रघुवीर क़ौम गुसाईं साकिन बाज़ार करनैलगंज परगना गवार्ज़ ज़िला गोंडा

बनाम

रछपालसिंह वल्द हररतनसिंह क़ौम छत्री साकिन मौज़ा बसरा परगना ख़ासपूर ज़िला बहराइच मुद्दा...

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत १२९॥-)॥। के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म ... है कि तुम बतारीख़ ९ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो ... दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का ... दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाब ... दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे इज़्हार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसा... क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों ... शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू... फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ ६ माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जा... किया गया।

जज

इजलास बाबू रामस्वरूपलाल साहब बहादुर अडीशनल मुंसिफ़ दोयम आज़मगढ़

सम्मन वास्ते क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब

(ऑर्डर ५ क़ायदा १ व ५)

मुक़द्दमा नंबर २९२ सन् १९३०

अदालत अडीशनल मुंसिफ़ दोयम ज़िला आज़मगढ़

दीपनारायणसिंह

मुद्दई

बनाम

मदनसेनसिंह वग़ैरा

मुद्दाअलेह

चंद्रसेनसिंह वल्द राजेश्वरसिंह व केदारनाथसिंह वल्द पतिसिंह साकिनान मौज़ा मक़बूलपुर उर्फ़ राम... तप्पा कोवा परगना देवगाँव ज़िला आज़मगढ़।

हरगाह मुद्दई ने आपके नाम एक नालिश बाबत के दायर की है लिहाज़ा आपको हुक्म ... है कि बतारीख़ ८ माह अक्टूबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे दिन के असालतन या मार्फ़त वकील ... मुक़द्दमा के हालात से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा ... जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हों ... जवाबदिही दावा की करें। और आपको लाज़िम है कि उसी रोज़ जुमला दस्तावेज़ात पेश करें जिन पर ... बताईद अपने जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हों।

आपको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर आप हाज़िर न होंगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी आ... मस्मू और फ़ैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत के आज बतारीख़ २६ अगस्त सन् १९३० ई० जारी किया ...

सम्मन बग़रज़ क़रारदाद उमूर तनक़ीह तलब

मुक़द्दमा नं० ४० सन् १९३० ई०
बअदालत जनाब अडीशनल सब जज साहब बहादुर सुलतानपुर मु० सुलतानपुर
देवसरन सिंह

मुद्दई

बनाम

गंगासरनसिंह वग़ैरा

मुद्दाअलेहुम

बनाम विजयबहादुरसिंह वल्द रामहरखसिंह साकिन मौज़ा बनमई परगना मरूसा तहसील ज़िला सुलतानपुर
वाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दख़लयाबी के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म
होता है कि तुम बतारीख़ ८ माह अक्टूबर १९३० ई० बवक्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमा
के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे
सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा
मुद्दई मज़कूर की करो और तुमको हिदायत की जाती है कि जुमला दस्तावेज़ात को जिन पर तुम बताईद अपनी
जवाबदिही के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो।
मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में मस्मू व फ़ैसल
होगा। आज बतारीख़ माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।
तंबीह—तुमको हुक्म दिया जाता है कि बयान तहरीरी बतारीख़ २७ माह सितंबर सन् १९३० तक गुज़रानो।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ६० सन् १९३० ई०
बअदालत पं० हरीशंकर चतुर्वेदी साहब मुक़ाम उन्नाव
मुंसिफ़ी जनूबी उन्नाव

जगदीशप्रसाद नाबालिग़ ववलायत चंद्रनाथ पिदर क़ौम ब्राह्मण सा० उन्नाव मुहल्ला मुबारिजनगर मु

बनाम

गोकुलानंद वग़ैरा साकिनान पढ़री कलाँ परगना हड़हा ज़िला उन्नाव

मुद्दा

बनाम शिवनंदन व शिवनारायण पिसरान विहारीलाल ब्राह्मण पांडे सा० पढ़री कलाँ परगना हड़हा ज़ि उन्नाव

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत बैबात १३१६॥)॥ के दायर की है लिहाज़ा तुमको हु होता है कि तुम बतारीख़ १९ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदि मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे इन्तज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की श पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे, तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मसमू फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १८ माह अगस्त सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से किया गया।

नोट—ऑर्डर देते [illegible] लिखिए कि सुधा में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

समाज-सुधार

शुद्धि

(गतांक से आगे)



हिंदू लोगों में सबसे बड़ा अवगुण यह है कि वे दूसरों को तो अपने में मिलाते नहीं, और अपने में से निकाल जल्दी देते हैं। हिंदुओं की इस कमज़ोरी को सभी जान गए हैं, और सदा इससे लाभ उठाते हैं। दक्षिण में ईसाइयों के प्रचार का यह साधन था कि ईसाई पादरी रात में कुओं में रोटियाँ डाल देते थे, और जब गाँव के लोग सबेरे उठकर पानी पी लेते, तो पादरी लोग प्रसिद्ध कर देते कि इन्होंने ईसाइयों की रोटी का पानी पी लिया, और ये ईसाई हो गए। इस प्रकार गाँव के लोगों को बिना अपनी इच्छा के ईसाई होना पड़ता था। उनके ही भाई उनको घर से निकाल देते थे। मुसलमानी राज्य के समय और आजकल भी सैकड़ों हिंदू बिना इच्छा के मुसलमान हो जाते हैं। किसी ने भूल से किसी मुसलमान का छुआ पानी पी लिया, और झट उसे मुसलमान बनना पड़ा। उन्होंने हिंदुओं की ख़ुशामदें कीं, हाथ जोड़े, अपने सिरों को उनके पैरों पर रक्खा, और प्रार्थना की कि "भगवन्, दया करो, क्षमा करो, हमने भूल से जल पी लिया, या हमको धोखे से जल पिला दिया गया, या हमको झूठमूठ उड़ा दिया गया है। हमको हमारे प्यारे धर्म से अलग न करो, हम प्रायश्चित्त कर सकते हैं। हम व्रत रख सकते और उपवास कर सकते हैं। हम दंड देने को तैयार हैं। परंतु जिस धर्म में हमारे पूर्वज आदि सृष्टि से चले आते हैं, उससे आप हमको न निकालिए।" परंतु कौन सुनता था? यहाँ तो केवल एक ही उत्तर था—"चलो, हटो, तुम पतित हो गए। हमारा तुमसे क्या संबंध?" ऐसा उत्तर पाकर भी बहुत-सी हिंदू उपजातियाँ मुसलमान नहीं हुईं। आज भारतवर्ष में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है। प्रत्येक प्रांत में

ऐसे लोग विद्यमान हैं, जिनको लोग नौ-मुसलिम अर्थात् नए मुसलमान कहते हैं। यह सैकड़ों वर्ष से नौ-मुसलिम कहलाते चले आते हैं। इनको मुसलमानी मत और मुसलमानों के आचरणों से सदा घृणा रही है, इसलिये उनके नाम के साथ नौ (नया) शब्द अभी तक लगा चला आता है। वह मुसलमानों के समान गो-मांस नहीं खाते, न नमाज़ या रोज़ा रखते हैं, न चोटी कटाते और न चचेरी बहन का विवाह ही करते हैं। इनके बर्तन हिंदुओं के-से, इनके मकान हिंदुओं के-से, इनके कपड़े हिंदुओं के-से, इनके प्रणाम करने की रीति हिंदुओं की-सी, इनकी आकृति हिंदुओं की-सी, इनके नाम भी हिंदुओं के-से। फिर यह नौ-मुसलिम क्यों ? केवल इसलिये कि किसी समय, किसी कारण से इनका मुसलमान हो जाना प्रसिद्ध कर दिया गया। मुसलमानी राज्य के अत्याचारों के कारण ये घटनाएँ अनेक प्रकार से उत्पन्न हुईं। कहीं-कहीं तो हिंदुओं ने सफलता-पूर्वक इन अत्याचारों का सामना किया, और प्राण देना अच्छा समझा, परंतु धर्म देना अच्छा न समझा। कहीं-कहीं मुसलमानों ने हिंदुओं की निर्बलता से लाभ उठाकर लोगों को इस योग्य बना दिया कि वे हिंदुओं में न रह सकें, और बस, इतना ही करके छोड़ दिया। किसी को पानी पिला दिया, किसी को खाना खिला दिया इत्यादि। किसी-किसी ने बादशाहों के अत्याचारों से डरकर या उनको प्रसन्न करने के हेतु अपने को मुसलमान या नौ-मुसलिम प्रसिद्ध कर दिया। मुसलमान लोग समझते रहे कि हिंदू एक बार निकलकर फिर मिल ही नहीं सकता, इसलिये ये लोग एक-न-एक दिन अवश्य मुसलमान हो जायँगे। इधर नौ-मुसलिमों ने समझा कि हम मुसलमान तो हुए ही नहीं, केवल नाम प्रसिद्ध कर देने से न हमारा धर्म नष्ट होगा, और न बादशाह अत्याचार करेगा। इस प्रकार की नीति से अपना काम चलाते रहे, और अपने हिंदू भाइयों से प्रार्थना भी करते रहे कि हमको मिला लो, मुसलमानी मत हमको रुचिकर नहीं। परंतु इन बातों से क्या होता था ? हिंदुओं की नीतिज्ञता तो सैकड़ों वर्षों से इन्हें छोड़कर अन्य देशों को प्रायमान हो गई थी। यह अपनी पवित्रता के मद में ऐसे चूर थे कि इनको अपने-पराए की कुछ भी सुध न थी। यदि इनको थोड़ी-सी भी बुद्धि होती, तो उस समय, जब कि मुसलमानी राज्य का बल कम हुआ था या जब कभी ऐसा बादशाह हो जाता था, जो धर्म के विषय में अधिक आक्षेप न करता था, वे ऐसे भाइयों को मिला लिया करते, और हिंदुओं को वह क्षति न पहुँचती, जो आजकल पहुँच रही है। आगरा, एटा इटावा, मथुरा, फ़र्रुख़ाबाद, गिरगाँव, दिल्ली, भरतपुर आदि प्रांतों में इस समय लाखों हिंदू राजपूत हैं, जो नौ-मुसलिम या मलकाने कहलाते हैं। ये वस्तुतः हिंदू हैं, हिंदुओं से इनको प्रेम है, वे हिंदुओं में मिलना चाहते हैं। आगरा ज़िले के सरकारी गज़ेटियर में लिखा है—"धर्म-परिवर्तन किए हुए हिंदुओं के अनेकों वंशज इस ज़िले में सर्वत्र पाए जाते हैं, पर करौली ताल्लुक़े के छः गाँवों में इनकी विशेष बस्ती है। इसके बाद मथुरा, एटा और मैनपुरी ज़िलों में भी इनकी ख़ासी बस्ती है। ये मलकाना कहे जाते हैं। वे धर्म-परिवर्तन किए हुए राजपूतों की श्रेणी में रक्खे जाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों में वे अपनी भिन्न-भिन्न उत्पत्ति बताते हैं, पर इसमें संदेह नहीं कि उनके पूर्व-पुरुष उच्च वंश-संभूत राजपूत ज़मींदार थे। यद्यपि दुःख के साथ वे अपने को मुसलमान कहते हैं, पर पूछने पर अपनी पहली जाति ही बतलाते हैं, और मलकाना-नाम से पुकारा जाना नहीं चाहते। उनके नाम हिंदुओं के-से होते हैं, और वे हिंदू-मंदिरों में पूजा करते हैं, और उनके आपस के शिष्टाचार का शब्द राम-राम है। वे शिखा रखते हैं, अपनी ही जाति में ब्याह करते हैं, और मियाँ ठाकुर कहलाना चाहते हैं।"

ऐसी जाति को अपने से इतने दिनों अलग रखकर हिंदू-जाति ने वस्तुतः बड़ा पाप किया, और इस पाप का दुःख-रूपी विपाक उनको भोगना पड़ा।

ईश्वर वैयक्तिक अपराधों का इतना कड़ा दंड नहीं देता, जितना सामाजिक अपराधों का देता है ; क्योंकि व्यक्तिगत दोष एक व्यक्ति से संबंध रखते हैं, परंतु सामाजिक दोष समाज को कई पीढ़ियों तक पेलते हैं। वस्तुतः हिंदू-जाति को किसी अपराध ने इतना नहीं सताया, जितना इस अपराध ने हिंदू-जाति की सबसे बड़ी महत्ता उसका अहिंसक और दानी होना थी। एक हिंदू चींटी को मारना भी पाप समझता है। इसका आदर्श बताता है कि वह अपनी प्यारी-से-प्यारी चीज़ को दान कर दे, बहुधा हमने धनाढ्य हिंदुओं को स्त्री-दान करते देखा है। हम इस प्रथा को अच्छा नहीं समझते। परंतु इससे केवल एक बात स्पष्ट है। वह यह कि उनको यह सिखलाया गया है कि अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु को दान कर दो। शुद्धि के विषय में हिंदुओं ने इन दोनो महत्ताओं को विस्मृत कर दिया। जहाँ चींटी के सताने से परहेज़ किया, वहाँ मनुष्यों को सताते रहे। भला मलकाने राजपूतों को सताने का इससे अधिक क्या प्रमाण हो सकता था कि उनका धर्म उनसे छीना, उनको बिरादरी से बाहर किया, और उनके ख़ुशामद करने पर भी उनको सामाजिक समता प्रदान करने पर राज़ी न हुए। डाकू जान लेकर छोड़ता है, चोर माल चुराता है, क्रूर राजा बिना अपराध जुर्माना करता है। परंतु इनसे भी भीषण दंड यह है कि धर्म और समाज से न केवल किन्हीं विशेष व्यक्तियों को ही, किंतु उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी संतान को भी वंचित रक्खा जाय। हे हिंदू-जाति के वीर पुरुषो! कलेजे पर हाथ रखकर सोचो कि तुमने क्या किया। हम सरकारी गज़ेटियर की बुनियाद पर प्रमाणित कर चुके हैं कि मलकाने राजपूत हिंदू और हिंदू-धर्म को प्रिय समझते थे। ये अन्य हिंदुओं से सामाजिक अधिकार चाहते थे। कई बार इन्होंने उद्योग किया। सामाजिक समता चाहना पाप नहीं। वस्तुतः बिना सामाजिक समता के मनुष्य धर्म का ठीक पालन भी नहीं कर सकता। परंतु इनके राजपूत भाइयों ने इन्हें ऐसा करने से रोका। वह भी इन मलकानों की प्रशंसा की ही बात थी कि उन्होंने इतनी विपत्तियों में भी अपनी प्राचीन सभ्यता तथा धर्म के रहे-सहे चिह्नों को मिटने न दिया। परंतु समय में परिवर्तन हुआ। आर्य-समाज के शुद्धि के कार्य ने समस्त हिंदू-जाति को जगा दिया, लोगों का दृष्टि-कोण बदलने लगा। मलकानों ने भी बल दिया। उनको आशा हुई कि जब आर्य-समाज में जन्म के मुसलमान तक शुद्ध हो जाते हैं, तो हिंदू-जाति उनको क्यों नहीं अपनाएगी। यह मामला बहुत दिन तक क्षत्रियों के सम्मुख उपस्थित रहा। परंतु ३० अगस्त, १९२२ ई० की क्षत्रिय-उपकारिणी महासभा की प्रतिनिधि सभा की बैठक बनारस में हुई। अध्यक्ष का आसन माननीय राजा सर रामपालसिंह साहब के० सी० आई०, मेंबर स्टेट-कौंसिल, प्रेसीडेंट, ताल्लुक़ेदारान-सभा, अवध ने ग्रहण किया। उसमें यह प्रस्ताव पास हुआ कि जो राजपूत शाही समय में बलात् मुसलमान बनाए गए थे, परंतु उनके वंशज अब फिर अपने धर्म और बिरादरी में वापस आना चाहते हैं, उन्हें शुद्ध करके बिरादरी में मिला लिया जाय। फिर २१ दिसंबर, १९२२ को क्षत्रिय-प्रतिनिधि सभा की बैठक आगरा में लेफ़्टिनेंट राजा दुर्गानारायणसिंहजी तिरवा (फ़र्रुख़ाबाद)-नरेश के सभापतित्व में हुई, और उस समय क्षत्रिय-जनता की सम्मति जानकर मलकाने राजपूतों को बिरादरी में मिला लेने का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत किया गया। इसके बाद क्षत्रिय-महासभा का २९वाँ वार्षिकोत्सव ३१ दिसंबर को आगरे में श्रीमान् राजाधिराज सर नाहरसिंहजी के० सी० आई० ई० शाहपुराधीश की अध्यक्षता में हुआ। उसमें उपर्युक्त प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

इस स्वीकृति ही की देर थी। स्वीकृति पाते ही मलकाना राजपूतों को शुद्ध करना प्रारंभ हो गया। इच्छा तो दोनो ओर थी ही। केवल संस्कार की कसर थी। सो शुद्धि-सभा ने पूरी कर दी। श्रीस्वामी श्रद्धा-

नंदजी दिल्ली से, श्रीमहात्मा हंसराजजी लाहौर से, सनातन-धर्मोपदेशक श्री पं० गिरिधर शर्मा, सनातन धर्म-उपदेशक श्रीपं० दीनदयालुजी व्याख्यान-वाचस्पति, सनातनधर्म के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्रीस्वामी दयानंद, ये सब शुद्धि के कार्य में लग गए। हवन किए गए, जनेऊ दिए गए, और मलकाना राजपूतों को फिर अपनी बिरादरी में मिला लिया गया। समस्त हिंदू-जाति में इस शुद्धि से कितनी जागृति हुई है, उसके समाचार पत्रों में छपते ही रहते हैं। हम यहाँ केवल अभ्युदय के कुछ शब्द उद्धृत करते हैं—

"अब आशा प्रबल होती है कि हिंदू-जाति फिर एक बार शक्तिशाली होगी। हिंदू-भाइयों ने हिंदू-धर्म और हिंदू-जाति की लाज रख ली। जो साढ़े चार लाख राजपूत किसी समय में दबाव से या अपनी कमज़ोरी से मुसलमान हो गए थे, उनको शुद्ध कर गर्भ में ले लेने का हिंदू-जाति ज़ोरों से प्रयत्न कर रही है। वास्तव में जीती-जागती जाति का एक यह अचलंत प्रमाण है कि वह गैरों को अपना ले और अपना-सा बना ले।...... हिंदू-जाति का इतिहास यदि देखा जाए, तो यह छिपा नहीं कि कितने अवसरों पर इसने दूसरों को अपने गर्भ में ले लिया था। इसके विपरीत इतिहास की यह भी घोषणा है कि जिस दिन से हिंदू-जाति ने अपनी संख्या में इस तरह की वृद्धि का प्रयास छोड़ा, उसी दिन से उन्नति के मार्ग की ओर उसने पीठ हो गई। आज हिंदू-जाति को फिर अभिमान करने का अवसर प्राप्त है, क्योंकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि इन साढ़े चार लाख बिछुड़े हुए भाइयों के मिलने से, साथ ही ऐसे ही अन्य भाइयों को भी मिलाने से हमारा सौभाग्य-सूर्य शीघ्र ही गगन मंडल में चमकता हुआ दिखाई देगा। हम हिंदू-जाति को इस अवसर पर बधाई देते हैं।"

...... गंगाप्रसाद उपाध्याय (एम्० ए०)



पिस्ते का मुरब्बा



स्ते के दो-दो टुकड़े करके चाशनी में डाल दो या हरे और कच्चे पिस्ते के हरे छिलके पानी में उबालकर नर्म कर लो। फिर बराबर की चीनी और दुगना पानी मिलाकर आग पर इस क़दर पकाओ कि चाशनी में तार बँध जावे। उसके बाद उतारकर ठंडा कर लो।

हड़ का मुरब्बा

इसको हरीले एक डेग में पानी डाल ग्यारह दिन तक भिगोवे, और तीसरे दिन पानी बदलता रहे। बारहवें दिन निकालकर शहद की चाशनी में डाल दे।

छुहारे का मुरब्बा

छुहारों को रात-भर पानी में भिगोवे। सबेरे निकालकर शक्कर या शहद की चाशनी में डाल दे। मुरब्बा बन जावेगा।

गाजर का मुरब्बा

गाजर को थोड़ा जोश देकर उसके छिलके और बीच की कड़ी नस निकालकर साफ़ कर लो। फिर पोछकर और सुखाकर सफ़ेद खाँड की तीन तार की चाशनी में डाल दो, तीन रोज़ के बाद देख लो, अगर चाशनी पतली पड़ गई हो, तो फिर पकाकर उसे गाढ़ा कर लो। कुछ लोग गाजर दूध में पकाकर पोछकर घी में भूनकर फिर चाशनी में डालते हैं।

पेठे का मुरब्बा

पका हुआ पेठा लेकर छील डाले। फिर छोटे-छोटे टुकड़े करके चूने के पानी से धोकर रख दे। फिर थोड़ी देर बाद साफ़ पानी से धोकर कुछ सुखा डाले, जिसमें पानी सूख जाय। फिर मुरब्बा गोदनेवाले पंजे से, जो लोहे या पीतल का होता है, गोद डाले, और थोड़ा घी कड़ाई में डालकर भून ले। इसके बाद चीनी की चाशनी बनाकर उसमें डुबो दे, और अमृतबान में भरकर रख देवे।

कृष्णावतीदेवी श्रीवास्तव



शिशु की परिचर्या



त्री या माता के लिये यह आवश्यक है कि शिशु की प्राथमिक परिचर्या को भले प्रकार जाने। अन्यथा इस समय की अज्ञानता कई बार शिशु की मृत्यु का कारण सुगमता से बन सकती है।

उत्पन्न प्रजात शिशु चूँकि ऐसे स्थान से आ रहा होता है, जहाँ बाह्य वायुमंडल की वायु और भगवान् सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, अतः आवश्यक है कि कुछ समय तक उसे प्रकाश और वायु से बचाया जाय, जिससे सहसा वायु-परिवर्तन के विकार उस पर आक्रमण न कर सकें।

इसके लिये उसे गरम फलालेन में लपेटकर ऐसे स्थान पर रख देना चाहिए, जहाँ वायु का झोंका न आ सके। परंतु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि घर की वायु स्वच्छ रहे। अन्यथा शिशु का श्वास अशुद्ध वायु से भरा होगा।

परीक्षा—इसके पश्चात् उसके जीवित होने की परीक्षा करनी आवश्यक है। परंतु कई बार यह उत्पत्ति के समय ही कर ली जाती है। यह परीक्षा हृदय या नाभि-नाल में स्थित धमनी के स्पंदन से हो सकती है। शिशु का रोदन भी उत्तम चिह्न है। यह रोदन स्वाभाविक एवं प्राकृतिक होने के कारण आवश्यक है। इसका न होना शिशु की अस्वस्थता का संदेह करा देता है। कारण, गूँगे बच्चे प्रायः रुदन नहीं करते। इस रोने में वह श्वास की मात्रा में वायु ग्रहण करता है, जिससे फुफ्फुस फैलकर श्वास-क्रिया आरंभ कर देते हैं। यदि ऐसा न हो, तो उसे रुदन करने के लिये बाधित करना चाहिए।

नाभि-छेदन—तदनंतर नाभि-छेदन की समस्या आती है। नाभि-नाल काटी जाय, इससे पूर्व उसमें स्पंदन बंद हो जाना आवश्यक है। जब तक नाल में स्पंदन प्रतीत हो, नाल का छेदन नहीं करना चाहिए। अन्यथा रक्तस्राव होकर शिशु की मृत्यु का भय है।

नाल-छेदन के समय के उपकरण एवं हाथ, ड्रेसिंग आदि सबको स्टेरेलाइज़ एवं ऐंटीसेप्टिक कर लेना आवश्यक है। अन्यथा पाक होने का भय है, जिससे विष व्याप्त होकर अकाल में ही मृत्यु का कारण हो जाता है।

जब स्पंदन बंद हो जाय, तब (जो कि उत्पत्ति के कुछ मिनटों में हो जाती है) नाभि से दो इंच की दूरी पर एक शल्यकर्म की गाँठ (Surgical node) * बाँध देनी चाहिए, और दूसरा बंधन इससे तीन इंच की दूरी पर बाँध देना चाहिए, जिससे यदि कोई रक्तस्राव हो रहा हो, तो वह इसके कारण रुक जायगा। इसके पश्चात् नाल को नाभि के बंधन से ½ इंच की उँचाई पर तेज़ ऐंटीसेप्टिक चाक़ू या क़ैंची से काटकर उस पर प्रतिसारण चूर्ण (Dusting Powder) छिड़क देना चाहिए। काटते समय नाल को उँगली पर उठा लेना चाहिए। यदि रक्तस्राव होता प्रतीत हो, तो दूसरा बंधन बाँध देना चाहिए।

श्वास—चूँकि नाभि-नाल के काटने से शिशु का जीवन माता से सर्वथा पृथक् हो जाता है, अतः नाभि-नाल के काटने से पूर्व श्वास-प्रश्वास-क्रिया को सुचारु रूप से जाग्रत कर देना आवश्यक है। इसके लिये श्वास-मार्ग को पूर्ण स्वच्छ करना चाहिए। मुख एवं प्रणालियाँ श्लेष्मा से आवृत होती हैं, जो कि गर्भावस्था में होनी आवश्यक हैं। अन्यथा शिशु अन्य अनावश्यक पदार्थों का पान कर सकता है। अतः भगवान् ने उसके अवरोध के लिये मुख, नाक और गले में श्लेष्मा संचित कर दी है।

श्लेष्मा को निकालने के लिये उँगली पर रुई लपेटकर श्लेष्मा को मुख, गले से निकाल देना चाहिए। अथवा नाड़ी-यंत्र (cathter) के द्वारा चूस लेना चाहिए। यदि इससे भी श्वास-क्रिया आरंभ न हो, तो अन्य उपायों का अवलंबन करना चाहिए अथवा शिशु के ऊपर ठंडा पानी डालना चाहिए, एवं नितंब तथा पीठ पर हलके-हलके थप्पड़ लगाने चाहिए, जिससे शिशु में रुदन आरंभ हो जायगा और श्वास-प्रश्वास चलने लगेगा। *

स्वच्छता—शिशु की उत्पत्ति के समय उसके संपूर्ण शरीर पर एक चिकना पदार्थ लगा रहता है, जिसको "वर्नीक्स केजी ओस्सा" कहते हैं। यह शरीर की अंतिम मासों में गर्भाशय-जल में पड़े मल-मूत्रादि से रक्षा करता है। यह पदार्थ किसी में अधिक मात्रा में होता है, और किसी में कम। इसे दूर कर देना आवश्यक है।

शिशु के शरीर पर जैतून का तेल, वैसलीन या स्नानरज चूर्ण मलकर उसे धात्री इस प्रकार उठावे, जिसमें बायाँ हाथ सिर और पीठ पर रहे, एवं दाहना हाथ घुटनों के नीचे। स्नान के लिये टब में बिठा देने से पूर्व सिर, माथा और चेहरा पानी से (कवोस्ता जिसका ताप-परिमाण ९९ हो। यह तापोष्णिमा अभ्यास के द्वारा भी जानी जा सकती है) धो देना चाहिए। टब में पानी ओछा रखना चाहिए, जिससे नाल भीगे नहीं। टब में पीठ और सिर बाएँ हाथ पर रखना चाहिए, अथवा टब के सहारे बैठा देना चाहिए। फिर दाहना हाथ निकालकर कोमल मलमल के साथ (जिसमें साबुन लगा हो) इस प्रकार मालिश करे, जिससे त्वचा को हानि न पहुँचने पावे। शिशु को पानी में ग़ोता नहीं देना चाहिए। उत्तम हो कि दो पानी में स्नान दिया जाय। कारण, प्रथम पानी चिकनाई के कारण

---

* Surgical Node—यह १½ गाँठ कही जाती है। उत्तम है कि नाल का छेदन सुई के द्वारा करके गाँठ बाँधनी चाहिए। यदि यह संभव न हो, तो ऊपर से ही बाँध सकते हैं।

* खल्विमानि कर्माणि क्रियमाणे जातमात्रस्यैव कुमारस्य कार्याणि इतानि कर्माणि भवंति। तद्यथा अश्मनोः संघट्टनं, कर्णयोर्मूले शीतोदकेनोष्णोदकेन वा मुखपरिषेकः। तथा संक्लेशविहितान् प्राणान् पुनर्लभेत।

ततः प्रत्यागतप्राणं प्रकृतिभूतमभिसमीक्ष्य, स्नानोदकगुरुणाभ्यामुपपादयेत्। अथास्य ताल्वोष्ठजिह्वा कंठप्रमार्जनमारभेत। अंगुल्या सुपरिलिखित नखया।

ख़राब हो जाता है, अतः दूसरे पानी में स्नान देना चाहिए। स्नान के पश्चात् शिशु की त्वचा का ध्यान रखकर उसे तौलिए के द्वारा पूर्ण ख़ुश्क कर देना चाहिए। विशेषतः जाँघ, घुटने, बग़ल, गर्दन के नीचे।

स्नान के पीछे आँखों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस समय की त्रुटि के कारण बहुत-से अक्षि-रोग शिशु में हो जाते हैं। इस समय की स्वच्छता आँखों को कई भावी रोगों से बचा देती है। विशेषतः औपसर्गिक जन्य संक्रमणों (Gonoinfection) से।

आँख की स्वच्छता के लिये विलायती रुई को टंकणघोल (१ औंस में १० ग्रेन बोरिक-एसिड) में भिगोकर नाक से बाहर की ओर आँख को साफ़ करें। पिचु को एक बार ही प्रयोग करना चाहिए। दूसरी बार के लिये दूसरा पिचु व्यवहार करे। फिर कास्टिक लोशन १% का आँख में एक-एक बूँद डाल देना चाहिए। इस विधि (Cread's method) से आँख कुछ दिनों को लाल तो अवश्य हो जायगी, किंतु शिशु बहुत-से अक्षि-रोगों से बच जायगा। यह लालिमा कुछ समय के बाद स्वयं चली जायगी। शिशु की आँख पर घी या मक्खन नहीं लगाना चाहिए। इससे मक्खियाँ बैठकर अंडे दे देती हैं, जिससे अक्षिशोथ हो जाता है।

निरीक्षण—आवश्यक कर्मों को समाप्त करके शिशु का निरीक्षण आवश्यक है। कारण, यदि इस समय कोई उत्पत्तिकालीन विकार हो, तो वह सुगमता से (चिकित्सक की सहायता से) हटाया जा सकता है। यथा अपूर्ण गुदा का होना। अथवा कठिन प्रसव में कहीं अस्थिभंग आदि हो गया है, तो वह भी ठीक किया जा सकता है। *

* सुपरिक्षालितोपधानकार्पासपिचुमत्या प्रथमं प्रमार्जितस्यास्य च शिरस्तालूकार्पासपिचुना स्नेहगर्भेन प्रतिच्छादयेत। ततो ह्यस्या अनन्तरं कार्यं सैन्धवोपहितेन सर्पिषा प्रच्छर्दनम्।

विश्राम—इन सब कार्यों से जहाँ धात्री को आराम की आवश्यकता प्रतीत होगी, वहाँ शिशु भी इस परिश्रम से थक जायगा। अतः उसे नींद आना स्वाभाविक है। इसलिये उसे आराम देने के लिये एक साधारण बिस्तर पर (जो न तो बहुत गर्म हो, और न बहुत ठंडा, फलालेन उत्तम है) लेटा देना चाहिए। नींद सम्यक् प्रकार आवे, इसके लिये शिशु को लपेटकर (उत्तम हो कि उसे इस प्रकार लपेटें कि टाँगें संकुचित रहें, परंतु जंघाएँ कोष्ठ पर न आवें, इसके लिये हलका बंध दे सकते हैं। अथवा एक वस्त्र में, जोकि दो थंभों में झूल रहा हो, लिटा दें। भार के द्वारा वस्त्र नीचे झुका रहेगा। यह प्रथा गुजरात प्रांत में विशेष रूप से है।) सुला देना चाहिए। जिस फलालेन में लपेटना हो, उसे शीतदेश या शीतऋतु में थोड़ा-सा गरम कर लेना चाहिए। विश्राम देने के लिये धात्री शिशु को अपने हाथों पर भी आराम से रख सकती है। इसमें धात्री का बायाँ हाथ सिर के नीचे, घुटने पीठ और टाँगों को सहारा देते रहेंगे। घुटनों के अभाव में वाम हाथ पर सिर, उँगलियों पर पीठ एवं दक्षिण हाथ घुटनों के नीचे रहना चाहिए। वाम हाथ दक्षिण हाथ से ऊँचा रखने से शिशु का सिर थोड़ा उठा रह सकता है।

अत्रिदेव गुप्त

नाड्यास्तस्याः कल्पनविधिमुपदेश्यामः—नाभिबन्धात् प्रभृति हित्वाष्टाङ्गुलमभिज्ञानं कृत्वा, छेदनावकाशस्य, द्वयोरन्तरयोः शनैर्गृहीत्वा तीक्ष्णेन रौक्मराजतायसानां छेदनानामन्यतमेनार्द्धधारेन (कुशपत्रेण वा लेखक) छेदयेत्। तामग्रे सूत्रेणोपवध्य कंठे च स्य शिथिलमवसृजेत्।

असम्यक् कल्पने हि नाड्या आयामव्यायामोत्तुण्डिका, पिण्डलिका, विनामिका, वितम्भिका, व्याधिभ्यो भयम्। सर्वगन्धेन स्नानं दद्यात्।

—आत्रेय

देखिए सुश्रुत, १० मं० शा०



जन्म	श्रीमती ऊर्मिलादेवी शास्त्री	जेल-यात्रा
अगस्त, १९०९	(मेरठ के महिला-सत्याग्रह-दल की कप्तान)	१८ जुलाई, १९३०

[आपको पिकेटिंग-आर्डिनेंस में ६ मास की सज़ा मिली है। आपका अंतर्जातीय विवाह अभी कुछ ही महीने हुए पं० धर्मेंद्रनाथजी, शास्त्री, एम्० ए०, तर्कशिरोमणि से हुआ।]

"मेरे पिताजी मुझे काश्मीर बुला रहे हैं, पर मेरा काश्मीर तो जेल में है, जिसके अंदर पार्थिव जगत् की सबसे सुंदर विभूति—गांधी—बंद है।"—ऊर्मिला

Ganga Fine Art Press, Lucknow.



श्रीमती इंदुमती गोयनका

[आयु १९ वर्ष । कलकत्ते के सुप्रसिद्ध बाबू केशवदेवजी गोयनका की धर्म-पत्नी । बंगाल की सर्व-प्रथम तथा मारवाड़ी जाति की एक-मात्र राजवंदिनी । पुलिस को भड़काने के अपराध में ६ मास की आपको सज़ा हुई है ।]



कुमारी रामेश्वरीदेवी गोयल बी० ए०

[आपने अभी बी० ए० की परीक्षा योग्यता-पूर्वक पास की है । आप अच्छी वक्ता हैं, और सुन्दर की अपनी कवि भी ।]

गंगा-पुस्तकमाला की सर्वोत्कृष्ट और सचित्र पुस्तकें

१. उपन्यास

अवला (सचित्र)—लेखक, श्रीरमाशंकर सक्सेना; मूल्य १), १॥)

कर्म-फल (सचित्र)—मूल-लेखिका, मेरी कॉरेली; अनुवादक, प्रोफ़ेसर बैजनाथ कोटी; मूल्य १॥), २)

गिरिबाला (सचित्र)—लेखक, पं० व्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट; मूल्य १), १॥)

जब सूर्योदय होगा (सचित्र)—मूल-लेखक, पं० भास्कर विष्णु फड़के बी० ए०; अनुवादक, पं गोपी-वल्लभ-शालग्राम उपाध्याय; मूल्य १), १॥)

जुझार तेजा (सचित्र)—लेखक, मेहता लज्जाराम शर्मा; मूल्य ॥), १)

पतन (सचित्र)—लेखक, बाबू भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १॥), २)

पवित्र पापी (सचित्र, एक रूसी उपन्यास का अनुवाद)—अनुवादक, पं० व्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी० और कविराज विद्याधर विद्यालंकार; मूल्य ३), २॥)

प्रेम-परीक्षा—मूल-लेखिका, मेरी कॉरेली; अनुवादक, श्रीपशुपाल वर्मा; मूल्य ॥=), १=)

बहता हुआ फूल (सचित्र)—मूल-लेखक, बाबू चारु-चंद्र बंद्योपाध्याय बी० ए०; अनुवादक, पं० रूप-नारायण पांडेय कविरत्न; मूल्य २॥), ३)

बिदा (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०; मूल्य २॥), ३)

मा (दो भाग)—लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'; मूल्य ३), ४)

रंगभूमि (दो भाग)—लेखक, श्रीयुत प्रेमचंदजी; मूल्य ४), ६)

विचित्र योगी—लेखक, श्रीद्वारकाप्रसाद मौर्य बी० ए०, एल-एल० बी०; मूल्य १), १॥)

विजया (सचित्र)—मू०-ले०, श्रीशरच्चंद्र चट्टोपाध्याय; अ०, पं० रूपनारायण पांडेय; मूल्य १॥), २)

सीधे पंडित—ले०, ठा० प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य १॥)

संसार-रहस्य अथवा अधःपतन—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य १॥), २)

सौ अजान और एक सुजान—लेखक, श्रीयुत पं० बालकृष्ण भट्ट; मूल्य १), १॥)

हृदय की प्यास (सचित्र)—लेखक, आयुर्वेदाचार्य चतुरसेन शास्त्री; मूल्य १॥), २)

हृदय की परख—लेखक, उपर्युक्त; मूल्य १)

गढ़-कुंडार—ले०, बाबू वृंदावन वर्मा; मूल्य २॥), ३)

केन—लेखक, श्रीकृष्णानंद गुप्त; मूल्य १)

पाप की ओर—लेखक, अनुवादक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०; मूल्य १), १॥)

मृत्युंजय—लेखक, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी; मूल्य ॥), १)

२. गल्प और कहानियाँ

अद्भुत आलाप—लेखक, हिंदी-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; मूल्य १), १॥)

अश्रुपात (सचित्र)—लेखक, ख़्वाजा हसन निज़ामी; अनुवादक, पं० श्रीराम शर्मा बी० ए०; मूल्य १), १॥)

चित्रशाला (सचित्र, दो भाग)—लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'; मूल्य ३), ४)

जासूस की डाली (सचित्र)—लेखक, बाबू गोपालराम गहमरी, जासूस-संपादक; मूल्य १॥), २)

तूलिका (सचित्र)—लेखक, श्रीविनोदशंकरजी व्यास; मूल्य १), १॥)

नंदन-निकुंज—लेखक, स्व० श्रीचंडीप्रसादजी बी० ए० 'हृदयेश'; मूल्य ॥), १)

नाट्यकथाऽमृत (सचित्र)—लेखक, प्रिंसिपल चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०; मूल्य १), १॥)

प्रेम-गंगा (सचित्र)—अनुवादक, स्व० पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, संपादक "हिंदूपंच"; मूल्य १), १॥)

प्रेम-प्रसून—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी; मूल्य १=), सजिल्द १॥=)

प्रेम-द्वादशी (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी; मूल्य १), १॥)

मधुपर्क—लेखक, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी; मूल्य १॥)

मंजरी (सचित्र)—अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १), १॥)

३. नाटक

आहुति अथवा जयपाल—अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय; मूल्य १), १॥)

कीचक—लेखक, श्रीभगवन्नारायण भार्गव बी० ए०, एम्० एल्० सी०; मूल्य १), १॥)

कृष्णाकुमारी (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १), १॥)

खाँजहाँ (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १=), १॥=)

जयद्रथ-वध—लेखक, पं० गोकुलचंद्र शर्मा बी० ए०; मूल्य ॥=), १=)

मिलने का पता—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

दुर्गावती (सचित्र)—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

पतिव्रता (सचित्र)—अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य १।=), १॥।=)

पूर्वभारत—लेखक, हिंदी के धुरंधर विद्वान् "मिश्रबंधु" ; मूल्य ॥।=), १।=)

प्रबुद्ध यामुन—लेखक,श्रीवियोगी हरि ; मूल्य १), १।)

बुद्ध-चरित्र (सचित्र)—अनुवादक, सुधा-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥।), १।)

वरमाला (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत गोविंदवल्लभ पंत ; मूल्य ॥=), १=)

वेणी-संहार—लेखक, पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ॥=), १=)

सौभाग्य-लाड़ला नेपोलियन (सचित्र)—अनुवादक, श्रीठाकुर लक्ष्मणसिंह वकील ; मूल्य ॥), १)

उत्सर्ग—लेखक, श्रीचतुरसेन शास्त्री ; मूल्य =), ॥)

समाज—लेखक, श्रीघनानंद बहुगुण एम्० ए० ; मूल्य ॥।=), १।=)

४. व्यंग्य, हास्य और प्रहसन

अचलायतन—मूल-लेखक, श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ; अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय ; मूल्य ॥), १)

ईश्वरीय न्याय—लेखक, प्रोफ़ेसर श्रीरामदास गौड़ एम्० ए० ; मूल्य ॥)

प्रायश्चित्त-प्रहसन—लेखक, पं० रूपनारायण पांडेय ; मूल्य ≈)

मध्यम व्यायोग—लेखिका, श्रीमती सुशीलादेवी जायसवाल ; मूल्य =)

मूर्ख-मंडली—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य ॥=), १=)

मिस्टर व्यास की कथा—लेखक, स्वर्गीय पंडित शिवनाथजी शर्मा बी० ए० ; मूल्य २॥), ३)

रावबहादुर—मूल-लेखक, मौ० मौलियर ; अनुवादक, पं० लक्ष्मीप्रसाद पांडेय ; मूल्य ॥।), १।)

लवड़धोंधों—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य ॥।=), १।=)

विवाह-विज्ञापन (सचित्र)—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

५. काव्य

आत्मार्पण (सचित्र)—लेखक, द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेंद्र" ; मूल्य ॥।), १।)

उषा (सचित्र)—लेखक, स्व० श्रीशिवदास गुप्त "कुसुम" ; मूल्य ॥=), १=)

लतिका—लेखक, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी ; मूल्य १), १॥)

पराग (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य १), १)

परिमल—लेखक, श्रीसूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ; मूल्य १।), २)

पद्य-पुष्पांजलि—लेखक, पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० और पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ; मूल्य १।), २)

भारत-गीत—लेखक, कवि-सम्राट्-स्व० पं० श्रीधर पाठक ; मूल्य ॥।=), १।=)

रति-रानी—लेखक, 'सुहृदत्रय' ; मूल्य १॥), २)

६. साहित्य

निबंध-निचय—लेखक, हिंदी के उत्कृष्ट समालोचक पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ; मूल्य १), १॥)

विश्व-साहित्य—लेखक, सरस्वती-संपादक श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी बी० ए० ; मूल्य १।), २)

साहित्य-सुमन—लेखक, स्व० पं० बालकृष्ण भट्ट ; मूल्य ॥=), १=)

साहित्य-संदर्भ—लेखक, आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य १॥), २)

सौंदरनंद-महाकाव्य—प्रणेता, अध्यापक रामदीन पांडेय एम्० ए० ; मूल्य ॥), १)

संभाषण—लेखक, पं० दुलारेलालजी भार्गव ; मूल्य ।), ॥)

हिंदी—लेखक, लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिंदी लेक्चरार पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य ॥=), १=)

७. समालोचनाएँ

देव और बिहारी—लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १॥), २)

भवभूति—अनुवादक, हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० ज्वालादत्त शर्मा ; मूल्य ॥=), १=)

हिंदी-नवरत्न—लेखक, हिंदी-संसार के धुरंधर समालोचक "मिश्रबंधु" ; मूल्य ४॥), ५)

८. जीवन-चरित्र

अयोध्यासिंह उपाध्याय ... ≈)

केशवचंद्रसेन—लेखक, भारतीय हृदय ; मूल्य १), १॥)

कारनेगी और उनके विचार—लेखक, श्रीउमराव सिंह कारुणिक ; मूल्य ॥=)

प्राचीन पंडित और कवि—लेखक, आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ; मूल्य ॥।=), १।=)

वंकिमचंद्र चटर्जी—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न ; मूल्य १), १॥)

सम्राट् चंद्रगुप्त—लेखक, पं० बालमुकुंद वाजपेयी ; मूल्य ।)

सुकवि-संकीर्तन (सचित्र)—लेखक, साहित्य-मर्म-

थी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; मूल्य १।), १॥।)

राष्ट्रपति जवाहिर मूल्य ।।=)

९. इतिहास

इँगलैंड का इतिहास (तीन भाग, सचित्र)—लेखक, डॉ० प्राणनाथजी विद्यालंकार पी० एच० डी० ; मूल्य ३।॥), ४।)

१०. अर्थशास्त्र

भारतीय अर्थशास्त्र (दो भाग)—लेखक, भूतपूर्व प्रेम-संपादक बाबू भगवानदासजी केला ; मूल्य २॥), ३॥)

विदेशी विनिमय—लेखक, श्रीदयाशंकर दुबे एम० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य १), १॥)

११. कृषि

उद्यान (सचित्र)—लेखक, श्रीशंकरराव जोशी एग्रिकल्चरल ऑफ़िसर ; मूल्य १=), १॥=)

किसानों की कामधेनु (सचित्र)—लेखक, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ; मूल्य ।=)

कृषिमित्र—लेखक, पं० गंगाप्रसाद पांडेय एल्० एजी०, सुपरिंटेंट एग्रिकल्चर ; मूल्य ।–)

१२. स्वास्थ्य और चिकित्सा

तात्कालिक चिकित्सा (सचित्र)—लेखक, बाबू बाजबहादुरलाल ; मूल्य १), १॥)

स्वास्थ्य की कुंजी—लेखक, डॉक्टर बाबूराम गर्ग ; मूल्य १।) १॥।)

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान—लेखिका, श्रीमती हेमंत-कुमारी भट्टाचार्य ; मूल्य ॥=)

संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा—लेखिका, श्रीमती हेमंत-कुमारी भट्टाचार्य ; मूल्य ॥=)

१३. वैज्ञानिक

भूकंप—लेखक, बाबू रामचंद्र वर्मा ; मूल्य ।॥=)

मनोविज्ञान—लेखक, प्रिंसिपल पं० चंद्रमौलि सुकुल एम० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ॥), १।)

१४. नवयुवकोपयोगी

एशिया में प्रभात—मूल-लेखक, पाल रिचर्ड ; अनुवादक, श्रीठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

किशोरावस्था (सचित्र)—लेखक, गोपालनारायण सेन-सिंह बी० ए० ; मूल्य ॥=), १=)

जीवन का सद्व्यय—अनुवादक, श्रीहरिभाऊ उपाध्याय, संपादक त्यागभूमि ; मूल्य १), १॥)

पाली-प्रबोध—लेखक, पं० आद्यादत्तजी ठाकुर एम० ए०, काव्यतीर्थ ; मूल्य १)

भारत में बाइबिल (दो भाग)—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए० ; मूल्य प्रत्येक भाग १।), २)

भिखारी से भगवान्—अनुवादक, ठाकुर बाबू नंदनसिंह बी० ए० ; मूल्य १), १॥)

मदर-इंडिया का जवाब—लेखिका, श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम० ए० ; मूल्य १), १॥)

मुक्ति-मंदिर—लेखक, साधु टी० एल० वास्वानी; अनुवादक प्रोफ़ेसर बेनीमाधव अग्रवाल ; मूल्य ॥।=), १।=)

सुख तथा सफलता मूल्य १)

हिंदू-जीवन का रहस्य—लेखक, देवता-स्वरूप भाई परमानंदजी एम० ए० ; मूल्य ॥।=), १।=)

नीति-रत्नमाला मूल्य १)

१५. योग

कर्म-योग—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

जीवन-मरण-रहस्य—लेखक, ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ।=)

प्राणायाम—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ।॥=), १।=)

योग की कुछ विभूतियाँ—लेखक, ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ॥), १।)

योग-शास्त्रांतर्गत धर्म—लेखक, ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

योगत्रयी—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य ॥), १)

राजयोग—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य १॥), २)

हठयोग—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए० ; मूल्य १=), १॥=)

योग-दर्पण—लेखक, लाला कन्नोमलजी एम्० ए० ; मूल्य १), १॥)

महिला-माला की मनोहर मणियाँ

कमला-कुसुम (सचित्र)—लेखिका, श्रीमती गिरिजादेवी ; मूल्य ॥।)

गुप्त संदेश (दो भाग)—ले०, डॉ० युद्धवीर-सिंह ; मूल्य १)

जच्चा—लेखक, कविराज श्रीप्रतापसिंह वैद्य, हिंदू-विश्वविद्यालय के आयुर्वेद-विभाग के सुपरिंटेंट ; मूल्य ॥।)

देवी पार्वती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ।॥), १।)

देवी सती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥), १)

देवी द्रौपदी (सचित्र)—लेखक, कविवर श्रीराम-चरितजी उपाध्याय ; मूल्य ।=)

नल-दमयंती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥), १)

नारी-उपदेश—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।)

पत्रांजलि—मूल-लेखक, श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती ; अनुवादक, पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ; मूल्य ।=)

भारत की विदुषी नारियाँ—संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी ; मूल्य ।)

भारतीय स्त्रियाँ—अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा ; मूल्य १।), २)

महिला-मोद—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ।=)

लक्ष्मी (सचित्र)—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।)

वनिता-विलास (सचित्र)—लेखक, भूतपूर्व सरस्वती-संपादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ।)

सती सावित्री (सचित्र)—लेखक, अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि' ; मूल्य ।=), ।॥=), १=)

सती सीता (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य १।), २)

देवी शकुंतला—लेखक, श्रीहरिप्रसाद द्विवेदी ; मूल्य ॥=), ॥।=)

बाल-विनोद-वाटिका के सुंदर सुमन

इतिहास की कहानियाँ (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥)

कागज़ी करतब (सचित्र) श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी० मूल्य लगभग ॥)

कीड़े-मकोड़े (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ।)

खिलवाड़ (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ।)

खेल-पचीसी (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रतिपालसिंह ; मूल्य ।)

गधे की कहानी (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मू० ॥=), १=)

दिलावर सियार (सचित्र) मूल्य ॥)

नटखट पाँड़े (सचित्र)—लेखक, श्री पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य १), १॥)

परोपकारी हातिम (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य १), १॥)

बालनीति-कथा (दो भाग)—मूल-लेखक श्रीयुत ए० बी० ध्रुव एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ; अनुवादक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य २॥), ३॥)

बाल-विलास (सचित्र)—लेखक, श्रीगुरुलाल... मूल्य ।=), ॥=)

भगिनी-भूषण—लेखक, स्व० श्रीबाबू गोपालनारायणसेन-सिंह बी० ए० ; मूल्य =)

भगवान् गौतम बुद्ध (सचित्र) मूल्य ।-), ॥)

भारत के सपूत (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥), १)

भू-कवच (सचित्र)— मूल्य लगभग १)

मर्यादाराम की कहानियाँ (सचित्र)— मूल्य ॥=), १=)

लड़कियों का खेल (सचित्र)—लेखक, स्व० श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।=)

विचित्र वीर (सचित्र)—लेखक, श्रीजगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ; मूल्य ॥।), १॥)

सुघड़ चमेली (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत रामजीदास भार्गव ; मूल्य =)

सुनहरी नदी का राजा (सचित्र) मूल्य ॥), १)

हँसी-खेल (सचित्र)—ले०, श्रीजगमोहन 'विकसित' मूल्य ॥=), १=)

युधिष्ठिर—लेखक, श्रीकृष्णगोपाल माथुर ; मूल्य ॥।), १॥)

सुकवि-माधुरी-माला के अनुपम रत्न

मतिराम-ग्रंथावली—संपादक, पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य २॥), ३)

मिश्रबंधु-विनोद (तीन खंड)—लेखक, पं० गणेशबिहारी मिश्र, माननीय रा० ब० पं० श्यामबिहारी मिश्र एम्० ए० और रा० ब० पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए० ; प्रथम खंड मूल्य २), ३॥)

द्वितीय खंड " २), २॥)

तृतीय खंड " २), २॥)

बिहारी-रत्नाकर—प्रणेता, ब्रजभाषा-साहित्य के पारदर्शी विद्वान् बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए० ; मू० ४)

गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहक

बनने से

माला की पुस्तकों पर २५) सैकड़ा तथा बाहरी पुस्तकों पर एक आना रुपया कमीशन मिलेगा।

ग्राहक बनकर आप न केवल पुस्तकों से लाभ उठाएँगे, वरन मातृ-भाषा के प्रचार में भी हमारा हाथ बटाएँगे।

आज ही ॥) प्रवेश-फ़ीस देकर स्थायी ग्राहक बन जाइए।

नियम नीचे दिए हुए हैं—

(१) स्थायी ग्राहक बनने की प्रवेश-फ़ीस सिर्फ़ ॥) है।

(२) पुस्तकें, प्रकाशित होते ही—१५ दिन पहले दाम आदि का "सूचना-पत्र" * भेज देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को, २५) सैकड़ा कमीशन काटकर, वी० पी० द्वारा, भेज दी जाती हैं। ५-६ रुपए की ४-५ पुस्तकें एक साथ भेजी जाती हैं, जिसमें डाक-ख़र्च में बचत रहे।

(३) जो पुस्तकें हमारी प्रकाशित अन्य मालाओं में निकलती हैं, उन पर स्थायी ग्राहकों को २५) सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

(४) स्थायी ग्राहक जिस पुस्तक को चाहें, लें; जिस पुस्तक को न चाहें, न लें; यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। वे चाहे जिस पुस्तक की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जब, ऊपर-लिखे कमीशन पर मँगा सकते हैं।

(५) बाहर की—हिंदुस्थान-भर की—सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को -) रुपया कमीशन पर मिलती हैं।

(६) स्थायी ग्राहक ऑर्डर देते समय अपना ग्राहक-नंबर अवश्य नोट कर दिया करें, जिसमें उनके ऑर्डर पर कमीशन कटने में भूल न हो।

(७) स्थायी ग्राहक की भूल से वी० पी० लौट आने पर डाक-ख़र्च उनको ही देना पड़ता है, और दो बार वी० पी० लौट आने पर स्थायी ग्राहकों की सूची से उनका नाम काट दिया जाता है।

---

* नई पुस्तकों में से यदि कोई या सब न लेनी हों, अथवा और कोई पुस्तकें मँगानी हों, तो 'सूचना-पत्र' मिलते ही हमें पत्र लिखना चाहिए, जिसमें इच्छानुसार काररवाई कर दी जा सके। १५ दिन के अंदर कोई सूचना न मिलने पर सब नई पुस्तकें वी० पी० द्वारा भेज दी जाती हैं।

बिल्कुल नई और उत्कृष्ट पुस्तकें

१. गढ़ कुंडार—लेखक, श्रीवृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०। यह सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारत के इतिहास के निर्माता चंदेलों, पँवारों, पड़िहारों और खंगारों के पारस्परिक संघर्ष से ओत प्रोत, मध्यकालीन भारत की राजनीतिक चालों से भरा हुआ, आल्हा, ऊदल की जन्मभूमि बुंदेलखंड का एक-मात्र ऐतिहासिक उपन्यास है। इस प्रकार रोमांटिक प्रेमगाथा-पूर्ण, वीरत्वमय, दिल बहला देनेवाला, मनोरंजक, मौलिक उपन्यास अब तक हिंदी-साहित्य में एक भी नहीं है।

इसे पढ़कर आप इँगलैंड और फ्रांस के प्रसिद्ध औपन्यासिकों—स्काट और डूमाज—को भूल जायँगे। मूल्य २॥), सजिल्द ३)

२. स्वास्थ्य की कुंजी—लेखक, डॉक्टर बाबूराम गर्ग। हिंदोस्तान बीमारों का देश बनता जा रहा है। ग़रीबी तो जैसी कुछ है, सो है ही; बीमारी का दौरदौरा इस देश में ग़ज़ब का है। जिसे देखिए, बीमार। नौजवानों की हालत तो और भी गई-बीती है। बिना स्वास्थ्य-सुधार के भविष्य में स्वतंत्र भारत के लिये कोई आशा नहीं रह जाती। स्वास्थ्य-सुधार की इसी कठिन समस्या को सुलझाने के लिये यह कुंजी तैयार कराई गई है। अवश्य पढ़िए। मूल्य १), सजिल्द १॥)

३. समाज—लेखक, श्रीवनानंद बहुगुणा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। सामाजिक अत्याचारों की करुण-कथा यदि आप जानना चाहते हैं, यदि अछूतों की भयंकर दशा का आप परिचय लेना चाहते हैं, यदि आप सच्चे समाज-सुधार के पक्षपाती हैं, तो अवश्य आप इस नाटक को एक बार पढ़िए। मूल्य ॥=), सजिल्द १।=)

४. पाप की ओर—मूल-लेखक, श्रीजूनइचिरोटानाज़ाकी। अनुवादक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०। जापान ने अपनी थोड़े दिन की उन्नति से ही संसार को चकित कर दिया है, वह अब एशिया का इँगलैंड कहलाता है। संसार की सब शक्तियाँ उससे डरती हैं। उसकी इस उन्नति का कारण उसकी सर्वतोमुखी क्रांति है। न केवल विज्ञान, व्यापार और सेना-शक्ति में ही उसने क्रांति की। अपितु अपने रहन-सहन और रीति-रिवाजों में भी उसने आश्चर्यजनक परिवर्तन कर डाला है। इस महान् परिवर्तन का श्रेय उसके श्रेष्ठ और नवीन साहित्य को है। संसार के साहित्य में जापानी साहित्य का बहुत ऊँचा स्थान है। जापानी पुस्तकें आज संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में अनूदित हो रही हैं। अब तक केवल हिंदी ही एक ऐसी भाषा थी कि जिसने जापानी साहित्य का आदर नहीं किया था।

"पाप की ओर" हिंदी में अनूदित सबसे पहला जापानी उपन्यास है। इसके लेखक संसार-प्रसिद्ध पुरुष हैं। अनुवादक भी हिंदी के सफल औपन्यासिक श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव हैं, जिनके विदा-नामक उपन्यास का हिंदी-साहित्य में काफ़ी आदर हो चुका है; अतएव पुस्तक के सर्वोत्तम होने में कोई संदेह नहीं। जिन्हें उच्च कोटि के औपन्यासिक साहित्य से प्रेम है, उन्हें "पाप की ओर" एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १), सजिल्द १॥)

५. मृत्युंजय—लेखक, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी। अपने ढंग का यह एक निराला उपन्यास है। गुलाबजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा इसमें खूब विकसित हुई है। मनोरंजन और शिक्षा का जीता-जागता चित्र है। देश-भक्ति के लिये निर्भय हो मृत्यु का आलिंगन करना यदि सीखना हो, तो एक बार मृत्युंजय देश-भक्तों की वीरगाथा को अवश्य पढ़ जाइए। मूल्य ॥), सजिल्द १)

हृदय की परख—लेखक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक प्रोफ़ेसर चतुरसेन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य। भला ऐसा कौन हिंदी-साहित्य-सेवी होगा, जो शास्त्रीजी की चित्ताकर्षक रचनाओं से परिचित न हो। शास्त्रीजी ने उपन्यास लिखने में भी कमाल कर दिया है। आपका लिखा हुआ 'हृदय की प्यास'-नामक उपन्यास पहले हमारे यहाँ से प्रकाशित हो चुका है, जिसका हिंदी-संसार ने यथेष्ट सम्मान किया है। अब हम उन्हीं की यह अन्य रचना लेकर हिंदी-प्रेमियों के सामने उपस्थित हो रहे हैं। आशा है, हिंदी-प्रेमी इसे भी उसी तरह पसंद करेंगे। यह उपन्यास हिंदी-संसार के लिये एक ही चीज़ है। द्वितीय संस्करण। मूल्य १), सजिल्द १।)

योग-दर्पण—लेखक, श्रीलाला कन्नोमल एम्० ए०। योगशास्त्र एक अद्भुत, अमूल्य, अनूठी एवं अनुपम संपत्ति है। इसका प्रचार पहले भारतवर्ष में इतना अधिक था कि इसी के बल पर वह सारे जगत् पर शासन करता था—जगत् का गुरु था। पर जब से इसके योग-बल का ह्रास हुआ, तब से वह अपने गौरव-पूर्ण उच्च पद से गिर गया। अस्तु। योग-विद्या हमारे और हमारी संतानों के लिये, नितांत आवश्यक है। इसी अभिप्राय से इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। यह पुस्तक पातंजल योग-सूत्रों, श्रीव्यासभाष्य और वाचस्पति मिश्र की वृत्ति के आधार पर लिखी गई है। पुस्तक की भूमिका में प्रायः उन सभी बातों का समावेश किया गया है, जो योग-दर्शन से संबंध रखती हैं और जो आधुनिक गवेषणा से मालूम हुई हैं। पुस्तक के अंत में आठ परिशिष्ट लगे हैं, जिनमें योग-सिद्धांत पूर्ण रीति से समझने के लिये पर्याप्त सामग्री है। पुस्तक सर्वांग-पूर्ण है। यदि भू-मंडल की सभ्य जातियों पर अपने गौरव और महत्त्व का सिक्का जमाकर आध्यात्मिक तथा भौतिक स्वराज्य प्राप्त करना है, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। मूल्य १), सजिल्द १॥)

युधिष्ठिर—लेखक, श्रीकृष्णगोपाल माथुर। इसमें महाभारत के धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मगाथा तथा उनका आदि से अंत तक का चरित लिखा गया है। चरित के साथ-साथ सारा महाभारत पढ़ने का भी आनंद मिलता है। भाषा सरल, छपाई सुंदर, कागज़ अच्छा ऐंटिक, टाइटिल पर बढ़िया तिरंगा चित्र। बालकों को धर्म की ओर ले जानेवाली अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥), रंगीन जिल्द १)

देवी शकुंतला—लेखक, अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी "श्रीहरि"। यह उसी शकुंतला का चरित है, जिसके लिये भारतवर्ष आज भी गर्व करता है। महर्षि वेदव्यास और महाकवि कालिदास ने तो शकुंतला के गुणों का वर्णन करने में क़लम तोड़ दी है। कन्याओं तथा महिलाओं के लिये यह बड़े ही महत्त्व की पुस्तक है। सती-धर्म और विश्व-प्रेम का जीता-जागता चित्र तथा अचल गृहस्थ-

धर्म का आदर्श इसमें भरा है। पुस्तक में कई सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। लीजिए, गृहिणी के हाथ में देकर देखिए तो, इसके पढ़ने में उन्हें कैसा अनुपम आनंद आता है। मूल्य ॥=), रंगीन जिल्द ॥=), सजिल्द १=)

राष्ट्रपति जवाहिर—भारतीय कांग्रेस के प्रथम साम्यवादी प्रेसिडेंट तथा नवयुवकों के प्यारे सम्राट् पं० जवाहिरलाल नेहरू की जीवनी तथा जोशीले लेख और भाषण। इसे पढ़कर पंडितजी की अनुपम योग्यता, अदम्य वीरता, दृढ़ संकल्प, सत्य-निष्ठा एवं बच्चों की-सी सरलता के आप क़ायल हो जायँगे। आपको मालूम हो जायगा कि किस कारण उन्होंने देश के नवयुवकों का मन मुट्ठी में कर लिया है, किस प्रकार वह किसानों और मजदूरों के प्यारे नेता हुए, और क्यों इतनी अल्प आयु में ही कांग्रेस के सभापति चुन लिए गए! पृष्ठ-संख्या १३६; काग़ज बढ़िया ऐंटिक!! छपाई सुंदर!!! ३ दर्शनीय रंगीन चित्र!!!! इतने पर भी मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

दिलावर सियार—लेखक, श्री पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०। लेखक की लिखी हुई बालोपयोगी अन्य पुस्तकों से पाठक काफ़ी परिचित हैं। यह Reynard the fox नामक अँगरेज़ी की पुस्तक का अनुवाद है। बाल-साहित्य में मूल-पुस्तक का ऊँचा स्थान है, और हिंदी में उसका यह पहला ही अनुवाद है। सियार पाँड़े की दिलावरी की बातें पढ़कर बालकों का मनोरंजन कीजिए। मूल्य ।), रंगीन जिल्द ॥)

उत्सर्ग—लेखक, आयुर्वेदाचार्य प्रो० चतुरसेन शास्त्री। यह एक सुंदर ऐतिहासिक नाटक है। इसमें चित्तौर के अग्रगण्य वीर-अधिपति जयमल तथा उनकी जवाँमर्द रानी की वीरता का दिल फड़का देनेवाला वर्णन है। इसमें समुद्र में बूँद के समान राजपूतनी के बच्चों—सिंहों की अपूर्व वीरता देखिए, जिनके लिये स्वयं अकबर ने कहा था कि "यह शेर-सिपाही अगर मुझे मिल जायँ, तो मैं तमाम दुनिया को फ़तह कर सकता हूँ।" मुट्ठी-भर बहादुर बादशाह की सब तरह से सुसज्जित और शिक्षित असंख्य सेना को किस प्रकार, पत्थर की चट्टान से टकराकर लौटनेवाली पानी की लहरों के समान, मुद्दत तक लौटाते रहे, यह पढ़ते ही बाहें फड़कने लगती हैं। एक वीरांगना का तेज, त्याग और पौरुष देखकर तो भारत की क्षत्रानियों का गौरव आँखों के सामने नाचने लगता है। जो लोग स्त्रियों को अबला कहते हैं, वे भी इसे पढ़कर मान लेंगे कि देश-रक्षा में एक स्त्री भी समर्थ हो सकती है। मूल्य ।=), जिल्ददार ॥)

हिंदी की सर्वोत्कृष्ट, सचित्र और सबसे सस्ती मासिक पत्रिका "सुधा" वार्षिक मूल्य ६॥) छमाही ३॥)



गुल्म-नाशक योग



लुवा दो भाग, भुना सुहागा दो भाग, काली मिर्च एक भाग, घी में सिकी हींग एक भाग, काला नमक डेढ भाग। उपर्युक्त सब वस्तुएँ यथावत् लेकर घीकुमारी (गुवारपाठा) के रस में २४ घंटे खरल कर छोटे बेर बराबर गोली बना ले। प्रातः-सायं एक-एक गोली पान के साथ सेवन करने से सब तरह के वायुगोला को एवं मासिकधर्म बंद होने से उत्पन्न गुल्म (पेट की गाँठ) को नाश करता है।

वायुगोला

लाल मिर्च के बीज एक छटाक तवे पर ख़ूब भून ले। जले बाद दो माशे से छः माशे तक गरम जल के साथ एक-एक घंटे बाद दे, जब तक दर्द बंद न हो।

मासिकधर्मावरोध

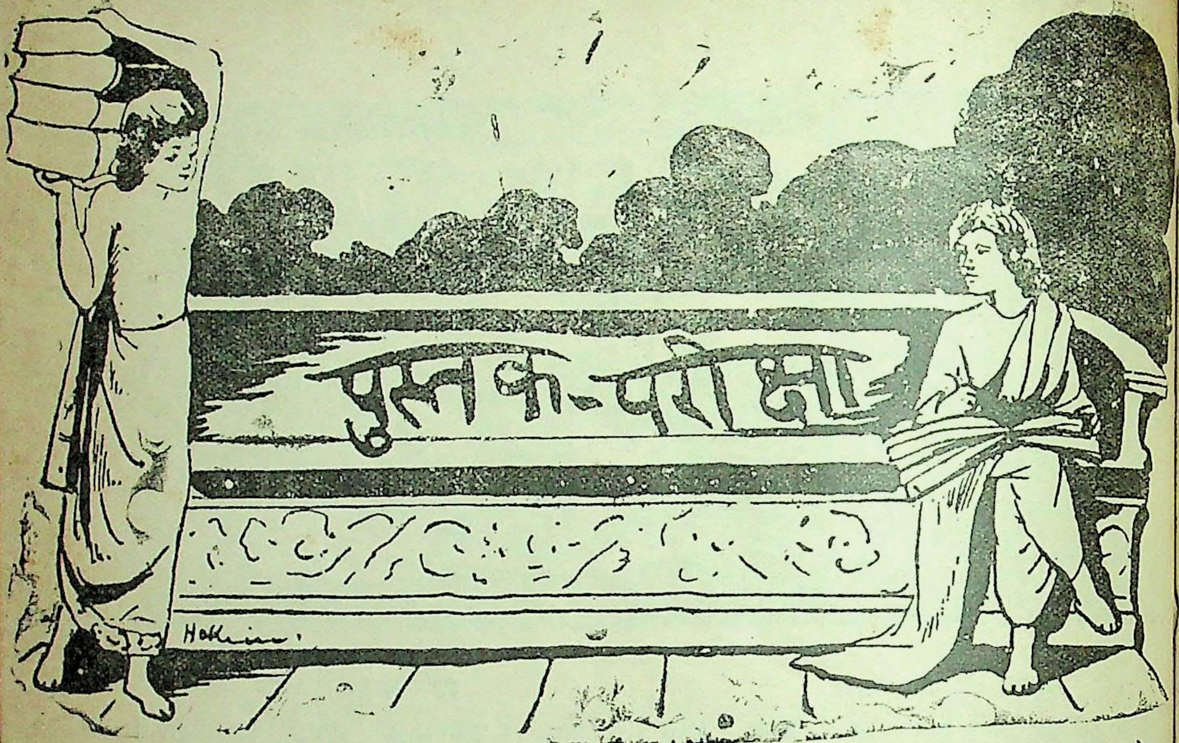
आग पर फुलाया हुआ सुहागा एक तोला, घी में सिकी हींग एक तोला, हीरा कसीस एक तोला, एलुवा एक तोला।

उपर्युक्त औषधियों को कुमारीरस (गुवारपाठे का रस) में दो दिन ख़ूब खरल करके, चने प्रमाण गोलियाँ बनावे। प्रातः-सायं गौ के दूध के साथ खावे। यदि गर्मी ज़्यादा मालूम हो, तो खाने में गौ का घी-दूध ज़्यादा काम में लावे। यदि स्त्री कमज़ोर हो, तो पौष्टिक पदार्थ खिलावे, और यदि बलवती (मोटी) हो, तो दही-बड़े खिलाना, और मांसाहारी हो, तो मछली खिलावे। दो सप्ताह दवा देकर एक सप्ताह तक बंद कर दे, फिर दो सप्ताह देकर बंद कर दे, तो एक मास में ऋतुमती हो जायगी।

रक्त-पित्त (नकसीर)

कोथमीर का रस तथा देशी कपूर घोटकर दिन में तीन-चार दफ़ा दो-दो, तीन-तीन बूँद नाक में टपकावे, तो ख़ून बंद हो।

भिषक् महावीरप्रसाद चतुर्वेदी



१. साहित्य

स्वप्नों के चित्र—साहित्य-संबंधी कहानियाँ और प्रहसन । लेखक, श्रीरामनरेश त्रिपाठी । प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग । मूल्य ॥।)

'स्वप्नों के चित्र' लेखक के दिमाग़ की सुंदर सूझों के शाब्दिक चित्र हैं । श्रृंगाररस और श्रृंगारी कवियों के कार्टून यदि बनाए जायँ, तो त्रिपाठीजी के इन शब्द-कार्टूनों से बढ़कर नहीं हो सकते । आपके ही शब्दों में पुस्तक की उपयोगिता इस प्रकार है—"सैकड़ों वर्षों से श्रृंगारी कविता ने हिंदुओं में आलस्य, बेकारी, कायरता, कुरुचि और चरित्र-हीनता का विष फैला रक्खा है । मैं उसको अब अधिक फैलने देने का विरोधी हूँ । पुराने श्रृंगारी कवियों ने जो कुछ कहा है, वह कला की दृष्टि से चाहे जैसा उत्कृष्ट हो, पर उपयोगिता की दृष्टि से वह समय के अनुकूल नहीं है । उनके द्वारा हिंदी में श्रृंगाररस आवश्यकता से कहीं अधिक आ चुका है । अब जितना है, उतना ही हज़म नहीं हो सकता ; अधिक के लिये गुंजाइश कहाँ है ? इसी बात की ओर हिंदी के कवियों और रसिकों का ध्यान आकर्षित करने के लिये मैंने ये कहानियाँ और प्रहसन लिखे हैं ।"

श्रृंगारी कविता के विषय में हम त्रिपाठीजी से पूर्णतया सहमत हैं । किंतु उन्होंने जिस ढंग से उसका मज़ाक़ बनाया है, वह हमें पसंद नहीं । वह कुछ अजीब बेढंगा-सा तरीक़ा मालूम होता है । अच्छा होता, यदि त्रिपाठीजी बायरन के-से व्यंग्य का आश्रय लेते, तब उनका यह आक्रमण अधिक साहित्यिक और तीव्र होता ।

अस्तु । समष्टि रूप से पुस्तक मनोरंजक है । छपाई-सफ़ाई भी अनिर्वचनीय है । प्रकाशक से प्राप्य ।

× × ×

पद्य-प्रवेशिका—लेखक, श्रीसुवर्णसिंह वर्मा 'आनंद' । प्रकाशक, मुकुंदमंदिर, बेलनगंज, आगरा । मूल्य ॥)

यह पद्य-रचना-संबंधी पुस्तक एक नाटक-लेखक द्वारा लिखी गई है । लेखक महोदय ने 'विनीत बिनती' में एक अजीब ऊट-पटांग कहानी-सी लिख-कर इस पुस्तक के लिखने की आवश्यकता समझाई है, और अंत में अपने लिखे नाटकों

की पूरी तालिका देकर इस पुस्तक की त्रुटियों के लिये क्षमा माँगी है। मालूम नहीं, इस सबका क्या मतलब है।

वैसे पुस्तक कुछ अंश में बहुत उपयोगी है, और इस विषय के विद्यार्थियों के पढ़ने लायक़ है। बिलकुल नए ढंग की और सामयिक कवियों की कविता के उदाहरणों से विभूषित यह पुस्तक हमारी समझ में प्रत्येक कविता-प्रेमी के संग्रह-योग्य है।

× × ×

२. गल्प-कहानी

अस्फुट कलियाँ—लेखक, श्रीबैजनाथ केडिया। प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, २०३, हरीसन रोड, कलकत्ता। मूल्य १)

केडियाजी वणिक प्रेस और हिंदी-पुस्तक-एजेंसी के मालिक और 'सेवक' के संपादक हैं। हिंदी-संसार में लेखक के रूप में आप अभी हाल में ही आए हैं। आपकी लिखी ये दस सामाजिक कहानियाँ सजिल्द होकर जनता के सामने आई हैं। ये कहानियाँ अभी काफ़ी अस्फुट हैं। किंतु उनमें सुवास का एकदम अभाव नहीं। उनका संग्रह फलप्रद होगा, इसमें संशय नहीं। छपाई साधारण, जिल्द जल्दी ही टूटनेवाली।

सुधींद्र वर्मा (एम्० ए०)

× × ×

सुधांशु—लेखक, श्रीयुत राय कृष्णदास। प्रकाशक, भारती-भंडार, रामघाट, बनारस सिटी। पृष्ठ-संख्या ६७। मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महाशय की बारह कहानियों का संग्रह है। कहानियाँ उस मेल की हैं, जिससे 'तूलिका' के पाठक परिचित होंगे। आजकल कुछ साहित्यसेवी काव्य और गल्प में छायावाद की उपासना कर रहे हैं। प्रस्तुत गल्प इसी उपासना के प्रतिफल हैं।

इन कहानियों में विशेषता यह होती है कि इनके भाव-चित्र स्पष्ट नहीं होते, उनमें रंग नहीं भरा जाता; चरित्रों का विशेष विकास नहीं होने दिया जाता। भाव की झलक देकर ही कलावंत अंतर्धान हो जाता है। कहानी के पाठक पर जादू काम कर जाता है। वह अपने भावों की स्वयं विवेचना नहीं कर सकता, थोड़ी देर के लिये वह चिरस्थित अहं-मन्यता को भूल जाता है। यही कला का आनंद है। यही इन कहानियों का भी आनंद है।

राय कृष्णदासजी की कहानियाँ आपकी भावी प्रतिभा की सूचना दे रही हैं। अभी भाषा और शैली कुछ अपरिपक्व है। अभी 'सुधांशु' का ही दर्शन मिला है। आशा है, सुधा-वृष्टि भी होगी।

× × ×

३. उपन्यास

कंकाल—लेखक, श्रीजयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक, भारती-भंडार, रामघाट, बनारस सिटी। पृष्ठ-संख्या ३६६। मूल्य ३)

श्रीयुत 'प्रसाद'जी की गिनती हिंदी के प्रतिभाशाली लेखकों में है। अभी तक आपने काव्य और नाटक के अतिरिक्त छोटी-छोटी कहानियाँ ही लिखी थीं। प्रस्तुत पुस्तक में आपने पहली बार एक सामाजिक उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया है।

किसी प्रतिभाशाली लेखक की आलोचना करना सरल नहीं। इसलिये हमने पुस्तक को आद्योपांत पढ़ा और फिर पढ़ा, क्योंकि पहले अध्ययन में हमें उसमें किसी प्रतिभा के दर्शन न मिले। इसके अतिरिक्त हमें उसमें कुरुचि की भी कुछ गंध मालूम हुई। इसलिये हमने उसे फिर पढ़ा। परंतु हमारे विचार पुस्तक के प्रति और भी पुष्ट हो गए। यदि 'प्रसाद'जी का साहित्य-संसार में इतना मान न होता, तो शायद हम आलोचना भी न करते।

यदि 'प्रसाद'जी का उपन्यास सन् २०-३० में किसी सामाजिक इतिहासवेत्ता के हाथ पड़े, तो उसका निर्णय यही होगा कि सन् १९३० का हिंदू-समाज व्यभिचार की कर्मनाशा में डूबा हुआ था। ध्यान तो दीजिए, 'कंकाल' के सामाजिक चित्र-पट पर

किसी भी ऐसे चरित्र के दर्शन नहीं मिलते, जो कलुषित न रहा हो। श्रीचंद्र और निरंजन से लेकर बाथम तक और तारा से लेकर किशोरी और घंटी तक, सभी स्त्री-पुरुष का शिकार करते दिखाई देते हैं। क्या हिंदू-समाज का यह वास्तविक चित्र है? यदि है, तो मिस मेयो बहुत ठीक कहती हैं। स्वराज्य की माँग में भी कोई दम नहीं है; क्योंकि ऐसा कलुषित समाज न स्वराज्य ले सकता है, और न उसका उपयोग ही कर सकता है।

'प्रसाद'जी क्षमा करें। यदि वास्तव में आपको हिंदू-समाज की दुर्दशा का चित्र खींचना था, तो उसे बड़े कौशल से खींचते। आख़िर प्रेमचंदजी ने 'सेवा-सदन' और 'प्रेमाश्रम' में तथा रवींद्रजी ने 'आँख की किरकिरी' में हिंदू-समाज की बुराइयों का चित्र खींचा है। परंतु ये चित्र विकारमय नहीं होने पाए हैं। उन्होंने सामाजिक आदर्शों की हत्या नहीं की है।

किसी जगह निवेदन किया जा चुका है कि शैतान का कला-पूर्ण चित्र खींचना बहुत कठिन है। चित्र की तारीफ़ यह होनी चाहिए कि पापियों की ओर से आपके हृदय में सहानुभूति के भाव पैदा हों, परंतु पाप से आप बच जायँ। यह काम कला-कोविदों का है, साधारण लेखकों का नहीं। 'प्रसाद'जी अच्छे लेखक हैं। परंतु आप अभी तक काव्य और नाटक ही पर अधिकार कर चुके हैं। अभी आपका औपन्यासिक कला पर प्रभुत्व नहीं जम पाया है। इसीलिये आप देखते हैं कि कहानी के भीतर कहानी देकर उपन्यास का कलेवर बढ़ाने का यत्न किया गया है। विषय भी बहुत कठिन लिया। फलतः कहना पड़ता है कि 'कंकाल' 'प्रसाद'जी के योग्य कदापि नहीं।

लेखक महाशय से विनम्र अनुरोध है कि यदि आप औपन्यासिक क्षेत्र ही में आना चाहते हैं, तो पहले कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखिए। आपने ऐतिहासिक नाटकों में बहुत सफलता प्राप्त की है। इसलिये ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन में आपको अधिक सफलता होगी। अभी सामाजिक उपन्यास लिखने का प्रयत्न न कीजिए। हिंदू-समाज की सफ़ाई का काम किसी 'उग्र' के हवाले ही रखिए।

कालिदास कपूर (एम्० ए०)

× × ×

४. नाटक

पृथ्वीराज चौहान—लेखक, श्रीगोविंदराम गुप्त वसंत। प्रकाशक, बलवेडियर-प्रेस, प्रयाग। मूल्य ।)

उपर्युक्त नाटक हिंदी-साहित्य की नाट्यकला-संबंधी त्रुटि को पूरा करने के लिये लिखा गया है। इसमें सम्राट् पृथ्वीराज का जीवन-चित्र चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। पात्रों की भरमार, भाषा के शैथिल्य और कथानक की अस्त-व्यस्तता के कारण नाटक अभिनेय नहीं। यह 'प्रसाद'जी के स्कंदगुप्त के समान बेमुहावरा भाषा, उद्देश्य-हीन पात्र-चित्रण और ऐतिहासिक भूलों से भरा होने के कारण सफल पाठ्य नाटक भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, 'प्रसाद'जी के स्कंदगुप्त के-से बेसिर-पैर के व्याख्यान इसमें नहीं हैं, यही विशेषता है। इस कमी के कारण यह नाटक ऐसा दुरूह नहीं हुआ है, जैसा कि 'स्कंदगुप्त'। मूल्य अधिक है।

× × ×

भारतवर्ष—लेखक, श्रीहरिहरशरण मिश्र। प्रकाशक, सूर्यकमल-ग्रंथमाला-कार्यालय गणेशगंज, लखनऊ। मूल्य सादी १)

भूत, वर्तमान, भविष्यत् भारतवर्ष को लेकर यह तीन अंकों का नाटक लिखा गया है। मालूम नहीं, इतना लंबा-चौड़ा उद्देश्य लेकर क्यों यह प्रयत्न किया गया। केवल वर्तमान ही हमारा ऐसा विचित्र है कि उसी से एक क्या दस नाटक लिखे जा सकते हैं। अस्तु, नाटक की भाषा प्रारंभ में जैसी प्रौढ़ और प्रांजल है, अंत में वैसी नहीं। पात्रों का चरित्र-चित्रण साधारणतः अच्छा है। असामयिक गीतों को छोड़कर अन्य गीत भी अच्छे हैं। छोटा होने के कारण नाटक

अभिनेय भी है। किंतु लेखक का प्रथम प्रयास होने के कारण अभी नाट्य-कला-संबंधी त्रुटियाँ इसमें पर्याप्त हैं।

हाल में जैसे सडियल नाटक निकले हैं, उन्हें देखते हुए यह नाटक सफल नाटक कहा जा सकता है। अच्छे नाटकों के प्रेमियों के लिये यह नाटक संग्राह्य है। मूल्य अधिक है।

× × ×

५. विज्ञान

प्रारंभिक रसायन—लेखक, श्रीअमीचंद्र विद्यालंकार। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग मूल्य १)

विज्ञान-जैसे रोचक विषय पर हिंदी में एक भी उत्तम और रोचक पुस्तक नहीं। केवल गुरुकुल काँगड़ी के पाठ्य-क्रम में मनोनीत और वहाँ के अध्यापकों द्वारा लिखित पुस्तकें ही अब तक इस विषय की अन्यतम पुस्तकें थीं।

हिंदी में उच्च कोटि का विज्ञान पढ़ाने का श्रेय भी गुरुकुल काँगड़ी को ही प्राप्त है। अतः हर्ष का विषय है कि उसके एक स्नातक ने ही पहलेपहल हिंदी में इस प्रकार की रोचक रसायन, 'केमिस्ट्री', लिखने की चेष्टा की है। सम्मेलन की परीक्षाओं तथा अन्य पाठशालाओं के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक पर्याप्त सहायता पहुँचावेगी।

अमीचंद्रजी अपने विषय में खूब सफल हुए हैं, इसमें संदेह नहीं। सरल और सुपाठ्य भाषा में इस विषय पर अब तक इससे सुंदर पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई। एफ़० ए० स्टैंडर्ड तक जितनी केमिस्ट्री पढ़ाई जाती है, उसका बहुत कुछ आवश्यक अंश इस पुस्तक में समाविष्ट हो सका है। अतः यह उच्च कक्षाओं के लिये पाठ्य पुस्तक बड़ी आसानी से बनाई जा सकती है। प्रत्येक विज्ञान-प्रेमी को इसका संग्रह करना चाहिए।

सुधींद्र वर्मा (एम्० ए०)

× × ×

६. दर्शन

मोक्ष-प्रदीप—मूल-लेखक, स्वामी ब्रह्मानंद 'शिव योगी'; अनुवादक, स्वामी निष्कलानंद (देहरादून); सहायक, डॉ० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी एम्० बी० बी० एस्० देहरादून, जिन्होंने कुल व्यय देकर पुस्तक प्रकाशित करवा दी है। पृष्ठ-संख्या ३८८+३२+१०=४३०। मूल्य २॥) ; अनुवादक से ही पुस्तक प्राप्त हो सकती है।

विषय नाम से ही विदित हो जाता है। मूल पुस्तक मलयालय-भाषा में लिखी गई है। लेखक ने कर्मकांड से लोगों की प्रवृत्ति हटाकर योगाभ्यास की ओर लगाने का प्रयत्न किया है, और उसमें पूर्णतया सफल हुए हैं। यद्यपि यह ग्रंथ योगाभ्यासी साधुओं के लिये गुरु-शिष्य-संवाद-रूप में लिखा गया है, फिर भी इसमें गार्हस्थ्य जीवन के लिये उपयोगी सामग्री, पर्याप्त मात्रा में, प्रस्तुत है, तथा सर्वसाधारण के लिये हितकर बातों का अच्छा समावेश है। यह ग्रंथ ३८ प्रकरणों में विभक्त है, जिनमें योग के अंगों पर ही अधिकतर विचार किया गया है।

इसमें प्रसंगानुसार जाति-पाँति का युक्ति-पूर्वक खंडन किया गया है। भीख माँगने की बुराइयाँ भी भले प्रकार प्रदर्शित की गई हैं। आहार-व्यवहार के नियमों पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। यज्ञादि कर्मकांड को भी लेखक सामयिक दृष्टि से अनुपयुक्त समझता है, और शक्ति की उपासना का बड़ी योग्यता से समर्थन किया गया है, जो वर्तमान भारत का ध्येय है।

सदाचार के नियम बतलाते हुए राजयोग आदि विषयों का बहुत ही विवेचनात्मक और मार्मिक वर्णन किया गया है। इसके अध्ययन से ज्ञान की उत्कर्षता और भावों में प्रौढ़ता का सन्निवेश होता है। यह ग्रंथ एक उच्च-कोटि के महात्मा के स्वानुभव-जनित विचारों का फल है, अतः मानव-समाज के लिये अत्यंत लाभकारी है, तथा पथ-प्रदर्शक का काम दे सकता है। सामाजिक और आध्यात्मिक दोनो

दृष्टियों से बहुत ही लाभप्रद है। इसके लिये अनुवादक स्वामी निष्कलानंद और सहायक डॉक्टर अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, दोनो सज्जन ही बधाई के पात्र हैं।

अनुवाद के संबंध में मलयालम और हिंदी दोनो भाषाओं का अच्छा ज्ञाता ही सम्मति दे सकता है।

हम प्रत्येक हिंदी-प्रेमी से यह ग्रंथ पढ़ने का अनुरोध करते हैं। आशा है, हिंदी-जगत् इसका समुचित आदर कर अनुवादक और सहायक सज्जनों का उत्साह वर्द्धित करने का उद्योग करेगा।

भगीरथप्रसाद दीक्षित



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में नीचे-लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—

(१) 'अंकुर'—लेखक, कृष्णानंद गुप्त; मूल्य ।।=)

(२) 'दूर्वादल'—लेखक, श्रीसियारामशरण गुप्त; मूल्य ।।=)

(३) 'झंकार'—लेखक, मैथिलीशरण गुप्त; मूल्य ।।=)

(४) 'स्वास्थ्य-संलाप'—लेखक, कृष्णानंद गुप्त; मूल्य ।।=)

(५) 'दुःखी दुनिया अर्थात् प्रलय-प्रतीक्षा'—लेखक, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य; मूल्य ।।)

(६) 'जीवन-विकास'—अनुवादक, श्रीमुकुट-बिहारी वर्मा; मूल्य १।)

(७) 'नरमेध'—लेखक, चंद्रभाल जौहरी; मूल्य १।।)

(८) 'प्रबंध-मंजरी'—संपादक, पं० पद्मसिंह शर्मा; मूल्य १।।)

(९) 'पद्मपराग'—लेखक, पं० पद्मसिंह शर्म्मा; मूल्य २।।)

(१०) 'स्वावलंबी का बल'—लेखक, जयविजय-नारायणसिंह; मूल्य २)

(११) 'स्त्री कविसंग्रह'—संपादक'—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'; मूल्य ।।)

(१२) 'सूरसंग्रह' संग्रहकर्ता—लाला भगवानदीन; मूल्य १)

(१३) 'झाँकी'—लेखक,श्रीआनंदिप्रसाद श्रीवास्तव; मूल्य १)

(१४) 'साहित्य-सीकर'—लेखक, महावीरप्रसाद द्विवेदी; मूल्य १)

(१५) 'जीवन का मूल्य'— लेखक, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय; मूल्य १।।)

———



१. तुलसी-कृत रामायण की व्यापकता



स श्रावण की शुक्ला-सप्तमी से महाकवि भक्तराज तुलसीदास गोस्वामी के तिरोधान के ३०७ वर्ष बीत चुके। कवि और काव्य की दृष्टि से गोस्वामीजी और उनकी अमर रचना रामायण का कितना ऊँचा स्थान है, इस पर एक उक्ति यथेष्ट है—महात्मा गांधी रामायण को संसार का सर्वश्रेष्ठ काव्य कहते हैं। जिन देश-वासियों की भाषा में यह अमर ग्रंथ लिखा गया है, उनकी दृष्टि में तो इसके मुक़ाबले कोई दूसरा ग्रंथ जँच ही नहीं सकता। पर भिन्न-भाषा-भाषियों ने भी, जिन्हें कभी रामायण के पाठ का अवसर तथा सुयोग प्राप्त हुआ है, मुक्त-कंठ से इसकी उपयोगिता की प्रशंसा की है। भाषा और भावों के भीतर से यथार्थ हिंदुत्व के जितने अच्छे चित्र, उदार, सुंदर और मनोहर, रामायण में मिलते हैं, उतने और कहीं भी नहीं मिलते। जैसे दीर्घकालीन तपस्या के प्रभाव से गोस्वामीजी हिंदुओं की संस्कृति में मिल गए हों, और इसके बाद इसकी रचना की हो। इतने दिनों की लिखी हुई होने पर भी, सहस्रों बार पढ़ी जाने पर भी, हिंदी-भाषी पाठकों के निकट रामायण नित्य नवीन और नित्य मधुर है, उससे कभी उनका जी नहीं ऊबता, उसकी कथाओं में आज भी वे अपने पारिवारिक जीवन का दैनिक सत्य प्रत्यक्ष करते हैं। आज वेदों का ज्ञान हिंदी-भाषियों में नहीं रहा, पर रामायण का ज्ञान है। वे वैदिक भूमि से किसी कम दृढ़ भूमि पर नहीं ठहरे। यहाँ भी उन्हें सब शिक्षाएँ, मनुष्य को मनुष्य, देवता और ईश्वर कर देनेवाली कुल बातें, ललित चित्रण के भीतर से, मिलती हैं। जिस किसी तरफ़ से विचार कीजिए, जैसे राम की सदा प्रसन्नता, सीता की पवित्रता, भरत की गुरुता, लक्ष्मण का ओज, शत्रुघ्न की शूरता, महावीर का महावीर्य, और और साधुओं, महात्माओं की तपस्या, लोकपावनता आदि सहस्रों निर्मल धाराओं की परिसमाप्ति-समुद्र की तरह, रामायण में परिणाम प्राप्त कर, उसे अधिक महत्त्वमयी कर रही हैं।

भारतवर्ष में आज तक जितने भी धार्मिक वादों का प्रवर्तन हुआ है, उन सबका सहृदय उद्बोध

रामायण में है ; रामायण की कथा जैसे उन्हीं के सत्यों को साबित कर रही हो, निर्विरोध, उच्च-नीच-भेद-ज्ञान-रहित, केवल क्रम-परिणति, पर लक्ष्य रखती हुई। यहाँ हम लीला के भीतर से ब्रह्म तक निर्विवाद चले जा सकते हैं, और ब्रह्म से लीला में उतर सकते हैं। अद्वैत और द्वैत के बीच विशिष्टाद्वैत का आनंद भी हमें मिलता है। पृथ्वी दुराचारों के भार से व्याकुल है। देवता संत्रस्त हैं। सब ब्रह्मा के पास जाते हैं। शिव भी वहाँ साथ हैं। श्रीभगवान् की खोज होती है। शिव कहते हैं—

> "हरि व्यापक सर्वत्र समाना ;
> प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना।
> देश-काल दिसि बिदिसिहु माहीं ;
> कहौ सो कहाँ, जहाँ प्रभु नाहीं?"

यह रामायण के नायक भगवान् श्रीरामचंद्रजी का आदि रूप है, और यही हिंदू-दर्शनों का सर्व-श्रेष्ठ निष्कर्ष, सच्चिदानंद रूप। रामायण की बुनियाद में भी इसी तरह—राम की बुनियाद की तरह—अखंड ब्रह्म है—

> "रघुपति-महिमा अगुण अबाधा ;
> बरनब सोइ वर वारि अगाधा।"

जो जलमय है, वही वीचिमय। इस आधार पर लीला का श्रीगणेश होता है। लीला में प्रकृत चित्रण का समावेश है। भावों को विभु तक उठाए रहने के अभिप्राय से गोस्वामीजी बार-बार श्रीरामचंद्रजी को प्रभु और श्रीजानकीजी को आदि शक्ति कहकर संबोधित करते जाते हैं। साधारण जनों को तत्त्व में आनंद नहीं आता, वे लीला देखना चाहते हैं। लीला के भीतर यदि उन्हें तत्त्व दिया जाय, तो निस्संदेह यह सर्वोत्तम उपाय होगा। गोस्वामीजी ने ऐसा ही किया है। लीला में दिव्य शक्ति का प्रभाव है, जिससे पतन का भय नहीं, और उसके साथ-साथ तत्त्व-ज्ञान।

हिंदुओं के तमाम कृत्य इसी दिव्य शक्ति के परिवर्धन के निमित्त हैं, जिससे मेधा पुष्ट होती है, और मनुष्य को तत्त्व की प्राप्ति होती है। दिव्य गुण-समूहों से अलंकृत होने के कारण रामायण हिंदुओं का सर्वोत्तम धर्म-ग्रंथ बन गया, और हर मनुष्य को, जिसके जैसे विचार हैं, जो जैसे फल की आकांक्षा रखता है, वैसी-ही-वैसी ख़ूराक मिलती जाती है।

जिस रहस्यवाद और छायावाद के पीछे आजकल के नवीन और प्राचीन दल प्रचंड तांडव कर रहे हैं, रामायण उसी की पोषक । यदि पूछा जाय, जब नारद को मोह हुआ, वह स्वयंवर में विष्णु से रूप माँगकर गए, विष्णु के साथ उस राजकुमारी का विवाह हो गया, नारद को अपने रूप का पता लगा, और उन्होंने विष्णु को कठोर शाप दे दिया—

> "तब हरि माया दूरि निवारी ;
> नहिं तहँ रमा, न राजकुमारी।"

यह क्या हुआ?—यह है क्या?—कहाँ गई वह राजकुमारी?—वह छाया तथा उसका रहस्य?—छायावाद तथा रहस्यवाद?—तो शायद ही कोई पंडितजी इसका समीचीन उत्तर दे सकें। यों वह तुलसीदासजी को साहित्य-सम्राट् मानने के लिये तैयार हैं, बल्कि कहिए, अपने कुटुंब का साबित कर दें, पर कहिए, वह छायावादी थे, रहस्यवादी थे, बिगड़ जायँगे। पूर्वोक्त प्रकार के प्रश्नों के उत्तर माँगिए, सारी विद्वत्ता का भूत उतर जायगा। पूछिए, बालि और सुग्रीव की माता पुरुष से औरत कैसे बन गई, उनके पास कोई उत्तर नहीं। अस्तु, ऐसे अक़्ल के दुश्मनों को क्या कहा जाय, रामायण ओत-प्रोत रहस्यवाद और छायावाद है। एक-एक कथा में रहस्य का समुद्र उमड़ रहा है, एक-एक छाया-रूप में महान् सत्य अशरीर, ज्योतिर्मय। हिंदी में जितनी ही रामायण की आलोचना हो, जनता को कल्याण की प्राप्ति होगी।

× × ×

२. कौंसिलों का बायकाट

बंबई में, सरदार श्रीवल्लभभाई पटेल के सभा-पतित्व में, कांग्रेस की कार्य-कारिणी समिति की जो बैठक हुई थी और जिसमें महामना मालवीय, मि० शेरवानी,

लाला दुनीचंद आदि प्रसिद्ध नेता उपस्थित थे, उसमें कई घंटे की बहस के बाद सर्व-सम्मति से बड़ी और छोटी व्यवस्थापक सभाओं के बहिष्कार का निश्चय किया गया। कहा गया, चूँकि लाहौर-कांग्रेस ने सब कौंसिलों के बहिष्कार का प्रस्ताव पास कर दिया है, और मौजूदा आंदोलन को केंद्रीभूत हो अधिक ज़ोर पहुँचाना है, इसलिये भारतवासियों से समिति की अपील है कि वे लोग कौंसिल के लिये उम्मेदवार होने, वोट देने या दूसरे तरीक़े से उसकी मदद करने से इनकार करें; सब जगहों की कांग्रेस-कमेटियों को चाहिए कि शांति के साथ, न्याय के मार्ग पर रहकर, वे जहाँ कहीं भी ज़रूरत देखें, धरना दिलावें, और उम्मेदवारों और वोटरों को मना करें।

इधर जैसे समाचार हमें मिले हैं, हम जानते हैं, कई प्रांतों से उम्मेदवार खड़े हुए और निर्विवाद मेंबर भी बन गए।

× × ×

३. वस्त्र-बहिष्कार का प्रभाव

समस्त देश-व्यापी वस्त्र-बहिष्कार का मैंचेस्टर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। लाखों की संख्या में वहाँ के लोग बेकार हो रहे हैं। वहीं के एक मिल-मालिक का कहना है कि शीघ्र ही मैंचेस्टर का दिवाला निकलनेवाला है। हर सप्ताह कौड़ियों के मोल मिलें नीलाम हो रही हैं। एक मिल, जिसकी क़ीमत २ लाख ३७ हज़ार पौंड थी, जिसमें ३०,००० तकुए तथा ११०० करघे थे, अन्यान्य आवश्यक सामान तथा मकान के साथ २२ हज़ार पौंड में बेच डाली गई। इसी मिल से पाँच वर्ष पहले १० प्रति सैकड़े फ़ायदा था। इस तरह के सैकड़ों उदाहरण हैं। जो पहले करोड़पति थे, वे सब फ़क़ीर हैं। खुद-कुशियाँ बढ़ रही हैं।

× × ×

४. कला में मुक्ति

जब कलाकार के दिल में इस तरह की बात रहती है कि मैं अपनी कृति में विशेषता का प्रदर्शन करूँगा, तब उसे सफलता नहीं होती। कारण, वह विशेषता उसकी प्रचेष्टा की वजह से नहीं निकलती, वह कृति के भीतर से आप-ही-आप पके आम के रंग की तरह फूट पड़ती है। जिस तरह हरएक मनुष्य का शारीरिक संगठन आप-ही-आप बन जाता है, उस पर किसी की कोशिश कारगर नहीं हो सकती, उसी तरह कला का प्रकाशन भी है। जब किसी विशेषता की तरफ़ लक्ष रखकर कोई कलाकार कोई सृष्टि करता है, उस समय उसका लक्ष जिधर वह रहता है, जो जब है, इसलिये सत्य और शिव-रूपी यथार्थ विशेषत्व, जो पुष्प की सुगंध की तरह है, दब जाता है। इसलिये कला की भावना-जन्य मुक्त रचना ही प्राणों को प्रसन्न करने की शक्ति रखती है। अन्यथा कला पर बलात्कार के ही चिह्न देख पड़ते हैं, मृदुल कल्पना तथा रचना-सौकर्य नहीं मिलता।

अन्यान्य पारमार्थिक विद्या की तरह कला का विशेषत्व भी पारमार्थिक ही है। दीप के प्रकाश में जुआ खेलने की तरह पारमार्थिक कला का भी आर्थिक दुरुपयोग किया जा सकता है; पर इससे धीरे-धीरे कलाकार के साथ कला भी महत्त्व से गिरती रहती है, और एक दिन दोनो की वही दशा होती है, जो कभी स्वर्ग-च्युत त्रिशंकु की हुई थी।

गणित का उद्देश्य है, गिनकर समाप्त, सम्यक् प्राप्त करना; पर जब वह सम्यक् प्राप्ति के पहले ही अपनी सीमा में, सैकड़ा, हज़ार, लाख, करोड़ आदि के कोठों में रहकर दुनियादारी या समझौते पर तुल जाता है, अर्थात् अनेक आवर्तों से हासिल की हुई सीमा को ही बार-बार प्राप्त करता रहता है, तब उसका उद्देश्य सम्यक् प्राप्ति नहीं रहता, वह अपने आदर्श से गिर जाता है, इसी तरह कला भी। उसका उद्देश्य जीवन की सहज, जटिल, सरस, नीरस स्थितियों को ज्यों-का-त्यों व्यक्त करते हुए जीवन की पूर्णता तक पहुँचना है। इस तरह उसकी उन्नति क्रम-परिणाम प्राप्त करती हुई पुष्ट होती रहती है। पर यदि वह किसी एक ही चित्रण में मुग्ध होकर बँधे पुरुषों की तरह उससे

बँधकर रह जाय, तो उससे प्रगति रुक जाती है, और कला के भविष्य-रहस्य अज्ञात ही रह जाते हैं।

इस तरह कला के सौंदर्य में पहले भी मुक्ति आवश्यक है, मध्य में भी और अंत तक। लकड़ी के टूटे हाथों की तरह कला के लिये भी खुली आँखें चाहिए। और इसी तरह वे आदि, मध्य से होकर अंत तक, जीवन के तमाम रहस्यों को चित्रित करती जायगी। यदि कहीं मुग्ध हो किसी रूप से फँस गईं, तो उनकी प्रगति वहीं रुक भी गई। इस तरह इतना बड़ा त्याग कलाकार के अंदर रहना आवश्यक है। सहस्रों उत्कृष्ट रूपों तथा भावनाओं की सृष्टि करके भी उसे उनसे पृथक् स्वच्छंद तथा निर्लिप्त रहना पड़ता है, और तभी उसकी खुली आँखें तमाम रूपों को प्रत्यक्ष करती हैं, उसका निर्लिप्त हृदय तमाम भावनाओं को आलिंगित करता है, जैसे मुक्त महात्मा के पास नवयुवतियों ने अपने-अपने मुखों का पर्दा खोल दिया हो। युवतियाँ भी जानती हैं कि यह दृष्टि निर्विकार है। पर जब महात्मा या कलाकार किसी एक रूप पर मुग्ध हो उससे प्रेम करने लगता है, तब अपर सुंदरियाँ उसे देखकर मुख ढक लेती हैं, वे जान लेती हैं कि यह दृष्टि किसी को प्यार करती है, सविकार है, इसका स्पर्श हमें कलुषित कर देगा।

× × ×

५. कवियों को दान

इस समय प्रतिभाशाली प्रायः सभी कवियों को विरोध के कँटीले मार्ग से गुज़रना पड़ता है। तमाम लांछन, अपमान आदि सहकर यदि कोई अधिकाधिक रचनाएँ साहित्य में छोड़ने का दुस्साहस करता गया, तो चिरकाल पश्चात् उसका आदर होता है। अधिकांश कवि तो अर्थ-कष्ट के कारण काव्य-रचना छोड़ ही देते हैं। पहले ऐसा न था। पहले कवियों का यथेष्ट सम्मान था। विद्या सदैव उच्च स्थान प्राप्त करती थी। बहुत प्राचीन काल की बातें नहीं, मुसलमान-काल में भी कवियों का यथेष्ट आदर था।

एक बार केशव अपने मालिक ओरछा-नरेश के किसी कार्य से राजा वीरबल से मिले, और उनकी तारीफ़ में एक षट्पदी कविता लिख ले गए। इस कविता पर राजा वीरबल ने छः लाख रुपए पुरस्कार दिया था।

अबुलफ़ज़ल ने बादशाह अकबर की राजसभा के हिंदू-विद्वानों की जो तालिका दी है, उसमें साधु, संन्यासी तथा धर्म-शिक्षकों के अलावा इकीस प्रधान विद्वानों के नाम दिए हैं, जो राजकोष से वृत्ति पाते थे। अकबर की सभा में साधारण हिंदू-कवि कम-से-कम आध सेर सोना पुरस्कार पाता था। (उस समय ५२ तोले २ माशे २ रत्ती का सेर था।)

तानसेन अकबर के दरबारी गवैए थे। अंतिम जीवन में इन्होंने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया था, और मियाँ तानसेन के नाम से प्रसिद्ध थे। यह स्वयं भी संगीत की रचना करते थे। एक बार १५८३ ई० में चूड़ागढ़ के राजा आगरे आए थे। एक रात कवि तानसेन का संगीत सुनकर उन्होंने इन्हें एक करोड़ रुपए का पुरस्कार दिया था। उस समय के रुपए की क़ीमत अब से बहुत ज़्यादा थी।

बादशाह अकबर के दाहने हाथ, राज्योद्धारक और शिक्षक बैरामख़ाँ ख़ानख़ाना ने रामदास नाम के कवि और गवैए के पारमार्थिक संगीत सुनकर एक लाख से अधिक रुपए का दान किया था। बैरामख़ाँ के लड़के अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना हिंदी के प्रसिद्ध कवि हैं। वह प्रकांड पंडित थे। फ़ारसी, अरबी और संस्कृत में उनकी रचनाएँ हैं। कितने ही कवियों को एक-एक बार एक लाख से अधिक रुपए का उन्होंने दान किया। एक बार वह युद्ध में हारकर, लुटे हुए दक्षिण से लौट रहे थे। रास्ते में एक हिंदू-कवि ने उन्हें कविता समर्पित की। रहीम उस समय रिक्त थे। उन्होंने रीवाँ-नरेश से एक लाख रुपया क़र्ज़ लेकर कवि को बिदा किया। गंग ने षट्पदी-कविता द्वारा रहीम की तारीफ़ की। इस कविता के लिये रहीम ने कवि को ३६ लाख रुपए का पुरस्कार दिया।

कविवर भूषण को छत्रपति शिवाजी ने प्रभूत अर्थ,

हाथी और ग्राम दिए थे। शिवाजी की राजधानी से एक बार, कवि अपनी जन्मभूमि त्रिविक्रमपुर (तिकवाँ-पुर, कानपुर से ३०-३२ मील, बाँदा-लाइन पर) लौट रहे थे। रास्ते में बुंदेलखंड-नरेश महाराज छत्र-साल से मिले। महाराज छत्रसाल ने देखा कि शिवाजी की तरह अर्थ देकर वह कवि की सम्मान-रक्षा नहीं कर सकते, उन्होंने कवि की पालकी में कंधा लगा उनकी इज़्ज़त की। बुंदेलखंडाधिप ने यहाँ नेता भूषण, ब्राह्मण भूषण तथा कवि भूषण के गुणों तथा सरस्वती का समादर किया था। महावीर महाराज छत्रसाल को भूषण कभी नहीं भूले। आदर्श की दृष्टि से उन्हें छत्रसाल शिवाजी से किसी अंश में भी छोटे नहीं जँचते थे। तभी उन्होंने कहा है—"शिवा को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।" एक बार कवि हरद्वार तीर्थ करने गए। वहाँ एक राजा आए हुए थे। उनका हाल सुना, तो उनसे मिले और उन्हें कुछ कविताएँ सुनाईं। राजा प्रसन्न हो एक हाथी और एक लाख रुपए देने लगे। कवि ने कहा—"तीर्थ में आ मैं दान नहीं लूँगा। हाथी और रुपए मुझे इतने मिले हैं कि अब अनायास ही इसके लोभ का संवरण कर सकता हूँ।"

इस तरह हिंदी के प्रायः सभी बड़े कवि प्रभूत अर्थ से समादृत हुए हैं। कविवर पद्माकर तो जगतसिंह के दान से राजा ही हो गए थे।

× × ×

६. कविवर रवींद्रनाथ और वर्तमान आंदोलन

रवींद्रनाथ के संबंध में इस समय एक ग़लतफ़हमी फैली हुई है। मुमकिन है, वह कुछ अंशों में सच भी हो। इधर पत्रों में छपा था कि सर तेजबहादुर सप्रू को उनके किसी मित्र ने विलायत से तार दिया है कि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर, श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री, मि० एँड्रूज़ आदि भारतीयों को कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिये कहते हैं। इधर बाबू रामानंद चटर्जी महाशय लिखते हैं, हमारे पास एँड्रूज़ का तार आया है, उन्होंने लिखा है, मैं बराबर पूर्ण स्वाधीनता का समर्थन करता रहा हूँ, डोमीनियन स्टेटस का नहीं। इससे उनके समर्थन पर कुछ संदेह किया जाता है। दूसरे यह भी कहा जाता है कि जब इस आंदोलन से कविवर रवींद्रनाथ का कोई तअल्लुक़ नहीं, तब वह इस तरह की राय कैसे दे सकते हैं, और देंगे भी, तो आंदोलन करने-वाले इस राय को मान क्यों लेंगे। रवींद्रनाथ-जैसे उत्तरदायी मनुष्य इस तरह की अदूरदर्शिता करेंगे, यह मानने लायक़ बात नहीं। फिर यह भी कहा जाता है कि उन्होंने इधर विलायती पत्रों में जो दो लेख छपवाए हैं, उनमें लॉर्ड इरविन और अँगरेज़-जाति की काफ़ी प्रशंसा की है, वहाँ अँगरेज़ों की दमन-नीति की समालोचना कमज़ोर पड़ गई है। एक दूसरी बात जो उन्होंने कही है, वह यह है, यदि भारत किसी अपर साम्राज्य-शासक के अधीन होता, तो इससे भी अधिक अत्याचार होते। यह लिखकर रवींद्रनाथ लिखते हैं, हमने सच्ची बात लिखी है। इस पर रामानंद बाबू लिखते हैं, उन्होंने सब साम्राज्य-वादी जातियों को पढ़ा है या नहीं, हमें नहीं मालूम; परंतु उनका यह अनुमान कि यह होता, तो यह होता उनके-जैसे प्रभाववाले मनुष्य का अनुमान होने पर कौड़ी-क़ीमत का है।

× × ×

७. हिंदी-साहित्य में उपन्यास

हिंदी में, भाषा और भावों के बाग़ में, अभी पत-झड़ का ही समय है। जिन डालियों में नए पल्लव, नवीन युग के वसंत की सूचना के रूप से, निकले भी हैं, उन्हें सत्समालोचन के अभाव के कुहरे ने अंध-कार में डाल रक्खा है, और यह निस्संदेह अवश्य है कि अभी साहित्य की पृथ्वी पर ऊषा की अस्पष्ट छाया ही पड़ी है, प्रभात का स्नेह-प्रकाश नहीं फैला, अर्थात् यह अभी हिंदी के उपन्यास-साहित्य का बाल्य-काल है, जहाँ असंयत प्रलाप ही श्रृंखलित परिचय तथा आलाप की जगह सुन पड़ता है, बाल-हाथों की अधूरी रचनाएँ रचयिता की मानसिक स्थिति का बयान करती हैं; अभी प्रकृति के विशाल बाग़ के खुले हुए विविध रंगों के पुष्पों की तरह जीवन, समाज

तथा परिस्थितियों के अम्लान-कांति कला की पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए अपने समय तथा ऋतु के गौरव के रूप से दिगंत को सुरभित करनेवाले पुष्प नहीं खुले। उन चित्रों में बाल्य की अस्पष्टता ही अधिक है, सफलता का प्रकाश कम।

सृष्टि का सबसे बड़ा कारण परिस्थितियों का रूपांतर है, अथवा युग का प्रवर्तन। हिंदी में युग-प्रवर्तन को अपनी तमाम शक्तियों से इष्ट मंत्र की तरह जप-कर बुलानेवाले, उसकी प्रतिष्ठा करनेवाले उपन्यासकार हैं ही नहीं। यह भी एक मुख्य कारण है कि उपन्यास की पृथ्वी पर पतझड़ के बाद जो वसंत की हवा बहती है, उसका स्पर्श भी नहीं मिल रहा, फिर नए रंग, नए चित्र, नई भरी-पूरी पुष्प-पल्लवमयी शोभा तो बड़ी दूर की बात है। समाज जिस धारा में पहले से बहता आ रहा था, उपन्यासकार अपने को उसी धारा में बहाकर समाज की अवस्था का चित्रण करते हैं। फल यह होता है कि चित्रकारों से चित्रों की ही शक्ति महान् हो जाती है। अतः वे डरे हुए चित्रकार प्रायः असफल ही होते हैं। कारण, पूर्व-आदर्श की महत्ता तक स्वयं उसके चित्रित करनेवाले उपन्यास-कार ही नहीं पहुँचे हुए होते। अतः डरे हुए हाथों खिंचे चित्र कहीं-कहीं बहुत बुरी तरह बिगड़ जाते हैं। जब किसी बहती हुई धारा के प्रतिकूल किसी सत्य की बुनियाद पर ठहरकर कोई उपन्यास-कार कोई नवीन रचना-प्रयत्न करता है, तब वहाँ उसकी प्रकृति में ही उसकी रचना विशिष्ट शक्ति को लेकर प्रकट होती है, इसलिये वहाँ कलाकार का महत्त्व कला से अधिक रहता है, और इसलिये कला भी प्रौढ़ हाथों से विकसित होने की आख्या तथा प्रसिद्धि प्राप्त करती है। हिंदी में एक तो नवीन परिवर्तन कोई ऐसा हुआ नहीं, दूसरे शिक्षा के अभाव के कारण खेत भी ऊपर ही पड़ा रहा, यद्यपि प्रकृति उस पर नियमा-नुसार ही वर्षा करती रही; अधिकांश जंगली वृक्षों तथा बबूलों की ही उपज उस पर हुई, कुछ प्रसून भी खुले, जिन्हें जंगली काँटों ने रूँध रक्खा।

हिंदी के जो सबसे बड़े औपन्यासिक हैं, उन्होंने भी पूर्व-कथन के अनुसार युग-प्रवर्तन करनेवाली रचनाएँ नहीं दीं, युग के अनुकूल रचनाएँ की हैं—प्रायः आदर्श का पल्ला नहीं छोड़ा। यद्यपि उनके पात्र कभी-कभी प्राकृतिक सत्य की पुष्टि अपने उल्लंघनों तथा उच्छृंखलताओं के वशीभूत होकर कर जाते हैं, फिर भी रचना में उनके आदर्शवाद की ही विजय रहती है; उनके सितार में वही बोल ज़्यादा स्पष्ट सुन पड़ता है। हिंदी के और-और उपन्यासकारों की हम कोई भी चर्चा नहीं करेंगे। कारण, उनकी रचना में ख़ूबियों की जगह कमज़ोरियों के ही बीमार चित्र अधिक मिलते हैं। कहीं भाषा रो रही है; कहीं अंधे भाव को रास्ता नहीं सूझता; कहीं अकारण ही सफ़े-के-सफ़े रंग डाले हैं; कहीं चित्र ही की नाक काट ली है। किसी-किसी महालेखक की भाषा तो स्थूलांगी, कुरूपा स्त्री की तरह, देख पड़ती है, जो अपनी जगह से ज़रा भी नहीं हिलना चाहती, और उसी को देखकर भक्त लोग मुग्ध हो रहे हैं। इस रुचि से हिंदी की रुचि का भी पता चल जाता है। समाज की पूर्वोक्त रुचि के भीतर पलने के कारण अच्छे उपन्यास को भी एक ही जगह सफलता मिली है—ग्राम्य चित्रों के अंकण में, ग्रामीणों के साधारण चित्रों को असा-धारण स्वाभाविकता के साथ खोलने में और मनुष्य-मन की छान-बीन में। इतनी ही विभूति हिंदी के उप-न्यास-साहित्य का ऐश्वर्य है। समाज की अनुकूल धारा में रहकर जो कुछ रत्न हिंदी के उपन्यास-साहित्य में आए, वे यही हैं। इनमें लेखनी की तूलिका से, हिंदी-संसार की स्थिति और भारतीय मनों के विभिन्न परिचय, साहित्य के पृष्ठों में, सफल चित्रों के रूप से, अंकित हुए हैं।

पर यह समाज के ऊँचे अंग का चित्रण नहीं। जब तक चित्रकार स्वयं उसकी उच्चता के शिखर पर पहुँचकर उसकी श्री तथा शोभा में स्वयं आत्म-विस्मृत नहीं हो जाता, अपने वायुमंडल को तदनुकूल नहीं बना लेता, उसी में अपने जीवन को नहीं घेर लेता, उसी

की आत्मा में अपने को नहीं डुबा देता, केवल दर्शक की तरह दूर रहकर, एक दूसरे वायु-मंडल में साँस लेकर, तटस्थ रहकर, उसके चित्रों को सफलता से खींचना चाहता है, तब तक प्रायः सफलता नहीं होती। भीतर एक दूसरी ही सभ्यता रहेगी, और साहित्य में एक दूसरी सभ्यता की परा काष्ठा तक पहुँचकर, प्राणों तक पहुँचकर उत्कर्ष प्राप्त करना आकाश पर दीवार उठाना है। इसीलिये हिंदी के उपन्यासों में और प्रायः सब जगह, अधिकांश चित्र, नवीन सभ्यता, नवीन प्रकाश के प्रदर्शन में असफल ही रहे हैं। अँगरेज़ी के अनेक भारतीय लेखक, जिन्हें विलायत में ही शिक्षा मिली है, अँगरेज़ी कविता तथा उपन्यासों के लिखने में प्रायः असफल ही रहे हैं, इसका कारण यही है। उनके हृदय के स्वर से अँगरेज़ी सभ्यता का स्वर नहीं मिला। कृत्रिमता जाति के प्राणों को नहीं हिला सकती।

जिस बृहत्तर भारत की आवाज़ उठाई जाती है, ख़ासकर बंगाल के ब्राह्मसमाज में, उसका नक़्शा उनके दिलों में इसी आधार पर खिंचा हुआ है। जो लोग कुछ तह तक पहुँचकर चित्रों को तोल सकते हैं, वे जानते हैं कि इस आवाज़ के अनुकूल चलना अभी भारत के अधिकांश जन-समूह के लिये असंभव है। पर यह है एक बड़ी सुंदर धारणा अवश्य, और सत्य का आश्रय लेकर प्रतिष्ठित हुई जान पड़ती है। भारत के लिये यह नई बात नहीं। शकुंतला जंगल में रहती है। पर कालिदास की लेखनी से जिस शकुंतला का चित्र अंकित होता है, वह सभ्य-से-सभ्य मनुष्य के हृदय पर अधिकार कर सकती है। वजह वही, कालिदास सभ्यता के अंतिम सोपान तक पहुँचकर वहाँ अपनी सत्ता को मिलाना जानते थे। आज हिंदोस्तान के वे गौरव के दिन नहीं रहे, इसलिये सर उठाते वक़्त सर पर रक्खा हुआ सदियों की दासता का बोझ नीचे दबा देता है, और दुर्बल मनुष्य, शक्ति के अभाव के कारण, शक्तिवालों की बराबरी नहीं कर पाता—सर झुका लेता है—वे कमज़ोरियाँ फिर उस समुदाय पर सवार हो जाती हैं। इसीलिये उन औपन्यासिकों की रचनाएँ भी उन्हीं की तरह सर के दुर्वह भार की ही सूचना देती रहती हैं। आँख उठाकर देखने के अभाव से उनके कल्पित चित्र भी नेत्र-हीन होते हैं, लक्ष्य-भ्रष्ट और पतित।

राजनीति के मैदान में, जिस तरह बड़ी-बड़ी लड़ाइयों के लिये सर उठाना आवश्यक है, उसी तरह साहित्य के मैदान में भी है, और चूँकि अभी इस लड़ाई का हमारे साहित्य में कहीं भी नज़ारा नहीं देख पड़ता, इसलिये साहित्य के मुख्य-चित्रण-अंग उपन्यासों की भी दुर्दशा है। "वह रोटी पकाती थी, बर्तन मलती थी, धुएँ में परेशान हो रही थी।" आदि चित्र समाज के ऊँचे अंग के चित्र नहीं और इन देवियों में अपार भारतीयता का प्रदर्शन कर आदर्श की परा काष्ठा पर काष्ठ की तरह निश्चल बैठे हुए हिंदू-समाज को हिला देना भी हमारा उद्देश्य नहीं। कारण, हम किसी का घोंसला नहीं छीनते। हाँ, कहेंगे, घोंसलेवाले हमें घोंसलेवाले ही दीखते हैं, और उनके चित्र वर्तमान उन्नत समाज के मुक़ाबले वैसे ही अधम।

× × ×

८. प्रो० लाला भगवानदीनजी 'दीन' का स्वर्गवास

अपनी अविनश्वर कृति से हिंदी-संसार को उन्नति के मार्ग पर कुछ क़दम आगे बढ़ाकर हिंदी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् कविवर लाला भगवानदीनजी 'दीन' गत २८ जुलाई को रात दस बजे के लगभग २२ रोज़ तक बीमार रहकर त्रिदोष के स्पर्श से नश्वर शरीर को छोड़ स्वर्ग सिधार गए। आपकी मृत्यु से हिंदी-साहित्य की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। ईश्वर आपके परिवार के लोगों तथा प्रिय जनों को धैर्य और आपकी आत्मा को स्वर्ग में शांति दे।

लालाजी की प्रतिभा के विकास का केंद्र छतरपुर है। वहीं से अध्यापन-कार्य करते हुए आपने हिंदी-साहित्य का अध्ययन किया, और हिंदी के प्राचीन

साहित्य के पारंगत विद्वान् हो गए । छतरपुर से आप काशी गए और यहाँ से आपकी साहित्य-सेवा क्रमोन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने लगी । आप एक ही आधार में कवि, समालोचक, टीकाकार, लेखक तथा प्रसिद्ध अध्यापक थे । आपकी विद्वत्ता से आकृष्ट हो महामना मालवीयजी ने आपको हिंदू-विश्वविद्यालय का अध्यापक नियुक्त कर लिया था । कई साल से आप वहाँ हिंदी के अन्यान्य अध्यापकों की तरह विद्यार्थियों को पढ़ा रहे थे ।

व्रजभाषा-साहित्य में लालाजी ने बड़ा परिश्रम किया। उसके अनेक ग्रंथों की टीकाएँ कीं । "अलंकार-मंजूषा" से आपके अलंकार-ज्ञान का परिचय मिल जाता है । पहले कई साल तक आपने "लक्ष्मी" का संपादन किया था । आपने केशव की कविताओं पर टीका लिखी, "तुलसी-ग्रंथावली" का संपादन किया । "नवीन बीन", "वीर-पंचरत्न", "बिहारी और देव" आदि अनेक गद्य-पद्य की पुस्तकें लिखीं ।

आप अच्छे समालोचक थे । स्वभाव में विरोधियों के प्रति लिखते समय कुछ कटुता आ जाती थी। "भारत-भारती" की आपने बड़ी तीव्र आलोचना की थी। इसी तरह "मतवाला" में बिहारी की प्रतिष्ठा घटाने के लिये देव के पक्षपातियों के ख़िलाफ़ लिखा। आलोचना करते समय आप जामे से बाहर हो जाते थे। इसलिये लोग प्रायः आपको चिढ़ा दिया करते थे। इतने पर भी स्वभाव के आप बड़े प्रसन्न तथा मिलनसार थे । आप वर्तमान छायावाद के ख़िलाफ़ थे। यह आपसे बहस करने का आपके विद्यार्थियों के लिये एक कारण बन गया था ।

आपकी तीन शादियाँ हुईं । आपकी पत्नी स्वर्गीया बुंदेला बाला हिंदी की अच्छी कवयित्री थीं । इस समय आपकी एक छोटी कन्या ही आपके वंश की प्रदीप है ।

× × ×

६. साइमन-रिपोर्ट

सर जॉन साइमन की रिपोर्ट के पहले खंड की आलोचना हम कर चुके हैं । भारत-सचिव ने "Historical State Document" कहकर उसका स्वागत किया है, वहीं दूसरे लोगों ने उसे कोरी नक़ल कहकर दिल्लगी भी उड़ाई है । रिपोर्ट का दूसरा खंड भी २४ जून को प्रकाशित हो गया । तथ्य की बातें इसी में हैं ।

कहते हैं, सर जॉन साइमन विलायत के सबसे बड़े बैरिस्टर हैं । सुनते हैं, उनकी आमदनी सालाना ६ लाख रुपए थी । इतने बड़े बैरिस्टर और एक-चौथाई पृथ्वी पर शासन करनेवाले इँगलैंड के बैरिस्टर सर जॉन साइमन ने भारत की समस्याओं पर विचार करते हुए दिमाग़ का दिवाला निकाल दिया । पहले खंड में जितने प्रकरण आए हैं, वे सब जान-बूझकर रक्खे गए हैं, सिद्धांत की पुष्टि के विचार से, जैसे सेना की रक्षा के लिये कहीं क़िलेबंदी की गई हो, कहीं खाईं खोद डाली गई हो, कहीं पड़ाव खड़ा कर दिया गया हो । सुविधानुसार जहाँ जैसी ज़रूरत मालूम हुई, घटनाओं का घुमाव, गुप्त-लुप्त-रीतियाँ अख़्तियार की गई हैं, फिर भी पहले खंड में समझाने के लिये भरसक प्रचार किया गया है कि किसी पक्षपात का सहारा नहीं लिया गया । उदाहरणार्थ, गत दस वर्षों के राजनीतिक इतिहास की आलोचना पेश करते हैं । इससे साइमन-रिपोर्ट के अंदर छिपे हुए उनके मनोभाव अच्छी तरह ज़ाहिर हो रहे हैं । रौलट-ऐक्ट के पास होने के बाद जनता की उत्तेजना का बैरिस्टरी ढंग से ही उल्लेख किया गया है । पर जिन कारणों से यह उत्तेजना प्रकाशित की गई थी, इनकी कोई भी कथा नहीं । जलियानवाला बाग़ और डायर-ओडायर के कृत्यों पर केवल यह लिखकर छोड़ दिया गया कि यह १९१९ ई० के मार्च में एक विशाल जन-दौरात्म्य (Mob Violence) हुआ था, ख़ास तौर से पंजाब और गुजरात में और इससे अमृतसर के जलियानवाला बाग़ की दुर्घटना हुई । ऐसी-ऐसी नाज़ुक-ख़याली इस रिपोर्ट में भरी हुई है । उस आंदोलन को (Mob Violence) के रूप में खड़ा किया गया

है । हम समझते हैं, सर जॉन साइमन अगर कविता लिखते होते, तो बड़ा नाम पैदा करते—आपकी कल्पना-शक्ति-प्रचंड है ।

इस रिपोर्ट की एक बड़ी तारीफ़ यह हुई है कि सात के सातो इससे सहमत हैं । लोग कहते हैं, तभी तो चुन-चुनकर भेजे गए थे, और तबेले की लतिश्रौभ बुरी भी है, फिर उस समय जब कि "पहले डंके में जिन बंदी" का मौक़ा हो । लोग कहते हैं, सातो के सहमत होने की आवाज़ उठानी न थी, इससे "guilty concience" (बुरा मतलब) पकड़ में आ जाता है । अकालियों के आंदोलन को सांप्रदायिक स्वार्थ से प्रेरित होकर किया गया लिखा है । एक जगह कहा गया है कि मिस्टर गांधी के विरोध करने पर भी स्वराज्य-दल के लोग जातीय दल की सहायता से व्यवस्था-परिषद में आते हैं । परंतु सत्य यह है कि जब स्वराज्य-दल के लोग व्यवस्था-परिषद गए थे, तब महात्माजी यरवदा-जेल में थे, और वोटरों से उन लोगों ने यह कहा था कि परिषद में जाकर महात्माजी की मुक्ति के लिये प्रयत्न करेंगे । इस तरह की बातों से सिर्फ़ पंद्रह सफ़े में दस साल का इतिहास ख़त्म है ।

दूसरा खंड ३१६ सफ़े का है । इसके बारह प्रकरण हैं । इस रिपोर्ट ने अपने ३१६ पृष्ठों में ज़ाहिर कर दिया कि भारत के स्वाधिकार-शासन के लिये १६१६ ई० के इंडिया-ऐक्ट में जो आश्वासन था, वह आश्वासन-मात्र है । अब इन ग्यारह वर्षों के बाद ब्रिटिश गवर्नमेंट ने सूचित कर दिया कि इँगलैंड भारत के अधिकारों की बात पर किसी तरह भी रहम-दिली नहीं दिखला सकता ।

इस रिपोर्ट के जिस हिस्से में शासनाधिकारों पर विवेचन किया गया है, वहाँ बड़े लाट साहब को इसी तरह क़ायम-मुक़ाम रक्खा है, बल्कि उनके अधिकारों को सुदृढ़ तथा और भी व्यापक करने की कोशिश की गई है । प्रादेशिक शासकों को उनके संकेत के अनुसार चलना होगा । बड़े लाट भारत-सचिव या व्यवस्थापक सभा के निकट उत्तरदायी न होंगे । ऐसे शासन का नाम गणतंत्र अथवा स्वाधिकार-शासन होगा । खुफ़िया-पुलिस पर बड़े लाट साहब का प्रत्यक्ष-संबंध तथा अधिकार रहेंगे । प्रादेशिक शासक अथवा मंत्रियों का निर्वाचन उन्हीं की मंज़ूरी से होगा । मांटफ़ोर्ड-स्कीम में यद्यपि जो कुछ भी स्वतंत्रता प्रादेशिक शासकों को दी गई थी, वह "Provincial Fund" (प्रादेशिक कोष) की रचना द्वारा छीन ली गई । अर्थात् मांटफ़ोर्ड-स्कीम के अनुसार प्रादेशिक शासक ऋण-संग्रह कर सकते हैं; पर साइमन-स्कीम के अनुसार नहीं कर सकते; ऋण लेना और ब्याज का निश्चय करना बड़े लाट साहब पर निर्भर है । बड़े लाट साहब की कार्य-कारिणी समिति के सदस्य अब तक सम्राट् द्वारा चुने जाते थे, परंतु साइमन-रिपोर्ट के अनुसार बड़े लाट स्वयं अपने इच्छानुसार सदस्यों की नियुक्ति करेंगे । इस तरह की अनेकानेक बातें हैं, जिनके उल्लेख से व्यर्थ ही समय का व्यय है । उनकी सारवत्ता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि शिमले में गये पर दोनो खंड रिपोर्ट लादकर जनता ने जुलूस निकाला, और फिर उनका अग्नि-संस्कार किया, लाहौर में पचास हज़ार लोगों ने साइमनों की सात मूर्तियाँ तैयार कर जुलूस निकाला, और लाला लाजपतराय की मूर्ति के सामने रिपोर्टों के साथ उन्हें जला दिया ।

× × ×

१०. आचार्य सर प्रफुल्लचंद्र राय का भाषण

प्रतिभा के कारण कविवर रवींद्रनाथ तथा सर जगदीशचंद्र वसु की जैसी प्रसिद्धि देश तथा विदेशों में है, वैसी ही, उतनी ही सीमा तक पहुँची हुई आचार्य राय की भी है । पर जिस जगह चारित्रिक ढ़ाक° का प्रसंग छिड़ता, देश-प्रेम की चर्चा होती है, वहाँ आचार्य राय अनतिक्रम्य, देश को प्रकाशित करनेवाले एक ही कौस्तुभ-मणि हैं । आपकी महत्ता तथा प्रतिभा की व्याख्या नहीं हो सकती । आप

भारत-सरकार से 'रजिस्ट्री' कराया हुआ

संजीवन बूटी

प्लेग, हैज़ा, निमोनिया, कफ, खाँसी, दमा, शूल, संग्रहणी, बालकों के हरे-पीले दस्त वा दूध पटकना आदि रोगों की ३० साल की परीक्षित अचूक दवा है। दाम १ शीशी ।), डाक-ख़र्च जुदा। दर्जन ५) मय डाक-ख़र्च।

प्रभाकर आमला आइल

अद्भुत आयुर्वेदिक औषधियों से तयार किया हुआ यह तेल सर में दर्द, चक्कर आना, दिमाग़ी थकावट आदि को दूर करके ठंढक आराम वा गुद-गुदापन पैदा करता हुआ बालों को मुलायम चमकदार लंबे वा भँवरे के समान स्याह करता है। इसकी मनोहर सुगंध को तो कहना ही पड़ेगा कि अद्भुत है। दाम बड़ी १२ औंस की कुप्पी १।), डाक-ख़र्च ।।); छोटी ६ औंस की ।।।-), डाक-ख़र्च ।।-)

माधुरी स्नो

चेहरे के काले दाग़-धब्बे दूर करके मुँह का रंग गोरा मुलायम वा सुर्ख़ बना देती है। मुँह से मनोहर सुगंध बराबर रात-दिन २४ घंटे आती है। दाम १ शीशी १), डाक-ख़र्च ।≡); तीन मय डाक-ख़र्च ३।) कपड़ों वा जेब में रखने के ख़ुशबूदार कार्ड ।।।) दर्जन।

प्रदरान्तक

स्त्रियों के सब प्रकार के प्रदर वा मासिक धर्म की ख़राबी, कमज़ोरी, कमर, पेट, पेड़ू की दर्द आदि को दूर कर शरीर को तंदुरुस्त, ताक़तवर; फुरतीला वा ख़ूबसूरत बनाकर नीरोग औलाद पैदा करने योग्य बना देती है। दाम १ शीशी १।), डाक-ख़र्च ।≡); तीन शीशी ४) मय डाक-ख़र्च।

ज़्यादा हाल के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइए—सुख-सागर औषधालय, झाँसी

हिंदुस्थान-भर को आपके

माल

की ज़रूरत है।

१०,००० एजेंट आपका माल लेने और बेचने को तैयार हैं।

कैसे ?

मैनेजर 'सुधा', लखनऊ से पूछिए।

नोट—ऑर्डर देते समय [illegible] में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ३८३ सन् १९३० ई०

बअदालत जनाब पंडित हरीशंकर चतुर्वेदी मुंसिफ़ साहब बहादुर मुंसिफ़ी जनूबी उन्नाव

शिवमंगल वल्द रामचरण चमार सा० अकबरपुर परगना हड़हा मुद्दई

बनाम

रामाधारसिंह मुद्दाअलेह

बनाम रामाधारसिंह व० इंद्रजोतसिंह ठाकुर साकिन किरौंचोबंदर गोंदो केरी छापे में पहुँचकर बिसुनदयाल परमैते के यहाँ रामाधार को मिले

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ७६।-) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ २४ माह सितंबर सन् १९३० ई० बवक्त दस बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ ४ माह सितंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

नोटिस निस्बत दिखाने वजह के (नमूना समेत)

बअदालत जनाब अडीशनल सब जज साहब बहादुर गोंडा मुक़ाम गोंडा

मुक़द्दमा नंबर ४९ सन् १९२८ ई०

बनाम

फ़र्म छम्मूलाल छंगामल पृथ्वीनाथ

बनाम मु० हरीबा दुख़्तर सुबराती ज़ौजा मोहनलाल क़ौम मुसलमान साकिन शहर गोंडा मु० [illegible] परगना व ज़िला गोंडा

हरगाह मुसम्मे मुद्दई ने दरख़्वास्त इस अदालत में गुज़रानी है कि डिगरी क़तई की जावे।

लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि तुम असालतन या मार्फ़त किसी वकील के जो हालात मुक़द्दमे से बख़ूबी वाक़िफ़ है बवक़्त दस बजे बतारीख़ १८ माह अक्टूबर सन् १९३० ई० इस अदालत में हाज़िर होकर दरख़्वास्त के ख़िलाफ़ वजह दिखाओ अगर ऐसा न करोगे तो दरख़्वास्त मज़कूर तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में समाअत की जावेगी।

आज बतारीख़ १२ माह सितंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

बहुक्म विश्वेश्वरप्रसाद डिगरी रायटर बजाय मुंसरिम

आर्डर ५ रूल २० ज़ाब्ता दीवानी
सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर ७८२ ख़फ़ीफ़ा सन् १९३० ई०

बअदालत जनाब कुँवर रघुराजसिंह साहब बहादुर मुंसिफ़ कुंडा मुक़ाम परतापगढ़

मुसम्मात रसीदा बीबी ज़ौजे शेख़ मुराद क़ौम मुसलमान साकिन संदौर परगना भार तहसील कुंडा ज़िला परतापगढ़ मुद्दई

बनाम

शम्सुद्दीन मुद्दाअलेह

बनाम शम्सुद्दीन वल्द शेख़ क़ासिम साकिन सरखलपूर परगना नवाबगंज तहसील सुराम ज़िला परतापगढ़ हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २४३।-) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ९ माह अक्टूबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे, तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १० माह सितंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया। जज

आर्डर ५ रूल २० ज़ाब्ता दीवानी
सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० ७३० सन् १९३० ई०

बअदालत जनाब कुँवर रघुराजसिंह साहब बहादुर मुंसिफ़ कुंडा ज़िला परतापगढ़

रामनाथ वल्द रामकुमार क़ौम ब्राह्मण मिश्र साकिन मौज़ा जगन्नाथपूर परगना रामपूर ज़िला परतापगढ़ मुद्दई

बनाम

रामसुख मुद्दाअलेह

बनाम रामसुख वल्द रामदास क़ौम ब्राह्मण मिश्र साकिन सूरानबारीलाल परगना रामपूर ज़िला परतापगढ़ हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दिला पाने मुबलिग़, २८॥≡)१० के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ६ माह अक्टूबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़े मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल तई मुक़द्दमा के तजवीज़ हुई है। पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा तुम्हारी ग़ैर हाज़िरी में मस्मू व फ़ैसल होगा। आज बतारीख़ ३ माह सितंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नं० ६६० सन् १९३० ई०

बअदालत जनाब पंडित प्यारेलाल भार्गव साहब मुंसिफ़ मुंसिफ़ी जनूबी मुक़ाम हरदोई

रामसेवक वल्द रघुनंदनप्रसाद क़ौम ब्राह्मण साकिन मौज़ा लालपूर फाटक परगना गोंडवा तहसील संडीला

मुद्दई

बनाम

बेचन

मुद्दाअलेह

बनाम बेचन वल्द फ़तह क़ौम पासी साकिन मौज़ा लालपूर फाटक परगना गोंडवा तहसील संडीला

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २२६।=)॥ के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १४ माह अक्टूबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है। पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

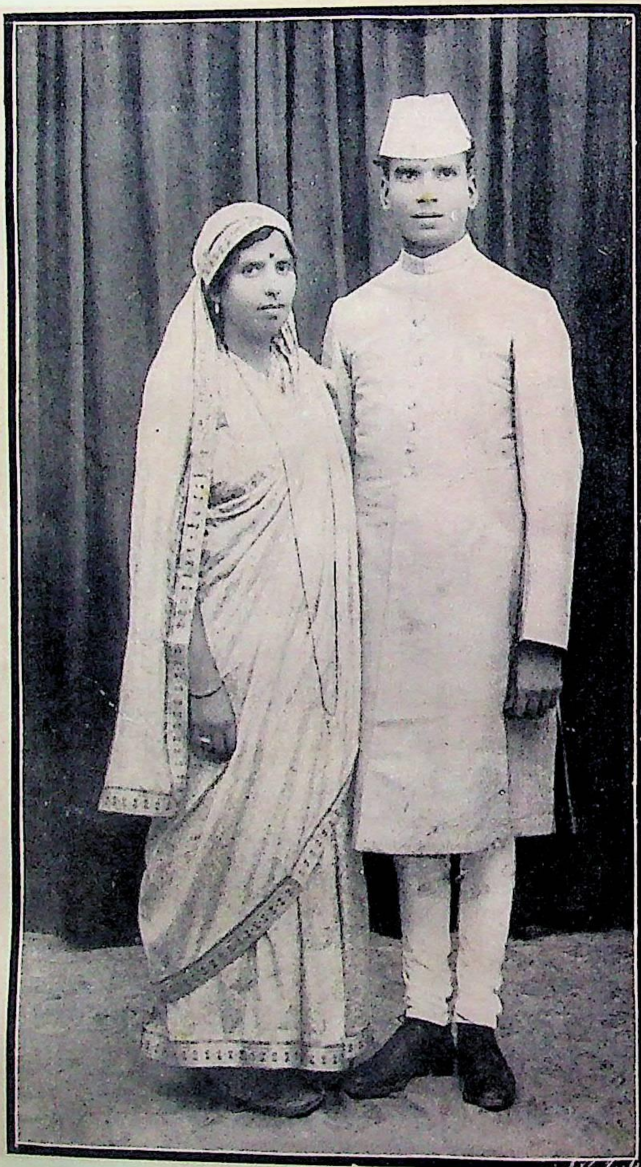
मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १३ माह सितंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज



पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०

[हिंदी-अध्यापक लखनऊ-विश्वविद्यालय। आप हिंदी के प्रसिद्ध हास्य-रस-लेखक, नाटककार और सुकवि हैं।]



ट्रिब्यून के उप-संपादक श्रीयुत जंगबहादुरसिंह बी० ए० और उनकी विदुषी धर्म-पत्नी श्रीमती ज्ञानदेवी स्नातिका, विशारदा

[इस आदर्श दंपति का अभी गत वर्ष ही अंतर्जातीय विवाह हुआ है ।]

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

विद्यार्थियों के प्राण, देश की वेदी पर सर्वस्व चढ़ा देनेवाले महापुरुष हैं। आपके उज्ज्वल चरित्र का अंदाज़ा इससे लगाइए कि बंगाल की पर्दानशीन महिलाएँ भी आपके निर्मल देश-प्रेम तथा समाज-संस्कार के उपदेश सुनने के लिये आपको अपने घरों पर बुलाती और असंकुचित हो आपसे वार्तालाप करती हैं। आपसे बढ़कर बंगाल में और कोई भी व्यक्ति नहीं, जिस पर सर्व-साधारण अकुंठित चित्त से श्रद्धा करता हो। आप सिर्फ़ एक कमीज़ और सली-पर पहने हुए मिलेंगे, जो बंगाल की प्रचलित और सादी पोशाक है। जो लोग केवल आपके नाम से परिचित हैं, और आपको देखा नहीं, वे कॉलेज-स्कायर में टहलते हुए आपको देखकर कभी-कभी धक्के मारकर भी चले जाते हैं। आप दुबले-पतले, हँसकर रह जाते हैं। "बंगाल-कैमिकल्स" के आप ही अधिष्ठाता तथा संरक्षक हैं।

अभी बंबई में आपका एक महत्त्व-पूर्ण भाषण हुआ। उसमें आपने कहा, देश के जो लोग देश ही की बनी हुई चीज़ों का उपयोग नहीं करते, वे देश के साथ विश्वासघात करते हैं। आंदोलन के संबंध में आपने एक बात बड़े मार्के की कही। विदेशी बहिष्कार के द्वारा विशेष फल नहीं मिल सकता, यदि स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार तथा निर्माण न हो। आपने कहा, मेरे जीवन का सबसे प्रिय विषय स्वदेश की वस्तुओं तथा वस्त्रों का प्रचार है। बंगाल-कैमिकल की स्थापना का यही कारण है। यदि केवल विदेशी द्रव्यों का बहिष्कार जारी रहा, और देश ने उस अभाव की पूर्ति न की, तो एक दिन देश को इसके लिये विशेष रूप से नीचा देखना होगा। आपने व्यापार-संबंधी और-और बातें समझाईं। आपका ध्यान उस दिन की तरफ़ लगा हुआ है, जब भारत की बनी हुई चीज़ें, वस्त्र तथा अन्यान्य द्रव्य पहले की तरह फिर विदेशों को जाया करें। औद्योगिक प्रचार तथा प्रसार के लिये आपने बड़ा ज़ोर दिया।

× × ×

११. पटेल-रिपोर्ट ज़ब्त

पेशावर की जाँच करके उसकी रिपोर्ट श्रीयुत पटेल ने ला-जर्नल-प्रेस में छपने के लिये दी थी। कुछ दिन पहले अख़बारों में पढ़ा था कि उसकी कुछ प्रतियाँ बंबई भेजी जा रही थीं, पर रास्ते में रोक ली गईं। अब मालूम हुआ कि रिपोर्ट सरकार द्वारा ज़ब्त कर ली गई, साथ ही पढ़ा इलाहाबाद के ला-जर्नल-प्रेस से ५०००) की ज़मानत ली गई है।

× × ×

१२. पेशावर की स्थिति

टाइम्स ऑफ़् इंडिया आदि पत्रों से पेशावर की जिस स्थिति का पता चलता है, उससे मालूम हुआ कि वहाँ की हालत उत्तरोत्तर ख़राब होती जा रही है। बहुत जगह गर्मी को शांत करने के लिये दमन-नीति को छोड़कर साम-नीति अख़्तियार की जाती है। सीमा-प्रांत के लोग ऐसे नहीं हैं, जो बराबर दमन सह सकें। आग-पर-आग झोंकते रहने का कभी भयंकर परिणाम प्रस्फोट के रूप से निकलता है। पर भारत-सरकार दमन के प्रभाव से ही उत्तेजना शांत किया करती है। ख़बर है, पेशावर में इस समय ज़िले-भर में मार्शल-ला जारी है, और सीमा-प्रांत के कमिश्नर को इच्छानुसार फ़ौजी क़ानून के प्रयोगो-पयोगों के अधिकार मिल गए हैं। बलवाइयों के दमन के लिये उन्होंने ज़िले के कई केंद्र कर हर जगह एक-एक नियंत्रणकारी रख दिया है। बलवाई अफ़रीदियों की, कहते हैं, कांग्रेस से सहानुभूति है, और वे लोग गांधीजी के बड़े भक्त हैं। एक बार एक महिला खद्दर धारण किए रहने के कारण इनके हाथों पड़कर भी बच गई। उसकी समझ में इनका "गांधी मलंग" शब्द ही आया। लिखा है, इस दल के एक नायक ने गांधीजी की मुक्ति के लिये सरकार को लिखा है। बाहर के अफ़रीदी लोगों को गाँववाले छिपा लेते हैं, जिससे दमन करने की असुविधा होती है। समय बर-सात का है, इसलिये फ़सल के कारण राह भी नहीं मिलती, जिससे अधिक सैन्यों का संचालन किया

जाय। और, बलवाई लोग खड़ी फ़सल में छिप जाते हैं। और जातियाँ भी अफ़रीदियों से मिली हुई हैं।

× × ×

१३. पं० रामजीलाल शर्मा का देहांत

यह लिखते हुए हमें अत्यंत शोक है कि अभी हिंदी के हृदय में 'दीनजी' के देहांत का घाव ताज़ा ही था कि एक दूसरा घाव इलाहाबाद के हिंदी-प्रेस के मालिक पं० रामजीलाल शर्मा के स्वर्गवास से फिर लग गया। आप कुछ समय से बीमार थे, पर किसी को यह विश्वास न था कि इतनी जल्द आप मित्र-मंडली से उठ जायँगे। पर ईश्वर की इच्छा पर बस किसका है ? ३० अगस्त को शाम साढ़े सात बजे, ४१ साल की उम्र में, आप शरीर त्याग कर गए। आप हिंदी के प्रसिद्ध मनुष्यों में थे। आपने कई पुस्तकों की रचना की। कई साल से इलाहाबाद के आर्य-समाज के सभापति थे। "विद्यार्थी" और "खिलौना" के आप संपादक थे। कई साल तक आप अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री रह चुके थे। एक बार आपने प्रांतीय साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व भी किया था। आपके शरीरांत से हिंदी की बहुत बड़ी क्षति हुई। ईश्वर आपके शोक-संतप्त परिवार को धैर्य तथा आपको शांति दे।

× × ×

१४. समाज और महिलाएँ

इस समय देश-भर की महिलाओं में एक नवीन ज्योति, एक नवीन जागृति के चिह्न देख पड़ते हैं। भारतवर्ष की महिलाओं के लिये यह कुछ बड़े महत्त्व की बात नहीं थी। संस्कारों से वे पहले ही से तैयार थीं। सिर्फ़ एक मार्ग-प्रदर्शक उन्हें चाहिए था। वह मिल गया। इस समय देश के हर प्रांत की महिलाएँ पर्दे से बाहर निकलकर अपने भविष्य-जीवन के निर्माण तथा अधिकारों की आलोचना करने लगी हैं। बहुत पहले महिला-समाज में समाज-प्रदर्शिका के रूप से दो महिलाएँ निकली थीं, एक श्रीमती सरला-देवी चौधरानी बी० ए०, दूसरी भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू। श्रीसरलादेवी के विवाह में पंजाब और बंगाल, भारत के दो सीमा-प्रांत संम्मिलित होते हैं, और श्रीसरोजिनीदेवी के विवाह में जातीय प्रथा की जड़ कटती है। श्रीसरलादेवी के विवाह में स्वर्गीय पं० रामभजदत्त चौधरी की तरफ़ से आर्य-समाजानुसार वैदिक विवाह-पद्धति और श्रीसरलादेवी की ओर से ब्राह्मसमाज की प्रचलित विवाह-पद्धति काम में लाई गई थी। इन दो अलग-अलग धर्मों में भी वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ था। इसके बाद इस प्रकार के अनेक विवाह हुए। पर स्त्रियों की प्रगति फिर भी मंद थी। अब उन देशों में भी, जहाँ महिलाओं के लिये घोर अवरोध-प्रथा है, निषेधात्मक अनेक द्वार खुल गए, और वे सभा-समितियों में बड़े चाव से भाग लेने लगीं। इससे यह जान पड़ता है, अब समाज-संस्कार में विलंब नहीं। अभी तक बहुत जगह देख पड़ता था कि सामाजिक विषयों में पति-पत्नी की राय नहीं मिलती, और प्राचीन प्रथा के अनुकरण के लिये पति को पत्नी की वश्यता अनिच्छा-पूर्वक भी स्वीकृत करनी पड़ती थी। इस तरह प्रगति में बाधा पहुँचती थी। मसलन गंगा नहाकर दान देने की बात लीजिए। पति कहता है कि इस दान से पंडे लोग अनाचार करते हैं, जुआ खेलते हैं, रंडियों को खिलाते हैं, यह ठीक नहीं; न गंगा नहाओ और न दान दो। पर पत्नी की भक्ति के कारण पति को तदनुकूल आचरण करना पड़ता था। इस तरह की तीर्थ-भ्रमण, विवाह, दहेज़, कौलिन्य-रक्षा आदि अनेक बातें हैं। प्रायः सभी जगह महिलाएँ प्राचीनता की रक्षा के लिये बाधक हो जाती थीं। पर अब इस आंदोलन से और कुछ हो न हो, उनके अंदर विचार करने के अंकुर उठ गए हैं, जिससे भविष्य की आशा आशु-फल-प्रद जान पड़ती है। देश की रक्षा के साथ और कुल समस्याएँ एक जाल में सिमटी हुई तमाम मछलियों की तरह आ जाती हैं, और इस जाल के पकड़ने से वे और सबको आसानी से पकड़ लेंगी।

× × ×

१५. समझौते में निराशा

इधर महीने-भर से देश की आँखों के एक निशाना सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीयुत जयकर रहे हैं, जब से इन लोगों ने समझौते का सवाल खड़ा किया। जब समझौते के लिये नेताओं की बैठक नहीं हुई थी, सर सप्रू और श्रीयुत जयकर दौड़-धूप कर रहे थे, उस समय, श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू ने लखनऊ की एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए कहा था, सरकार ख़ुशामद करनेवालों को ख़ूब पहचानती है—वह सच्चे आदमियों की भी पहचान रखती है, इन एलचियों का परिणाम देखकर आप लोगों को नेताओं के हृदय के भाव मालूम हो जायँगे। वैसा ही हुआ भी। पं० मोतीलालजी तथा पं० जवाहरलालजी यरवदा गए। वहाँ कांग्रेस के प्रमुख कई नेता महात्मा गांधी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्रीजयरामदास-दौलतराम आदि ने मिलकर समझौते का जो रूप तैयार किया, वह बड़े लाट साहब को मंज़ूर नहीं हुआ। नमक-कर का उठ जाना, राजनीतिक क़ैदियों का छुटकारा पाना, राजनीतिक मामले में हरजा उठाए हुए लोगों को हरजाना देना आदि और-और कुछ ऐसी पेशबंदियाँ स्वराज्य के लिये की गई थीं, जिनसे बड़े लाट साहब सहमत नहीं हो सके, और शायद सहमत हो भी नहीं सकते। क्योंकि वह व्यक्तिगत रूप से भारत के जितने भी हितचिंतक हों, जब भारत का समष्टिगत कोई सवाल उनके सामने पेश होगा, उस समय वह अपनी सीमित शक्ति से ही विचार करेंगे। इधर नेता लोग भी दूध के कई बार जले हुए हैं, इसलिये मट्ठा भी फूँक-फूँककर पीते हैं। अब इस साँप-छछूँदर-प्रकरण का कहाँ अंत होगा, यह समझ में नहीं आता। सरकार की तरफ़ से दमन में प्रशमन नहीं हो रहा, पर यह ज़रूर है कि दमन के लिये उसके पास जितनी शक्ति है, उसका पूर्ण रूप से प्रयोग वह नहीं करती, और जहाँ तक हमारा विचार है, इस शांति-युद्ध में उसका पूर्ण प्रयोग हो भी नहीं सकता। जहाँ तक संभव है यानी आंदोलन का समतोल-बल सरकार की तरफ़ से भी लग रहा है। पर समझौते की चर्चा का अभी अंत भी नहीं हुआ। जयकर और सप्रू साहब फिर शिमले में बड़े लाट साहब से मिले थे। जयकर के साथ उनकी तीन घंटे तक बातचीत होती रही। इधर पं० मोतीलालजी का स्वास्थ्य ख़राब रहने पर भी समझौते की चर्चा फिर चल रही है। कहा जाता है, इस समय जयकर और सप्रू नैनी-जेल में उनसे मिलते होंगे।

पूर्व समझौते के समय नेताओं ने एकमत होकर जो यह कहा था, जिसका कुछ पता फ़्री-प्रेस के संवाददाता को मिला है, कि देश की सम्मिलित शक्ति से यह युद्ध चल रहा है, देश के लोगों ने इसके लिये यथेष्ट कष्ट तथा त्याग स्वीकार किया है। इस कष्ट-स्वीकार का कारण उनकी कुछ माँगें हैं, जिनका पूर्ण उत्तर-दायित्व नेताओं पर है। अब इस समझौते के लिये नेता लोग बीच में उनकी लालसाओं का ख़ून नहीं कर सकते। फिर भी कम-से-कम अंश पर ही देश को समझा लेने के लिये तैयार होकर उन लोगों ने अपनी माँगें पेश कीं। उन माँगों का पूरा-पूरा हाल अभी, मालूम नहीं हुआ। ऊपर हमने जिन दो-एक बातों का उल्लेख किया है, उनके अतिरिक्त कुछ और भी, संवादपत्रों में, नेताओं की माँग के रूप से, पढ़ने को मिला है।

नेताओं का निश्चय है कि जब तक यह तय न हो जायगा कि गोलमेज़-बैठक में पूर्ण शासनाधिकार देने के संबंध में बातचीत होगी, तब तक वे इस बैठक की तरफ़ क़दम नहीं बढ़ा सकते। शासन लोक-मत का और लोगों के यथार्थ हितों की बुनियाद पर होगा। पर वे साथ ही यह भी मानते हैं कि यदि ऐसी ही आवश्यकता समझी गई, तो कुछ समय के लिये देशी राज्यों, अंतर्राष्ट्रीय नीतियों तथा फ़ौज के संबंध में पूर्णाधिकार अभी चाहे न दिए जायँ, पर व्यवस्था-परिषद् के अधिकारों का दायरा यहाँ तक बढ़ा देना चाहिए कि वे पूर्ण राष्ट्रीय बन जायँ। वे लोग कहते हैं

कि इन शर्तों को मंज़ूर कर लेने पर भी भारत ब्रिटेन के ही क़ब्ज़े में रहता है, और इन्हें मान लेने में कोई दिक़्क़त भी नहीं हो सकती। उनका कहना है कि वाइसराय और सम्राट् की मज़दूर-सरकार इन शर्तों के लिये हमें निश्चित रूप से विश्वास दिला सकती है, जब कि पार्लामेंट पर इस समय उन्हीं का आधिक्य है। अतः यदि उन्हें ये शर्तें क़बूल हों, तो वे हमें स्वीकृति के साथ समर्थन करने का वचन दें। इस तरह हम सत्याग्रह-आंदोलन को देशवासियों से स्थगित करने के लिये अनुरोध कर गोलमेज़-बैठक के लिये तैयार हो सकते हैं।

× × ×

१६. महामना मालवीयजी को सज़ा

बंबई के जुलूस में गिरफ़्तार होकर तथा जुर्माने की सज़ा पाकर भी किसी अज्ञात व्यक्ति के जुर्माना जमा कर देने के कारण महामना मालवीयजी छूट गए थे, वहीं सरदार वल्लभभाई पटेल आदि कई नेताओं को सज़ा हो गई थी। उस समय बाहर आकर सभाओं में मालवीयजी को पूर्ववत् निर्भय वक्तृता देते हुए सुनकर किसी-किसी ने कहा था कि दोरंगी चाल है। पर अब दिल्ली में पुनश्च गिरफ़्तार तथा सज़ा प्राप्त कर विद्यावयोवृद्ध महापुरुष ने अपनी सचाई के प्रमाण भी दे दिए।

दिल्ली-सरकार द्वारा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटी के ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिए जाने पर भी वर्किंग-कमेटी के १३ सदस्यों में १० सदस्य दिल्ली पहुँचे, और गत २७ अगस्त को मालवीयजी के ठहरने की जगह बिड़ला-हाउस में, डॉ० अंसारी के सभापतित्व में, कई प्रस्ताव भी पास कर लिए। इसके बाद वर्किंग-कमेटी की सूचना निकली कि डॉ० अंसारी के मकान पर तीन बजे दिन से कमेटी की बैठक होगी।

जब नेता लोग डॉ० अंसारी के मकान में एकत्र हो गए, उस समय ख़ुफ़िया-महकमे के सुपरिंटेंडेंट मि० सोनियर ने पुलिस लेकर चारो ओर से डॉ० अंसारी का मकान घेर लिया। फिर मकान पर पहुँच-कर श्रीयुत दुनीचंद, चौधरी अफ़ज़लहक़, श्रीमती कमला नेहरू तथा श्रीमती हंसा मेहता को छोड़कर और लोगों के नाम वारंट तामील कर १० हज़ार की ज़मानत जमा करने और मुचलका देने के लिये कहा। नेताओं ने इनकार कर दिया; जिससे वे गिरफ़्तार हो गए। इसी बीच डॉ० अंसारी और मौ० अबुलकलाम आज़ाद के घरों की तलाशी ली जा रही थी कि लाला दुनीचंद तथा चौ० अफ़ज़लहक़ के नाम भी वारंट आ गए।

पिछले पहर चार बजे के क़रीब ये लोग—सभापति डॉ० अंसारी, महा० मालवीयजी, श्रीविट्ठलभाई पटेल, डॉ० विधानचंद्र राय, श्रीराजाराव (मंत्री), सरदार मंगलसिंह, श्रीमथुरादास त्रीकमजी, चौ० अफ़ज़लहक़, लाला दुनीचंद (अंबाला) तथा बाबू दीपनारायणसिंह—सेंट्रल जेल भेज दिए गए। जाते समय इन्हें जनता ने पुष्पमालाओं से सुशोभित किया। जनता इनके स्वागत के लिये पहले ही से तैयार थी। कारण, गिरफ़्तारी की ख़बर फैल चुकी थी, और पुलिस के घेराव से उसे निश्चय भी हो गया था।

श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल ने कहा, "मुझे अब ख़िताब और पेंशन मिली।" मालवीयजी ने कहा, "आगामी कष्टों तथा संकटों की ज़रा भी परवा न कर देश के लोग अहिंसा-युद्ध को जारी रक्खें। भारत की स्वतंत्रता का लक्ष्य ही इस युद्ध में हमें शक्ति देगा। देश के आबालवृद्ध, युवा को इस स्वाधीनता के युद्ध में त्याग प्रदर्शित करते हुए देख मुझे हर्ष हो रहा है। हमें अपने देश का स्वत्वाधिकार अवश्य ही प्राप्त करना है। यह हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। हमारे प्रयत्नों पर ईश्वर प्रसन्न है।"

नेताओं ने मुक़दमे की कार्रवाई नहीं की। सरकारी गवाहों के बयान लेकर फ़ैसला सुना दिया गया, सबको छः-छः महीने की सादी क़ैद।

× × ×

१७. अधिकारी गोरों पर गोली तथा बम

वर्तमान अहिंसात्मक संग्राम के छिड़ने के समय

महात्माजी को अहिंसा के अवतार आदि अनेकानेक विशेषणों से विभूषित कर देश के क्रांतिकारी दल के नायकों ने पत्र द्वारा संवर्धना की थी। जहाँ तक हमें स्मरण है, तीन साल तक अपने कार्यों को स्थगित रखने का वादा भी किया था, जिस समय महात्माजी का पहला पत्र बड़े लाट साहब के नाम संवादपत्रों में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद बम फूटने की एक-आधी ख़बर के आने पर भी अब तक विशेष बम-दुर्घटना नहीं सुन पड़ी। इधर बंगाल में लगातार दो घटनाएँ हुईं। एक कलकत्ते में, दूसरी ढाके में। कलकत्ते में पुलिस-कमिश्नर सर चार्ल्स टेगार्ट पर बम फेंका गया। दो मनुष्य थे। जब टेगार्ट साहब मोटर पर लाल-बाज़ार पुलिस-स्टेशन, अपने दफ़्तर जा रहे थे, उसी समय दोनो बग़ल से उन पर बम फेंके गए। दो बम के फूटने से बड़ी आवाज़ हुई, लोग दौड़ पड़े। टेगार्ट साहब की मोटर टूट गई, ड्राइवर को कुछ चोट आई, और दो और मोटरें टूट गईं। वहाँ एक आदमी ख़ून से तर पड़ा था। देखा गया, तो उसके प्राण निकल चुके थे। वह अनुजसेन गुप्त कहा जाता है। उसके पास दो बम और एक भरा हुआ पिस्तौल बरामद हुआ। उसका एक साथी और था। वह भी कुछ घायल हुआ था। वहीं गिरफ़्तार कर लिया गया। इसके पास भी एक बम और एक तमंचा मिला। यह वकालत पढ़ रहा था। नाम दिनेशचंद्र मजूमदार है। इस दुर्घटना से एक क़ुली बुरी तरह घायल हुआ। पर टेगार्ट साहब बच गए। १६२४ ई० में इन पर एक बार और वार होनेवाला था, पर भ्रम से मि० डे नाम के अँगरेज़ को गोली मार दी गई, जिससे गोपीनाथ साहा को फाँसी हुई थी।

ढाके में बंगाल-पुलिस के इंस्पेक्टर-जनरल मि० एफ़० जे० लोमैन और ढाके के पुलिस-सुपरिंटेंडेंट मिस्टर ई० हडसन को किसी ने गोली मार दी। मि० लोमैन के दो और मि० हडसन के तीन गोलियाँ लगीं। कहते हैं, मि० हडसन की हालत नाज़ुक है, और लोमैन का कई दिन के बाद शरीरांत हो गया, यद्यपि कलकत्ते से दो विशेषज्ञ—एक लेफ़्टिनेंट कर्नल मि० हार्नेट, दूसरे मेडिकल कॉलेज के फ़र्स्ट सार्जन—हवाई जहाज़ से तत्काल ढाके भेज दिए गए थे।

प्रथमोक्त घटना के पश्चात् तलाशी आदि करके अब तक २० आदमी गिरफ़्तार किए गए हैं, जिनमें सब पूर्व-बंगाल के हैं।

इस बम-दुर्घटना की जाँच पर तलाशी लेते हुए एक किताब ऐसी पुलिस के हाथ लगी है, जिसमें षड्यंत्रकारियों की भयंकर स्थिति का पता चला है, और उनके नाम तथा पते भी उसमें लिखे हैं। यह दल बंगाल के भिन्न-भिन्न स्थानों तथा कलकत्ते में षड्यंत्र रचने की फ़िक्र में है।

इसके बाद उत्तर-कलकत्ता के जोड़ाबगान थाने में रात ६ बजे बम फेंके गए, फिर ईडन गार्डन की पुलिस-चौकी पर बम मारा गया, जिससे तीन क़ुलियों को चोटें आईं।

कलकत्ते की सार्वजनिक सभा में लोगों ने इस हत्या-कृत्य की निंदा की। हम भी इसके लिये हार्दिक अनुताप प्रकट करते हैं। इस शांति-पूर्ण आंदोलन के दिनों सरकार के दमन को देखकर देशवासियों को किसी तरह विचलित नहीं होना चाहिए। यदि देश में क्रांतिकारियों की कोई संगठित संस्था है, तो उससे हमारा निवेदन है कि वह अपने पूर्व के क़ौल पर ध्यान दे, और यदि कुछ असंयत युवक इस प्रकार फुटकर हत्याओं के द्वारा सुदृढ़ ब्रिटिश-शासन की बुनियाद को ढहा देना चाहते हों, तो वे बहुत बड़ी ग़लती करते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है, मि० हडसन शीघ्र क्लेश-मुक्त हों।

× × ×

१८. मांसाहार

भारतवर्ष में धर्म तथा सभ्यता के अनेक प्रकार, अनेक रूप हैं। यहाँ के मनुष्यों को कभी एक प्रकार का धार्मिक परिच्छद पहने हुए देखिए, कभी दूसरे प्रकार का, यद्यपि वैदिक काल से आज तक की स्थिति में सभ्यता का साम्य भी मिला दिया जा

सकता है। कुछ हो, एक-एक धार्मिक युग के अभ्युदय तथा तिरोधान के साथ मनुष्यों के आचार-व्यवहार भी बनते तथा बदलते गए हैं। साम्य मुख्यतः एक बात का रहा है। वह यह कि यहाँ के प्रतिष्ठित सम्मान्य मनुष्यों में, पश्चिमी सभ्यता के आदर्श की तरह, 'eat, drink and be mer.y' (खाओ, पियो, मौज करो) सिद्धांत नहीं रहा। संसार की नश्वरता और अक्षय स्वर्ग या अचला शांति-स्थिति पर उनका सदैव ध्यान रहा, और इसलिये उनके कार्य भी एतदनुकूल होते रहे।

हिंसा और अहिंसा के संबंध में भी यही धारणा दृढ़ हो जाती है। क्षत्रियों की मृगया और ब्राह्मणों का "विविध मृगन कर आमिष राँधा" आदि प्रकरण देखकर यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि मांस-भक्षण के लिये इस देश में कोई बड़ी रोक न थी। "कान्यकुब्जद्विजः श्रेष्ठः"—लोगों के यहाँ, आज भी, मांस-भक्षण में वैष्णवी अरुचि रहने पर भी, खानेवालों को समाज तिरस्कृत नहीं कर सकता, और इनकी कर्म-कांड की योग्यता पर मुग्ध होकर प्राचीन काल के महाराज आदि शूर जिन पाँच कान्य-कुब्ज-ब्राह्मणों को अपने यहाँ बंगाल ले गए थे, जो लोग मुखर्जी, चटर्जी, गांगुली आदि नामों से प्रसिद्ध हैं, अपने पूर्व-संस्कारों को मत्स्य-बहुल बंगाल में उत्तरोत्तर मार्जित करते गए, और शिक्षा तथा सभ्यता की बात पूछिए, तो कदाचित् भारत में नई बिजली का इन्हीं के मस्तिष्क में अधिक प्रकाश मिलेगा। ब्राह्मणों में और-और संप्रदाय हैं, जो मांस नहीं खाते, पर क्षत्रियों में कोई क़ौम ऐसी भी है, जो मांस नहीं खाती, यह हमें नहीं मालूम। हाँ, अधिकांश वैश्यों में मांस निषिद्ध देखा है। अन्यान्य जातियाँ मांस खाती हैं।

देश में जैसी प्रसिद्धि है, उसके अनुसार हमारा भी अनुमान है कि इस देश में बौद्ध और जैनियों के प्रभाव से मांस-भक्षण कुछ मंद पड़ा। पर कान्य-कुब्जों की तरह प्रभावशाली समाज पर इनका असर नहीं पड़ा, ये लोग अपनी प्राचीन प्रणाली के अनुसार ही चलते गए। बौद्ध और जैन-धर्म के आविर्भाव का कारण तथा उसके पहले की यहाँ की स्थिति पर जब हम विचार करते हैं, तब हमें स्पष्ट जान पड़ता है कि उन दिनों मांस-भोजन का इस देश में ख़ास तौर से प्रचलन था। वैदिक यज्ञों की जीव-हिंसा बुद्ध की चित्त-वृत्ति के परिवर्तन की एक बहुत बड़ी वजह है। दूसरे, किसी वस्तु या विषय का विरोध या प्रतिरोध तभी होता है, जब उसका अत्यंत प्रचलन हो, और इस कारण उसमें बुराइयाँ भी अनेक प्रकार की आ गई हों। बौद्ध और जैनों के बाद वैष्णव-धर्म ने भी मांस का विरोध किया, उत्तर भारत में इसी धर्म का प्रभाव पड़ा, और आज इसीलिये मंत्र-दीक्षित लोग यहाँ मांसाहार नहीं करते। बौद्धों और जैनियों के प्रवर्तन से तैयार की हुई देश की धार्मिक रुचि के अनुकूल वैष्णव-धर्माचार्यों ने भी मांस-निषेध उचित समझा होगा। लोगों की रुचि के अनुसार धर्म का संगठन करने पर वह सुदृढ़ हो जाता है, और लोगों का उस पर विश्वास भी होता है। कबीर यद्यपि रामानंदी थे, फिर भी, ग़ालिब की तरह, उन्होंने उस्ताद से अलग अपनी एक नई राह निकाल ली थी। कबीर निराकार-वादी थे। परंतु वह भी दया-धर्म-प्रभाव को नहीं छोड़ सके। उनके "बकरी मार भेड़ को खाए, दिल में दरद न आई; साधो, पाँडे निपुन कसाई।" पद्य को पढ़कर यही धारणा बद्धमूल हो जाती है। बुद्ध के लिये कहा जाता है कि वह मत्स्य-भोजन करते थे। जैन-धर्म के प्रव-र्तक महावीर के मना करने पर भी उन्होंने मत्स्य-भोजन नहीं छोड़ा। यह भी प्रसिद्धि है कि शूकर-मांस के भक्षण से बुद्ध का शरीरांत हुआ। ये लिखी बातें, जिनमें पहली तेलोवादजातक की है, कहाँ तक सत्य हैं, हम नहीं कह सकते। पर यह ज़रूर है, जहाँ-जहाँ समुद्र के किनारों तथा नदी-बहुल देशों में बौद्ध-धर्म का प्रचार रहा है, वहाँ-वहाँ पीछे से मांस-भोजन विशेष रूप से होने लगा था। इस प्रकार सिद्धांत में बुराइयों का प्रवेश हो गया था।

मांस-भक्षण के संबंध में मनु-संहिता की राय भी हम देना चाहते हैं। हिंदू-धर्म के अनुसार मनु-संहिता बुद्ध के आने से पहले की है। पर आधुनिक अन्वेषकों के विचार से हमें नहीं मालूम, बहुत संभव है, पीछे की हो। इस मनु-संहिता में एक जगह है—

"यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः ;
अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते।"

यज्ञ से बचा हुआ मांस खाना देवोचित है, अन्यथा मांसाहार की प्रवृत्ति राक्षसोचित।

यह समझ में नहीं आता कि यज्ञ-जैसे पुण्य-कार्य के लिये तो मांस-जैसे अशुद्ध पदार्थ का अनुमोदन-समर्थन किया गया, पर भक्षण और शरीर धारण के निमित्त उसका निषेध क्यों रहा। मारना बुरा है, अगर वह केवल हत्या या तज्जन्य मनोरंजन हो। पर शरीर-धारण के लिये अगर हत्या की गई, तो हमारी समझ में नहीं आता कि उससे किस तरह पाप-स्पर्श होता है।

"यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ;
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत् पुरा।"

यज्ञ के लिये ब्राह्मणों द्वारा मारे जानेवाले पशु-पक्षी प्रशस्त हैं। पालितों के पोषण के लिये उनका वध धर्मानुकूल है। अगस्त्य ने पहले ऐसा आचरण किया था।

यहाँ "ब्राह्मणैर्वध्याः" ध्यान देने लायक है। इस वाक्य से अकारण पशु-हत्या निषिद्ध हुई। ब्राह्मण-वृत्तिवाला मनुष्य अकारण हत्या नहीं कर सकता। उपर्युक्त शब्द से क्षत्रियों के हत्या-संस्कार भी सीमित कर दिए गए। पर शरीर-धारण के लिये मांस-भक्षण की आज्ञा दे दी गई। प्रथम श्लोक में "प्रवृत्ति" के उल्लेख से ही राक्षस-विधि का निर्धारण किया है। यदि "प्रवृत्ति"-शब्द न रहता, तो विधि राक्षसी भी न होती। अन्यान्य अनेक श्लोकों में मनु ने मांस-भक्षण के लिये आज्ञा दी है। पर मनु यह भी कहते हैं—

"वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ;
मांसानि च न खादेत् यस्तयोः पुण्यफलं समम्।"

"सौ वर्ष तक लगातार प्रतिवर्ष अश्वमेध यज्ञ करनेवाला और जो मांस नहीं खाता, इन दोनो के पुण्य बराबर हैं।"

मनु वैदिक वध-विधान को दैवी कहकर टाल गए हैं। अन्यत्र तो अपनी रायज़नी का दावा उन्होंने किया है, पर वैदिक विधियों पर नहीं किया। इससे साबित है कि प्रथम वैदिक काल में यज्ञ करके मांस-भक्षण जब प्रचलित था, तब यह निस्संशय यहाँ की सनातन प्रथा थी। और, यज्ञ के पश्चात् मांस खाने के अर्थ, हम जहाँ तक समझते हैं, पकाया हुआ मांस ही है; इस समय भी अनेक देशों के लोग कच्चा मांस खाते हैं, और अग्नि-संस्कार से अनभिज्ञ होने के कारण वे असभ्य कहलाते हैं; इस पकाए हुए मांस से यज्ञकारी अग्नि का प्रथम आविष्कार करनेवाले आर्य अपनी सभ्यता का ही प्रमाण पेश करते हैं, और फिर उस पके मांस को देवता को अर्पित कर खाएँ या ऐसे ही, विशेष अर्थ नहीं रखता। अगर रखता है, तो मांस खानेवालों की ही पुष्टि करता है, क्योंकि जो वस्तु देवता तक को समर्पित की जाती है, उसे मनुष्य अनायास ही भक्षण कर सकता है, उसे धर्म-विरुद्ध कहने का किसी को अधिकार नहीं रह जाता।

धर्म के पीछे से अनेक प्रकार हो गए। गीता में जहाँ अर्जुन को श्रीकृष्ण ने क्षात्र-धर्म का उपदेश किया है, वहाँ बंधु-बांधवों के वध को भी प्राप्य राज्य-श्री को प्राप्त करने के लिये धर्मानुकूल बतलाया है। और, हिंसा का भाव ही उड़ा दिया, आत्मा हिंसा नहीं करती, यह कहकर। आधुनिक जगत् में ही नहीं, जब कि संसार के अधिकांश सभ्य मनुष्य मांसाहार करते हैं, चिरंतन सत्य के विचार से भी श्रीकृष्ण की यही उक्ति संगत जान पड़ती है। हिंसा के संबंध की यह सबसे बड़ी बात है, हिंसा की वृत्ति चित्त में न हो। यह समझना भी कठिन है कि बिना हिंसा-वृत्ति के हिंसा हो कैसे सकती है। उद्धरण की जगह नहीं, शास्त्र इसका अनुमोदन करते हैं। किसी वृत्ति के आने पर चित्त अस्वस्थ हो जाता है, अतः उसके प्रभाव से जो

कार्य होता है, वह कलुषित हो जाता है—बहुत कुछ बिगड़ भी जाता है। मसलन, युद्ध के समय क्रोध के आने पर बल क्षीण हो जाता, कौशल भूल जाते हैं; पर चित्त स्थिर रहने से अधिक पटुता दिखलाई जा सकती है, और शत्रु का निधन भी संभव है। पर युद्ध के लिये क्रोध आवश्यक नहीं, इसी तरह मारने के लिये हिंसा भी अनावश्यक है। आजकल के विज्ञान-युग में, जब कि अल्पवयस्क विद्यार्थी भी जानता है कि करोड़ों जीवाणु प्रति श्वास-संचार से पेट के अंदर जाते हैं, अहिंसा, मांस-भक्षण-निषेध आदि की चर्चा खिलवाड़ जान पड़ती है। फिर जब "दलिया", भिगोई मूँग आदि कितने परिमाण में रोज़ खाई जाय तो हज़म हो, इस तरह की फ़ेहरिस्त देश के प्रतिष्ठित लोग, लोक-प्रिय पत्रों में, निकालते हैं, उस समय उनकी तजवीज़ से हँसी को मुश्किल से रोकना पड़ता है, जैसे "दलिया", "मूँग", "चने" आदि निष्प्राण हों। जो लोग कहते हैं कि उससे जीव का ज्ञान नहीं होता, उन्हें समझना चाहिए कि यह उन्हीं का अज्ञान है, और इससे "मूँग" निर्जीव नहीं हो जाती। एक अज्ञान को पालते हुए उन्हें इतना बड़ा ज्ञानाडंबर भी नहीं दिखलाना चाहिए। रही बात दूध की, सो माँ के स्तनों में ईश्वर का दिया हुआ उतना ही दूध रहता है, जितना उसका बच्चा पी सके। कहीं-कहीं इस विधि का उल्लंघन है, और वहीं वह दुग्ध-दोहन सार्थक भी है, यानी बछड़ा जब पीकर छोड़ दे, तब दुहने पर दोष स्पर्श नहीं होता, अन्यथा बछड़े को धीरे-धीरे (in cold blood) मारने की हत्या अवश्य लगती है। और, बीस सेर दूध देनेवाली गउएँ आस्ट्रेलिया में भले ही हों, गो-भक्त भारत में तो बहुत ही कम हैं कि बछड़े के पीकर छोड़ देने के बाद दुही जायँ, और जब कि सदी-फ़ी-सदी भारत-वासी ऐसा नहीं करते, तब उन्हें समझना चाहिए कि प्रतिदिन वे अंशतः गो-वध करते रहते हैं। मतलब यह कि जीव का आहरण किए बिना जीव का आहार सिद्ध नहीं होता। फिर कम हत्या करेंगे और बचकर करेंगे, धर्म की दोहाई देकर करेंगे, बछड़े को पालकर करेंगे, यह सब ढोंग है। आप बछड़े के बाप तो हैं नहीं, जो उसके लिये आपको इतना दर्द हो, आप अपना मतलब गाँठ रहे हैं, बछड़ा मर गया, तो आपको दूध कहाँ से मिलेगा, उसका सूख जाना भी तो ख़ुदाई नियम है। फिर इन बछड़ों के संबंध में कलकत्ता आदि में जो हाल होता है, वह बड़ा ही बीभत्स है। बछड़ा ज़्यादा क़ीमत पर बेच दिया जाता है। बछड़े की जीभ योरपियनों-अमेरिकनों के लिये सुस्वादु तथा अनमोल खाद्य है, उनको आर्डर-सप्लैयर ख़रीद लेते हैं—मुसलमान वणिक्। इधर लकड़ी का एक बछड़ा बनाकर सफ़ेद कपड़े लपेट, या चूने से रँगकर, ग्वाले लोग गायों के सामने खड़ा कर देते हैं। मृग की मरीचिका की तरह गायों को वत्स का भ्रम होता है, और वैज्ञानिक कारण ख़ास यह है कि तब तक दूध सूख न जाने के कारण गउएँ दुहवा लेना ही पसंद करती हैं, क्योंकि दूध के भार से स्तन बोझीले लगते, जिससे उन्हें तकलीफ़ होती है। वे इसी कृत्रिम वत्स को चाटकर अपनी यह हाजत कि दुह जाने से शरीर हल्का हो जाय, रफ़ा करा लेती हैं।

आहार का शंकर ने सूक्ष्मतम आध्यात्मिक अर्थ लिया है। उनका कहना है, जो आहृत हो, वही आहार है; यदि किसी ने तुम्हें गालियाँ दीं और तुम ख़ामोश रह गए, तो तुमने उन गालियों का आहरण किया, इससे तुम्हारा आध्यात्मिक शरीर पुष्ट हुआ। इस तरह भी दूसरे को दुर्बल कर पहला सबल होता है; गालियाँ देनेवाले के प्राण कमज़ोर हो जाते और सहनेवाले को धैर्य के कारण बल प्राप्त होता है। शंकर के बाद के आचार्यों ने आहार का बाह्य रूप लिया, और खाद्य के गुणों का विश्लेषण कर सात्विक गुण-वाले भोजन का प्रचार किया। "सात्विक" नाम से प्रत्यक्ष हिंसा का भाव भले ही मिट जाता हो, परोक्ष हिंसा बनी रहती है, जैसे कि दलिया के खाने की हिंसा है। शंकर की उक्ति में जो तत्व है, वह आध्यात्मिक तौर से दूसरों का ज़हर पीकर, उनके

प्रति मानंद के परमाणुओं का प्रक्षेपकर उन्हें पराजित करता है । यह भी युद्ध ही है, और सब मारों से बुरी मार है । शिव के विष-पान करने के रूपक में यही तत्त्व मिलता है । विष कोई सात्त्विक पदार्थ नहीं, और न शिव कोई साधारण कोटि के हैं । शिव हैं साक्षात् कल्याण-स्वरूप, मंगल-मूर्ति । पर वे विष पीते हैं । इस उक्ति में पूर्वोक्त शंकर का ही तत्त्व मिलता है । जिस तरह उन्नतात्मा मनुष्य साधारण मनुष्यों के ईर्ष्या-द्वेष आदि का आहार कर और उन्नत होते हैं, ईर्ष्या का ईर्ष्या से जवाब देकर सार्वकालिक विरोध की जड़ नहीं जमाते, उसी तरह शिव संसार का ज़हर पीकर सदैव कल्याणमय रहते हैं । जो व्यक्ति बुरे परमाणुओं का प्रक्षेप करता है, उसके प्रति महात्मा लोग उन परमाणुओं से बदला न दें, पर प्रकृति तत्काल देती है । उसका शरीर उन्हीं परमाणुओं के अंदर डूब जाता और जलता रहता है । महात्मा इसी तरह साधना से चलते हुए शिवत्व को प्राप्त करते हैं, और मंद प्रकृति के लोग अवनत होते हुए फल-भोग करते रहते हैं—उन्हें शांति नहीं मिलती । आहार के भीतर का इतना बड़ा तत्त्व है । प्रतिक्षण सबल निर्बलों का, धनी दरिद्रों का, विद्वान् मूर्खों का, सुंदर कुरूपों का, पुरुष स्त्रियों का, स्त्रियाँ पुरुषों का, भूत भूतों का, मन मन का, आत्मा आत्मा का आहार कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते तथा प्रतिष्ठित होते रहते हैं । इन बड़े आहारों के मुक़ाबले, जिनके पाप का अंदाज़ा लगाना कठिन, और पाप होता भी है या नहीं, बतलाना भी कठिन, मांसाहार तो बहुत ही स्थूल, नगण्य है । हम यहाँ यह भी बतला देना चाहते हैं कि हमारा मतलब मांसाहार का प्रचार करना नहीं, यद्यपि हम उसे राजसिक भोजन मानते और बासी रोटियों से ताज़े पके हुए मांस को अधिक गुणकारी समझते हैं, ख़ास तौर से जीवन-संग्राम में पड़े हुए सांसारिक लोगों के लिये कर्मोपयुक्त भोजन । हाँ, मांसाहार से हम शाकाहार को श्रेष्ठ समझते हैं ।

× × ×

१६. हिंदुस्थानी-एकेडेमी के पारितोषिक

हिंदुस्थानी-एकेडेमी यू० पी०, इलाहाबाद के विद्वान् प्रधान मंत्री डॉक्टर ताराचंद सूचित करते हैं—

"हिंदुस्थानी-एकेडेमी ने निम्न-लिखित विषयों पर लिखित सर्वोत्तम ग्रंथ पर पाँच-पाँच सौ रुपए के तीन पारितोषिक हिंदी में और तीन उर्दू में देने का निश्चय किया है । ग्रंथ पहली जनवरी सन् १९२७ के बाद के प्रकाशित हों—

(१) सर्वोत्तम गद्य-ग्रंथ, जिसका विषय साहित्यिक, समालोचना, निबंध या साहित्यिक इतिहास हो ।

(२) निम्न-लिखित विषयों पर लिखे हुए किसी एक सर्वोत्तम ग्रंथ पर—

(क) प्रकृति-विज्ञान—अर्थात् भौतिक, रसायन, पशु-विद्या, वनस्पति-शास्त्र तथा प्रकृति-संबंधी कोई अन्य वैज्ञानिक विषय ।

(ख) समाज-विज्ञान—अर्थात् अर्थ-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, नागरिक शास्त्र, राज्य-प्रबंध-संबंधी इतिहास तथा समाज-संबंधी कोई और वैज्ञानिक विषय ।"

एकेडेमी का यह उद्योग सराहनीय है । इससे अच्छी पुस्तकों के निर्माण में लेखकों को यथेष्ट प्रोत्साहन मिलेगा ।

हमें यह जानकर ख़ुशी हुई कि प्रसादजी के लिखे स्कंदगुप्त-नाटक पर ५००) का पुरस्कार एकेडेमी ने अभी हाल में दिया है । इसके लिये प्रसादजी को बधाई !

× × ×

२०. लखनऊ-विश्वविद्यालय

इसी अंक में 'लखनऊ-विश्वविद्यालय'-शीर्षक लेख प्रकाशित हो रहा है। लेखक ने विश्वविद्यालय का चित्र इस वर्ष के प्रारंभ में खींचा था। इतने अरसे में विश्वविद्यालय के रूप-रंग में कुछ-न-कुछ अंतर हो जाना स्वाभाविक ही था। डॉक्टर कैमरन के स्थान पर पं० जगतनारायणजी मुल्ला शासन कर रहे हैं। डॉक्टर एम्० बी० रहमान लखनऊ-विश्वविद्यालय छोड़कर इस्लामिया-कॉलेज, बंबई के प्रिंसिपल होकर चले गए। राष्ट्रीय आंदोलन ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का चोला बदल दिया। युनिवर्सिटी पर राष्ट्रीय झंडा फहराने का आंदोलन चला। विद्यार्थियों ने बड़ा कोहराम मचाया। छात्रों और अधिकारियों में खूब द्वंद्व युद्ध हुआ। अधिकारियों ने राष्ट्रीय झंडा फहराने की अनुमति नहीं दी। लखनऊ-युनिवर्सिटी-यूनियन के पदाधिकारियों ने अधिकारियों की इस नीति के विरोध में इस्तीफ़ा दे दिया। बड़ी सनसनी फैली। उसके बाद विद्यार्थियों की परीक्षा आरंभ हो गई, सन्नाटा छा गया। इस वर्ष विश्वविद्यालय खुलते ही विद्यार्थियों ने कॉलेज-भवन तथा छात्रालयों पर राष्ट्रीय पताकाएँ फहरा दीं, और कॉलेज में धरना बैठा दिया। विश्वविद्यालय का सारा काम ठप पड़ा है। अधिकारियों के हाथ-पैर फूल रहे हैं, नवयुवकों ने रण-भेरी बजा दी है।

हाँ, इसी सिलसिले में हम लखनऊ-विश्वविद्यालय के अधिकारियों का ध्यान दो-एक खटकनेवाली बातों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। एक युग से हम कहते आ रहे हैं, मगर अभी तक लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी में एम्० ए०-क्लास खोलने का कोई आयोजन नहीं हुआ। यह बड़ी ग्लानि और लज्जा की बात है। हाल ही में सहयोगी 'लीडर' और 'आई० डी० टी०' में भी दो-एक उलहने छपे थे। शिकायतें उचित भी थीं। अन्य विश्वविद्यालयों में छात्रों को बहुत-सी सुविधाएँ हैं, जो कि लखनऊ-विश्वविद्यालय में दुर्लभ हैं। यहाँ न तो विद्यार्थी को उसे अपने परीक्षा-फल के अतिरिक्त कक्षा में अपनी पोज़ीशन का ज्ञान ही हो सकता है, न किसी प्रकार नंबर मालूम हो सकते हैं, और न फ़ेल हो जानेवाले छात्रों की कॉपी ही दुबारा जाँची जा सकती है। भला इस विश्वविद्यालय में क्या विशेषता है, क्या सुर्खाब के पर लगे हैं, जो इसकी नीति निराली ही रहे? बेचारे विद्यार्थियों को इन सुविधाओं से क्यों वंचित रक्खा जाता है? उनके अधिकारों की इस प्रकार क्यों अवहेलना की जाती है?

आशा है, पं० जगतनारायणजी मुल्ला-जैसे न्यायशील व्यक्ति के राज्य में यह धींगा-धाँगी बहुत दिनों तक न चलेगी। हमें विश्वास है, पंडितजी इन त्रुटियों को दूर करने और राष्ट्रभाषा को उसका उचित स्थान देने में अधिक विलंब न करेंगे।

× × ×

२१. संधि का अंत

सर सप्रू और जयकर की संधि के संबंध में हम अपने पिछले नोट में लिख चुके हैं। पर, पत्रिका के निकलते-निकलते, संवाद-पत्रों में संधि का पूरा विवरण निकल गया, और पहले की जितनी अस्पष्ट बातें थीं, सब स्पष्ट कर दी गईं, यहाँ तक कि गांधीजी, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा बड़े लाट लॉर्ड इरविन साहब के पत्र तक, जो इस संबंध में लिखे गए थे, प्रकाशित हो गए, नेताओं की जो शर्तें थीं, वे भी ज़ाहिर कर दी गईं।

संधि-संबंधी कुल बातों को पढ़ने से मालूम हो जाता है कि इसके लिये बड़े लाट साहब की तरफ़ से कोई विशेष आग्रह नहीं था, कम-से-कम ऐसा ज़ाहिर नहीं होता। यह केवल सप्रू और जयकर का दौत्य जान पड़ता है। श्रीगणेश इस तरह हुआ—देश की दशा से अत्यंत दुखी होकर, उसके उद्धार की कोशिश करते हुए, इन्होंने बड़े लाट साहब को पत्र लिखकर, यरवदा तथा नैनी-जेलों में बंद गांधीजी तथा नेहरू आदि से मिलने की आज्ञा माँगी, जिसके लिये बड़े

लाट साहब ने उन्हें हर तरह का सुबीता कर दिया। गांधीजी से मिलकर, उनकी जो शर्तें नेहरुओं के पास ये लोग लाए, उनमें पहली ही श्रीयुत जवाहर-लाल को लचर मालूम दी और उन्होंने गांधीजी को पत्र लिखते हुए लिखा—आपकी पहली शर्त मुझे पसंद नहीं आई, पिताजी को भी नहीं। पर महात्मा-जी ने जहाँ लिखा था कि वे किसी भी वैसी संधि में भाग लेना नहीं चाहते, जो उनके अब तक के प्रयत्न को बरबाद कर रही हो, उस अंश से जवाहरलालजी सहमत थे, और आंदोलन से उन्हें जीवन मिल रहा है, ऐसा लिखा था।

इसके बाद यरवदा में महात्मा गांधी, पं० मोती-लाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती सरोजिनी नायडू, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि नेताओं के सम्मेलन से कुछ शर्तें तैयार की गईं—

नेताओं को वह निर्णय पसंद न होगा, (१) जिसमें भारत को विलायत से अलग हो जाने का प्रस्ताव स्वीकृत न हो, (२) जिसमें भारत को प्रजातंत्र न दिया गया हो, (३) जिसमें भारत को विलायत के क़र्ज़ आदि के संबंध में निष्पक्ष अदालत से विचार कराने का अधिकार न दिया गया हो। (गांधीजी की ११ शर्तों में पूर्ण राष्ट्रीय शासन सूचित है)

विलायती वस्तुओं तथा मादक द्रव्यों का बहिष्कार बंद न होगा, यद्यपि सत्याग्रह-आंदोलन को बंद कर देने की सलाह कांग्रेस-कमेटी को दी जायगी।

सत्याग्रह के स्थगित करने के साथ ही सरकार को सत्याग्रही क़ैदियों को छोड़ देना होगा।

ज़ब्त जायदादें वापस करनी होंगी।

ज़मानतें लौटानी होंगी।

सरकारी नौकरों के दिए हुए इस्तीफ़े, यदि वे फिर नौकरी करना चाहें तो, वापस करने होंगे।

वाइसराय के आर्डिनेंस फेर लिए जायँगे।

गोलमेज़ के लिये जाने का चुनाव इसके बाद होगा।

सरकार के पास अब भी काफ़ी शक्ति है, लिहाज़ा इतना नीचा देखना सरकार कैसे पसंद कर सकती है? देश के लोग देश की आत्मा नेताओं के साथ हैं, वे भी किस तरह इतना बढ़कर पीछे हट सकते हैं? अस्तु, बड़े लाट साहब को ये शर्तें मंज़ूर न हुईं। तब देश के दुःख से दुखी होकर सप्रू-जयकर ने मेल की जो शर्तें, इन्हीं के आधार पर, तैयार कीं, उन्हें लिखकर हम क्यों देश को दुखी करें? उन शर्तों पर सप्रू-जयकर को विश्वास है कि लाट साहब को वे मंज़ूर हो जायँगी, और इसी विश्वास के आधार पर नेता और देश के लोग उन शर्तों को मान लें। ज़रा पहली शर्त सुनिए—महात्मा गांधी गोलमेज़-सम्मेलन में यह प्रस्ताव रक्खें कि हिंदोस्तान को विलायत से अलग हो जाने का अधिकार दिया जाय। यह वही बात हुई कि आप कहें, तो हम आपका सर काट लें। अतएव आपकी राय पहले ही समझ में आ जाती है। सप्रू और जयकर महाशय की समझ में क्यों नहीं आई, यह ईश्वर जाने। पर उनकी कुछ शर्तें मेल के उपयुक्त भी हैं, जैसे ज़ब्तशुदह जिन जायदादों पर दूसरों के नाम चढ़ गए हैं, उनका वापस करना साधारण शक्ति से बाहर है। जब तक सरकार को बहुत बड़ी ग़रज़ न हो, न वह ऐसे मामलों में विशेष शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकती।

अंतिम बार महात्माजी से मिलने पर गांधीजी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीयुत वल्लभभाई पटेल और श्रीयुत जयरामदास-दौलतराम के हस्ताक्षरों से जो पत्र इन लोगों ने लिखा है, उससे जान पड़ता है कि नेताओं और बड़े लाट साहब की राय नहीं मिलती। नेताओं ने कहा है कि शिमला-शिखर की उँचाई से वह जनता, जो नीचे घोर दुःखों का सामना करती है, नहीं देख पड़ती। नमक-कर को उठाकर दूसरा कर बैठाना घाव पर नमक छिड़कना है। जान पड़ता है, सरकार की लुटेरी नीति अब तक बंद नहीं हुई। अँगरेज़ों से कांग्रेस का द्वेष नहीं, पर वह पूर्ण प्रयत्न करेगी कि असहनीय ब्रिटिश आधिपत्य चला जाय। मेल न होने का कारण नेताओं ने

बतलाया है कि लॉर्डों और पं० मोतीलाल की जो बातचीत हुई थी, वह बड़े लाट साहब को स्वीकृत नहीं हुई।

× × ×

२२. चित्र-परिचय

गंगा-पुस्तकमाला का पूर्णोत्सव

गत वसंत-पंचमी के दिन गंगा-पुस्तकमाला के पूर्ण होने—माला की १०८ गुरिकाओं के समान पुस्तक-माला में १०८ पुस्तक-पुष्प ग्रथित हो जाने—के उपलक्ष्य में एक उत्सव मनाया गया था। हिंदी-संसार के लिये यह एक नई बात थी। कारण, अभी तक हिंदी की केवल इसी एक माला में १०८ ग्रंथ निकले हैं। जो हो, उस दिन अपराह्न काल में प्रीति-भोज के उपरांत साहित्य-सेवियों की एक सभा हुई, जिसमें गंगा-पुस्तकमाला के स्वामी, संपादक और संचालक को उनकी इस सेवा के लिये धन्यवाद और बधाइयाँ दी गईं। सभा के सभापति सुहृदवर पं० बदरीनाथजी भट्ट, हिंदी-अध्यापक लखनऊ-विश्वविद्यालय थे। अनेक विद्वान् साहित्य-सेवियों के व्याख्यानों, बधाइयों और कविताओं के पहले कुछ उपस्थित विशिष्ट सज्जनों का एक फ़ोटो भी लिया गया था। यह चित्र उसी की प्रतिलिपि है। चित्र में वर्णित सज्जनों के अतिरिक्त निम्न-लिखित सज्जन भी उसमें सम्मिलित थे—

बाईं ओर से खड़े हुए १ली पंक्ति—श्रीरसलाल भार्गव, श्री० गौरीशंकरजी वैश्य, पं० विश्वनाथ वाजपेयी (मंत्री चुटकी-भंडार राष्ट्रीय पाठशाला), (बीच में बैठे हुए श्री० चंद्रिकाप्रसादजी 'जिज्ञासु'), श्री० छंगामलजी मालवीय एम्० ए०, श्री० राजाराम सरना, लाला वसंतलाल, श्री० मुहम्मद हकीम ख़ाँ चित्रकार, श्री० पृथ्वीपालसिंहजी बी० ए०, एक सज्जन, (पीछे एक लड़का), श्री० हरनामसिंहजी नैयर, श्री० जवाहरलाल भार्गव, श्री० डॉक्टर मेहरा।

खड़े हुए २री लाइन में—श्री० धर्मचंद्र, एक सज्जन, श्रीयुत धर्मसिंह (एजेंट), डॉक्टर दीनानाथ सेठ बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एस्०, सरदार साधोसिंह, पं० दीवानचंद शर्मा कालिया, पं० ज्योतिलाल भार्गव बी० ए०, एल्-एल्० बी०।

एक सुशिक्षित परिवार

हमें हर्ष है, डॉक्टर रामचंद्रजी की चौथी कन्या ने भी हिंदी-भूषण पास कर लिया है। इस परिवार से हिंदी-संसार को बड़ी आशाएँ हैं।

नूरजहाँ और जहाँगीर

नूरजहाँ बचपन में मेहरुन्निसा कहलाती थी। उसका पालन-पोषण सम्राट् अकबर के महलों में हुआ था। उसने अपने अनुपम सौंदर्य और लोकोत्तर मुग्ध स्वभाव से युवराज सलीम को—जो कि आगे जाकर जहाँगीर नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ—अपने वश में कर लिया था। सलीम का कोई खेल मेहरुन्निसा के बिना पूरा न होता। प्रातःकाल से सायंकाल तक सलीम, छाया की तरह, मेहरुन्निसा को घेरे रहता। एक दिन सलीम अपने तीन कबूतरों को लेकर शाही बाग़ में मेहर के साथ घूम रहा था कि एकाएक एक कबूतर हाथ से छूट गया, और पास के एक पेड़ पर जा बैठा। सलीम ने शेष दोनो कबूतरों को मेहर के सुपुर्द किया, और स्वयं उस भगोड़े को पकड़ने चल दिया। लौटकर आने पर उसने देखा कि मेहर के हाथ में केवल एक ही कबूतर है। सलीम ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—"कबूतर कहाँ गया ?"

मेहर ने कहा—"कुलबुला रहा था, इसलिये मेरे हाथ से छूटकर उड़ गया।"

सलीम ने कहा—"कैसे उड़ गया ?"

मेहर—"ऐसे।"

यह कहकर उसने दूसरा कबूतर भी छोड़ दिया। उसके इस भोलेपन ने सलीम का हृदय और भी अपना लिया। उसी दृश्य को इस चित्र में चित्रित किया गया है। मुग़ल-क़लम का यह पाश्चात्य 'सेटिंग' कितना सुंदर हुआ है, पाठक स्वयं देख सकते हैं।

नारद-मोह

श्रीतुलसीदास की रामायण में नारद-मोह की जो कथा वर्णित है, वह प्रत्येक हिंदू-मात्र को भगवत

है। उसी के आधार पर यह चित्र बनाया गया है। अभिमानी नारद मुनि का मोह भंग करने के लिये, उनके सुंदर रूप का वरदान माँगने पर, भगवान् विष्णु ने उन्हें वानर-रूप प्रदान किया था। उसी रूप में वह स्वयंवर में पधारे थे, जहाँ उनके इस विचित्र रूप को देखकर शिवजी के दो गणों को हँसी आ गई, उन्होंने नारदजी को उनकी दशा अवगत करा दी। क्रुद्ध नारदजी जल में अपनी प्रति-च्छाया देख रहे हैं। उक्त चित्र गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली सचित्र तुलसी-कृत रामायण से लिया गया है। इस रामायण में १०० से ऊपर रंगीन चित्र होंगे।

श्रीमती ऊर्मिलादेवी शास्त्री

आप मेरठ-कॉलेज के संस्कृत-प्रोफ़ेसर और सुधा के अपने लेखक पं० धर्मेंद्रनाथजी शास्त्री एम्० ए०, तर्कशिरोमणि की धर्मपत्नी तथा मेरठ-सत्याग्रह-आंदोलन की प्रमुख कार्यकर्त्री हैं। हाल में ही आपको सरकार ने ६ मास के लिये कारावास में डाल दिया है।

ऊर्मिलादेवीजी, अगस्त सन् १६०६ में, श्रीनगर (कश्मीर) में, लाला चिरंजीवलालजी आर्य, प्रधान आर्य-समाज, श्रीनगर के घर पैदा हुई थीं। हिंदी-मिडिल-परीक्षा पास करने के बाद देवीजी ने स्वाध्याय से ही 'सिद्धांत-विशारदा', 'हिंदी-प्रभाकरा' आदि परीक्षाएँ पास कर लीं। तदुपरांत आप समाज-सेवा के कार्य में संलग्न हो गईं। आप बाल-विधवा थीं। पिछले साल ६ ऑक्टोबर, १६२४ को आपका विवाह, जाति-पाँति के बंधन तोड़कर, 'सिविल-मैरिज-ऐक्ट' के अनुसार, प्रोफ़ेसर धर्मेंद्रनाथजी के साथ हो गया, और वह मेरठ आ गईं। यहाँ आते ही उन्होंने अपना सुधार-कार्य प्रारंभ कर दिया। नौचंदी के मेले में पिकेटिंग का संगठन आपके ही परिश्रम का फल था। मेरठ में विदेशी कपड़े पर धरना देनेवाले महिला-दल की कैप्टेन भी आप ही थीं। मेरठ की महिलाओं को एक बार देश-प्रेम में मतवाला बना देना आपका ही कार्य था। १८ जुलाई को नौकरशाही ने आपको गिरफ़्तार कर लिया, और ६ महीने के लिये जेल भेज दिया।

कुमारी रामेश्वरीदेवी गोयल बी० ए०

कुमारीजी झाँसी की प्रमुख कांग्रेस-कार्यकर्त्री, सुकवि श्रीमती विद्यादेवीजी की पुत्री हैं। आपके पिता बा० भगवानदयालजी वैश्य जी० आई० पी० में रेलवे के पदाधिकारी हैं। कुमारीजी बड़ी विद्या-व्यसनी और भोले स्वभाव की हैं। आपने देहली के इंद्रप्रस्थ गर्ल्स इंटरमिजिएट कॉलेज से फ़र्स्ट डिवीज़न में एफ़्० ए० पास किया, और इसी साल प्रयाग-विश्व-विद्यालय से द्वितीय श्रेणी में बी० ए० पास किया है। बी० ए० में आपने हिंदी ली थी। आप हिंदी में अच्छी कविता कर लेती हैं। 'सुधा' पर आपकी विशेष कृपा है। आप अच्छी व्याख्यानदात्री तथा संगीत-प्रिय महिला हैं। 'दिलरुबा' आप बहुत अच्छा बजाती हैं। अपने मुग्ध स्वभाव, उत्तम गुणों तथा मनोमोहक व्यवहार से आप जिससे मिलती हैं, उस पर अपना एकाधिपत्य जमा लेती हैं।

श्रीयुत जंगबहादुरसिंह बी० ए० और श्रीमती ज्ञानदेवीजी स्नातिका, विशारदा

हाल ही में जाति-पाँति तथा प्रांतीयता के बंधनों को तोड़कर 'सिंहजी' और श्रीज्ञानदेवीजी का शुभ विवाह हुआ है। श्रीमती ज्ञानदेवीजी जालंधर-निवासी लाला दीवानचंदजी की सुपुत्री हैं। आपका जन्म उस जाति में हुआ है, जिसकी गोद में भारत के गौरव श्रीबाबू पुरुषोत्तमदास टंडन प्रभृति लाल खेल रहे हैं। देवीजी जालंधर-कन्या-महाविद्यालय की स्नातिका हैं, विशारदा भी हैं तथा हाल ही में आपने पंजाब-विश्वविद्यालय से एफ़्० ए० की परीक्षा पास की है। आपको चित्रकारी में कमाल हासिल है। संगीत-कला से बड़ा प्रेम है। आपने धर्म और समाज-सेवा द्वारा सिख और पंजाब-प्रांत में ख़ासी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। आप हिंदी की एक अच्छी लेखिका भी हो सकती हैं, किंतु उधर आपका ध्यान कम है।

हमारे मित्र सिंहजी आज़मगढ़-निवासी वयोवृद्ध श्री० श्यामसिंहजी के सुपुत्र हैं। सिंहजी भी उसी जाति के एक रत्न हैं, जिसने श्रद्धेय प्रेसीडेंट पटेल और सरदार वल्लभभाई-सरीखे बहुमूल्य हीरे पैदा किए हैं। 'सिंहजी' से तो हिंदी-संसार ख़ूब ही परिचित होगा। आप हिंदी और अँगरेज़ी के बड़े ओजस्वी लेखक हैं। आज से कई वर्ष पहले आपके लेख 'माधुरी', 'प्रभा', 'शारदा', 'हिंदीगल्पमाला', 'प्रताप' आदि में बड़ी धूम से निकला करते थे। 'पतितोद्धार' के अतिरिक्त हाल ही में आपकी 'बारडोली-विजय'-नामक पुस्तक प्रताप-कार्यालय, कानपुर से प्रकाशित हुई है। सिंहजी का 'धिक् धर्म' धिक् भगवान्'-शीर्षक लेख 'सुधा' की आगामी संख्या में प्रकाशित हो रहा है। पाठक पढ़ेंगे, और उनके क्रांतिकारी भावों और ज़ोरदार शैली से स्वयं ही परिचित हो जायँगे। सिंहजी आजकल अँगरेज़ी सरस्वती के पुजारी हैं। संतोष की बात है, आपने हिंदी को बिल्कुल ही भुला नहीं दिया। आपको बचपन ही से साहित्य और समाज-सेवा की लगन रही है। तेईस वर्ष की आयु में ही लाहौर से प्रकाशित होनेवाले सुप्रसिद्ध स्वराजिस्ट अँगरेज़ी दैनिक 'दि नेशन' का संपादन-भार आपने अपने कंधों पर ले लिया। दो वर्ष तक सिंहजी ने इस कमाल के साथ इस दैनिक का संपादन किया कि देखनेवालों ने दाँतों-तले उँगली दबाई! आजकल आप पंजाब के प्रमुख अँगरेज़ी दैनिक 'दि ट्रिब्यून' के उप-संपादक हैं।

क्रांति के उपासक मित्रवर सिंहजी तथा श्रीमती ज्ञानदेवीजी ने हिंदू-समाज के मुख की कालिमा इस जाति-पाँति की लचड़ प्रथा को तोड़कर हिंदू-समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया है। वे हमारी बधाई के पात्र हैं। हमारी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि यह युगल जोड़ी चिरजीवी हो, और इसी प्रकार निरंतर साहित्य और समाज की सेवा करती रहे।

स्वागत

(मौलाना शौकतअली का, लखनऊ में)

वर्षा से भीग रही, अँधेरी रात में यह जुलूस निकल रहा है या जनाज़ा ?

हमारे मित्र सिंहजी आज़मगढ़-निवासी वयोवृद्ध श्री० श्यामसिंहजी के सुपुत्र हैं। सिंहजी भी उसी जाति के एक रत्न हैं, जिसने श्रद्धेय प्रेसीडेंट पटेल और सरदार वल्लभभाई-सरीखे बहुमूल्य हीरे पैदा किए हैं। 'सिंहजी' से तो हिंदी-संसार ख़ूब ही परिचित होगा। आप हिंदी और ऍंगरेज़ी के बड़े ओजस्वी लेखक हैं। आज से कई वर्ष पहले आपके लेख 'माधुरी', 'प्रभा', 'शारदा', 'हिंदीगल्पमाला', 'प्रताप' आदि में बड़ी धूम से निकला करते थे। 'पतितोद्धार' के अतिरिक्त हाल ही में आपकी 'बारडोली-विजय'-नामक पुस्तक प्रताप-कार्यालय, कानपुर से प्रकाशित हुई है। सिंहजी का 'धिक् धर्म' धिक् भगवान्'-शीर्षक लेख 'सुधा' की आगामी संख्या में प्रकाशित हो रहा है। पाठक पढ़ेंगे, और उनके क्रांतिकारी भावों और ज़ोरदार शैली से स्वयं ही परिचित हो जायँगे। सिंहजी आजकल ऍंगरेज़ी सरस्वती के पुजारी हैं। संतोष की बात है, आपने हिंदी को बिल्कुल ही भुला नहीं दिया। आपको बचपन ही से साहित्य और समाज-सेवा की लगन रही है। तेईस वर्ष की आयु में ही लाहौर से प्रकाशित होनेवाले सुप्रसिद्ध स्वराजिस्ट ऍंगरेज़ी दैनिक 'दि नेशन' का संपादन-भार आपने अपने कंधों पर ले लिया। दो वर्ष तक सिंहजी ने इस कमाल के साथ इस दैनिक का संपादन किया कि देखनेवालों ने दाँतों-तले उँगली दबाई! आजकल आप पंजाब के प्रमुख ऍंगरेज़ी दैनिक 'दि ट्रिब्यून' के उप-संपादक हैं।

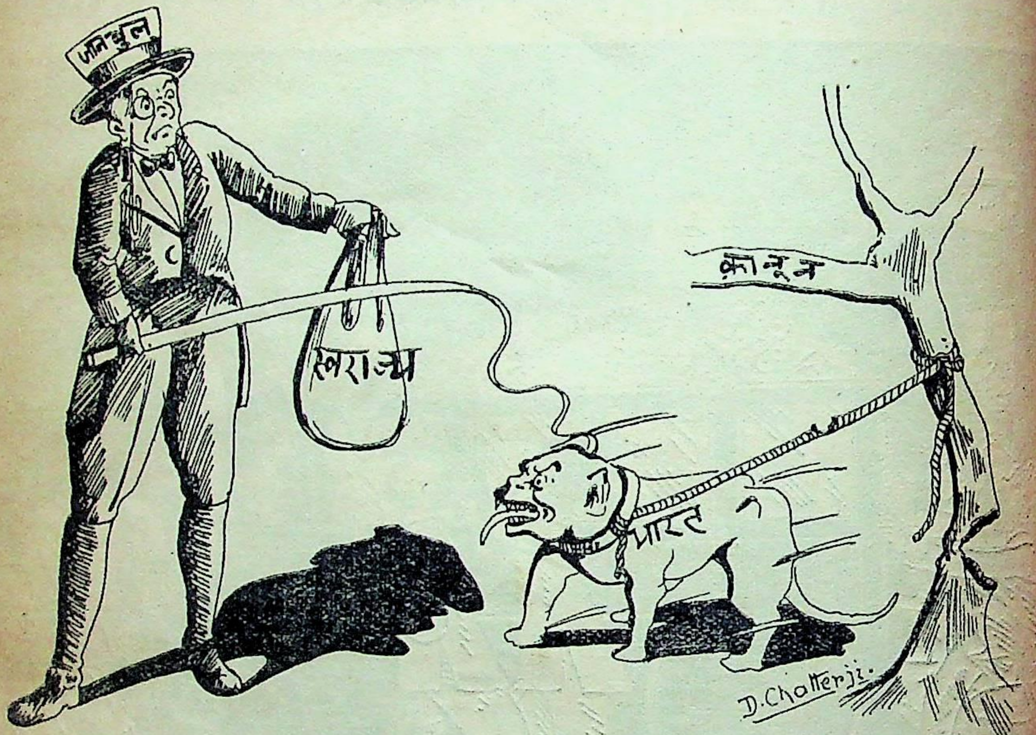
क्रांति के उपासक मित्रवर सिंहजी तथा श्रीमती ज्ञानदेवीजी ने हिंदू-समाज के मुख की कालिमा इस जाति-पाँति की लचर प्रथा को तोड़कर हिंदू-समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया है। वे हमारी बधाई के पात्र हैं। हमारी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि यह युगल जोड़ी चिरजीवी हो, और इसी प्रकार निरंतर साहित्य और समाज की सेवा करती रहे।

स्वागत

(मौलाना शौकतअली का, लखनऊ में)

वर्षा से भीग रही, अँधेरी रात में यह जुलूस निकल रहा है या जनाज़ा ?

स्वराज्य की मिठाई



परिवर्द्धित, संशोधित

हिंदी नवरत्न

तृतीय संस्करण

तुलसीदास · हरिश्चंद्र · सूरदास · चंदबरदाई · देवदत्त · कबीरदास · बिहारीलाल · केशवदास · भूषण · मतिराम

अर्थात्

हिंदी-भाषा के सर्वोत्तम कविरत्नों के आलोचना-पूर्ण जीवन-चरित्र

लेखक—

हिंदी-संसार के प्रख्यातनाम समालोचक "मिश्रबंधु"

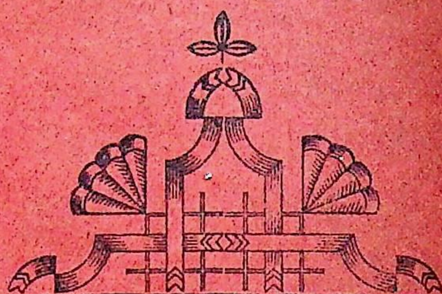
इस पुस्तक की प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वानों ने की है। साहित्य-प्रेमी और साधारण-जन, सबको समान भाव से यह पुस्तक आनंद देगी। इस बार यह पुस्तक पहले से लगभग दुगुनी बड़ी और दसगुनी उपयोगी हो गई है! इसे सामयिक और सर्वांगपूर्ण बनाने में कोई भी चेष्टा बाक़ी नहीं रक्खी गई। अब तक की साहित्यिक खोजों के अनुसार संशोधन और संवर्द्धन होने से पुस्तक अप-टु-डेट हो गई है। नवरत्न का यह संस्करण सब तरह आदर्श, अद्वितीय और सर्वांग-सुंदर है। अब की चित्र सब तिरंगे कर दिए गए हैं, पर मूल्य वही रक्खा गया है।

११ रंगीन चित्रों से समलंकृत

मूल्य ४॥)
सुंदर सुनहरी जिल्द ५)

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ





अबला

[लेखक—श्रीयुत रमाशंकर सक्सेना]

इस बीसवीं शताब्दि में हमारे इस अभागे देश की सामाजिक परिस्थिति जैसी है, वह किसी से छिपी नहीं। एक ओर यदि हिंदू और मुसलमानों के दंगे नाक में दम किए हैं, तो दूसरी ओर हिंदुओं की कमज़ोरियाँ और भी ग़ज़ब ढा रही हैं। आए-दिन भारत-माता के बेटों का आपस में लड़ना एक साधारण-सी बात हो गई है। पास-पड़ोस के जो लोग विश्वास और हमदर्दी से भाई-भाई की तरह रहा करते थे, अब एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते, एक दूसरे से सहानुभूति नहीं रखते, अब एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो उठे हैं। इस हिंस्र प्रवृत्ति को जाग्रत् करने का श्रेय हमारे कुछ धर्मांध ख़्वाजाओं और कट्टर ख़ूनी मुल्लाओं को है। दीन के नाम पर निरीह बालकों और निरपराध राहगीरों पर हाथ चलाना जिस धर्म का एक पुण्य-कार्य हो, बुद्धि-शून्य पुरुष जिस धर्म के मार्गदर्शक हों तथा कट्टरपन ही जिस धर्म का मूलमंत्र हो, वह तामसी धर्म जो कुछ न कराए थोड़ा है। 'अबला' उसी धर्म की काली करतूतों की करुण कहानी है। पुस्तक में तीन सुंदर चित्र भी दिए हैं। मूल्य सादी १), सजिल्द १॥)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

बाल-विनोद-वाटिका की बढ़िया पुस्तकें

बाल-नीति-कथा

यह पुस्तक हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी के प्रिंसिपल और प्रो-वाइस चांसलर श्रीमान् ए० बी० ध्रुव एम्० ए०, एल-एल० बी० की लिखी हुई है। आपने महाराजा साहब बड़ोदा के आज्ञानुसार बड़ौदा-राज्य की पाठशालाओं के लिये इस ग्रंथ की, गुजराती में, रचना की थी। पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, अध्यापक लखनऊ-युनिवर्सिटी ने इसका हिंदी-अनुवाद किया है। पुस्तक कितनी उच्च कोटि की है और बालकों के चरित्र पर इसका कितना असर पड़ेगा, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि विद्वान् लेखक इस विषय के प्रकांड पंडित हैं, और चरित्र-गठन-संबंधी पुस्तकें लिखने के लिये आपसे बड़ा अधिकारी इस देश में मुश्किल से मिलेगा। आपने इस पुस्तक में सभी प्रधान मतों और देशों से उत्तम कथाएँ चुनकर संग्रह की हैं और हरएक कथा से निकलनेवाले उपदेश भी नोट-रूप में दे दिए हैं, जिससे यह पुस्तक पाठ्य-क्रम में रक्खे जाने के लिये बहुत ही उपयुक्त हो गई है, और अनेक स्थानों में पढ़ाई भी जाती है। भाषा सरल और मुहावरेदार है। 'चरित्र' मानव-जीवन का रत्न और हरएक प्रकार की उन्नति का मूल-मंत्र है। इस दृष्टि से यह पुस्तक अमूल्य है। पुस्तक दो भाग में है। प्रत्येक भाग का मूल्य १।) है। दोनों का मूल्य २।), सजिल्द ३॥)

लड़कियों का खेल

[लेखक—गिरिजाकुमार घोष]

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस पुस्तक की रचना विशेषकर लड़कियों के लिये ही हुई है। वे इसे बड़े चाव से पढ़ेंगी, और इससे बहुत कुछ सीखेंगी। हिंदी में ऐसी बहुत कम पुस्तकें निकली हैं। मूल्य ॥), सजिल्द ॥=)

खेल-पचीसी

इस पुस्तक में उन २५ खेलों का संग्रह किया गया है, जो लड़के साधारणतः खेलते हैं या यों कहिए कि खेलते थे। अँगरेज़ी शिक्षा के फैलने से हमारे पुराने खेल दिन-दिन मिटते चले जा रहे हैं। शायद कुछ दिनों के बाद उन खेलों के जानकार भी न रहेंगे। हमने यहाँ ऐसे खेलों के खेलने की विधि बताई है, जिन्हें लड़के शौक से खेल सकें, और खेल के साथ उनकी कुछ कसरत भी हो जाय। सचित्र। मूल्य ।=), सजिल्द ॥)

गधे की कहानी

[लेखक—पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल० टी०]

गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक और मनोरंजक ढंग से कही है। बड़ी ही सरल और सीधी भाषा में मानो समाज की आलोचना की गई है। देखने ही योग्य है। अनेक सुंदर चित्र। मूल्य ॥।), रेशमी जिल्द १।)

भारत के सपूत

[लेखक—मुं० बहूरबख़्श]

इस पुस्तक में भारत के महान् पुरुषों के जीवन से संबंध रखनेवाली ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह किया गया है। भाषा अत्यंत सरल है, और कहानियाँ बहुत ही रोचक। लड़के इसे बड़े शौक से पढ़ेंगे। पुस्तक में चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

सुघड़ चमेली

[लेखक—पंडित रामजीदास भार्गव]

हिंदी एवं उर्दू-संसार भली भाँति जानता है कि आप बालोपयोगी पुस्तकें लिखने में कैसे पटु हैं। आप इस पुस्तक को अपनी लड़कियों को पढ़ाइए और फिर देखिए कि वे चमेली की तरह कैसी सुघड़ हो जाती हैं! सचित्र। मूल्य =) मात्र; सजिल्द ।)

कीड़े-मकोड़े

[लेखक—पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल० टी०]

चींटी, बर्रं, टिड्डी आदि कीड़े-मकोड़ों का ऐसा सुंदर और रोचक वर्णन किया गया है कि पढ़ने में क़िस्से-कहानी से कहीं अधिक आनंद आता है। बालकों के योग्य इस विषय की अब तक कोई पुस्तक न थी। ६ हाफ़टोन और एक रंगीन चित्र से अलंकृत। मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

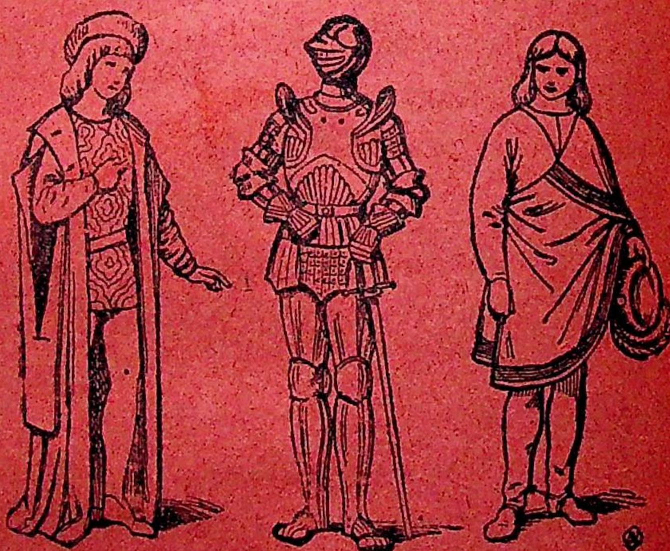
सब प्रकार की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २६-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

इँगलैंड का इतिहास

सी० पी० और बरार के हाई-स्कूलों तथा विहार के मिडिल और हाई-स्कूलों में पढ़ाई जाने के लिये टेक्स्ट-बुक-कमेटी द्वारा स्वीकृत पाठ्य-पुस्तक

हिंदी में इँगलैंड-जैसे स्वतंत्रता-प्रिय देश का एक अच्छा-सा इतिहास भी अभी तक नहीं लिखा गया ! इसी अभाव की पूर्ति के लिये अँगरेज़ी की ढेरों प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुस्तकों को पढ़कर और उनका अवलंब लेकर इस ग्रंथ-रत्न की रचना की गई है। यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ानेवाला है। प्रत्येक लाइब्रेरी और पुस्तकालय में इसकी एक-एक प्रति रहनी चाहिए। स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये तो यह ग्रंथ अमूल्य ही है। यह उत्कृष्ट और अपूर्व ग्रंथ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन और सी० पी०, यू० पी०, विहार आदि में पढ़ाया जाता है। काग़ज़ बढ़िया। छपाई मनोहारिणी।



लेखक—
प्रोफ़ेसर डॉक्टर प्राणनाथजी विद्यालंकार

प्रथम खंड	सादी १)	सजिल्द १।)
द्वितीय "	" १)	" १।)
तृतीय "	" १)	" १।)
द्वितीय और तृतीय खंड (सजिल्द एक में) केवल २।)		

नोट—विहार में तीनों भाग पढ़ाए जाते हैं, और यू० पी० और सी० पी० आदि में केवल आख़िरी दोनों भाग ही। इसीलिये उपर्युक्त ढंग से जिल्दें बँधवाई गई हैं।



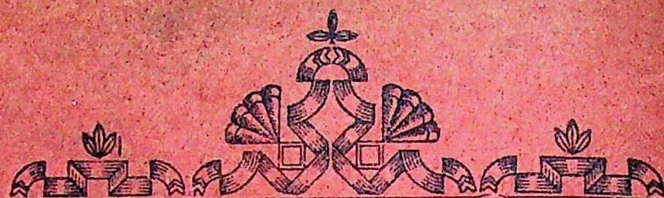
हिंदी-साहित्य का सर्वोत्तम गार्हस्थ्य-उपन्यास

हृदय की प्यास

(सचित्र और मौलिक)

[लेखक—हिंदी के सुप्रसिद्ध, सिद्ध-हस्त लेखक आयुर्वेदाचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]

हिंदी में मौलिक उपन्यास-लेखक इने-गिने ही हैं, और उनमें शास्त्रीजी का स्थान किसी से कम नहीं। गद्य-काव्य लिखने में आप आचार्य माने जाते हैं। बड़े-बड़े साहित्य-सेवी आपकी लेखन-शैली के क़ायल हैं। नवयुवकों के लिये तो यह आदर्श ही है। यह उपन्यास भी उनकी पूर्ण प्रतिभा का परिचायक है; भावमयी भाषा, सुंदर शैली, सरल और सुबोध रचना का यह सर्वोत्तम नमूना है। मित्रता के लक्षण, सौंदर्य की विषमता, शंका की सत्यता, तज्जनित द्वेष और डाह, उसका दुष्परिणाम ही नहीं, वरन् आधुनिक शिक्षा से उत्पन्न सौंदर्योपासना, अविवेक और मतिभ्रम तथा पूर्व-संस्कार के कारण कर्तव्य-परायणता और पश्चाताप इसमें पढ़ते ही बनता है। गार्हस्थ्य-जीवन क्योंकर सुखी हो सकता है, आजकल के नवयुवक क्यों उसे नरक-तुल्य समझते हैं, घर की लक्ष्मी को छोड़कर कूड़े-कर्कट की कौड़ी पर क्यों दृष्टि गड़ाए रहते हैं—आदि जीवन के कतिपय जटिल प्रश्नों का शास्त्रीजी ने बड़ी खूबी और योग्यता के साथ निराकरण किया है। इन सब बातों के होते हुए भी इसका प्लाट ऐसी खूबी से रचा गया है कि उपन्यास को एक बार हाथ में लेने पर क्या मजाल कि आप खाना-पीना न भूल जायँ, और उसे समाप्त किए बिना ही छोड़ दें। सती की सत्यता और कुलटा की कायरता तो ग़ज़ब ढाती है। एक बार इसको मँगाइए, स्वयं पढ़िए और अपनी गृहिणी को भी पढ़ाइए। ६ रंगीन और सादे चित्रों से सुशोभित इस अमूल्य पुस्तक का मूल्य केवल १॥) ; सजिल्द २)





पतिव्रता

मूल-लेखक—

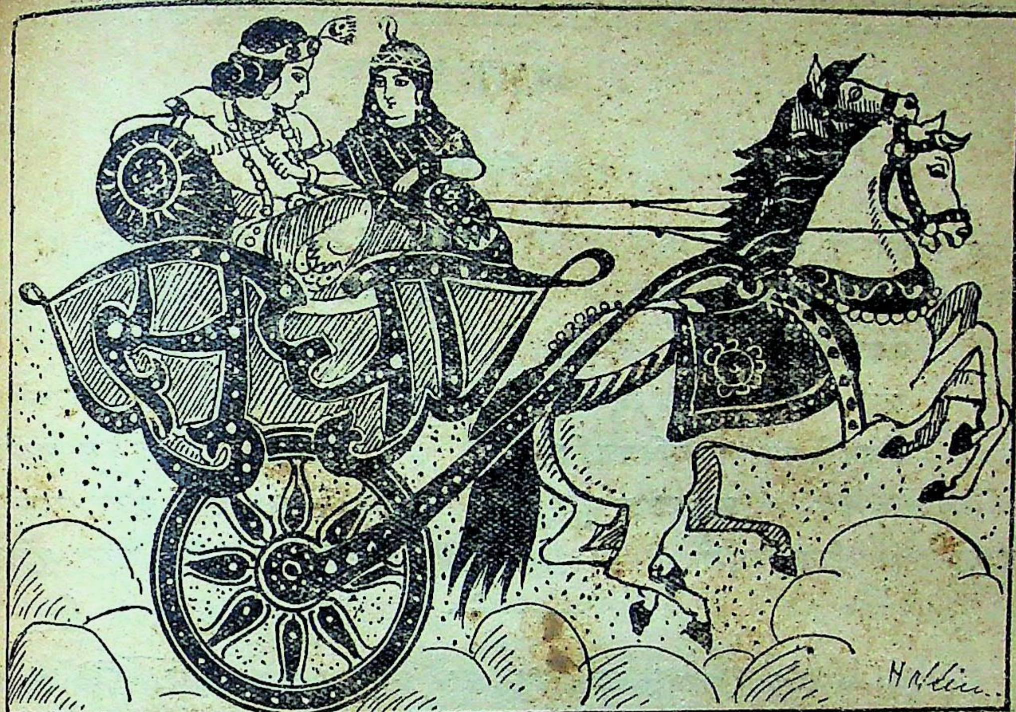
बँगला के सुप्रसिद्ध नाटककार

स्वर्गीय गिरीशचंद्र घोष

[अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय]

यह एक बढ़िया नाटक है। इसकी विशेषता इसी से जानी जा सकती है कि अनेक ग्रंथों के रचयिता स्वनाम-धन्य पांडेयजी ने इसका अनुवाद किया है। नाटक सामाजिक है। इसमें एक भले आदमी का बिगड़ना और अंत में पतिव्रता स्त्री के प्रभाव से सुधरना, बड़ी ख़ूबी से, दिखाया गया है। स्त्री-पुरुष सबके पढ़ने लायक़ है। दो रंगीन और दो सादे चित्र। पृष्ठ-संख्या २४०; मूल्य १।≈), सजिल्द १॥≈)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"
(गो० तुलसीदास)

वर्ष ४ खंड १ — कार्त्तिक, ३०८ तुलसी-संवत् (१९८७ वि०)— नवंबर, १९३० — संख्या ४ पूर्ण संख्या ४०

गंगा

[श्रीयुत बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०]

संकर की सिद्धि औ' समृद्धि चतुरानन की,
हरि-महिमा की वृद्धि सुखमा सुधा की है ;
कहैं रतनाकर सुरूप-रुचिराई धरे,
अगुन सगुन ब्रह्म बिदित दुधा की है।

कहत बिचारि लाख बातन की बात एक,
जामैं संक रंचहू बिडंबना बुधा की है ;
वेद औ' पुराननि कौ सार निरधार यहै,
गंग-धार जीवन-अधार बसुधा की है।

—

गीत

[श्रीयुत "निराला"]

स्नेह की सरिता के तट पर
चल रही युगल-स्वर्ण-घट भर ।
नयन-ज्योति में ज्ञान अकंपित,
चली जा रही नत-मुख विकसित,
जीवन के पथ पर अविचल-चित,
छवि अपार सुंदर ।
तृष्णाकुल होंगे प्रिय, जाओ,
सलिल-स्नेह मिल मधुर पिलाओ,
सब दुख-श्रम हर लाज-रूप धर
अपनाओ सत्वर ।
एक स्वप्न तम-जग-नयनों में,
खिला रही सुख द्रुम अयनों में,
रचना - रहित वचन - चयनों में
चकित सकल श्रुतिधर।

साहित्यिक छल

[श्रीयुत गोविंदवल्लभ पंत]



माधवदास के मन में कविता लिखने की इच्छा का जन्म जब वह स्कूल में पढ़ता था तब हो गया था। स्कूल के हेड-मास्टर के दूसरे स्कूल को बदल जाने पर, उनकी बिदाई के उत्सव में उसने जो कविता पढ़ी थी, उसकी सब विद्यार्थियों ने सराहना की और वे सब माधवदास को कवि समझने लगे।

माधवदास का एक सहपाठी था। उसके वृद्ध पिता लेखक और कवि थे, पर उनकी हस्त-लिपि अच्छी न थी। माधवदास के अक्षर साधारणतः सुंदर थे। सहपाठी के पिता ने एक दिन माधवदास से अपनी लिखी एक पुस्तक की सुंदर अक्षरों में नक़ल कर देने की इच्छा प्रकट की। माधवदास उस पुस्तक को लेकर घर आया और उसकी प्रतिलिपि तैयार करने लगा। उसके लिये वह पुस्तक बहुत बड़ी थी। इतना एक साथ लिखने का श्रम उसने कभी नहीं उठाया था। रात को बड़ी देर तक वह लिखता ही रहता था। जब उसका मन थक जाता और हाथ दुखने लगता, तब कहीं वह उसे छोड़ता था। दस-पंद्रह दिन में उसने किसी प्रकार वह पुस्तक पूरी की और उसे अपने सहपाठी मित्र के पिता के पास ले चला। नक़ल पाकर जब उन्होंने माधवदास के परिश्रम की सराहना की तो उसने अपनी लिखी एक कविता भी उनके हाथों में रख दी।

उन्होंने उसे पढ़ा, मुस्किराए और बोले—"तुमने निश्चय मिहनत की है। पर भाई! इस विद्या को सीखने के लिये गुरु और शास्त्र की आवश्यकता है, समय और श्रम चाहिए। छंद के नियमों के ज्ञान के बिना लिखने से कविता की अंग-हानि होती है और पाप लगता है।"

पाप की इतनी बड़ी व्यापकता से माधवदास घबरा उठा, साथ ही वह अपने नाम को छापे के अक्षरों में देखने के लिये बेचैन था। उसने कविता लिखना न छोड़ा। स्कूल, घर और खेल के मैदान में भी वह कविता लिखने बैठ जाता था। वह कविता लिखकर अपने सहपाठियों से पूछता था—"यह कविता के समान ज्ञात होती है या नहीं?" उसके सहपाठी उसे फिर दुहराते थे और उसमें छंद की गति पाकर निश्चित करते थे कि यह ज़रूर कविता है, कविता ऐसी ही होती है।

फिर भी उसके मन में गुरु और शास्त्र के दर्शन की इच्छा प्रबल हो उठी। वह, मनुष्य को विशुद्ध कविता का ज्ञान देनेवाले, उन नियमों की कल्पना करता था। वह उन्हें अलौकिक और मंत्र-शक्ति से परिपूर्ण समझता था। उसका

विश्वास था कि उनके ज्ञान से फिर उसकी लेखनी बीच में न रुकेगी, उसका छंद आरंभ होकर चलता ही रहेगा और फिर अपने आप समाप्त हो जायगा।

अचानक एक दिन उसे अपने किसी मित्र के पुस्तकालय में एक लीथो में छपी हुई पुस्तक मिली। वह उसका मनोरंजन करने में असमर्थ होने के कारण एक कोने में पड़ी थी। माधवदास ने उस पुस्तक को उठाया। पुस्तक के शीर्ष में मोटी क़लम का लिखा छपा था—"छंद-शास्त्र।" वह प्रसन्न हो उठा, मानो उसे कोई निधि मिल गई!

मित्र से उस पुस्तक को माँगकर माधवदास रास्ते-भर उसके पत्र उलटते हुए अपने घर आया और उस पुस्तक के तत्त्व को ग्रहण करने में दत्तचित्त हुआ।

पुस्तक में उसे कविता की समता और विषमता की जाँच के लिये केवल तुला मिली, उसके गुप्त भांडार की ताली नहीं।

इसके बाद माधवदास की कविताओं में नियम प्रकट हुआ और अधिक सुंदर समझी जाने लगीं। उसने डरते-डरते एक दिन एक साधारण पत्र में अपनी प्रथम कविता प्रकाशित होने के लिये भेज दी। वह छप गई, उसे संपादकजी की भेजी हुई पत्र की एक प्रति भी मिली। वह हर्ष से उछल पड़ा, उसके आनंद का ठिकाना न रहा, जब उसे पहली बार अपना छपा हुआ नाम दिखाई दिया। उसने वह कविता अपने उस सहपाठी को दिखाई, जिसके पिता लेखक थे।

सहपाठी ने कविता की प्रशंसा की और पूछने लगा—"क्या तुमने छंद-शास्त्र पढ़ा है?"

माधव—हाँ।

सहपाठी—तुम्हें पुस्तक कहाँ से मिली?

माधव—एक मित्र के यहाँ रद्दी के ढेर में।

सहपाठी—क्या तुम मुझे उसको पढ़ने के लिये न दोगे? तुम उसे पढ़ चुके होगे।

माधव—हाँ, मैं उसे पढ़ चुका हूँ, पर वह कहानी की तरह एक ही बार पढ़ने की वस्तु नहीं मालूम पड़ती। वह कोष की तरह प्रतिदिन के व्यवहार की चीज़ है। तुम उसे जब चाहो, ले जा सकते हो।

सहपाठी उसी क्षण छंद-शास्त्र माँगकर ले गया और उसने फिर कभी उसे लौटाने का नाम नहीं लिया। इससे माधवदास की छंद-प्रगति में कुछ भी बाधा नहीं पड़ी।

माधवदास ने स्कूल की अंतिम परीक्षा में सफलता प्राप्त की। अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ उसकी कविता प्रौढ़ और गंभीर हो चली। वह बराबर लिखता गया। प्रायः सभी पत्रों में उसकी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं, परंतु जब उसने "वाणी" के संपादकजी के पास अपनी एक कविता भेजी, तो उन्होंने उस पर लाल अक्षरों में "अस्वीकृत" लिखकर उसके पास लौटा दिया।

माधवदास ने फिर कठिन परिश्रम कर दूसरी कविता लिखी और संपादकजी की सेवा में भेजी। उसने पत्र में यह भी प्रकट किया कि कविता में जो दोष हों, उन्हें भी दूर करने की कृपा कीजिएगा। संपादकजी ने वह कविता भी लौटा

दी और त्रुटियों को दूर करने के लिये समय का अभाव बताया। माधवदास निराश हो उठा।

लोग समझते थे, "वाणी" में सर्व-श्रेष्ठ कवियों की कविताएँ छपती हैं। माधवदास भी विना "वाणी" में अपनी कविता को प्रकाशित देखे संतुष्ट नहीं होता था। "वाणी" के संपादक बहुत पुराने थे। उसी धंधे में उनकी कमर झुकी थी, बालों ने रंग बदला था। वे अच्छी तरह ठोक-बजाकर ही किसी नए कवि की रचना को अपने पत्र में प्रकाशित करते थे।

माधवदास ने फिर कभी "वाणी" के संपादक के पास कोई कविता नहीं भेजी। पर जब कभी वह उसमें तीसरी श्रेणी की कविताओं की भर-मार देखता था, तो सिर से पैर तक जल उठता था। उसने कविता का लिखना ही छोड़ दिया।

कुछ दिन बाद अचानक उसे एक विचार सूझा। उसने अपना उपनाम "राधिका" रख लिया और उक्त नाम से उसने एक कविता "वाणी" के संपादकजी की सेवा में भेज दी। माधवदास ने इस उपनाम की चर्चा अपने मित्रों में से किसी से भी न की।

दूसरे दिन जब डाकिए ने उसे किसी पत्र के लिये पुकारा, तो उसने पत्र लेकर उससे कहा—"राधिका के नाम से जो डाक आवेगी, वह मेरी होगी, उसे मुझे देना।"

डाकिए ने कुछ चकित होकर कहा—"यह तो स्त्री का नाम है।"

माधवदास—हुआ करे। तुम जानते ही हो, मैं कवि हूँ। भाव की राजधानी में शब्दों के ऊपर शासन करता हूँ। उन्हें जहाँ चाहूँ, वहाँ नियुक्त कर सकता हूँ। यह "राधिका" शब्द मैंने अपने उपनाम की जगह रख दिया है।

डाकिया "बहुत अच्छा" कहकर दूसरी ओर बढ़ा।

अब माधवदास पत्रोत्तर के दिन गिनने लगा। उसने पत्र के संपादकजी की मेज़ पर पहुँचने, उनका उसे देखकर उत्तर लिखने और फिर उस उत्तर का अपने पास तक आने के समय का जोड़ कर चौथे दिन उत्सुक हो डाकिए की राह देखी। वह अधीर होकर डाकख़ाने में ही पहुँच गया और डाकिए के बाहर निकलते ही पूछा—"क्यों जी, कोई मेरी डाक ? राधिका के नाम से कोई पत्र ?"

डाकिए ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, कुछ भी नहीं।"

माधवदास उदास होकर घर चला आया और विचारने लगा—"मैंने दिन गिनने में अवश्य ही भूल की है। संपादकजी के पास एक केवल मेरा ही पत्र तो पहुँचा न होगा। पत्रों के ढेर में कदाचित् मेरी कविता उस दिन उन्होंने न पढ़ी हो। फिर वे उस पर विचार करेंगे, तब कहीं उत्तर लिखेंगे। कल संभव है, मुझे उनका उत्तर मिले।

सातवें दिन माधवदास को उसके हाथ से "राधिका" का पता लिखकर भेजा हुआ लिफ़ाफ़ा वापस मिला। वह उसे देखकर प्रसन्न हुआ, पर उसका भार अनुभव कर घबरा गया और समझने लगा, प्रयत्न व्यर्थ हुआ, कविता फिर अस्वीकृत होकर लौट आई।

माधवदास ने पत्र खोला । निस्संदेह उसकी कविता लौट आई थी, पर उसमें लाल अक्षरों में कहीं पर भी "अस्वीकृत" लिखा न था। कविता के साथ संपादकजी का एक पत्र भी था। उसका विशेष अंश इस प्रकार था—

"आपके हृदय में कविता का अंकुर दिखाई देता है । निरंतर अभ्यास, अपने और अन्य भाषाओं के काव्य-पाठ, और व्याकरण-शुद्ध, मुहाविरेदार भाषा के प्रयोग से अवश्य ही वह अंकुर किसी दिन विकास को प्राप्त होगा । यह कविता वापस भेजता हूँ, आशा है, आप इसके लिये क्षमा करेंगी।"

वह पत्र पढ़कर प्रसन्नता से उछल पड़ा कि लक्ष्य भ्रष्ट न होगा। उसने उसी डाक से निम्न-लिखित पत्र भेजा—

"पूज्य संपादकजी,

प्रणाम। पत्र और वापस भेजी हुई कविता के लिये कृतार्थ हूँ।

आपके समान साहित्य के सम्राट् का आश्रय न पाने पर मुझे उस अंकुर के सूख जाने का भय है । मैं नियम-पूर्वक आपसे कविता की शिक्षा चाहती हूँ। क्या आप कृपा कर अपने बहुमूल्य समय का कुछ भाग मुझे भी देंगे ?

विनीता—

राधिका।"

इस बार उसे चौथे दिन संपादकजी का उत्तर मिला, जो इस प्रकार था—

"श्रीमतीजी,

आपके कृपा-पत्र के लिये अनेक धन्यवाद । आप निरंतर कविता लिखने का अभ्यास जारी रक्खें। भाव की प्रधानता होने पर भी शब्दों के शुद्ध रूप तोड़े-मरोड़े न जायँ, सहायक क्रियाओं और विभक्तियों का लोप न किया जाय, पिंगल के नियमों की उपेक्षा न की जाय, मात्रा और यति का भंग न हो, "दौड़ेगा" के साथ "भागेगा" का तुक न मिलाया जाय, भाव कविता का प्राण है, तो भाषा, व्याकरण और पिंगल उसका रूप, परिच्छद और आभूषण हैं। बस, इसी का विचार रखिए। कविता की शक्ति ईश्वर ने आपको दी है।

"पत्र की प्रतीक्षा" यह एक शीर्षक आपके पास भेजता हूँ । धैर्य-पूर्वक इस पर कविता लिखिए, डाकिए को देखकर प्रवासी पति के पत्र के लिये रमणी का आकुल भाव प्रकट कर भेजिए।

भवदीय

"वाणी"-संपादक।"

माधवदास ने कई बार उस पत्र को पढ़कर मन-ही-मन कहा—"इस बार अब संपादकजी पूरे जाल में फँसे।"

"राधिका" के उपनाम ने पूरी कविता लिख डाली। धैर्य-प्रदर्शन के लिये उसे सात-आठ दिन तक रोक रक्खा। फिर कुछ और संशोधन कर रजिस्ट्री डाक द्वारा संपादकजी की सेवा में भेज दी। संपादकजी ने "पत्र की प्रतीक्षा" को पसंद किया और उसे शुद्धकर शीघ्र ही "वाणी" में प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। संपादक-जी ने दूसरा शीर्षक भेजा।

"राधिका" ने दूसरी कविता भी लिखकर भेजी। "पत्र की प्रतीक्षा" "वाणी" में प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् यह क्रम न टूटा। "वाणी" का प्रत्येक अंक "राधिका" की कम-से-कम एक कविता से पूर्ण रहने लगा। फिर कुछ समय बाद "राधिका" ने पत्र के भीतरी मुख-पृष्ठ में प्रवेश किया और फिर उस पृष्ठ पर एकाधिपत्य राज्य किया। फिर तो "वाणी" का जो पहला पेज था, उस पर "राधिका" की कविता थी। इस प्रकार बहुत दिन बीत गए।

अचानक एक दिन "राधिका" को संपादकजी का यह पत्र मिला—

"आपकी कविताएँ लोक-प्रिय हुई हैं। उनकी संख्या भी अब पर्याप्त हो गई है। "वाणी" के अनेक पाठक उन सब कविताओं को एक साथ, एक पुस्तक के रूप में, देखना चाहते हैं। मेरी भी ऐसी इच्छा है। इसके लिये अब आपको कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। कविताओं का संग्रह कर मैं स्वयं उनका क्रम निर्धारित करूँगा। भूमिका भी मैं ही लिखूँगा। आप कृपा कर अपना एक चित्र भेजने की कृपा करें। उसका भी संग्रह में प्रकाशित होना, समय की चाल के अनुसार, आवश्यक है।"

पत्र पढ़कर "राधिका" सोचने लगा—ईंटें न-जाने कब से एकत्र हो गई हैं, बात-की-बात में यह छल का महल भी बन जाने को तैयार है। चलने भी दो, क्या क्षति है। संपादकजी चित्र चाहते हैं या इस कपट-कल्पना की समाप्ति!

उसने यह उत्तर भेजा—

"संग्रह के विचार के लिये धन्यवाद देती हूँ। पर मैं अपना चित्र नहीं भेज सकती। मैं परदे की प्रथा का अंधानुकरण करने पर विवश हूँ। आशा और विनती करती हूँ कि आप मुझे क्षमा करेंगे।

संग्रह में मैं "पटोत्तोलन"-शीर्षक एक और कविता भी देना चाहती हूँ। कुछ दिन बाद सेवा में भेजूँगी। विशेष कृपा।

विनीता—

राधिका।"

पत्र भेजने के बाद माधवदास विचार करता है, अब इस रहस्य को मिटाकर संपादकजी से क्षमा माँग लेनी उचित है। वह पहले पत्र द्वारा ही यह सब कुछ करने को तैयार होता है, फिर कुछ विचारकर स्वयं वहाँ जाना निश्चित करता है।

उसके बचपन का सहपाठी, वह लेखक पिता का पुत्र, संपादकजी के शहर में किसी दफ़्तर में क्लर्क था। उसी के यहाँ माधवदास ने अपना डेरा डालने की ठानी और इस आशय का उसके पास एक पत्र भेज दिया। दो-चार दिन बाद आवश्यक सामान लेकर उसने स्वयं भी प्रस्थान कर दिया।

संपादकजी "राधिका" का पत्र पाकर चकित हुए और कहने लगे—"यह स्त्री कैसी अद्भुत है। ऐसे मनोहर काव्य को यह परदे में छिपा देना पसंद करती है। वह अपना चित्र नहीं भेजना चाहती, अच्छी बात है। मुझे इसमें एक विचार मिलता है। मैं कई दिन से उस काव्य-संग्रह का नाम खोज रहा हूँ। मैं उसका नाम 'अवगुंठन' रक्खूँगा।"

माधवदास अपनी यात्रा के तीसरे दिन, नौ बजे के लगभग, अपने क्लर्क मित्र के घर पर पहुँचा। वे उसी समय खा-पी कपड़े पहनकर ऑफ़िस को प्रस्थान कर रहे थे। माधवदास को पहचानकर खिल उठे, मित्र को बैठक में ले गए। पुत्र को आवाज़ देकर बुलाया और उसके सिर पर कवि के आतिथ्य का भार सौंपकर बोले—"क्षमा करना मित्र ! मुझे बिदा दो, सुपरिंटेंडेंट साहब बड़े बेढब आदमी हैं, ऑफ़िस का वक्त हो गया, तुम खा-पीकर आराम करो, संध्या-समय आकर फिर सब बातें होंगी।"

मित्र ऑफ़िस को बिदा हुए, माधवदास ने स्नान और भोजन किया। इसके बाद उसने "पटोत्तोलन"-शीर्षक कविता पूर्ण की और फिर शहर की सैर और संपादकजी के ऑफ़िस और घर का पता लगाने को चला गया।

संध्या को मित्र के दफ़्तर से लौट आने तक वह भी आ गया।

मित्र ने कहा—"स्कूल छोड़ने के बाद आज ही भेंट हुई है, तुम तो बिल्कुल परिवर्तित हो गए माधव !"

माधव—और तुम क्या अपने को ज्यों-का-त्यों समझते हो ?

मित्र—तुमने आकर ज़रा देर भी आराम नहीं किया। कहाँ-कहाँ हो आए, यह क्या ख़रीद लाए ?

माधव ने काग़ज़ में लिपटी हुई एक रेशम की साड़ी मित्र के हाथ में रक्खी और कहा—"कुछ नहीं, एक रेशम की साड़ी ख़रीद लाया हूँ।"

मित्र ने मुस्किराते हुए कहा—"किसके लिये लाए हो ?"

माधवदास—अपने लिये। घर से लाना भूल गया। अभी संध्या-समय, इसे पहनकर एक जगह जाना है। तुम्हें भी साथ चलना होगा।

मित्र—अद्भुत बात कह रहे हो ! क्या किसी नाटक-कंपनी के इश्तहार बाँटने चलोगे ?

नौकर ने दोनों मित्रों के लिये मेज़ पर चाय रक्खी।

माधवदास ने चाय पीते हुए कहा—"वाणी में "राधिका" की कविताएँ तुमने पढ़ी हैं न ?"

मित्र—मुझे उसकी कुछ कविताएँ कंठस्थ भी हैं। अच्छा लिखती है। तुम उसे जानते हो क्या ?

माधवदास—हाँ, ख़ूब अच्छी तरह।

मित्र—कौन है वह ?

माधवदास—मैं ही वह हूँ, मैं ही "राधिका" हूँ।

मित्र—वाह ! तुम हँसी तो नहीं कर रहे हो ?

माधवदास—तुम्हारे साथ हँसी करने की आवश्यकता ही क्या है। संध्या-समय इस साड़ी को पहनकर संपादकजी से मिलने जाऊँगा।

मित्र—इन मोछों का क्या करोगे ?

माधवदास—इनको घूँघट में छिपाकर रक्खूँगा।

मित्र—तुमने अजीब तमाशा किया। सात-आठ साल से तुम इस रहस्य को इस प्रकार छिपाते हुए चले आए ? मैं आश्चर्य करता था कि माधव की कविता कहाँ लीन हो गई, क्यों सुप्त हो गई ! पर तुम यह छद्म-वेश लिए बैठे थे। संपादकजी के पास कितनी देर में चलोगे ?

माधवदास—जब ज़रा अँधेरा हो जाय। मैं उनके ऑफ़िस को देख आया हूँ। सड़क के पास ही नीचे की मंज़िल में है। प्रेस का एक कर्मचारी कहता था, आज भी वे रात आठ-नौ बजे तक वहाँ काम करते रहेंगे। इसके बाद वे घर पर मिलेंगे। उनके ऑफ़िस में ही मिलना ठीक होगा।

मित्र—उनसे क्या कोई विशेष मतलब है?

माधवदास—राधिका-रहस्य को प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

दो घंटे तक दोनो मित्र नाना प्रकार की बातों में निमग्न रहे। कुछ अँधेरा होने लगा था, मित्र ने बिजली का बटन दबाकर प्रकाश कर दिया। माधवदास ने साड़ी लेकर उठते हुए कहा—"समय हो गया। अब मुझे "राधिका" बनकर तैयार हो जाना चाहिए। मित्र, तुम चुपचाप एक ताँगा ले आओ।"

मित्र स्वयं ताँगा लेने चले गए। माधवदास ने अपने धोती-कुरते के बाहर कौशल-पूर्वक वह साड़ी पहन घूँघट काढ़ लिया। मित्र ताँगा लेकर आ पहुँचे और दोनो उसमें सवार होकर संपादकजी के ऑफ़िस की ओर चले। ऑफ़िस के बाहर ताँगा रोक दिया गया। माधवदास एक विज़िटिंग कार्ड में घर से ही "राधिका" लिखकर ले गया था। उस कार्ड को मित्र ने संपादकजी के ऑफ़िस में जाकर उनके सामने रक्खा। संपादकजी कुछ लिख रहे थे। कार्ड को पढ़कर क़लम दूर रखकर उठे और कहने लगे—"धन्य-भाग्य! उनका स्वागत है, कहाँ हैं वे?"

मित्र—आप बैठें, मैं उन्हें अभी भेजता हूँ।

"राधिका" ने घूँघट खींचकर संपादकजी के कमरे में प्रवेश किया। संपादकजी ने उनको बैठने के लिये कुर्सी देकर अपने सौभाग्य की सराहना की। "राधिका" ने मूक रहकर दावात-क़लम और काग़ज़ माँगने का संकेत किया। संपादकजी ने सब कुछ पेश किया।

"राधिका" ने काग़ज़ पर लिखा—"मैं आपसे न बोलने के लिये भी बाध्य हूँ। इसलिये मैं अपने मनोभाव इस काग़ज़ पर लिखकर प्रकट करूँगी।"

संपादकजी—आपकी जैसी भी इच्छा हो। पर क्या कवि को घूँघट के बंधन में रहना उचित है? परदे के बाहर जो प्रकृति और समाज का जीवन है, बिना उसका अनुशीलन किए आपका काव्य किस तरह परिपूर्ण होगा? आश्चर्य है, आपके समान उदार विचार रखनेवाला मन परदे को क्यों इतना ज़रूरी समझता है?

"राधिका" ने फिर लिखा—"मैं इस परदे को दूर करने के विचार से ही आपके पास आई हूँ।"

संपादकजी ने उत्तर दिया—"मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होती, यदि मैं आपके इसी काव्य-संग्रह को आपके चित्र से विभूषित कर सकता। पुस्तक दो-चार दिन में प्रेस में दे दी जायगी। पुस्तक का संग्रह संपूर्ण हो गय है, केवला भूमिका लिखनी शेष है। आपने "पटोत्तोलन"-शीर्षक कविता भेजने के लिये लिखा था?"

"राधिका" ने फिर काग़ज़ पर क़लम दौड़ाई—"मैं उसे साथ लेकर आई हूँ। यही कविता-संग्रह की पहली कविता होगी। मुझे अभी यहाँ आते-

आते मार्ग में एक विचार सूझा है। उसके अनुसार मैं इसमें कुछ परिवर्तन करना चाहती हूँ।"

संपादकजी ने "राधिका" के काव्य-संग्रह की फ़ाइल निकालकर उसके समीप रखकर कहा—"बड़े हर्ष के साथ आप यहीं पर बैठकर उसमें संशोधन करें। यह आपका संपूर्ण काव्य-संग्रह है। इसके क्रम को भी पसंद करें। मैं दोपहर से बैठा-बैठा पत्र के लिये टिप्पणियाँ लिख रहा था। आपके लिखने के लिये एकांत की रचना कर कुछ देर खुली हवा में टहलूँगा। आपके भोजन और निवास की व्यवस्था ?"

"राधिका" ने साड़ी से प्रायः ढके हुए हाथ जोड़े और घूँघट-युक्त सिर हिलाकर संपादकजी की कृपा और भोजनादि की अनावश्यकता प्रकट की।

संपादकजी अंदर के दरवाज़े को बंद कर चले गए। माधवदास ने उसी क्षण साड़ी उतारकर एक अख़बार में पैक कर दी और बाहर ताँगे में प्रतीक्षा करते हुए मित्र को देकर कहने लगा—"क्षमा करना मित्र! ज़रा-सी देर और है।"

इसके बाद वह अंदर जाकर अपने काव्य-संग्रह की फ़ाइल देखने लगा और फिर पटोत्तोलन की काट-छाँट दूरकर उसकी एक स्वच्छ प्रतिलिपि तैयार करने में लग गया।

संपादकजी ने कुछ देर बाद धीरे-धीरे दरवाज़ा खोलकर जब उस कमरे में प्रवेश किया, तब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने माधवदास के निकट आकर कहा—"तुम कौन हो, वे कहाँ गईं ?"

माधवदास—वे कहीं नहीं गईं, मैं ही वह हूँ।

संपादकजी—तुम्हारी बातों का अर्थ नहीं समझ पड़ता। क्या तुम मुझसे हँसी करना चाहते हो ?

माधवदास—नहीं, ऐसी उद्दंडता मुझसे कदापि न होगी। मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया है। आप ही ने तो मुझसे अभी घूँघट दूर कर देने को कहा था।

संपादकजी मूर्तिवत् खड़े रह गए। माधवदास ने "पटोत्तोलन" की अंतिम पंक्ति नक़लकर संपादकजी के हाथ में रख दी। उन्होंने हस्त-लिपि पहचानी। ठीक वही "राधिका" के ही अक्षर थे। संपादकजी का माथा घूमने लगा। वे मानो किसी एक लोक से उठाकर दूसरे लोक में रख दिए गए थे। उन्होंने क्रोध और निराशा-भरी वाणी में कहा—"तुम्हें इतने दिन तक साहित्य-संसार को धोके में रख देने की हिम्मत कैसे हुई ?"

माधवदास ने विनत होकर कहा—"वह एक बचपन की भूल थी। उसे क्षमा कीजिए और मुझे अपना वही सेवक समझिए।"

संपादकजी—सरासर छल और झूठ! मैंने तुम्हारी कविताओं का संग्रह तो कर दिया है, पर अब मैं इसकी भूमिका कदापि न लिखूँगा। वह तुम्हें ही लिखनी पड़ेगी।

माधवदास—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं अभी लिखने को तैयार हूँ।

संपादकजी—अच्छी बात है।

माधवदास ने भूमिका के दो शब्द लिखे—

"अनेक पाठक "राधिका" को स्त्री-कवि समझते हैं। वह मेरा उपनाम है। मेरी एन इवांस ने महिला होकर पुरुष का उपनाम—जार्ज इलियट ग्रहण किया था। उसी प्रकार मुझे भी कई कारणों से बाध्य होकर यह उपनाम स्वीकार करना पड़ा। यह भ्रम दूर हो। मेरा वास्तविक नाम है—

माधवदास।"

चलते समय माधवदास ने अपना चित्र संपादकजी को देकर कहा—"यह मेरा चित्र है, जिसे आप संग्रह में देना चाहते थे।"

संपादकजी ने रूखेपन से कहा—"इसी फ़ाइल में रख दो।"

उनकी आज्ञा का पालनकर माधवदास ने उन्हें प्रणाम किया और मित्र से तमाम बातें कहता हुआ लौट आया।

'दीनजी' और उनका पांडित्य

[श्रीयुत मोहनवल्लभ पंत]

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ;
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥
(कालिदास)



याग के पश्चिम यमुना के कुछ दूर उत्तर में फ़तेहपुर का ज़िला है। इसी ज़िले की शस्य-श्यामला भूमि में हरे-भरे खेतों के बीच एक गाँव बसा है। उस गाँव का नाम 'बरवट' है। गाँव कोई बहुत बड़ा नहीं है। न व्यवसाय-धंधे के ही कारण इसकी प्रसिद्धि है। परंतु प्रकृति-देवी की इस गाँव पर बहुत कृपा है। छोटे-छोटे ताल-तलैयों, सुंदर हरे-भरे पेड़ों एवं अनाज से लहलहाते हुए खेतों के कारण इसकी शोभा दर्शकों के मन को हर लेती है। भोजन की प्रचुरता के कारण बसे हुए अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे पक्षियों का कल-कलरव सहृदय पथिकों के मन को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर मानो उन्हें इस मनोमुग्धकारी दृश्य का अवलोकन करने को बाध्य करता है। सारांश यह कि प्रकृति-नटी यहाँ सदैव अपने साज-बाज से सुसज्जित रहती है। इस एकांत रमणीयता के अतिरिक्त इस ग्राम में और कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है। परंतु प्रकृति के साथ ही "समय" भी इस पर अनुकूल हुआ जान पड़ता है। अभी थोड़े ही वर्ष पूर्व इस ग्राम को एक ऐसे नर-श्रेष्ठ कविरत्न को जन्म देने का सौभाग्य मिला है, जिसके कारण इसका नाम सदा के लिये अजर-अमर हो गया है। एक छोटा-सा गाँव—संभवतः काल-चक्र के फेर से जिसका कुछ ही समय में संसार के भूगोल से अदृश्यताभाव हो जाता—आज दिन हिंदी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जा रहा है। सच है, सुपुत्र अपने साथ-साथ अपने माता-पिता एवं देश का भी नाम अमर कर जाते हैं।

उपर्युक्त 'बरवट' गाँव में चित्रगुप्त-वंशोत्पन्न मुंशी कालिकाप्रसादजी श्रीवास्तव (दूसरे) कायस्थ-नामक एक साधारण स्थिति के गृहस्थ रहते थे। उनके पूर्वजों को नवाबी के ज़माने में "बख़्शी" की उपाधि मिली थी, जो पुरुषाक्रम से उनके वंश में अब तक चली आती है। जब बहुत अवस्था बीतने पर भी इनके कोई संतान न हुई, तब एक महात्मा के आदेशानुसार इनकी धर्म-पत्नी ने ज्येष्ठ मास के प्रति रविवार को निर्जल एवं निराहार रहकर सूर्य की उपासना की। व्रत क्या था, कड़ी तपस्या थी। सूर्य भगवान् की असीम अनुकंपा से उनकी तपस्या सफल हुई और संवत् १९२३ विक्रमाब्द की श्रावण-शुक्ला षष्ठी को उनके गर्भ से एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। सूर्य का दिया हुआ समझकर मुंशीजी ने पुत्र का नाम "भगवानदीन" रक्खा। इनका बालपन साधारण देहाती बालकों की भाँति प्रकृति की ही देख-रेख में उछल-कूद, दंगा-फ़साद आदि बाल-सुलभ चपलताओं में ही बीता।

ग्यारह वर्ष की अवस्था तक ये अपनी जन्मभूमि में ही रहे। वहीं इनकी उर्दू और फ़ारसी की आरंभिक शिक्षा हुई। पर माता का सुख इनके भाग में बहुत थोड़ा बदा था। वे इनको केवल ग्यारह वर्ष का छोड़कर चल बसीं। इनके पिता आजीविका-वश बुंदेलखंड में रहते थे। वे इनको अपने साथ ही ले गए। बुंदेलखंड में ये नौगाँव छावनी में अपने फूफा के पास रहे और वहाँ फ़ारसी का विशेष अध्ययन कर पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। अनेक सांसारिक झंझटों में फँसने के कारण इनके पिता को पुत्र की देख-रेख करने का अवसर ही न मिलता था। अतएव चार वर्ष बाद वे

पुनः अपने गाँव लौट आए। यहाँ मुंशीजी के एक अत्यंत घनिष्ठ मित्र थे। उन्हीं को इनका भार सौंपा गया। मित्र महोदय का नाम पुत्तू सोनार था। ये लालाजी को बहुत प्यार करते थे। पुत्तू सोनार और उनकी विधवा बहन "मनियाँ बुआ" के पुत्र-निर्विशेष स्नेह के कारण लालाजी अपनी मा को भूल-से गए। इन मनियाँ बुआ के प्रति लालाजी के मन में असीम श्रद्धा और स्नेह था। वे बहुधा उनकी याद किया करते थे। मनियाँ बुआ का देहांत हुए अभी दो ही तीन वर्ष हुए हैं। इस प्रकार पूर्ण वात्सल्य से पालित-पोषित होने तथा प्रकृति की गोद में स्वच्छंद विहार करने का सुअवसर मिलने के कारण लालाजी का शरीर पूर्ण स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट हो गया। इसी स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर को लेकर लालाजी ने युवावस्था में पदार्पण किया।

बुंदेलखंड से लौटने पर इन्होंने लगभग दो वर्ष तक ग्रामीण पाठशाला में अध्ययन किया। इन्हीं दिनों इनके दादा ने, जो स्वयं हिंदी के प्रेमी थे, इनको हिंदी की भी साधारण शिक्षा देनी आरंभ कर दी। लालाजी ने उनसे रामचरित-मानस का कुछ अंश पढ़ा। इन्हीं के उपदेश से लालाजी ने सुंदर-कांड की प्रतिदिन एक आवृत्ति करनी आरंभ कर दी। सारांश यह कि यहीं से इनमें हिंदी-ज्ञान का सूत्र-पात हुआ। परंतु उपकरण के अभाव में वे हिंदी की कुछ भी उन्नति न कर सके। अतएव इस समय हिंदी-रुचि का बीजारोपण हो गया, जो काल पाकर उचित साधनों के उपयोग से अंकुरित एवं वृद्धि को प्राप्त हो खूब फूला-फला।

सत्रह वर्ष की अवस्था में ये फ़तेहपुर के अँगरेज़ी स्कूल में भर्ती किए गए। पाँच वर्ष में उस पाठशाला से इन्होंने मिडिल पास कर लिया। इसी बीच इनका विवाह भी हो गया। तब तक उस पाठशाला में केवल मिडिल तक ही पढ़ाई होती थी। उस पाठशाला की पढ़ाई समाप्त कर चुकने पर इनके अभिभावक इनको आगे न पढ़ाकर जीविकोपार्जन में लगाना चाहते थे। लालाजी की इच्छा अभी और पढ़ने की थी। संयोग से उसी वर्ष वह पाठशाला मिडिल स्कूल से हाईस्कूल हो गई। अब क्या था। लालाजी ने सम्मान के साथ दो वर्ष में इंट्रेंस परीक्षा पास कर ली। अब फिर वही समस्या सामने उपस्थित हुई। इनके अभिभावक ने कह दिया कि अब पढ़ना बंद करो, और कमाओ-खाओ। मैं तुम्हें अब आगे नहीं पढ़ा सकता। लालाजी को विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा। एक ओर अध्ययन की प्रबल इच्छा, दूसरी ओर गृहस्थी का दुर्वह भार। विद्यार्थी-अवस्था में अपना ही ख़र्च सँभालना कठिन हो जाता है। इस पर एक और प्राणी के कपड़े-लत्ते का प्रबंध एवं उसकी देख-भाल करना, ऐसी परिस्थिति को एक भुक्तभोगी ही समझ सकता है। अस्तु, इन्होंने प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला में एफ़० ए० में नाम लिखा ही दिया। इंट्रेंस में ऊँचे नंबरों से पास होने के कारण कायस्थ-पाठशाला से इनको छात्र-वृत्ति भी मिलने लगी। परंतु इतने से भला कैसे निर्वाह हो सकता था। अपना ख़र्च पूरा करने के लिये इन्हें दो-एक जगह प्राइवेट ट्यूशन भी करने पड़ते थे। परंतु इस तरह कहाँ तक निर्वाह होता। एक ओर गृहस्थी के झंझट, दूसरी ओर विद्या का झंझट। लाचार लालाजी को एफ़० ए० में ही अपने विद्यार्थि-जीवन की इतिश्री कर देनी पड़ी।

इन्हीं दिनों कायस्थ-पाठशाला में एक अध्यापक का स्थान रिक्त हुआ। वहाँ के प्रधानाध्यापक के कृपा-पात्र होने के कारण इनको वहाँ नियुक्त होने में कोई कठिनता न हुई। डेढ़ बरस तक वहीं काम करते रहे। इन्हीं दिनों प्रयाग के मिशन-गर्ल्स हाईस्कूल में एक फ़ारसी के अध्यापक की आवश्यकता हुई। अपने स्कूल के प्रधानाध्यापक की कृपा के ही कारण वह स्थान उनको आसानी से मिल गया। पर एक ही स्थान पर भला कोई कितने दिन तक रह सकता है। वहाँ से भी लालाजी का जी ऊब गया और छः मास तक वहाँ काम करने के उपरांत वह महाराजा-हाईस्कूल

के सेकंड मास्टर होकर छतरपुर रियासत में चले गए। वहीं से इनका नया जीवन आरंभ हुआ।

यद्यपि इनके दादा ने बचपन में ही और पिताजी ने भी स्वयं हिंदी की ओर इनकी अभिरुचि उत्पन्न कर दी थी, तथापि जिस वायु-मंडल में ये रहते थे, उसमें हिंदी का अध्ययन करना कठिन ही था। इससे लालाजी अपने ज्ञान की कुछ भी वृद्धि न कर पाए। छतरपुर आते ही इन्हें बड़ा अच्छा सुयोग मिला। हिंदी के बड़े-बड़े साहित्यिकों की संगति एवं साहित्य-चर्चा के कारण इनमें हिंदी-साहित्य के मनन की रुचि जाग्रत् हो उठी। लालाजी ने नए उत्साह से हिंदी-साहित्य का अध्ययन एवं अनुशीलन आरंभ कर दिया। छतरपुर के राजकीय पुस्तकालय में हिंदी के ग्रंथों का अच्छा संग्रह होने के कारण लालाजी को और भी सुविधा हुई। उनके गंभीर अध्ययन एवं अविरत अध्यवसाय के कारण उनकी सुप्त प्रतिभा उद्बुद्ध हो उठी। परिस्थिति के प्रतिकूल होने के कारण अथवा उचित उपकरण के अभाव में अब तक लालाजी की प्रतिभा का विकास न हो पाया था। समय पाते ही उनकी ईश्वर-प्रदत्त शक्तियाँ पूर्ण रूप से स्फुरित होने लगीं। ये कविता रचने लगे। उनके द्वारा इनकी प्रखर प्रतिभा की ज्योति क्रमशः फैलने लगी। छतरपुर में लालाजी एवं कतिपय साहित्यिकों के उद्योग से "काव्य-लता" और "कवि-समाज"-नामक दो साहित्यिक सभाएँ स्थापित हुईं। पं० गंगाधरजी व्यास उसके प्रमुख व्यक्ति थे। लालाजी इनको अपना साहित्यिक गुरु मानते थे। इनसे ही लालाजी ने अलंकार-शास्त्र एवं अन्य काव्यांगों का अध्ययन किया। कविता भी इन्हीं से सीखी। उक्त सभाओं में समस्याएँ दी जाती थीं और पं० गंगाधरजी के नवसिखुए शिष्य अपनी-अपनी पूर्तियाँ सुनाकर उनका संशोधन करवाते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे लालाजी हिंदी के विद्वान् एवं कवि हो गए।

परंतु उनकी ज्ञान-पिपासा इस समय बहुत प्रबल हो गई थी। छतरपुर में इस बढ़ती हुई तृष्णा को तृप्त करने का कोई अच्छा साधन नहीं था। वे किसी विस्तृत साहित्यिक क्षेत्र में काम करना चाहते थे। काशी ही इस कार्य के लिये उन्हें सबसे उपयुक्त स्थान जान पड़ा। उन्होंने अपने मित्र पं० केदारनाथ पाठक तथा बाबू अमीरसिंहजी से इस संबंध में लिखा-पढ़ी की। इन दोनो ने बाबू श्यामसुंदरदासजी से लालाजी की योग्यता की बात कही। संयोग-वश उन्हीं दिनों बाबू साहब को उस ओर जाना पड़ा। छतरपुर में वे लालाजी से मिले, और साधारण वार्तालाप में ही उनकी बुद्धि का असाधारण परिचय पाकर उन्होंने इनको काशी में बुला लिया। काशी में आते ही लालाजी को सेंट्रल हिंदू-कॉलेज में फ़ारसी के अध्यापन का कार्य मिल गया। साथ ही नागरी-प्रचारिणी सभा ने भी इनको प्राचीन कवियों के ग्रंथों के संपादन का कार्य सौंप दिया। इस प्रकार लालाजी के दिन काशी में बड़े आनंद से कटने लगे। अपने संपादकीय अनुभव एवं मननशीलता के कारण आपको अपने कार्य में बड़ी सफलता मिली। अपनी कार्य-पटुता, प्रकांड पांडित्य एवं अध्यवसाय के कारण ये हिंदी-शब्द-सागर के भी एक उप-संपादक बनाए गए। इसमें ये बहुत कुछ काम कर भी चुके थे। परंतु अपनी स्पष्टवादिता के कारण प्रायः कार्यकर्ताओं से इनकी पटती न थी। अतएव इनको कोष-विभाग से हटना पड़ा। इन्हीं दिनों हिंदू-विश्वविद्यालय में हिंदी-साहित्य भी ऊँची कक्षाओं के पाठ्यक्रम में रक्खा गया। विद्वान् तो ये थे ही, झट से हिंदी-साहित्य के लेक्चरर चुन लिए गए और आमरण उस पद पर पूर्ण सफलता से काम करते रहे।

लालाजी के काशी आने के कुछ ही दिनों के पश्चात् प्रयाग के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं का आरंभ हुआ। काशी के विद्यार्थियों के लिये तब तक उन परीक्षाओं के लिये पढ़ने तथा हिंदी-साहित्य का उच्च ज्ञान प्राप्त करने का कोई साधन नहीं था। काशी में हिंदी-साहित्य के विद्वानों की कमी थी, यह बात नहीं। बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान् वर्तमान थे। परंतु

व्यर्थ में विद्यार्थियों के साथ माथा-पच्ची करने के लिये किसके पास फ़ालतू समय और दिमाग़ पड़ा था ? अतएव परीक्षार्थी विद्यार्थी जिस-जिसके पास पहुँचे, वहाँ से उनको अपना-सा मुँह लेकर लौटना पड़ा। अंत में वे लोग सब ओर से निराश होकर लाला भगवानदीनजी के पास पहुँचे। यहाँ उनके मन की मुराद पूरी हुई। लालाजी ने सहर्ष इस कार्य का भार अपने ऊपर ले लिया। दूसरे ही दिन से उन्हीं के घर में अध्यापन-कार्य आरंभ भी हो गया। भला इस सुयोग से लाभ उठाने से कौन वंचित रहता। धीरे-धीरे विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी, और लालाजी के घर में स्थानाभाव होने लगा। तब इन लोगों ने स्थानीय कंपनी बाग़ की हरी-भरी भूमि को ही साहित्य-ऐसे सरस विषय के अध्ययन-अध्यापन के लिये उपयुक्त समझा। पहले तो इसमें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं जान पड़ी। पर बरसात आते ही अध्ययन में बड़ी असुविधा होने लगी। इस पर ये लोग नागरी-प्रचारिणी सभा के बरामदे में बैठकर अपना काम चलाने लगे। संभवतः इस कार्य में इन लोगों की यह अद्भुत लगन सभा के संचालकों को कुछ खटकी। अतएव संचालकों की आज्ञा के अनुसार इन लोगों को सभा की चौहद्दी के भीतर पढ़ाई करने से विरत होना पड़ा। परंतु ये लोग हताश न हुए। इनमें उत्साह था, लगन थी। सनातनधर्म-स्कूल के अधिकारियों से अनुमति लेकर इन लोगों ने अपनी बैठक उक्त स्कूल के प्राचीन भवन में कर दी। इस बैठक का नामकरण "हिंदी-साहित्य-विद्यालय" हो गया, और यह सुसंघटित रूप में अपना कार्य करने लगी। अब यह विद्यालय दयानंद स्कूल के प्राचीन भवन से होता हुआ "मालती-शारदा-सदन" पुस्तकालय, चौक में आ गया है। विद्यालय पहले की अपेक्षा अब प्रौढ़ अवस्था को पहुँच गया है। लालाजी ने इस विद्यालय पर अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। इसके प्रति उनको असीम अनुराग था। उनकी ममता इस पर इतनी बढ़ गई थी कि जिस दिन उनको अपना मृत्यु-काल निकट जान पड़ा, उसी दिन उनके कथनानुसार वे विद्यालय में लाए गए। ता० २८ जुलाई सन् १९३० ई० को प्रातःकाल वे विद्यालय में पहुँचाए गए। वहीं उसी दिन रात को प्रायः दस बजे हिंदी-साहित्य का एक अमूल्य रत्न संसार से सदा के लिये उठ गया।

× × ×

लालाजी की विद्वत्ता सर्वतोमुखी थी। फ़ारसी और उर्दू तो उन्होंने बचपन से ही पढ़ी थी, अतएव इन दोनो भाषाओं का उन्हें पूर्ण ज्ञान होना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं। वे उर्दू के बड़े अच्छे 'शायर' थे। उर्दू-शायरी में वे अपना 'तख़ल्लुस' (उपनाम) 'रौशन' रखते थे। इनकी फुटकर उर्दू-कविताओं का एक बहुत अच्छा संग्रह अप्रकाशित ही पड़ा है। इनके उस उर्दूपन की झलक उनके हिंदी-लेखों और कविताओं में स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। वास्तव में लालाजी की भाषा में जो चोज़, जो सजीवता, जो 'ज़बादानी' दिखलाई देती है, वह उनके 'उर्दूदाँ' होने के ही कारण है। पीछे जब हिंदी के विद्वानों के संसर्ग से इनकी रुचि हिंदी-साहित्य की ओर प्रवृत्त हुई और उनको सुयोग भी मिल गया, तब अवस्था ढल जाने पर जिस तत्परता एवं लगन से, जिस अध्यवसाय से इन्होंने हिंदी-साहित्य का अनुशीलन किया, वह सराहनीय एवं हिंदी-प्रेमियों के लिये अनुकरणीय है। शायद ही हिंदी का कोई प्रसिद्ध काव्य ऐसा हो, जिसका लालाजी ने गंभीर अध्ययन न किया हो। लालाजी की अध्ययन-शैली बड़ी विचित्र थी। वे शब्द-शब्द को ध्यान से पढ़ते थे, उस पर मनन करते थे। पुस्तकों को केवल चख लेना वे पसंद नहीं करते थे। वे प्रायः अपने विद्यार्थियों से कहा करते थे कि एक ही पुस्तक का गंभीर अध्ययन अनेक पुस्तकों के उलट जाने से कहीं अच्छा है। विद्यार्थियों को पढ़ाने में भी वे इसी प्रणाली का उपयोग करते थे। एक महाशय मुझसे 'पाली' पढ़ाया

करते थे। मैं बार-बार शब्दों के केवल अर्थ से ही संतुष्ट न होकर उनके मूल की जिज्ञासा कर बैठता था। अंत में वे झल्लाकर कह बैठे कि "लालाजी के शिष्यों को पढ़ाना जान जहमत में डालना है। वे तो शब्दों की खाल खींचने को तैयार हो जाते हैं।" कहने का प्रयोजन यही है कि लालाजी जो कुछ भी पढ़ते, उसका पूर्ण ज्ञान संपादित करते; जिस विषय को भी पढ़ाते, उसको गंभीर गवेषणा-पूर्ण दृष्टि से विद्यार्थियों को हृदयंगम कराते थे।

वे हिंदी-साहित्य के प्रकांड पंडित तो थे ही, संस्कृत-भाषा के साहित्य से भी थोड़ा-बहुत परिचय रखते थे। फलित ज्योतिष का उनको बड़ा अच्छा ज्ञान था। इधर लगभग एक वर्ष से वे मराठी-साहित्य के अध्ययन में लगे हुए थे। अनेक देशों में यात्रा करने एवं जीवन की नाना परिस्थितियों में पड़ने के कारण उनका वैयक्तिक अनुभव भी ख़ूब बढ़ा-चढ़ा था। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। वे किसी वस्तु का निरीक्षण अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से करते थे। फलतः इन सबका प्रभाव उनकी कविता पर भी पड़ा। यही कारण है कि उनकी कविता हृदय को स्पर्श करनेवाली है। स्थानाभाव से हम यहाँ पर कोई उदाहरण नहीं दे सकते।

वे एक बड़े ऊँचे दर्जे के कवि थे। व्रजभाषा और खड़ी बोली, दोनो पर उनका समान अधिकार था। उनका "वीर-पंचरत्न" खड़ी बोली का एक-मात्र वीर-रसात्मक काव्य है। यह काव्य उनके हिंदी-काव्य-रचना-काल के प्रारंभ का है। अतएव इसमें बहुत-से उर्दू-शब्द आ गए हैं। इसका छंद भी उर्दू की ही 'बहर' है। परंतु इसकी ओज-पूर्ण कविता पढ़ते-पढ़ते हृदय में उत्साह आ जाता है, वीरता का स्रोत उमड़ने लगता है। भूषण के बाद हिंदी-साहित्य में वीर-रस की कविता का एकदम अभाव हो गया था। लालाजी ने साहित्य के उस अंग की पूर्ति की, जिसके कारण हिंदी-साहित्य निर्जीव हो गया था। काव्य के दो मुख्य रसों—श्रृंगार और वीर—में से श्रृंगार का तो लोग दुरुपयोग तक करने लगे थे, पर वीर की ओर किसी का ध्यान भी न था। अतएव "वीर-पंचरत्न" की रचनाकर लालाजी ने वीर-रस के अभाव की पूर्ति की। लालाजी को हम बीसवीं सदी का "भूषण" कह दें, तो अत्युक्ति न होगी। लालाजी के बाद भी अभी तक हम ऐसी उत्साह-पूर्ण, हृदय फड़का देनेवाली कविता का एकदम अभाव ही पाते हैं। लालाजी के इस ग्रंथ का मध्य-प्रदेश में बड़ा मान एवं प्रचार है। कई-कई पुरुषों और स्त्रियों को इसकी कविताएँ कंठस्थ हैं। इन्होंने 'शक्ति-भवानी'-नामक एक कविता लिखी थी, जिस पर कलकत्ते की बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी से इन्हें एक स्वर्ण-पदक मिला था। लालाजी प्रायः समयानुकूल कविता रचने में बड़े कुशल थे। इनकी अनेक सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक कविताओं का एक बहुत बड़ा संग्रह अप्रकाशित ही पड़ा है। ये साधारण-से-साधारण विषय पर भी बड़ी सुंदर, विनोद-पूर्ण, साथ ही साहित्यिक कविता रच डालते थे। 'मोटर-पंचक', 'वायुयान', 'साइकल,' 'फ़ुटबॉल', 'सुरती' आदि इनके उदाहरण हैं। इनकी कुछ चुनी हुई उत्तम कविताओं का संग्रह हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहरियासराय से 'नवीन बीन अथवा 'नदीमे-दीन' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके नाम से ही लालाजी की साहित्यिक रुचि का पता चल जाता है। इधर आप अपने शिष्यों के अनुरोध से "मित्रादर्श"-नामक महाकाव्य की रचना कर रहे थे। इसका कुछ अंश 'लक्ष्मी' पत्रिका में निकल चुका है। गत वर्ष आप उक्त काव्य के लिये सामग्री एकत्र करने को द्वारका और सुदामापुरी की ओर गए थे। "महाराष्ट्र-देश की वीरांगनाएँ"-नामक एक और खंड काव्य पर भी आपने हाथ लगाया था। परंतु हिंदी-साहित्य के अभाग्य से दोनो अधूरे ही पड़े हैं। केवल थोड़ा-सा अंश लिखा गया है।

लालाजी हिंदी-साहित्य के अद्वितीय टीकाकार थे। प्राचीन हिंदी-साहित्य के दुर्बोध काव्यों को अपनी सरल टीकाओं द्वारा सुगम करके आपने जो उपकार किया,

उसके लिये हिंदी-संसार आपका चिर-ऋणी रहेगा। यदि लालाजी केवल टीकाकार ही होते, तो उनकी टीकाएँ ही अकेले उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण रखने को पर्याप्त होतीं। तुलसी, सूर, बिहारी, भूषण आदि महाकवियों के ग्रंथों की टीकाएँ करके ही लालाजी संतुष्ट नहीं हुए, किंतु कठिन काव्य-प्रेत केशव के रामचंद्रिका और कविप्रिया-ऐसे दो ग्रंथों को, जिनको लोग क्लिष्टता के कारण पढ़ते तक न थे, अपनी सरल टीकाओं द्वारा अत्यंत सुगम बना दिया। प्राचीन काव्यों के अर्थ—साहित्यिक अर्थ, अटकल-पच्चू नहीं—लगाने में वे अपना सानी नहीं रखते थे। इधर आप "प्रवीण-सागर" की टीका कर रहे थे, पर वह अपूर्ण ही पड़ा हुआ है। कुछ लोग लालाजी को केवल टीकाकार ही समझकर अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे। पर ऐसे लोगों की संख्या केवल अँगुलियों पर गिनने-भर को है। इन लोगों को कभी लालाजी की टीकाओं के पन्ने उलटने का भी सौभाग्य नहीं मिला। मुझे बहुत-से ऐसे महाशयों से बात करने का मौक़ा मिला है, जो कहते हैं कि "लालाजी तो बस टीकाएँ ही किया करते हैं।" ऐसे लोग टीका करना दाल-भात का कौर समझे बैठे हैं। ये लोग समझते हैं कि टीका करना और किताबों की कुंजियाँ लिखना एक ही बात है, इसके लिये विद्वत्ता की आवश्यकता ही क्या है। अतएव इन कठहुज्जत करनेवालों से हमें कुछ नहीं कहना है। विद्वान् लोग टीकाओं की महत्ता स्वीकार करते हैं और करेंगे। यदि ऐसा न होता, तो संस्कृत के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ को आज कौन पूछता? जिन ग्रंथों पर मल्लिनाथ की टीकाएँ हैं, वे केवल मूल-मात्र छपती ही बहुत कम हैं, और बिना मल्लिनाथ की टीका के उनका कोई महत्त्व ही नहीं है। मल्लिनाथ संस्कृतज्ञों के सामने केवल टीकाकार के रूप में हैं, परंतु उनका मान 'कालिदास' से बढ़कर नहीं, तो किसी क़द्र कम भी नहीं कहा जा सकता। लालाजी हिंदी-साहित्य के मल्लिनाथ हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। इनकी टीकाओं का आज दिन जो मान है, वह किसी से छिपा नहीं है। इनकी टीकाओं की देखा-देखी और भी टीकाएँ निकलने लगी हैं, पर जो मान इनकी टीकाओं का है, वह और किसी का नहीं। ऐसे टीकाकार को जन्म देकर हिंदी-साहित्य गौरवान्वित हो गया है।

आचार्य की हैसियत से लालाजी का महत्त्व कम ऊँचा नहीं है। हिंदी-साहित्य में वे "स्वयंभू" कवि बनकर प्रविष्ट नहीं हुए थे। रीति-ग्रंथों एवं काव्य-ग्रंथों का पूर्ण अध्ययन करने के अनंतर ही वे काव्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। अलंकार-शास्त्र के तो वह बड़े अच्छे विवेचक थे। किसी छंद में किसी को अलंकार-निर्णय कराना होता, तो वह लालाजी के पास आता और संतुष्ट होकर ही लौटता था। अलंकार-शास्त्र पर आपका एक ग्रंथ "अलंकार-मंजूषा" है, जिसके तीन-चार संस्करण हो चुके हैं। अनेक विद्वानों एवं आचार्यों के ग्रंथों के होते हुए भी इसका इतना मान होने का कारण है इसकी सरलता एवं स्पष्टता। उदाहरणों की प्रचुरता एवं सरल व्याख्या के कारण लोग इसी की क़द्र करते हैं। इन सब कारणों से अपने ग्रंथों की बिक्री न देखकर कई लोगों को बहुत बुरा लगा और वे लालाजी की मौलिकता पर आक्षेप करते हुए उनके ग्रंथों में छिद्रान्वेषण करने लगे। परंतु 'रत्न' में कीचड़ लगा देने से पारखी की दृष्टि में उसका मूल्य नहीं घटता। यहाँ पर यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि इधर-उधर के साहित्य से अनुवाद करके ग्रंथकार कहलानेवालों की भाँति लालाजी ने कभी भी मौलिकता का दावा नहीं किया, न उन्होंने अपने को सर्वथा निर्दोष ही माना। मनुष्य को मति-भ्रम होना स्वाभाविक ही है। अतएव लालाजी की टीकाओं एवं अन्य ग्रंथों में जो कुछ त्रुटियाँ हो गई हैं, वे क्षम्य हैं और मानव-स्वभावानुकूल हैं। इससे उनकी उपादेयता में कुछ कमी नहीं होती। इधर एक ग्रंथ "व्यंग्यार्थ-मंजूषा" भी निकला है, जिसमें ध्वनि-निरूपण है।

लालाजी समालोचक भी अच्छे थे। इनकी टीकाओं से ही इनकी गंभीर आलोचना-शक्ति का पता चल

जाता है। पत्र-पत्रिकाओं की आक्षेप-पूर्ण आलोचनाओं से इन्हें चिढ़ थी, अतएव वे इस संबंध में तटस्थ रहते थे। परंतु थे तो आख़िर मनुष्य ही। हिंदी-साहित्य के आलोचना-क्षेत्र में जो एक प्रकार की घाँघली मची हुई थी, उसे वह सहन नहीं कर सके। अतएव वे भी उस चक्र में कूद पड़े। इनकी शैली विनोद-पूर्ण होती थी, और ये प्रायः व्यंग्य से काम लिया करते थे। इनके व्यंग्य यद्यपि कभी-कभी औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर जाते थे, तथापि जैसा कई लोगों ने लालाजी पर आक्षेप किया है, हम उन्हें अशिष्टता-पूर्ण या अश्लील नहीं कह सकते। बात वास्तव में यह है कि लालाजी गद्य लिखते समय प्रायः यह भूल जाते थे कि वे कुछ लिख रहे हैं। उनका गद्य प्रायः इस रूप में रहता था कि मानो वे प्रत्यक्ष रूप में किसी से बहस कर रहे हों। साधारण बोल-चाल में प्रायः आपस में शिष्ट लोग "कहिए जनाब, आया आपके दिमाग़ शरीफ़ में", "ज़रा समझ से काम लीजिए", "आप कुछ भाँग तो नहीं पी गए हैं", आदि ऐसे-ऐसे मुहावरों का प्रयोग बराबर करते हैं, पर कहने या सुननेवालों में से किसी को बुरा नहीं लगता। लालाजी के लेखों में इसी प्रकार के कथोपकथन का-सा मज़ा आता है। इनका "प्रयाग की प्रदर्शिनी"-शीर्षक लेख पढ़िए, तो सब रहस्य खुल जाय। विहारी और देव-संबंधी आलोचना के अनंतर लालाजी ने जब देखा कि लोग किसी की युक्ति-संगत बात को स्वीकार ही नहीं करते, अपनी ही कहते चले जाते हैं, तब उन्होंने इस ओर से अपना मुँह फेर लिया। परंतु हिंदी के दुर्भाग्य से पाँचों सवारों में अपने को भी गिनानेवाले कुछ नौसिखुए भी आलोचना-क्षेत्र में कूद पड़े। नाम दो तरह से कमाया जाता है—एक तो ऐसे लोग होते हैं, जो अपने गुणों एवं सत्कर्मों से नामवरी कमाते हैं; पर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनके पास नाम कमाने का कोई सत्साधन नहीं होता। अतएव ऐसे लोग बड़े आदमियों से केवल इस आशा से छेड़-छाड़ कर बैठते हैं कि किसी तरह भी हो, उनका नाम तो हो ही जायगा। इस श्रेणी के कुछ महानुभावों ने लालाजी के ग्रंथों की आलोचना करने की अनधिकार चेष्टा की। अधिकांश में उनका प्रयत्न विफल था। वे तर्क का आश्रय न लेकर कठहुज्जती करते थे। पहले तो लालाजी चुप रहे—और यही उचित भी था। पर आख़िर उनसे न रहा गया, और चुप रहना उन्हें कायरता-पूर्ण जँचा। उन्होंने इन लेखों की तीव्र आलोचना की। लालाजी के हितैषियों एवं शिष्यों को यह अच्छा न लगा कि वे साधारण लोगों से इस प्रकार बहस करें। अतएव तब से लालाजी ने इस प्रकार की आलोचना करने की क़सम खा ली।

लालाजी के गद्य-लेख भी प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में निकलते रहते थे। इनके गद्य की विशेषता है भाषा की सजीवता। इनकी भाषा चुस्त और मुहावरेदार होती थी। इनके लेखों को पढ़ते समय पाठकों को यही प्रतीत होता है कि वे प्रत्यक्ष लालाजी से वार्तालाप कर रहे हैं। "प्रयाग की प्रदर्शिनी" इनके गद्य का उत्कृष्ट नमूना है। "रूस पर जापान क्यों विजयी हुआ"-शीर्षक निबंध पर लालाजी को १००) रुपए पुरस्कार मिला था। "ब्रह्मचर्य की वैज्ञानिक व्याख्या" भी इनका बड़ा सुंदर निबंध है, जो पुस्तकाकार छपा है।

संपादन-क्षेत्र में भी लालाजी ने ख़ूब काम किया है। 'लक्ष्मी' के संपादक देवरा-निवासी श्रीयुत मंगुसुशील जब मरने लगे, तब 'लक्ष्मी' के अध्यक्ष को सम्मति दे गए कि वे लाला भगवानदीनजी को ही 'लक्ष्मी' का संपादक बनावें। लालाजी ने बड़ी योग्यता-पूर्वक संपादन-कार्य को निबाहा। इसके अतिरिक्त आपने 'भारतेंदु' और 'श्रीविद्या' का भी कुछ दिनों तक सुचारु रूप से संपादन किया था। कई प्राचीन काव्य-ग्रंथों का भी आपने संपादन किया। इधर वे 'बुंदेलखंड का इतिहास' का संपादन कर रहे थे। इसका केवल एक खंड प्रकाशित हुआ है।

लालाजी एक कुशल अध्यापक थे। इनकी अध्यापन-

शैली मनोरंजक होती थी। ये छात्रों पर अपनी विद्वत्ता का रोब जमाना पसंद नहीं करते थे, वरन् उनके साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे। जिस उत्साह और लगन से ये पढ़ाते थे, उसका ज़िक्र हो चुका है। पढ़ाते-पढ़ाते यह तन्मय हो जाते थे। इनमें एक बड़ी भारी विशेषता थी। प्रायः देखने में आता है कि शिष्य यदि अध्यापक की कोई भूल निकालता है, तो वह अध्यापक की नज़रों से गिर जाता है, अध्यापक इसमें अपमान समझते हैं। परंतु लालाजी का कोई शिष्य यदि उनकी भूल दिखा देता, तो वे बड़े प्रसन्न होते और उसकी पीठ ठोकते। उनका यह सिद्धांत था—

सर्वत्र विजयं इच्छेत् पुत्रच्छिष्यात्पराजयम्।

उनके सभी शिष्य उनसे प्रसन्न रहते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि लालाजी ने जिस क्षेत्र में भी कार्य किया, उसको पूर्ण योग्यता से निबाहा, और प्रत्येक में सफलता प्राप्त की।

लालाजी की दूसरी पत्नी "बुंदेला बाला" थीं, जिनको इन्होंने स्वयं पढ़ा-लिखाकर विदुषी बनाया था। वे कवयित्री थीं। "बाला-विचार" के नाम से उनकी कविताओं का एक बड़ा अच्छा संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है। उनसे लालाजी को एक पुत्र भी हुआ, पर दोनो काल-कवलित हो गए। लालाजी की तीसरी पत्नी "बाला"जी की छोटी बहन हैं। अपने पीछे लालाजी कोई संतान नहीं छोड़ गए। काशी का "हिंदी-साहित्य-विद्यालय", जिसका नाम अब "भगवानदीन-साहित्य-विद्यालय" रख दिया गया है, लालाजी की कीर्ति का स्तंभ है। लालाजी के शिष्यों की संख्या सैकड़ों तक है।

लालाजी बड़े सरल स्वभाव के थे। वे "Glain living and High phinping" (सादा जीवन और उच्च विचार) वाले सिद्धांत के आदर्श अनुयायी थे। उनका-ऐसा निष्कपट एवं स्वच्छ चित्त तो बहुत कम लोगों का होता है। अभिमान तो उनको छू तक न गया था, परंतु आत्म-गौरव के विरुद्ध वे कोई बात सहन नहीं कर सकते थे। उनकी प्रकृति बड़ी विनोदशील थी। छोटे-बड़े सभी के साथ हिलमिलकर रहना, उठना-बैठना उनको बहुत अच्छा लगता था। वे सदा हँसमुख रहते थे। उनको उदास तो किसी ने देखा ही नहीं। वे बड़ी शांति प्रकृति के मनुष्य थे, तथापि अन्याय का पक्ष लेनेवालों पर वे खीझ उठते थे। वे सहृदय इतने थे कि दूसरे के दुःख पर तुरंत पिघल जाते थे और बड़े लोगों की भाँति केवल मौखिक सहानुभूति ही नहीं रखते थे, वरन् जहाँ तक उनसे बन पड़ता, शिक्षा, उपदेश और आवश्यकता पड़ने पर तन-धन से भी सहायता करते थे। सबसे मुख्य गुण उनमें था निर्भीकता। ये बड़े स्पष्टवादी थे, किसी को अन्याय करते देखते, तो मुँह पर टोंक देते थे। ऐसे व्यक्ति को लोग कम चाहते हैं। यही कारण था कि कई लोगों से आजीवन लालाजी की पटरी नहीं बैठी। लोग प्रायः इनसे मिलने आते ही रहते थे। पर लालाजी समय के बड़े पाबंद थे। कोई आता, तो लालाजी पूछते कि कहो, कैसे चले? कोई काम है या यों ही? जो महाशय कहते कि "आपके दर्शनों को आया हूँ", उनसे ये मुस्किराकर कह देते कि 'अच्छा, अब दर्शन हो गए, जाओ, मुझे बहुत काम करने हैं।" जो किसी उद्देश्य से आता, उसका कार्य निपटाकर उससे भी कह देते कि "बस, अब काम हो गया, तुम जा सकते हो।" समय का एक क्षण भी वे बरबाद न होने देते थे। समय बरबाद करनेवालों और नियम से काम न करनेवालों से उन्हें चिढ़ थी। परिश्रमी भी वे बड़े थे। ६३-६४ वर्ष की अवस्था में भी वे जवानों से बढ़कर मिहनत करते थे। शहर के एक ओर प्रतिदिन हिंदू-विश्वविद्यालय में जाते थे, तो दूसरी ओर शहर से उतनी ही दूर उत्तर पाँड़ेपुरा में राय गोविंदचंद्रजी के यहाँ ट्यूशन के लिये जाते थे। इतने पर भी "विद्यालय" में नियम से ठीक समय पर पहुँच जाते थे। ये वैष्णव और परम राम-भक्त थे। हिंदू-वर्णाश्रम-धर्म पर इनकी पूर्ण आस्था थी। अभि-

वादन करते समय ये प्रायः "जयरामजी की", "जय रघुवर की", "जय शंकरजी" आदि कहा करते थे। बीमारी की अवस्था में भी ये 'राम' को न भूले। रोग के आरंभ से ही जब-जब इनकी वेदना असह्य हो जाती, तब-तब इनको गोस्वामी तुलसीदासजी की बाहु-पीड़ा का स्मरण हो उठता था। अतएव ये बारंबार—

"हरी-हरी कहत परौगो काल-फंग में।"

इस पद को दुहराया करते थे और अंत में राम-नाम का उच्चारण करते हुए ही शरीर छोड़ा।

× × ×

लालाजी से बढ़कर विद्वान् अनेक होंगे, पर लालाजी की विद्या अपने लिये न थी, वह थी लोकोपकार के लिये। विद्या को केवल यश या धनोपार्जन का साधन समझना वे नीचता समझते थे। वे चाहते, तो बड़े-बड़े काव्य लिखकर यश और धन दोनो प्रचुर परिमाण में कमा सकते, पर लालाजी ने—उन्हीं शब्दों में—प्राचीन कवियों की मोर्चा लगी हुई कीर्ति को टीकाओं द्वारा माँजकर उनके वास्तविक चमकते हुए रूप में जनता के सामने रखना कहीं उचित समझा, जिसके कारण काव्य-रचना की ओर उनका ध्यान बहुत कम गया। हिंदी के कितने विद्वान् ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी विद्या का उपयोग केवल अपने लिये न कर दूसरों के लिये भी किया हो? कितने हैं, जिन्होंने अपने समय, अपने धन और अपने जीवन को विद्यार्थियों, ग़रीब विद्यार्थियों के लिये उत्सर्ग कर दिया हो? दूर-दूर के छात्र उनके पास विद्या-प्राप्ति के लिये आते थे। इन पंक्तियों के लेखक ने मद्रास और बर्मा ही नहीं, किंतु सुदूर 'मोरिशस' और 'ट्रिनीडाड' के भी विद्यार्थियों को "हिंदी-साहित्य-विद्यालय" (अब "भगवानदीन-साहित्य-विद्यालय") में अध्ययन करते देखा है। साहित्यिक ग्रंथों में शंका-निवारणार्थ भी अनेक पत्र दूर-दूर से लालाजी के पास आया करते थे। यहाँ पर 'वीणा'-संपादक के शब्दों में यह कह देना अनुचित न होगा कि "दीनजी की मृत्यु के साथ अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के माथे एक कलंक का टीका भी लग गया है, जो धोए नहीं छूट सकता।"

हम दीनजी-ऐसे वृद्ध साहित्य-सेवी को सभापति-पद पर न देख सके। इसका दोषी सम्मेलन अवश्य है। इसी का फल सम्मेलन की आजकल की दशा है। सम्मेलन जब तक साहित्य और साहित्य-सेवियों का सम्मान नहीं करता, तब तक उसे सम्मेलन कहना भयानक भूल है।

कहना न होगा कि श्रद्धेय लाला भगवानदीन "दीन" की मृत्यु से हिंदी-संसार का एक अमूल्य रत्न छिन गया। इनके ऐसे सुकवि काव्य-मर्मज्ञ, टीकाकार एवं निष्पक्ष समालोचक का अभाव हिंदी के सहृदय-साहित्यज्ञों के हृदय को शालता होगा, इसमें संदेह नहीं। निकट भविष्य में तो ऐसे निःस्वार्थ साहित्य-सेवी, परार्थ को ही स्वार्थ समझनेवाले विद्वान् एवं कवि के स्थान की पूर्ति असंभव ही प्रतीत होती है। ऐसे मनुष्यों की संख्या संसार में कम ही होती है।

क्षुद्राः सन्ति सहस्रशः
स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः;
स्वार्थो यस्य परार्थ एव
स पुमानेकः सतामग्रणी।
—भर्तृहरि

जीवन के द्वार पर

[श्रीयुत युवराज श्रीरघुवीरसिंह]

"मानस-सागर के तट पर,
क्यों लोल लहर की घातें ?
कल-कल ध्वनि से हैं कहती,
कुछ विस्मृत बीती बातें ?"—प्रसाद



यों तो भौतिक जीवन में प्रवेश किए बहुत दिन बीते। कई वर्ष हो गए, जब मैंने इस पार्थिव संसार में पदार्पण किया था; किंतु आज सच-मुच मैं अपने जीवन के द्वार पर खड़ा हूँ। आज ही मैं अपने जीवन के द्वार पर आ गया; आज ही मैं एक नवीन मार्ग पर पदार्पण कर रहा हूँ। यह स्फूर्ति मुझे कैसे हुई, क्योंकर मैं इस सत्य को—मैं स्वयं नहीं जानता कि यह बात सत्य है या नहीं—जान पाया, यह बात मेरे ख़ुद के लिये एक अनबूझ पहेली है। शीघ्र ही मैं एक नवीन जीवन में पदार्पण करूँगा, मुझे एक दूसरे ही संसार की हवा खानी होगी, यह विचार कब और क्योंकर मेरे मस्तिष्क में उठा। किस तरह इसने मेरी विचार-धारा में प्रवेश किया, इसका मुझे भी पता नहीं। अगर सच पूछा जाय, तो मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता। केवल एक अज्ञात शक्ति-द्वारा मुझे प्रतीत होता है कि मुझमें परिवर्तन हो रहा है। कहाँ, कैसे और किस बात में परिवर्तन हो रहा है, यह मैं स्वयं नहीं जानता। केवल मेरे मस्तिष्क में यह भावना उठती है, और मेरा हृदय अनुभव करता है कि आज मैं जिस वातावरण में जा रहा हूँ, उसमें तथा पुराने वातावरण में बहुत भेद है। इसी मानसिक अनुभव से मुझे प्रतीत होता है कि मैं एक नवीन द्वार पर खड़ा हूँ।

नवीन का आगम हो रहा है, किंतु साथ-ही-साथ मेरे पुराने जीवन का अंत भी हो रहा है। मैं अनजाने अंधे की नाईं इन विगत वर्षों में एक ऐसे पंथ पर चला आया, जिस पर पुनः नहीं लौट सकता हूँ। उस राह का अब अंत हो गया, और अब आगे एक नए ही मार्ग पर जानेवाला हूँ। कई कहते हैं कि उस नवीन वातावरण में प्रवेश करके सारी प्राचीन स्मृतियाँ लोप होने लगती हैं, और उनका प्रभाव मिट जाता है। अतः इस नवीन द्वार में घुसने के पहले मैं लौटकर आज तक के अपने विगत जीवन पर एक दृष्टि डालना चाहता हूँ। पुनः उस पुराने पथ पर नहीं लौट सकता; पुनः उस पर भ्रमण नहीं कर सकूँगा, ऐसी स्थिति में उस ओर देखने के अतिरिक्त मैं क्या कर सकता हूँ।

अभी तक मैंने अपने नवीन जीवन में पदार्पण नहीं किया है, अतः वे पुराने संस्कार, वे प्राचीन संसर्ग अभी तक मुझसे, मेरे मस्तिष्क से विलग नहीं हुए हैं। नहीं जानता कि आगे चलकर अपने इस विगत जीवन के प्रति मेरा क्या भाव रहेगा; आज तो उससे विलगते दुःख अवश्य होता है। आज तो कम-से-कम अपने विगत जीवन के लिये मेरे हृदय में बहुत कुछ प्रेम भरा है। यह मैं पूर्णतया जानता हूँ कि उस जीवन से मेरा पुनः संयोग नहीं होगा। यह चिर-वियोग है, अतः इस वियोग के समय हृदय से केवल आह निकल पड़ती है। इस वियोग पर आज तो मुझे दुःख हो रहा है। यह दुःख कहाँ तक चिरस्थायी रहेगा, सो मैं नहीं जानता, किंतु आज मैं दो आँसू बहाए विना इस जीवन से बिदा नहीं ले सकता। प्रेमियों के वियोग पर तथा एक के चले जाने पर, जहाँ तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो जाता या दूसरों को विवश होकर अपनी राह नहीं पकड़नी पड़ती,

जहाँ तक ज्यों दूसरा प्रेमी खड़ा अपने प्रेमी को जाते देखता है, और उसकी याद कर आँसू बहाता है, वही हाल आज मेरा भी है।

अपने प्राचीन जीवन-पथ के छोर पर खड़ा मैं अपने उस जीवन की ओर एक दृष्टि डाले बिना नहीं रह सकता। संभव है, नवीन जीवन के द्वार में घुसने पर पुनः मैं यह दृश्य भी न देख सकूँ, इसी विचार से उस द्वार के अंदर घुसने के पहले ही दो दृष्टि डालता हूँ। अपने उन दिनों की याद करता हूँ, जब मैं उस पथ पर भ्रमण करता था।

× × ×

मैं कहाँ से आया हूँ? किस पथ पर अब तक भ्रमण कर रहा था? अब आगे किस राह जाना है? आगे की राह कैसी है? वह किधर को जाती है? ये सारी कठिन समस्याएँ हैं, जिन्हें मेरा सुकोमल, विकसित होता हुआ मस्तिष्क हल नहीं कर सकता है। पूर्ण विकसित, ज्ञान-वृद्ध मस्तिष्क भी सारी उमर-भर इन अगम पहेलियों को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं और फिर भी नहीं सुलझती हैं। वे इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकते हैं, फिर मेरा तो क्या कहना।

अपने जीवन के प्रारंभ की तथा अन्य किन्हीं भी बातों का मुझे कुछ भी पता नहीं है। और, न मैं यह बता सकता हूँ कि जिस राह से मैं आया, उसके आस-पास कैसा प्रदेश था। मैं नहीं जानता कि वह कौन-सी मोहिनी थी, जिससे अपने पार्थिव जीवन के प्रारंभ में मेरी दृष्टि इधर-उधर नहीं भटकने पाती थी, या ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु से जीवन के प्रारंभ में मेरी आँखें बाँधी गई थीं, जिस कारण अपने अतीव निकट की वस्तुओं के अतिरिक्त किसी दूसरी बात को मैं नहीं देख सकता था। हाँ, ज्यों-ज्यों समय बीतता था, त्यों-त्यों मुझे भी अधिकाधिक दिखाई देता था।

उस समय मैं काल के हाथों में एक कठपुतली की नाईं था। वही न-जाने किस ओर मुझे ले जा रहा था। प्रारंभ में मुझे अपने व्यक्तित्व का भी पता नहीं था। मैं नहीं जानता था कि मैं भी कोई व्यक्ति हूँ। मैं इस संसार में पूर्णतया अजान था। परंतु अंत में कठोर काल ने मुझे यह बता दिया कि मैं भी एक व्यक्ति हूँ, इस संसार में मेरा भी अस्तित्व है। एक दिन मुझे मालूम हुआ कि मेरे लिये भी कोई परवा करता था। उस समय मुझे अपने अतिरिक्त किसी दूसरे का न तो ख़याल था, और न मुझे किसी का ज्ञान था। कई व्यक्ति आते थे, और चले जाते थे, कई के साथ मैं खेलता भी था, किंतु कुछ को छोड़कर मैं दूसरों को नहीं जानता था। मुझे उनके परिचय से कोई मतलब नहीं था। उस समय मैं इतना सुखी था कि संसार में कोई भी मुझे दुःखी नहीं कर सकता था। किसी कारण यदि मैं कुछ दुःखी हो जाता, रोने लगता, तो कुछ ही काल के अतिरिक्त वह कपूर की नाईं अनजाने लोप हो जाता।

× × ×

परंतु क्रूर काल से मेरा यह सुख नहीं देखा गया। वह जीवन की घाटी पर मुझे ढकेले ही गया। समय बीतता जाता था। मुझमें भी परिवर्तन होने लगा, मेरे सुख की मात्रा घटने लगी। अगर किसी भी कारण मैं दुःखी होता, तो वह अधिक देर रहता था। अब मेरे हृदय में न-जाने किस बात का असंतोष, न-जाने किस वस्तु का अभाव प्रतीत होने लगा। किस प्रकार इस असंतोष को मिटा सकता था, किस बात का अभाव था, यह मैं नहीं जानता था। मैं मारा-मारा भटकता था। वह असंतोष न-जाने मुझे कहाँ-कहाँ खींच ले जाता था। मेरे माता-पिता ने एक तदबीर सोची थी। वह तदबीर किसी भी प्रकार अनोखी नहीं थी। वे मेरे लिये रंग-बिरंगे, भाँति-भाँति के खिलौने लाए। ये खिलौने मेरे लिये अनोखे थे। एक कौतूहलास्पद वस्तु थी। कुछ काल के लिये मैं उनको देखने में, उनके साथ खेलने में लग गया। समय पहले ही मुझे भुलावा दे रहा था, अब मुझे भुलावा देने की एक और वस्तु आ गई। मैं सब कुछ भूल

गया, खेलने में लग गया। यों अनजाने तीन-चार वर्ष बीत गए।

× × ×

एक दिन अचानक मैं चौंक पड़ा। खेलते-खेलते जो मैं एकाएक अपने आस-पास देखने लगा, तो मुझे प्रकृति में, संसार में कुछ नूतनता दिखाई दी। विश्व एक नए ही रंग में रँगा हुआ दिखाई देने लगा। मैं भूल गया उन खिलौनों को; मैं भूल गया उनके विचित्र रंगों को। मैं स्तब्ध होकर संसार की ओर ताकने लगा।

संसार ने अब मेरा ध्यान आकर्षित किया। अब जानने की चाह लगी। हृदय में एक पिपासा उठी। मैं पुनः तड़फने लगा। इस बार एक नई वस्तु आई, वह थी पुस्तक। मैं पुस्तक पढ़ता था, परंतु संसार को जानने की चाह, तथा उसके समान ही कार्य करने की वह इच्छा नहीं मिटी। पुनः खिलौने आए, परंतु इस बार नए प्रकार के खिलौने थे। इस बार जो खेल मैंने आरंभ किया, वह साधारण खेल नहीं था, वह पुतलियों का खेल था। मैं अब मानव-जीवन की नक़ल करने लगा। मानव-जीवन क्या है? मनुष्य के भिन्न-भिन्न कार्यों का क्या अर्थ है? उनका क्या उद्देश्य है? इन प्रश्नों से मेरा मतलब नहीं था। मैं तो नक़ल करता था। कई बार मुझे खेलते देख, मेरे माता-पिता हँसते थे। किस बात पर वे हँसते थे, यह मैं नहीं जानता था; उस समय तो मुझे यही प्रतीत होता था कि वे मेरी बुद्धि पर, मेरे चातुर्य को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। उस समय मैं क्या जानता था कि—"आज का खेल कल मेरे लिये एक बेढब पहेली हो जायगी। आज जिस खेल से मेरा मनोरंजन हो रहा है, कल वही मेरे लिये एक महान् चिंता-जनक तथा एक उलझी हुई समस्या हो जायगी।"

× × ×

वे दिन भी बीते, समय ने फिर करवट बदली। इस बार मेरे जीवन ने भी एक नवीन स्वरूप ग्रहण किया। इन पुराने खिलौनों में, उन पुतलियों में, जो अब तक मुझे लुभा रहे थे, अब मेरे लिये कोई आकर्षण नहीं रहा। वे नीरस हो गए। इस समय मेरी वय कोई ग्यारह-बारह बरस की होगी। अब मानव-जीवन में बाह्य संसार में मुझे अधिक आनंद आने लगा।

मैं सांसारिक जीवन से मुग्ध था, और उस मृग-मरीचिका के पीछे दौड़ने लगा। मैं भूल गया, अपने सारे खिलौनों को, अपनी सारी पुतलियों को। जहाँ अब तक मैं पुतलियों से मानव-जीवन का नाटक करवाता था, वहाँ अब मैं स्वयं मानव-जीवन का नाटक करने को, सांसारिक जीवन के रंग-मंच पर आकर अपना पार्ट खेलने को उत्सुक हो गया। उस समय मैं क्या जानता था, जो जीवन दूर से ऐसा सुंदर दीखता है, उसमें उतनी सुंदरता नहीं है। मैं नहीं जानता था कि जिस अग्नि से सुंदर मनोमुग्धकारी लपटें निकलती हैं, उसमें जलाने की भी शक्ति है। कैसा अच्छा होता कि उस समय मुझे यह मालूम होता कि ऊपर से सुखमय तथा शांति दीखनेवाले जीवन में बहुत अशांति तथा दुःख भरे पड़े हैं।

कुछ तो मैं सांसारिक जीवन की ओर दौड़ने को उत्सुक था और कुछ काल निष्ठुरता-पूर्वक मुझे जीवन की ओर खींचे जा रहा था। आज मैं काल को निष्ठुर कहता हूँ कि उसने मुझे उस सुखमय जीवन में से निकालकर इस विचित्र सांसारिक जीवन में फेंक दिया; परंतु उस समय तो काल की यह गति मुझे बहुत ही रुचिकर प्रतीत होती थी। एक तरह से तो मैं कई बार काल के प्रति इसीलिये रुष्ट हो जाता था कि क्यों वह जल्दी-जल्दी नहीं बीतता।

मैं सांसारिक जीवन में अवतीर्ण होने को व्यग्र हो गया। अब मेरे उद्देश्यों में, रहने के ढंग में, बहुत परिवर्तन हो गया। मैं यह चाहता था कि संसार में कोई भी मुझे बालक न समझे। मेरी गिनती बड़े-बूढ़ों में हो, हँसकर कोई मेरे कथन का तिरस्कार न करे, बालक मुझे आदर की दृष्टि से देखें; ये सब भावनाएँ मेरे हृदय में उठने लगीं। परंतु पग-पग पर मुझे

प्रतीत होता था कि मेरी इच्छाओं का पूर्ण होना असंभव-सा है। मेरी इन इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला संसार में कोई नहीं था। जहाँ देखता था, वहीं मेरा तिरस्कार होता था। जिधर मैं जाता था, उधर ही मेरी खिल्ली उड़ती थी। मेरे हृदय पर उस समय क्या बीतती थी, मेरे कोमल भावों पर कैसी भीषण ठेस लगी थी, वह मेरे अतिरिक्त कौन जान सकता था। मैं अपने प्रति किए गए इन अत्याचारों को देख-कर तिलमिला उठता था। मैं "काल" के प्रति क्रुद्ध हो जाता था। मैं चाहता था कि कुछ वर्ष जल्दी-जल्दी बीत जायँ, जिससे मेरी इच्छाएँ शीघ्र ही पूर्ण हो जायँ। मैं उस समय क्या जानता था कि मैं "तवे पर से आग में कूदने" की तैयारी कर रहा था। मुझे उस समय यह नहीं मालूम था कि जिसे मैंने रंग-बिरंगे फूलों की सेज समझा था, वह जलते हुए अंगारों का समूह था।

× × ×

इसी समय मेरे जीवन में एक और परिवर्तन हुआ। हृदय ने भी अब करवट ली। आज तक मेरा हृदय एक तरह से प्रायः संसार के प्रति उदासीन था। मेरे हृदय में संसार के प्रति किसी भी प्रकार के कोई भाव नहीं थे। किंतु अब उसमें से एक प्रवाह उमड़ चला। जो आज तक बालू का ढेला प्रतीत होता था, उसमें से प्रेम-भाव का स्रोत बह निकला। प्रथम बार मेरे हृदय में प्रेम का अंकुर फूटा। मैंने देखा, अब मैं अन्य व्यक्तियों के प्रति आकृष्ट होने लगा। माता-पिता के प्रति भी नए उत्साह के साथ प्रेम का प्रवाह उमड़ पड़ा। परंतु उधर से मेरे प्रेम का कोई उत्तर नहीं मिला। मेरे माता-पिता को मेरे-ऐसे अनुभव किए अनेकों युग बीत गए थे। वे अब अपने पुराने अनुभवों को भूल गए थे, वे क्या जानते थे कि मेरे हृदय में क्या भाव भरे पड़े थे। उधर से मेरे प्रेम का उत्तर ही नहीं मिला, किंतु कई बार मेरे व्यवहार को धृष्टता समझकर कड़ी फटकार भी मिलती थी, जिससे मेरा हृदय तड़फने लगता था। कई बार ऐसे बर्ताव पर बैठा रोता था, कई बार क्रोध आता था, मान का भाव भी कई बार उठता था, किंतु कुछ देर के बाद उस प्रेम-पूर्वक संबोधन को सुनकर ये सब न-जाने कहाँ चले जाते थे।

मैत्री भाव भी उमड़ पड़ा। स्कूल में जाते थे, वहाँ कई एक सहपाठी तथा अन्य समवयस्क बालकों से मिलना होता था। हृदय ने उनके प्रति एक नए ही भाव का अनुभव किया। परंतु उन दिनों की मैत्री, उस समय की सरलता, तथा उस समय के पारस्परिक प्रेम को यादकर आज भी शरीर पुलकित हो जाता है। उनके स्मरण-मात्र से, उस समय के बीत जाने के विचार-मात्र से, आँखों में आँसू आ जाते हैं। उस समय परस्पर कितना शुद्ध प्रेम होता था, उसमें कितनी सरलता थी, कपट का कितना अभाव था। अनबन हो जाती थी, तो कितनी अचिरस्थायी होती थी, कितनी जल्दी पुनः मेल हो जाता था। उस समय के सरल, शुद्ध, स्वाभाविक प्रेम को यादकर, आज इस दुष्ट समय पर क्रोध आए बिना नहीं रहता। उस स्वर्गमय जीवन से इस कुटिल जीवन में ढकेलने के अपराध में कौन काल से बदला लेने को उतारू न होगा ?

× × ×

समय का प्रवाह बहता ही गया। जीवन का चक्र घूमता गया और मेरी वय भी बढ़ती गई। अब मेरे जीवन में "यौवन की खुमारी" ने प्रवेश किया। जीवन में एक प्रकार की मादकता छाने लगी। साथ-ही-साथ असंतोष भी बढ़ा। हृदय में अब पहले की-सी सरलता नहीं थी और न पहले की-सी शांति। मैं बहुत कुछ पढ़ चुका था, किंतु किसी भी प्रकार मैं अपनी पुरानी सरलता तथा शांति को पुनः प्राप्त करने में असफल हुआ।

मेरे भावों में भी परिवर्तन हुआ। आज तक मेरे हृदय में प्रेम उमड़ता था, मेरा हृदय सौंदर्य की ओर आकृष्ट होता था, किंतु इससे अधिक कोई भाव नहीं था। अपने सहपाठियों, मित्रों आदि के प्रति जो प्रेम हृदय में उमड़ता था, वह अब तक हृदय से बाहर

नहीं निकलता था। सौंदर्य को देखकर मैं मुग्ध हो जाता था। उसकी ओर आकृष्ट होता था, किंतु कोई दूसरा भाव नहीं उठता था। पर अब मैं अपने हृदय के भावों को प्रकट करने के लिये उत्सुक हो गया। मैं अब चाहता था कि जिनसे मैं प्रेम करता था, उन पर अपना प्रेम प्रकट करूँ। उन्हें बता दूँ कि मेरे हृदय में उनके प्रति अगाध प्रेम का सागर क्यों-कर हिलोरें मार रहा है। अब तक मैं केवल देखता था, वह आँखों के लिये एक दर्शनीय तथा दृष्टि के लिये सुखदायक वस्तु थी। अब मैं उसे स्पर्श करने, उसकी सुंदरता का अनुभव करने तथा उसे अपनाने को चंचल हो गया। कई विचार मेरी इन इच्छाओं को रोकते थे, परंतु हृदय रोके नहीं रुकता था। वह मचल जाता था।

× × ×

परंतु अब देखता हूँ, वह खुमारी उतरने लगी है। मुझे प्रतीत होता है कि अबाध तथा अविरल गति से बहनेवाले उस प्रेम के सोते की राह में यत्र-तत्र रोड़े पड़े हैं। प्रवाह भी अब कम होने लगा है। हृदय के असंतोष तथा अशांति वास्तविक जीवन के कुछ कठोर थपेड़े खाकर, बहुत कुछ कम हो गई है। फिर भी वह बुझी नहीं है, अंदर-ही-अंदर जल रही है।

मुझे सर्वत्र अपने जीवन तथा भावों पर एक विचित्र पाला पड़ रहा हो, ऐसा प्रतीत होता है। मेरे सरल, सुकोमल भावों का उद्यान आज उजड़ गया। मेरे सरल, शुद्ध, स्वाभाविक प्रेम का सोता कलुषित हो गया। उसका जल जाड़े के मारे जम गया है, प्रवाह अब नहीं बहता है। मेरे अंतर्जगत् का यह श्मशान-स्वरूप देखकर हृदय रोता है। जो एक समय मेरे जीवन के एक-मात्र आभूषण थे, जिन पर मुझे नाज़ था, उनको नष्ट होते देख मेरी आँखों से दो आँसू ढलक पड़ते हैं।

नहीं जानता हूँ, यह शीत-काल कब तक रहेगा, कब यह बर्फ़ पिघलेगी? क्या इस उजड़े हुए उद्यान में पुनः पुष्प खिलेंगे? क्या उद्यान में पुनः वही पुरानी बहार आवेगी? आजकल की दशा देखते मैं कुछ भी नहीं कह सकता हूँ। देखें, भविष्य की गोद में क्या छिपा है?

× × ×

अब प्रतीत होता है कि पुनः मेरे जीवन में परिवर्तन होगा, और बहुत ही बड़ा परिवर्तन होगा। मैं इस बार एकबारगी नए ही वातावरण में प्रवेश कर रहा हूँ। कहाँ तक मेरे पुराने संस्कार तथा संसर्ग भविष्य में काम देंगे, सो मैं नहीं जानता। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मेरे हृदय में एक नए तूफ़ान आने के लक्षण स्पष्टतया दिखाई दे रहे हैं।

अब मुझे अपने नए मार्ग पर जाना ही होगा। कहाँ तक अपने चलने का समय टाल सकूँगा। मैं ठहर नहीं सकता। यदि किसी तरह मैं समय को कुछ काल के लिये भुलावा देने में सफल हुआ, परंतु यह तदबीर अधिक देर तक काम नहीं दे सकती है। वह कराल काल किसी को नहीं छोड़ता। अपनी भीषण चक्की में वह प्रत्येक को—चाहे वह पशु-पक्षी हो या मनुष्य हो, वह राजा हो या रंक हो, वृद्ध हो या बालक हो, पुण्यात्मा हो या पापी हो—पीस ही डालता है।

अपने विगत जीवन का सिंहावलोकन करते बहुत देर हो गई। उसके वियोग पर दो आँसू तथा उसकी स्मृति में तप्त जल की अंजलि अर्पण करके बिदा होता हूँ। कितने दुःख के साथ मैं आज बिदा ले रहा हूँ, यह मैं ही जानता हूँ। परंतु बिदा लेना ही पड़ेगी।

× × ×

यह तो हुआ विगत जीवन का हाल, परंतु अब आगे मैं कहाँ जा रहा हूँ, यह मैं कैसे बताऊँ? भविष्य का मार्ग देखे दिखाई नहीं देता। भविष्य के मार्ग पर भीषण कुहरा छाया हुआ हो या घने बादल, उसे मेरी दृष्टि से छिपाए हैं। मैं अज्ञात भविष्य में न-जाने किस ओर जाऊँगा? उस अज्ञात मार्ग पर न-जाने कितनी कठिनाइयाँ, कितनी आपदाएँ

हैं, उनका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं। अब तक तो मैं उस क्रूर काल के हाथों में कठपुतली की नाईं था। अब भविष्य में क्या होगा, सो मैं नहीं जानता। मुझे ऐसे अंधकार-पूर्ण भविष्य में केवल दो ही बातों का भरोसा है। प्रथम तो मुझे अपने ऊपर भरोसा है। दूसरे मुझे जगत्-पिता का भरोसा है, जिसकी कृपा से कोई वंचित नहीं। ज्यों अत्याचार-पीड़ित यहूदियों को अत्याचार-पूर्ण देश मिस्र से बाहर जाने में उस परम पिता ने दिवस के समय एक बवंडर तथा रात्रि के समय अग्नि के एक पुंज की सहायता से मार्ग बताया; त्यों ही अज्ञान के अंधकार-पूर्ण भविष्य के जीवन में भी वह मेरा सहायक तथा मार्ग-प्रदर्शक होगा, ऐसी आशा करता हूँ।

× × ×

बिदा! मेरे विगत जीवन! अब बिदा। यह तुझसे अंतिम बिदा है। अब जाता हूँ उस जीवन में, जहाँ से संभव है, पुनः तुम पर दृष्टि-पात न कर सकूँ। मैं सदा के लिये तुमसे बिदा लेता हूँ। अब केवल तुम्हारी स्मृति ही विद्यमान है; परंतु मैं चाहता हूँ कि ये स्मृतियाँ विस्मृति के गंभीर गह्वर में ही विलीन हो जायँ।

अब मैं जाता हूँ, अपने नए पथ पर। जी चाहता है कि एक बार और पीछे फिरकर देख लूँ। परंतु नहीं; अब जाना ही होगा; भूत-काल से नाता तोड़ना ही होगा। मेरे मस्तिष्क, सँभल जा! आगे का मार्ग बड़ा भीषण है, राह बीहड़ है। अपनी मादकता तथा बेहोशी को छोड़कर तैयार हो जा, जिससे नए मार्ग पर ठीक तरह से चला जाय। हृदय! तू भी सँभल जा, ज़रा कठोर बन, उस वियोग को सहन कर, भुला दे उन दिनों को, जो बीत चुके हैं, और भविष्य में कभी भी न लौटेंगे। आत्म-विश्वास तथा जगत्-पिता में विश्वास कर।

"यह दीपक अपने सम्मुख धर,
जिससे पीछे गिरे मोह की
छाया, अंतर हो गोचर,
वह भविष्य होवे अवदात।"—पंत

पं० चंद्रशेखर वैद्यशास्त्री की बनाई ब्राह्मी रसायन

बीस प्रकार के प्रमेह, स्वप्न-दोष, वीर्य का पानी के समान पतला हो जाना आदि सब रोग ब्राह्मी रसायन से शर्तिया आराम हो जाते हैं। हस्तक्रिया अथवा बहुमैथुन से उत्पन्न हुई नपुंसकता की तो यह ख़ास दवा है। यह वीर्य को पुष्ट और गाढ़ा करके संतान उत्पत्ति के योग्य बनाती है। ब्राह्मी बूटी के रस की सहस्रों भावनाएँ देकर यह सिद्ध की जाती है; अतः चाहे जैसी स्मरण-शक्ति कम हो गई हो, ज़रा भी बात याद न रहती हो, ऐसी दशा में ब्राह्मी रसायन के सेवन करने से स्मरण-शक्ति पुनः लौट आती है और पहले से बढ़ जाती है। परीक्षा करने पर आप स्वयं प्रशंसा करेंगे। १६ दिन के योग्य ३२ गोली की शीशी का मूल्य सिर्फ़ २) रु० डा० म० ।=)

मर्दकर्दम तिला—इसकी मालिश से गया गुज़रा नामर्द भी मर्द हो जाता है। शिथिलता, वक्रता आदि ख़राबियाँ दूर करके यथेष्ट लंबाई और स्थूलता प्रदान करता है। मूल्य छोटी शीशी २) रु०, बड़ी शीशी ५) रु०

पता—पं० चंद्रशेखर वैद्यशास्त्री ब्राह्मी-औषधालय, अलीगढ़

५०००) की चीज़ ५) में

मेस्मिरेज़म विद्या सीखकर धन व यश कमाइए

मेस्मिरेज़म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़े धन या चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं। इसी विद्या के द्वारा मुक़दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुलाकर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लगा लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चंगा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही स्त्री-पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मन-माना काम कर लेना आदि आश्चर्यप्रद शक्तियाँ आ जाती हैं। हमने स्वयं इस विद्या के ज़रिए लाखों रुपए प्राप्त किए और इसके अजीब-अजीब करिश्मे दिखाकर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया। हमारी "मेस्मिरेज़म विद्या"-नामक पुस्तक मँगाकर आप भी घर बैठे इस अद्भुत विद्या को सीखकर धन व यश कमाइए। मय डा० म० मू० सिर्फ़ ५) रु०

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक

बाबू सीतारामजी बी० ए०, बड़ा बाज़ार कलकत्ता से लिखते हैं—मैंने आपकी "मेस्मिरेज़म विद्या" पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है। मुझे मेरे घर में धन गड़ा होने का मेरी माता द्वारा दिलाया हुआ बहुत दिनों का संदेह था। आज मैंने पवित्रता के साथ बैठकर अपने पितामह की आत्मा का आवाहन किया और गड़े धन का प्रश्न किया। उत्तर मिला—"ईंधनवाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है।" आत्मा का विसर्जन करके मैं स्वयं खुदाई में जुट गया। ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलसे निकले, दोनो पर एक-एक सर्प बैठा हुआ था। एक कलसे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे। आपकी पुस्तक 'यथा नाम तथा गुण' सिद्ध हुई।

मँगाने का पता—मैनेजर मेस्मिरेज़म हाउस नं० १० अलीगढ़

२) में १०) रोज़ कमाइए

साइनबोर्ड बनानेवाले ख़ूब रुपया कमाते हैं। यह देखकर हमने 'फ़नपेंट्री या साइनबोर्डसाज़ी'-नाम की पुस्तक इस इल्म के एक ऐसे उस्ताद से लिखवाई है, जो कि २५) से ५०) रु० रोज़ तक साइनबोर्ड बनाकर पैदा कर रहे हैं। यह एक हाथ की दस्तकारी है, जिसे सिर्फ़ तीसरे-चौथे दरजे तक हिंदी-उर्दू जाननेवाला हर भाई आसानी से सीखकर २५ नहीं तो पाँच से १०) रोज़ तो पैदा कर ही सकता है! और आज़ादी से रुपए कमा सकता है। पुस्तक में २०० से ऊपर चित्र हैं। पब्लिक ने इसे पसंद भी ख़ूब किया है। मू० २) डा० म० ।=)

मँगाने का पता—मैनेजर शारदा-कंपनी, अलीगढ़

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

विभूति

[कविवर पं० श्यामाकांत पाठक]

द्वितीय सर्ग

रुक्मिणी और सत्यभामा

किसने गढ़ी शरद्-ज्योत्स्ना है,
वासंती छवि मतवाली;
अरुण-उषा शृंगार सजाया,
कमलों में लाली डाली ?
किसकी है यह अनुपम कविता,
अतुलित कुशल चित्रकारी,
पिक रसाल पर किसका गाती
गौरव-गान मनोहारी ?

× × ×

मेरे वृंदावन में आकर
मेरी कालिंदी के कूल,
फूँकी है किसने यह वंशी
बिखराए पूजन के फूल ?
मेरा नव नवनीत हरणकर
छिपा कहाँ वह चतुर अजान ?
अरे, दोलने में मेरे यह
कौन भूलता ? हाँ, पहचान।

श्रीकृष्ण-मुरली-सी त्रिभुवन-मोहिनी,
वासंती-राग-सी, स्निग्ध-चंद्रिका-सी,
श्रद्धा-सी निर्मला, भक्ति-सी पवित्रा,
मैत्री-सी माधुरी, सती-सी सुंदरी,
पुष्पोद्यान-छवि है अनिंद्य और अनंत।
रजत-रथ से उतर, मानो, स्वर्ग-सुषमा,
नंदन-वन-माधुरी चूम रही पद-पद्म
उपवन के आज है। कर रहा पुण्य-पर्व में
स्नान-स्निग्ध ज्योत्स्ना में है सामोद
कुसुम-हार पहने हुए पावन उपवन।
मल्लिका, मालती, चंदन, चंपक-लता के संग
कर अठखेलियाँ मुग्ध मारुत कर रहा
वितरण उपवन-धन सौरभ सर्वत्र है।
फूट रहा मधु-सा गान अधरों से उद्यान के,
वशीकरण मंत्र-सा, जिसमें निमग्न हो,
यथा कमल-हीन मृणाल होता जल में;
सकल दृश्य मूर्च्छित-सा हो गया माधुरीमय,
जैसे माधव की मुरली से व्रजांगना व्रज में।

रजत रश्मियाँ थिरक रही हैं जल-थल पर,
कर रहीं जाग्रत नव-जीवन। नभ-बेलि के
नक्षत्र-सुमन चढ़ाकर चरणों में स्वनाथ के
रजनी निहार रही इकटक से रुचिर छवि।
बेलि के वितान में, कदली के कुंज में,

माधवी के मंडप में, रजत पंख को पसार
विहग-बालिकाएँ गूँथती हैं गीत-माल।
सौंदर्य-मदिरा को पीकर है कण-कण
हो उठा उन्मत्त-सा। नंदन-वन की अनिंद्य
रूप-राशि अपसराएँ आनंद-धारा में नहा
रजत पंख को पसार नृत्य-लीन छवि में।
माधुरी-मंदिर में मधुवन के राग-सी,
शैशव के गायन-सी, मुग्धा मुस्कान-सी,
छाई छवि वशीकरण। नभ में मयंक मंद पड़ा,
होकर सलज्ज-सा, स्तब्ध-सा लगा विलोकने
उपवन की रूप-राशि बार-बार पर्णों में छिप-छिप।
चरणों के मणि-नूपुर को झनकारती हुई सुभूषिताएँ,
कटि में सुवर्ण-मेखला,
लसत ललाट पर केशर-बिंदु जिनके,
रक्त-कमल-दल-से हाथों से डालतीं जल
स्नेह-पूर्ण विटप-आलबालों में। अनूप-सी छटा।
माधुरी-निकेत दिव्य माधवी निकुंज में,
प्रिया-प्रकृति के स्निग्ध विशद-विलास में,
रत्नमय हेम-पीठिका पर चंद्र-वदना दो,
कल्पना और धारणा-सी, श्रद्धा और भक्ति-सी,
प्रतिभा-प्रभा-सी बैठी हैं उभय-व्रती-सी।
एक है प्रबल भाग्य, दूसरी है कर्म-स्रोत,
एक धर्म-प्रतिमा, दूसरी प्रीति-पूर्णिमा,
एक है वासंती, तो दूसरी शारदी छटा।
आनन से छलकती लावण्यमय माधुरी,
नयनों में व्रत और साधना की मादकता,
वाणी में वीणा की हृदय-हारिणी शक्ति है।
कंजमुखी बोली एक अंचल सँभालकर,
चिंतना के स्रोत में सहसा प्रवाहित हो,
ललित-लावण्य-लता लेश मुरझा-सी गई;
"दिख रही आज मुझे, प्रिये! मैं क्या कहूँ,
मधु-मध्य तिक्तता और कलाधर को कालिमा!
दोत्तक जिस राष्ट्र के स्वयं त्रिलोकीनाथ,
आज वह दुःख-पारावार में निमग्न है!
मनुष्य, अहो, कैसा सुंदर प्राणी है? किंतु,
भीतर जब छल की छुरी काम करती है,
बुद्धि जब पर-नाश-हेतु पाश रचती है,
द्वेष की अग्नि जब अंतर में प्रज्वलित होती है।
नहीं तब इसके समान पतित प्राणी अन्य।
रचता स्वकर्मों से ही स्वर्ग और नरक मानव,
विश्व में बनता है देवता अथवा राक्षस।
धर्म-विमुख अज्ञता के पाश में पड़े अनेक
अपने दुर्भाग्य पर इठलाकर जघन्य जीव,
रच रहे प्रलय-वह्नि-सी इस समय मातृभूमि पर।"
कहने लगी सत्यभामा, "प्रिय बहन रुक्मिणी!
आपके हृदय-सा विशाल और परमोदार,
सर्वथा आदर्श, पर-हितेच्छु सर्वदा, धन्य,
इस जगती में अन्य है कहाँ? आप तो
पर-दुख से दुखी, पर-सुख से सुखी हो,
हृदय की उच्चता का पाठ हो पढ़ा रही।
धन्य बहन, जो तुम इस संपदा के कोलाहल में
सुन रहीं धीमी ध्वनि—राष्ट्र-हृदय की वेदना;

अनुभव हो कर रहीं दुष्ट-दल के प्रहार।
नेत्र-रंजिनि रुक्मिणी ! धन्य तव जीवन है।
प्रिये, अब इस चिता-सी चिंतना की अग्नि
करो शांत शीघ्र देखो, स्मरण है न जब,
महर्षि व्यास और वीर पार्थ आए थे द्वारका में
करने निवेदन व्यथा-कथा इस राष्ट्र की,
आदर्श प्राणनाथ के चरणों में। हृदयेश्वर ने तब
शीघ्र ही साधु-रक्षा और दुष्ट-दमन का वचन
किया है प्रदान उन्हें। विष-वृक्ष का कुफल
चखेगा शीघ्र ही दुष्ट-वृंद, जो वीरता की छाया पा
कर रहा नग्न-नृत्य पाप का विश्व-वक्ष पर।"
बोलीं तब भक्त-मणि रुक्मिणी, "प्रिये सत्यभामे !
हृदयेश्वर की लीला अकथ है, अनंत है।
कहते वे देखो मनुज ईषद् स्वतंत्रता का
कैसा कर बैठता भयंकर है उपयोग।
जिस बुद्धि में, प्रभुता में परोपकार-क्षमता है,
उनका प्रयोग करते हतभाग्य पर-नाश में।
करता जो प्रकाश-दान उस प्रदीप को मदांध
करते निर्वाण, हाय !" बोलीं तब सत्यभामा—
"जिस दिन चाहेंगे दीनानाथ, एक निमेष में,
चला देंगे चक्र ऐसा, अंत होगा अशांति का,
समस्त अत्याचार का, सब दुरंत-व्यूह का।"
कहा तब रुक्मिणी ने, "विश्वास विश्व का
उन्हीं की शक्ति में है उन्हीं की कृपा-धार में
नित्य करता है स्नान, विश्व श्रद्धा और भक्ति से।
धन्य उनका चरित्र पवित्र, यथार्थ आदर्श परम।"
"और बहु धन्य उनकी भक्त-प्रति कृपा-दृष्टि"
बोलीं सत्यभामा। गाने लगीं उभय फिर,
वीणा के तार भी हिल उठे, मुरज-मंदिरा-तरंग
तरंगित होने लगीं, भावावेश में प्रस्फुट हुआ गीत:—

गीत

धन्य जीवन-धन-विमल-चरित्र।
छेड़ मधुर मुरली की तान,
गा कुटीर में नीरव गान,
प्रेम-मूर्ति मेरे भगवान
चित्रित करते मोहक चित्र।

उपवन में कोकिल के बोल,
शारद-शशि-शोभा अनमोल,
वासंती-मधु ऋतुपति घोल,
गाते गौरव-गान पवित्र।

दिन में भर उत्साह-प्रकाश,
रजनी में द्रुत-शांति-निवास,
करते जीवन-ज्योति-विकास,
प्रभु, प्रियतम, सज्जन, सन्मित्र।
धन्य जीवन-धन-विमल-चरित्र।

महाराजा अभयसिंहजी

[साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ]

(१)



ये महाराजा अजितसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे ※। इनका जन्म वि० सं० १७५६ की मँगसिर-बदी १४ (ई० सन् १७०२ की ७ नवंबर) को जालोर में हुआ था †। जिस समय इनके पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय ये देहली में थे। इसलिये पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया से निपटने पर वि० सं० १७८१ की सावन-सुदी ८ (ई० सन् १७२४ की १७ जुलाई) को वहीं पर इनका राज्याभिषेक हुआ। इसी अवसर पर बादशाह ने भी इनके स्थान पर आकर और नागौर-प्रांत के साथ ही खिलअत आदि देकर इनका सत्कार किया।

अभयोदय ※ से ज्ञात होता है कि इसी समय बादशाह ने इन्हें 'राजराजेश्वर' की उपाधि दी थी। इसके बाद वि० सं० १७८१ के भादौं (ई० सन् १७२४ के अगस्त) में इन्होंने मथुरा जाकर आँबेर-नरेश जयसिंहजी की कन्या से विवाह किया †।

※ इन्होंने पिता की आज्ञा से वि० सं० १७७८ के आश्विन (ई० सन् १७२१ के सितंबर) में मुज़फ़्फ़रअलीख़ाँ के विरुद्ध चढ़ाई की थी। इसके बाद जब उसके हतोत्साह हो जाने पर बादशाह ने नुसरतयारख़ाँ को अजमेर पर अधिकार करने के लिये नियत किया, तब इन्होंने उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही १२००० शुतर-सवारों के साथ जाकर नारनौल को लूट लिया। यह देख वहाँ के फ़ौजदार के आदमी मैदान छोड़कर भाग गए।

इसके बाद इन्होंने अलवर, तिजारा और शाहजहाँपुर को लूटकर देहली से ८ कोस दक्षिण में स्थित सराय अलीवर्दीख़ाँ तक चढ़ाई की (देखो लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०६-११०)।

इन्होंने मुसलमानों से साँभर आदि भी छीने थे।

† अभयोदय सर्ग २, श्लो० ४।

※ देखो सर्ग ६, श्लो० ११-१२।

† ख्यातों में लिखा है कि जोधपुर के सरदारों का विश्वास था कि राजा जयसिंहजी की सलाह से ही महाराज अजितसिंहजी मारे गए थे। इसलिये उन्होंने, इस विवाह को टालने के लिये, महाराज से पहले जोधपुर चलने का आग्रह किया। परंतु जब महाराज ने इस बात को नहीं माना, तब बहुत-से सरदार तो नाराज़ होकर अपने-अपने घरों को चल दिए (वि० सं० १७८१ की भादौं-सुदी १० के देहली से महाराज के लिखे दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम के पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है) और बहुत-से महाराज के छोटे भ्राता आनंदसिंहजी और रायसिंहजी के दल में जा मिले।

सरदारों का यह भी ख़याल था कि भंडारी रघुनाथ भी महाराजा अजितसिंहजी के मरवाने में सम्मिलित था। परंतु फिर भी उस समय तक अभयसिंहजी का सारा कार-बार भंडारियों के ही हाथ में होने से वे लोग नाराज़ थे और महाराज को उनके क़ैद करने के लिये बार-बार दबाते थे। अंत में लाचार होकर महाराज को उन्हें क़ैद करने का हुक्म देना पड़ा। इस अवसर पर कई भंडारी मारे गए। इसके बाद स्वयं महाराज को भी मथुरा के मुक़ाम

और फिर वृंदावन-यात्रा कर ये देहली लौट आए ⊛।

इसके बाद वि० सं० १७८२ (ई० सन् १७२५) में ये सरबुलंदख़ाँ (मुबारिज़ुलमुल्क) के साथ हामिदख़ाँ और दक्षिणियों के उपद्रवों को दबाने के लिये गुजरात की तरफ़ गए †।

वहाँ से लौटने पर जिस समय महाराज देहली में थे, उस समय इन्हें सूचना मिली कि (इनके छोटे भाई) आनंदसिहजी और रायसिंहजी, जैतावत, कूँपावत, ऊदावत आदि मारवाड़ के कुछ सरदारों को साथ लेकर देश में उपद्रव मचा रहे हैं ‡। उन्होंने गोढवाड़ में लूट-मार करने के बाद सोजत और जैतारण ⊛ पर अधिकार कर लिया है और साथ ही मेड़ते पहुँच उसे भी लूट लिया है। जब यह सूचना महाराज को देहली में मिली, तब ये देहली से लौट आए † और इन्होंने मेड़ते पहुँच वहाँ की रक्षा का भार मेड़तिया (माधवसिंह के वंशज) शेरसिंह को सौंप दिया। इसके बाद चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार जोधपुर में फिर इनका राजतिलकोत्सव मनाया गया। इन कामों से निपटकर चैत्र में इन्होंने नागौर पर चढ़ाई की। उस समय इनके छोटे भ्राता बख़्तसिंहजी भी इनके साथ थे। जैसे ही इंद्रसिंह को इनके मेड़ते और रैण होते हुए खजवाने पहुँचने की सूचना मिली, वैसे ही उसने अपने पुत्र को सेना देकर इनका सामना करने के लिये मूँडवे की तरफ़ रवाना किया। परंतु वहाँ पहुँचने पर जब उसे महाराज की विशाल सेना का हाल मालूम हुआ, तब वह विना लड़े ही भागकर नागौर लौट गया। इसके बाद महाराज ने आगे बढ़ नागौर को घेर लिया। यद्यपि कुछ दिन तक तो इंद्रसिंह ने भी इनका सामना बड़ी वीरता से किया, तथापि अंत में नगर पर महाराज का अधिकार हो जाने से वह क़िला ख़ाली कर इनकी शरण में चला

पर भंडारी रघुनाथ को क़ैदकर उसका काम पंचोली रामकिशन को सौंपना पड़ा। परंतु इसके बाद वि० सं० १७८२ के ज्येष्ठ में जब महाराज ने उस (रघुनाथ) को और अन्य भंडारियों को क़ैद से निकाला, तब फिर सरदार नाराज़ होकर जालोर की तरफ़ चले गए। इस पर महाराज ने उनको प्रसन्न करने के लिये दुबारा भंडारी रघुनाथ और खींवसी को क़ैद में डाल दिया।

⊛ अभयोदय सर्ग ६, श्लो० १७-४२।

† बांबे-गज़ेटियर भा० १, खंड १, पृ० ३०६। परंतु राजरूपक में इसका उल्लेख नहीं है। वि० सं० १७८२ की कार्तिक-सुदी ४ के जयपुर-नरेश जयसिंहजी के महाराज के नाम लिखे पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।

‡ वि० सं० १७८१ (चैत्रादि १७८२) की आषाढ़-सुदी ११ के देहली से दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम लिखे महाराज के पत्र से भी इस बात की पुष्टि होती है।

⊛ वि० सं० १७८१ की मँगसिर-बदी ७ के महाराज के देहली से लिखे अभयकरण के नाम के पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।

† वि० सं० १७८२ की फागुन-बदी ६ के एक पट्टे से उस समय महाराज का निवास जालोर में होना प्रकट होता है। इस पट्टे में इनके महाराज-कुमार का नाम ज़ोरावरसिंह लिखा हुआ है।

आया। महाराज ने उसके निर्वाह के लिये कुछ गाँव निकालकर नागौर का अधिकार अपने छोटे भ्राता बख़्तसिंहजी को देना निश्चित किया *। इसी के साथ उन्हें 'राजाधिराज' की उपाधि देना भी तय हुआ। यह देख इंद्रसिंह वहाँ से देहली की तरफ़ चला गया†।

जिस समय महाराज नागौर-विजय में लगे थे, उसी समय इनके छोटे भ्राता आनंदसिंहजी ने एक बार फिर मेड़ते पर चढ़ाई की। परंतु वहाँ के रक्षक मेड़तिया शेरसिंह के आगे उन्हें सफलता नहीं हुई, और वे नगर के बाहर ही लूट-मारकर वापस लौट गए। इसकी सूचना पाते ही महाराज भी अपने भ्राता राजाधिराज बख़्तसिंहजी को साथ लेकर मेड़ते आ पहुँचे ‡।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि आँबेर-नरेश जयसिंहजी के और उनके बहनोई बूँदी-नरेश रावराजा बुधसिंहजी के आपस में मनोमालिन्य हो गया था। इसी से जयसिंहजी ने बूँदी का अधिकार उनसे छीनकर हाडा दलेलसिंह को दे दिया। इस पर बुधसिंहजी को कुछ दिन जोधपुर में आकर भी रहना पड़ा।

इसी प्रकार जैसलमेर रावल अखेराजजी को भी कुछ दिन के लिये मारवाड़ में आकर अपनी रक्षा करनी पड़ी थी।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि इसी वर्ष रायसिंहजी और आनंदसिंहजी के कहने से कंतजी कदम और पीलाजी गायकवाड़ ने आकर जालोर में उपद्रव शुरू किया। परंतु भंडारी खींवसी ने जाकर उनसे संधि कर ली। इससे वे वहाँ से वापस लौट गए *।

---

* वि० सं० १७८६ की सावन-बदी ८ के स्वयं राजाधिराज बख़्तसिंहजी के, नागौर से लिखे, पंचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से प्रकट होता है कि नागौर का वास्तविक अधिकार उनको १७८१ की सावन-बदी १ से मिला था।

परंतु इस बात का पहले से ही तय हो जाना वि० सं० १७८४ (चैत्रादि संवत् १७८५) की आषाढ़-सुदी ६ के आनंदसिंहजी के पत्र से सिद्ध होता है। उस पत्र में उन्होंने अपने हक़ पर भी ऐसी ही उदारता से विचार करने की प्रार्थना की है।

† अभयोदय सर्ग ७, श्लो० ४-३३। परंतु उक्त काव्य में और राजरूपक में इंद्रसिंह को निर्वाह के लिये गाँव देने का उल्लेख नहीं है (देखो राजरूपक पृ० २७६)।

‡ अभयोदय सर्ग ७, श्लो० ३६-४०। उक्त काव्य में महाराज के साथ बख़्तसिंहजी के मेड़ते आने का उल्लेख नहीं है। राजरूपक में महाराजा अजितसिंहजी का मेड़ते लौटकर बख़्तसिंहजी को नागौर देना लिखा है। साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि इसके बाद महाराज जैतारण, जालोर और सिवाने होकर जोधपुर लौटे थे (देखो पृ० २७७-२७८)। कहीं-कहीं वि० सं० १७८३ के कार्त्तिक (ई० सन् १७२६ के ऑक्टोबर) में नागौर का अधिकार बख़्तसिंहजी को देने का तय होना भी लिखा है।

वि० सं० १७८२ की आश्विन-सुदी ५ के महाराज के लिखे पंचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से आश्विन-सुदी ४ को महाराज का मेड़ते से जैतारण की तरफ़ जाना प्रकट होता है।

* ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में बख़्तसिंहजी ने नरावत राठौरों से पोकरन छीन लिया और उसे भीनमाल की एवज़ में चाँपावत महासिंह को दे दिया।

वि० सं० १७८४ के श्रावण (ई० सन् १७२७ के जून-जुलाई) के क़रीब (बादशाह मुहम्मद-शाह के बुलाने पर) महाराज लौटकर देहली चले गए ❀ और इसी वर्ष के कार्त्तिक में इन्होंने गढ़-मुक्तेश्वर की यात्रा की †।

वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में आनंद-सिंहजी और रायसिंहजी ने ईडर पर अधिकार कर लिया ‡। यद्यपि उस समय उक्त प्रदेश महाराज के मनसब में था ¶, तथापि इन्होंने मारवाड़ की तरफ़ का उपद्रव शांत होता देख इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं की §।

वि० सं० १७८७ के आषाढ़ (ई० सन् १७३० के जून) में गुजरात के सूबेदार सरबुलंदख़ाँ के कार्यों को देखकर बादशाह उससे नाराज़ हो गया ❀। इसी से उसने (अजमेर के साथ ही †) गुजरात का सूबा महाराज अभयसिंहजी को दे दिया ‡। इसी के साथ इन्हें ख़िलअत आदि के अलावा १८ लाख रुपए नक़द और मय गोला-

---

❀ अभयोदय सर्ग ७, श्लो० ४१-४२।

राजरूपक में लिखा है कि मार्ग में परबतसर पहुँचने पर महाराज को चेचक निकल आई थी। (देखो पृ० २७८)

† अभयोदय सर्ग ८, श्लो० २

‡ रासमाला भा० २, पृ० १२५ की टिप्पणी १।

¶ वि० सं० १७८२ का भादों-सुदी ४ के महा-राज के नाम लिखे पं० दौलतसिंह के पत्र से इसी समय महाराज को बादशाह की तरफ़ से ईडर और थिराद का मिलना प्रकट होता है।

§ इसी बीच महाराना संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने ईडर-प्रांत को ठेके के तौर पर लेने के लिये जयपुर-नरेश सवाई राजा जयसिंहजी के द्वारा महा-राज से बात तय करना चाहा। महाराज ने भी राय-सिंहजी से तंग आकर उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। इससे वहाँ का बहुत-सा प्रांत मेवाड़ के राज्य में मिला लिया गया। वि० सं० १७८६ की श्रावण-बदी ८ के और १७८६ (चैत्रादि सं० १७८७) की ज्येष्ठ-सुदी ७ के राजाधिराज बख़्तसिंहजी के पं० बालकृष्ण के नाम लिखे पत्रों से प्रकट होता है कि उस समय तक महाराज ने रायसिंहजी और आनंदसिंहजी का ईडर पर का अधिकार स्वीकार नहीं किया था। इससे ज्ञात होता है कि यह अधिकार बाद में ही स्वीकार किया गया होगा। वि० सं० १७८४ की माघ-सुदी ७ के आनंद-सिंहजी और रायसिंहजी के लिखे पुष्करणे ब्राह्मण जगू के नाम के पत्र में लिखा है कि तूने ही हमको महा-राज से कहकर ईडर का राज्य दिलवाया है। इसलिये तू अपने किसी वंशज को यहाँ भेज दे।

❀ इतिहास से ज्ञात होता है कि सरबुलंद ने गुजरात में होनेवाले मरहटों के उपद्रव को दबाने में असमर्थ होकर उन्हें वहाँ की आमदनी का चौथा भाग देने का वादा कर लिया था। साथ ही वह स्वयं भी बादशाह की परवाह न कर गुजरात में बड़ी लूट-मार करने लगा था। इसी से बादशाह उससे नाराज़ हो गया।

† श्रीयुत सारडा का 'अजमेर' पृ० १६७।

‡ ग्रांट डफ़ की हिस्ट्री ऑफ़् मरहटाज़ में इस घटना का समय ई० सन् १७३१ लिखा है (देखो भा० १, पृ० ३७१)। परंतु मआसिरुल उमरा में दिए हि० सन् ११४० के हिसाब से ई० सन् १७२७ (वि० सं० १७८४) आता है। उसमें इसी के अगले साल इनका गुजरात जाना भी लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ७५८)।

राजरूपक में इस घटना का समय वि० सं० १७८६ लिखा है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि इसी के बाद गुजरात की चढ़ाई का प्रबंध करने के लिये

बारूद के छोटी-बड़ी ५० तोपें भी दी गईं*। इस पर ये अलवर होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर अधिकार कर मेड़ते होते हुए जोधपुर चले आए †। कुछ दिनों में जब २० हज़ार सवारों का रिसाला तैयार हो गया, तब ये यहाँ से चलकर जालोर पहुँचे ‡। यहीं पर इनके छोटे भ्राता बख़तसिंहजी भी आकर इनके साथ हो गए। इसके बाद महाराज अपनी इस वीर-वाहिनी को लेकर सिरोही की तरफ़ के कुछ जागीरदारों को दंड देते हुए पालनपुर जा पहुँचे *। इस पर वहाँ के शासक ने सामने आ इनकी अभ्यर्थना की। जैसे ही इसकी सूचना (मुबारिज़ुलमुल्क) सरबुलंद को मिली, वैसे ही उसने भी अहमदाबाद से आगे बढ़ मार्ग में ही इनके रोकने की तैयारी शुरू की †। अपने गुप्तचरों के द्वारा यह हाल मालूम कर महाराज ने २०००० रुपए की हुंडी और नायबी की आज्ञा लिखकर सरदार मुहम्मदख़ाँ के पास भेज दी, और साथ ही उसे यह भी कहला दिया कि संभव हो, तो वह चुपचाप अहमदाबाद पर अधिकार कर ले। इस पर वह भी गुजरातियों की सेना इकट्ठी कर मौक़ा ढूँढ़ने लगा। परंतु सरबुलंद के पक्षवाले नगर के दरवाज़ों को ईंटों से बंदकर पूरी सतर्कता से नगर की रक्षा करने लगे थे। इससे वह सफल न हो सका ‡।

इसके बाद जिस समय महाराज सिद्धपुर के

आषाढ में देहली से जोधपुर को रवाना हो गए थे (देखो पृ० २८३ और २८८) और यहाँ पर सारा प्रबंध कर लेने के बाद वि० सं० १७८७ के चैत्र-सुदी में इन्होंने गुजरात की तरफ़ प्रयाण किया (देखो पृ० ३८७)।

* महाराज के, शाही दरबार में रहनेवाले अपने वकील, भंडारी अमरसिंह के नाम लिखे वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक-सुदी १२ के पत्र में १५ लाख रुपए, ४० तोपें, २०० मन बारूद और १०० मन सीसे का दिया जाना लिखा है।

† लेटर मुग़लस में लिखा है कि महाराज ने देहली से जोधपुर पहुँच मारवाड़ और नागौर से २० हज़ार कुशल राठौर सवार एकत्रित किए थे। इसके बाद ये सब अपने छोटे भाई बख़तसिंहजी के अहमदाबाद की तरफ़ रवाना हुए। इनके पालनपुर के पास पहुँचने पर वहाँ का फ़ौजदार करीमदादख़ाँ भी इनके साथ हो लिया (देखो भा० २, पृ० २०५)।

‡ अभयोदय सर्ग १०, श्लो० १-१६। लेटर-मुग़लस नामक इतिहास से ज्ञात होता है कि वि० सं० १७८७ के द्वितीय भादों (ई० सन् १७३० के सितंबर) में महाराज का कैंप जालोर में था। (देखो भा० २, पृ० २०३) और राजरूपक से वि० सं० १७८७ के श्रावण में भी महाराज का निवास जालोर में होना प्रकट होता है (देखो पृ० ३१०)।

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज सखावास में ठहरे हुए थे, उस समय भादराजन का ठाकुर नाराज़ होकर अपनी जागीर को लौट गया। यह देख महाराज के छोटे भ्राता बख़तसिंहजी कुछ सैनिकों के साथ एकाएक वहाँ जा पहुँचे। इससे उसे लौट आकर महाराज की सेना में सम्मिलित होना पड़ा।

* रेवाड़े का ठाकुर बहुधा जालोर की तरफ़ आकर उपद्रव किया करता था, इसी से उसे दंड दिया गया था।

† लेटर मुग़लस भा० २, पृ० २०३।

‡ लेटर मुग़लस भा० २, पृ० २०५ और बांबे गज़ेटियर भा० १, खंड १, पृ० ३१०-३११।

निकट पहुँचे ※, उस समय आस-पास के कई मुसलमान अमीर भी सरबुलंद का पक्ष छोड़-कर इनके झंडे के नीचे चले आए † ।

इसी वर्ष के आश्विन (सितंबर) में महाराज ने अपना डेरा साबरमती के तट पर के मोजिर गाँव में कर वहीं पर अपने मोरचे बनवाने शुरू किए ‡ । यहाँ से सरबुलंद का शिविर केवल एक कोस की दूरी पर था । इससे रात होते ही वह अपनी तोपों को महाराज की सेना की पंक्ति की सीध में लगवाकर उस पर गोले बरसाने लगा । इसके बाद प्रातःकाल होते ही उसने अपनी सेना को युद्ध के लिये तैयार होने की आज्ञा दी । परंतु रात की घटना से महाराज को अपने अधिकृत स्थान की अनुपयोगिता सिद्ध हो चुकी थी । अतः ये अपनी सेना में आए हुए गुजरातियों की सलाह से राठौर-वाहिनी को लेकर दो-ढाई कोस पीछे के सुरक्षित स्थान (खानपुर) में चले आए । यह स्थान वास्तव में ही सैनिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी था । इसी से यहाँ पर नवीन मोरचे बनवाने की आज्ञा दी गई । इसके साथ ही इन्होंने कुछ चुने हुए सवारों को साबरमती नदी के उस पार के बैहरामपुर और बड़े नायनपुर पर अधिकार करने के लिये भी भेज दिया ; क्योंकि उक्त स्थान अहमदाबाद पर गोलाबारी करने के लिये बड़े ही उपयोगी थे । महाराज की सैन्य के इस स्थान-परिवर्तन की सूचना सरबुलंदख़ाँ (मुबारिज़ुलमुल्क) को सायंकाल के समय मिली थी। इसलिये उसने रात्रि में होनेवाले आक्रमण से बचने के लिये तत्काल ही अपने सैनिकों को समुचित स्थानों पर नियत कर दिया । इसके बाद प्रातःकाल होते ही उसने भी शाही बाग़ के सामने पहुँच अपने मोरचे लगवा दिए । इसके साथ ही उसने अपनी सेना का एक भाग मय एक तोपख़ाने के नगर की रक्षा के लिये भी भेज दिया । इन कामों से निपटकर उसने फिर एक बार महाराज की सेना पर गोलाबारी शुरू की ।

इसके बाद जैसे ही महाराज की सेना के मोरचे यथास्थान लग चुके, वैसे ही उसने भी शत्रु-सेना की तोपों का जवाब देने के साथ-ही-साथ अहमदाबाद नगर और वहाँ के क़िले पर भी गोले बरसाने शुरू किए । राठौर-वाहिनी का मोरचा

※ वि० सं० १७८७ की द्वितीय भादों-सुदी ३ के महाराज के पत्र से उस समय महाराज का सिद्धपुर में होना प्रकट होता है ।

† लेटर मुग़ल्स भा० २, पृ० २०५-२०६ ।

‡ महाराज के अपने वकील अमरसिंह के नाम के वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक-सुदी १२ के पत्र में उस समय की गुजरात की दशा का वर्णन इस प्रकार दिया है—

मरहटे सिर्फ़ चौथ ही नहीं लेते हैं, प्रत्युत बड़ौदा, डभोही और जाँबूसर आदि ३० लाख की आमदनी के प्रांतों पर भी उन्हीं का अधिकार है । इनमें सूरत आदि २८ प्रांत पीलू के अधिकार में हैं । उसका जी चाहता है, तो वहाँ की कुछ आमदनी शाही सूबेदार को भी दे देता है और नहीं चाहता, तो नहीं देता है । पावागढ़ चिमनाजी के क़ब्ज़े में है । चाँपानेर का क़िला कंठाजी के पास है । ये लोग इसके अलावा देश में चौथ, देशमुखी और पेशकशी के लेने के साथ-ही-साथ कुछ स्थानों में दरोबस्त (धर-पकड़) भी करते रहते हैं ।

ऊँचे स्थान पर होने के कारण इनके गोलों की चोट कारगर होती थी। यह देख दूसरे दिन (वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक-बदी ५) (ई० सन् १७३० की २० ऑक्टोबर) को सरबुलंद ने आगे बढ़ महाराज की सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि उसके मुसलमान सैनिकों ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई, और एक बार खान-पुर में घुसकर उसके एक भाग पर अधिकार भी कर लिया, तथापि अंत में महाराज के तोपखाने और सवारों की मार से घबराकर सरबुलंद को अपनी सेना को लौट चलने की आज्ञा देनी पड़ी ॐ।

इसके बाद स्वयं महाराज ने अपने राठौर-रिसाले के साथ आगे बढ़ शत्रु-सेना पर धावा किया। यद्यपि यवनों ने भी गाँव की आड़ लेकर तोपों और बंदूकों की मार से इनके रोकने की जी-तोड़ चेष्टा की, तथापि समुद्र-तरंग की तरह आगे बढ़ती हुई राठौर-सेना ने, सब विघ्न-बाधाओं को दूरकर, शत्रुओं को मार भगाया, और उनके अधिकृत स्थान पर अपना झंडा खड़ा कर दिया। यह देख सरबुलंद भी अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ पलट पड़ा, और बड़ी वीरता से महाराज की सेना का सामना करने लगा। अंत में उसने एक बार राठौरों को पीछे ढकेलकर ही दम लिया। परंतु इस युद्ध में एक तो उसके बहुत-से बड़े-बड़े वीर सरदार काम आ गए, और दूसरे उसके बहुत-से सैनिक भी राठौरों के दूसरे आक्रमण की आशंका से चुपचाप मैदान छोड़कर चल दिए, इससे उसका बहुत-सा बल क्षीण हो गया। शत्रु की इस प्रकार की दुर्दशा से उत्साहित होकर राठौरों ने सरबुलंद पर दूसरा हमला कर दिया। परंतु ऐसे ही समय उसके दो सेनापति अमीनबेगख़ाँ और शेख़ अल्लाह-यारख़ाँ नगर-रक्षिणी सेना को लेकर रण-स्थल में आ पहुँचे। इससे यद्यपि आक्रमण में राठौरों को सफलता न हो सकी, तथापि सरबुलंद की सेना के बहुत-से सैनिकों के घायल हो जाने से उसका उत्साह शिथिल पड़ गया। इसी से जैसे ही सायंकाल हो जाने पर युद्ध बंद हुआ, वैसे ही उसने अपना शिविर युद्ध-स्थल से उखड़वाकर अहमदाबाद के बाहर की तरफ़ क़िले के नीचे लगवा दिया ॐ।

ॐ लेटर मुग़ल्स भा० २, पृ० २०६-२०८।

ॐ लेटर मुग़ल्स भा० २, पृ० २०८-२११।

राजरूपक में लिखा है—

सतरै समत सत्यासियो आसू उज्जल पक्ख ;
बिजै दशम भागा विचित्र अभै प्रतिज्ञा अक्ख।

(देखो पृ० ३६३)

मीराते अहमदी में लिखा है कि सायंकाल के समय सरबुलंद के पास केवल ४०० सवार ही रह गए थे।

परंतु महाराज द्वारा, शाही दरबार में स्थित, अपने वकील के नाम लिखे गए वि० सं० १७८७ की कार्त्तिक-बदी २ के पत्र से प्रकट होता है कि आश्विन-सुदी ५ को महाराज ने शहर से डेढ़ कोस पूर्व के हाँसोल-नामक गाँव के पास साबरमती के किनारे मोरचे लगाए थे। परंतु सरबुलंद के शाही बाग़ और मुहम्मद अमीनख़ाँ के बाग़ की तरफ़ चले जाने से ७मी के दिन नगर के पश्चिम की तरफ़ भादर के क़िले के सामने (फ़तैपुर के पास=नदी के किनारे)

इसके बाद ही नींबाज ठाकुर ऊदावत अमरसिंह आदि के द्वारा बातचीत तय होकर महाराज और सरबुलंद के बीच संधि हो गई। इससे गुजरात का सूबा उसने महाराज को सौंप दिया और इसकी एवज़ में महाराज ने उसे उसकी सेना के वेतन आदि के लिये एक लाख रुपए नक़द और वहाँ से जाने के समय भार-बरदारी की गाड़ियाँ और ऊँट देने का वादा किया।

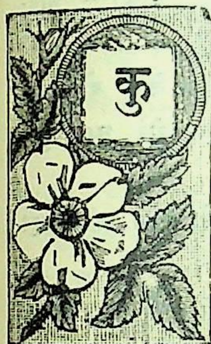
[मशः

मोरचे खड़े किए गए। यह देख क़िले और शहरपनाह से शत्रु की तोपें गोले बरसाने लगीं। तीन दिन तक तो मोरचों की लड़ाई होती रही। परंतु चौथे दिन १०मो को, क़िले के पतन के लक्षण देख, सरबुलंद ने ८ हज़ार सवारों और १० हज़ार पैदल सिपाहियों को लेकर महाराज की सेना पर हमला कर दिया। इसमें शत्रु के बहुत-से योद्धा मारे गए। इसके बाद महाराज और राजाधिराज ने मोरचों से आगे बढ़ सरबुलंद पर प्रत्याक्रमण किया। यह देख उसका तोपख़ाना इन पर गोले बरसाने लगा, और शत्रु सैनिक गाँव की आड़ में छिप गए। परंतु महाराज ने इसकी कुछ भी परवा न कर अपने सवारों की ३ अनियाँ बनाईं, और एक ही बार में तोपख़ाने से आगे बढ़ वे तत्काल शत्रु के सामने जा पहुँचे। दो घंटे के युद्ध के बाद शत्रु के पैर उखड़ गए, और वह भागकर डेढ़ कोस पर के क़ासिमपुर में चला गया। महाराज के सैनिक भी उसके पीछे लगे हुए थे। इसलिये जैसे ही ये वहाँ पहुँचे, वैसे ही शत्रु ने मकानों की आड़ लेकर इनका सामना किया। वहाँ पर क़रीब एक घंटे तक युद्ध होता रहा। इसके बाद जब सेना के बिखर जाने से सरबुलंद के पास केवल ८० सवार ही रह गए, तब वह वहाँ से भागकर नदी-पार के अपने शिविर में चला गया। इसी बीच शेख़ अल्लाहयारख़ाँ भी शहर से निकल उसकी मदद को पहुँचा था। परंतु वह शीघ्र ही मारा गया। इसके बाद शाम हो जाने से महाराज भी अपने शिविर को लौट गए। इस युद्ध में शत्रु के बहुत-से घोड़े, तोपें आदि राठौरों के हाथ लगे। उसके हज़ार-बारह सौ आदमी मारे गए और सात-आठ सौ घायल हुए। महाराज की सेना में यद्यपि मरनेवालों की संख्या कम रही, तथापि घायल अधिक हुए। महाराज की सवारी के घोड़े के भी तलवार के तीन और तीरों के दो ज़ख़्म लगे। तीन तीर उसका चमड़ा छीलते हुए निकल गए। इस युद्ध में राजाधिराज भी ज़ख़्मी हुए। परंतु ईश्वर ने सहाय की। शिविर में पहुँचने पर सरबुलंद की तरफ़ से संधि का प्रस्ताव हुआ। दूसरे दिन महाराज ने फिर चढ़ाई की, परंतु शत्रु बाहर नहीं आया।

उसके बाद

[श्रीयुत ऋषभचरण]

(१)



कुछ दिनों से रामसिंह के स्वभाव में बड़ा अंतर देख रही हूँ। वह चपलता और वह प्रफुल्लता......राम-जाने कहाँ गई! पहले स्कूल, खेल और पुस्तकें......बस, इन्हीं सबमें लगा रहता था। और अब? पता नहीं, किस चिंता में डूबा रहता है कि बस......। हँसता है, तो मन मारकर; खाता है, तो ज़बर्दस्ती; पढ़ता है, तो...

......यहाँ तक कि मेरे आज्ञा-पालन में भी अब अक्सर प्रमाद कर जाता है।

रामसिंह मेरा इकलौता बेटा है, और मुझ ग़रीबिनी का सब आशा-भरोसा उसी पर है। मैं चाहती हूँ—कुछ पढ़ ले, तो ब्याह कर दूँ। कमाकर लावे, मुझे भी खिलावे, आप भी खावे। बहू मेरी टहल करे। और फिर बेटे-बहू से टहल कराती-कराती ही सुख-पूर्वक मरूँ। बस, यही मेरी इच्छा या भावना है।

दसवीं कक्षा में पढ़ता है; एक साल बाद स्कूल की परीक्षाएँ पास कर लेगा। नौकरी भी कहीं मिल ही जायगी; जिस परमात्मा ने पढ़ाया, वही नौकरी भी दिलावेगा। इच्छा थी, इसके बाद कोई अच्छी-सी दुलहिन ढूँढ़कर विवाह करूँगी।

पर उसके ये ंग-ढंग देखे, तो माथा ठनका। क्या बताऊँ, मेरे पापी मन ने एक दिन सोचा—कहीं मेरा जवान बेटा ब्याह की चिंता में तो नहीं है!

मैंने अपनी कल्पना के अनुसार लड़की की खोज शुरू की। एक नज़र भी आ गई। आख़िर एक दिन बेटे से कहा—"बेटा, इम्तिहान में कितने दिन हैं?"

बेटे ने संक्षेप में कहा—"अभी—अभी बहुत दिन हैं, कोई आठ-नौ महीने।"

असल में मेरा यह प्रश्न उसके विवाह-संबंधी वार्तालाप की भूमिका थी। अतएव बोली—"बात यह है......"

"क्या?"

"एक लड़की है—साक्षात् लक्ष्मी। कहो तो कर डालूँ। एक दिन करना तो है ही।......इतने दिन वे ठहरेंगे नहीं—नहीं तो इम्तिहान के बाद ही कर देती।"

जैसे रोगी आँख मीचकर डॉक्टर की कड़वी दवा पी जाता है, ठीक उसी तरह, आँख मीचकर, बिना यह देखे कि मेरी बात सुनकर बेटे के चेहरे पर क्या रंग आ-जा रहा है, मैंने अपनी बात समाप्त कर दी। पर जब आँख खोली, तो देखा......

बेटा कड़ी नज़र से मुझे घूर रहा है!

सहमी तो मैं बहुत, पर आख़िर बेटा था। जी कड़ा करके बोली—"क्यों बेटा, क्या......"

बेटे ने एक बार मेरी तरफ़ देखा, और तब घृणा से पैर पटककर मुँह से कहा—"छिः!" और वह कमरे से बाहर चला गया।

उसका यह अभूतपूर्व भाव मेरे लिये अत्यंत विस्मय-जनक था। दो-तीन दिन बाद मैंने मौक़ा पाकर कहा—"क्यों बेटा, आख़िर यह बात क्या है?"

बेटे के मन में भी शायद वही बात थी। तुरंत बोला—"मा, मुझे क्षमा करो, मैं ब्याह नहीं करने का।"

बात उसके अंतस्तल से निकल रही थी, और इरादा पक्का मालूम पड़ता था। पर हे मेरे राम! फिर यह उदासीनता, अन्यमनस्कता और गंभीरता क्यों?

(२)

अब मैं दिन-रात भूली-भूली-सी रहती हूँ। हृदय में जैसे कोई रह-रहकर चुटकी मारता हो। बेटे का गंभीर मुख देखती हूँ, तो धक् से रह जाती हूँ! आख़िर इसे हो क्या गया? रोटी खाई, और चल दिया। ऐसी गंभीरता कि चेहरा मुर्झाया-मुर्झाया रहने लगा......आख़िर पैदा कैसे हुई?

अब उसके दो-चार मित्रों ने भी आना शुरू किया है। कोई नंगे सिर, कोई मैले कपड़े पहने, कोई परेशान सूरत बनाए। सब एक-से-एक अनोखे! और वह उनके साथ जाता है, उन्हें बैठाता है, बड़े स्नेह सान्निध्य के साथ मिलता है, और बैठक का दर्वाज़ा बंदकर कभी-कभी न-जाने घंटों क्या-क्या बातें किया करता है!

मेरे मन में तो चोर है न! मैं बैठक के दर्वाज़े पर कान चिपकाकर घंटों खड़ी रहती हूँ, और उन लोगों का वार्तालाप सुनने की चेष्टा किया करती हूँ। पर वे लोग बहुत सतर्क हैं; बड़े धीमे-धीमे बोलते हैं। मैं चेष्टा करने पर भी कुछ सुन नहीं पाती!

आख़िर चुपके-चुपके बातें क्या होती हैं?

एक दिन वे असावधान हो ही गए; मैंने सुन ही लिया। क्या सुना? आपको बताते भय लगता है। कैसे कहूँ—सचमुच ऐसा ज्ञात हुआ, मानो पैरों-तले की ज़मीन सरकी जा रही है।

उस दिन वे लोग कुछ उत्तेजित हो रहे थे। इसीलिये तो मैं सुन पाई! क्या कह रहे थे?

"नहीं, यह ठीक नहीं", आवाज़ से मैंने पहचाना, वह एक नंगे-सिर बंगाली लड़का था। रामसिंह (मेरा बेटा) का जीवन इससे अधिक महत्त्व-पूर्ण काम के लिये सुरक्षित रहना चाहिए। इस साधारण काम के लिये...

"यह तुम्हारी बुज़दिली है।" यह एक सलवारी पंजाबी था—"सबका जीवन बराबर अहमियत (महत्त्व) रखता है। तुम्हें पक्षपात से काम न लेना चाहिए।"

बंगाली छोकरा कड़ककर बोला—"यह तुम्हारी नीचता है, जो तुम मुझ पर ऐसा कलंक लगाते हो। मैं पक्षपात करनेवाले के साथ ही तुम्हारे इन विचारों पर हज़ार बार लानत भेजता हूँ।"

जावी बालक क्रोध में भरकर कुछ कहना चाहता था—ऐसा मुझे भान हुआ, पर इसी समय मेरे बेटे ने बोलकर विवाद का अंत कर दिया। बोला—"वाद-विवाद बुरा है। मुझे स्वीकार है।"

सब एक बार चुप हो गए। मेरा बेटा बोला—"पिस्तौल और बम कल संध्या तक मेरे घर पहुँच जाने चाहिए।"

हा! बस, यही सुनकर मेरे पैरों-तले की मिट्टी निकली थी!!

फिर धीरे-धीरे उनकी बहुत-सी बातें हुईं। जब वे लोग उठने को हुए, तो मैं हट गई। और क्या करती? कम-से-कम उस परेशान हालत में तो कुछ स्थिर कर न सकी।

(३)

मेरा बेटा अपने साथियों को बिदा करके मेरे पास आया। मैं बुत-सी उसे देर तक निहारती रही। आख़िर कहूँ क्या?

मेरी स्थिर दृष्टि देखकर एक बार वह चौंक पड़ा, और फिर चुपचाप लौटकर जाने लगा।

ओफ़्! सहसा मेरे कानों में 'उस तारीख़'-वाला शब्द सुनाई देने लगा। पाँच ही छः दिन तो हैं। जिस दिन पुलिस के अफ़सर मिस्टर...को उड़ा देना मेरे बेटे ने स्वीकार किया है। ओफ़्! कुल पाँच-छः दिन! कोई सौ-सवा सौ घंटे!!

जब बेटा लौटने लगा, तो मैं उछलकर उसके पास पहुँची, और उसका हाथ पकड़कर घुटने टेककर ज़मीन में बैठ गई।

जैसे आग पर पैर पड़ गया, ऐसे चौंककर उसने मुझे देखा। ज़्यादा देर उससे आँखें मिलाने की ताब मैं न ला सकी, और दो-ज़ानू होकर घिघियाकर कहने लगी—"बेटा, मुझ दुखिया को किसके भरोसे छोड़ता है!"

बेटे का चेहरा एक बार फ़क़ हो गया। कुछ न समझकर या सब कुछ समझकर कहने लगा —"क्या ?"

"तुम्हारे क्या इरादे हैं ?" मैंने रोकर कहा—"मैंने सब सुना है। बेटा, मुझे किसके भरोसे छोड़ता है?"

"तुमने सब सुना है ?" बेटा भिन्न प्रकार से मेरी बात दोहराकर बोला—"अच्छा, ख़ैर...पर मा, तुमने बड़ा भारी अपराध कर डाला है।"

"अरे बेटा !" मैंने रँभाकर कहा—"यों कहा मैं डूबनेवाली थी..."

"नहीं मा, ऐसा न कहो..." बेटे का कंठ भी गद्-गद् हो गया।

मैंने कहा—"मुझे किसके भरोसे छोड़ते हो ?"

"परमात्मा के !" अब उसने जैसे साफ़ जवाब दे दिया।

"नहीं, ऐसा नहीं..."

"क्यों ?"

"तेरे बिना संसार मेरे लिये शून्य है; एक क्षण भी जीवित न रहूँगी।"

"अच्छा होगा", बेटा ठठाकर बोला—"मेरी मा भी देश पर बलिदान हो जायगी।"

"नहीं, ऐसा नहीं..." मुझे कोई तर्क ही न सूझा।

"क्यों नहीं ? मा, अनेक माई के लाल नित्य मर रहे हैं, मुझे क्यों रोकती है ?"

"बेटा, उनकी माताओं को कुछ और सहारा है..."

बेटे ने मेरी बात काटकर कहा—"तुझे परमेश्वर का सहारा है, शांत होकर बैठ, मेरे कर्तव्य में बाधक न बन !"

और कोई तर्क न सूझा, तो मैंने कहा—"बेटा, तेरे बाद मुझे भोजन देनेवाला कौन है ?"

अब की बार उसने मुझे घूरा, और कहा—"तो क्या तू मुझे सिर्फ़ इसीलिये जीवित रखना चाहती है ? ऐसी मा पर धिक्कार है, और ऐसे पापी पेट पर हज़ार बार लानत है !!"

वह छुड़ाकर चला गया। मैं बात मुँह से तो कह गई, पर उसे कैसे बताऊँ कि उसका विचार ग़लत है ? हाय ! मेरा बेटा !!

(४)

उस दिन के बाद वह घर नहीं आया। मैं सारे शहर में घूमी, कहीं उसका पता न लगा। उसका कोई संगी-साथी भी नज़र न पड़ा। मुँह में अन्न का एक दाना न दिया। चार दिन बीत गए। हाय ! दो ही दिन तो बाक़ी हैं। हाय ! कहाँ ढूँढ़ूँ !! हाय ! मेरा बेटा !!! गया !

पाँचवें दिन थककर बेहोश पड़ गई। पता नहीं—कितनी देर तक, कितने घंटों तक या कितने दिनों तक मैं बेहोश पड़ी रही ! हाँ, बीच-बीच में मेरी मूर्च्छा कुछ भंग हो जाती थी, और तंद्रावस्था में, घर में सुनसान देख, मुँह से एक बार—'बेटा, रामसिंह !' कहकर फिर मूर्च्छा में डूब जाती थी !!

आख़िर मैं होश में आई। पास ही डॉक्टर बैठा, उपचार कर रहा था। चारो ओर अड़ोसी-पड़ोसी जमा थे।

बड़ी कोशिशों से मालूम हुआ। मेरे धनवान् दयालु पड़ोसी पं०......जी संयोग-वश मेरे घर आए। उन्होंने मुझे इस अवस्था में देखा, और उनके कारण ही डॉक्टर ने आकर मुझे होश में किया।

और रामसिंह ?

कहीं स्वप्न तो नहीं देखा था ? हाँ, स्वप्न ही था; रामसिंह सही-सलामत होना चाहिए। स्कूल गया होगा। नहीं, बीमार मा को छोड़कर स्कूल तो कैसे गया होगा ? ओह ! समझी ! डॉक्टर साहब ने दवा लेने दवाख़ाने भेजा होगा। परंतु......।

ऐसे विचार मेरे मन में आए। और मैंने लोगों से पूछा—"रामसिंह कहाँ......?"

जिसकी तरफ़ मुँह करके मैंने प्रश्न किया था, उसने मेरे प्रश्न पर, मुँह फेरकर छिपने की कोशिश की; उत्तर देना तो कैसा ?

तब मैंने दूसरे की तरफ़ देखकर वही प्रश्न किया। वह भी उत्तर देते हिचका, तो एक वयोवृद्ध सज्जन

बोले—"घबराइए नहीं, रामसिंह राज़ी-ख़ुशी है, आप सो रहिए; कमज़ोरी बहुत अधिक है।"

मैंने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"कहाँ है वह? उसे मेरे सामने लाओ! मैं उसे देखकर प्यार कर लूँ; आँखें ठंडी हो जायँ।"

फिर भी उत्तर न मिला। एक आदमी ने धीरे से दूसरे से कहा—"बेचारी पागल हो गई है।"

दूसरे ने कहा—"अफ़सोस......!"

ये लोग मुझे पागल समझ रहे थे। पागल की बात का कौन उत्तर दे? अच्छा, समझा करें; मैं तो पागल हूँ नहीं। अच्छी तरह जानती हूँ। मैं होश में हूँ; फिर क्यों इनके मन में यह भाव जमने दूँ?

यह सोचकर मैंने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि मैं होश-हवास में हूँ।

पर हाय! मैं अपनी चेष्टा में असफल ही न हुई, वरन् फल विपरीत हुआ।

इतने में मैंने सुना। कोई चुपके-चुपके कह रहा था—"हाय! बेचारी का एक ही बेटा था! अभी से इसकी यह हालत है......।"

मेरे कान खड़े हो गए। दूसरे ने कहा—"चुप! चुप!! बेचारी सुन लेगी, तो अभी जान दे देगी। ......चुप......!"

पर मैं समझ गई थी! कलेजे पर जैसे किसी ने पत्थर खींचकर मारा! एक बार मेरे मुँह से 'हाय बेटा!' निकला, और मैं तलमलाकर बेहोश हो गई!

(५)

सब समझते थे; मुझे भी विश्वास था कि मैं मर जाऊँगी। पर मैं नहीं मरी। और सच ही है! मर जाती, तो बेटे के मुक़द्दमे, बेटे के बयान और फाँसी के दंड का फ़ैसला सुनकर मर्मांतक कष्ट का अनुभव कैसे करती? असल में तो परमात्मा ने बेटे को गिरफ़्तार ही इसलिये कराया था, जिससे मुझे कष्ट हो। अगर उसे यह मंज़ूर न होता, तो इस बुढ़ापे में उसे गिरफ़्तार ही क्यों कराता? या अगर मान लूँ, किसी और कारण गिरफ़्तार कराया था, और परमात्मा मुझ पर अनुग्रह करना चाहता था, तो परमात्मा ने मुझे मार क्यों नहीं दिया? उस क्षण से पूर्व मेरी साँस बंद क्यों न कर दी, जब किसी ने आकर मुझसे कहा—"तेरा बेटा... ता० ...को फाँसी पर लटका दिया जायगा।"

हाय रे! देखो, लोगो, देखो। मेरे देखते-देखते मेरा बेटा मेरी गोद सूनी किए जाता है। हाय! हाय! हाय!! मेरा बेहया प्राण निकलता क्यों नहीं? मेरे कान फट क्यों नहीं जाते? हाय! मैं क्या करूँ? अरे, कोई मेरी सहायता करो! मैं मरी, मरी, मरी...

(६)

फाँसी से कुछ दिन पहले बेटे का एक पत्र आया था। जिसने सुना—वाह-वाह कर उठा। कैसा दृढ़! कैसा वीर!! कैसा देश-भक्त!!!

उसने लिखा था—

मा,

कल जेलर मेरे पास आया था। उसने मुझसे कहा—"तुम्हें ता० ...को फाँसी दे दी जायगी!" अच्छा है, एक दिन मरना सभी को है। जिनके जवान बेटे हैज़े, प्लेग और अन्य बीमारियों के शिकार होकर मर जाते हैं, वे भी संतोष कर लेती हैं, जिन ग्रामीण माताओं के अबोध बालक औषध और अन्न के बिना भूखे, प्यासे तड़प-तड़पकर मर जाते हैं, वे भी अंत में कलेजे पर पत्थर रख ही लेती हैं; जिनके जवान सर्वस्व, पानी में डूबकर, बिजली गिरने से अथवा साँप काटे से मर जाते हैं, वे भी किसी प्रकार दिन काट लेती हैं। और मा, तुम जानती हो, ऐसे मृतकों के साथ सहानुभूति-प्रकट करनेवाले उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। और यह भी तुम जानती हो मा, कि ऐसी मृत्युएँ क़तई निरर्थक होती हैं। तो मेरी अच्छी मा, क्या मुझे तुमसे यह पूछने की ज़रूरत है कि क्या तुम अपने उस बेटे की मृत्यु पर शोक मनाओगी, जिसके साथ सारे देश की सहानुभूति है, और जो अपने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नहीं मर रहा है, और मा, संभव है, जिसके मरने से देश उस कंटकाकीर्ण पथ पर एक क़दम आगे बढ़े, जो शुरू से आख़ीर तक

ख़ून और तकलीफ़ों से भरा है, और जिसके दूसरे सिरे पर पहुँचने पर समस्त देशवासी उस वस्तु का लाभ कर सकते हैं, जिसके आगे मेरे-जैसे लाखों जीवन नगण्य और तुच्छ हैं।

बस मा, मेरा अंतिम प्रणाम ग्रहण करो, और फाँसी पाने के बाद मेरे शव का माथा चूमकर तुम सच्चे हृदय से मुझे आशीर्वाद देना, यही मेरी अंतिम कामना है।

—तेरा प्यारा बेटा

(७)

'मेरा प्यारा बेटा' अपनी अंतिम कामना पूरी कर, ख़ाक में मिल गया। लोगों ने उसके शव को फूलों से लाद दिया। मेरा सिर और वक्षःस्थल भी फूलों से भर उठा। जय-जयकार करते हुए लोग उसे उठाकर श्मशान में चले। और हाय! मेरी छाती न फटी! उन्होंने उसे चिता में रखकर मेरे देखते-देखते जला दिया!

हाय, मेरा बेटा! हाय, मेरा बेटा!! हाय, मेरा बेटा!!!

हाय, मेरा बेटा, अब कहाँ था? कोई मुझे उसके पास पहुँचा दे! या कोई मुझ पर दया करके उसके पास पहुँचने की राह ही बता दे! हाय! बेटा तो गया—अब......?...अब??......अब???

घर लौटी, तो सैकड़ों तार थे, जिनमें सहानुभूति थी, समवेदना थी, बधाई थी, सांत्वना थी—पर, हाय! मेरा बेटा तो चला गया! इन संदेशों के भेजनेवाले क्या जानें, मेरे मन में क्या आग लगी हुई थी! और ये संदेशे उसे कहाँ तक बुझा सकते थे?

हाय, मेरा बेटा अब कहाँ मिलेगा?......ओफ़्! क्या अब मैं उसका मुँह न देख सकूँगी?...नहीं,... हाँ...हाँ......

(८)

बेटे की समाप्ति को छः महीने हो गए हैं, और हाय! मैं अभी तक नहीं मरी हूँ। ख़ैर, किसी पूर्व-संचित पाप का ख़ूब कठोर दंड सह रही हूँ! देखती हूँ—कब तक यह मनस्ताप मुझे जलाता है!

पर, अब तक तो मनस्ताप ही था—अब तो शरीर-कष्ट भी है, अन्न-कष्ट भी है, वस्त्र-कष्ट भी है! हाय! इस कष्ट से कैसे छुटकारा पाऊँ?

लोग मुझे मज़दूरी नहीं देते, पुलिस से डरते हैं; क्रांतिकारी की मा हूँ न! अड़ोसी-पड़ोसी भी आँखें चुराते हैं। उनका वह उत्साह, जो उन्होंने मुझे फूलों की माला पहनाकर, और 'अपनी माता' कहकर प्रकट किया था, नष्ट हो चुका है। भला देश को मुझे याद रखने का अवकाश कहाँ? बात आई और गई; किधर मैं, और किधर मेरा बेटा!!

अब क्या करूँ? तीन दिन की भूखी हूँ! घर में दाना नहीं, बेशक, घड़ा-भर जल है! पर कब तक उसके सहारे रहूँ? क्या इस प्रकार मरूँगी?

वे जो सहानुभूति के तार और पत्र आए थे, वे सब ज्यों-के-त्यों, बंडल में बँधे, रक्खे हैं। ज़रा उन्हें देखूँ तो—

ओफ़्! दो-चार को पढ़कर ही रोना आता है! कैसी मार्मिक भाषा! कैसी हार्दिक समवेदना! कैसी रुलानेवाली सहृदयता!!

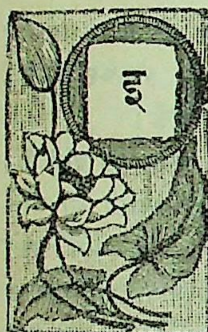
पर, मेरे लिये यह रद्दी। हाँ, रद्दी ही—किस काम की? ये सब तार, पत्र और संदेशे किसी प्रकार रोटी बन जायँ......!!

हाय! आज मेरा बेटा होता! हाय! कोई मुझे उसके पास पहुँचने का रास्ता बतला दे!!......हाय ......!!!

प्रसूति-तंत्र अर्थात् जच्चा-बच्चा

[डॉ० रामदयाल कपूर एम्० बी०, बी० एस्०, प्रोफ़ेसर गुरुकुल कांगड़ी]

३—पुरुष-जननेंद्रियाँ



सके अंतर्गत शुक्र-ग्रंथि, उपांड, शुक्र-प्रणाली, शुक्राशय, शुक्र-स्राविणी, शिश्न तथा दो प्रोस्टेट ग्रंथियाँ और शिश्न-मूल हैं। (चित्र १४)

शुक्र-ग्रंथि या अंड१

ये पुरुष की उत्पादक ग्रंथियाँ होती हैं, जो अंड-रज्जु२ के द्वारा अंडकोष३ में लटकती रहती हैं। इनमें से वाम-अंड दाहने की अपेक्षा कुछ नीचे होता है। प्रत्येक अंड दो इंच लंबा और एक इंच चौड़ा होता है। यह अंडाकार होता है और अंडकोष में तिर्छा लटका रहता है। ऊपर का सिरा सामने और बाहर की ओर तथा निचला सिरा पीछे और अंदर की ओर। इसके पिछले किनारे पर अंड-रज्जु लगा होता है (चित्र १५)।

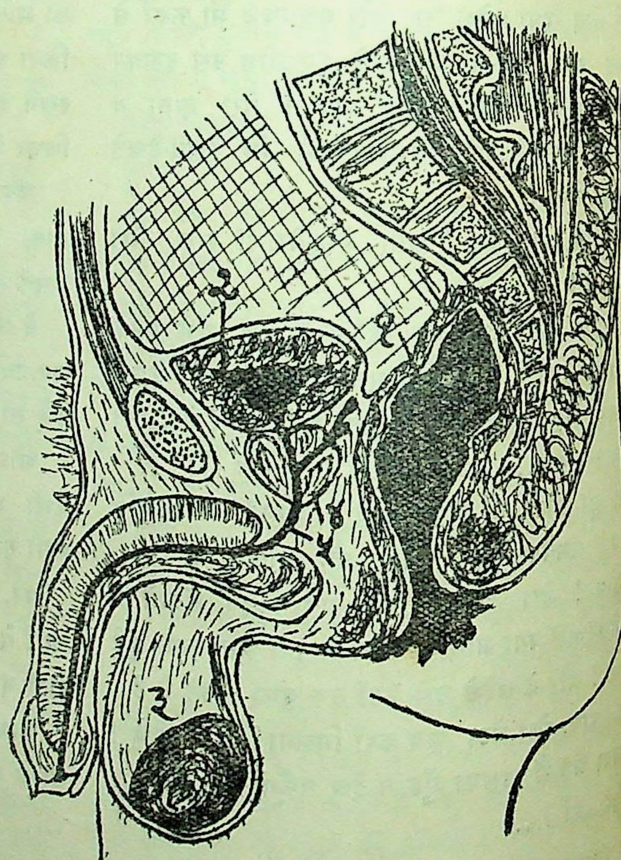
उपांड४

यह लंबा पतला और कुछ चौड़ा पिंड होता है, जो शुक्र-ग्रंथि के पिछले किनारे के ऊपर लगा होता है। वास्तव में यह शुक्र-प्रणाली का आरंभिक भाग ही होता है। इसके उपरि-भाग को शिर, मध्य के भाग को गात्र तथा निचले भाग को पुच्छ कहते हैं। उपांड का शिर अंड के साथ उन नालियों५ के द्वारा ही जुड़ा रहता है, जो

१. Testes २. Spermatic cord ३. Scrotum ४. Epididymis ५. Ductute efferentes testis

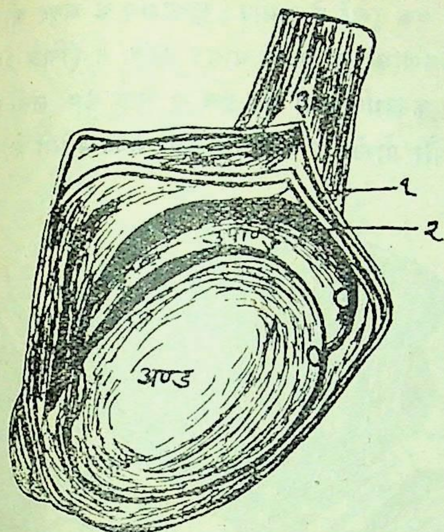
अंड से उपांड को जाती हैं, और पुच्छ भी अंड के साथ कला के द्वारा जुड़ी रहती है। उपांड का गात्र तथा अंड के बाह्य पृष्ठ के बीच में एक खात१ होता है (चित्र १५)।

प्रत्येक अंड के ऊपर दो स्तरोंवाला एक आवरण चढ़ा होता है, जिसे अंडवेष्ट या पर्यांडिका२ कहते



चित्र १४—पुरुष-जननेंद्रियाँ
१ मलाशय २ मूत्राशय ३ अंडकोष ४ अष्ठीला ५ मूत्रमार्ग।

१. Digital fossa २. Tunica vaginalis

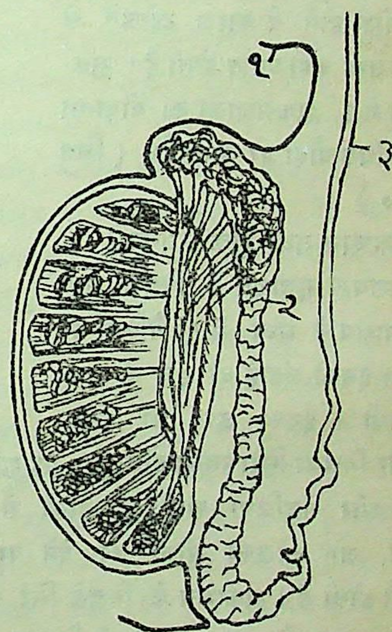


चित्र १५—अंड तथा उपांड

१ अंडकोष के भीतरी स्तर २ अंडवेष्ट ३ अंड-रज्जु।

हैं। यह उपांड के बहुत-से भाग को भी ढकता है। दोनो स्तरों में से केवल अंदर का स्तर ही अंड से जुड़ा होता है, और बाहर का पृथक्। दोनो स्तरों के सामनेवाले पृष्ठ चिकने होते हैं। अंडकोष-वृद्धि१ में इन्हीं दो स्तरों के बीच में जलीय द्रव इकट्ठा हो जाता है। अंड के ऊपरवाले स्तर के नीचे अंडवेष्ट का एक और नील-श्वेत रंग का आवरण२ होता है, जो सौत्रिक तंतुओं से बना होता है, और अंड की पिछली ओर एक दीवार-सी३ बनाता है। यह दीवार अंड के ऊपर के सिरे से निचले सिरे तक होती है। इस दीवार के सामने तथा पार्श्वों से कई शाखाएँ४ अंड के भीतर जाकर उसको अनेक त्रिकोणाकार कोष्टों५ में विभक्त कर देती हैं। प्रत्येक कोष्ठ के बाहर रक्त-वाहिनियों का भी एक स्तर६ होता है।

प्रत्येक अंड में लगभग ३-४ सौ कोष्ठ होते हैं और प्रत्येक कोष्ठ में १ से तीन तक या अधिक पतली मुड़ी हुई नालियाँ१ होती हैं, जिनकी सेलों से शुक्र-कीट निर्मित होते हैं। ये नालियाँ कोष्ठों से बाहर आकर और परस्पर मिलकर २०-३० बड़ी नालियाँ२ बनाती हैं। ये ही नालियाँ सौत्रिक तंतुओं की दीवार में से होकर और आपस में मिलकर एक जाल-सा३ बना देती हैं। इस जाल से २०-२२ नालियाँ४ फिर आरंभ होती हैं। उपांड का सिर इनके समूह से ही बनता है। ये सब नालियाँ फिर एक नाली में खुलती हैं, जिससे उपांड का गात्र तथा पुच्छ बनते हैं। यह नाली बड़ी गेंडलियाँ मारे हुए होती है, और यदि इसे खोलकर सीधा कर दिया जाय, तो इसकी लंबाई ६ गज़ से अधिक होती है। यही नाली उपांड की पुच्छ पर जाकर मोटी हो जाती और शुक्र-प्रणाली५ बन जाती है (चित्र १६)।



चित्र १६—अंड तथा उपांड की रचना

१ अंडवेष्ट २ उपांड ३ शुक्र-प्रणाली।

१. Hydrocele २. Tunica albuginea ३. media-stinum testis ४. Septula testis ५. Lobuli testis ६. Tunica vasculosa

१. Tubuli seminiferi contorti २. Tubuli seminiferi Recti ३. Rete testis ४. Ductuli efferentes testis ५. Ductus deferens

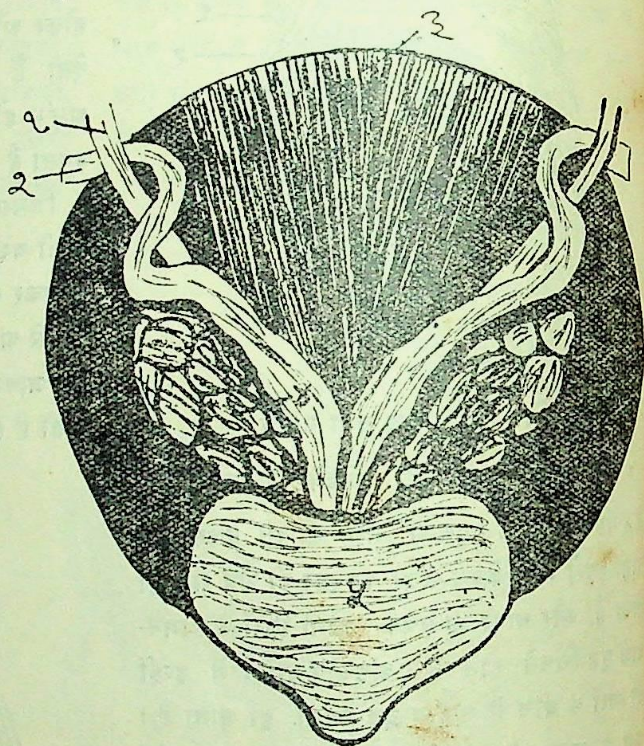
शुक्र-प्रणाली

शुक्र-प्रणाली उपांड की पुच्छ से आरंभ होकर ऊपर को जाती है, और अंड-रज्जु १ के पिछले भाग में रहती हुई विटप-संधि के ऊपर से उदर की दीवार में से हो-कर वस्ति-गुहा में चली जाती है। वहाँ यह मूत्र-प्रणाली के सामने से होकर मूत्राशय के पीछे शुक्राशय२ के अंदर की ओर को हो जाती है। यहाँ दोनो शुक्र-प्रणालियाँ एक दूसरी के समीप मूत्राशय तथा मला-शय के मध्य में रहती हैं। प्रोस्टेट के पास जाकर शुक्र-प्रणाली शुक्राशय की नाली से मिलकर शुक्र-स्राविणी३ बनाती है। ये स्राविणियाँ प्रोस्टेट ग्रंथि में से होकर मूत्र-मार्ग में खुलती हैं। शुक्र-प्रणाली की दीवार मोटी होने के कारण टटोलने से डोरी की तरह कड़ी प्रतीत होती है। शुक्र-स्राविणी से पू' शुक्र-प्रणाली का थोड़ा-सा भाग अधिक चौड़ा हो जाता है४ (चित्र १६, १७)।

शुक्राशय तथा शुक्र-स्राविणी

शुक्राशय५ मूत्राशय के पिछले भाग और मलाशय के मध्य में दो थैलियाँ-सी होती हैं। इनकी लंबाई दो इंच के लग-भग होगी। इनका ऊपर का सिरा मोटा और निचला सिरा पतला होता है। यह शुक्राशय कहाता और गेंडुलिया खाई हुई नाली से बना होता है, जो खोलकर सीधी कर देने पर ४-६ इंच लंबी होती है। शुक्राशय के निचले सिरे से एक नाली निकलकर और शुक्र-प्रणाली से मिलकर शुक्र-स्राविणी६ बनाती है। शुक्राशय के ऊपरी सिरे एक दूसरे से कुछ परे होते हैं, और निचले सिरे प्रोस्टेट के पास एक दूसरे के समीप। शुक्राशय के अंदर की ओर शुक्र-प्रणाली का चौड़ा भाग१ रहता है (चित्र १७)।

शुक्र-स्राविणियाँ एक इंच से कुछ कम लंबी होती हैं, और प्रोस्टेट के पार्श्विक तथा मध्य भागों के बीच



चित्र १७—मूत्राशय का पिछला पृष्ठ

१ मूत्र-प्रणाली २ शुक्र-प्रणाली ३ मूत्राशय ४ शुक्राशय ५ अष्ठीला (प्रोस्टेट)।

में से होकर मूत्र-मार्ग के प्रोस्टेट में रहनेवाले भाग के मध्य के उभार२ पर खुलती हैं।

अंड-रज्जु३ के अवयव

(१) शुक्र-प्रणाली तथा उसकी धमनी।

(२) अंड की धमनी।

(३) शिराएँ जो परस्पर मिलकर एक जाल-सा बनाती हैं४।

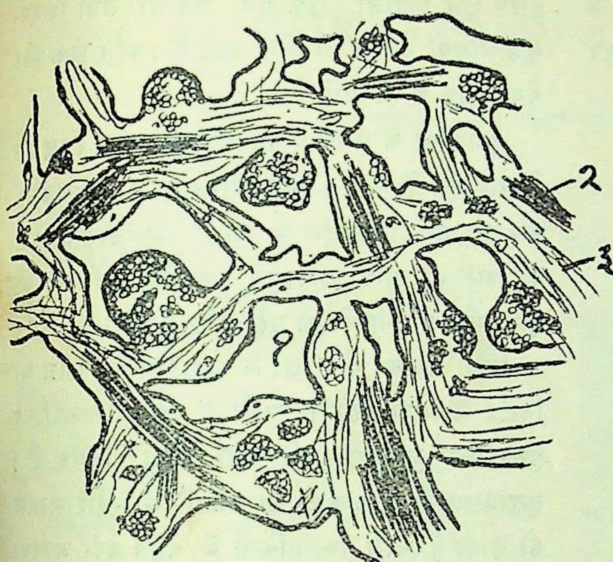
(४) वात-नाड़ियाँ।

(५) लसीका-वाहिनियाँ।

---

१. Spermatic cord २. Vesiculae seminales ३. Ejaculatory duct. ४. Nmpulla ५. Vosiculae seminales ६. Ejaculatory duct

१. Ampulla २. Colliculus seminalis ३. Spermatic cord ४. Pampniform plexus



चित्र २० — शिश्न-ग्रंथिका की सूक्ष्म रचना
१ आशय २ मांस ३ सौत्रिक तंतु।

प्रोस्टेट के चार पृष्ठ होते हैं—एक अगला, एक पिछला और दो पार्श्विक। प्रोस्टेट तली पर २ इंच से कुछ कम चौड़ा और १ इंच से कुछ कम मोटा होता है, और तली से शिखर तक १ इंच से कुछ अधिक लंबा। इसके चारो ओर एक आवरण होता है। प्रोस्टेट को मूत्र-मार्ग तथा शुक्र-स्राविणियाँ छेदन करती हैं, और इसकी नालियाँ मूत्र-मार्ग में आकर खुलती हैं (चित्र १७)।

शिश्न-मूल-ग्रंथियाँ[1]

ये पीले रंग की दो छोटी-छोटी ग्रंथियाँ होती हैं, और प्रोस्टेट के शिखर से नीचे, मूत्र-मार्ग के आस-पास, पड़ी होती हैं। इन दोनो से एक-एक इंच लंबी दो नालियाँ निकलकर शिश्नस्थ मूत्र-मार्ग में जाकर खुलती हैं।

शुक्र या वीर्य[2]

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ;
गर्भबीजं वपुःसारं जीवस्याश्रयमुत्तमम्।
(भावप्रकाश)

अर्थ—वीर्य सोमात्मक, श्वेत वर्ण, चिकना, बल-पुष्टिकारक, गर्भ का बीज, शरीर का सारांश और जीव का उत्तम स्थान है।

यह एक श्वेत रंग का गाढ़ा द्रव होता है। इसमें से एक विशेष प्रकार की गंध आती है। कपड़े पर इसका धब्बा लगने से वह स्थान कुछ सख़्त-सा हो जाता है। इसकी प्रतिक्रिया कुछ क्षारीय होती है। मैथुन के समय यह ½ से १¼ तोले की मात्रा में निकलता है। इसमें शुक्र-कीट, जल, खटिक, स्फुर, सोडियम के लवण और अन्य लवण तथा कुछ सेलें पाई जाती हैं। शुक्र-कीटों की उपस्थिति संतानोत्पत्ति के लिये आवश्यक है।

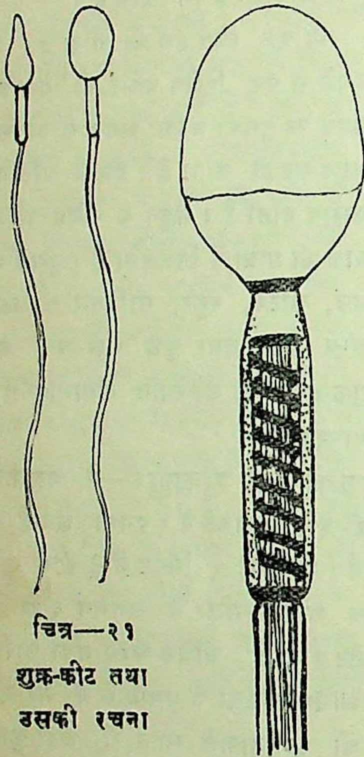
शुक्र-कीट या शुक्राणु[1]—ये अणुवीक्षण यंत्र द्वारा ही देखे जा सकते हैं। इनकी लंबाई १/३०० इंच होती है। शुक्र-कीट १ मिनट में १/८ इंच चलता है। प्रतिघन शतांश मीटर में लगभग ६ से ८ करोड़ शुक्र-कीट होते हैं। अधिक अम्ल तथा क्षारीय द्रव्य और अधिक उष्णता के प्रभाव से ये मर जाते हैं। शरीर की उष्णतावाले स्थान में, जहाँ कुछ थोड़ा क्षारीय रस हो—जैसा कि गर्भाशय तथा डिंब-प्रणाली में होता है—ये १४ दिन तक जीवित रह सकते हैं। शुक्राणु १४-१५ वर्ष की आयु में बनने आरंभ हो जाते हैं, परंतु उस समय वे उत्तम संतानोत्पत्ति के योग्य नहीं होते। २०-२५ वर्ष की आयु में अच्छे शुक्राणु बनने लगते हैं (चित्र २१)।

सूक्ष्म रचना—शुक्राणु के निम्न-लिखित भाग होते हैं—सिर, ग्रीवा, गात्र, पुच्छ और अंतिम भाग। सिर चपटा और अंडाकार होता है और इसका अगला ⅔ भाग एक टोपी[2] से ढका होता है, जो सिरे पर बड़ी तीक्ष्ण होती है। ग्रीवा बहुत छोटी होती है, और इसमें दो केंद्र[3] होते हैं। गात्र की लंबाई

१. Bulbourethral glands २. Semen

१. Spermatozoon २. Head cap ३. Centriole

सिर के समान ही होती है। इसके मध्य में एक रेखा के सदृश तंतु१ रहता है, जिसके ऊपर एक और तंतु२



चित्र—२१
शुक्र-कीट तथा
उसकी रचना

चित्र २२

लिपटा होता है। इनके बाहर एक आवरण३ होता है, जो नीचे चपटा होकर४ समाप्त हो जाता है। गात्र के भीतर का सीधा तंतु नीचे, पुच्छ में से जाकर अंतिम भाग में समाप्त हो जाता है। पुच्छ के अंदर इस पर एक मोटा-सा आवरण भी होता है।

शुक्र के मूत्र-बहिर्द्वार से निकलने तक, मार्ग में, इसमें शुक्र-प्रणाली, शुक्राशय, अष्ठीला तथा शिश्न-मूल-ग्रंथियों के रस भी मिल जाते हैं; परंतु शुक्र-कीट केवल अंड से ही आते हैं।

युवावस्था के समय यौवन के अन्य बाह्य चिह्न भी दिखाई देते हैं, जैसे—दाढ़ी तथा मूछों का निकलना, कक्ष-तल तथा विटप-देश में लोमों की उत्पत्ति, स्वर का भारी हो जाना, अस्थियों तथा मांस-पेशियों की वृद्धि और जननेंद्रियों की पूरी वृद्धि होना।

जिन कारणों पर स्त्री में रजोदर्शन का शीघ्र या विलंब से आरंभ होना निर्भर है, उन्हीं कारणों पर पुरुष का युवावस्था को प्राप्त होना निर्भर है। वृद्धावस्था में शुक्र-कीटों का बनना धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है, परंतु किसी-किसी में बहुत बूढ़ी अवस्था में भी ये देखे जाते हैं। प्रायः ६० वर्ष के पीछे तो अवश्य ही रति-शक्ति जाती रहती है। कई बार वृद्धावस्था में अपूर्णांगी संतान उत्पन्न होती है।

सुश्रुत-संहिता में शुद्ध शुक्र के निम्न लक्षण लिखे हैं—

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च ;
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा।
(शरीरस्थान अध्याय २)

अर्थ—जो वीर्य सफ़ेद, पतला, चिकना, मधुर तथा शहद की-सी सुगंध-युक्त हो, तो उसे शुद्ध शुक्र समझना चाहिए। कई आचार्य तैल तथा शहद के समान वीर्य को शुद्ध कहते हैं।

शुक्र कामेन कामिन्याः दर्शनात् स्पर्शनादपि ;
शब्दसंश्रवणाद् ध्यानात् संयोगाच्च प्रवर्तते।
(भावप्रकाश)

अर्थ—कामदेव से पीड़ित होकर, स्त्री के देखने से, आलिंगन करने से, शब्द सुनने से, ध्यान करने से और संयोग से वीर्य निकलता है।

---

१. Axial filament २. Spiral fibril ३. Mitochondrial sheath ४. Annular disc

भगवद्भक्ति-आश्रम, रेवाड़ी

[श्रीयुत पं० आनंदीप्रसाद मिश्र "निर्द्वंद्व"]



इस पाश्चात्य युग में, जब कि चारो ओर पाश्चात्य राज्य-पद्धति, शिक्षा-दीक्षा, रीति-नीति, सभ्यता आदि की सर्वतोमुखी प्रभुता प्रसरित हो रही है, भगवद्भक्ति-आश्रम, रेवाड़ी-जैसी धार्मिक संस्थाएँ अल्प संख्या में दिखाई देती हैं। आजकल के नवीन विचारों और राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्शों के समय में उन मनुष्यों को, जिनको केवल शिक्षा ही से प्रेम नहीं है, बल्कि जो समस्त राष्ट्र को उठा हुआ, जाग्रत् देखना चाहते हैं, एक बार इस आश्रम को देखना अत्यंत आवश्यक है।

× × ×

यह आश्रम भारत की प्रसिद्ध राजधानी दिल्ली से ५० मील दूर बी० बी०. एंड सी० आई० रेलवे के रेवाड़ी-जंक्शन से पश्चिम, नारनौल-लाइन के निकट दक्षिण की ओर, 'रामपुरा'-नामक ग्राम के जंगल में, अब से लगभग १० वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था।

× × ×

रेवाड़ी या रेवतीपुर राजा रेवत की पुत्री के नाम पर बसाया गया था। रेवती का भगवान् कृष्णजी के बड़े भाई बलरामजी से विवाह हुआ था। इसी इतिहास-प्रसिद्ध स्थान के निकट रामपुरा के राव, कप्तान बलबीरसिंहजी ओ० बी० ई०, एम्० एल० सी० ने, जो एक वीर और विख्यात राजकुल से हैं, लगभग १००० बीघा भूमि आश्रम के नाम रजिस्ट्री कर दी है। और, अब वहाँ आश्रम के संस्थापक श्रीस्वामी परमानंदजी के उद्योग से जंगल में मंगल हो रहा है।



"भक्ति-आश्रम" के संस्थापक पूज्य स्वामी परमानंदजी महाराज

× × ×

इस प्रकार यह संस्था, जो इसके पूर्व एक छोटे-से स्थान पर स्थापित हुई थी, आज महती संस्था के रूप में परिणत हो गई है, जिसके उद्देश्य ये हैं—

(१) श्रीभगवान् की भक्ति का प्रचार करना।

(२) गो-रक्षा करना और उसके लिये गोचर-भूमि छुड़वाना।

(३) जंगलों में वृक्ष लगवाना और उसके बीच में जलाशय बनवाना।

(४) शिक्षा-प्रचार करना, जिसमें मनुष्य-मात्र विद्या-लाभ कर सके। और, प्राचीन प्रथा को फिर प्रचलित करना।

(५) बीमारियों के अवसर पर औषधियाँ बाँटना।

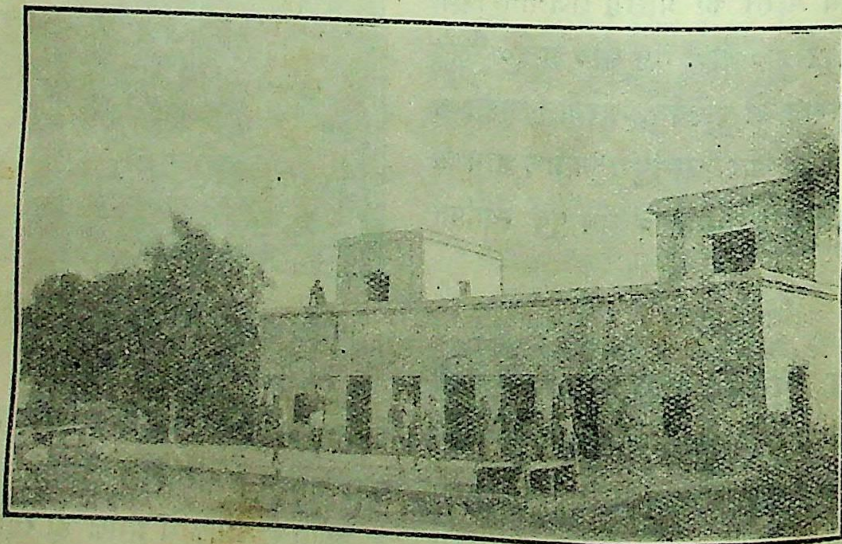
(६) आस-पास के ग्रामों के परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटाकर शांति स्थापित करना और प्रेम बढ़ाना।

(७) सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धार्मिक भाव जाग्रत् करना इत्यादि।

× × ×

क्या-क्या होता है?

ब्रह्मचर्याश्रम—प्रथम तो यहाँ ब्रह्मचर्याश्रम-विभाग है, जिसमें प्रत्येक जाति के बालक प्रविष्ट किए जाते हैं। विद्यार्थियों को कम-से-कम ५ वर्ष लगातार आश्रम में रहना पड़ता है। प्रत्येक बालक, जिसकी आयु ८ वर्ष से कम न हो, आश्रम में लिया जा सकता है। ब्रह्मचारी बड़ा सादा और परिश्रम का जीवन व्यतीत करते हैं। अपने लिये भोजन स्वयं मिल-जुलकर बनाते हैं। अपने बर्तन स्वयं साफ़ करते हैं। एक कोपीन-मात्र बाँधकर रहते हैं। कठिन-से-कठिन शारीरिक व्यायाम करते और काफ़ी खेल खेलते हैं। उनको संस्कृत, हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी में शिक्षा दी जाती है। सुयोग्य पंडित समस्त आवश्यक विषय



ब्रह्मचर्याश्रम की बिल्डिंग

बहुत बीमार हो गई। मेरे लिये चलना-फिरना भी कठिन हो गया। मुझे इस रोग की पीड़ा सहन करते हुए दो महीने के लगभग हो गए, और किसी ने मेरी बात भी न पूछी। कई-कई दिन के फ़ाक़े के बाद कभी-कभी कुछ उलटा-सीधा खाने को मिल जाता था। यही मुझ रोगिनी की सेवा होती थी।

"एक दिन रात के ६ बजे के क़रीब किसी नौकर ने आकर मेरे ससुर से कहा कि कोई महाशय बाहर से आए हुए आपसे मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं। ससुरजी झटपट दौड़कर मकान के फाटक पर पहुँचे। कोई आध घंटे के बाद वह लौटकर घर में आए, और मेरे बिस्तर के पास आकर खड़े हो गए। उनके साथ एक और महाशय भी थे। उन्हें मैंने बिल्कुल भी न पहचाना, और इसलिये घबराकर बिस्तर से उठकर बैठने की चेष्टा की, किंतु जब मैं उठ ही न सकी, तो ज्यों-की-त्यों फिर लेट गई।

"मैं बहुत दिन की बीमार थी। दुःख-पर-दुःख हृदय पर आक्रमण करते गए, अतः आधी पागल-सी हो गई थी, और इसी कारण अपने चचेरे भाई को भी न पहचान सकी।

"इस समय यही मेरे सर्वस्व थे। मैं इनको अपने सगे भाई की ही नाईं समझती थी। यह बहुत दिन तक मेरे माता-पिता के पास रहे थे। इसलिये हम दोनो को एक दूसरे का बड़ा ख़याल था। यह मुझसे बहुत दूर थे, इसलिये अभी तक इन्हें मेरी ओर से कोई समाचार न मिला था। न-जाने विधाता को एकाएक मुझ दुःखिना पर कैसे इतनी दया आ गई, जो किसी ने मेरे भाई से मेरे समाचार कह सुनाए।

"अब ससुरजी की कथा सुनिए। वह स्वाभाविकतः बड़े सज्जन थे, किंतु मेरी सौतेली सास ने उन्हें बहुत बिगाड़ रक्खा था। स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं और विशेषतः अनपढ़ स्त्रियाँ ! अपने वाक्-संयम से वे पुरुष के जीवन को लौट-पौट कर सकती हैं। मेरे ससुरजी भी मेरी सास द्वारा बिगाड़े गए सज्जन थे।

"अपने सीधे स्वभाव के कारण उन्होंने मेरे भाई को मुझे अपने साथ ले जाकर इलाज कराने की आज्ञा दे दी। भाग्यवश मेरी सास उस समय कहीं गई हुई थीं, और ससुरजी को फुसलानेवाला घर में कोई न था। मैं १० बजे के क़रीब अपने भाई के साथ चल दी। चलते समय मैंने ससुरजी के चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया, और अपने अपराधों की क्षमा माँगी। मेरे बिदा होते समय उनके नेत्र डबडबा आए, हृदय स्नेह से भर गया। किंतु अपनी नवविवाहिता पत्नी के डर के कारण वह मुझे अपने घर रखकर इलाज कराने में समर्थ न थे। वहाँ से चले आने के बाद मैं एक अस्पताल में इलाज के लिये रख दी गई। वहाँ निस्संदेह मेरी बहुत सेवा की गई, और मैं ६ महीने की कठिन पीड़ा सहन करके अच्छी हो गई। अच्छे होने के बाद मैं फिर अपनी सुसराल भेज दी गई। वहाँ जाना क्या था कि मृत्यु का सामना करना था। मेरी सास ने मुझे मार-मारकर अधमरा कर दिया, और ताने देकर, मेरे भाई और मुझपर दोष लगाकर मुझसे घर से निकलकर भाई ही के यहाँ रहने को कई बार कहा। जब मैंने देखा कि सत्य ही मेरा सुसराल में रहना असंभव है, तो मैं आज रात को १० बजे के क़रीब चुपके-से घर से निकल आई। इन दुःखों से पागल मैं इधर-उधर घूम रही थी, और विचारती थी कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कुछ थककर आपके मकान के दरवाज़े पर बैठ गई थी कि आपने मुझे देखकर मेरे ऊपर इतनी दया की।"

निस्संदेह वह बड़े घर की स्त्री मालूम पड़ती थी, और मुझे उसकी कथा अक्षरशः सत्य प्रतीत हुई। यह तो सभी जानते हैं कि हिंदू-जाति में विधवाओं का कितना अपमान होता है, और उन पर कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं, अतः उसकी यह कथा मुझे विश्वास करने योग्य ही प्रतीत हुई। मैंने यह सब घटना सुनकर मन में विचारा कि या तो इसका विवाह करा दिया जाय या इसे पढ़ा-लिखाकर कहीं नौकरी कर

लेने का उपाय बता दिया जाय। यह विचार हृदय में आ रहा था कि एकाएक घड़ी का अलार्म बजा, और ऊपर से उतरकर माताजी नीचे इसी कमरे में आ पहुँचीं। वह उसे देखकर एकाएक चौंक उठीं, किंतु मैंने उनसे सब घटना ज्यों-की-त्यों कह सुनाई। उनके मुख पर प्रसन्नता के भाव देखकर मेरे भाग्य जाग उठे। मा को उसके साथ मेरा व्यवहार देखकर बड़ा हर्ष हुआ, और उन्होंने स्वयं उसकी सहायता करने का विचार किया।

ऊषा एक परम सुंदरी कन्या थी। उसकी आयु इस समय केवल १४ वर्ष की थी। वह पढ़ी-लिखी कुछ भी न थी। केवल थोड़ी-सी हिंदी-भाषा जानती थी। पढ़ी-लिखी तो वह न थी, किंतु उसमें स्वाभाविक चातुर्य और पवित्रता थी। उसकी पवित्रता ने उसे विवाह करने की आज्ञा न दी, इसलिये हम सबने उसके पढ़ने-लिखने का अच्छा प्रबंध करके अपने पास रख लिया। किंतु उसे हम लोगों की सहायता में संतोष न था। ग्लानि और संकोच से उसका कोमल हृदय मानो फटा पड़ता था। उसका हृदय अब तक अपने दुर्भाग्य के दुःख से दुखी था, किंतु अब एक और नई वेदना थी, जो संकोच की वेदना थी। यह पीड़ा उसके चंद्र-से उज्ज्वल मुख को सर्वदा मलीन रखती थी। अस्तु। एक दिन प्रातःकाल उठते ही मैंने उसे अपने कमरे में न पाया। घर-भर ढूँढ़ डाला, किंतु ऊषा का कोई चिह्न भी न मिला। हारकर मैं फिर आकर अपने कमरे में बैठ गई। एकाएक मेरी दृष्टि पास ही मेज़ पर पड़े हुए एक काग़ज़ पर जा पड़ी। यह ऊषा का अंतिम पत्र था। देखकर कुछ हृदय शांत हुआ, किंतु पढ़कर मुझे कुछ भी संतोष न हुआ। उसमें उसने केवल 'फ़्रेयरवेल' लिखकर मुझे बहुत-बहुत 'थैंक्स' दिए थे। इससे मेरा हृदय व्याकुल हो उठा, किंतु मैं कर क्या सकती थी। ऊषा को अपने मान का पल-पल पर ध्यान था, इसलिये वह मेरी सहायता स्वीकार करने में संतुष्ट न थी।

(२)

वसंत-ऋतु के आगमन के साथ-साथ हम लोग हरद्वार पहुँचे। हम लोगों को वहाँ रहते थोड़े ही दिन हुए थे कि वसंत-पंचमी के दिन मैं अकेली घूमने निकली।

सूर्यास्त का समय था। आकाश में लाली छाई थी। जिधर दृष्टि पड़ती थी, प्रकृति की मनोहरता और सौंदर्य देखकर हृदय उछला पड़ता था। मैं मार्ग में मंद-मंद चाल से प्राकृतिक शोभा देखती जा रही थी। वृक्षों को हरा-भरा देखकर कुछ ईर्षा-सी उत्पन्न होती, और मैं झट उनके फूल-पत्ते तोड़ लेती। ईर्षा का कारण थी मेरे हृदय की पीड़ा। मैं ऊषा के चले जाने के बाद कभी प्रसन्न नहीं रही। व्याकुलता की ज्वाला से हृदय दग्ध हुआ जाता था, और इसलिये मैं किसी को भी प्रसन्न नहीं देख सकती थी। मनुष्य की तो बात क्या, इन वृक्षों में इतनी प्रसन्नता और उत्साह के भाव नवीन फल-फूल और पल्लवों के रूप से झलकते देखकर मैं ईर्षा और द्वेष की ज्वाला से जल उठी, और प्रकृति पर अपना कुछ वश न समझकर वृक्षों को उजाड़ कर देने में ही संतुष्ट थी।

अपने भाग्य को बुरा-भला कहती जा रही थी कि एकाएक कुछ देखकर चौंक उठी। आश्चर्य से हृदय शून्य हो गया।

ओह! क्या सचमुच यह ऊषा है, अथवा उसका प्रतिबिंब। हृदय से ऊषा ही बसती है, अतः यह केवल मेरी भावनाओं से गढ़ित ऊषा की छाया है।

ऊषा! तुम यहाँ कैसे आ सकती हो? असंभव! नितांत असंभव!! नहीं, नहीं, यह ऊषा की छाया नहीं है। यह सत्य ही कोई तपस्विनी है, जो तपोबल से ऊषा का-सा रूप धारण करके मुझे धोखा देकर दुखित करना चाहती है। नहीं, यह भी नहीं। कदाचित् यह ऊषा, और मेरी ही ऊषा है। संभव है, संसार से दुखित होकर उसने वैराग्य ग्रहण कर लिया हो।

वह दृश्य देखकर इसी प्रकार की अनेकानेक भावनाएँ हृदय में लहरों की भाँति उठीं और बैठ गईं। हृदय आश्चर्य से घबरा उठा था, इसलिये उस घबराहट में वह सुंदरी पहले मन की भावनाओं के कारण केवल ऊषा की छाया ही मालूम पड़ी। ज्यों-ज्यों मेरी घबराहट कम होती गई, त्यों-त्यों उसमें सचमुच की ऊषा के चिह्न प्रकट होने लगे, और अंत में हृदय में कुछ विश्वास-सा हो गया कि यही मेरी ऊषा थी।

मैं गंगाजी के तट पर टहलती जा रही थी कि एक वट-वृक्ष को देखकर मैं उसकी लटकती हुई जटाएँ तोड़-तोड़कर भूमि पर फेंकने लगी। घूमकर देखा, तो उसी वृक्ष के तले, थोड़ी-सी जगह में, मुझसे कुछ दूर, कुछ स्त्रियाँ बैठी आपस में धीरे-धीरे बातचीत कर रही थीं। उनके मुखों पर कुछ तेज-सा था। अंग-अंग में पवित्रता, नम्रता और विनय ही झलकती थी। यद्यपि सब सुंदरी न थीं, तथापि उनमें कुछ आकर्षण-शक्ति-सी थी, कुछ जादू-सा था, जिससे वे दर्शकों का मन हर लेती थीं। श्रृंगार करना मानो वे जानती ही न थीं।

उन्हीं के बीच में एक परम सुंदरी कन्या को बैठी देखकर मैं चौंक उठी थी। उसके अंग-अंग में विधाता ने कूट-कूटकर सौंदर्य, मनोहरता और कोमलता भरी थी। एक गेरुए रंग की साड़ी ने मानो उसका रूप चौगुना कर दिया थी। आभूषण उसके शरीर पर एक भी न था। उसके कोमल, रक्त ओष्ठ मानो नवीन लाल पल्लव थे। उसकी कोमल भुजाएँ मानो नवीन शाखाएँ थीं। उसकी मधुर मुसकान मानो तुरंत के खिले हुए फूल थे। उसके, भोले और चंचल नेत्रों ने मृग और खंजन दोनों को लज्जित कर दिया था। उसकी उलझी हुई वेणी ने नागिन का सौंदर्य छीन लिया था। उसकी भौं की मड़ोर ने कामदेव के धनुष को भी लज्जित कर दिया था। उसका यह अनोखा सौंदर्य देखकर और उसकी आयु का अंदाज़ा करके मैं उसे वैरागिनी के रूप में देखकर सहम गई थी। इसके अतिरिक्त वह सौंदर्य तो मेरी ऊषा का-सा था, और इसलिये मुझे अपनी ऊषा का स्मरण हो आया।

कुछ देर तक मैं चुपचाप खड़ी सोचती रही। फिर उनके पास जाकर उन्हें आदर-पूर्वक प्रणाम करके वहीं भूमि पर बैठ गई। मुझे देखकर सब हर्ष-पूर्वक मेरा स्वागत करने लगीं, किंतु उस सुंदरी ने मुँह फेरकर अपने आँसू चुपके से पोंछे, और मुझसे कुछ न कहा। मुझे देखते ही उसके मुख पर दुःख के भाव झलक उठे, और उसने दुखित होकर दृष्टि नीचे डाल ली। धीरे-धीरे मैंने उसके विषय में बात करना आरंभ की, और उसके इस अवस्था में वैराग्य का आश्रय लेने का कारण पूछा। उसकी एक सहवासिनी ने सब वृत्तांत कह सुनाया, और मैं हर्ष और दुःख से मिश्रित व्याकुलता से घबरा उठी। निस्संदेह वह मेरी ऊषा थी। मैंने उससे फिर अपने साथ चलने को कहा, और उसने दुखित हृदय से लंबी श्वास लेकर कहा—"अच्छा!"

थोड़ी देर तक मैं उससे कुछ बातें करती रही, किंतु उसके मुख पर असह्य वेदना के भाव झलकते देखकर मैं बड़ी व्याकुल हो रही थी। मेरी ऊषा मुझे बहुत प्यार करती थी, किंतु उसे अपने मान का इतना ध्यान था कि वह मेरी सहायता स्वीकार करने को तैयार न थी।

थोड़ी देर बाद वह गंगाजी में स्नानार्थ उतरी। जल में प्रवेश करते ही उसने मेरी ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखा, और मुझे नम्रता-पूर्वक प्रणाम किया। मैंने दुःख से आँखें नीची कर लीं। एक मिनट के बाद जब ऊपर देखा, तो मेरी ऊषा न दिखाई पड़ी।

आह! वह करुणा-भरी दृष्टि मैं अब तक नहीं भूलती। उसकी वे आँसू-भरी आँखें और वह दुःख-भरी दृष्टि स्मरण करते ही शरीर शून्य हो जाता है, हृदय फटने लगता है। किंतु कुछ वश नहीं चलता। यही हृदय में आता है कि विधाता को इंसाफ़ करना नहीं आता।

(कुमारी) चंद्रा जौहरी

× × ×

२. अमोलक कवि

हिंदी में वीर काव्यों की अत्यंत न्यूनता है, परंतु शृंगार-रस की इतनी भरमार है कि संभवतः भू-मंडल की किसी भाषा के साहित्य में इतनी प्रचुरता दृष्टि-गोचर न होगी। इससे विदित होता है कि भारत में विलासिता का कितना प्राधान्य रहा है, और उसी का यह फल है कि हम लोग पराधीनता की पाश में ऐसे जकड़े जा चुके हैं कि निकलना असंभव नहीं, तो दुस्साध्य अवश्य हो रहा है। अब भी जनता की अभिरुचि शृंगार-रस की ओर ही अधिक ढलती हुई प्रतीत हो रही है। वीर-रस-पूर्ण काव्य तथा देश-प्रेम को जाग्रत् करनेवाले भाव बहुत ही न्यून मात्रा में प्रकाशित हो रहे हैं। हिंदी की अपेक्षा बँगला, मराठी, गुजराती तथा दाक्षिणात्य वर्तमान साहित्य कहीं अधिक परिष्कृत और देश-प्रेम को विकसित करने-वाला है। हिंदी की वर्तमान मासिक पत्रिकाओं को इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। हिंदी-साहित्य के वीर काव्य उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, अतः उनमें कुछ भी वृद्धि होना हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये अवश्य हितकर होगा। अतः पाठकों के मनोरंजनार्थ ऐतिहासिक विवरण के साथ अमोलक कवि-कृत एक काव्य से कुछ उद्धरण देना यहाँ अनुपयुक्त न होगा। इस काव्य का नाम पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर 'ख़ाँ ख़वास की कथा' दिया हुआ है।

काव्य के प्रारंभ में ही ख़ाँ ख़वास को शेरशाह का पुत्र बतलाया गया है। कवि के शब्दों में ही अव-लोकन कीजिए—

दिल्ली-तखत पै पादशाह है शेरशाह अनूप ;
तिहि गृह-विषे इक हुती बेगम बहुत सुंदर रूप।
इक रोज ढिग पदशाह के सेज विराजे सोइ ;
तिहि समै निकस्यौ वाइका, सो रही लज्जित होइ।
सुनि कोपियो पतसाह, घर ते दई बेगि निकारि ;
सूबे को सौंपी नार सो, जो हुतो चिरबेदार।

दोहा

गरभ-सहित सो सुंदरी सूबे के इसथान ;
ऐसे समा बितावती, भावी अति बलवान।
जबै मास पूरन भए, तब ही भई प्रसूत ;
तास समै उतपत भयौ खान खवास सपूत।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है ख़वास ख़ाँ शेर-शाह का पुत्र था। एक बार खेलते हुए शेरशाह ने उसे देखा, तो बहुत प्रसन्न हुआ, और उसे बुलाकर शिरोपाव इत्यादि दिया तथा पंज हज़ारी मंसब करके शाही सरदारों में रख लिया। बयाना (भरतपुर-राज्य) में उस समय एक राजपूत रानी राज्य करती थी। वह बड़ी चतुर और बहादुर थी। दिल्ली को राज-कर नहीं देती थी। इस पर शेर-शाह ने क्रोधित होकर मीरख़ाँ सरदार को सेना के साथ बयाना भेजा; परंतु वह हार गया। मीरख़ाँ पकड़ा गया। रानी ने उसके नाक-कान कटवाकर छोड़ दिया। इस युद्ध का वर्णन भी कवि के ही शब्दों में पढ़िए—

घायल फिरत एक कर करवाल लिए,
एक परे बेसँभार, अंग नाहिं फरकै ;
लोटत फिरत एक रकत लपेटे अंग,
एक खेत भरो देख भागे प्रेत डरकै।
गाजत रँगीले एक सनमुख चेत-भरे,
सूरन प्रचारैं, पाउँ आगे चलैं धरकै ;
गज-दल गाहि, असदल पै परत धाय,
मारिकै रथीन बिरथी सु डारे करकै।

कितना ओजस्वी और वीरता-पूर्ण वर्णन है कि कायरों में भी नव-जीवन का संचार हो जाता है!

कवि ने रानी द्वारा मीरख़ाँ के नाक-कान काटे जाने के कारण रानी का नाम 'नकटी' करके उल्लेख किया है, जोकि उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। संभव है, तत्कालीन मुसलमान-समाज ने चिढ़कर रानी का यह नाम रख दिया हो। अमोलक कवि मुसलमानी दरबार में था, अतः उसने भी रानी के लिये इसी 'नकटी' नाम का प्रयोग करना उचित समझा होगा। स्वामी को प्रसन्न करना कवि अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे। बहुत थोड़े कवि स्पष्टवक्ता हुए हैं, जो स्वतंत्र सम्मति

प्रकट कर देते हों। बादशाह ने मीरख़ाँ के पीछे और भी कई सरदारों को भेजा; परंतु सब हारकर लौट आए।

एक बार बादशाह ने दरबार में बयाना की चर्चा चलाई। उस समय ख़वासख़ाँ भी दरबार में था। उसने स्वयं बयाना जाने की इच्छा प्रकट की। बादशाह ने चलती बार ख़वासख़ाँ को जो आदेश दिया था, उसे भी सुनिए—

सवैया

शाह कहै, सुन खान खवास,
तू जाइ महादल संग लै भारो;
जीति पहाड़, उखारिकै कोट कों,
सो नकटी गहि भूमि पछारो।
जीति लिए उमराइ घने,
तिनि से कर ही गढ़ देखि करारो;
बेगि चढ़ौ, तुम ढील तजौ अब,
मो मन कौ सब ताप निवारो।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि बादशाह बयाना के लिये कितना चिंतित था।

जब ख़वासख़ाँ बयाने के समीप पहुँचा, तो रानी से कहला भेजा कि मुझसे युद्ध करने के लिये शीघ्र आओ। रानी ने शीघ्रता से अपनी सेना सजा ली, और मैदान में जा डटी। दोनो ओर से घमासान युद्ध होने लगा। इस युद्ध का दिग्दर्शन भी अपने पाठकों को कराना उचित प्रतीत होता है। अमोलक कवि ने इसका बड़ा ओजस्वी वर्णन किया है—

मार मची रन तोपन की, बहु भाँति जमूरन जंग मचायो;
काँपि उठी धरनी सुनिकै धुनि और गुँबाह गुँबार न पायौ।
उत उमराय बनाय कहैं, गज-बाजि गिरे, दल पाइक धायौ;
मास निहार कलोल करैं अरु भूत-पिसाचन मोद बढ़ायौ।

और भी एक उदाहरण लीजिए—

उत सूरे रजपूत सिंह-ज्यों सम्मुख धावैं;
गहि बरछी, तरवार सत्रु-तन माहिं लगावैं।
बजै सार सों सार, मार माची तहँ भारी;
फटे सुंड गज फिरैं, देखि लागैं भयकारी।
रथ गिरैं, कटैं-मारैं रथी, रुंड-मुंड धरती मिली;
बहु श्रोण परयौ या खेत में, मानों सरिता है चली।

इस प्रकार प्रचंड युद्ध के पश्चात् रानी की सेना विचलित हो गई, और मैदान छोड़ भागी। विजयश्री ने ख़वास ख़ां के गले में माला पहनाई, और खेत उसके हाथ रहा। जब रानी ने अन्य कुछ उपाय न देखा, तो वह ख़वास ख़ां के कैंप में पहुँची, और उसे समझाया कि तुम बयाने चलो, मेरे पास अतुल धन-संपत्ति और ऐश्वर्य है, कोई संतान भी नहीं, अतः मैं तुम्हें पुत्रवत् मानूँगी, और तुम वहाँ रहकर आनंदपूर्वक राज्य का संचालन करना। ख़वास ख़ां प्रलोभन में आ गया। वह बयाना-गढ़ में रहने लगा। उधर शेरशाह का शरीरांत हो गया, और सलेमशाह गद्दी पर आसीन हुआ।

विदित होता है, सलेमशाह और ख़वास ख़ाँ में प्रारंभ से ही कुछ अनबन थी। कवि का संकेत यही भाव प्रदर्शित करता है। यथा—

"करि हौं सलाम न सलेम कों, यह निश्चय मन में गह्यौ।"

इतना निश्चय करने के पश्चात् ख़वास ख़ाँ बयाने में ही ठहरा रहा। सलेमशाह ने एक बार अपने प्रिय मंत्री को महल में बुलाया। उसे देखकर बेगम मोहित हो गई। इससे आगे की घटना बिल्कुल वैसी ही है, जैसी हमीर-हठ में वर्णित है। बेगम ने सलेमशाह से मंत्री की शिकायत की, तो बादशाह ने पकड़कर मार डालने की आज्ञा दे दी।

मंत्री बेचारा वहाँ से भागकर ख़वास ख़ाँ की शरण में गया। जब बादशाह को समाचार मिला, तो बयाने पर चढ़ाई कर दी। वहाँ पर बादशाही सेना और ख़वास ख़ाँ के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध का विवरण भी कवि के ही शब्दों में अवलोकन कीजिए—

कर की कमान असमान रही उभयन,
थहरि-थहरि करि काँपति जमीन है;
बोलत पहाड़ कड़काड़ भरी भोकेन के,
आखर के बादर होवत जात हीन है।

है हल है हल हहलामति इहल पति,
सूरज तपत डूब रेतन में मीन है ;
परयौ घमसान कोऊ, सकै न बखानि जंग,
आनिकै मैदान जो खवासखान कीन है।

इस युद्ध का कवि ने बड़े अच्छे ढंग से, कुछ विस्तार के साथ, वर्णन किया है। इसका प्रभावशाली वर्णन मानव-समाज के लिये अत्यंत हितकर है।

इस विजय के पश्चात् और भी कई इलाकों पर उसने विजय प्राप्त की। तब बादशाह ने सलाह करके राव अमरसिंह को सौगात लेकर, मेल करने के लिये, भेजा। राव ने ख़वासख़ाँ को बहुत प्रकार से समझाया, और बादशाह के पास ले आया।

सो०—निकट नगर के जाइ, खाँ खवास ठाढ़ो भयो ;
कह्यौ राइ ने जाइ, आयौ गाढ़ौ गढ़पती।

सलेमशाह ने ख़वासख़ाँ को बाग़ में ठहरने की आज्ञा दी, और अपनी सेना भेजकर उस बाग़ का चारो ओर से घेरा डलवा दिया। इसका वर्णन भी कवि के ही शब्दों में पढ़िए—

इज्न दियो सब लसकर कों,
तुम जाइके बाग़ में कीजियो घेरा ;
कर्महू बख्श खुदावंद कीनो है,
बाज के थान में आयो बटेरा।
खान खवास को खत्र नहीं कछु,
चारि दिसा भयो धुंध अँधेरा ;
भे दल-बादल प्रबल बड़े,
कोऊ बाग में देत न पाउँ अगेरा।
अबल बिचार करै मन में बहु,
खान खवास है जंग कौ गाजी ;
बाग में नाग रह्यौ बसिकै,
जिहि हारऽरु जीति किए सब भाजी।
केहर सों मृगनी छालिकै,
छल यों छलकै छप है सब ताजी ;
सोवत आन जुआन लखौ तहँ,
आनिकै पाउँ गहौ इक पाजी।

इस प्रकार धोका देकर ख़वासख़ाँ का सिर उतार लिया गया। तब सलेमशाह ने अत्यंत आनंद मनाया।

जब अमरसिंह भाट को यह समाचार मिला, तो उसे बहुत दुःख हुआ, और शाही दरवाज़े पर उसने अपने पेट में कटारी मारकर और प्राणों का उत्सर्ग करके अपनी निश्छलता का परिचय दिया। यही नहीं, उसका परिवार भी वहीं समाप्त हो गया। इस प्रकार सात प्राणियों का बलिदान हुआ।

भाटों के संबंध का एक वर्णन और उनके मानसिक भावों का भी दिग्दर्शन कीजिए—

सोहं * के बाप सों पाप कियो,
कबौं चाप चढ़ाय न जंग करी ;
दल साजिकैं बाजि चढ्यौ न कबौं,
कबहूँ न नगारे पै डंक परी।
कबहूँ न कटक्कको मारि लियो,
यह ज्वानी अबैले बड़ी जु करी ;
शाह सलेम उठाइ लई,
जु खवास के साथ में भाटे करी।

इस प्रकार इस काव्य का दुःखमय अंत होता है।

यह एक प्राचीन पुस्तक डी० ए० वी० कॉलेज, लाहौर के लालचंद-रिसर्च-लाइब्रेरी से प्राप्त हुई थी। लेखक की भूल से इसमें बहुत-सी त्रुटियाँ हो गई हैं। एक स्थान पर "भनै नरसिंह लिखा जु जिलार" पद आया है, जिससे प्रतीत होता है कि अंतिम कुछ छंद नरसिंह कवि की रचना हैं। यह काव्य दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम में ख़वास ख़ाँ की बयाने पर विजय तक का वर्णन है, और दूसरे में शेष विवरण दिया गया है। यह ऐतिहासिक काव्य कुल ३०० छंदों में समाप्त हुआ है। शेरशाह-नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ से केवल कुछ बातें ही इस घटना से मेल खाती हैं—

* 'सोहं'-शब्द से प्रतीत होता है कि सोहन अमरसिंह का पुत्र था।



मान का ध्यान

(१)



आ
षाढ़ के कृष्ण-पक्ष की अँधेरी रात्रि थी। नन्हीं-नन्हीं बूँदें पड़ रही थीं। वह भीषण कालिमा मानो खाने को दौड़ती थी। आधी रात का समय था। बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर कलेजा काँप [रह]ा था। उसी समय एकाएक बादलों की कड़ी [गर्ज]न से चौंककर मैं कमरे के बाहर निकल आई, [औ]र सड़क की ओर के बरांडे में जाकर खड़ी [हो] गई।

मुझे वहाँ खड़े अभी पाँच मिनट भी न हुए थे [कि] मेरा हृदय, जो इस प्राकृतिक दृश्य से कुछ भय-[भी]त और कुछ उदास-सा था, एकाएक आश्चर्य [औ]र करुणा से लबालब हो उठा! हृदय के भावों [में] ऐसा अचानक परिवर्तन होने का कारण सड़क [पर] मंद-मंद चाल से जाती हुई एक कन्या थी।

कालिमा बड़ी गाढ़ी थी। अतः मुझे ठीक से पता भी न चलता कि सड़क पर जाती हुई यह कौन व्यक्ति है—स्त्री अथवा पुरुष। किंतु बिजली की एकाएक चमक ने उसके मुख पर क्षण-भर के लिये काफ़ी उजेला डाल दिया था, और मैंने उसी क्षण देख लिया कि वह एक भटकी हुई-सी नवयौवना थी। यद्यपि उसके रूप-रंग का जाँचना इस पल-भर की बिजली की चमक में नितांत असंभव था, तब भी मैंने यह समझ लिया कि वह एक सुंदरी कन्या थी।

उसे ऐसे भयानक समय में अकेली जाते देख मेरे हृदय में एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा विचार आता जा रहा था कि फिर बिजली चमकी, और मैंने देखा कि वह मेरे मकान के दरवाज़े पर विश्रामार्थ बैठ गई है। इस समय बिजली का तड़पना मुझे ज़रा भी भयानक प्रतीत न होकर बड़ा प्रिय लगा। कारण, उसने मेरी उत्सुकता को कुछ शांत किया था।

उस कन्या को अपने, इतना निकट देखकर मैंने सोचा कि नीचे जाकर, दरवाज़ा खोलकर उससे

उसका वृत्तांत पूछूँ, और उसकी भरसक सहायता करूँ। किंतु आह ! स्त्री-जाति कभी भी स्वतंत्र नहीं। मैं भला नीचे जाकर, दरवाज़ा खोलकर रात्रि के सुनसान में कैसे किसी से बात करती। यद्यपि वह कन्या थी, और उससे बात करना मेरे लिये कोई दोष न था, तथापि उस समय घर का दरवाज़ा खोलना मेरे लिये बड़ा भारी दोष था।

इसी विचार ने मेरे काम में कुछ देर तक बाधा डाली, किंतु स्त्रियों का हृदय बड़ा करुणामय है। भला मैं उस भटकी हुई कन्या से विना उसका वृत्तांत पूछे कैसे संतुष्ट रह सकती थी।

यदि माता-पिता से पूछती, तो कदाचित् वे मना कर देते। इसी भय से मैं चुपचाप, चोरों की भाँति, नीचे आई, और आकर धीरे-से दरवाज़ा खोलकर मैंने उससे शीघ्र ही अंदर चले आने को कहा। पहले तो वह कुछ झिझककर वहीं बैठी रही, किंतु मेरे विश्वास दिलाने पर कि उसे कोई हानि न पहुँचेगी, वह अंदर चली आई। मेरी जान में जान आई। 'अब क्या, जितनी देर चाहूँगी, बातें करूँगी।', यह सोचकर हृदय का धड़कना बंद हुआ, और मन में उत्सुकता ही अकेली रह गई।

उसके घर के अंदर आ जाने के बाद मैं उसे नीचे ही एक अकेले कमरे में ले गई, और लैंप जलाकर उसे आसन दिया। अब रोशनी में देखने से ज्ञात हुआ कि उसके समस्त कपड़े पानी में तर थे। मैंने यह देखकर झट अपने कपड़े लाकर उससे कपड़े बदलने को कहा। उसकी दृष्टि में करुणा और कृतज्ञता के भाव झलक उठे। किंतु फिर भी वह दृष्टि दुःख-भरी थी। उसका वृत्तांत विना पूछे ही मैं समझ गई थी कि वह कोई अत्यंत दुखी विधवा थी।

अस्तु, अब मैंने उससे पूछा कि "तुम्हारा शुभ नाम क्या है, और तुम इस प्रकार इस अँधेरी रात में अकेली घर से बाहर क्यों घूम रही हो ?"

वह—"बहन, मेरा नाम ऊषा है, और कथा बड़ी दुःखमय है। आप मेरी कथा सुनकर क्या करेंगी ? आपको मेरी कथा से केवल दुःख होगा, और कुछ नहीं।" यह कहते-कहते उस अभागिनी की निर्मल आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

मैं—"नहीं, कदापि नहीं, मैं केवल दुखी ही नहीं होऊँगी, वरन् समुचित सहायता का भरसक प्रयत्न भी करूँगी। तुमको इस प्रकार, इस समय घर में बुलाने का तात्पर्य केवल तुमसे बातें करना नहीं है। कृपया अपनी समस्त कथा, विना किसी संकोच के, कह सुनाओ।"

ऊषा—"बहन, इस समय तुम मुझ दुःख-सागर में डूबती हुई को नौका के सदृश हो, अतः मैं अपनी कथा कहती हूँ, सुनो—मैं एक बड़े ज़मींदार की कन्या हूँ, और एक बड़े धनी पुरुष की पुत्र-वधू। अभाग्यवश मेरे पति मेरे विवाह के साल-भर ही बाद मुझ अभागिनी को सदा के लिये असहाय करके चल बसे।" यह कहते-कहते उसका कंठ गद्गद हो गया, और आँसुओं की धारा ने उस रात के मेह को भी लज्जित कर दिया! रोते-रोते वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। मैं जैसे-तैसे कुछ दवाइयाँ सुँघाकर उसे होश में लाई। फिर यह सोचकर कि कदाचित् यह भूखी-प्यासी भी हो, उसे कुछ जलपान भी कराया। इस समय रात के २ बज चुके थे। जब वह कुछ सँभली, तो उसने फिर कहना आरंभ किया—"मेरे विधवा होने के दो या तीन महीने बाद मेरे दुःख से दुखी माता-पिता भी परलोक सिधार गए, और मैं असहाय अबला दुःख झेलने को ज्यों-की-त्यों बैठी हूँ।" वह मुझसे अपनी कथा कह रही थी, किंतु उसका अश्रु-प्रवाह पल-भर को भी न रुकता—"अस्तु, मैं मा-बाप की एकलौती लड़की थी। कोई भाई-बहन न था, इसलिये माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् मायके में मेरा कोई न रहा। इधर सुसराल में मुझे अपनी सौतेली सास द्वारा बात-बात पर ताने और गालियाँ ही मिलतीं। कभी-कभी मेरी सास मुझे मारने भी लगती थीं। खाना, कपड़ा, कुछ ढंग का न मिलता। इसी प्रकार जैसे-तैसे एक महीना सुसराल में रहकर व्यतीत किया था कि मैं एकाएक

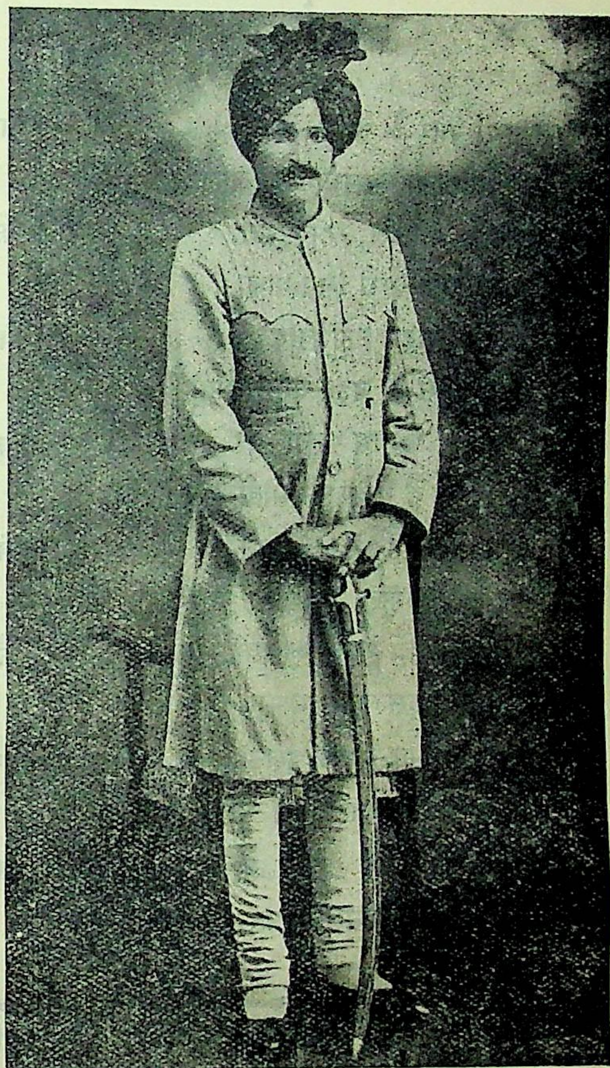
और उसके निकट किसी भी ग़रीब प्राणी की हिंसा नहीं की जाती। बहुत-से मोर यहाँ अभय होकर विचरते रहते हैं। छोटे-छोटे पत्ती, तोते, कोकिला, भाँति-भाँति की चिड़ियाँ भी यहाँ पर काफ़ी संख्या में रहती हैं।

प्रेस—आश्रम का अपना निजी प्रेस है, जिसका नाम है—भक्ति प्रेस। इससे विविध धार्मिक ग्रंथ समय-समय पर छपकर प्रकाशित होते हैं। आश्रम से "भक्ति" नाम की एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। इस पत्रिका का संपादन श्रीस्वामी कृष्णानंदजी व श्रीभूमानंदजी ब्रह्मचारी बड़ी योग्यता से कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त आश्रम में एक औषधालय, एक पुस्तकालय एवं एक अतिथि-शाला भी है।

× × ×

आश्रम के प्रबंध के लिये एक प्रबंध-कारिणी कमेटी है, जिसके सभापति रावबहादुर, कप्तान राव बलवीरसिंहजी और मंत्री श्रीनंदकिशोरजी दादरी हैं। इस प्रकार यह आडंबर-शून्य संस्था चुपचाप अपना काम कर रही है। हम अपने ढंग की इस एक-मात्र संस्था का हृदय के अंतस्तल से स्वागत करते हैं।



"भक्ति-आश्रम" के सभापति
रावबहादुर, कप्तान राव बलवीरसिंहजी ओ० बी० ई०, एम्० एल्० सी०, जागीरदार, आनरेरी मजिस्ट्रेट

किसी का स्वागत

[पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"]

चौपदे

आज क्यों भोर है बहुत भाता,
क्यों खिली आसमान को लाली ?
किसलिये है निकल रहा सूरज,
साथ रोली-भरो लिए थाली ? १।

इस तरह क्यों चहक उठीं चिड़ियाँ,
सुन जिसे है बड़ी उमग होती ?
ओस आकर तमाम पत्तों पर
क्यों गई है बखेर यों मोती ? २।

पेड़ क्यों हैं हरे-भरे इतने,
किसलिये फूल हैं बहुत फूले ?
इस तरह किसलिये खिलीं कलियाँ,
भौंर हैं किस उमंग में भूले ? ३।

क्यों हवा है सँभल-सँभल चलती,
किसलिये है जहाँ-तहाँ थमती ?
सब जगह एक-एक कोने में,
क्यों महँक है पसारती फिरती ? ४।

लाल, नीले, सफ़ेद पत्तों में
भर गए फूल, बेलि बहली क्यों ?
झील, तालाब और नदियों में
बिछ गईं चादरें सुनहली क्यों ? ५।

किसलिये ठाट-बाट है ऐसा,
जी जिसे देखकर नहीं भरता ?
किसलिये एक-एक थल सजकर
स्वर्ग की है बराबरी करता ? ६।

किसलिये है चहल-पहल ऐसी,
किसलिये धूम-धाम दिखलाई ?
कौन-सी चाह आज दिन किसको
आरती है उतारने आई ? ७।

देखते राह थक गईं आँखें,
क्या हुआ, क्यों तुझे न पाते हैं ?
आ, अगर आज आ रहा है तू,
हम पलक-पाँवड़े बिछाते हैं ! ८।

अग्नि-पथ

[स्व० श्रीअनूपलाल, मंडल साहित्य-रत्न]

"कौन ?"

"मैं।"

"जनाब, आप ? इतनी रात को ! पर व्यस्तता क्यों ?"

"कहने का समय नहीं है।"

"कुछ भी तो कहो!"

"यही कि ......।"

"हाँ-हाँ, कहते चलो।"

"यात्रा करनी है।"

"यात्रा करनी है ?"

"हाँ।"

"कहाँ ? किधर को ?"

"किधर को !......अनंत की ओर।"

"अनंत की ओर ?......(स्तब्ध)—क्यों ?"

"क्यों, कहना पड़ेगा, मेरी रानी ! क्या तुझे नहीं मालूम ?"

"मुझे क्या मालूम !"

"मालूम होना चाहिए तुझे !"

"क्यों ? कैसे ?"

"क्योंकि तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो।"

"मगर, बतलाओगे तब न ?"

"हाँ, बतलाता हूँ।......बतलाना पड़ेगा ?"

"अवश्य, क्योंकि मैं जानूँगी कैसे ?"

"अच्छा, सुनो—मातृ-भूमि बलिदान चाहती है।"

"मातृ-भूमि ! और .....बलिदान !"

"हाँ, इसी की आवश्यकता है—परतंत्रता से मुक्त करने के लिये।"

"बलिदान के लिये तो कितने पड़े हैं, फिर तुम्हारी आवश्यकता ?"

"क्योंकि मैं भी उन कितनों में से एक हूँ।"

"एक से क्या होने को है ?"

"समष्टि भी तो एक-एक से ही बनी है !"

"तो निश्चय कर लिया है ?"

"हाँ।"

"......अच्छा, तो मेरा उपाय ?"

"छिः, उपाय सोचती है, पगली ! उपाय परमात्मा के हाथ है।"

"और, परमात्मा भी तो किसी के द्वारा ही मदद करते हैं।"

"माना। तो उपाय है !"

"बताओ।"

"तुम भी कार्य-क्षेत्र में उतर सकती हो।"

"समाज क्या कहेगा ?"

"कहने दो उसे। उसकी सुनता कौन है !"

"......"(स्तब्ध)

"क्यों ? मौन क्यों हो गईं ?"

"......अच्छा स्वीकार है।"

"तो जाने दो मुझे !"

"अच्छा, ज़रा बैठ जाओ।"

"बैठने का समय नहीं है सुंदरि !"

"मैं रोकती नहीं। मैं रोकूँगी नहीं।"

"तब जाने ही दो।"

"ओह! बाहर देखो—कैसा अंधकार है, कैसी भयावनी घटा!"

"यही ज्योतिर्मयी निशा है, मेरी परी, मेरे लिये। यही है कर्तव्य का अचूक अवसर।"

(चुंबन। गाढ़-आलिंगन।)

"आँसू क्यों? मेरी गिन्नी! आह! रो रही है!"

"आह! रोती नहीं। मोह......।"

"जाने दो मोह को! छोड़ो-छोड़ो इसे!"

(बिदा)

× × ×

"उमा!"

"दीदी!"

"कहाँ है भैया? कई दिनों से उनका पता नहीं मिलता!"

"मिलेगा भी नहीं, दीदी!"

"क्यों? क्यों? कहाँ गए हैं, उमा!"

"अनंत की ओर।"

"अनंत की ओर? क्यों उमा, अनबन तो न कर बैठी है तू? पगली है न!"

"अनबन! मैं और वह! फिर अनबन कैसी, दीदी!"

"यही कि... ।"

"आह! क्या कहती हो, दीदी!"

"तब?"

"तब क्या, दीदी! हम लोगों को अब बैठने का समय नहीं है।"

"तब हम लोगों को क्या करने को कहती हो, उमा?"

"कहूँगी।... मगर वचन देती हो?"

"........."

"स्तब्ध क्यों? बोलती क्यों नहीं, दीदी?"

"क्या बोलूँ?"

"यही कि वचन देती हो न?"

"कहो भी तो भला!"

"नहीं। पहले वचन तो दे लो।"

"(इतस्ततः)—अच्छा देती हूँ।"

"तथास्तु!"

"तथास्तु!"

"अच्छा, चलो, हम लोग एक नारी-समिति स्थापित करें।"

"नारी-समिति! क्यों? क्यों, उमा?"

"मातृ-भूमि का उद्धार करने को!"

"क्या करना पड़ेगा?"

"विलासिता दूर भगानी पड़ेगी! दीदी, देश के कार्य करने होंगे!"

"कौन-से कार्य? उमा!"

"भद्र अवज्ञा—पिकेटिंग।"

"अच्छा। कब से?"

"बस, आज से—नहीं, अभी से।"

"तथास्तु!"

× × ×

"उमा!"

"दीदी!"

"देखती हो, इधर पोस्टर में क्या लिखा है?"

"क्या लिखा है, दीदी! कहाँ?"

"इधर देखो, सामने दीवाल पर!"

(पढ़ती है)

"नैनी-जेल !" विजयकुमार वर्मा के साथ २५ स्वयंसेवकों को ढाई साल का कठोर कारागार-दंड।"

"आह !"......(पतन)

"यह क्या, उमा ? होश सँभालो ! यह माया कैसी ?"

(सचेत)—"कहाँ हूँ ? दीदी !"

"यहीं—अपने कर्तव्य-पथ पर !"

"कर्तव्य-पथ पर ! ... आह !"

"नहीं, स्वर्गीय सदन में।" वे जेल में हैं। ?

"आह ! उन पर क्या बीतती होगी ? दीदी !"

(स्तब्ध—मूर्च्छित)

"उमा ! उमा !! यह क्या ? विचलित क्यों ? छिः।"

(मूर्च्छा-भंग)

"इसका प्रतिकार ? दीदी !"

"कर्तव्य-पालन—विश्व-कल्याण !"

"विश्व-कल्याण मुझसे न होगा—न होगा, दीदी !"

"कायरता !...छिः, ऐसा न कहो, उमा !"

"पर एक बार उन्हें दिखा दो, बहन !"

"अच्छा, देखना। अभी देखो—दूकान पर ख़रीदारों की भीड़ है। चलो, चलें।

(साथ-साथ प्रस्थान)

× × ×

"हलो, विजयकुमार !"

"कौन ? आप !"

"हाँ। ख़ाना खा लो।"

"छिः।"

"ज़िद न करो ! देखो, बदन सूख गया !"

"सूखने दो।"

"फ़ायदा ?"

"मातृ-भूमि का उद्धार।"

"उद्धार ! चुप रहो !"

"फिर क्यों मुझसे बातें करते हो ?"

"पुलिस !"

"चुप ! ख़बरदार !"

(बहिर्गत)

× × ×

"कौन ?"

"श्रीमती उमा वर्मा।"

"क्या चाहटी है ?"

"मिलना !"

"किससे ?"

"श्रीमान् विजयकुमार वर्मा से।"

"कौन हो उसकी ?"

"अर्द्धां......।"

(विद्रूप-अट्टहास)

"छिः।"

"ठहरो।"

(भीतर प्रवेश)

× × ×

"हलो, वर्मा !"

"......।"

"तुम्हारी औरत देखना माँगटा है।"

"आने दो उसे !"

"मगर Hunger Strike बंद करना होगा।"

"कभी नहीं।"

"टो उसे देखने नहीं मिलेगा !"

"कह दो उसे जाने को !"

"औरट है, सुंदर है । देख लो । छोड़ो Strike !"

"कह दिया मैंने ।"

"फिर से सोचो ।"

"सोच लिया—समझ लिया । मैं नहीं देखना चाहता ।"

"पछटाना पड़ेगा !"

"हर्गिज़ नहीं ।"

"Foolish."

"चुप—!"

(प्रस्थान)

× × ×

"आज्ञा मिलती है ?"

"मिलेगी । मगर उसका Hunger Strike टोड़ाना पड़ेगा ।"

"मुझे ?"

"हाँ—टुमें !"

"……नहीं । यह मुझसे नहीं हो सकता !"

"नहीं हो सकटा ? टब देखने नहीं मिलेगा !"

"नहीं देखूँगी ।"

"तुम्हारा Husband है ! देख लो !"

"पर उनकी बात रखना मेरी Duty है ।"

"बडमास औरत ! Duty ?"

"खबरदार—Bloody !"

"कहाँ गया, दरवान, बाहर कर दो इस बडमास औरट को ।"

"ख़बरदार, एक पग बढ़ाया तो ! मैं ख़ुद जाती हूँ ।"

(प्रस्थान)

× × ×

"दीदी !"

"उमा !"

"यह जुलूस कैसा है ?"

"मत पूछो मुझसे ! चलो, हम लोग काम करें ।"

"नहीं । ज़रा पूछ तो लेने दो भला !"

"आह ! क्या करेगी पूछ कर !"

"नहीं, अभी-अभी आती हूँ !"

"अच्छा तो चलो, हम भी चलें ।"

(आगे बढ़ना)

× × ×

"यह जुलूस कैसा ?"

"क्या तुझे नहीं मालूम, शहीद विजय ने मातृ-भूमि……।"

"आह ! वि…ज…य !"

(धड़ाम—मूर्च्छित)

"उमा ! उमा !! यह क्या ?"

(सचेत)

"दीदी !"

"उमा !"

"ओह ! एक बार अंतिम दर्शन तो कर लेने दो !"

"अच्छा चलो, साथ-साथ ।"

(हँसती है)

"उमा !"

"दीदी ! आज मेरा सोहाग परिपूर्ण हुआ !

"धन्य हूँ मैं !"

(चिता-निर्माण)

"उमा !"

"दीदी !"

"देखो, धू-धू करती चिता की लपट इधर को आ रही है।"

"हटो।"

"हटने को कहती हो, दीदी !"

(हँसती है)

"हाँ-हाँ, हट, पगली !"

(धप् !!!)

"आह ! यह क्या किया, उमा !"

(रुदन)

× × ×

"कौन थीं यह ?"

"तुझे अब तक नहीं मालूम !"

"ज़रा बतलाएँ तो सही।"

"विजय बाबू को अर्द्धां......।"

"अर्द्धांगिनी !"

"विजय बाबू की जय, श्रीमती उमादेवी की जय, मातृ-भूमि की जय !"

अप्सरा

(सामाजिक उपन्यास)

[श्रीयुत पं० सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"]

(१५)



राजकुमार को नए कंठों के संगीत से कुछ देर तक आनंद मिलता रहा। पर पीछे से, कुँवर साहब के चले जाने के बाद, महफ़िल कुछ बेसुरी लगने लगी, जैसे सबके प्राणों से आनंद की तरंग बह गई हो, जैसे मनोरंजन की जगह तमाम महफ़िल कार्य-क्षेत्र हो रही हो।

गायिका कनक के संगीत का उस पर कुछ प्रभाव पड़ा था, पर विदुषी कुमारी कनक उसकी नज़रों में गिर गई थी। अज्ञात भाव से इसके लिये उसके भीतर दर्द हो रहा था। कुछ देर तक तो बैठा रहा, पर जब कनक भीतर चली गई, और थोड़ी ही देर में कुँवर साहब भी उठ गए, कनक बड़ी देर तक न आई, फिर जब आई तब बाहर ही से मा को बुलाकर उठ गई, यह सब देखकर वह स्टेज, गाना, कनक और अपने प्रयत्न की तरफ़ से वीतराग हो चला। फिर उसके लिये वहाँ एक-एक क्षण पहाड़ की तरह बोझीला हो उठा।

राजकुमार उठकर खड़ा हो गया, और बाहर निकलकर धीरे-धीरे डेरे की तरफ़ चला। बहूजी के मायके की याद से शरीर से जैसे एक भूत उतर गया हो, नशे के उतारे की शिथिलता थी। धीरे-धीरे चला जा रहा था। कनक की तरफ़ से दिल को जो चोट लगी थी, रह-रहकर नफ़रत से उसे और बढ़ाता, तरह-तरह की बातें सोचता हुआ चला जा रहा था। ज़्यादा झुकाव कलकत्ते की तरफ़ था, सोच रहा था कि इसी गाड़ी से कलकत्ते चला जायगा।

जब गढ़ के बाहर निकलकर रास्ता चलने लगा, तो उसे मालूम हुआ कि कुछ आदमी और उसके साथ आ रहे हैं। उसने सोचा, ये लोग भी अपने घर जा रहे होंगे। धीरे-धीरे चलने लगा। वे लोग नज़दीक आ गए। चार आदमी थे। राजकुमार ने अच्छी तरह नज़र गड़ाकर देखा, सब साधारण सिपाही दर्जे के आदमी थे। कुछ न बोला, चलता रहा।

हटिया से निकलकर बाहर सड़क पर आया, वे लोग भी आए। सामने दूर तक रास्ता-ही-रास्ता था, दोनो बग़ल खेत।

राजकुमार ने उन लोगों की तरफ़ फिरकर पूछा—"तुम लोग कहाँ जाओगे?"

"कहीं नहीं, जहाँ-जहाँ आप जायँगे।"

"मेरे साथ चलने के क्या मानी?"

"तारा बहन ने हमें आपकी ख़बरदारी के लिये भेजा था, साथ चंदन बाबू भी थे।"

"चंदन?"

"हाँ, वह आज की गाड़ी से आ गए हैं।"

राजकुमार की आँखों पर दूसरा पर्दा उठा। संसार अस्तित्व-युक्त और सुखों से भरा हुआ सुंदर मालूम देने लगा। आनंद के उच्छ्वसित कंठ से पूछा—"कहाँ हैं वह?"

"अब आपको मकान में मालूम हो जायगा।"

ये चारो उसी गाँव के आत्माभिमानी, अशिक्षित वीर, आजकल की भाषा में गुंडे थे, प्राचीन रूढ़ियों के अनुसार चलनेवाले, किसी ने रूढ़ि के ख़िलाफ़ किसी तरफ़ कदम बढ़ाया, तो उसका सर काट लेनेवाले, गाँव की बहुओं और बेटियों की इज़्ज़त तथा

सम्मान की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेवाले, अँगरेज़ों और मुसलमानों पर विजातीय घृणा की आग भड़कानेवाले, मलखान और ऊदन के अनुयायी, महावीरजी के अनन्य भक्त, लुप्त-गौरव क्षत्रिय ज़मींदार-घराने के सुबह के नक्षत्र, अपने स्वल्प प्रकाश में टिमटिमा रहे थे, अधिक जलने के लिये उमड़ते हुए धीरे-धीरे बुझ रहे थे। रिश्ते में ये तारा के भाई लगते थे। राजकुमार के चले जाने पर तारा को इनकी याद आई, तो जाकर नम्र शब्दों में कहा कि भैया, आप लोग चंदन के साथ जाओ, और राजकुमार को देखे रहना, कहीं टंटा न हो जाय। ये लोग चंदन के साथ चले गए थे। चंदन ने जैसा बताया, वैसा ही करते रहे। ख़ानदान की लड़की तारा अच्छे घराने में गई है, वहाँवाले सब ऊँचे दर्जे के पढ़े-लिखे आदमी हैं, इसका इन लोगों को गर्व था।

धीरे-धीरे गाँव नज़दीक आ गया। राजकुमार ने तारा का मतलब दूर तक समझकर फिर ज़्यादा बातचीत इस प्रसंग में उनसे नहीं की। चंदन के लिये दिल में तरह-तरह की जिज्ञासा उठ रही थी—वह क्यों नहीं आया, तारा ने सब बातें उससे ज़रूर कह दी होंगी, वह कहीं उसी चक्कर में तो नहीं घूम रहा, पर ये लोग क्यों नहीं बतलाते!

राजकुमार इसी अधैर्य में जल्द-जल्द बढ़ रहा था। मकान आ गया। गाँव के आदमियों ने दरवाज़े पर "बिट्टो-बिट्टो" की असंकुचित, निर्भय आवाज़ उठाई। तारा ने दरवाज़ा खोल दिया। राजकुमार को खड़ा हुआ देख स्नेह-स्वर से कहा—"तुम आ गए?"

"सुनो" एक ने गंभीर कंठ से तारा को एक तरफ़ अलग बुलाया।

तारा निस्संकोच बढ़ गई। उसने धीरे-धीरे कुछ कहा। बात समाप्त कर चारो ने तारा के पैर छुए।

चारो एक तरफ़ चले गए। चिंता-युक्त तारा राजकुमार को साथ लेकर भीतर चली गई, और दरवाज़ा बंद कर लिया।

तारा के कमरे में जाते ही राजकुमार ने पूछा—"बहूजी, चंदन कहाँ है? इतनी जल्द आ गया!"

"पुलिस के पास कोई मज़बूत काग़ज़ात उसके बाग़ीपन के सुबूत में नहीं थे, सिर्फ़ संदेह पर गिरफ़्तार किए गए थे, पुलिस के साथ ख़ास तौर से पैरवी करने पर ज़मानत पर छोड़ दिए गए हैं। इस पैरवी के लिये बड़े भाई से नाराज़ हैं। मुझे कलकत्ते ले जाने के लिये आए थे। यहाँ तुम्हारा हाल मुझसे सुना, तो बड़े ख़ुश हुए, और तुमसे मिलने गए। पर रज्जू बाबू!" युवती की आँखें भर आईं।

राजकुमार चौंक उठा। उसे विपत्ति की शंका हुई। चकित देखता हुआ, युवती के दोनो हाथ पकड़कर आग्रह और उत्सुकता से पूछा—"पर क्या, बतलाओ, मुझे बड़ी शंका हो रही है।"

"तुम्हारा भी तो वही ख़ून है!"

राजकुमार दृष्टि से इसका आशय पूछ रहा था।

युवती ने अधिक बातचीत करना अनावश्यक समझा। एक बार राजकुमार उठकर बाहर चलने लगा था, पर युवती ने हाथ पकड़कर डाँट दिया—"थोड़ी देर में सब मालूम हो जायगा, घर के आदमियों के आने पर। ख़बरदार अगर बाहर क़दम बढ़ाया।"

वीर युवक तारा के पलँग पर तकिए में सर गड़ा पड़ा रहा। तारा उसके हाथ-मुँह धोने और जलपान करने का इंतज़ाम करने लगी। धैर्य के बाँध को तोड़कर कभी-कभी दृष्टि की अपार चिंता झलक पड़ती थी।

(१६)

कनक ने बँगले पहुँचकर जो दृश्य देखा, उससे उसकी रही-सही आशा निर्मूल हो गई। बँगले में कुँवर साहब के मेहमान टिके हुए थे, जिनमें एक को कनक पहले से जानती थी। यह थे मिस्टर हैमिल्टन। अधिकांश मेहमान कुँवर साहब के कलकत्ते के मित्र थे, बड़े-बड़े तअल्लुक़दार और साहब। ये लोग उसी रोज़ गाड़ी से उतरे थे। बँगले में इनके ठहरने का ख़ास इंतज़ाम था। ये लोग कुँवर साहब के अंतरंग मित्र थे, अंतरंग आनंद के हक़दार। अपने-अपने स्थानों से

इसी आशा से प्रयाण किया था। कुँवर साहब ने पहले ही से वादा कर रक्खा था कि अभिषेक हो जाने के समय से अंत तक वह अपने मित्रों को समझाते रहेंगे कि मित्रों की खातिरदारी किस तरह की जाती है। मित्र लोग कभी-कभी इसका तक़ाज़ा भी करते रहे हैं। कनक के आने का तार मिलते ही इन्होंने अपने मित्रों को आने के लिये तार किया था, और क़रीब-क़रीब वे सब लोग कनक का नाम सुन चुके थे। कुँवर साहब की थोड़ी-सी ज़मीनदारी २४ परगने में थी, जिससे कभी-कभी हैमिल्टन साहब से मिलने-जुलने का तअल्लुक़ आ जाता था। धीरे-धीरे यह मित्रता बड़ी दृढ़ हो गई थी। कारण, दोनो एक ही घाट का पानी पीनेवाले थे, कई बार पी भी चुके थे, इससे हृदय भेद-भाव-रहित हो गया था। हैमिल्टन साहब को तार पाने पर बड़ी प्रसन्नता हुई। हिंदोस्तानी युवती को साहबी उद्दंडता, क्रूरता तथा कूटता का ज्ञान करा देने के लिये वह तैयार हो रहे थे, उसी समय उन्हें तार मिला। एक बार कुँवर साहब के माननीय मित्र की हैसियत से चुद्र नर्तकी को देखने की उनकी लालसा प्रबल हो गई थी। वह कुछ दिन की छुट्टी लेकर चले आए।

कनक ने सोचा था, कुँवर साहब को अपने इंगित पर नचाएगी। राजकुमार को गिरफ़्तार कर जब इच्छा मुक्त कर उसकी सहायता से मुक्त हो जायगी। पर यहाँ और ही रंग देखा। उसने सोचा था, कुँवर साहब अकेले रहेंगे। पीली पड़ गई। हैमिल्टन उसे देखकर मुस्किराया। दृष्टि में व्यंग्य फूट रहा था। अंकुश कनक के हृदय को पार कर गया। चारों तरफ़ से कटाक्ष हो रहे थे। सब उसकी लज्जा को भेदकर उसे देखना चाहते थे। कनक व्याकुल हो गई। आवाज़ में कहीं भी अपनापन न था।

कुँवर साहब पालकी से उतरे। सब लोगों ने शैतान की सूरत का स्वागत किया। कनक खड़ी सबको देख रही थी।

"अजी, आप बड़ी मुश्किलों में मिलीं, और सौदा बड़ा महँगा!" कुँवर साहब ने मित्रों को देख कनक की तरफ़ इशारा करके कहा।

कनक कमल की कली की तरह संकुचित खड़ी रही। हृदय में आग भड़क रही थी। कभी-कभी आँखों से ज्वाला निकल पड़ती थी। याद आया, वह भी महाराजकुमारी है। पर उमड़कर आप ही हृदय बैठ गया—"मुझमें और इनमें कितना फ़र्क़! ये मालिक हैं, और मैं इनके इशारे पर नाचनेवाली! और यह फ़र्क़ इतने ही के लिये। ये चरित्र में किसी भी तवायफ़ से अच्छे नहीं। पर समाज इनका है, इसलिये इनका अपराध नहीं। ऐसी नीचता से ओत-प्रोत वृत्तियों को लिए हुए भी ये समाज के प्रतिष्ठित, सम्मान्य, विद्वान् और बुद्धिमान मनुष्य हैं। और मैं?"

कनक को चक्कर आने लगा। एक ख़ाली कुर्सी पकड़कर उसने अपने को सँभाला। इस तरह तप-तपकर वह और सुंदर हो रही थी, और चारों तरफ़ से उसके प्रति आक्रमण भी वैसे ही और तुभीले।

कुँवर साहब मित्रों से ख़ूब खुलकर मिले। हैमिल्टन की उन्होंने बड़ी इज़्ज़त की। कुँवर साहब जितनी ही हैमिल्टन की क़द्र कर रहे थे, वह उतना ही कनक को अकड़-अकड़कर देख रहा था।

मुस्किराते हुए कुँवर साहब ने कनक से कहा—"बैठो इस बग़लवाली कुर्सी पर। अपने ही आदमियों की एक बैठक होगी, दो मंज़िले पर; यहाँ भी हारमोनियम पर कुछ सुनाना होगा। सुरेश बाबू, दिलीपसिंह भी गावेंगे। तुम्हें आराम के लिये फ़ुर्सत मिल जाया करेगी।" कहकर चालाक पुतलियाँ फेर लीं।

एक नौकर ने आकर कुँवर साहब को ख़बर दी कि सर्वेश्वरी बाई यहाँ से स्टेशन के लिये रवाना हो गईं, उनका हिसाब कर दिया गया। कहकर नौकर चला गया।

एक दूसरा नौकर आया। सलाम कर उस आदमी के गिरफ़्तार होने की ख़बर दी। कुँवर साहब ने कनक की तरफ़ देखा। कनक ने हैमिल्टन को देखकर राजकुमार को बुलवाना उचित नहीं समझा। दूसरे,

जिस अभिप्राय से उसने राजकुमार को क़ैद कराया था, यहाँ उसका वह अभिप्राय सफल नहीं हो रहा था, कोई संभावना भी न थी।

कनक को मौन देखकर कुँवर साहब ने कहा—"ले आओ उसको।"

कनक चौंक पड़ी। जल्दी में कहा—"नहीं-नहीं उसकी कोई ज़रूरत नहीं, उसे छोड़ दीजिए।" कनक का स्वर काँप रहा था।

"ज़रा देख तो लें, उस इशारेबाज़ को।" कुँवर साहब ने इशारा किया।

चार सिपाही अपराधी को लेकर बँगले के भीतर आए। भीतर आते ही किसी की तरफ़ नज़र उठाए बिना अपराधी ने झुककर तीन बार सलाम किया।

उसका शरीर और रंग-ढंग राजकुमार से मिलता-जुलता था। पर कनक ने देखा, वह राजकुमार नहीं था। इसका चेहरा रूखा, कपड़े मोटे, बाल छोटे-छोटे, बराबर। उम्र राजकुमार से कुछ कम जान पड़ती थी।

कुँवर साहब ने कहा—"क्योंजी इशारेबाज़ी तुमने कहाँ सीखी?"

अपराधी ने फिर झुककर तीन बार सलाम किया, और कनक को एक तेज़ निगाह से देख लिया। "यह वह नहीं है।" कनक ने जल्दी में कहा। कुँवर साहब देखने लगे। पहचान नहीं सके। स्टेज पर ध्यान आदमी की तरफ़ से ज़्यादा कनक की तरफ़ था। पहले के आदमी से इसमें कुछ फ़र्क़ देखते थे।

अपराधी ने किसी की तरफ़ देखे बिना फिर सलाम किया, और जैसे दीवार से कह रहा हो—"हुज़ूर, ग्वालियर में पखावज सीखकर कुछ दिनों तक रामपुर, जयपुर, अलवर, इंदौर, उदयपुर, बीकानेर, टीकमगढ़, रीवाँ, दरभंगा, बर्दवान इन सभी रियासतों में मैं गया और सभी महाराजों को पखावज सुनाई है। हुज़ूर के यहाँ जलसा सुनकर आया था।" कहकर उसने फिर सलाम किया।

"अच्छा तुम पखावजिए हो?"

"हुज़ूर!"

हैमिल्टन की तरफ़ मुड़कर अँगरेज़ी में—"अब बन गया मामला।"

कनक आगंतुक और कुँवर साहब को देख रही थी। रह-रहकर एक अज्ञात भय से कलेजा काँप उठता था।

"पखावज एक ले आओ।" सिपाही से कुँवर साहब ने कहा। बँगले की दूसरी मंज़िल पर फ़र्श बिछा हुआ था, मित्रों को साथ लेकर चले। आगंतुक से कनक को ले आने के लिये कहा। सिपाही पखावज लेने चला गया। और लोग बाहर फाटक पर थे।

कुँवर साहब और उनके मित्र चढ़ गए। पीछे से दो ख़िदमतगार भी चले गए। कमरा सूना देख युवक ने कनक के कंधे पर हाथ रखकर फिसफिसाते हुए कहा—"मैं राजकुमार का मित्र हूँ।"

कनक की आँखों से प्रसन्नता का फ़व्वारा फूट पड़ा। देखने लगी।

युवक ने कहा—"यही समय है। तीन मिनट में हम लोग खाई पार कर जायँगे। तब तक वे लोग हमारी प्रतीक्षा करेंगे। देर हुई तो इन राक्षसों से मैं अकेले तुम्हें बचा न सकूँगा।"

कनक आवेग से भरकर युवक से लिपट गई, और हृदय से रेलकर उतावली से कहा—"चलो।"

"तैरना जानती हो?" जल्द-जल्द खाई की तरफ़ बढ़ते हुए।

"न" शंका से देखती हुई।

"पेशवाज भीग जायगी। अच्छा, हाँ," युवक कमर-भर पानी में खड़ा होकर "धीरे से उतर पड़ो, घबराओ मत।"

कनक उतर पड़ी।

युवक ने अपनी चादर भिगोकर पानी में हवा भर-कर गुब्बारे-सा बना कनक को पकड़ा दिया। ऊपर से आवाज़ आई—"अभी ये लोग नहीं आए, ज़रा नीचे देखो तो।"

युवक कनक की बाँह पकड़कर, चुपचाप तैरकर खाई पार करने लगा।

लोग नीचे आए, फाटक की तरफ़ दौड़े। युवक पार चला गया।

उस पार घोर जंगल था। कनक को साथ ले पेड़ों के बीच अदृश्य हो गया।

इस बँगले के चारो तरफ़ खाई थी। केवल फाटक से जाने की राह थी। फाटक के पास से बड़ी सड़क कुँवर साहब की कोठी तक चली गई थी।

शोर-गुल उठ रहा था। ये लोग इस पार से सुन रहे थे।

"हम लोग पकड़ लिए जायँ, तो बड़ी बुरी हालत हो।" कनक ने धीरे से युवक से कहा।

"अब हज़ार आदमी भी हमें नहीं पकड़ सकते, यह छः कोस का जंगल है। रात है। तब तक हम लोग घर पहुँच जायँगे।" कपड़े निचोड़ते हुए युवक ने कहा।

"क्या आपका घर भी यहीं है?" चलते हुए स्नेह-सिक्त स्वर से कनक ने पूछा।

"मेरा घर नहीं, मेरे भाई की ससुराल है, राजकुमार वहीं होंगे।"

"वे लोग जंगल चारो तरफ़ से घेर लें तो?'

"ऐसा हो नहीं सकता, और जंगल की बग़ल में ही वह गाँव है, इस तरफ़ तीन मील।"

"आपको मेरी बात कैसे मालूम हुई?"

"भाभी ने मुझे राजकुमार की मदद के लिये भेजा था। उसे उन्होंने तुम्हें ले आने के लिये भेजा था।"

कनक के क्षुद्र हृदय में रस का सागर उमड़ रहा था।

"आपकी भाभी को राजकुमार क्या कहते हैं?"

"बहूजी।"

"आपकी भाभी मायके कब आईं?"

"तीन-चार रोज़ हुए।"

कनक अपनी एक स्मृति पर ज़ोर देने लगी।

"साथ राजकुमार थे?"

"हाँ।"

"आप तब कहाँ थे?"

"लखनऊ। किसानों का संगठन कर रहा था, पर बचकर, क्योंकि मुझे काम ज़्यादा प्यारा था।"

"फिर?"

"लखनऊ में सरकारी ख़ज़ाने पर डाका पड़ा। शक पर मैं भी गिरफ़्तार कर लिया गया। पर मेरी ग़ैर-हाज़िरी ही साबित रही। पुलिस के पास कोई बड़ी शिकायत नहीं थी। सिर्फ़ नाम दर्ज था। ख़ुफ़ियावाले मुझे भला आदमी जानते थे। कोई सुबूत न रहने से ज़मानत पर छोड़ दिया गया।"

"आप कब गिरफ़्तार किए गए?"

"छः-सात रोज़ हुए होंगे। अख़बारों में छपा था।"

"राजकुमार को कब मालूम हुआ?"

"जिस रोज़ भाभी को ले आए। उसी रात को तुम्हारे यहाँ।"

कनक एक बार प्रणय से पुलकित हो गई।

"देखिए, कैसी चालाकी, मुझे नहीं बतलाया, मुझसे नाराज़ होकर आए थे।"

"हाँ, सुना है, तुमसे नाराज़ हो गए थे। भाभी से बतलाया भी नहीं था। पर एक दिन उनकी चोरी भाभी ने पकड़ ली, तुम्हारे यहाँ से जो कपड़ा पहनकर गए थे, उसमें सिंदूर लगा था।"

कनक शरमा गई। "अच्छा, यह सब भी हो चुका है?" हँसती हुई चल रही थी।

"हाँ, राजकुमार की मदद के लिये यहाँ आने पर मुझे मालूम हुआ कि कुँवर साहब ने उनको गिरफ़्तार करने का हुक्म दिया है। यहाँ मेरी भाभी के पिता नौकर हैं। गिरफ़्तार करनेवालों में उनके गाँव का भी एक आदमी था। उसने उन्हें ख़बर दी। तब मैंने उसे समझाया कि अपने आदमियों को बहकाकर मुझे ही गिरफ़्तार होनेवाला आदमी बतलाए, और गिरफ़्तार करा दे। राजकुमार की रक्षा के लिये मैं और कई आदमियों को छोड़कर गिरफ़्तार हो गया। मैं जानता था कि तुम मुझे नहीं पहचानतीं, इसलिये मैं छूट जाऊँगा। राजकुमार की गिरफ़्तारी की वजह भी समझ में नहीं आ रही थी।"

कनक ने बतलाया कि उसी ने, अपनी सहायता के लिये, राजकुमार को गिरफ़्तार करने का कुँवर साहब से आग्रह किया था।

धीरे-धीरे गाँव नज़दीक आ गया। कनक ने थककर कहा—"अभी कितनी दूर है ?"

"बस आ गए।"

"आपने अभी नाम नहीं बतलाया।"

"मुझे चंदन कहते हैं। हम लोग अब नज़दीक आ गए। इन कपड़ों से गाँव के भीतर जाना ठीक नहीं। मैं पहले जाता हूँ, भाभी की एक साड़ी ले आऊँ, फिर तुम्हें पहनाकर ले जाऊँगा। एक दूसरे कपड़े में तुम्हारे ये सब कपड़े बाँध लूँगा। घबराना मत। इस जंगल में कोई बड़े जानवर नहीं रहते।"

कनक को ढाँढस बँधा चंदन भाभी के पास चला। वहाँ से गाँव चार फ़र्लांग के क़रीब था। थोड़ी रात रह गई थी।

दरवाज़े पर धक्का सुनकर तारा पलंग से उठी। नीचे उतरकर दरवाज़ा खोला। चंदन को देखकर चाँद की तरह खिल गई—"तुम आ गए ?"

स्नेहार्थी शिशु की दृष्टि से भाभी को देखकर चंदन ने कहा—"भाभी, मैं रावण से सीता को भी जीत लाया।"

तारा तरंगित हो उठी।—"कहाँ है वह ?"

"पीछेवाले जंगल में। बँगले से खाई तैराकर लाया। वहाँ बड़ी ख़राब स्थिति हो रही थी। अपनी एक साड़ी दो, बहुत जल्द, और एक चादर ओढ़ने के लिये, और एक और उसके कपड़े बाँधने के लिये।"

तुरंत एक अच्छी साड़ी और २ चद्दर निकालकर चंदन को देते हुए तारा ने कहा—"वहाँ, एक बात याद आई, ज़रा ठहर जाओ, मैं भी चलती हूँ, मेरे साथ आएगी, तुम अलग हो जाना, ज़रा कड़े और छड़े निकाल लूँ।"

तारा का दिया हुआ कुल सामान चंदन ने लपेटकर ले लिया। फिर आगे-आगे तारा को लेकर जंगल की तरफ़ चला।

कनक प्रतीक्षा कर रही थी। शीघ्र ही दोनो कनक के पास पहुँच गए। कनक को देखकर तारा से न रहा गया। "बहन, ईश्वर की इच्छा से तुम राक्षसों के हाथ से बच गईं।" कहकर तारा ने कनक को गले से लगा लिया।

हृदय में जैसी सहानुभूति का सुख कनक को मिल रहा था, ऐसा उसे आज जीवन में नया ही मिला था। स्त्री के लिये स्त्री की सहानुभूति कितनी प्रखर और कितनी सुखद होती है, इसका आज ही उसे अनुभव हुआ।

तारा ने साड़ी देकर कहा—"यह सब खोलकर इसे पहन लो।"

कनक ने गीले वस्त्र उतार दिए। चंदन से तारा ने कहा—"छोटे साहब, ये कड़े पहना दो, देखें, कलाई में कितनी ताक़त है!"

चंदन ने कड़े डालकर दोनो हाथ घुटनों के बीच रखकर, ज़ोर लगाकर पहना दिए, फिर छड़े भी। युवती ने चंदन की इस ताक़त के लिये तारीफ़ की, फिर कनक से चद्दर ओढ़कर साथ चलने के लिये कहा। कनक चद्दर ओढ़ने लगी, तो युवती ने कहा—"नहीं, इस तरह नहीं, इस तरह।" कनक को चद्दर ओढ़ा दी।

आगे-आगे तारा, पीछे-पीछे कनक चली। चंदन ने कनक के कपड़े बाँध लिए और दूसरी राह के मिलने तक साथ-साथ चला।

तारा चुटकियाँ लेती हुई बोली—"छोटे साहब, इस वक़्त आप क्या हो रहे हैं ?"

कनक हँसी। चंदन ने कहा—"एक दर्जा महावीर से बढ़ गया। केवल ख़बर देने ही नहीं गया, सीता को भी जीत लाया।"

थोड़ी ही दूर पर एक दूसरी राह मिली। चंदन उससे होकर चला। युवती कनक को लेकर दूसरी से चली।

प्रथम ऊषा का प्रकाश कुछ-कुछ फैलने लगा था। उसी समय तारा कनक को लेकर पिता के मकान

पहुँची, और अपने कमरे में, जहाँ राजकुमार सो रहा था, ले जाकर, दरवाज़ा बंद कर लिया।

कुछ देर में चंदन भी आ गया। कनक थक गई थी। युवती ने पहले राजकुमार के पलंग पर सोने के लिये इंगित किया। कनक को लज्जित खड़ी देख बग़ल के दूसरे पलंग पर सस्नेह बाँह पकड़ बैठा दिया, और कहा—"आराम करो, बड़ी तकलीफ़ मिली।"

कनक के मुरझाए हुए अधर खिल गए।

चंदन ने पेशवाज सुखाने के लिये युवती को दिया। उसने लेकर कहा—"देखो, वहाँ चलकर इसका अग्नि-संस्कार करना है।"

चंदन थक रहा था। राजकुमार की बग़ल में लेट गया।

युवती सबकी देखरेख में रही। धीरे-धीरे चंदन भी सो गया। कनक कुछ देर तक पड़ी सोचती रही। मा की याद आई। कहीं ऐसा न हो कि उसकी खोज में उसी वक्त स्टेशन मोटर दौड़ाई गई हो, और तब तक गाड़ी न आई हो, वह पकड़ ली गई हो। समय का अंदाज़ा लगाया। गाड़ी साढ़े तीन बजे रात को आती है। चढ़ जाना संभव है। फिर राजकुमार की बातें सोचती कि न-जाने यह सब इनके विचार में क्या भाव पैदा करे। कभी चंदन की और कभी तारा की बातें सोचती, ये लोग कैसे सहृदय हैं! चंदन और राजकुमार में कितना प्रेम! तारा उसे कितना चाहती है! इस प्रकार, उसे नहीं मालूम, उसकी इस सुख-कल्पना के बीच कब पलकों के दल मुँद गए।

(१७)

कुछ दिन चढ़ आने पर राजकुमार की आँखों ने एक बार चिंता के जाल के भीतर से बाहर प्रकाश के प्रति देखा। चंदन की याद आई। उठकर बैठ गया। बहूजी झरोखे के पास एक बाज़ू पकड़े हुए बाहर की सड़क की तरफ़ देख रही थीं। कोलाहल, कौतुक-पूर्ण हास्य तथा वार्तालाप के अशिष्ट शब्द सुन पड़ते थे।

राजकुमार ने उठकर देखा, बग़ल में चंदन सो रहा था। एक पलंग और बिछा था। कोई चद्दर से सर से पैर तक ढके हुए सो रहा था।

चंदन को देखकर चिंता की तमाम गाँठें आनंद के मरोर से खुल गईं। जगाकर उससे अनेक बातें पूछने के लिये इच्छाओं के रंगीन उत्स रोएँ-रोएँ से फूट पड़े।

उठकर बहू के पास जाकर पूछा—"ये कब आए? जगा दूँ?"

"बातें इस तरह करो कि बाहर किसी के कान में आवाज़ न पड़े, और ज़रूरत पड़ने पर तुम्हें साड़ी पहनकर रहना होगा।"

राजकुमार जल गया—"क्यों?"

"बड़ी नाज़ुक हालत है, फिर तुम्हें सब मालूम हो जायगा।"

"पर मैं साड़ी नहीं पहन सकता। अभी से कहे देता हूँ।"

"अर्जुन तो साल-भर विराट के यहाँ साड़ी पहनकर नाचते रहे, तुमको क्या हो गया?"

"वह उस वक्त नपुंसक थे।"

"और इस वक्त तुम! उससे पीछा छुड़ाकर नहीं भगे?"

राजकुमार लज्जित प्रसन्नता से प्रसंग से टल गया। पूछा—"यह कौन हैं, जो पलँग पर पड़े हैं?"

"मुँह खोलकर देखो।"

"नाम ही से पता चल जायगा।"

"हमें नाम से काम ज़्यादा पसंद है।"

"अगर कोई अजान आदमी हो?"

"तो जान-पहचान हो जायगी।"

"सो रहे हैं, नाराज़ होंगे।"

"कुछ बकझक लेंगे, पर जहाँ तक अनुमान है, जीत नहीं सकते।"

"कोई रिश्तेदार हैं शायद?"

"तभी तो इतनी दूर तक पहुँचे हैं।"

राजकुमार पलंग के पास गया। चादर रेशमी और मोटी थी, मुँह देख नहीं पड़ता था। धीरे से उठाने

लगा। तारा खड़ी हँस रही थी। खोलकर देखा, विस्मय से फिर चादर उढ़ाने लगा। कनक की आँखें खुल गईं। चादर उढ़ाते हुए राजकुमार को देखा, उठकर बैठ गई। देखा, सामने तारा हँस रही थी। लज्जा से उठकर खड़ी हो गई। फिर तारा के पास चली गई। मुख उसी तरह खुला रक्खा।

वार्तालाप तथा हँसी-मज़ाक़ की ध्वनि से चंदन की नींद उखड़ गई। उठकर देखा, तो सब लोग उठे हुए थे। राजकुमार ने बड़े उत्साह से बाहों में भरकर उसे उठाकर खड़ा कर दिया।

तारा और कनक दोनो को देख रही थीं। दोनो एक ही-से थे। राजकुमार कुछ बड़ा था। शरीर भी कुछ भरा हुआ। लोटे में जल रक्खा था। राजकुमार ने चंदन को मुँह धोने के लिये दिया। ख़ुद भी उसी से ढालकर मुँह धोते हुए पूछा—"कल जब मैं आया, तब लोगों से मालूम हुआ कि तुम आए हो, पर कहाँ हो, क्या बात है, बहूजी से बहुत पूछा, पर वह टाल गईं।"

"फिर बतलाऊँगा। अभी समय नहीं बहुत-सी बातें हैं। अंदाज़ा लगा लो। मैं न जाता, तो इनकी बड़ी संकटमय स्थिति थी, उन लोगों के हाथ से इनकी रक्षा न होती!"

"हाँ, कुछ-कुछ समझ में आ रहा है।"

"देखो, हम लोगों को आज ही चलने के लिये तैयार हो जाना चाहिए, ऐसी सावधानी से कि पकड़ में न आएँ।"

"क्यों?"

"तुम्हें गिरफ़्तार करने का पहले ही हुक्म था, और तुम्हारी इन्होंने आज्ञा निकाली थी। उसी पर मैं गिरफ़्तार हुआ, तुम्हें बचाने के लिये, क्योंकि तुम सब जगहों से परिचित नहीं थे। फिर जब पेश हुआ, तब इनके दुबारा गाने का प्रकरण चल रहा था, बँगले में, ख़ास महफ़िल थी।" चंदन ने हाथ पोंछते हुए कहा।

"हैमिल्टन साहब भी आए थे।" कनक ने कहा।

"फिर?" राजकुमार ने चंदन से पूछा।

संक्षेप में कुल हाल चंदन बतला गया। युवती कनक को लेकर बग़लवाले कमरे में चली गई।

"आज ही चलना चाहिए।" चंदन ने कहा।

"चलो।"

"चलो नहीं, चारों तरफ़ लोग फैल गए होंगे। इस व्यूह से बचकर निकल जाना बहुत मामूली बात नहीं। और, तअज्जुब नहीं कि लोगों को दो-एक रोज़ में बात मालूम हो जाय।"

"गाड़ी सजा लें, और उसी पर चले चलें।"

"कहाँ?"

"स्टेशन।"

"ख़ूब! तो फिर पकड़ जाने में कितनी देर है!"

"फिर?"

"औरत बन सकते हो?"

"न।"

चंदन हँसने लगा। कहा—"हाँ भई, तुम औरत-वाले कैसे औरत बनोगे? पर मैं तो बन सकता हूँ।"

"यह तो पहले ही से बने हुए हैं।" कहती हुई मुस्किराती कनक के साथ युवती कमरे में आ रही थी।

युवती कनक को वहीं छोड़कर भोजन-पान के इंतज़ाम के लिये चली गई। चंदन को कमरा बंद कर लेने के लिये कह दिया। चंदन ने कमरा बंद कर लिया।

कनक निष्कृति के मार्ग पर आकर देख रही थी, उसके मानसिक भावों में युवती के संग-मात्र से तीव्र परिवर्तन हो रहा था। इस परिवर्तन के चक्र पर जो शान उसके शरीर और मान को लग रही थी, उससे उसके चित्त की तमाम वृत्तियाँ एक दूसरे ही प्रवाह से तेज़ बह रही थीं, और इस धारा में पहले की तमाम प्रखरता मिटी जा रही थी, केवल एक शांत, शीतल अनुभूति चित्त की स्थिति को दृढ़तर कर रही थी, अंगों की चपलता उस प्रवाह के तट पर तपस्या करती हुई-सी निश्चल हो रही थी।

आंसू बनता है कहीं रुधिर,
है कहीं सिसकती दबी आह;
है कहीं तृप्ति, है कहीं प्यास,
है यहाँ आदि से अंत चाह!
चीतकार-व्यथा को कहीं मार,
है कहीं उठ रहा रंग-राग;
सुख का बहता है कहीं मलय,
दुख की जलती है कहीं आग;
ये भग्न हृदय-युत नग्न नगर
दुर्दैन्य खेलता यहाँ फाग!

(८)

यहीं मृत्यु का भार लिए निज वक्षस्थल पर,
और अंत के व्याप्त पूर्ण प्रतिबिंब भयंकर,
जहाँ कर रहा है विनाश संहार निरंतर,
नष्ट, भ्रष्ट, अवशिष्ट खड़े हैं निर्जन खँडहर।
किए हुए निस्तब्ध, घोर मौन-व्रत धारण
गत-वैभव की निष्ठुर-स्मृति के ये अनंत क्षण!
मिटी ठसक की कसक जहाँ लेती संघर्षण—
यहाँ धूल में मिल जाता है जग का प्रतिक्षण!
यहाँ निशा के अंधकार में ही उलूक-दल
भरता है चीत्कार-युक्त जीवन की हलचल।
यहाँ काल विकराल गरल के स्रोत अनर्गल
जीवन ही में मृत्यु प्रदर्शित करते प्रतिपल!

(९)

ऊँचे नभ से टक्कर लेती
हैं जल की लहरें उद्दंड;
जहाँ खेलता ही रहता है
निशि-दिन झंझावात प्रचंड;
अपनी आहों के धुँधलेपन
से ढक देता है मार्तंड;
लिए हुए गिरि-खंड अंक में,
लिए हुए उर पर हिम-खंड!
कभी घोर निस्तब्ध मौन-व्रत,
है विप्लव का कभी उठान,
उस अथाह के ही प्रवाह में
परिवर्तन का पूर्ण विधान!
जहाँ एक में मिल जाते हैं
सरिताओं के शत-शत गान;
जहाँ अंत—निस्सीम अंत का
मिलता है प्रतिबिंब महान;
जहाँ क्षितिज से मिल जाता है
संघर्षण का वेग अशांत;
जहाँ नाचता है निराश-सा
काल-रूप कर्कश एकांत;
पूर्ण-चंद्र के आलिंगन को
उठता है बनकर उद्भ्रांत—
पागल-सा लहराया करता
अरे यहीं पर उदधि प्रशांत!

(१०)

युगों का यह अस्तित्व—
और सदियों का विभव महान!
सामने हुआ खुले लोचन,
दृष्टि-भ्रम का है विषम विधान;
कल्पना के मंडल में व्याप्त
हमारा यह सँकरा-सा ज्ञान!
अरे दो ही हिचकी की बात—
और फिर अंधकार अनजान!

कल्प-का-कल्प अपार—
अरे जीवन के दिन दो-चार!
उदधि के वक्षस्थल में व्याप्त
बुलबुले का यह क्षणिक उभार;
निरंतर उत्पीड़न, उल्लास
जिसे कहते वैभव का भार;
एक अभिनय-सा छाया-चित्र
इसी को कहते हैं संसार!

(११)

जीवन और मरण का अभिनय होता है प्रतिकाल,
और यहाँ के कण-कण में है परिवर्तन की चाल;
फिर भी वही शून्य है उसमें वह अस्तित्व विशाल,
इंद्रजाल-सा बिछा हुआ है किस माया का जाल।
किस प्रकाश का दिन बनता किस अंधकार की रात?
किसको कहते सृजन और किसको कहते हैं घात?
हमने पूछी जब अथाह नभ से इतनी-सी बात,
"इस सबमें मेरी छाया है"—बोल उठा अज्ञात!

वर्तमान हिंदू-समाज



वेद—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् ।

वर्तमान समाज का उस पर भाष्य—ब्राह्मण हिंदू-समाज का मुँह हैं, अर्थात् सिर नहीं । समाज इस मुँह से मुर्गी और मछली खाता तथा अन्य वर्णों को दाँत दिखाकर वश में करता है । उसकी नाक भी ज़रूरत से ज़्यादा लंबी है ।

वेद—बाहू राजन्यः कृतः ।

भाष्य—क्षत्रिय उसकी भुजाएँ हैं, जिनसे वह वेश्या का आलिंगन और सुरा-पान करता है ।

वेद—ऊरू तदस्य यद् वैश्यः ।

भाष्य—वैश्य उसकी जंघा तथा मध्य भाग है, जिसके द्वारा सारा ब्रह्मचर्य नष्ट कर दिया जा चुका है, और जो हाइड्रोसील का ख़ज़ाना है ।

वेद—पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।

भाष्य—शूद्र उसके पाँव हैं, जिन्हें बाँधकर रखना चाहिए ।

सुकुमार वर्मा



शब्दकार—सिकंदर]　　　　[स्वरकार—श्रीयुत लक्ष्मणदास मुनीब

देश मल्लार—तीन ताल

स्थायी—बादर री उमड़-घुमड़ बरसन लागे ;
बिजुरी चमके जिय डराय।
अंतरा—निस अँधियारी, घन गरजत, पवन चलत पुरवाई,
ऐसे समैं सिकंदर पिय मोसे रूस रहे,
पैंया लागों कोई सखी जाओ जाओ मनाय।

स्थायी

३				×				२				०			
स	रे	म	प	स	—	—	—	सं	रें	सं	नी̱	ध	प	ध	प
बा	ऽ	द	र	री	ऽ	ऽ	ऽ	उ	म	ड़	घु	म	ड़	ब	र

३				×				२				०			
म	ग	रे	रे	रे	नी̱	ध	नी̱	प	ध	म	प	ध	म	ग	रे
स	न	ला	गे	बि	जु	री	च	म	के	जि	य	ड	रा	ऽ	य

अंतरा

३				×				२				०			
म	म	प	प	नी	नी	नी	नी	सं	सं	सं	सं	रें	मं	रें	सं
नि	स	अँ	धि	या	री	घ	न	ग	र	ज	त	प	व	न	च

नी	सं	रें	सं	नी	ध	प	—	रे	—	म	म	म	—	म	म
ल	त	पु	र	वा	ऽ	ई	ऽ	ऐ	ऽ	से	स	मैं	ऽ	सि	कं
रे	रे	म	प	नी	ध	प	—	प	रें	रें	रें	सं	स	—	सं
द	र	पि	य	मो	ऽ	से	ऽ	रू	ऽ	स	र	हे	पैं	ऽ	या
नी	ध	प	—	रे	नी	ध	नी	प	ध	म	प	ध	म	ग	रे
ला	ऽ	गों	ऽ	को	ई	स	खी	जा	ओ	ला	ओ	म	ना	ऽ	य

सांकेतिक चिह्न महाराज भातखंडे-निर्मित प्रणाली के अनुरूप जानने चाहिए।

अमृतधारा औषधालय की

उदर-रोग-संबंधी कुछ औषधियाँ

औषधियों के शीघ्र प्रभावशाली होने के विश्वास पर प्रत्येक औषधि का नमूना भी मिलता है।

दस्त विरेचन—यह गोलियाँ जुलाब के लिये अद्वितीय हैं। एक दो गोली रात को खाने से प्रातः एक दस्त हो जाता है। मूल्य १), अर्द्ध ।।), नमूना =)

करकोल—हाज़मा-संबंधी सब रोगों का अचूक इलाज, भोजन पचकर पूरी शक्ति आती है। खाया-पिया सब हजम हो जाता है। भूक बढ़ती है। मूल्य ६० गोली २), ३० गोली १), नमूना ।)

गंधार रस—भीषण से भीषण, जीर्ण से जीर्ण अतिसार, मरोड़, संग्रहणी आदि थोड़े दिनों में दूर। विशूचिका के अतिसार वा वमन को भी हितकर है। मूल्य १), नमूना =)

लाल जवाहर—उदर पीड़ा, गड़गड़ाहट, वमन, विशूचिका, अतिसार आदि रोगों को हितकर है। पाचन-शक्ति बढ़ाती है। मूल्य २), अर्द्ध १), नमूना ।)

मरटंकन—यह पुरानी-से-पुरानी संग्रहणी के लिए अद्वितीय औषधि है, १४ दिन के भीतर पूरा आराम होता है। मू० १५ गोली २)

लूनचोर—जब कि हिक्का (हिचकी) वेग से होती हैं और हटती न हों, इससे तुरंत आराम होता है। मूल्य ।)

राज वटी—अजीर्ण, विशूचिका को अत्यंत हितकर है। पाचनशक्ति को बढ़ानेवाली है। गर्भिणी स्त्री यदि मुख में रखकर चूसे, तो वमन शीघ्र बंद हो जाती है। मूल्य ३० गोली १)

हबसास—आँव और आँव के दस्तों की विचित्र औषधि है। मू० १)

एलवासा—उदर पीड़ा, उदर वायु, पेट का गुड़गुड़ाना, और ऊफारा आदि को लाभकारी है। क्षुधा को बढ़ाती है। कोष्ठबद्धता को बंद करता है। मूल्य ६४ गोलियाँ १), नमूना =)

प्राणदाता—विशूचिका (हैजा) की अक्सीर दवाई—यूँ तो अमृतधारा भी विशूचिका के लिये अक्सीर है। तो भी ऐसे भयानक रोगों के लिये कुछ औषधियाँ सदा पास रखनी चाहिए। वह औषधि अद्वितीय है। मूल्य १५ गोली १)

लोह प्रपटी रस—पुराने संग्रहणी, अतिसार को लाभकारी है। मूल्य १ तोला १।), ३ माशा ।=)

प्रसादी वटी—यह गोलियाँ पेट की वादी, बवासीर, कोष्ठवद्धता, पेट दर्द, गोला आदि को हितकर हैं। मूल्य ३० गोली १)

शूल वटी—यह गोलियाँ सब प्रकार की उदर पीड़ा यहाँ तक कि परिणामशूल को भी हितकर हैं। मूल्य ६० गोली १), नमूना ।)

फिंगर जुलाब—इस तेल को दोनों नाखूनों पर लगाने से खुलकर पाखाना होता है। मूल्य फ़ी शीशी १)

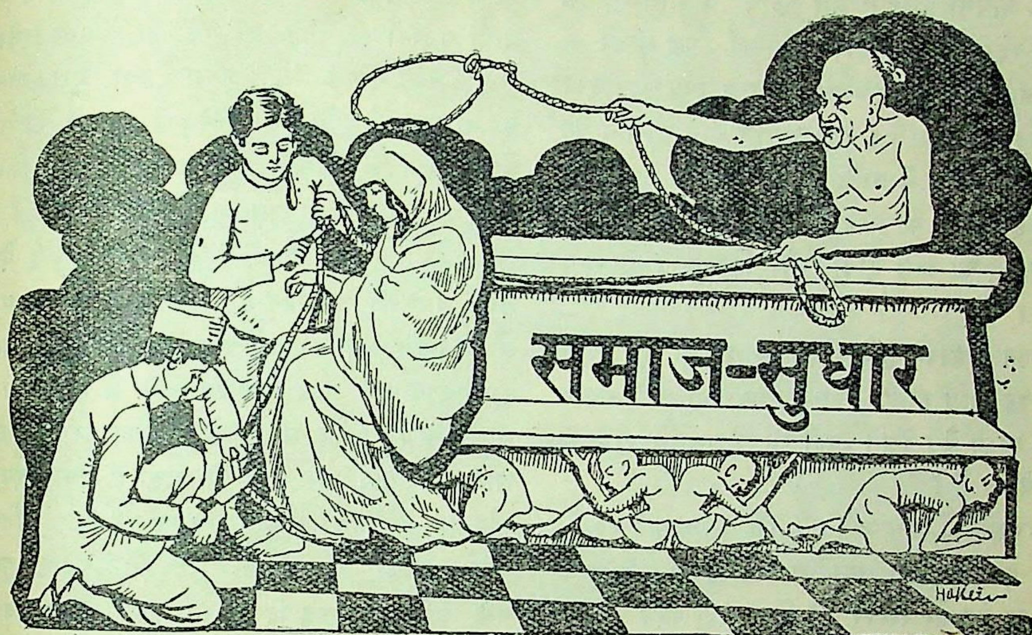
नख विरेचन—यह चूर्ण है, नाख़ूनों पर लेप करने से तीन घंटा पश्चात् एक दस्त होता है। मूल्य १)

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन,

अमृतधारा डाकखाना, अमृतधारा रोड लाहौर

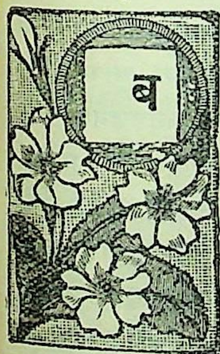
पत्र तथा तार का पता—**अमृतधारा १३ लाहौर।**

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।



शुद्धि

(श्रावण की संख्या से आगे)



बहुत-से लोग समझते हैं कि इसमें केवल आर्य-समाज ही काम करता है, परंतु यह कहना भूल और भ्रम है। शुद्धि की स्वीकृति सभी सभाओं ने दी है। कुछ सभाओं के नाम यहाँ दिए जाते हैं—सनातन-धर्म की सर्व-प्रधान संस्था भारत-धर्म-महामंडल ने मलकाना-राजपूतों की शुद्धि को पास कर दिया है। जिस अधिवेशन में यह प्रस्ताव पास हुआ, उसके सभापति श्रीदरभंगा-नरेशजी स्वयं थे। करवीरमठ और शारदापीठ के जगद्-गुरु शंकराचार्यजी पहले ही शुद्धि की व्यवस्था दे चुके हैं। महाराष्ट्र-परिषद्, साधु-महासभा, गूजर-महासभा, जाट-महासभा, राजपूत-क्षत्रिय-महासभा ने भी हर्ष-पूर्वक शुद्धि को अपनाने का निश्चय किया है। अमृतसर, लाहौर, लायलपुर आदि शहरों के सनातनी पंडित लिखित व्यवस्था दे चुके हैं। सनातन धर्म के प्रसिद्ध वक्ता श्रीयुत पं० दीनदयालु शर्मा तथा स्वामी दयानंदजी हाल में ही आगरा पधारे और शुद्धि के कार्य को न केवल पसंद ही किया, प्रत्युत उसमें भाग लेने का विचार भी निश्चित किया।

शुद्धि के कार्य में वह कौन-सा गुण है, जिसने आज भारतवर्ष की समस्त हिंदू-जाति को आकर्षित कर रक्खा है? वस्तुतः अपने सजातीय लोगों को अपने में मिलाने से सभी जीती-जागती जातियाँ ख़ुश होती हैं। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने दूसरे भाई से मिलकर ख़ुश हो। केवल कुत्ता ही ऐसा प्राणी है, जो दूसरे कुत्ते को देखकर भौंकता है। इसलिये यदि हिंदू लोग अपने बिछुड़े भाइयों को मिलाने से प्रसन्न होते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या। आश्चर्य तो इस बात का है कि हिंदू-जाति इतने दिन क्यों सोती रही, और अपने भाइयों को मिलाने में क्यों न तत्पर हुई। परंतु आज हिंदू-जाति के बच्चे-बच्चे को शुद्धि के गुण मालूम हो गए हैं, यह भले प्रकार मालूम हो गया है कि यदि हम शुद्धि में भाग न लेंगे, तो एक दिन रही-सही हिंदू-जाति सृष्टि

से उठ जायगी। राम और कृष्ण के नाम भूमंडल पर न रहेंगे। जनेऊ और चोटी का चिह्न संसार से मिट जायगा। आर्य-सभ्यता का वृक्ष जड़ से काटकर फेंक दिया जायगा। अब हिंदू लोग सोते से जाग बैठे हैं। उनके हृदय में जाति-उन्नति की लगन काम करने लगी है। शुद्धि का प्रश्न उनके जीने-मरने का प्रश्न है। शुद्धि का काम छोड़ा और हिंदू-जाति की मृत्यु आई।

प्रश्न—आपने शुद्धि का केवल एक ही पक्ष रक्खा है। यह शुद्धि ही है, जिसने समस्त भारत में उत्पात मचा रक्खा है। देखते नहीं कि मुसलमान शुद्धि से कितने रुष्ट हैं?

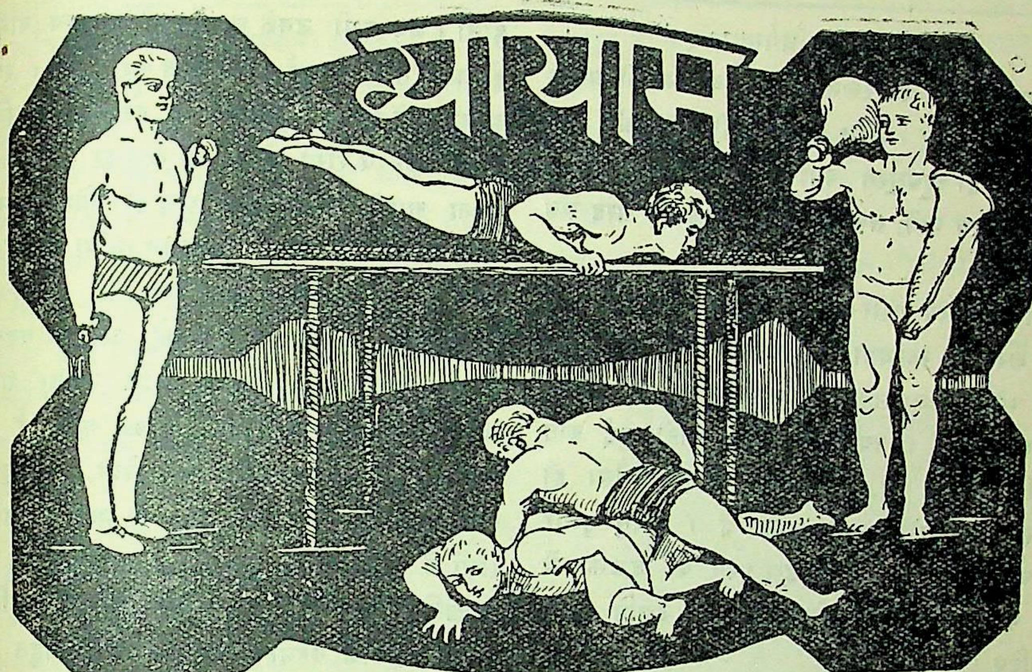
उत्तर—हाँ, हम जानते हैं कि मुसलमान रुष्ट हैं, परंतु इसमें हमारा क्या अपराध? हम किसी के सिर पर तलवार रखकर तो हिंदू नहीं करते। किसी पर अत्याचार तो नहीं करते। यदि कोई हिंदू होना चाहता है, तो मुसलमानों को क्या अधिकार कि वे उसे रोक सकें। जो इच्छा से धर्म के लिये मुसलमान होना चाहे, वह ख़ुशी से मुसलमान हो जाय, हम कुछ नहीं कहते, परंतु उन्हीं के समान हमको भी वैसा ही अधिकार होना चाहिए। मुसलमान आज तक सब प्रकार की धमकियाँ देकर मुसलमान बनाते रहे। इसके उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। हम तो अपने धर्म और न्याय की मर्यादा के भीतर ही काम करना चाहते हैं, फिर उनको क्या अधिकार कि दूसरों पर आक्षेप करें।

प्रश्न—यह ठीक है कि प्रत्येक पुरुष को अपने धर्म के चुनने में स्वतंत्रता होनी चाहिए। परंतु आप तो इतने समूहों की शुद्धि करने लगे, जिससे घोर व्याकुलता फैल गई। आपको इस प्रकार की शुद्धियाँ बंद कर देनी चाहिए।

उत्तर—वाह जी वाह! आपका भी ख़ूब न्याय है? यदि एक व्यक्ति रोटी खाना चाहे, तो धर्म और न्याय-संगत है, यदि लाख आदमी चाहें, तो नहीं। जब एक की शुद्धि हो सकती है, तो सबको हो सकती है। इसमें अन्याय कहाँ हुआ! अन्याय तो इसमें था कि प्रार्थी मनुष्यों को, चाहे वह एक हो, अथवा अनेक, शुद्ध होने से वंचित किया जाता। क्या मुसलमानों को या आप-जैसे आक्षेप करनेवाले सज्जनों को यह नहीं मालूम कि जिनको आज समूह में शुद्ध किया गया, वह समूह में ही मुसलमान बनाए गए थे?

प्रश्न—यह ठीक है। परंतु आपने शुद्धि ऐसे समय जारी की, जब हिंदू-मुसलमानों में एकता थी, जब महात्मा गांधी की अध्यक्षता में राजनीतिक सुधार का प्राबल्य था, जब स्वराज्य आने के निकट था। आर्य-समाज या हिंदू-सभा ने शुद्धि का प्रश्न छेड़कर आते हुए स्वराज्य को अरब की खाड़ी में डुबो दिया, और देश के शत्रुओं के हाथ मज़बूत कर दिए। जिस प्रकार सैकड़ों वर्ष से ये लोग विना शुद्ध हुए चले आते थे, कुछ दिनों और इसी प्रकार चल सकते थे।

उत्तर—भाई साहब, आप विना सोचे यह आक्षेप करते हैं। स्वराज्य तो जैसा आने को था, वैसा सभी जानते हैं, इसको न छेड़िए। परंतु क्या आपको नहीं मालूम कि मुसलमान भाइयों ने हिंदू-मुसलमान ऐक्य का बहाना करके मुसलमान बनाना आरंभ कर दिया। प्रथम तो इन्होंने यह मशहूर किया कि चूँकि कांग्रेस ने अछूतोद्धार का प्रस्ताव पास किया है, इसलिये हम अछूतों को मिला लेंगे। वस्तुतः अछूतों के प्रस्ताव का संबंध मुसलमानों से कदापि न था, केवल हिंदुओं के लिये ही था। दूसरे ठीक उसी समय में, जब हिंदू-मुसलमान-ऐक्य के गीत लंबे-लंबे स्वरों से गाए जाते थे, मलाबार के मोपला मुसलमानों ने वहाँ के हिंदुओं को बलात्कार लूट लिया, और जिस हिंदू ने मुसलमान होने से इनकार किया, उसी का सिर काटकर कुएँ भर दिए। सैकड़ों धनपति निर्धन हो गए। घर जला दिए गए। स्त्रियाँ छीन ली गईं। और, जो कुछ अरब के बद्दू कर सकते हैं, वह सब मलाबार में, ब्रिटिश राज्य के भीतर, किया गया।



स्त्रियों के व्यायाम

(७)

डंबल्स का व्यायाम



सरल करने से सुंदरता बढ़ती है । प्रकृति ने स्त्रियों के लिये आरोग्य और सौंदर्य, दो मुख्य वस्तुएँ बनाई हैं। सौंदर्य हो और आरोग्यता न हो, तो सौंदर्य किसी भी काम का नहीं । लोगों ने आजकल आरोग्यता का एक विचित्र अर्थ समझ लिया है । लोग अच्छी तरह खाने-पीने और चलने-फिरने का नाम ही आरोग्यता समझे बैठे हैं। किंतु आरोग्यता इन शब्दों में सीमित नहीं है। बहुत-से लोग ऐसे हैं, जो ख़ूब खाते-पीते और अच्छी तरह चलते-फिरते हैं, देखने में स्वस्थ भी मालूम होते हैं, किंतु वास्तव में वे रोगी होते हैं । कुछ लोग अपनी अस्वस्थता की चिंता नहीं करते और उसी दशा में अपनी ज़िंदगी व्यतीत करते रहते हैं । कुछ लोग रोगी होते हुए भी अपने को तंदुरुस्त ज़ाहिर करते हैं ।

स्त्रियाँ व्यायाम और शुद्ध वायु न मिलने के कारण प्रायः रोगिणी रहती हैं । वे स्त्रियाँ जो मेहनत करती और शुद्ध वायु में रहती हैं, यदि पूर्णतया नहीं, तो भी बड़े-बड़े नगरों में मकान-रूपी पिंजरों में बंद रहनेवाली आलसी स्त्रियों से सैकड़ों गुणा स्वस्थ और नीरोग होती हैं । एक अँगरेज़ का कहना है कि "जिसके नीरोग शरीर में नीरोग ही मन हो, वही स्वस्थ कहा जा सकता है।" यह उक्ति बिलकुल ठीक है। अर्थात् शारीरिक और मानसिक, दोनो प्रकार की स्वस्थता आवश्यक है । शरीर के लिये जिस प्रकार ज्वर, फोड़ा, फुंसी, दमा, क्षय, मृगी, बादी, सिर-दर्द आदि रोग उसे अस्वस्थ बना देते हैं, उसी तरह मन को अस्वस्थ रखनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्षा, द्वेष, स्पर्द्धा आदि अनेक रोग हैं। शरीर और मन, दोनो को ही स्वस्थ रखने की परम आवश्यकता है । पहले शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए, क्योंकि कहा भी है—

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।"

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये व्यायाम की अत्यंत आवश्यकता है। शरीर कितना ही गोरा और मुख कितना ही ख़ूबसूरत क्यों न हो, परंतु जब तक शरीर स्वस्थ नहीं, तब तक टेसू के फूल की तरह सब व्यर्थ है।

जिस तरह शरीर-शास्त्र के मर्मज्ञों का कहना है कि शरीर की स्वस्थता पहले आवश्यक है, उसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि पहले मन की स्वस्थता आवश्यक है। क्योंकि यह एक मानी हुई बात है कि मनुष्य का जैसा मन होता है, वैसा ही उसका शरीर भी हो जाता है। परंतु हमारे विचार से पाठिकाओं को इस प्रश्न की उलझन में न पड़कर यथासाध्य दोनो ही की उन्नति करनी चाहिए।

स्वस्थ मनुष्य वही है, जिसके शरीर का कोई अंग अपूर्ण न हो, और न जिसके शरीर में कोई अंग अधिक ही हो। आँख, नाक, कान सब दुरुस्त हों। नाक से जिसके अधिक श्लेष्मा न बहता हो। शरीर से निर्गंध पसीना निकलता हो। दाँत स्वच्छ हों। मुँह में बदबू न आती हो। पाँव मैले न हों। हाथ-पाँव आदि शारीरिक अंग बलवान् हों। कभी कोई रोग न होता हो। तेज़-से-तेज़ धूप में, जिसे लू न लगती हो अथवा व्याकुलता न होती हो, जिसे जाड़े-पाले में रहने पर भी ज़ुकाम वग़ैरह न होता हो अर्थात् जिसे वर्षा, शीत और गर्मी के मौसम बाधा न पहुँचाते हों, वही मनुष्य स्वस्थ है।

कई बहनों का यह ख़याल रहता है कि अगर स्वास्थ्य बिगड़ भी गया, तो दवा खा-पीकर उसे ठीक किया जा सकता है। कई तो घर में पाचक चूर्ण की शीशी के बल पर ख़ूब भोजन कर जाती हैं। दवाओं के बल पर स्वास्थ्य को अच्छे रखनेवाले लोग बहुत ही भूल करते हैं। डॉक्टर, वैद्यों और हकीमों को ही अपनी दवाओं पर विश्वास नहीं होता। जब कभी उनके घर में कोई मनुष्य बीमार होता है, तो वे दूसरे का इलाज कराते हैं। स्वयं इलाज नहीं करते। इससे स्पष्ट होता है कि जिन दवाओं को वे रोगी के पेट में डालकर उसे चंगा करना चाहते हैं, उन पर वे ख़ुद ही विश्वास नहीं करते। डॉक्टर एस्टली का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "वैद्यक शास्त्र केवल अटकल-पच्चू ही चल रहा है।" चिकित्सक लोग औषधि को बार-बार बदलते हैं, यह इस बात का प्रमाण है कि उनका शास्त्र अटकल से चलता है। डॉक्टरों का कहना है कि "दवाओं से रोगों की कमी नहीं होती, बल्कि वृद्धि होती है। जितने लोग दवाओं से मरते हैं, उतने रोगों से नहीं मरते। दवाओं पर अपने स्वास्थ्य को अवलंबित रखना बड़ी भारी ग़लती है।" इत्यादि। तात्पर्य यह कि बहनों को दवा-दारू से बहुत ही बचना चाहिए और प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही आरोग्यता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। पिछले अंकों में हमने ऐसे अनेक व्यायाम लिखे हैं, जिनसे विना दवा-दारू के ही समस्त रोगों को हटाकर पूर्ण आरोग्यता प्राप्त की जा सकती है। अब हम डंबल्स के व्यायाम का वर्णन करेंगे। स्त्रियों को चाहिए कि इस व्यायाम के द्वारा अवश्य लाभ उठावें।

मि० सैंडो का कहना है कि "कई लोगों का ऐसा ख़याल है कि मेरे काम स्त्रियों के लिये लाभदायक नहीं हैं। परंतु मैं ऐसे भ्रम-पूर्ण विचारों को शीघ्र-से-शीघ्र हटा देने के लिये आतुर हूँ। आजकल उन स्त्रियों के लिये, जो घर के काम-धंधों को छोड़ बैठी हैं, व्यायाम आवश्यक है। इस युग में तो स्त्रियाँ साइकलें चलाती हैं, नावें खेती हैं, कई तरह के गेंद के खेल भी खेलती हैं। इन कामों को पहले पुरुषों के लिये ही समझा जाता था। स्त्रियों में श्रम के लिये मानसिक आदेश पुरुषों की अपेक्षा कुछ अधिक ही होता है, वे हमेशा कड़ी मेहनत करने के लिये तैयार रहती हैं। परंतु यदि उनके शरीर के अंग अच्छी तरह दृढ़ न किए गए हों,

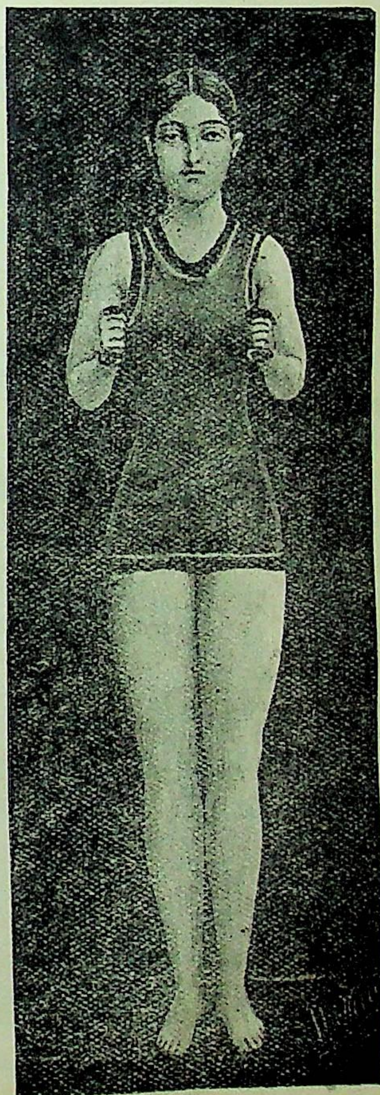
तो अधिक श्रम से हानि होने की संभावना है। मेरी पद्धति के अनुसार व्यायाम करने से किसी प्रकार की हानि होने की संभावना नहीं। क्योंकि मेरे डंबल्स के व्यायाम इतने अच्छे हैं कि उनसे मनमाना श्रम नित्य क्यों न किया जाय, उससे शरीर अधिक मज़बूत और स्वस्थ होगा।"

पिछले व्यायामों में टके-पैसे के ख़र्च का ज़िक्र नहीं था। परंतु इस व्यायाम में एक जोड़ "डंबल्स" की सबसे पहले आवश्यकता है। डंबल्स का व्यायाम मि० सैंडो-नामक एक प्रसिद्ध पाश्चात्य पहलवान ने आविष्कार किया है। पश्चिमीय ढंग के सभी व्यायामों में थोड़ा-बहुत ख़र्च अवश्य करना पड़ता है। डंबल्स के व्यायाम में एक जोड़ "डंबल्स" अवश्य ख़रीदने पड़ेंगे। किसी भी दूकान से, जहाँ पर अँगरेज़ी खेलों का सामान बिका करता है, डंबल्स ख़रीदे जा सकते हैं। ये कई तरह के होते हैं। लकड़ी के भी मिलते हैं। लोहे के भी होते हैं। मेरे विचार से, यदि लोहे के डंबल्स ख़रीदने हों, तो चार-चार पौंड वज़न के लेने चाहिए। स्प्रिंगवाले डंबल्स कुछ महँगे होते हैं, किंतु अच्छे होते हैं। इसलिये जहाँ तक हो सके, स्प्रिंगदार डंबल्स ख़रीदने चाहिए। लकड़ी के डंबल्स नमूना देकर बढ़ई से बनवाए जा सकते हैं। सारांश यह कि इस व्यायाम में सबसे पहले डंबल्स की ज़रूरत है, इसलिये कहीं से भी डंबल्स जुटा लेने चाहिए।

ग़रीब बहनें जो डंबल्स प्राप्त नहीं कर सकतीं, वे भी इस व्यायाम को कर सकती हैं। उनके लिये सिर्फ़ यही उपाय है कि वे अपनी मुट्ठियाँ इतनी मज़बूती से बंद रक्खें कि भुजा और कलाइयों पर ख़ूब बल पड़े। जितनी ताक़त कमानीदार डंबल्स के पकड़ने में लगती हो, उतनी ही ताक़त से अपनी मुट्ठियाँ बंद रखनी चाहिए। ऐसा करने से उतना ही फ़ायदा हो सकता है, जितना कि डंबल्स से होता है। परंतु इसका यह अर्थ न समझ लेना चाहिए कि डंबल्स रखने ही नहीं चाहिए। नहीं, डंबल्स ज़रूर ख़रीदने चाहिए। यह उपाय तो अत्यंत निर्धन बहनों के लिये है।

व्यायाम नं० १

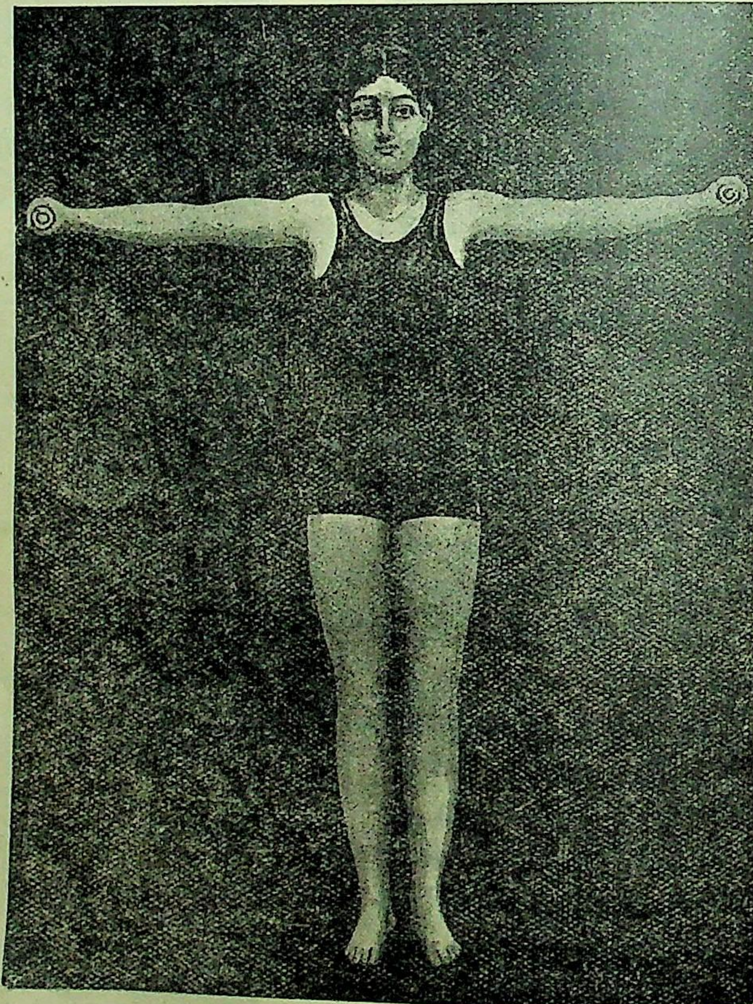
सीधी खड़ी हो। दोनो एड़ियाँ मिली रक्खो और पैरों के अँगूठों में ७-८ इंच का फ़ासला रक्खो। पीठ, एड़ी, नितंब और सिर का पिछला भाग समसूत्र में रक्खो। दोनो कुहनियाँ बग़लों में लगाओ। डंबल्स को खड़े पकड़कर बिलकुल कुहनियों की



चित्र नं० १३

सीध में सामने की तरफ़ रक्खो। अब कुहनियों को शरीर से लगाए हुए ही डंबलस को डमरू की भाँति हिलाओ। दो-दो डंबलस एक साथ हिलाने चाहिए। इस व्यायाम में सिर्फ़ कलाई ही हिलानी पड़ती है। हाथ की मुट्ठियाँ जब औंधी होंगी, तब एक दूसरे डंबलस के सिर आमने-सामने होंगे, और इसी तरह कम-से-कम दस बार धीरे-धीरे डंबलस को हरकत देनी चाहिए (देखो चित्र नं० १३)।

जब इस प्रकार कर चुको, तब दोनो हाथों को एक साथ सामने की ओर बिलकुल सीधे फैला दो। दोनो हाथ कंधों की सीध में रहें। पेट या छाती बाहर की ओर न निकलने पावे। कमर में टेढ़ापन न आ जाय। जब हाथ सीधे कर दिए गए हों, उस वक्त डंबलस हाथ में खड़े पकड़े रखना चाहिए। आड़े न हों। अब फिर डमरू की भाँति आहिस्ता-आहिस्ता दस बार डंबलस को हिलाओ। डंबलस जितने धीरे-



चित्र नं० १४

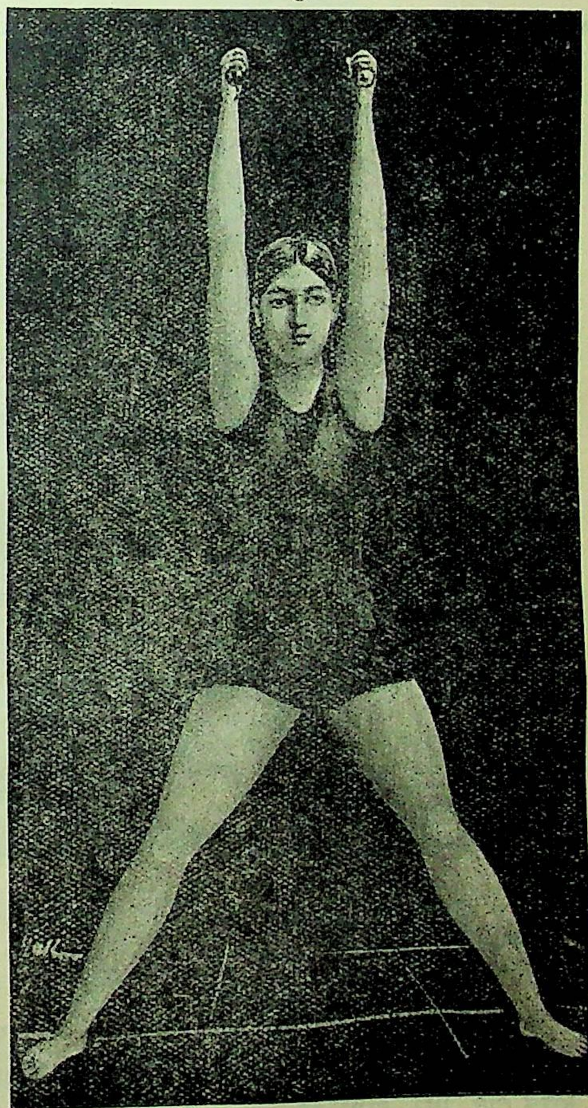
धीरे और बल-पूर्वक हिलाए जायँगे, उतना ही अधिक लाभ पहुँचेगा।

यदि कमानीदार डंबल्स हों, तो उन्हें दबाकर रखने में हाथों को ज़ोर से उन्हें पकड़ना ही होगा, परंतु यदि कमानीदार न हों और लोहे या लकड़ी के हों, तो उन्हें बल-पूर्वक पकड़ना चाहिए। ढीले हाथों से और मन न लगाकर करने से डंबल्स का व्यायाम कदापि लाभप्रद साबित नहीं हो सकता। इसलिये डंबल्स खूब दृढ़ता-पूर्वक पकड़ने चाहिए।

इस तरह १० बार हिला चुकने पर हाथों को अपने दाहने-बाएँ कंधों की सम-रेखा में फैला दो (देखो चित्र नं० १४)। दोनो हाथों का तनाव दोनो दिशाओं की तरफ़ बल-पूर्वक रहे। मन में यह ध्यान रखना चाहिए कि मैं दोनो दिशाओं को स्पर्श करना चाहता हूँ। इस वक्त शरीर बिलकुल सीधा सम-सूत्र में रखकर पहले की तरह दस बार डंबल्स को धीरे-धीरे हिलाना चाहिए।

अब हाथों को अपने माथे पर ले जाओ। अर्थात् कंधों के ऊपर बिलकुल सीधे कर देने चाहिए (देखो चित्र नं० १५)। इस वक्त हाथों को ऊपर की ओर जितना हो सके, तनाव देना चाहिए। पसलियों और पेट तक तनाव पड़ना चाहिए। हाथों को ऊपर रखकर डमरू की तरह दोनो डंबल्स एक साथ धीरे-धीरे दस बार हिलाने चाहिए।

इस व्यायाम में चाहो, तो पैरों को कुछ फ़ासले पर रखकर भी व्यायाम कर सकते हो। यदि दोनो हाथों से एक साथ व्यायाम करने में असुविधा जान पड़े, तो पहलेपहल एक-एक हाथ से ही अभ्यास करना चाहिए। जब एक-एक हाथ से अभ्यास हो जाय, तब एक साथ दोनो हाथों से करना चाहिए। इस समय श्वासोच्छ्वास नाक से ही करना चाहिए। किसी भी व्यायाम में भूलकर भी मुख से साँस नहीं लेना चाहिए। डंबल्स के व्यायाम में कपड़े चुस्त नहीं पहनने चाहिए। ढीले कपड़े पहनकर व्यायाम करने से लाभ होता है; क्योंकि व्यायाम के समय रुधिर की गति तेज़ हो जाती है, और वह तंग वस्त्रों के कारण सारे शरीर

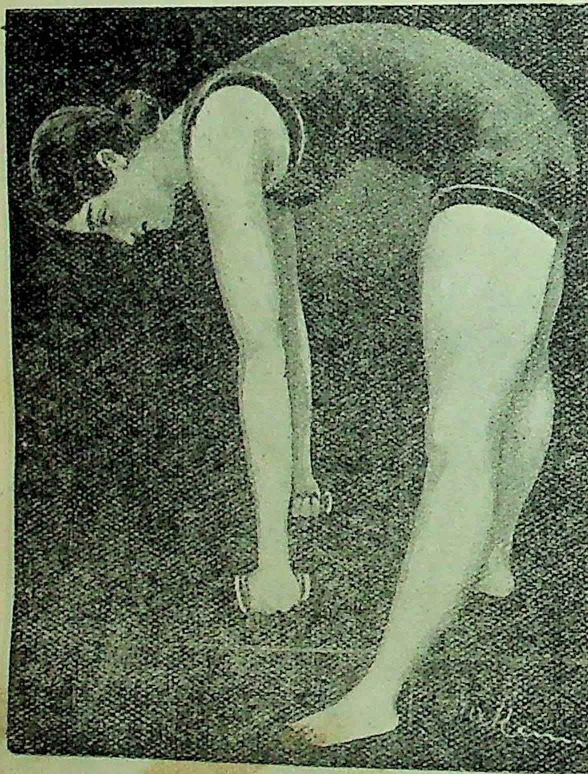


चित्र नं० १५

में, यथेष्ट परिमाण में, नहीं दौड़ने पाता। इस व्यायाम से कलाइयाँ बहुत ही बलवान् और मज़बूत बन जाती हैं। मज़बूत और सुडौल कलाइयों से शरीर की शोभा भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त पेट, फेफड़े और पसली को पूर्णतया मेहनत मिल जाती है।

व्यायाम नं० २

चित्र नं० १५ के अनुसार सिर पर डंबल्स तानकर खड़ी हो जाओ। अब तने हुए हाथों से डंबल्स को ज़मीन की ओर धीरे-धीरे झुकाओ, यहाँ तक कि दोनो



चित्र नं० १६

हाथ भूमि के जितने निकट जा सकें, ले जाओ। ऐसा करते समय घुटने न मुड़ने पावें, इस बात का बख़ूबी ध्यान रक्खा जाय (देखो चित्र नं० १६)।

इसके बाद फिर हाथों को ऊपर की ओर ले जाओ। ऊपर ले जाते वक़्त हाथों में ढीलापन न आने पावे, वे अच्छी तरह तने रहें (देखो चित्र नं० १५)।

ऊपर ले जाकर फिर डंबल्स को कंधों के नीचे बग़ल में लाओ। कुहनी तक दोनो हाथ पसलियों से सटे रहें। डंबल्स सामने की ओर खड़े हुए हों (देखो नं० १३)।

इसके बाद दोनो हाथों को दाहनी-बाईं ओर फैलाओ और डंबल्स को कंधों की सीध में रक्खो। इस वक़्त हाथों में ख़ूब तनाव देना चाहिए। यदि व्यायाम कमरे के अंदर किया जा रहा हो, तो इस बात का ख़याल करना चाहिए कि मैं अपने हाथों को दीवारों से लगा दूँगा (देखो चित्र नं० १४)।

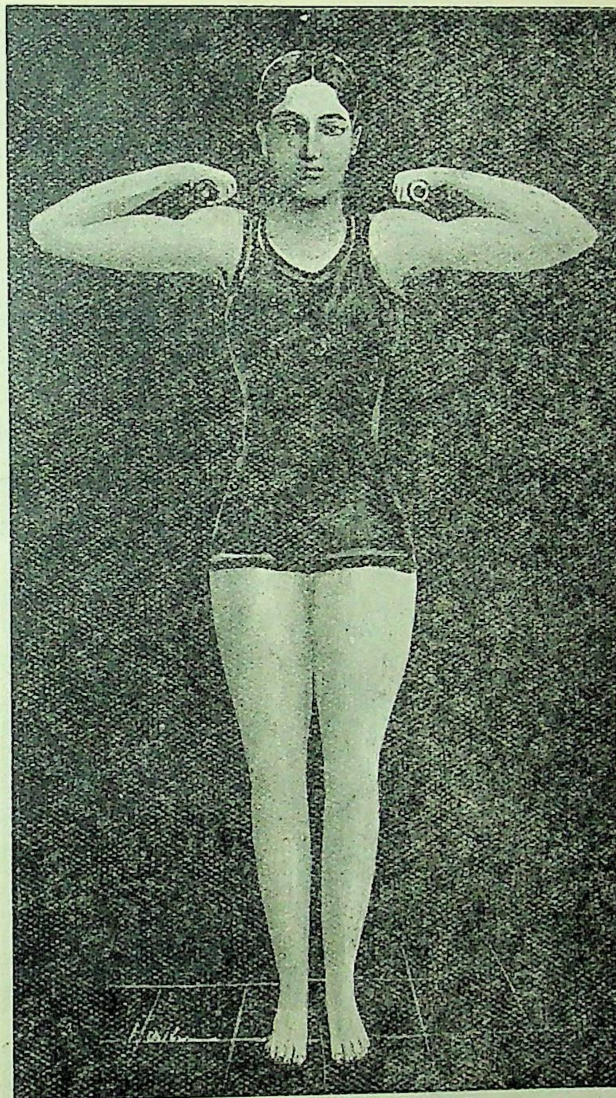
थोड़ी देर तक हाथों को चित्र नं० १४ के अनुसार तने हुए रखकर, फिर चित्र नं० १६ के अनुसार हाथों को पृथ्वी की तरफ़ झुका दो। देखना, घुटने न झुकने पावें और हाथों को जितना हो सके, भूमि की ओर ले जाया जाय।

इतना हो चुकने पर विश्राम के लिये दोनो पैरों को मिलाकर और डंबल्स-सहित हाथों को सीधे लटकाकर खड़े हो जाओ। इस वक़्त सारे शरीर को ढीला छोड़ दो। यदि कमानीदार डंबल्स हों, तो कमानियों को भी ढीली छोड़ दो।

इस व्यायाम नं० २ के करने से भुजाएँ, टाँगे, पीठ और छाती मज़बूत होती हैं। इस व्यायाम को एक बार करने से काम नहीं चलेगा। अपनी शक्ति के अनुसार कई बार करना चाहिए।

व्यायाम नं० ३

नंबर २ के व्यायाम की थकान जब कुछ कम हो जाय, तब ताज़ा होकर नंबर ३ के व्यायाम के लिये तैयार हो जाओ। अपने दोनो डंबल्स अपने कंधों पर कुहनियाँ मोड़कर रक्खो। हाथों की कुहनियाँ नीचे की ओर या आगे-पीछे की तरफ़ झुकी हुई या



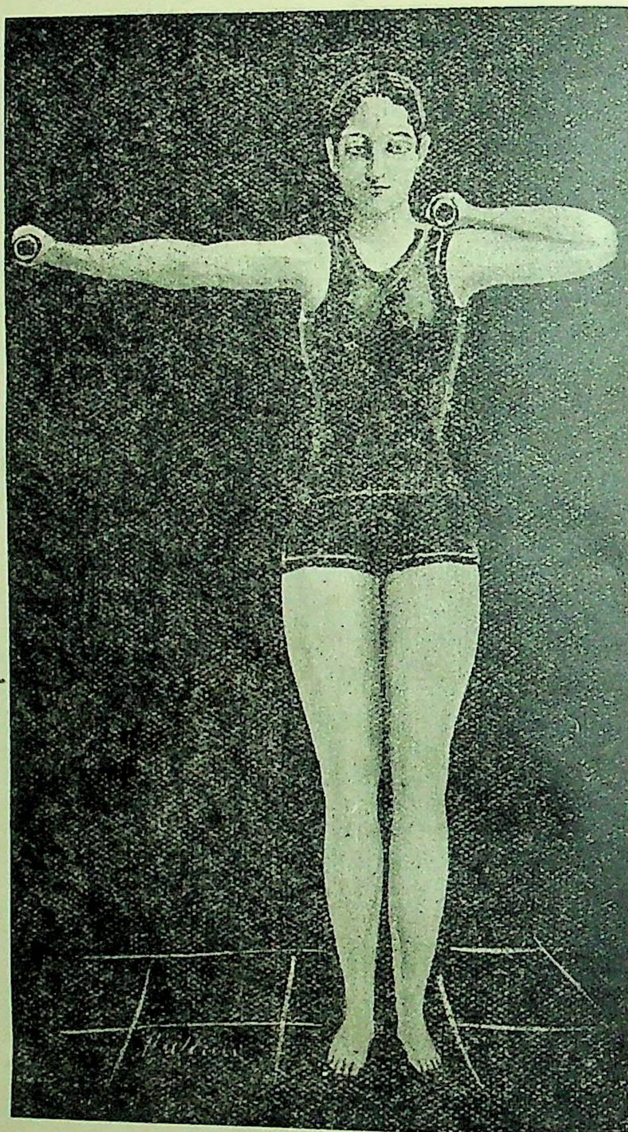
चित्र नं० १७

मुड़ी हुई न हों, बल्कि सीधी सम-रेखा में हों (देखो चित्र नं० १७)।

अब धीरे-धीरे हाथ और कलाइयों पर ज़ोर देते तथा कंधों पर भी पूरा वज़न डालते हुए अपने दाहने हाथ को कंधे की सीध में सीधा फैलाओ। हाथ में किसी तरह का झोक अथवा टेढ़ापन न रहे, इस बात का पूर्णतया ध्यान रक्खो (देखो चित्र नं० १८)।

अब हाथ को खींचकर फिर कंधे की ओर लाओ और डंबल को अपने कंधे पर रक्खो (देखो चित्र नं० १७)। अब फिर पहले की तरह अपना हाथ फैलाओ (देखो चित्र नं० १८)। इस तरह दस बार करो।

जिस तरह दाहने हाथ से व्यायाम किया है, उसी तरह अब बाएँ हाथ से करो। और जितनी बार दाहने से किया हो, उतनी ही बार बाएँ हाथ से भी करो। या



चित्र नं० १८

यों भी किया जा सकता है कि एक बार यह व्यायाम दाहने हाथ से किया जाय और दूसरी बार बाएँ हाथ से, फिर तीसरी बार दाहने से और चौथी बार बाएँ से। इस प्रकार करने पर भी वही फल होता है, जो अलग-अलग करने से होता है।

इसके बाद दोनो हाथों को चित्र नं० १४ के अनुसार फैला दो और फिर डंबलस-सहित दोनो हाथों को एक साथ खींचकर चित्र नं० १७ के अनुसार कंधों पर रक्खो। इस प्रकार इस हरकत को भी १० बार करो।

इस व्यायाम से कंधे मज़बूत हो जायँगे, और भुज-दंड सुदृढ़ और सुडौल बन जायँगे। कलाइयाँ भी मज़बूत हो जायँगी।

(१) ख़वास ख़ाँ शेरशाह का सिपह-सालार था। उक्त ग्रंथ में दो ख़वासख़ाँओं का उल्लेख आया है। प्रथम का कुछ काल के पश्चात् ही शेरशाह से संबंध-विच्छेद हो गया था। उसका क्या परिणाम हुआ, वध का क्या कारण था, यह कुछ पता नहीं चलता। संभव है, उक्त कारणों से ही उल्लेख न किया गया हो। तब अन्य सरदार को ख़वासख़ाँ की उपाधि दी गई थी। इस कथन से भी उक्त घटना का कुछ समर्थन होता है।

(२) तत्कालीन बयाना एक अलग राज्य और सुदृढ़ स्थान था। आजकल की भाँति भरतपुर-राज्य के अंतर्गत न था।

कवि के संबंध में कुछ भी विवरण नहीं मिलता। इस नाम का यह प्रथम कवि हिंदी-जगत् के सम्मुख आता है। केवल यह अनुमान होता है कि यह जाति का भाट था, और संभवतः ख़वासख़ाँ का आश्रित था। नृसिंह उसका कोई संबंधी होगा।

ऐतिहासिकों को चाहिए कि इस घटना पर कुछ विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयत्न करें। काव्य बहुत ही उत्तम और प्रकाशित होने योग्य है। इस पुस्तक में ग्रंथ-समाप्ति नहीं की गई है, और न लिखने व बनाने की तिथियाँ ही इसमें मिलती हैं। परंतु यह निश्चित है कि लिखावट प्राचीन है, भाषा भी कुछ प्राचीनपन लिए हुए है।

यह घटना कहाँ तक सत्य है, कोई गंभीर ऐतिहासिक ही बतला सकते हैं। इस संबंध में अधिक अन्वेषण की आवश्यकता है।

भगीरथप्रसाद दीक्षित

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें, कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।



साधारण बातें



वायु-सेवन—शुद्ध वायु में जीवन व्यतीत करवाना शिशु के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। यदि ऋतु उत्तम हो, किसी प्रकार की उष्णता या शीत अधिक न हो, तो सावधानी के साथ शिशु को बाहर घुमाने ले जाने में कोई हानि नहीं। शिशु को दूसरे दिन से ही बाहर ले जाया जा सकता है। वायु के साथ-साथ शिशु को धूप में भी बैठाना चाहिए। इससे उसकी त्वचा एवं रक्तवाहिनियों को उत्तेजना मिलती है। सीधी वायु और धूप के मुख या शरीर पर पड़ने से बचाना चाहिए। सोते समय भी शिशु के गृह के दरवाज़े और खिड़कियाँ खोल देना चाहिए। सर्दी से डरकर खिड़कियाँ बंद करने की अपेक्षा उष्ण वस्त्रों का उपयोग उत्तम है। इसके अतिरिक्त संक्रांत वायु-मंडल से (विशेषतः निमोनिया, कुकर-कास की अवस्था में) भी रक्षा करनी चाहिए। मुँह सर्वथा खुला रखना चाहिए। मच्छर से बचने लिये मसहरी लगानी चाहिए। जहाँ तक हो, शिशु को नाज़ुक न बनने दे। कारण, बीमारी से जो जितना घबराकर दूर भागते हैं; बीमारी उतना ही उनके समीप आती है।

स्वच्छता—शिशु को प्रतिदिन कोसे पानी से (शीत पानी उत्तम है) स्नान कराना चाहिए। परंतु जब तक नाल न गिरे, तब तक ग़ोता नहीं देना चाहिए। साबुन इत्यादि कृत्रिम वस्तुओं का उपयोग यथाशक्ति कम करना चाहिए। स्नान के पश्चात् ख़ुश्क करना आवश्यक है। शिशु को धूल में खेलने से बचाना चाहिए। यक्ष्मा-रोग के कीटाणु प्रायः इसी समय बच्चों पर आक्रमण करते हैं। फ़र्श साफ़ होना चाहिए। बालों में तेल (दही या सरसों उत्तम है) लगाना चाहिए, जिससे आपस में उलझ न जायँ एवं जुएँ न हो जायँ। मुख की स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। दूध पिलाने से पूर्व और पश्चात् गीली रुई से मुख साफ़ कर देना चाहिए। संक्रांत, रुग्ण शिशुओं से पृथक् रखना चाहिए।

वस्त्र—शिशुओं के वस्त्रों में ये गुण आवश्यक हैं—

(१) वस्त्र सुकोमल हों, जिससे शरीर पर किसी प्रकार का विक्षोभ न हो सके।

(२) वस्त्र उचित उष्णिमा दें। यदि वस्त्रों से अधिक उष्णिमा होगी, तो शिशु रोता रहेगा।

उसको नींद न आवेगी। इसके अतिरिक्त त्वचा लाल हो जायगी। उस पर कोठ निकल आएँगे।

(३) शरीर की पूर्ण रक्षा कर सकें। यह रक्षा आघात और शीत से पूर्ण होनी चाहिए। शीत बच्चों पर शीघ्र प्रभाव करता है। निमोनिया, कास से विशेष रूप में बचाना चाहिए।

(४) वस्त्र भारी न हों। वस्त्र इतने हलके होने चाहिए, जिससे उसकी गति में बाधा न हो।

(५) वस्त्र ढीले होने चाहिए, जिससे शरीर का प्रत्येक अंग गति कर सके। उनकी वृद्धि पूर्णतः हो। विशेषतः कोष्ठ (पेट), छाती, बग़ल, ग्रीवा पर तंग नहीं होना चाहिए। कोष्ठ पर वस्त्र के तंग होने से आँतों और आमाशय पर दबाव पड़ने से अजीर्ण हो जाता है।

(६) वस्त्रों पर अधिक गहरा रंग नहीं होना चाहिए। कारण, गहरा रंग मच्छरों को खींचता है। काला रंग गर्मी को विलीन करता है। मिट्टी आदि से मलिन न हों, इसलिये ख़ाकी या भूरे रंग के वस्त्र उत्तम हैं।

रूई या रेशम का वस्त्र गर्मियों के लिये उत्तम है। सर्दी में ऊन के वस्त्र अच्छे हैं, परंतु त्वचा के साथ उनको नहीं पहनना चाहिए। कारण, यह न तो पसीने को शीघ्र चूसता है, और न शीघ्र शुष्क होता है। उत्तम हो, यदि उनमें रेशम या सूत मिला देवें। कारण, ऊन धुलने से सिकुड़ जाती है। वस्त्रों की सच्छिद्रता आवश्यक है। वस्त्रों की सच्छिद्रता देखने के लिये मुख पर रखकर फूक मारकर देखना चाहिए। इसके साथ वस्त्र ऐसे होने चाहिए, जो सुगमता से पहनाए या उतारे जा सकें। वस्त्र को सदा लिटाकर पाँव की ओर से पहनाना चाहिए। इससे बाज़ू उतरने का भय नहीं रहता।

निर्बल, कमज़ोर बच्चे के पेट पर फ़लालैन की पट्टी लपेट देनी चाहिए। विशेषतः जब हरे-पीले रंग के दस्त आते हों। चार मास के बाद इसका स्थान Abdominal Band को दे देना चाहिए।

वस्त्रों को स्वच्छ रखने के लिये प्रतिदिन बदल देना चाहिए। उनको प्रतिदिन धो देना चाहिए। मोज़े यदि बरते जायँ, तो तंग नहीं होने चाहिए। बूट भी तंग, पाँव को भींचनेवाला, न हो। उत्तम यही है कि नंगा रहने दिया जाय, जिससे पाँव की वृद्धि हो सके। सर्दी में पाँव तथा कोष्ठ को सर्दी से बचाना चाहिए। वस्त्र गरम हों, परंतु हलके होने चाहिए। गर्मियों में जाली का वस्त्र उत्तम है।

रात्रि में हलका, ढीला वस्त्र होना चाहिए। उत्तम यही है कि एक चोला-सा बनवा दें, जिसमें बाज़ू भी आराम से गुज़र सकें। परंतु इतना बड़ा न हो, जिसमें बच्चा उलझ सके। शिशु के माथे पर पसीना आना वस्त्रों के गरम होने का साक्षी है *।

शयनागार—उत्तम यही है कि माता और शिशु के सोने के कमरे पृथक् हों। यदि यह न हो सके, तो शिशु को पृथक् शय्या पर, माता के पास, सुला देना चाहिए। साथ में सोने से जहाँ एक दूसरे की प्रश्वास, श्वास के रूप में, लेते हैं, वहाँ बाज़ू या किसी अंग के नीचे दबने से शिशु की मृत्यु या अन्य रोग हो जाते हैं। सोने के लिये शय्या लोहे की हो, तो उत्तम है। उसके दोनो ओर गद्दी एवं लोहे का जंगला होना

---

* वास्तुविद्याकुशलः प्रशस्तं रम्यमतमस्कं निवातं प्रवातैक-देशं दृढमपगतं श्वापदपशुदंष्ट्रिमूषिकपतंगसुसंविभक्त-सलिलोदूखलमूत्रवर्च्चस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं यथर्तु शयनासनास्तरन् सम्पन्नं कुर्यात्। तथा सुविहितरक्षाविधान-बलिमंगलहोमप्रायश्चित्तं शुचिवद् वैद्यानुरक्तजनसम्पूर्णमिति कुमारान्तारविधिः।

शयनास्तरणप्रावरनानि कुमारस्य मृदुलघुशुचिसुगन्धानि स्युः। स्वेदमलजंतुमंति मूत्रपुरीषोसृष्टानि च वर्जयानि स्युः। असति सम्भवेन्येषां तान्येव च सुप्रक्षालितोपधानानि सुधूपितानि, सुशुष्कशुदनि प्रयोगं गच्छेयुः। धूपनानि पुनर्वाससां शयनास्तरणप्रावरणानान्च यवसर्षपातसी हिंगुगुग्गुलु... सर्प निर्मोकानि घृतसम्प्रयुक्तीनि स्युः।

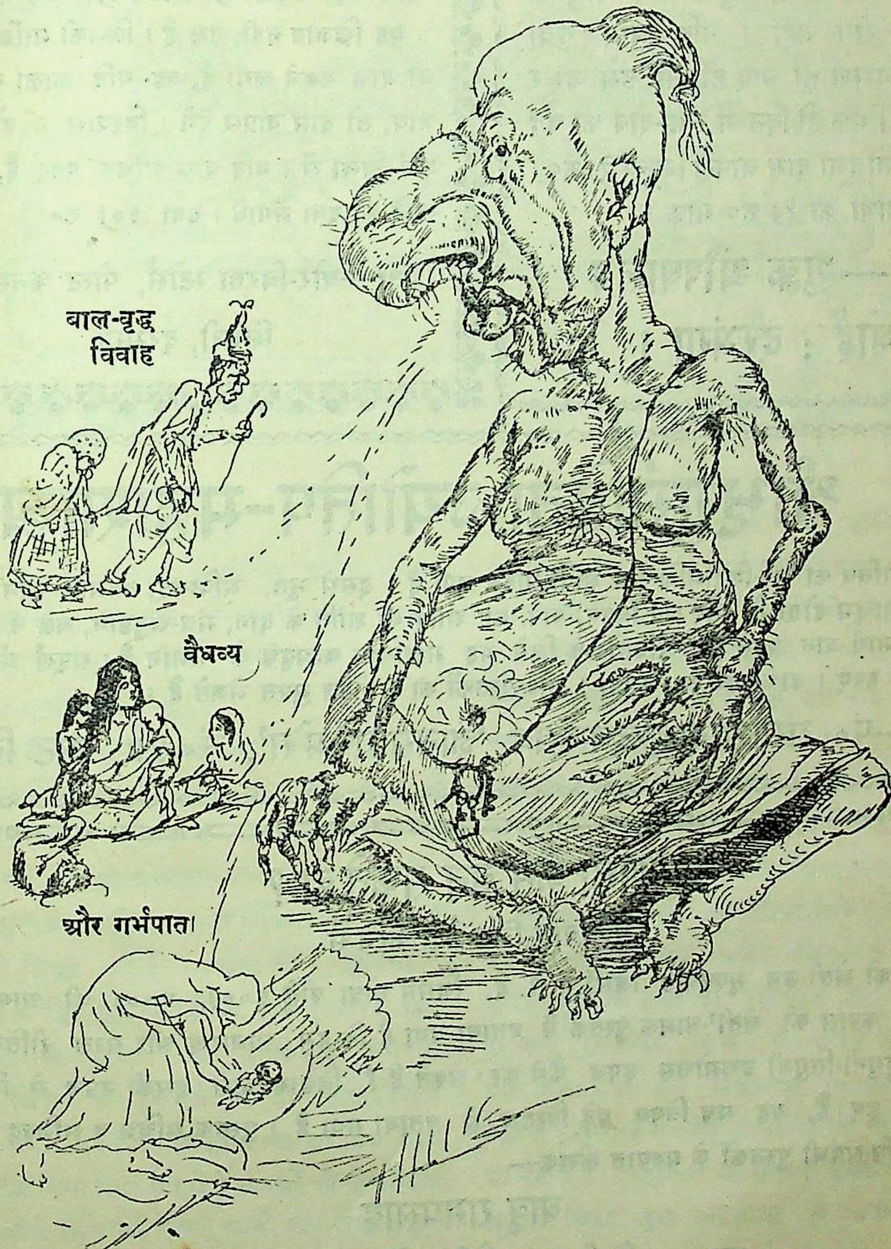
चाहिए। कमरा ऐसा होना चाहिए, जिसमें अनावश्यक वस्तुएँ न हों, एवं सुगमता से धोया जा सके। कमरे में प्रकाश और वायु का अव्याहत प्रवेश होना चाहिए। कमरा सदा ऊपर के खंड में चुनना चाहिए। कमरे का ताप स्थिर रखना चाहिए। ६० से ६५ फ० से अधिक उष्णिमा कभी नहीं होने देनी चाहिए। अधिक उष्णिमा से अतिसार, पसीना, ज़ुकाम, सुखांश, शूल आदि रोग हो जाते हैं। प्रकाश का रहना कोई आवश्यक नहीं। विशेषतः मोमबत्ती या तेल के लैंप तो किसी भी प्रकार से जलते नहीं रहने देने चाहिए। कमरे में पर्याप्त वायु आनी चाहिए। वायु शुद्ध रहे, इसका विशेष ध्यान रखकर मिट्टी का तेल या कोयले नहीं जलाने चाहिए। शिशु को सीधे वायु के झोंके से पृथक् रखना चाहिए।

मल-त्याग—प्रथम २४ घंटों में शिशु को मल-त्याग के लिये दो-तीन बार जाना पड़ता है। कभी-कभी इससे अधिक बार भी। परंतु पीछे से वह एक या दो बार ही जाता है। मल का पतला या गाँठ बँधकर आना अथवा मल में फुट्टियों का आना क्रमशः अतिभोजन (अतिसार), न्यून भोजन (मलबंध) एवं वसा आधिक्य (अपचन) का सूचक है। मल पीला (पित्त के कारण) तथा नरम एक-सा होना चाहिए। मल में रक्त मिला होने से उसका रंग काला हो जाता है। अतः कारण की परीक्षा करनी चाहिए। मल-त्याग की आदत शुरू से ही नियमित समय की डालनी चाहिए। मल उस समय आए या नहीं, माता या धात्री को चाहिए कि नितंब के भार बैठकर, शिशु का मुख अपनी ओर रखकर, उसे अपने दोनो पाँव के पंजे पर बैठावे। पंजों को भूमि से उठा रक्खे। अथवा सिर को बाज़ू का सहारा देकर, टाँगों को हाथ से पकड़कर मल करावे। परंतु प्रथम उपाय स्वाभाविक है। मल-त्याग का समय प्रातः और सायं रखना चाहिए। नीचे मिट्टी का तसला रख देना चाहिए। मल न आवे, तो दक्षिण दिशा से वाम दिशा की ओर पेट मलना चाहिए। यदि इससे लाभ न हो, तो मल-द्वार में साबुन की वर्त्ति का उपयोग करना चाहिए। इस नियत आदत के कारण माता-पिता कष्ट से बच सकते हैं।

व्यायाम—व्यायाम प्रत्येक प्राणी के लिये आवश्यक है, चाहे वह शिशु हो या युवा, पुरुष हो या स्त्री। बालकों का व्यायाम युवाओं की भाँति नहीं होता। उनका सबसे बड़ा व्यायाम रोना है। रोना और प्राणायाम एक ही क्रिया है। फुप्फुस के फैलने से श्वास अधिक मात्रा में आता है। फिर वह हाथ-पाँव चलाने लगता है। पाँव के बल रेंगना ही उसके लिये पर्याप्त है। ग्रीष्म-ऋतु में बच्चे को कुछ समय के लिये नंगा कर देना चाहिए। शिशु को शीघ्र खड़ा करने का अभ्यास नहीं करवाना चाहिए। अन्यथा टाँगों के विकृत होने से वह टेढ़ा होकर चलने लगेगा। शिशु को जन्म से ही सीधे बैठने, सीधे चलने और सीधे खड़े रहने की शिक्षा देनी चाहिए।

श्रीअत्रिदेव गुप्त (वैद्य)

नाक की आड़में



समाज के कर्णधार ब्राह्मण

पनडजी—'शारदा-ऐक्ट न काम में आने पावे, नाक नीची हो जायगी।'

❀ स्वप्न-दोष की अद्भुत जड़ी ❀

महाशय,

स्वप्न-दोष के समान सुख और आयु को हरनेवाला रोग नहीं। यदि आप दवा कराकर निराश हो गए हों, तो इसे ज़रूर आजमावें। एक ही दिन में स्वप्न-दोष को बंद न कर दे, तो दूना दाम वापस। मूल्य ३) रु०। ग़रीब विद्यार्थी को १) रु० माफ़।

पता—शुक्ल औषधालय
धोई ; दरभंगा।

सफ़ेद बाल १५ दिन में जड़ से काला

दाम बड़ा बक्स ६), छोटा ४), नमूना १)

यह ख़िजाब नहीं, तेल है। जिसकी मालिश से जो बाल पकने लगा है, वह यदि काला न हो जाय, तो दाम वापस देंगे। विश्वास न हो, तो शर्त लिखा लें। यदि बाल अधिक पका है, तो खाने की दवा मँगावें। दवा १०) रु०

पता—बीर-बिरता स्टोर्स, पोस्ट कनसी सिमरी, दरभंगा

B 330

श्रीभृगुसंहिता ज्योतिष-महाशास्त्र

यह ज्योतिष का सर्व-शिरोमणि ग्रंथ भाषा-सहित छपा है। इससे भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीन जन्म का हाल मालूम होता है, और सब विषय, पाप, कष्ट आदि की शांति के दान, मंत्र-अनुष्ठान, यत्न व अनेक सुखों के मार्ग जान पड़ते हैं। पंडितों के लिये यह महाविद्या कल्पवृक्ष के समान है। संपूर्ण ग्रंथ का मूल्य १०) रुपए। डाक-ख़र्च २॥) रुपया। और पुस्तकों का सूचीपत्र मुफ़्त भेजते हैं।

पता—पं० गंगाशरण-हरदेवसहाय, 'ज्ञानसागर-प्रेस', नं० ५५, मेरठ सिटी

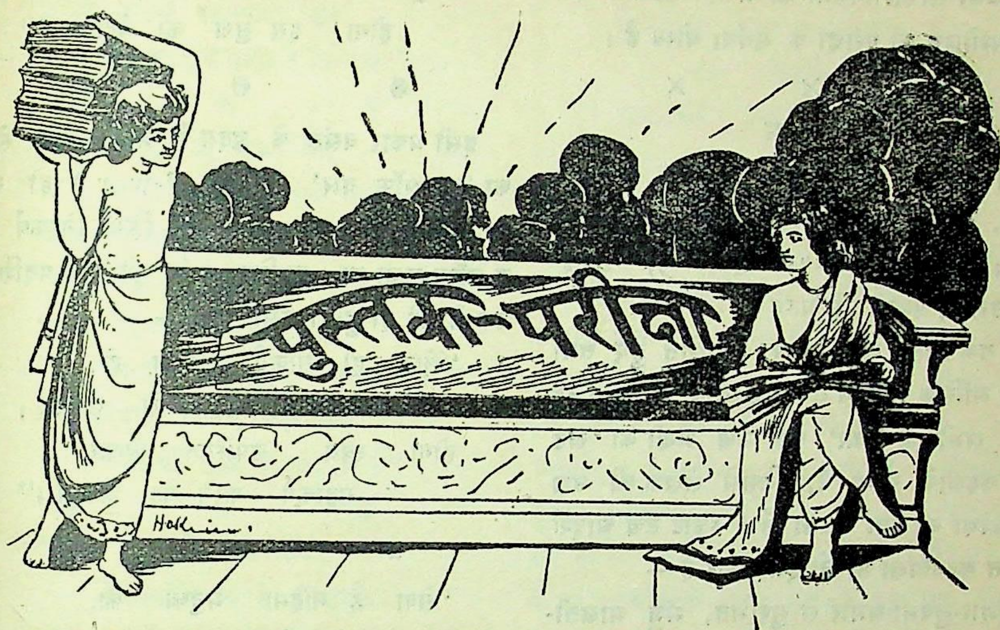
लखपती कैसे बन सकते हो ?

मूल्यवान् जिंस पैदा करने से

कपास की खेती उन मूल्यवान् जिंसों में से है, जिसमें बीघा पीछे ३००), ४००) की आय हो सकती है। 'कपास की खेती'-नामक पुस्तक में बताया गया है कि हम साधारण और सरल रीतियों से कपास की दुगुनी-तिगुनी उत्तमोत्तम उपज कैसे कर सकते हैं? विलायतवाले इसकी उपज से कितने बड़े धनवान् हुए हैं, यह सब विषय बड़े विस्तार से बताया गया है। पुस्तक सचित्र व सजिल्द है। मूल्य ३) कृषि-संबंधी पुस्तकों के प्रख्यात लेखक—

बाबू रामप्रसाद
सूबा व डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, गुना (ग्वालियर)

से हिंदी-उर्दू-भाषा में मिल सकती है।



१. साहित्य

रचना-मयंक—लेखक, श्रीसुरेश्वर पाठक, विद्यालंकार, विशारद ; प्रकाशक, सरस्वती-भंडार, पटना ; आकार डबल-क्राउन १६पेजी ; पृष्ठ-संख्या ३०८ ; मूल्य १।) ; छपाई-सफ़ाई सुंदर ।

यह 'सरस्वती-पुस्तकमाला' का १७वाँ पुष्प है। लेखक द्वारा लिखित भूमिका के आवश्यक अंशों को यहाँ उद्धृत करने से पुस्तक के संबंध में पाठकों को पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जायगा—

"यह पुस्तक प्रचलित रचना-शैलियों को लक्ष्य में रखकर ही लिखी गई है । अतः अन्य पुस्तकों में इस संबंध में दिए गए नियमों से, इस पुस्तक में दिए गए नियमों में, पाठकों को बहुत-कुछ नवीनता मिलेगी । लिखने का ढंग भी नया ही प्रतीत होगा । कुछ नए तथा सर्व-प्रिय सिद्धांतों का समावेश करने का भी प्रयत्न किया गया है। जैसे कारकों की विभक्तियाँ शब्दों के साथ मिलाकर लिखी जायँ या अलग, इस संबंध में युक्ति-युक्त विवेचन किया गया है । हिंदी की उत्पत्ति के संबंध में नए विचार के पाश्चात्य विद्वानों के मत की पुष्टि की गई है । कदाचित् कुछ विद्वानों को यह मत रुचिकर न हो। इसी प्रकार बहुत जगह नए-नए शब्दों, पदों, वाक्यों तथा मुहाविरों के प्रयोग की विधि पर विचार करने की कोशिश भी हुई है । इस पुस्तक से रचना सीखने की अभिलाषा रखनेवाले विद्यार्थियों का उपकार हो, इस बात को ध्यान में रखकर पुस्तक को यथासंभव सीधे तौर पर लिखने की चेष्टा की गई है, जिससे विषय के समझने में कठिनाई का सामना न करना पड़े । हर विषय को यथाविधि सरल भाषा द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है ।"

पुस्तक में कारकों की विभक्तियों को शब्दों के साथ मिलाकर और अलग लिखने के संबंध में, दोनो स्कूलों के मतों का दिग्दर्शन करा दिया गया है, परंतु मिलाकर लिखने के संबंध में ही अधिक ज़ोर दिया गया है । लेखक का व्यक्तिगत मत भी यही है। पुस्तक में उर्दू-भाषा-संबंधी ज्ञातव्य बातों का वर्णन है। 'कहावतों का प्रयोग' तथा 'निबंध-रचना' संबंधी विषय इस व्याकरण की उपयोगिता को बढ़ाते हैं। पुस्तक के चतुर्थ खंड में कतिपय नए विषयों का उल्लेख है, अतः अत्यंत महत्त्व-पूर्ण कहा जा सकता है। सब कुछ होते हुए भी काव्य-

रचना-संबंधी संचित नियमों का अभाव खटकता है। पुस्तक सम्मेलन की परीक्षा के सर्वथा योग्य है।

× × ×

२. काव्य

स्वप्न—लेखक, कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग; आकार डबल-क्राउन १६पेजी; पृष्ठ-संख्या १०५; मूल्य ॥); छपाई-सफ़ाई उत्तम; प्रकाशक से प्राप्य।

अब तक जितने खंड काव्य प्रकाशित हुए तथा वर्तमान मासिक साहित्य में समय-समय पर छपते रहे हैं, उन सभी से 'स्वप्न' एक उच्च श्रेणी का खंड काव्य कहलाने योग्य है, जिससे लेखक की उच्च महत्वाकांक्षा का पता चलता है। प्लाट उच्च आदर्श उपस्थित करनेवाला है, जो इस प्रकार है—

काश्मीर-सुषमा-समीर से सुरभित, मंजु मालती-लता-भवन-समन्वित, यौवन की उमंगों से उल्लसित 'वसंत'-नामक नवयुवक एक ओर 'सुमना' नाम्नी सहधर्मिणी के सहवास का सुख-स्वप्न देख रहा है, तो दूसरी ओर देश की दीन दशा को देखकर उसका हृदय परिप्लावित होता है। यह देख द्रवित-हृदय वसंत सहसा कहता है—

"हाय! मुझे धिक् है, जो इनका
कर न सका मैं कष्ट निवारण!"

परंतु उसकी प्राण-प्रिया—

"चपल पदों से आ कहती है
सस्मित—'वेणी कस दो, प्रियतम!,
पूर्व पुण्य से ही होता है
प्राप्त जगत में यह सुख अनुपम।"

❀ ❀ ❀

"किंतु उसी क्षण यह उठता है
कर समाज-सेवा-व्रत-धारण।
मैंने किया जगत में इतने
आर्त जनों का कष्ट निवारण;
इतनों के तमसावृत मन में
मैंने किया ज्ञान-अरुणोदय;
सोचूँगा क्या कभी? अहो! कब
होगा इस सुख का चंद्रोदय?"

❀ ❀ ❀

इसी प्रकार वसंत के हृदय में माया और सेवा का 'टग ऑफ़् वार' (Tug of war) हो रहा था। दुविधा में पड़ा हुआ युवक किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सका था। आख़िर वसंत की मार्ग-प्रदर्शिका उसकी स्त्री ही हुई। उसने कहा—

"छोटा ही सत्कर्म क्यों न हो,
करने लगो हृदय से लगकर;
होगा स्वयं उपस्थित आकर
महत्कर्म करने का अवसर।"

❀ ❀ ❀

"सेवा है महिमा मनुष्य की,
न कि अति उच्च विचार-द्रव्य-बल;
मूल हेतु रवि के गौरव का
है प्रकाश ही, न कि उच्च स्थल।"

❀ ❀ ❀

वसंत को इन उपदेशमय वाक्यों से कुछ सांत्वना मिली।

देश शत्रु-भय-रहित, स्वाधीन था। जनता विलासिता का सुख भोग कर रही थी कि अचानक द्वेष एवं ऐश्वर्य-लालसा-वश किसी शत्रु ने सेना-सहित सीमा-प्रांत पर चढ़ाई कर दी। राज्य के स्वामी के दल-बल-सहित सेना का सामना करने पर भी वैरियों के पैर नहीं उखड़े। यह देखकर हतोत्साह नागरिक नारियों ने अपने-अपने पतियों तथा नवयुवक पुत्रों को युद्ध के लिये भेजा। दल-के-दल वीर युवकों ने निज कर्तव्य-परायणता का परिचय दिया। माताएँ उनके वीरोचित कार्य पर बधाइयाँ दे रही थीं। इसी अवसर पर सुमना ने अपने पति को लक्ष्य कर कहा—

"मेरा कोई रण में होता,
मैं सोचा करती हूँ हरदम;

मैं भी उसकी रण-वार्ता सुन
कितना सुख पाती, हे प्रियतम !"

❀ ❀ ❀

"शक्ति-प्रदर्शन को जब कोई
गर्वित शत्रु प्रबल दल सजकर
या बहु वैभव देख लोभ-वश
कोई निठुर दस्यु सीमा पर
आकर धन-जन पर पड़ता है
निर्भय रण-दुंदुभी बजाकर,
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के
क्या बैठे रहते हैं घर पर ?"

❀ ❀ ❀

"तुम्हें ज्ञात है, कैसा संकट
है स्वदेश पर हे प्राणेश्वर !
शोभा नहीं तुम्हें देता है
घर पर रहना इस अवसर पर !"
शस्त्र ग्रहण कर, रण में जाकर,
विजय प्राप्त कर वीर अरिंदम !
मनोकामना इस दासी की
पूर्ण करो प्राणाधिक प्रियतम !"

❀ ❀ ❀

ये सुमना के प्रोत्साहन के शब्द हैं । वसंत इसका कायरता-पूर्ण उत्तर देता है—

"धँसा हृदय में है, हे प्यारी !
तेरी चोखी चितवन का शर ;
कसका करती है गुलाब के
काँटे-सी नासिका मनोहर ;
तेरे चिबुक-गर्त में मेरा
मन रहता है मग्न निरंतर ;
मैं आहत, मैं विवश, भला क्या
कर सकता हूँ रण में जाकर ?"

❀ ❀ ❀

सुमना प्रत्युत्तर में पति को फटकार बतलाती है—

"नाथ ! तुम्हारी कायरता का
मैं ही एक-मात्र हूँ कारण ;
मुझको ही करना होगा अब
यह कलंक-कालिमा-निवारण ;
अर्द्धांगिनी तुम्हारी हूँ मैं
तुम न सही, तो मैं ही जाकर
उभय कुलों की मर्यादा की
रक्षा में होऊँगी तत्पर !"

अस्तु । नारीत्व से घृणा करती हुई स्त्री रण के हेतु प्रस्थान करती है। सुमना के चले जाने पर कापुरुष वसंत उसका अनुसंधान करता है । उसे न पाकर विरह-वेदना से प्रपीड़ित हो वसंत रोता है । स्मृति-अनुशोचन के मनोभाव प्रकट करता है । अंततोगत्वा सुमना से निराश होकर वसंत, विराग से गृह त्याग, वन की ओर चला जाता है । वहाँ स्मृति-तल्लीनता में वह शोकोद्गार प्रकट करता हुआ पुनः विलाप करता है—

"उसके सरस हृदय को पहले
था एक ही विश्व में आश्रय ;
किंतु हो गया था वियोग में
उसके लिये जगत सुमनामय ।"

❀ ❀ ❀

"प्रायः आशा की समाप्ति पर
होता है विराग का उद्भव ;
अब वह अपनी मनोभ्रांति का
करने लगा अहर्निश अनुभव ।"
लता-निकेत-निवासी बनकर
वह सोचा करता मन-ही-मन—
अहो ! प्रेम में तृप्ति नहीं है,
केवल है अनंत आकर्षण ;
शांति नहीं, केवल चिंता है,
चिंता में है कहाँ आत्म-सुख ?
सोच-सोचकर, वह अपराधी
स्वयं बन गया अपने सम्मुख ।"

❀ ❀ ❀

उधर लड़ाई होती ही रही । एक वर्ष बीत गया कि अचानक एक दिन एक नवयुवक ने वसंत को वन

में रण-निमंत्रण दिया। वसंत ने पूछा—"क्या कोई नारी भी उस युद्ध में भाग ले रही है?" युवक ने कहा—"हाँ।" यह सुनकर वसंत ने अपने को धिक्कारा, और निमंत्रण स्वीकार किया। अंत में वसंत ही के आधिपत्य में विजय हुई तथा वसंत ही को राज्य-सिंहासन मिला, परंतु उसने उसे ठुकरा दिया। सुमना को अपने जीवन में एक बार फिर प्राप्त कर उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही।

पुस्तक लिखने का उद्देश्य लेखक के प्राक्कथन से स्पष्ट है। पुस्तक पाँच सर्गों में विभाजित है। प्रारंभिक सर्गों में विरोधाभास-अलंकार का बड़ी ख़ूबी के साथ प्रतिपादन किया गया है। यह एक नई बात है। कविताएँ शृंगार-रस से ओत-प्रोत वीर-रस-प्रधान हैं। पुस्तक में सच्चे प्रेम की व्याख्या पढ़ने योग्य है। मानव-धर्म का भली भाँति विवेचन किया गया है। स्थान-स्थान पर नवयुवकों के लिये उपदेश कूट-कूटकर भरा है। अतः पुस्तक विद्यार्थियों के बड़े काम की है। कहीं-कहीं प्रूफ़ और विराम-चिह्न की ग़लतियाँ खटकती हैं। एक स्थल पर तुक-दोष भी आ गया है। पृष्ठ ५० के १५वें छंद में 'आह भर' का तुक 'दिन-भर' से मिलाया गया है। यह अक्षम्य है। कविता की भाषा भी कुछ क्लिष्ट हो गई है, अतएव फ़ुटनोट के तौर पर अथवा पृथक् रूप से 'गूढ़ार्थ-कोष' सम्मिलित करने की आवश्यकता है। आशा है, त्रिपाठीजी इस पर विचार करेंगे। इसमें संदेह नहीं कि त्रिपाठीजी का 'स्वप्न' हिंदी-संसार में एक अभूतपूर्व रचना है। मैं 'स्वप्न' की हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा-परीक्षा के कोर्स के लिये ज़ोरों से सिफ़ारिश करता हूँ। त्रिपाठीजी को चाहिए कि 'स्वप्न' की एक प्रति मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-प्रतियोगिता के लिये भी भेज दें। पुस्तक वास्तव में पुरस्कार-योग्य है। ऐसी सुंदर पुस्तक लिखने के लिये मैं त्रिपाठीजी को बधाई देता हूँ।

× × ×

सुषमा—रचयिता, श्रीजगदीश झा 'विमल'; प्रकाशक, पंडित जगदेव पांडेय, पुस्तक-प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता, चौक, मुंगेर; आकार डबल-क्राउन १६पेजी; पृष्ठ-संख्या १०६; मूल्य ॥=); छपाई-सफ़ाई मध्यम।

समालोच्य पुस्तक 'हिंदी-साहित्य-सरोज-ग्रंथमाला' का ८वाँ पुष्प है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक की उन कविताओं का संग्रह है, जो सन् १९२८ ई० में प्रतिष्ठित मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। संगृहीत ७६ कविताओं में 'विधवा', 'विजय-गीत', 'अपराध'-शीर्षक कविताएँ उच्च कोटि की हैं। 'कृतघ्न आँसू', 'आह', 'अनुमति', 'जीवन-नाव', 'दाह', 'प्रेम-तपस्वी', 'तुम्हारी हँसी', 'खोज'-शीर्षक कविताएँ भी अच्छी हैं। उद्धरण-योग्य केवल एक पंक्ति नमूने के तौर पर यहाँ उद्धृत की जाती है—"मरकर भी वे अमर हुए, जिनने रख ली सुख की लाली।" "दृष्टिकोण से"-शीर्षक पद्य में किसी की ओर कटाक्ष किया गया है, यह निंद्य है। पृष्ठ १ में 'कर सकें' का तुक 'हो सकें' से मिलाया गया है; पृष्ठ ३ में 'बरसातीं' का तुक 'छाती' से तथा 'भरतीं' का तुक 'करती' से मिलाया गया है; पृष्ठ ६ में 'आयीं' का तुक 'छायीं' लिखकर मिलाया गया है, परंतु उस स्थल पर 'छायी' क्रिट होता है। अतएव अशुद्ध है। पृष्ठ १८ की चौथी पंक्ति में 'नंदन-वन' के बीच का 'न' शायद प्रूफ़ की ग़लती से छूट गया है; इसी प्रकार पृष्ठ २४ के दूसरे Stanza की पहली पंक्ति में एक 'क' ज़बरदस्ती ठूस दिया गया है। यह प्रेस के भूतों की जियाक़त है! इसी तरह पृष्ठ २८ के दूसरे Stanza की प्रथम पंक्ति में 'अंत-स्थल' के स्थान में 'अंतस्तल' तथा द्वितीय पंक्ति में 'शुब्ध' के स्थान में 'क्षुब्ध' होना चाहिए। ये भी प्रूफ़ की अशुद्धियाँ कही जा सकती हैं। पृष्ठ ४४ के दूसरे Stanza की पहली पंक्ति में 'भुलकर' के स्थान में 'भूलकर' इस प्रकार क्रिट करना चाहिए, जिससे उस पंक्ति में एक मात्रा बढ़ने न पावे। 'भूलकर' के स्थान में 'भुलकर' का प्रयोग अशुद्ध है! पृष्ठ ५०

के चौथे Stanza की प्रथम पंक्ति का 'है' यदि 'ज्योत्स्ना' के बाद रख दिया जाय, तो ज़्यादा ज़ेब देगा। पृष्ठ ५७ के दूसरे Stanza की चौथी पंक्ति में 'आड़' के स्थान में 'आढ़' लिख देने से 'बाढ़' के तुक में कदापि उपयुक्त नहीं समझा जा सकता। इसी प्रकार पृष्ठ ७२ के चौथे Stanza में 'मर्यादा' का तुक 'बाधा' से मिलाया गया है। आशा है, कविवर 'विमल'जी पुस्तक के दूसरे संस्करण के अवसर पर इन बातों पर विचार करेंगे। पुस्तक के आरंभ में लेखक द्वारा लिखित तीन पृष्ठ का प्राक्कथन तथा प्रयाग-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर पं० अमरनाथ झा एम्० ए० द्वारा लिखित भूमिका पुस्तक के महत्त्व को बढ़ाती है। पुस्तक बनैली-राजकुमार श्रीमान् कुमार कृष्णानंदसिंहजी, कृष्णगढ़, सुलतानगंज (बनैली) के पवित्र कर-कमलों में सादर, सप्रेम समर्पित हुई है। समर्पण के साथ कुमार कृष्णानंदसिंहजी का तथा प्राक्कथन के साथ लेखक का चित्र भी है। 'विमल'-जी की कविताओं में हृदय के भाव बड़ी ख़ूबी से व्यक्त किए गए हैं। कहीं-कहीं अलंकार की छटा भी दृष्टि-गोचर होती है।

× × ×

रहिमन-सुधा (सटिप्पण)—संपादक श्रीअनूप-लाल मंडल विशारद; प्रकाशक, सरस्वती-भांडार, पटना; आकार डबल-क्राउन १६पेजी; पृष्ठ-संख्या ८६; मूल्य ॥); छपाई-सफ़ाई उत्तम; प्रकाशक से प्राप्य।

समालोच्य पुस्तक 'सरस्वती-पुस्तकमाला' का १५वाँ पुष्प है। लेखक ने अब तक महाकवि अब्दुल-रहीमख़ाँ ख़ानख़ाना पर प्रकाशित और उपलब्ध पुस्तकों का अध्ययन कर इसे विशेषतः विद्यार्थियों के लिये ही लिखा है, अतः रहीम-रचित बरवै-नायिका-भेद, मदनाष्टक, शृंगार सोरठ आदि रचनाओं को इसमें स्थान नहीं दिया गया है। इस दृष्टि से लेखक का परिश्रम सर्वथा सफल हुआ है। पुस्तक के प्रारंभ में कविवर रहीम का संक्षिप्त परिचय है, जिसमें रहीम के जीवन तथा अध्ययन-संबंधी ज्ञातव्य बातों का उल्लेख है। तदनंतर चुने हुए २५६ दोहे, ७ सोरठे, ३ कवित्त, दो सवैए तथा २ पदों का संग्रह है। फ़ुटनोट द्वारा अन्य पुस्तकों में प्रकाशित पाठांतर भी दिखला दिया गया है। पुस्तक के परिशिष्ट भाग में गूढ़ार्थ-कोष के तौर पर टिप्पणियाँ पुस्तक की उप-योगिता को बढ़ाती हैं। अंत में मुख्य-मुख्य दोहों से संबद्ध अंतर्कथाओं का वर्णन है, जो अत्यंत महत्त्व-पूर्ण है। प्रूफ़ की अक्षम्य अशुद्धियों के अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक ही में पाठांतर हो गया है। कहने का तात्पर्य यह कि 'अमी पियावत मान बिन' वाले दोहे ने (जो पृष्ठ १७ में 'दोहा' नाम से वर्णित है), आगे चलकर, पृष्ठ ४६ में, 'सोरठा' का रूप ग्रहण किया है। पृष्ठ २८ में ७४वें दोहे के अंतर्गत भी पाठांतर दिखलाना चाहिए, क्योंकि 'भरी सराय रहीम लखि' के स्थान में कहीं-कहीं 'रहिमन भरी सराय लखि' भी देखा गया है। इसी प्रकार पृष्ठ ३६ में १७६ दोहे के साथ भी यह पाठांतर दे देना चाहिए—

"जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, कहत रसिक रस जोय;
गँठ-बंधन के गाँठ ते अधिक-अधिक रस होय।"

पृष्ठ ४८ में प्रकाशित 'अन्योक्ति' का अंतिम चरण अशुद्ध है। पता नहीं, यह कविवर रहीम की ग़लती है, अथवा संपादक की। कुछ भी हो, 'पै' के स्थान में 'तौ हूँ' कर देने से छंद ठीक हो जायगा।

पृष्ठ १५ में संगृहीत निम्न-लिखित दोहा भी पिंगल की दृष्टि से अशुद्ध है—

"अंजन देहु तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय;
जिन आँखिन में हरि बसे, रहिमन बलि-बलि जाय।"

परंतु दोहे की भावोत्कृष्टता के कारण इस संबंध में मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं। इसमें संदेह नहीं कि पुस्तक संग्रह-योग्य है, तथा भक्त जनों के भी बड़े काम की है। वास्तव में रहीम की रचनाओं में उनकी हिंदू-धर्म के प्रति परिपक्वता तथा हिंदू-देवी-देवताओं के प्रति तल्लीनता दर्शनीय एवं सराहनीय है।

× × ×

मधुर लहरी—रचयिता, श्रीयुत रामसिंहासन-

सहाय मुख़्तार 'मधुर'; प्रकाशक, पं० हरिद्वार शर्मा वैद्य, बलिया; आकार डबल-क्राउन १६पेजी; पृष्ठ-संख्या ३५; मूल्य ।=); छपाई-सफ़ाई मध्यम; प्रकाशक से प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तक 'गोविंद-ग्रंथमाला' का प्रथम पुष्प है। प्रारंभ में सुप्रसिद्ध कवि पं० माखनलालजी चतुर्वेदी-लिखित अध्ययन-पूर्ण अभिव्यक्ति है। 'मधुर'-जी की अनूठी कविताओं के संग्रहकार हैं ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह। ठाकुर साहब ने 'मधुर'जी की रचनाओं के संबंध में पुस्तक के पृथक् १३ पृष्ठों में अपने उदार विचार प्रकट किए हैं। तदनंतर 'मधुर'जी की स्फुट कविताओं का संग्रह है, जो समय-समय से 'कर्मवीर', 'चाँद', 'गृह-लक्ष्मी', 'प्रभा', 'माधुरी' आदि सामयिक पत्रों तथा मासिक साहित्य में प्रकाशित हो चुकी हैं। संगृहीत कविताओं में 'डोमिन', 'आत्म-रमण', 'उस पार', 'मेघ-दर्शन', 'विवाह' आदि रचनाएँ उच्च कोटि की हैं, जिनमें 'डोमिन'-शीर्षक कविता सर्वोत्तम कही जा सकती है। 'मधुर'जी की रचनाओं से जो पाठक परिचित हैं, उनसे तो कुछ कहना ही नहीं। अपरिचित पाठकों के लिये 'मधुर' जी की कविताओं की कुछ विशेष-उल्लेखनीय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

"जल में कमल, कमल में परिमल,
रचकर उसकी मति हारी है।"

❀ ❀ ❀

क्यों भावों से भर जाता हूँ, पता नहीं पाया है;
तेरी सुंदरता में भी उस प्रभु की कुछ माया है।
क्यों तुझको कहते 'अछूत', यह सहा नहीं जाता है;
इस अँधेर नगरी में मुझसे रहा नहीं जाता है।

❀ ❀ ❀

कैसे मैं तेरे घर आऊँ, मुझको अपने घर जाने दो;
उन अभिलाषाओं को मन-ही-मन में लेकर मर जाने दो।

❀ ❀ ❀

कैसे मैं तेरे घर आऊँ, मार्ग अगम है, घर जाती हूँ;
तेरे अंतिम चरण-चिह्न पर स्मृति के चुंबन धर जाती हूँ।

❀ ❀ ❀

मन की अगणित मधुर उमंगें मन-ही-मन में रह जाती हैं;
कुछ आहों में उड़ जाती हैं, कुछ आँसू में बह जाती हैं।

❀ ❀ ❀

सूने घर में कैसे गाऊँ, कैसे झूलूँ, किसे झुलाऊँ?
मन के इन टूटे तारों पर, कैसे अब मिजराब लगाऊँ?
मुझे चढ़ा लो अपने ऊपर, मेरा जीना कठिन यहाँ है!
मुझे ले चलो उसी देश में, मेरा माखन-चोर जहाँ है!!

❀ ❀ ❀

मेरे सूने घर में सुंदरि! कब तक नहीं चलोगी?
सच कहता हूँ, मर जाएगा यह बीमार वियोगी!!

❀ ❀ ❀

प्रूफ़ की ग़लतियों के अतिरिक्त पृष्ठ १६ के दूसरे छंद के प्रथम चरण में 'हैं' का तुक 'है' से; पृष्ठ २१ में दूसरे छंद के प्रथम चरण में 'गंगे' का तुक 'उमंगें' से; पृष्ठ २५ के प्रथम छंद के द्वितीय चरण में 'यदुवंशी' का तुक 'अपनी वंशी' से (ख़ैर, यह क्षम्य समझा जा सकता है) तथा पृष्ठ २६ के तृतीय छंद के अंतिम चरण में 'नहीं है' का तुक 'वही है' से मिलाया गया है, जो पिंगल की दृष्टि से सर्वथा अशुद्ध है। आशा है, परिचायक महोदय, मुख़्तार साहब (मधुरजी) से, इस संबंध में परामर्श करेंगे। इसमें संदेह नहीं कि 'मधुर'-जी की कविताओं में भाव और हृदय है, अतएव संग्रह-कर्ता की यह सम्मति—'मधुर'जी की कविता में आदि से अंत तक वेदना की एक हृदय हिलानेवाली तड़प दिखाई देती है'—किन्हीं अंशों में ठीक उतरती है। वास्तव में परिचायक का यह कहना भी ठीक है कि 'मधुर'जी एक उन्नत-हृदय आशावादी कवि हैं। अस्तु। 'मधुर'-जी की 'मधुर लहरी' का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ।

'विह्वल'

जगन्नाथ चानणराम की सुप्रसिद्ध

अंडी चादरें

हमारी असल रेशम की अंडी चादरों ने आसाम की अंडी को भी मात कर दिया है, क्योंकि हमारी अंडी चादरें देखने में वैसी ही सुंदर और मुलायम तथा चलने में मज़बूत हैं, परंतु दाम बहुत कम हैं, एक जोड़ा नमूने के तौर पर मँगाकर देखिए, यदि पसंद न हों, तो हमारे खर्च पर वापस कर दीजिए। ६ गज़ लंबे और १॥ गज़ चौड़े चादर जोड़े का मूल्य केवल ६॥) रुपया मय महसूल डाक।

जगन्नाथ चानणराम लुधियाना (पंजाब)

अंधों की आँख बनवाना धर्म है

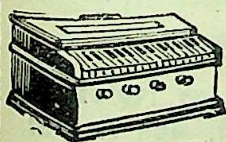
सिहल अस्पताल में मोतिया बिंदु, मतिका-शूल, परिवाली, जाल फूली की आँख बनाई जाती है। रहने को कमरा व जगह मिलती है। ग़रीबों से कुछ नहीं लिया जाता है। दानी, राजे, सेठ, साहूकार व धार्मिक संस्थाएँ जो डॉक्टर साहब को अपने यहाँ बुलाकर ग़रीबों की ख़ैराती आँख बनवाना चाहें, वह पत्र-व्यवहार करें।

(नेत्रांज-रजिस्टर्ड)

आँख के प्रसिद्ध डॉ० रामपालसिंहजी की बनाई हुई रोहे, जाला, धुंध, ज़ख़्म, फूली (हलकी या ताज़ी) सुर्ख़ी, बगलगंद, खुजली, ढरका की एक-मात्र दवा। मूल्य १।=), तीन शीशी ३) रु०, डा० मा० माफ़।

मैनेजर—सिहल अस्पताल दरेसी आगरा

अगर अपना रुपया बरबाद न करना चाहो, तो



हमारे कारख़ाने का मशहूर पापुलर हारमोनियम ख़रीदो। स्वर मधुर और बुलंद। सिंगल रीड ३ सप्तक २०), २२), २५); डबल रीड ३०), ३५), ४०) सूट केस या बेग-हारमोनियम दाम ४०), ४५); पेशगी ५)-सहित ऑर्डर दीजिए।

पापुलर हारमोनियम को पोस्ट-बॉक्स नं० १२, (सु) कलकत्ता

क्षय का शर्तिया इलाज

पता—कविराज पं० अगमराम बलूगी कोदई चौकी बनारस

किसी भी क़िस्म की खद्दर की

टोपियाँ

ख़रीदते समय कपूरचंद जैन, आगरा के कारख़ाने की ही ख़रीद करें।

क्योंकि

यह क़ीमत में सस्ती और टिकाऊ होती है।

नोट—ऑर्डर देते समय कृपया यह अवश्य लिखें कि 'सुधा' में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

गंगा-पुस्तकमाला की सर्वोत्कृष्ट और सचित्र पुस्तकें

१. उपन्यास

अबला (सचित्र)—लेखक, श्रीरमाशंकर सक्सेना; मूल्य १), १।।)

कर्म-फल (सचित्र)—मूल-लेखिका, मेरी कॉरेली; अनुवादक, प्रोफ़ेसर बैजनाथ कोटी; मूल्य १।।),२)

गिरिबाला (सचित्र)—लेखक, पं० व्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट; मूल्य १), १।।)

जब सूर्योदय होगा (सचित्र)—मूल-लेखक, पं० भास्कर विष्णु फड़के बी० ए०; अनुवादक, पं० गोपीवल्लभ-शालग्राम उपाध्याय; मूल्य १), १।।)

जुभार तेजा (सचित्र)—लेखक, मेहता लज्जाराम शर्मा; मूल्य ।।), १)

पतन (सचित्र)—लेखक, बाबू भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १।।), २)

पवित्र पापी (सचित्र, एक रूसी उपन्यास का अनुवाद)—अनुवादक, पं० व्रजकृष्ण गुर्टू बी० ए०, एल्-एल्० बी० और कविराज विद्याधर विद्यालंकार; मूल्य ३), ३।।)

प्रेम-परीक्षा—मूल-लेखिका, मेरी कॉरेली; अनुवादक, श्रीपशुपाल वर्मा; मूल्य ।।=), १।=)

बहता हुआ फूल (सचित्र)—मूल-लेखक, बाबू चारुचंद्र वंद्योपाध्याय बी० ए०; अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न; मूल्य २।।), ३)

बिदा (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०; मूल्य २।।), ३)

मा (दो भाग)—लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'; मूल्य ३), ४)

रंगभूमि (दो भाग)—लेखक, श्रीयुत प्रेमचंदजी; मूल्य ५), ६)

विचित्र योगी—लेखक, श्रीद्वारकाप्रसाद मौर्य बी० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १), १।।)

विजया (सचित्र)—मू०-ले०, श्रीशरच्चंद्र चट्टोपाध्याय; अ०, पं० रूपनारायण पांडेय; मूल्य १।।),२)

सीधे पंडित—ले०, ठा० प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य १।।)

संसार-रहस्य अथवा अधःपतन—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य १।।), २)

सौ अजान और एक सुजान—लेखक, श्रीयुत पं० बालकृष्ण भट्ट; मूल्य १), १।।)

हृदय की प्यास (सचित्र)—लेखक, आयुर्वेदाचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री; मूल्य १।।), २)

हृदय की परख—लेखक, उपर्युक्त; मूल्य १)

गढ़-कुंडार—ले०, बाबू वृंदावन वर्मा; मूल्य २।।), ३)

केन—लेखक, श्रीकृष्णानंद गुप्त; मूल्य १)

पाप की ओर—लेखक, अनुवादक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०; मूल्य १), १।।)

मृत्युंजय—लेखक, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी; मूल्य ।।), १)

२. गल्प और कहानियाँ

अद्भुत आलाप—लेखक, हिंदी-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; मूल्य १), १।।)

अश्रुपात (सचित्र)—लेखक, ख़्वाजा हसन निज़ामी; अनुवादक, पं० श्रीराम शर्मा बी० ए०; मूल्य १), १।।)

चित्रशाला (सचित्र, दो भाग)—लेखक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'; मूल्य ३), ४)

जासूस की डाली (सचित्र)—लेखक, बाबू गोपालराम गहमरी, जासूस-संपादक; मूल्य १।।), २)

तूलिका (सचित्र)—लेखक, श्रीविनोदशंकरजी व्यास; मूल्य १), १।।)

नंदन निकुंज—लेखक, स्व० श्रीचंडीप्रसादजी बी० ए० 'हृदयेश'; मूल्य ।।।), १)

नाट्यकथाऽमृत (सचित्र)—लेखक, प्रिंसिपल चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०; मूल्य १), १।।)

प्रेम-गंगा (सचित्र)—अनुवादक, स्व० पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, संपादक "हिंदूपंच"; मूल्य १), १।।)

प्रेम-प्रसून—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी; मूल्य १=), सजिल्द १।।=)

प्रेम-द्वादशी (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रेमचंदजी; मूल्य १), १।।)

मधुपर्क—लेखक, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी; मूल्य १।।)

मंजरी (सचित्र)—अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १), १।।)

३. नाटक

आहुति अथवा जयपाल—अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय; मूल्य १), १।।)

कीचक—लेखक, श्रीभगवन्नारायण भार्गव बी० ए०, एम्० एल्० सी०; मूल्य १), १।।)

कृष्णाकुमारी (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १), १।।)

ख़ाँजहाँ (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १=), १।।=)

जयद्रथ-वध—लेखक, पं० गोकुलचंद्र शर्मा बी० ए०; मूल्य ।।।=), १।=)

मिलने का पता—गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

दुर्गावती (सचित्र)—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०; मूल्य १), १॥)
पतिव्रता (सचित्र)—अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १।=), १॥।=)
पूर्वभारत—लेखक, हिंदी के धुरंधर विद्वान् "मिश्रबंधु"; मूल्य ॥।=), १।=)
प्रबुद्ध यामुन—लेखक, श्रीवियोगी हरि; मूल्य १), १॥)
बुद्ध-चरित्र (सचित्र)—अनुवादक, सुधा-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न; मूल्य ॥), १)
वरमाला (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत गोविंदवल्लभ पंत; मूल्य ॥=), १=)
वेणी-संहार—लेखक, पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; मूल्य ॥=), १=)
सौभाग्य-लाड़ला नेपोलियन (सचित्र)—अनुवादक, श्रीठाकुर लक्ष्मणसिंह वकील; मूल्य ॥), १)
उत्सर्ग—लेखक, श्रीचतुरसेन शास्त्री; मूल्य ।=), ॥।)
समाज—लेखक, श्रीघनानंद बहुगुणा एम्० ए०; मूल्य ॥।=), १।=)

४. व्यंग्य, हास्य और प्रहसन

अचलायतन—मूल-लेखक, श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर; अनुवादक, पं० रूपनारायण पांडेय; मूल्य ॥), १)
ईश्वरीय न्याय—लेखक, प्रोफ़ेसर श्रीरामदास गौड़ एम्० ए०; मूल्य ॥)
प्रायश्चित्त-प्रहसन—लेखक, पं० रूपनारायण पांडेय; मूल्य ≡)
मध्यम व्यायोग—लेखिका, श्रीमती सुशीलादेवी जायसवाल; मूल्य =)
मूर्ख-मंडली—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य ॥=), १=)
मिस्टर व्यास की कथा—लेखक, स्वर्गीय पंडित शिवनाथजी शर्मा बी० ए०; मूल्य २॥), ३)
रायबहादुर—मूल-लेखक, मौ० मौलियर; अनुवादक, पं० लक्ष्मीप्रसाद पांडेय; मूल्य ॥।), १।)
लबड़धोंधों—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०; मूल्य ॥=), १।=)
विवाह-विज्ञापन (सचित्र)—लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०; मूल्य १), १॥)

५. काव्य

आत्मार्पण (सचित्र)—लेखक, द्वारकाप्रसाद गुप्त "रसिकेंद्र"; मूल्य ॥।), १।)
उषा (सचित्र)—लेखक, स्व० श्रीशिवदास गुप्त "कुसुम"; मूल्य ॥=), १=)
लतिका—लेखक, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी; मूल्य १), १॥)
पराग (सचित्र)—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य ॥), १)
परिमल—लेखक, श्रीसूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'; मूल्य १॥), २)
पद्य-पुष्पांजलि—लेखक, पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० और पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०; मूल्य १॥), २)
भारत-गीत—लेखक, कवि-सम्राट् स्व० पं० श्रीधर पाठक; मूल्य ॥।=), १।=)
रति-रानी—लेखक, 'सुहृदय'; मूल्य १॥।), २।)

६. साहित्य

निबंध-निचय—लेखक, हिंदी के उत्कृष्ट समालोचक पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी; मूल्य १।), १॥।)
विश्व-साहित्य—लेखक, सरस्वती-संपादक श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी बी० ए०; मूल्य १॥), २)
साहित्य-सुमन—लेखक, स्व० पं० बालकृष्ण भट्ट; मूल्य ॥=), १=)
साहित्य-संदर्भ—लेखक, आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; मूल्य १॥), २)
सौंदरनंद-महाकाव्य—प्रणेता, अध्यापक रामदीन पांडेय एम्० ए०; मूल्य ॥), १)
संभाषण—लेखक, पं० दुलारेलालजी भार्गव; मूल्य ।), ॥)
हिंदी—लेखक, लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिंदी-लेक्चरार पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०; मूल्य ॥=), १=)

७. समालोचनाएँ

देव और बिहारी—लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १॥।), २।)
भवभूति—अनुवादक, हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० ज्वालादत्त शर्मा; मूल्य ॥=), १=)
हिंदी-नवरत्न—लेखक, हिंदी-संसार के धुरंधर समालोचक "मिश्रबंधु"; मूल्य ४॥), ५)

८. जीवन चरित्र

अयोध्यासिंह उपाध्याय ... ... ≡)
केशवचंद्रसेन—लेखक, भारतीय हृदय; मूल्य १), १॥)
कारनेगी और उनके विचार—लेखक, श्रीउमरावसिंह कारुणिक; मूल्य ॥=)
प्राचीन पंडित और कवि—लेखक, आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी; मूल्य ॥।=), १।=)
वंकिमचंद्र चटर्जी—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय कविरत्न; मूल्य १), १॥)
सम्राट् चंद्रगुप्त—लेखक, पं० बालमुकुंद वाजपेयी; मूल्य ।)
सुकवि-संकीर्तन (सचित्र)—लेखक, साहित्य-महा-

रथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी; मूल्य १), १॥)

राष्ट्रपति जवाहिर मूल्य ॥=)

९. इतिहास

इँगलैंड का इतिहास (तीन भाग, सचित्र)—लेखक, डॉ० प्राणनाथजी विद्यालंकार पी० एच० डी०; मूल्य ३॥), ४)

१०. अर्थशास्त्र

भारतीय अर्थशास्त्र (दो भाग)—लेखक, भूतपूर्व प्रेम-संपादक बाबू भगवानदासजी केला; मूल्य २॥), ३॥)

विदेशी विनिमय—लेखक, श्रीदयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १), १॥)

११. कृषि

उद्यान (सचित्र)—लेखक, श्रीशंकरराव जोशी एग्रिकल्चरल ऑफ़िसर; मूल्य १=), १॥=)

किसानों की कामधेनु (सचित्र)—लेखक, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री; मूल्य ।=)

कृषिमित्र—लेखक, पं० गंगाप्रसाद पांडेय एल्० ए-जी०, सुपरिंटेंडेंट एग्रिकल्चर; मूल्य ।-)

१२. स्वास्थ्य और चिकित्सा

तात्कालिक चिकित्सा (सचित्र)—लेखक, बाबू लालबहादुरलाल; मूल्य १), १॥)

स्वास्थ्य की कुंजी—लेखक, डॉक्टर बाबूराम गर्ग; मूल्य १), १॥)

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान—लेखिका, श्रीमती हेमंत-कुमारी भट्टाचार्य; मूल्य ॥=)

संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा—लेखिका, श्रीमती हेमंत-कुमारी भट्टाचार्य; मूल्य ॥=)

१३. वैज्ञानिक

भूकंप—लेखक, बाबू रामचंद्र वर्मा; मूल्य ।॥=)

मनोविज्ञान—लेखक, प्रिंसिपल पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०; मूल्य ॥), १)

१४. नवयुवकोपयोगी

एशिया में प्रभात—मूल-लेखक, पाल रिचर्ड; अनुवादक, श्रीठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०; मूल्य ॥), १)

किशोरावस्था (सचित्र)—लेखक, गोपालनारायण सेन-सिंह बी० ए०; मूल्य ॥=), १=)

जीवन का सद्व्यय—अनुवादक, श्रीहरिभाऊ उपाध्याय, संपादक त्यागभूमि; मूल्य १), १॥)

पाली-प्रबोध—लेखक, पं० आद्यादत्तजी ठाकुर एम्० ए०, काव्यतीर्थ; मूल्य १)

भारत में बाइबिल (दो भाग)—लेखक, श्रीसंतराम बी० ए०; मूल्य प्रत्येक भाग १॥), २)

भिखारी से भगवान्—अनुवादक, ठाकुर बाबू नंदनसिंह बी० ए०; मूल्य १), १॥)

मदर इंडिया का जवाब—लेखिका, श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम्० ए०; मूल्य १), १॥)

मुक्ति-मंदिर—लेखक, साधु टी० एल० वास्वानी; अनुवादक प्रोफ़ेसर बेनीमाधव अग्रवाल; मूल्य ॥=), १=)

सुख तथा सफलता मूल्य ।)

हिंदू-जीवन का रहस्य—लेखक, देवता-स्वरूप भाई परमानंदजी एम्० ए०; मूल्य ॥=), १=)

नीति-रत्नमाला मूल्य ।)

१५. योग

कर्म-योग—लेखक, श्रीसंतराम बी०ए०; मूल्य ॥), १)

जीवन-मरण-रहस्य—लेखक, ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह बी० ए०; मूल्य ।=)

प्राणायाम—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य ॥=), १=)

योग की कुछ विभूतियाँ—लेखक, ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह बी० ए०; मूल्य ॥), १)

योग-शास्त्रांतर्गत धर्म—लेखक, ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह बी० ए०; मूल्य ॥), १)

योगत्रयी—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य ॥), १)

राजयोग—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य १॥), २)

हठयोग—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; मूल्य १=), १॥=)

योग-दर्पण—लेखक, लाला कन्नोमलजी एम्० ए०; मूल्य १), १॥)

महिला-माला की मनोहर मणियाँ

कमला-कुसुम (सचित्र)—लेखिका, श्रीमती गिरिजादेवी; मूल्य ॥)

गुप्त संदेस (दो भाग)—ले०, डॉ० युद्धवीर-सिंह; मूल्य १)

जच्चा—लेखक, कविराज श्रीप्रतापसिंह वैद्य, हिंदू-विश्वविद्यालय के आयुर्वेद-विभाग के सुपरिंटेंडेंट; मूल्य ।॥)

देवी पार्वती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद; मूल्य ।॥), १)

देवी सती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद; मूल्य ॥), १)

देवी द्रौपदी (सचित्र)—लेखक, कविवर श्रीराम-चरितजी उपाध्याय ; मूल्य ।=)

नल-दमयंती (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥), १)

नारी-उपदेश—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।)

पत्रांजलि—मूल-लेखक, श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती ; अनुवादक, पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ; मूल्य ।=)

भारत की विदुषी नारियाँ—संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी ; मूल्य ।)

भारतीय स्त्रियाँ—अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा ; मूल्य १॥), २)

महिला-मोद—लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ।=)

लक्ष्मी (सचित्र)—लेखक, श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।)

वनिता-विलास (सचित्र)—लेखक, भूतपूर्व सरस्वती-संपादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ; मूल्य ।)

सती सावित्री (सचित्र)—लेखक, अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि' ; मूल्य ।=), ।॥=), १=)

सती सीता (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य १॥), २)

देवी शकुंतला—लेखक, श्रीहरिप्रसाद द्विवेदी ; मूल्य ॥=), ॥।=)

बाल-विनोद-वाटिका के सुंदर सुमन

इतिहास की कहानियाँ (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥)

कागज़ी करतब (सचित्र) श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी० मूल्य लगभग ॥)

कीड़े-मकोड़े (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ॥)

खिलवाड़ (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य ।)

खेल-पचीसी (सचित्र)—लेखक, श्रीप्रतिपालसिंह ; मूल्य ।)

गधे की कहानी (सचित्र)—लेखक, पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मू० ॥=), १=)

दिलावर सियार (सचित्र) मूल्य ॥)

नटखट पाँड़े (सचित्र)—लेखक, श्री पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० ; मूल्य १), १॥)

परोपकारी हातिम (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य १), १॥)

बाल-नीति-कथा (दो भाग)—मूल-लेखक, श्रीयुत ए० बी० ध्रुव एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ; अनुवादक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ; मूल्य २॥), ३॥)

बाल-विलास (सचित्र)—लेखक, श्रीगुरुरामभक्त मूल्य ।=), ॥।=)

भगिनी-भूषण—लेखक, स्व० श्रीबाबू गोपालनारायणसेन-सिंह बी० ए० ; मूल्य =)

भगवान् गौतम बुद्ध (सचित्र) मूल्य ।-), ॥)

भारत के सपूत (सचित्र)—लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद ; मूल्य ॥), १)

भू-कवच (सचित्र)— मूल्य लगभग १)

मर्यादाराम की कहानियाँ (सचित्र)— मूल्य ।।=), १=)

लड़कियों का खेल (सचित्र)—लेखक, स्व० श्रीगिरिजाकुमार घोष ; मूल्य ।=)

विचित्र वीर (सचित्र)—लेखक, श्रीजगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ; मूल्य ॥।), १॥)

सुघड़ चमेली (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत रामजीदास भार्गव ; मूल्य =)

सुनहरी नदी का राजा (सचित्र) मूल्य ।॥), १)

हँसी-खेल (सचित्र)—ले०, श्रीजगमोहन 'विकसित' मूल्य ।=), १=)

युधिष्ठिर—लेखक, श्रीकृष्णगोपाल माथुर ; मूल्य ।॥), १॥)

सुकवि-माधुरी-माला के अनुपम रत्न

मतिराम-ग्रंथावली—संपादक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ; मूल्य २॥), ३)

मिश्रबंधु-विनोद (तीन खंड)—लेखक, पं० गणेशविहारी मिश्र, माननीय रा० ब० पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० और रा० ब० पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ; प्रथम खंड मूल्य २), २॥)
द्वितीय खंड ,, ३), ३॥)
तृतीय खंड ,, २), २॥)

बिहारी-रत्नाकर—प्रणेता, व्रजभाषा-साहित्य के पारदर्शी विद्वान् बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए० ; मू० ४)

गंगा-पुस्तकमाला के स्थायी ग्राहक

बनने से

माला की पुस्तकों पर २५) सैकड़ा तथा बाहरी पुस्तकों पर एक आना रुपया कमीशन मिलेगा ।

ग्राहक बनकर आप न केवल पुस्तकों से लाभ उठाएँगे, बरन् मातृ-भाषा के प्रचार में भी हमारा हाथ बटाएँगे ।

आज ही ॥) प्रवेश-फ़ीस देकर स्थायी ग्राहक बन जाइए ।

नियम नीचे दिए हुए हैं—

(१) स्थायी ग्राहक बनने की प्रवेश-फ़ीस सिर्फ़ ॥) है ।

(२) पुस्तकें, प्रकाशित होते ही—१५ दिन पहले दाम आदि का "सूचना-पत्र" * भेज देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को, २५) सैकड़ा कमीशन काटकर, वी० पी० द्वारा, भेज दी जाती हैं । ५-६ रुपए की ४-५ पुस्तकें एक साथ भेजी जाती हैं, जिसमें डाक-ख़र्च में बचत रहे ।

(३) जो पुस्तकें हमारी प्रकाशित अन्य मालाओं में निकलती हैं, उन पर स्थायी ग्राहकों को २५) सैकड़ा कमीशन दिया जाता है ।

(४) स्थायी ग्राहक जिस पुस्तक को चाहें, लें ; जिस पुस्तक को न चाहें, न लें ; यह उनकी इच्छा पर निर्भर है । वे चाहे जिस पुस्तक की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जब, ऊपर-लिखे कमीशन पर मँगा सकते हैं ।

(५) बाहर की—हिंदुस्थान-भर की—सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को -) रुपया कमीशन पर मिलती हैं ।

(६) स्थायी ग्राहक ऑर्डर देते समय अपना ग्राहक-नंबर अवश्य नोट कर दिया करें, जिसमें उनके ऑर्डर पर कमीशन कटने में भूल न हो ।

(७) स्थायी ग्राहक की भूल से वी० पी० लौट आने पर डाक-ख़र्च उनको ही देना पड़ता है, और दो बार वी० पी० लौट आने पर स्थायी ग्राहकों की सूची से उनका नाम काट दिया जाता है ।

---

* नई पुस्तकों में से यदि कोई या सब न लेनी हों, अथवा और कोई पुस्तकें मँगानी हों, तो 'सूचना-पत्र' मिलते ही हमें पत्र लिखना चाहिए, जिसमें इच्छानुसार कारवाई कर दी जा सके । १५ दिन के अंदर कोई सूचना न मिलने पर सब नई पुस्तकें वी० पी० द्वारा भेज दी जाती हैं ।

बिल्कुल नई और उत्कृष्ट पुस्तकें

१. गढ़-कुंडार—लेखक, श्रीवृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल-एल० बी०। यह सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारत के इतिहास के निर्माता चंदेलों, पँवारों, पड़िहारों और खंगारों के पारस्परिक संघर्ष से ओत-प्रोत, मध्यकालीन भारत की राजनीतिक चालों से भरा हुआ, आल्हा, ऊदल की जन्मभूमि बुंदेलखंड का एक-मात्र ऐतिहासिक उपन्यास है। इस प्रकार रोमांटिक प्रेमगाथा-पूर्ण, वीरत्वमय, दिल बहला देनेवाला, मनोरंजक, मौलिक उपन्यास अब तक हिंदी-साहित्य में एक भी नहीं है।

इसे पढ़कर आप इँगलैंड और फ्रांस के प्रसिद्ध औपन्यासिकों--स्काट और डूमाज़—को भूल जायँगे। मूल्य २॥), सजिल्द ३)

२. स्वास्थ्य की कुंजी—लेखक, डॉक्टर बाबूराम गर्ग। हिंदोस्तान बीमारों का देश बनता जा रहा है। ग़रीबी तो जैसी कुछ है, सो है ही, बीमारी का दौरदौरा इस देश में ग़ज़ब का है। जिसे देखिए, बीमार। नौजवानों की हालत तो और भी गई-बीती है। बिना स्वास्थ्य-सुधार के भविष्य में स्वतंत्र भारत के लिये कोई आशा नहीं रह जाती। स्वास्थ्य-सुधार की इसी कठिन समस्या को सुलझाने के लिये यह कुंजी तैयार कराई गई है। अवश्य पढ़िए। मूल्य १।), सजिल्द १॥)

३. समाज—लेखक, श्रीघनानंद बहुगुणा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। सामाजिक अत्याचारों की करुण-कथा यदि आप जानना चाहते हैं, यदि अछूतों की भयंकर दशा का आप परिचय लेना चाहते हैं, यदि आप सच्चे समाज-सुधार के पक्षपाती हैं, तो अवश्य आप इस नाटक को एक बार पढ़िए। मूल्य ।॥=), सजिल्द १।=)

४. पाप की ओर—मूल लेखक, श्रीजूनइचिरोटानाज़ाकी। अनुवादक, श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०। ज़ापान ने अपनी थोड़े दिन की उन्नति से ही संसार को चकित कर दिया है, वह अब एशिया का इँगलैंड कहलाता है। संसार की सब शक्तियाँ उससे डरती हैं। उसकी इस उन्नति का कारण उसकी सर्वतोमुखी क्रांति है। न केवल विज्ञान, व्यापार और सेना-शक्ति में ही उसने क्रांति की। अपितु अपने रहन-सहन और रीति-रिवाज़ों में भी उसने आश्चर्यजनक परिवर्तन कर डाला है। इस महान् परिवर्तन का श्रेय उसके श्रेष्ठ और नवीन साहित्य को है। संसार के साहित्य में जापानी साहित्य का बहुत ऊँचा स्थान है। जापानी पुस्तकें आज संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में अनूदित हो रही हैं। अब तक केवल हिंदी ही एक ऐसी भाषा थी कि जिसने जापानी साहित्य का आदर नहीं किया था।

"पाप की ओर" हिंदी में अनूदित सबसे पहला जापानी उपन्यास है। इसके लेखक संसार-प्रसिद्ध पुरुष हैं। अनुवादक भी हिंदी के सफल औपन्यासिक श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव हैं, जिनके बिदा-नामक उपन्यास का हिंदी-साहित्य में काफ़ी आदर हो चुका है; अतएव पुस्तक के सर्वोत्तम होने में कोई संदेह नहीं। जिन्हें उच्च कोटि के औपन्यासिक साहित्य से प्रेम है, उन्हें "पाप की ओर" एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १), सजिल्द १।)

५. मृत्युंजय—लेखक, श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी। अपने ढंग का यह एक निराला उपन्यास है। गुलाबजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा इसमें ख़ूब विकसित हुई है। मनोरंजन और शिक्षा का जीता-जागता चित्र है। देश-भक्ति के लिये निर्भय हो मृत्यु का आलिंगन करना यदि सीखना हो, तो एक बार मृत्युंजय देश-भक्तों की वीरगाथा को अवश्य पढ़ जाइए। मूल्य ॥।), सजिल्द १।)

मिलने का पता—गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

हृदय की परख—लेखक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक प्रोफ़ेसर चतुरसेन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य। भला ऐसा कौन हिंदी-साहित्य-सेवी होगा, जो शास्त्रीजी की चित्ताकर्षक रचनाओं से परिचित न हो। शास्त्रीजी ने उपन्यास लिखने में भी कमाल कर दिया है। आपका लिखा हुआ 'हृदय की प्यास'-नामक उपन्यास पहले हमारे यहाँ से प्रकाशित हो चुका है, जिसका हिंदी-संसार ने यथेष्ट सम्मान किया है। अब हम उन्हीं की यह अन्य रचना लेकर हिंदी-प्रेमियों के सामने उपस्थित हो रहे हैं। आशा है, हिंदी-प्रेमी इसे भी उसी तरह पसंद करेंगे। यह उपन्यास हिंदी-संसार के लिये एक ही चीज़ है। द्वितीय संस्करण। मूल्य १), सजिल्द १॥)

योग-दर्पण—लेखक, श्रीलाला कन्नोमल एम्० ए०। योगशास्त्र एक अद्भुत, अमूल्य, अनूठी एवं अनुपम संपत्ति है। इसका प्रचार पहले भारतवर्ष में इतना अधिक था कि इसी के बल पर वह सारे जगत् पर शासन करता था—जगत् का गुरु था। पर जब से इसके योग-बल का ह्रास हुआ, तब से वह अपने गौरव-पूर्ण उच्च पद से गिर गया। अस्तु। योग-विद्या, हमारे और हमारी संतानों के लिये, नितांत आवश्यक है। इसी अभिप्राय से इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। यह पुस्तक पातंजल योग-सूत्रों, श्रीव्यासभाष्य और वाचस्पति मिश्र की वृत्ति के आधार पर लिखी गई है। पुस्तक की भूमिका में प्रायः उन सभी बातों का समावेश किया गया है, जो योग-दर्शन से संबंध रखती हैं और जो आधुनिक गवेषणा से मालूम हुई हैं। पुस्तक के अंत में आठ परिशिष्ट लगे हैं, जिनमें योग-सिद्धांत पूर्ण रीति से समझने के लिये पर्याप्त सामग्री है। पुस्तक सर्वांग-पूर्ण है। यदि भू-मंडल की सभ्य जातियों पर अपने गौरव और महत्त्व का सिक्का जमाकर आध्यात्मिक तथा भौतिक स्वराज्य प्राप्त करना है, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए, मूल्य १), सजिल्द १॥)

युधिष्ठिर—लेखक, श्रीकृष्णगोपाल माथुर। इसमें महाभारत के धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मगाथा तथा उनका आदि से अंत तक का चरित लिखा गया है। चरित के साथ-साथ सारा महाभारत पढ़ने का भी आनंद मिलता है। भाषा-सरल, छपाई सुंदर, काग़ज़ अच्छा ऐंटिक, टाइटिल पर बढ़िया तिरंगा चित्र। बालकों को धर्म की ओर ले जानेवाली अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ॥।), रंगीन जिल्द १।)

देवी शकुंतला—लेखक, अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी "श्रीहरि"। यह उसी शकुंतला का चरित है, जिसके लिये भारतवर्ष आज भी गर्व करता है। महर्षि वेदव्यास और महाकवि कालिदास ने तो शकुंतला के गुणों का वर्णन करने में क़लम तोड़ दी है। कन्याओं तथा महिलाओं के लिये यह बड़े ही महत्त्व की पुस्तक है। सती-धर्म और विश्व-प्रेम का जीता-जागता चित्र तथा अचल गृहस्थ-

धर्म का आदर्श इसमें भरा है। पुस्तक में कई सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। लीजिए, गृहिणी के हाथ में देकर देखिए तो, इसके पढ़ने में उन्हें कैसा अनुपम आनंद आता है। मूल्य ।।=), रंगीन जिल्द ।।।=), सजिल्द १=)

राष्ट्रपति जवाहिर—भारतीय कांग्रेस के प्रथम साम्यवादी प्रेसिडेंट तथा नवयुवकों के प्यारे सम्राट् पं० जवाहिरलाल नेहरू की जीवनी तथा जोशीले लेख और भाषण। इसे पढ़कर पंडितजी की अनुपम योग्यता, अदम्य वीरता, दृढ़ संकल्प, सत्य-निष्ठा एवं बच्चों की-सी सरलता के आप क़ायल हो जायँगे। आपको मालूम हो जायगा कि किस कारण उन्होंने देश के नवयुवकों का मन मुट्ठी में कर लिया है, किस प्रकार वह किसानों और मजदूरों के प्यारे नेता हुए, और क्यों इतनी अल्प आयु में ही कांग्रेस के सभापति चुन लिए गए! पृष्ठ-संख्या १३६; काग़ज़ बढ़िया ऐंटिक!! छपाई सुंदर!!! ३ दर्शनीय रंगीन चित्र!!!! इतने पर भी मूल्य ।।=), सजिल्द १=)

दिलावर सियार—लेखक, श्री पं० भूपनारायणजी दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०। लेखक की लिखी हुई बालोपयोगी अन्य पुस्तकों से पाठक काफ़ी परिचित हैं। यह Reynard the fox-नामक अँगरेज़ी की पुस्तक का अनुवाद है। बाल-साहित्य में मूल-पुस्तक का ऊँचा स्थान है, और हिंदी में उसका यह पहला ही अनुवाद है। सियार पाँड़े की दिलावरी की बातें पढ़कर बालकों का मनोरंजन कीजिए। मूल्य ।।), रंगीन जिल्द ।।।)

उत्सर्ग—लेखक, आयुर्वेदाचार्य प्रो० चतुरसेन शास्त्री। यह एक सुंदर ऐतिहासिक नाटक है। इसमें चित्तौर के अग्रगण्य वीर-अधिपति जयमल तथा उनकी जवाँमर्द रानी की वीरता का दिल फड़का देनेवाला वर्णन है। इसमें समुद्र में बूँद के समान राजपूतनी के बच्चों—सिंहों की अपूर्व वीरता देखिए, जिनके लिये स्वयं अकबर ने कहा था कि "यह शेर-सिपाही अगर मुझे मिल जायँ, तो मैं तमाम दुनिया को फ़तह कर सकता हूँ।" मुट्ठी-भर बहादुर बादशाह की सब तरह से सुसज्जित और शिक्षित असंख्य सेना को किस प्रकार, पत्थर की चट्टान से टकराकर लौटनेवाली पानी की लहरों के समान, मुद्दत तक लौटाते रहे, यह पढ़ते ही बाहें फड़कने लगती हैं। एक वीरांगना का तेज, त्याग और पौरुष देखकर तो भारत की क्षत्रानियों का गौरव आँखों के सामने नाचने लगता है। जो लोग स्त्रियों को अबला कहते हैं, वे भी इसे पढ़कर मान लेंगे कि देश-रक्षा में एक स्त्री भी समर्थ हो सकती है। मूल्य ।=), जिल्ददार ।।।)



१. भारत का शानदार अतीत और आशामय भविष्य



अमेरिका के यूनिटी-नामक मासिक पत्र के 'भारतीय अंक' में डॉक्टर जे० टी० संडरलैंड ने जो लेख लिखा है, वह हमारे 'शानदार भूत' और 'महान् भविष्यत्' का बहुत कुछ परिचय देता है। उससे इँगलैंड के टॉमियों की बेसिर-पैर की युक्तियों का जवाब तो नहीं मिलता, किंतु इतना ज़रूर पता चल जाता है कि हम असभ्य कहलानेवाले हिंदोस्तानी वास्तव में असभ्य नहीं थे, और न हैं। हमें सभ्य बनाने का कष्ट भी माडरेटों के माई-बाप सरकार को नहीं उठाना पड़ा है, और हम संसार की सभ्य जातियों में थोड़ा स्थान पाने के अधिकारी हैं।

हमारे देश के बीसों पढ़े-लिखे 'साहबों' का ख़याल है कि उन्हें 'ड्रेस' करना, दाँत माँजना, बात करना, शिष्टता, रेल, तार, डाक, सड़कें, मकान आदि सभी कुछ 'गौरांग महाप्रभु' के 'क़दम-कमलों' के 'जूती-कटाक्ष' से उपलब्ध हुआ है, हम हिंदोस्तानी तो निरे बुद्धू और नक़ाल रहे हैं। जब कभी कोई नया आविष्कार 'महाप्रभु'जी ने किया, तो फ़ौरन् हम, आजकल के ब्राह्मणों के 'मुहूरत' की तरह, उसे अपने दक़ियानूसी वेद में दिखा दिया करते हैं। ऐसे ईंट का चश्मा चर्म-चक्षुओं पर चढ़ाए हुए महानुभावों से नीचे-लिखी पंक्तियाँ पढ़ लेने का हम अनुरोध करेंगे—

"क्या भारतीय बिलकुल असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य हैं? क्या उनकी जाति या राष्ट्र उपेक्षणीय है? क्या मानव जाति के हित के लिये उन्होंने कभी कुछ किया भी था? वे कभी कोई थे भी? ये प्रश्न बार-बार भारतीय राष्ट्र के विषय में पूछे जाया करते हैं।

"भारतीय जाति संसार की सबसे प्राचीन जाति है। उसकी उत्पत्ति आज से हज़ारों वर्ष पहले हुई थी। तब से लेकर अब तक का उसका इतिहास थोड़ा बहुत श्रृंखलाबद्ध मिलता है।

"चीन के अतिरिक्त भारतवर्ष ही संसार का सबसे बड़ा राष्ट्र है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि यदि रूस को निकाल दिया जाय, तो सारा योरप भारत की जन-संख्या और विस्तार का मुक़ाबिला नहीं कर सकता। दोनो अमेरिका—दक्षिणीय और

उत्तरीय—मिलकर भी भारतीय राष्ट्र की तुलना नहीं कर पाते।

"भारत एक उच्चकोटि का सभ्य राष्ट्र है। योरप की सभ्यताभिमानी जातियों के सभ्य होने से हज़ारों वर्ष पहले ही उसने एक शानदार संस्कृति की सृष्टि कर डाली थी। तब से अब तक उसने उस संस्कृति की रक्षा की है।

"भारतवर्ष ही पहला और एक-मात्र राष्ट्र था, जिसने संसार-विजिगीषु महान् अलेग्ज़ेंडर के दाँत खट्टे कर दिए थे। उसने ही अलेग्ज़ेंडर की वीर-वाहिनी की अबाध गति में सबसे पहले बाधा डाली थी, और उसी ने उसे अपनी विजिगीषा को बालाए-ताक़ उठाकर रख देने और घर लौट जाने के लिये मजबूर कर दिया था।

"ग्रेट ब्रिटेन द्वारा जीते और लूटे जाने से पहले भारतवर्ष संसार का सबसे धनी राष्ट्र था।

"भारतवर्ष के अधिकांश निवासी आर्य-जाति के हैं। वे उसी महान् जाति के प्रधान वंशधर हैं, जिसके ग्रीक, रोमन, जर्मन, अँगरेज़ और हम अमेरिकन लोग पुत्र हैं।

"संसार के छः सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक धर्मों में से दो को भारतवर्ष ने जन्म दिया है। (छः प्रधान धर्म बौद्ध, हिंदू, मुहम्मद, ईसाई, मूसाई तथा कंफ़्यूशियन हैं—सुधा-संपादक)।

"संसार के छः सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में से दो भारतवर्ष में उद्भूत हुए हैं। (वे हैं रामायण और महाभारत—सु०-सं०)।

"'पूर्व के शेक्सपीयर' महाकवि कालिदास, जिन्होंने अभिज्ञान शाकुंतल आदि नाटक लिखे हैं, भारतवर्ष में ही पैदा हुए थे।

"संसार की सभ्यता की उन्नति में महत्तम सहायक और आवश्यक दशमलव के नियम तथा गिनती की रीति, जो संसार के गणित-शास्त्र तथा विज्ञान की आधार-शिला है, भारतवर्ष ने ही प्रदान की थी। इन्हीं से संसार की सभ्यता बहुत अधिक आगे बढ़ सकी है।

"विज्ञान के प्रायः सभी अंगों का प्रारंभ भारतवर्ष ने बहुत पहले ही कर लिया था। उनमें से कई विभागों में तो उसने इतनी उन्नति कर ली थी कि संसार को उसके नेतृत्व से बेहद लाभ हुआ है। इस गुलामी की दुर्दशा में भी भारतवर्ष में उच्च कोटि के वैज्ञानिक मौजूद हैं।

"भारतवर्ष ने ग्रीकों की समकक्ष वास्तु कला को जन्म दिया है। आज भी वहाँ उस कला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मौजूद हैं। दिल्ली का यमुना-स्तंभ (क़ुतुब-मीनार), भुवनेश्वर, खजुराहो, मदुरा, आबू आदि स्थानों के विशाल मंदिर, दिल्ली की मोती-मसजिद, दीवानेआम और दीवानेख़ास तथा आगरे का ताज-महल संसार की सर्वश्रेष्ठ इमारतों में गिने जाते हैं।

"यदि आप श्रीयुत् एच्० जी० वेल्स की सम्मति का आदर करते हैं, तो उनके कथनानुसार भारतवर्ष ने संसार के छः सर्व-सामयिक सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में से दो—बुद्ध और अशोक—संसार को दिए हैं।

"वर्तमान समय में भी संसार के दो सर्वश्रेष्ठ महापुरुष—जिनकी श्रेष्ठता का सिक्का अमेरिका और योरप ने अच्छी तरह मान लिया है तथा जिनका आदर और मान आज संसार की सब सभ्य जातियों ने किया है—हिंदोस्तानी ही हैं। महात्मा गांधी और महाकवि रवींद्रनाथ भारत के ही पुत्र हैं।

"भारतवर्ष ने महान् साहित्य, महती ललित कला, महान् दार्शनिक विचारों, महान् धर्मों तथा हरएक प्रकार के महान् पुरुषों को जन्म दिया है। उसके पुत्र बड़े-बड़े शासक, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्रज्ञ, विद्वान्, कवि, सेनापति, उपनिवेशकारक, जहाज़ बनानेवाले, दक्ष शिल्पी, कृषि-विद्, संघाध्यक्ष तथा दूर-दूर तक होनेवाले सामुद्रिक तथा भौमिक व्यापार और वाणिज्य के अग्रणी रहे हैं।

"लगातार २५०० वर्ष तक भारतवर्ष आधी मनुष्य-जाति का विद्या और आत्मिक उन्नति में मार्ग-दर्शक तथा गुरु रहा है।

"२५०० वर्ष तक लगातार भारतवर्ष एक स्वतंत्र देश था। अँगरेज़ों द्वारा स्वतंत्रतापहरण से पहले वह संसार के सर्व-प्रसिद्ध राष्ट्रों में गिना जाता था।

"क्या इतनी उन्नत जाति कभी ग़ुलामी में रक्खी जाने योग्य है? क्या ऐसे राष्ट्र का यह अधिकार नहीं कि वह स्वतंत्र होकर संसार की सभ्य जातियों में फिर से वैसा ही स्थान ग्रहण करे, जैसा कि इतने दिनों तक उसने ग्रहण किया था?"

× × ×

२. वाम-मार्गी अमेरिका

भारतवर्ष के सैकड़ों मत-मतांतरों में वाम-मार्ग-जैसा विचित्र धर्म भी एक है। स्त्रियों की शक्ति-रूप से पूजा इस धर्म का ध्येय है। प्रायः इसे शाक्त-संप्रदाय का एक अंग ही माना गया है। इस धर्म के अनुयायी बड़े ही गुप्त स्थानों में अपने मंदिरों की स्थापना करके मद्य, मांस, मैथुन, मीन और मुद्रा का यथेच्छ सेवन किया करते हैं। स्त्रियों के गुप्त अंग की बड़े समारोह से पूजा करने के बाद ये धार्मिक पुरुष सभी प्रकार के व्यभिचार-व्रत का साधन करना अपना परम धर्म समझते हैं।

भारतवर्ष में उत्पन्न हुए इस धर्म का प्रचार अब यहाँ बहुत कम है। उच्च कोटि के आत्मिक धर्मों ने इस शरीर-प्रधान धर्म की जड़ ही यहाँ नहीं जमने दी। अतएव भारतीय समृद्धि के महान् युग के विनाश-काल की यह उपज यहाँ से जाकर साम्राज्य-वादी योरप तथा उपयोगितावादी अमेरिका में ख़ूब फूली-फली है। वहाँ इसकी अनेक क़लमें लगाई गई हैं।

अमेरिका ने तो इसे इतने प्रेम से अपनाया है कि वह पश्चिम का सर्व-प्रधान शाक्त राष्ट्र बन गया है। शक्ति का जैसा वह भक्त बना है, वैसा तो इँगलैंड भी नहीं बन सका।

मद्य का क़ानूनी निषेध होने पर भी वहाँ मद्य पीनेवालों का जो हाल कभी-कभी समाचार-पत्रों में निकला करता है, उससे तो यही विश्वास होता है कि अमेरिका ने वाम-मार्ग की इस वारुणी देवी की काफ़ी आराधना प्रारंभ कर दी है।

मांस और अमेरिका शायद दो भिन्न वस्तुएँ हैं ही नहीं। दुनिया-भर को सबसे अधिक 'कैंड मीट' सप्लाई करनेवाला देश अमेरिका ही है। वहाँ पशुओं के फ़ार्म-के-फ़ार्म खा डालने के लिये पाले जाते हैं।

'मीन' बेचारे की तो अमेरिका में शामत ही आ गई है। करोड़ों मन मछली प्रति वर्ष वहाँ मारी जाती और खाई जाती हैं। मांस और मछली ही वहाँ के निवासियों का प्रधान भोजन है।

वाम-मार्ग की चौथी चीज़ 'मुद्रा' का अमेरिका ने बड़ा ही उत्तम अर्थ किया है—'डॉलर'। अमेरिकनों की अर्थ-लिप्सा कितनी भीषण होती है, इसका अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि संसार का कोई भी कार्य वे बिना 'डॉलर' की, बिना 'मुद्रा' की चिंता किए नहीं कर सकते। सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय उन्हें मुद्रा की ही चिंता रहती है। 'टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम्' उनका सिद्धांत हो गया है। इसीलिये संसार में वे 'डॉलर-हंटिंग अमेरिकन' कहलाते हैं। 'डॉलर-मैड' के अर्थ ही 'अमेरिकन मनुष्य' हो गए हैं। उनकी इस 'मुद्रा'-भक्ति ने संसार को आश्चर्य-चकित कर दिया है!

पाँचवें मकार—मैथुन—में भी अमेरिका ने दुनिया को कोसों पीछे छोड़ दिया है। व्यभिचार की जो दशा आज दिन वहाँ है, उससे पता चलता है कि सचमुच भारतीय वाम-मार्ग का सच्चा अनुकरण इसी वीर देश ने कर पाया है। जज लिंडसे तथा श्री-कन्हैयालाल गौबा द्वारा जिन मैथुन-रहस्यों का उद्-घाटन हुआ है, उनसे तो यही अनुमान होता है कि अमेरिकन जाति शीघ्र ही मानव-समाज के लिये एक ख़तरनाक जाति हुई जा रही है।

× × ×

३. वैज्ञानिक जगत् और स्त्री-जाति

कुछ लोगों के मन में यह भ्रम-पूर्ण धारणा बैठ गई है कि स्त्रियों में लड़ने-झगड़ने, बनाव-सिंगार करने और नाज़-नखरे दिखाने के सिवा कोई उत्तम मौलिकता नहीं। वे कोई उत्तम कार्य नहीं कर सकतीं, न वे किसी वस्तु का आविष्कार ही कर सकती हैं। ऐसा आक्षेप कहाँ तक न्याय-सम्मत है, समझ में नहीं आता। आज संपूर्ण संसार आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा है कि स्त्रियों ने सब बातों में पुरुषों से बाज़ी मार ली है। स्त्रियों ने अपने बुद्धिबल, बाहुबल और मनोबल का प्रभाव अच्छी तरह डाला है। उन्होंने अपने आविष्कारों से दुनिया को चकित कर दिया है।

एक बार युद्ध में एक सिपाही पैर में बंदूक़ की गोली लगने से घायल हो गया। बेचारा चलने-फिरने से लाचार था। उसकी स्त्री ने तीन ऐसे आविष्कार किए, जिनके कारण उस महिला की बहुत प्रसिद्धि हुई, और उसने उन आविष्कारों के द्वारा रुपया भी ख़ूब पैदा किया। दोनों स्त्री-पुरुष ने अपने जीवन के शेष दिन सुख से व्यतीत किए। चीनी मिट्टी के बर्तन बहुत ही भंगुर होते हैं, ऊँचे से छूटते ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। एक महिला ने रबर के उसी तरह के बर्तन बनाए, और उन पर उत्तम, सुंदर चित्रकारी की गई। बहुत-से आविष्कारों की—जिनका उपयोग घर-गृहस्थी में होता है—निर्मात्री स्त्रियाँ ही हैं। आज से लगभग साठ-सत्तर वर्ष पूर्व एक भद्र महिला ने हाथ धोने की एक मशीन का आविष्कार किया था, और उसने उस मशीन की सरकार से रजिस्ट्री कराई थी। उसके बाद कुछ स्त्रियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की हाथ धोने की कलें बनाईं। एक देवी ने एक नए प्रकार का खिलौना (बायस्कोप) तैयार किया, जिसे खिलौने के व्यापारियों के हाथ बेच-बेचकर ख़ूब धन की प्राप्ति की। घर में दीवारों पर कपड़े लटकाने की खूटियों की आविष्कार-कर्त्री एक महिला ही थी। एक स्त्री ने बालों में लगानेवाले काँटों (हेयर-पिन) के एक सिरे पर छोटी-सी गुत्थी लगा दी, जिससे काँटों का बालों में इधर-उधर सरकना बंद हो गया। उसकी एक सहेली ने उन काँटों को कुछ टेढ़ा कर दिया, जिससे और भी अधिक लाभ हुआ। इन दोनों महिलाओं ने इस आविष्कार से ख़ूब धन पैदा किया। एक राजकुमारी ने जहाज़ों में बैठने के "बर्थ" में एक अद्भुत आविष्कार किया। ग़रीब मज़दूरों की झोपड़ियों में दीपक का प्रकाश फैलाने और गैस का चूल्हा बनानेवाली बेलजियम की शाहज़ादी स्टिफेनी ही थीं।

सभी देशों और जातियों की स्त्रियाँ अपने कार्य में आनेवाली वस्तुओं में उन्नति करने के अभिप्राय से या अपनी कठिनाइयों को दूर करने के विचार से कुछ-न-कुछ आविष्कार प्रतिदिन करती ही जा रही हैं। इन कामों में वे अपने भाई, पिता और पति की सहायता भी लेती रहती हैं। कृषि, खान, इंजिनियरिंग, प्रयोग-शाला, युद्ध-क्षेत्र, जहाँ कहीं भी देखें, स्त्रियों का हाथ ज़रूर देखेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक क्षेत्र में स्त्रियों ने पुरुषों से कम काम नहीं किया। अंतर केवल इतना ही है कि स्त्रियों के आविष्कार अधिकतर मनुष्य की गार्हस्थ्य-आवश्यकताओं तथा सौख्य के साधनों से ही संबंध रखते हैं, किंतु पुरुषों के आविष्कार मनुष्य-जाति की ऊँची उड़ान, उसकी महत्त्वाकांक्षा, उसके अहंकार और कलह-प्रियता की पुष्टि में सहायता देने के लिये किए जाते हैं।

स्वभाव से युद्ध-प्रिय पुरुष के आविष्कारों ने संसार में जो अशांति और कलह का साम्राज्य उत्पन्न कर दिया है, उससे सारी मनुष्य-जाति तंग आ गई है। जगह-जगह प्रयत्न हो रहे हैं कि अब इस प्रकार के युद्धोपयोगी आविष्कार बंद हो जायँ तथा मनुष्य की वैज्ञानिक प्रवृत्ति संसार की सुख-समृद्धि तथा शांतिमय जीवन की ओर प्रवृत्त की जाय। लेकिन जब तक मनुष्य की स्पर्धा का अंत नहीं हो जाता, त तक उसके ये विनाशकारी वैज्ञानिक आवि-

ष्कार बंद नहीं हो सकते। यह तो स्त्रियों का ही श्रेय है कि उन्होंने अब तक जितने आविष्कार किए, सब संसार की भलाई के लिये। उनमें एक भी ऐसा नहीं, जिससे मनुष्य-जाति की पारस्परिक कलह की अभिवृद्धि हुई हो। दुनिया की सबसे बड़ी वैज्ञानिक महिला श्रीमती मैडम कुरी के रेडियम के आविष्कार ने तो संसार की इतनी अधिक उन्नति कर दी है कि आज संसार उनके उपकारों से अपने आपको दबा हुआ पाता है। स्त्रियों की स्वाभाविक कोमलता और दयामयी वृत्ति के कारण ही इस प्रकार के उपयोगी आविष्कार संभव हो सके हैं। अतः संसार स्त्रियों के निकट अत्यंत आभारी है।

× × ×

४. पंडित जवाहरलाल को फिर सज़ा

इतने दिनों तक जेल में रहकर राष्ट्रपति जवाहरलाल १३ ऑक्टोबर को मुक्त हुए थे। उनके बाहर आते ही नौकर-शाही की नींद हवा हो गई थी। अतएव वह उन्हें दो दिन भी जेल के बाहर रखना पसंद नहीं करती थी। उसने उन पर अपने मनमाने क़ानूनों का लगातार प्रहार किया, और अंत में राज-विद्रोह तथा ग़ैर-क़ानूनी नमक बनाने के लिये जनता को बरग़लाने के अपराध में उन्हें गिरफ़्तार भी कर लिया। प्रयाग के सिटी-मजिस्ट्रेट की अदालत में उन पर मुक़द्दमा चलाया गया, और वह राज-विद्रोह, जनता को बरग़लाने तथा ग़ैर-क़ानूनी नमक बनाने में सहायक होने के अपराधी ठहराए गए। उन्हें ढाई वर्ष का सपरिश्रम कारावास दे दिया गया।

जवाहरलालजी-जैसे सर्वस्व-त्यागी, देश-भक्त वीर को इस प्रकार क़ैद करके, एक शेर को इस प्रकार पिंजड़े में बंद करके सरकार ने अपनी समझ में बड़ा अक़्लमंदी और दूरदर्शिता का काम किया है। उसे शायद यह विश्वास है कि जवाहरलालजी-जैसे स्वतंत्र-प्रकृति नवयुवकों की मनोवृत्तियों का वह अपने इन उपायों द्वारा दमन कर सकती है। किंतु उसे पता नहीं, जवाहरलालजी-जैसे वीरों की आत्मा क़ैद अथवा फाँसी की परवा नहीं करती। अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये, देश की स्वतंत्रता के लिये और अपने सम्मान की अक्षुण्णता के लिये वे लोग अपना सर्वस्व निछावर कर चुके हैं। भारत माता की स्वातंत्र्य-वेदिका पर उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा कर ली है। जीवन के सभी सुखों को तिलांजलि देकर वे इस कठिन असि-धारा-व्रत का पालन करने के लिये अग्रसर हुए हैं। तब भला केवल ढाई वर्ष का कठिन कारावास उन्हें क्या डरा सकता है?

जवाहरलालजी का दृढ़ विश्वास है कि विदेशियों द्वारा पदाक्रांत उनकी मातृभूमि शीघ्र ही स्वतंत्र हो जायगी; क्योंकि उनकी सम्मति में देश ने इन पिछले दिनों में जिस दृढ़ता और अपूर्व आत्मत्याग का परिचय दिया है, वह उसकी उद्देश्य-पूर्ति के लिये पर्याप्त है। केवल यही एक बात इतनी ज़बर्दस्त है कि जिसने जवाहरलालजी-जैसे आशावादी नेता को दुःख झेलने में इतना दृढ़ बना दिया है। उनका दृढ़ विश्वास ही उन्हें ऐसा विकट योद्धा बनाए हुए है।

जवाहरलालजी की यह युद्ध-प्रियता तथा आशावादिता इतनी ज़बर्दस्त है कि उसके प्रभाव से सारा युवक भारत प्रभावित हो उठा है। उनके आदर्श चरित्र, पवित्र देश-भक्ति तथा अजेय साहस ने देश के नौजवानों में एक ऐसी शक्ति फूँक दी है कि अब वे किसी प्रकार भी ग़ुलामी की बेड़ियाँ पहने रहने के लिये तैयार नहीं। न केवल भारतीय युवक ही अपने इस महान् सेनापति के इन उत्कृष्ट गुणों के कायल हैं, अपितु विदेशों तक में पंडितजी के अपूर्व आत्मत्याग, अदम्य साहस, उत्कट देश-प्रेम तथा आदर्श चरित्र की धाक जम गई है। सरकार तक उनके इन गुणों को ख़ूब पहचान गई है। इसीलिये वह उन्हें बड़ा ख़तरनाक आदमी समझती है; उसके यहाँ इस प्रकार के मनुष्य जनता की शांति और सुख के दुश्मन गिने जाते हैं। जेल ही उनके लिये उपयुक्त स्थान समझा जाता है। अतएव उसने उन्हें अत्यंत निर्लज्जता तथा निर्दयता-पूर्वक फिर जेल भेज दिया है।

जवाहरलालजी की इस पाँचवीं जेल-यात्रा ने जनता में उनके सम्मान और विश्वास की मात्रा दुगुनी कर दी है। सरकार का यह विश्वास कि उसकी इस करतूत से जनता में जवाहरलालजी-जैसे 'राज-द्रोही कहानेवाले' व्यक्ति के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न होंगे तथा उसमें सरकार के प्यारे बच्चों—क़ानून और न्याय—के प्रति बड़ी भक्ति का उद्रेक होगा, बिल्कुल मूर्खता-पूर्ण है। जनता इस प्रकार के न्याय-नाटक की बारीकियाँ ख़ूब पहचानती है!

× × ×

५. काले क़ानून का काला मुँह

२८ ऑक्टोबर के दिन भारत के समाचार-पत्रों के संचालकों तथा संपादकों के हृदय पर से एक बोझ-सा उतर गया। उस दिन भारत-सरकार के बिगड़े दिमाग़ के मद—काले क़ानून प्रेस-ऑर्डिनेंस की अवधि समाप्त हो गई।

प्रेस-ऑर्डिनेंस ने सरकार के फ़ौलादी शिकंजे में सैकड़ों स्क्रू लगा दिए थे। उसके द्वारा सरकार ने अनगिनती समाचार-पत्रों को अत्यंत निर्दयता-पूर्वक पीस डाला, बहुतों का ख़ून चूस-चूसकर उसने उन्हें बेकाम कर दिया, और बहुतेरों को सदा के लिये निगल लिया। सरकारी गुर्गों की मनमानी रिपोर्टों पर विश्वास करके अंध-परंपरा-विश्वासी सज्जन महाप्रभुओं ने बेरोक-टोक 'सिक्योरिटी'—जमानत माँग-माँगकर देश के प्रायः सभी उन्नतिशील पत्रों के मुँह पर ताला लटकवा दिया था। हिंदी के प्रायः सभी प्रभावशाली पत्र बंद हो गए थे।

इन पत्रों के बंद होने का कारण प्रधानतः अखिल-भारतीय संपादक-मंडल का ऑर्डिनेंस-विरोधी प्रस्ताव ही था। इस ऑर्डिनेंस के विरुद्ध 'प्रोटेस्ट' करने के लिये ही अधिकांश पत्रों ने अपना प्रकाशन स्थगित कर दिया था। बाद में कुछ तो फिर प्रकाशित होने लगे थे, और कुछ अब शीघ्र ही प्रकाशित होने लगेंगे।

जो लोग इस आर्डिनेंस के शिकार हुए, उनकी कठिनाइयों तथा महान् आर्थिक हानि का अंदाज़ा केवल वे लोग ही कर सकते हैं, जिन्हें कभी इस प्रकार के कार्य में हाथ डालने का मौक़ा हुआ है। जो पत्र इसके प्रहार से बच गए, उन्हें भी बड़े असमंजस और संदेह के समय में से गुज़रना पड़ा है।

हमें संदेह है, शायद ही सरकार का उद्देश्य इस काले क़ानून से पूरा हो सका हो। ज़िम्मेदार समाचार-पत्रों के कार्य-क्षेत्र से हटते ही हाथ के लिखे और छपे 'न्यूज़-शीट' और 'बुलेटिन' हज़ारों की संख्या में जनता के पास पहुँचने लगे थे। इनके द्वारा कांग्रेस का कार्य जितना पूरा हुआ, उतना तो समाचार-पत्रों से कभी भी न हो पाता। इन ग़ैर-क़ानूनी कहलानेवाले बुलेटिनों की जैसी माँग थी, उससे तो पता चलता है कि वे लाखों की संख्या में प्रतिदिन प्रकाशित होते थे। इनके कारण सरकार की सारी दूरदर्शिता ताक़ में ही रक्खी रह गई थी। उसे इनके दमन के लिये भी लाखों असफल प्रयत्न करने पड़े थे। किंतु इस पर भी इनके प्रकाशन को वह बंद न कर सकी थी।

सुना जाता है, सरकार आजकल एक नया प्रेस-संबंधी अंडा से रही है। एसेंबली की बैठक होते ही वह इस अंडे में चोंच मारना प्रारंभ करेगी, और शायद शीघ्र ही किसी नए प्रेस-ऐक्ट 'चूज़े' की चों-चपड़ सुनाई पड़ने लगेगी। यह ख़बर कहाँ तक सच है, यह भगवान् जाने, किंतु इतना तो निश्चित ही है कि एक बार फिर इस 'चूज़े' की जान के गाहक 'बुलेटिन' सैकड़ों की संख्या में आविर्भूत हो जावेंगे। अतएव सरकार को यही चाहिए कि वह इस प्रकार के मूर्खता-पूर्ण ऑर्डिनेंसों को पास करने के बजाय अपने रवैये में ही परिवर्तन कर दे।

× × ×

६. स्पेशल-ट्रिब्यूनल

लाहौर, मेरठ तथा बंगाल के प्रसिद्ध षड्यंत्र-संबंधी अभियोगों पर विचार करने के लिये सरकार ने विशेष अदालतों का प्रबंध किया है। आर्डिनेंसों

द्वारा इन अदालतों की सृष्टि हुई है। ऐसी ही आर्डिनेंस-प्रतिष्ठित एक विशेष अदालत ने वीर देशभक्त सरदार भगतसिंह, श्रीराजगुरु तथा श्रीसुखदेव को फाँसी की सज़ा दे डाली है तथा उनके अन्य साथियों को सपरिश्रम कारावास। इस अदालत में जिस प्रकार न्याय का अभिनय किया गया, वह जनता से छिपा नहीं। साधारण अदालतों में साधारण अपराधियों के समान अपना अभियोग चलाने का प्रत्येक भारतीय का जन्म-सिद्ध अधिकार है। जनता के इस जन्म-सिद्ध अधिकार पर आक्रमण करके मनमाना न्याय का ढोंग बनाना किसी भी सभ्य सरकार के लिये क्षंतव्य नहीं हो सकता। किंतु भारतवर्ष में न्याय और क़ानून की ठेकेदार तथा 'क़ानून-स्थापित' सरकार ने अपना मतलब गाँठने के लिये इसी उपाय का अवलंबन किया है।

'स्पेशल ट्रिब्यूनल' की सबसे बड़ी पोल यह है कि इसके द्वारा ज़ाब्ता फ़ौजदारी के उस नियम को बिलकुल उड़ा दिया गया है, जिसके द्वारा प्रत्येक अपराधी पर अभियोग लगाने से पहले उसके ऊपर लगाए अभियोग की सत्यता पर विचार किया जाता है। अभियोग प्रमाणित हो जाने पर उसे सेशन-सुपुर्द कर दिया जाता है, जहाँ से उसे दंड दिया जाता है। इस दंड के विरुद्ध उसे हाईकोर्ट में अपील करने का भी अधिकार दिया गया है। किंतु इन स्पेशल ट्रिब्यूनलों में इस प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं की जाती। अपितु अभियुक्तों पर एकदम मामला चलाकर दंड दे दिया जाता है। इस दंड के विरुद्ध हाईकोर्ट में वे अपील भी नहीं कर सकते। हाँ, यदि वे चाहें, तो प्रिवी कौंसिल में अपील कर सकते हैं।

हमारी समझ में तो ऐसी अदालतें स्थापित हो जाने से अभियुक्तों के उचित अधिकारों का ख़ून हुआ है। सेशन-सुपुर्द होने से पहले जो जाँच की जाती थी, उससे अभियुक्तों को अपने ऊपर लगाए गए अभियोग को समझने में बड़ी आसानी हो जाती थी। वे सेशन-कोर्ट में इस अभियोग की जवाबदेही के लिये तैयार हो सकते थे। किंतु इन विशेष अदालतों ने उनके हाथ से यह मौक़ा भी छीन लिया।

इस प्रकार सरकार ने न्याय के मार्ग में रोड़े अटकाकर अत्यंत नीचता-पूर्ण और घृणित कार्य किया है।

× × ×

७. जनता और पुलिस

भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ की पुलिस क़ानून भंग करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझती है। देश में शांति बनाए रखने के लिये जिन लोगों को नौकर रक्खा गया हो, वे ही जब उस शांति का नाश करने पर उतारू हों, तो फिर कहना ही क्या! पिछले दिनों में देश के कोने-कोने से पुलिस के अत्याचारों और बेरहमियों के समाचार इतनी अधिक संख्या में आए हैं कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कई स्थानों पर तो यह कहा गया है कि पुलिस ने स्त्रियों पर भी लाठियाँ चला दीं तथा उन पर अन्य अमानुषिक अत्याचार किए। पिछले दिनों एसेंबली में मि० नियोगी ने बंगाल की पुलिस के जिन राक्षसी कृत्यों का भंडाफोड़ किया था, वे अब भी जनता की स्मृति में ताज़े हैं। अभी हाल में बंबई में भी स्त्रियों पर पुलिस ने इसी प्रकार का नपुंसकता-पूर्ण हमला किया था। श्रीमती अवंतिका बाई गोखले-जैसी भद्र महिला का बयान है कि छोटी-छोटी लड़कियों तक को पुलिस ने पीटा। ऐसी दशा में कौन ऐसा हिंदोस्तानी होगा, जिसकी आँखों में ख़ून न उतर आए। यदि पुलिस की यही प्रणाली और कुछ दिन जारी रही, तो आश्चर्य नहीं कि जनता एकदम पुलिस को कच्चा चबा डालने पर उतारू हो जाय। स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र सहन नहीं कर सकता। वह उसका भयंकर प्रतीकार करने के लिये अवश्य तत्पर हो जाया करता है। उसकी इस प्रतिहिंसाग्नि को जाग्रत् न करने में ही सरकार की तथा पुलिस की भलाई है।

रिश्वत खाने, बिना बात के गाली-गलौज करने, बिना

पैसा दिए दूकानदारों से माल ऐंठने, बात-बात पर चालान की धमकी देने, एकदम झूठी साक्षी जुटाने, चोरों से मिलकर चोरी कराने तथा डाका डालने में सहायक होने आदि अनेक अपराधों में भारतीय पुलिस की काफ़ी प्रसिद्धि है। अनेक बार इसी प्रकार के अभियोग पुलिस-कर्मचारियों पर चलाए जा चुके हैं। जस्टिस वालश तथा जस्टिस मीयर्स-जैसे न्याय-प्रिय न्यायाधीशों के आने से पुलिस की ये बद-माशियाँ बहुत कुछ कम होती जा रही हैं। कम-से-कम झूठे मुकद्दमों की संख्या में तो काफ़ी कमी हुई है, किंतु अब भी अन्य दोषों की संख्या इतनी अधिक है कि भारत की पुलिस-फ़ोर्स साधारण जनता के सुख तथा समृद्धि में सहायक होने के बजाय सबसे बड़ी बाधक सिद्ध हुई है। जब तक विना पढ़े-लिखे, कम वेतन पानेवाले, गँवार, चरित्र-हीन रँगरूट भरती किए जायँगे, तब तक इसका सुधार होना भी बिलकुल असंभव है। हाँ, इनकी ग़ैरक़ानूनी कार्यवाहियों की वृद्धि अवश्य हो सकती है।

सैकड़ों हेलियों तथा हज़ारों इरविनों का प्रतिदिन पढ़ा जानेवाला पुलिस-माहात्म्य तथा पुलिस-स्तोत्र भी इन सरकारी गुंडों के प्रति जनता के सद्भाव जाग्रत नहीं कर सकता। केवल लंदन-पुलिस के समान ही कर्तव्य-परायण, साहसी तथा जनता की सहायक, सच्चरित्र पुलिस-फ़ोर्स ही उसके आदर की पात्र हो सकती है, हिंदोस्तान की रिश्वतख़ोर, झूठी, मतलबी तथा दांभिक पुलिस नहीं।

भारतवर्ष की सारी पुलिस ही इस प्रकार की निकम्मी पुलिस है, यह हमारा अभिप्राय ज़रा भी नहीं। उसमें भी जनता के हितैषी, धर्म-भीरु, सच्चरित्र हिंदू तथा मुसलमान भाई मौजूद हैं, किंतु इन सज्जनों की संख्या भेड़ की खाल ओढ़नेवाले भेड़ियों के सामने बहुत कम है। इसीलिये सारी पुलिस-फ़ोर्स जनता की घोर घृणा की पात्र हो रही है। दूसरी बात यह भी है कि जनता के प्रति सहानुभूति दिखानेवाले पुलिस-अफ़सरों के प्रति सरकार की निगाह भी कुछ अच्छी नहीं रहती, इसलिये बहुत-से लोगों को इच्छा न रहते हुए भी अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है। ऐसी दशा में वे सदाशय पुरुष भी जनता के निकट बदनाम हो जाते हैं। अतएव हमारी सम्मति में तो यह पूरी मशीन ही फिर से 'ओवर-हॉल' करने की ज़रूरत है।

× × ×

८. भारतीय स्त्रियों की वर्तमान दशा

सर मियाँ मुहम्मदशफ़ी की पुत्री बेगम शाहनवाज़ भारत-सरकार की प्रतिनिधि होकर गोलमेज़-कान्फ़्रेंस में सम्मिलित होने गई हैं। विलायत में उन्होंने भारतीय स्त्रियों की दशा का जो चित्र खींचा है, वह अत्यंत मनोरंजक है। उसमें उन्होंने पाश्चात्य स्त्री तथा पौरस्त्य स्त्री के अधिकारों तथा गार्हस्थ्य-जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। वह कहती हैं—

"पूर्व अब भी पूर्व है, और पश्चिम अब भी पश्चिम। किंतु नवीन भारत की उत्पत्ति के साथ-ही-साथ अनेक परिवर्तनों का भी आविर्भाव हुआ है। आज हमारे देश की स्त्रियों की दशा पाश्चात्य देशों की स्त्रियों से कहीं अधिक अच्छी है।

"ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि भारतीय स्त्रियों ने सदा अपने देश के इतिहास-निर्माण में पर्याप्त भाग लिया है। अतएव उस पर उनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। हाँ, यह बात ज़रूर है कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से कार्य नहीं किया।

"वे सदा से घर की रानी रही हैं। उनके पति सदा उनसे अपने कारोबार में सलाह लिया करते हैं। घर का सारा ख़र्च स्त्री के हाथ में रहता है। वह अपने घर की ख़ज़ांचिन तथा उसके आय-व्यय की ज़िम्मेदार होती है, पति को इस विषय में ज़रा भी चिंता नहीं करनी पड़ती। किंतु यहाँ पश्चिम में, मुझे पता लगा है, स्त्री अपने पति की आय कितनी है, यह तक नहीं जानती।

"गृहस्थी का सारा भार स्त्रियों के ऊपर डाल देना

बड़ी अच्छी बात है। इससे उन्हें मितव्ययी होने की शिक्षा मिलती है। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने पति पर कंजूसी का दोषारोपण करने का भी मौक़ा नहीं मिलता, क्योंकि यदि कोई अभिलषित व्यय न कर सकने की नौबत आ जाती है, तो इस बात का सबसे पहले पता स्त्री को स्वयं ही लग जाता है।

"स्त्रियों के इस अधिकार के कारण पुरुष को अनेक प्रकार के घरेलू झंझटों से फ़ुर्सत मिल जाती है, तथा सदा के लिये एक प्रकार का स्त्री और पति का पारस्परिक सद्भाव, विश्वास और श्रद्धा का संबंध स्थापित हो जाता है। किंतु हमारे देश के बहुत-से नवयुवक पाश्चात्य संस्कृति के इतने भक्त बन गए हैं कि वे घर का सारा इंतज़ाम अपनी स्त्रियों के हाथ में दे देना अनुचित समझते हैं।

'भारतीय सम्मिलित-परिवार-प्रणाली के लाभों तथा सुखों के वषय में भी इँगलैंड-निवासी बहुत कम जानते हैं। हमारे देश में प्रायः सभी परिवार एक दूसरे के सुख और दुःख में समानरूप से सम्मिलित होते हैं। लगभग १०० परिवार मिलकर एक साथ रहते तथा सुखोपभोग करते हैं। पारस्परिक पारिवारिक बातों में भी सभी परिवार एक दूसरे से सलाह लेते तथा एक दूसरे की सहायता करते हैं।

"संपत्ति तथा उत्तराधिकार के विषय में भी मेरी समझ में भारतीय स्त्री बड़ी भाग्यवान् है। इस्लाम तथा हिंदू-धर्म दोनो ने ही स्त्रियों के इन अधिकारों को स्वीकार किया है। भारतीय स्त्रियाँ, विवाह के उपरांत भी, अपनी स्वकीय संपत्ति की अधिकारिणी समझी गई हैं।

"भारतीय स्त्री का व्यक्तित्व भी बिलकुल स्पष्ट तथा पृथक् रहा है। वे सदा से अपने जन्म-समय दिए गए नाम से ही संबोधित की जाती रही हैं। 'मिसेज़ सो एंड सो' कहलाने की पाश्चात्य प्रथा तो अभी हाल में ही हमारे देश में प्रचलित हुई है। इस प्रथा को अब भी हमारे बुज़ुर्ग लोग पसंद नहीं करते।

"पाश्चात्य वेष-भूषा को स्वीकार न करने का सबसे बड़ा कारण तो यही है कि हम लोगों का जातीय वेष, हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुकूल तथा हमारे व्यक्तित्व का परिचायक है।"

"हमारे सामने अनेक सामाजिक समस्याएँ हैं। उनमें सबसे पहली समस्या है पर्दा-प्रथा की। दूसरी कुप्रथा बाल-विवाह की है। यह शीघ्र-शीघ्र मिटती जा रही है। तीसरी कुप्रथा बहु-विवाह की है। यह (मुसलमानों तथा कहीं-कहीं हिंदुओं में भी) अब तक बंद नहीं हुई है।

"शिक्षा की उन्नति के साथ-ही-साथ पुरुषों और स्त्रियों में अपना कर्तव्य पहचान लेने की क्षमता भी बढ़ती जा रही है। वे अपने देश, मनुष्य-समाज तथा आगामी पीढ़ियों के प्रति अपना कर्तव्य समझने लगे हैं।

"अनेक सुधार होने बहुत पहले से ही प्रारंभ हो चुके हैं। परदा शीघ्रता-पूर्वक ग़ायब हो रहा है, क्योंकि वह उन्नति में अत्यंत बाधक सिद्ध हुआ है।

"परदे के कारण स्त्रियों को कुछ कष्ट न था। वास्तव में स्त्रियों को अच्छे पति, सुंदर बच्चे तथा सुखमय घर-गिरिस्ती की प्राप्ति हो जाय, तो फिर उन्हें अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं रहती। किंतु इस उन्नति के युग में हम लोग किसी देश की स्त्रियों से पीछे नहीं रहना चाहतीं, इसीलिये हम परदे के बाहर आई हैं।

"नए क़ानूनों के पास हो जाने से बाल-विवाह की प्रथा भी शीघ्र ही नष्ट हो जायगी। बाल-विवाह तो अब केवल दक्षिण भारत में ही अधिक होते हैं।

"बहु-विवाह भी कम हो रहा है। दहेज़ की प्रथा तथा मेहर और स्त्री-धन की प्रणाली ने इसमें काफ़ी बाधा डाली है। स्त्रियों की कमी भी इसमें बाधक हो रही है।

"प्रायः सभी प्रांतों में स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त है। वे सार्वजनिक कार्यों में ख़ूब हिस्सा लेती तथा कहा-कहीं कौंसिलों की मेंबरी तक करती हैं।

"बच्चों के सुख-स्वास्थ्य की ओर भी अब काफ़ी ध्यान आकर्षित हो चुका है। लेडी चेम्सफ़ोर्ड ने सबसे पहले हमारे देश में 'चाइल्ड वेलफेयर लीग' की स्थापना की थी। अब हम लोगों के अपने बहुत-से एसोसियेशन हैं, जिनके द्वारा बच्चों को दूध तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती हैं। इनका निरीक्षण योग्य स्वास्थ्य-निरीक्षकों के हाथ में है।

"हमारे देश की जल-वायु के कारण भी वहाँ की बाल-मृत्यु-संख्या में आशंकाजनक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। इस बढ़ी हुई बाल-मृत्यु के अनेक कारण हैं, यथा—अत्यधिक उष्ण जल-वायु, विविध प्रकार की 'ट्रॉपिकल' बीमारियाँ, बाल-विवाह, अनभिज्ञ मातृ-मंडल, बिगड़ा हुआ दूध इत्यादि। यही एक ऐसा काम है, जिसमें हम भारतीय स्त्रियाँ सबसे अधिक भाग ले रही हैं, क्योंकि हम चाहती हैं कि किसी प्रकार हमारे बच्चों का जीवन स्वास्थ्य तथा सौख्य-संपन्न बन जाय, और वे बढ़कर स्वस्थ नागरिक बन सकें।

"हम लोग शिक्षा को एक आवश्यक विषय बना देना चाहती हैं। यद्यपि हमारी अधिकांश बहनें अपनी भाषा में लिख-पढ़ सकती हैं, तथापि हमारी प्रबल इच्छा है कि हम किसी प्रकार अपने देश की संस्कृति में उन्हें पूर्णतया दीक्षित कर सकें।

"यह मैं मानती हूँ कि आजकल देश में बहुत-से स्कूल मौजूद हैं तथा उनमें पढ़नेवाली स्त्रियों और पुरुषों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है, लोग शिक्षा की उपयोगिता को पूरी तरह समझ गए हैं, तथापि मैं इतने को ही पर्याप्त नहीं समझती। हिंदोस्तान के प्रत्येक बालक के लिये पढ़ना आवश्यक बना देना चाहिए तथा उसके पढ़ने के लिये साधन भी उपस्थित रहने चाहिए।

"हम स्त्रियों की बड़ी प्रबल इच्छा है कि हमारे देश की आशाएँ शीघ्र ही फलवती हो जायँ, क्योंकि हम नवीन भारत की स्त्रियाँ देश के प्रत्येक कार्य में भाग लेने के लिये पूर्णतः कटिबद्ध तथा तत्पर हो गई हैं।"

बेग़म शाहनवाज़ के इन शब्दों को हम अमेरिका की छिद्रान्वेषिणी, गंदी नालियों की जमादार मिस मेयो साहबा को उपहार में देना चाहते हैं।

× × ×

६. प्याज़ की महिमा

भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ खान-पान-जैसे स्वास्थ्य-संबंधी विषय पर भी पंडित-पण्डों की धाँधलबाज़ी चला करती है। लोगों का खाना-पीना तक इन भले आदमियों ने हथिया रक्खा है। स्वयं तो बेचारे मद्य, मांस और मछली तक एक साँस में डकार जायँ, पर दूसरों के लिये प्याज़-जैसी उपयोगी वस्तु के खाने की भी उन्होंने मनाही कर दी है। मांस खानेवाले पुरुषों को भी प्याज़ से परहेज़ करते देखकर हमें बड़ा ताज्जुब हुआ। प्याज़ के गुण वैद्यकशास्त्र में अनेकों जगह लिखे पाए जाते हैं। नक़सीर फूटने पर प्याज़ का अर्क़ नाक में ऊपर चढ़ाने से तत्काल लाभ होता देखा गया है। हैज़े के लिये प्याज़ के अर्क़ से बढ़कर दूसरी दवा है ही नहीं। तपेदिक़ की सबसे श्रेष्ठ एलोपैथिक दवा प्याज़ का सत है। फोड़े-फुंसी पर कुचला हुआ प्याज़ छौंककर बाँधने से अपार लाभ होते देखा गया है। खुजली तथा अन्य त्वचा की बीमारियों में प्याज़ खाना अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त प्याज़ एक उच्च कोटि का वाजीकरण तथा रक्तशोधक पदार्थ माना गया है। जल-चिकित्सा में भी कच्चा प्याज़ खाने से अत्यंत लाभ होते देखा गया है।

इन सब गुणों के अतिरिक्त अभी हाल में ही डॉक्टर लाखोव्स्की ने—जो कई वर्ष से पीठ के फोड़ों तथा अन्य 'कैंसर'-नामधारी कठिन फोड़ों के इलाज के विषय में परीक्षण तथा खोज कर रहे हैं—प्याज़ का एक सर्वोत्तम गुण और ढूँढ़ निकाला है। वे कहते हैं, प्याज़ इन घातक फोड़ों के लिये सर्वश्रेष्ठ रामबाण है। इसमें कुछ ऐसी शक्तिशालिनी 'रेडियो-एक्टिव' किरणें उन्होंने ढूँढ़ निकाली हैं, जिनसे शरीर के प्रायः सभी कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। केवल कच्चे प्याज़ में ही यह गुण पाया जाता है।

डॉक्टर लाखोव्स्की ने कच्चे प्याज़ की इन शक्ति-शालिनी किरणों को एकत्रित करके 'कैंसर' की महौ-षधि का आविष्कार किया है। दुनिया के प्रायः सभी हिस्सों से उन्होंने संख्याएँ तथा गणनाएँ एकत्रित की हैं। उनसे उन्हें पता चला है कि उन जातियों में, जिनके भोजन में कच्चा प्याज़ प्रतिदिन खाया जाता है, 'कैंसर' का कभी नाम तक नहीं सुना गया। रूस और पोलैंड में यहूदी साधुओं की कई ऐसी जातियाँ उन्हें मिली हैं, जो केवल रोटी, कच्चा प्याज़ और पानी खा-पीकर ही रहती हैं। इन जातियों में आजतक कभी किसी को 'कैंसर' नहीं निकला। इसी प्रकार सर्विया, बलगेरिया तथा कोहकाफ़ के निवासी भी इस बीमारी से बिलकुल बचे हुए हैं, क्योंकि वे प्रतिदिन कच्चा प्याज़ खाते हैं।

इन उपर्युक्त बातों से प्याज़ की अनुपम महिमा सिद्ध हो जाती है। इस पर भी जिन पाठकों को प्याज़ के गुणों में संदेह हो, उन्हें संस्कृत का पलांडु-महाकाव्य लेकर पढ़ना चाहिए।

× × ×

१०. अज्ञात-नाम लेखक

मि० गिल्बर्ट फ्रैंको इँगलैंड के एक प्रसिद्ध उपन्यास-कार हैं। उन्होंने गुमनाम लेखकों पर 'मॉर्निंग-पोस्ट'-नामक विलायती समाचार-पत्र में एक लंबा लेख लिखा है। उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत कर देना चाहते हैं। क्योंकि हम समझते हैं, हिंदी-समाचार-पत्रों के अधिकांश लेखक छिपे रहकर ही दूसरों पर छींटेबाज़ी किया करते हैं। उनमें अपने विचारों को साहस-पूर्वक अपने नाम से प्रकाशित करने की हिम्मत नहीं। वे अत्यंत कायरता तथा नीचता-पूर्ण हमले बड़े-बड़े प्रतिष्ठित साहित्यिकों पर केवल इस 'गुमनाम' की ओट में किया करते हैं। मि० फ्रैंको लिखते हैं—

"प्रत्येक पुरुष या स्त्री, चाहे वह कोई कार्य क्यों न करता हो, अपने किए हुए कार्य के साथ अपने नाम का संबंध अवश्य रखना चाहता है। क़ैदख़ाने तक में यही प्रवृत्ति पाई जाती है। एक क़ैदख़ाने के गवर्नर ने मुझे बताया कि बहुत लंबे अनुभव के बाद उसे पता लगा था कि क़ैदी लोग नाम के बजाय नंबर द्वारा पुकारे जाने पर अत्यंत दुखी हुआ करते हैं। यदि उन्हें नाम लेकर पुकारा जाय, तो वे उसे अपने ऊपर बड़ी अनुकंपा समझते हैं।

"जब क़ैदी तक अपने नाम का इतना महत्त्व सम-झते हैं, तब कला-कोविद् और साहित्य-मर्मज्ञों का तो कहना ही क्या! उनके तो रोम-रोम में आत्मा-भिमान तथा नाम-माहात्म्य का आवास रहता है। कला-कोविद् की कला का चिह्न उसका नाम ही है। वही उसके व्यक्तित्व का परिचय देता है। वही बत-लाता है कि अमुक आर्टिस्ट अमुक कार्य अच्छा करता है।

"यदि कोई कलाकार अपनी कृति पर अपना नाम नहीं देना चाहता, तो उसका कारण केवल यही हो सकता है कि वह अपनी कृति पर लज्जा का अनुभव करता है। ऐसी दशा में—यदि उस कृति से प्राप्त हुए धन से आर्टिस्ट का पेट न पलता हो, तो—उस भद्दी कृति को नष्ट कर देना ही अधिक उचित है।

"प्रत्येक कलाकार में अपना स्पष्ट व्यक्तित्व होना अत्यंत आवश्यक है। स्वाभिमान की मात्रा 'आर्ट' का जीवन है। यदि एक बार भी इस स्वाभिमान को कला के क्षेत्र से—कलाकार के हृदय से निकाल दिया जाय, यदि बड़े-से-बड़े कलाकार का व्यक्तित्व नष्ट कर-के उसकी गुमनाम कृति लोगों के सामने रक्खी जाय, तो निश्चय जानिए, उस कला तथा कलाकार की सत्ता ही नष्ट हो जायगी।"

× × ×

११. सन् १९३० के नोबल-प्राइज़

इस वर्ष का साहित्य-विषयक नोबल-पुरस्कार अमे-रिका के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक श्री सिन्क्लेयर ल्यूइस को मिला है। यह पहला ही अवसर है कि जब अमेरिका के एक साहित्यिक को यह सम्मान प्राप्त हुआ है। लोगों को बड़ा आश्चर्य था कि अमेरिका-जैसे

उन्नतिशील राष्ट्र ने क्यों अब तक एक भी नोबल-प्राइज़-विजेता साहित्यिक नहीं पैदा किया। संसार की प्रायः सभी महान् जातियों ने अपने-अपने नोबल-प्राइज़-विजेता साहित्यकों की सृष्टि की है। इँगलैंड में रुडयार्ड किपलिंग, आयर्लैंड में महाकवि येट्स तथा प्रसिद्ध नाटककार जार्ज बर्नार्ड शॉ, फ्रांस में श्री-अनातोल फ्रांस, भारतवर्ष में महाकवि रवींद्रनाथ, बेल्जियम में मॉरिस मेटरलिंक, जर्मनी में हुमसेन, डेनमार्क में हाप्टमैन तथा इसी प्रकार स्वीडन, नार्वे, पोलैंड, इटली, स्पेन आदि प्रायः सभी सभ्य देशों में विभिन्न साहित्यिकों को यह संसार-प्रसिद्ध पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। अमेरिका ही अब तक इस सम्मान से वंचित था। सिन्क्लेयर ल्यूइस ने अपने देश के इस कलंक को धो डाला है।

सिन्क्लेयर इस समय ४५ वर्ष का है। उसने यद्यपि योरपियन महासमर के बहुत पहले से ही उपन्यास-लेखन प्रारंभ कर दिया था, तथापि वह प्रसिद्ध उसके बाद ही हुआ। उसके प्रारंभिक उपन्यासों की ओर कभी किसी ने आँख उठाकर भी नहीं देखा था। 'मेन-स्ट्रीट' ही उसका सबसे पहला प्रसिद्ध उपन्यास था। इसमें उसने नई लेखन-प्रणाली द्वारा उत्तरी अमेरिका की मध्यवर्तिनी रियासतों के सामाजिक जीवन पर टीका की थी। उसने यह दिखलाया कि यहाँ का सामाजिक जीवन कितना संकीर्ण तथा कितना निकम्मा है। उसका यह उपन्यास प्रांतीयता के विरोधियों की बाइबिल हो गया, और उन्होंने इसके आधार पर इन रियासतों के संकीर्ण जीवन पर प्रबल आघात आरंभ कर दिए।

प्रांतीयता के इस छोटे दायरे को छोड़कर ल्यूइस और भी ऊँचा उठा, और उसने अमेरिका के कारोबारी जीवन तथा अमेरिकन ईलाइयत पर प्रबल आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। इस ध्येय की पूर्ति के लिये उसने अपना सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'बैबिट' लिख डाला। इसमें उसने अमेरिकनों के कारोबार, प्रोग्राम तथा 'एटिकेट' के विशिष्ट क़ानून-क़ायदों के शिकंजे में कसी हुई कृत्रिम ज़िंदगी का ख़ूब ख़ाक़ा खींचा। इस उपन्यास का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि अमेरिकन समाज ने अपनी इस कृत्रिम दशा के सुधार के लिये प्रबल आंदोलन प्रारंभ कर दिया। बड़े-बड़े साहित्यिकों की राय में 'बैबिट' से बढ़कर प्रभावशाली उपन्यास पिछले १० वर्षों में, संसार की किसी भाषा में, प्रकाशित नहीं हुआ। 'बैबिट'-उपन्यास के प्रभाव का यह स्पष्ट उदाहरण है कि अँगरेज़ी-भाषा के कोष में बैबिट्री-नामक शब्द बढ़ाना पड़ा।

ल्यूइस के अन्य उपन्यास भी इसी विषय को लेकर ही लिखे गए हैं। उनमें से 'एरोस्मिथ' (१६२४ में प्रकाशित) में डॉक्टरों पर फब्तियाँ कसी गई हैं। उसका अंतिम उपन्यास 'डॉड्सवर्थ' (Dodsworth) 'बैबिट' की टक्कर का ही है। इसमें उसने योरप और अमेरिका के सामाजिक जीवन की तुलना की है।

ल्यूइस की लेखन-शैली बड़ी तीव्र है। वह नवीन सामाजिक स्वातंत्र्य की प्रबलता के बिल्कुल अनुरूप है। वह जीवन के प्रत्येक पहलू का विश्लेषण करके उनकी बड़ी प्रबलता-पूर्वक खिल्ली उड़ाता है। उसके उपन्यासों के पात्र डिकेंस के पात्रों के पात्र समान ही अपने युग के प्रतिनिधि-से प्रतीत होते हैं।

संभव है, कुछ लोगों को उसकी यह शैली पसंद न आए। उन्हें उसमें सुंदरता और सभ्यता या नागरिक कृत्रिमता दृगोचर न हो, तथापि उन्हें उसकी शक्ति-शालिनी लेखनी के व्यक्तित्व तथा निर्भयता का तो एक बार अनुभव हो ही जायगा।

× × ×

१२. द्वितीय भारतीय नोबल-प्राइज़-विजेता

सर चंद्रशेखर वेंकट रमन पहले भारतीय विज्ञान-वेत्ता हैं, जिन्हें इस वर्ष का भौतिक विज्ञान-संबंधी नोबल-पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अभी पिछले सप्ताह आपको इँगलैंड की रॉयल सोसायटी द्वारा प्रसिद्ध 'ह्यू मेडल'-नामक पदक भी प्राप्त हुआ था। इस समय आप संसार के सबसे बड़े भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं में गिने जाते हैं।

डॉक्टर रमन की आयु इस समय ४२ वर्ष की है। उन्होंने ए० वी० एन० कॉलेज विजगापट्टम और प्रेसीडेंसी-कॉलेज मद्रास में शिक्षा पाई थी। युनिवर्सिटी में वह एक बड़े प्रतिभाशाली विद्यार्थी समझे जाते थे। कॉलेज की शिक्षा समाप्त करने के बाद आप भारत-सरकार की फाइनेंशियल सिविल सर्विस के इम्तिहान में फ़र्स्ट आए, और सन् १९०७ में फ़ाइनेंस-विभाग में नौकर हो गए।

इसी समय से उन्होंने वैज्ञानिक पत्रों में कई लेख लिखे। उन लेखों को देखकर सर आशुतोष मुकर्जी बड़े प्रभावित हुए, और उन्होंने श्रीयुत रमन को विज्ञान की वेदी पर अपनी नौकरी का उत्सर्ग कर देने के लिये तैयार कर लिया। वह कलकत्ता-विश्वविद्यालय में विज्ञान के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। यहाँ उन्होंने 'फ़िज़िक्स' अथवा भौतिक विज्ञान में खोज करना प्रारंभ कर दिया। थोड़े ही दिनों में न केवल भारत में ही, अपितु पाश्चात्य जगत् तक में आपकी धाक जम गई।

सन् १९२४ में डॉक्टर रमन ने कनाडा और इटली की यात्रा की।

इसके बाद सन् १९२८ में वह इंडियन-सायंस-कांग्रेस के सभापति चुने गए। इस कांग्रेस में उन्होंने एक बड़ा ही मौलिक व्याख्यान दिया, जिसके कारण सारा भारतीय वैज्ञानिक मंडल प्रभावित-सा हो गया।

पिछले वर्ष सरकार की ओर से डॉक्टर रमन को सर की उपाधि देकर सम्मानित किया गया था।

डॉक्टर सी० वी० रमन ने प्रकाश, कंपन, आणविक-विकिरण, नाद तथा नाद-यंत्रों के विषय में पारंगमता प्राप्त की है।

आप-जैसे सुपुत्रों पर भारत-माता कितना गर्व करती है, यह भला कौन बतावे।

× × ×

१३. ओरछा-दरबार

गत ४ नवंबर, १९३० ई० को बुंदेलखंड के प्राचीन स्वनामधन्य प्रधान राज्य ओरछा में हिज़ हाइनेस सरामद-ए-राजा ए-बुंदेलखंड श्रीसवाई महेंद्र महाराजा बहादुर वीरसिंहजूदेव को वाइसराय और गवर्नर जनरल लार्ड इरविन ने शासन-प्रबंध के कुल अधिकारों का ख़रीता, जो स्वाधीन नरेशों को दिया जाता है, माननीय एजेंट कर्नल हील के द्वारा सौंपा।

इस उपलक्ष्य में, टीकमगढ़ में, पूर्वोक्त तारीख़ को दरबार मनाया गया। चारों तरफ़ से जितनी सड़कें क़िले की तरफ़ गई थीं, तीन मील तक सब सुसज्जित कर दी गई थीं। बंदनवार-तोरण-पताकाओं से शृंगार किए हुए वे समागत लोगों का युवतियों-सी मुस्किराती हुई, नवीन हर्षोच्छ्वास से उमड़कर स्वागत कर रही थीं। इस तरह प्रजाजन तथा समादृत अतिथियों का मनोरंजन होता जा रहा था। जगह-जगह बड़े-बड़े तोरणों में "स्वागत" लिखा हुआ था। राज्य के लोगों के हृदय में उत्साह का सागर उमड़ रहा था। प्रजाजनों के वृंद-के-वृंद अपने नवीन महाराज के मांगलिक अवसर पर हर्ष तथा श्रद्धा प्रकट करने के लिये, बाढ़ के जल की तरह, सोत्सुक बढ़ते चले आ रहे थे।

अपने प्राइवेट सेक्रेटरी तथा और-और लोगों के साथ, इंदौर छोड़कर, मध्य-भारत के राज्यों के (बड़े लाट साहब से संबद्ध) एजेंट माननीय कर्नल हील साहब ११-५० पर, दोपहर को, टीकमगढ़ पहुँचे। आपका ससम्मान स्वागत किया गया। महाराजा साहब, बुंदेलखंड के राज्यों के पोलिटिकल एजेंट मेजर फ़िशर, महाराजा बहादुर के चिरंजीव और भविष्य के उत्तराधिकारी राजा बहादुर, महाराज के भाई महाराज-कुमार करनसिंहजी, टीकमगढ़-स्टेट के दीवान, हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक, मिश्रबंधुओं के मध्यम, रायबहादुर पंडित श्यामबिहारीजी मिश्र, चीफ़ सेक्रेटरी मिस्टर पांडेय तथा स्टेट के १२ सरदारों ने माननीय हील साहब को बढ़कर लिया। पश्चात् माननीय हील साहब एक शोभनीय जुलूस के साथ ठहरने के तंबू की तरफ़ ससम्मान ले जाए गए। इन लोगों के पहुँचने पर १३ तोपों की सलामी दागी गई। आए हुए अतिथियों का पूर्ण रूप से सत्कार किया गया।

५ बजे, संध्या से कुछ पूर्व, दरबार का अधिवेशन शुरू हुआ। बड़े लाट साहब के भेजे हुए ख़रीता और ख़िलत, हौदे-नशीन सजे हुए दो हाथियों पर, अश्वारोहियों और पैदलों से रक्षित कर, दरबार में लाए गए। उपयुक्त अवसर पर माननीय एजेंट हील साहब ने महाराज को ख़रीता और ख़िलत दी।

इसके बाद इस अवसर को लक्ष्य कर अँगरेज़-सरकार के साथ महाराज के संबंध की वर्णना करते हुए आपने एक वक्तृता दी। आपने कहा कि राज-प्रतिनिधि बड़े लाट साहब आपको इस प्राचीन ओरछा-राज्य की गद्दी पर आरूढ़ होने के निमित्त हार्दिक अभिनंदन के साथ-साथ सूचित करते हैं कि सम्राट् ने आपके इस उत्तराधिकार को स्वीकृत करते हुए संतोष प्रकट किया है। आपने पोलिटिकल एजेंट से सुनी हुई महाराज की प्रजा-हित-चेष्टा की याद दिलाई। शिक्षा पर बोलते हुए आपने कहा, कुछ ही महीनों में प्राथमिक विद्यालय २१ से बढ़कर ४७ हो गए हैं, और २५ और बढ़ाने की मंज़ूरी दी गई है। आपने कहा कि कामयाबी की सूचना है कि एक बालिका-विद्यालय भी खोला जा चुका है, और उसमें १०० बालिकाएँ पढ़ती हैं, २० और भर्ती होना चाहती हैं। एक हिंदी-स्कूल और एक पटवारियों का स्कूल भी खोला गया है। इसके बाद आपने समय के अनुसार आते हुए उन परिवर्तनों की चर्चा की, जिन पर इस समय विलायत में बहस हो रही है। आपने रायबहादुर पं० श्यामविहारी मिश्र, दीवान टीकमगढ़-स्टेट की तारीफ़ की। अनंतर ईश्वर की इच्छा से अतिक्रांत महाराज की बाधाओं का उल्लेख कर अपना सुंदर भाषण समाप्त किया। हम "सुधा" के ओरछा-अंक में आपका तथा महाराजा बहादुर का पूरा भाषण प्रकाशित करेंगे।

इसके उत्तर में श्रीमान् महाराज ने एक मधुर भाषण किया। महाराज ने माननीय एजेंट कर्नल हील तथा समागत अतिथियों को धन्यवाद देकर अपने पितामह के स्वर्गारोहण के पश्चात् पोलिटिकल एजेंट द्वारा अपने प्रभावशाली पूर्वजों की राजगद्दी पर सम्राट् की बाक़ायदा आज्ञा के बिना भी क़ानून के अनुसार बैठकर कुल अधिकारों के साथ शासन करने के उपदेश तथा अब तक इस शुभ अवसर को एजेंट टु दि गवर्नर जनरल इन सेंट्रल इंडिया द्वारा (महाराज ही के अनुरोध पर) रोक रखने की चर्चा की। फिर अनेक लोगों की बेबुनियाद शंकाओं का ज़िक्र किया। ख़रीते के लिये बड़े लाट साहब को धन्यवाद देते हुए ओरछा में उनकी संवर्धना करने की तथा भारतवर्ष के इतिहास में उनके-जैसे भारत-रक्षक, ज्ञानी, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की, जिन्होंने भारत को एक गंभीर प्रतिघात से बचाया, चर्चा की। फिर आपने सम्राट् के प्रति अपनी कृतज्ञता ज़ाहिर की। एक जगह आप कहते हैं—

"I also realise that the state stands in need of many reforms to suit the modern requirements and conditions of life. I have been trying my best to carry out a few reforms already, and others are well in hand."

अर्थात्—"मैं भी समझता हूँ कि जीवन की वर्तमान अवस्थाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये रियासत के लिये अनेक सुधार ज़रूरी हो रहे हैं। फ़िलहाल कुछ सुधारों के करने की मैं भरसक कोशिश कर रहा हूँ, और दूसरे भी हाथ में हैं।"

इसके बाद महाराज ने अपने सुयोग्य दीवान और चीफ़ सेक्रेटरी की सहायता का उल्लेख किया, और इसी शीत-ऋतु में राज्य की अवस्था के परिदर्शन कर राज्य तथा प्रजा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये कहा।

ईश्वर ऐसे सुशिक्षित, प्रजा-हित-रक्षक, विद्यानुरागी, सरलप्रकृति, हिंदी-प्रेमी नरेश को दीर्घ आयु प्रदान करें, यही हमारी उससे प्रार्थना है।

× × ×

१४. गोलमेज़-कान्फ़्रेंस का गोलमाल

गत १२ नवंबर को उस महान् गोलमेज़-कान्फ़्रेंस का कि जिसके बड़े-बड़े ढोल पीटे जाते थे, और जिसके लिये महीनों से तैयारियाँ हो रही थीं, बादशाह जार्ज पंचम ने उद्घाटन कर डाला।

बादशाह महोदय की स्पीच से माडरेटों तथा अन्य इसी प्रकार के दास-मनोवृत्ति के भारतीयों को बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं। वे सोच रहे थे कि बादशाह-कल्प-तरु से मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जायगी। यदि यह न होगा, तो कम-से-कम बादशाह-स्वातिनक्षत्र के मुख-विनिस्सृत जल-कण उन चातकों के सूखे गलों को थोड़ा-सा तर अवश्य कर देंगे। पर बेचारों के दुर्भाग्य से यह स्वाति नक्षत्र भी निर्जल और निर्दय ही निकल गया; बादशाह के मुँह से एक भी ऐसा जूठा कौर नहीं निकला, जिससे इन भिखारियों की जीभ को चटकारियाँ भरने तक की नौबत आती। बादशाह सलामत तो इँगलिस्तान के बादशाह-मात्र हैं। उन्हें किसी को कुछ देने-लेने का अधिकार है ही नहीं। उनसे उम्मीदें रखना बहुत बड़ी मूर्खता है। ब्रिटिश पार्लियामेंट ही वास्तव में समस्त ब्रिटिश साम्राज्य का शासन करती है। इँगलैंड के प्रधान मंत्री ही उसके सर्व-सर्वा हैं। यदि ये दोनो चाहें तो इँगलैंड के शासन-विधान तक को परिवर्तित कर सकते हैं। ऐसी दशा में बादशाह जार्ज-जैसे सहृदय सज्जन पुरुष अपनी इच्छा रहते हुए भी भारत के लिये कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं। हम ख़ूब जानते हैं, हम भारतवासियों की इस दयनीय दशा का उन्हें अच्छी तरह पता है, और-उनका करुणार्द्र हृदय अपनी प्रजा के इन कष्टों के कारण अवश्य द्रवीभूत हो रहा होगा। किंतु उनकी विवशता ही उन्हें हमारे लिये कुछ नहीं करने देती।

प्रधान मंत्री मैकडानल्ड का भाषण भी कुछ अधिक आशाजनक नहीं। यद्यपि उससे इतना अवश्य पता लगता है कि मैकडानल्ड महाशय भारतीय आकांक्षाओं से सहानुभूति अवश्य रखते हैं। शायद लेबर-पार्टी की दयनीय परिस्थिति उन्हें मजबूर कर रही है कि वह अपनी इस सहानुभूति को कार्य-रूप में परिणत न करें।

प्रधान मंत्री के व्याख्यान के बाद जितनी स्पीचें हुईं, उनमें सबसे अधिक स्पष्ट तथा उत्तम स्पीच माननीय श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री महोदय की ही थी। उन्होंने भारतीयों के प्रति किए जानेवाले अन्याय का उल्लेख करते हुए ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दी कि यदि भारत की उचित माँगों पर ध्यान न दिया गया, तो उसे एक अत्यंत भयानक परिस्थिति का मुक़ाबला करना पड़ेगा। महाराजा बड़ोदा ने भी देशी नरेशों की ओर से भारतीय अभिलाषाओं के साथ सहानुभूति प्रकट की। उनके अतिरिक्त सर अकबर हैदरी तथा मि० जिन्ना के भी व्याख्यान हुए।

किंतु इन सब स्पीचों का अंतिम परिणाम बिल्-कुल गोलमाल ही रहा। कान्फ़्रेंस के साथ-साथ जो छोटी-मोटी सभाएँ तथा वाद-विवाद हुए, उनसे स्पष्ट पता लगता है कि कान्फ़्रेंस के विविध सदस्यों में पारस्परिक मतभेद इतना बढ़ा हुआ है कि उसके कारण इन लोगों का किसी हितकर निश्चय तक पहुँच सकना नितांत असंभव प्रतीत होता है।

× × ×

१५. चित्र-परिचय

महाराजा अभयसिंहजी

प्रस्तुत चित्र अंतिम मुग़ल-कालीन राजपूत चित्र-कला का नमूना है। यह हमें जोधपुर-अजायबघर के संरक्षक साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथजी रेउ की कृपा से उपलब्ध हुआ है। महाराजा अभयसिंह जोधपुर के एक प्रसिद्ध राठौर राजा थे। आपकी वीरता तथा राजनीतिज्ञता का परिचय 'सुधा' के इसी अंक में प्रकाशित रेउजी की महाराजा अभयसिंह-नामक लेख-माला से मिल जाता है। पाठक एक बार उसे अवश्य पढ़ें। पौष की संख्या में यह लेख-माला समाप्त हो जायगी।

अहेर

मृगया-विहारी राजा प्रतापभानु का यह चित्र गंगा-पुस्तकमाला से शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली सचित्र रामायण से लिया गया है। राम-जन्म के विविध कारणों का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी ने राजा प्रतापभानु की कथा लिखी है, वह इस प्रकार है—

केकय-देश में सत्यकेतु नाम का एक प्रसिद्ध राजा था। वह बड़ा धर्म-धुरंधर, नीति का स्थान, तेजस्वी तथा प्रतापी था। उसके दो लड़के थे। उसकी मृत्यु के बाद राजगद्दी पर प्रतापभानु नाम का बड़ा लड़का बैठा। दूसरा भाई अरिमर्दन शत्रुओं का मर्दन करने लगा। दोनो भाइयों में बड़ी प्रीति थी। वे दोनो बड़े धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करते थे।

प्रतापभानु ने अपने भुज-बल से संसार-भर को जीतकर वश में कर लिया, और बड़े सुख-पूर्वक राजधानी में रहने लगा। वह इतना धर्मात्मा था कि उसके राज्य में कभी अधर्म होने ही नहीं पाता था। एक बार सुंदर घोड़े पर चढ़कर राजा शिकार खेलने गया, और वहाँ उसने एक भयंकर शूकर के पीछे घोड़ा डाल दिया। परंतु यह शूकर एक मायावी राक्षस था। वह राजा को भुलावे में डालकर अंतर्धान हो गया। राजा ने अपने आपको एक मुनि की कुटीर के सामने पाया। वह मुनि राजा का एक शत्रु, कपट-वेषधारी राजा था। प्रतापभानु ने उसे हराकर राज्य से निकाल दिया था। उस कपट-मुनि ने राजा से बदला लेने का यह बड़ा उपयुक्त समय देखा, और शीघ्र ही ब्राह्मणों के विरुद्ध राजा को भड़का दिया। राजा ब्राह्मणों को वश में करने का उपाय सोचने लगा। इसके बाद किस प्रकार इस कपट-मुनि ने राजा को धर्मच्युत करके उसके द्वारा ब्राह्मणों को नर-मांस खिलाया, यह सब रामायण में स्पष्ट वर्णित है। अच्छा हो, पाठक उसे वहीं पढ़ें। बालकांड के प्रारंभ में ही यह कथा वर्णित है।

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

मुक़द्दमा नंबर १८३ सन् १९३० ई०

बअदालत मुंसिफ़ी क़ैसर गंज मुक़ाम बहराइच

लाला रामरतन वल्द लालताप्रसाद क़ौम ज़रगर साकिन व परगना भँगा ज़िला बहराइच मुद्दई

बनाम

पिर्थी

मुद्दाअलेह

बनाम पिर्थी वल्द भैरों क़ौम चाईं साकिन हामिद पट्टी तहसील जवनपुर ज़िला आज़मगढ़ वारिद हाल लवदेपुर परगना भँगा ज़िला बहराइच।

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ११०१≡)रु० के दायर की है, लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १७ माह दिसंबर सन् १९३० ई० बवक़्त १० बजे असालतन् या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमे का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावै मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाबदावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ १७ माह नवंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

नोटिस निस्बत दिखाने वजह के (नमूना आम)

बअदालत जनाब पं० हरिकिशुन चतुर्वेदी मुंसिफ़ साहब बहादुर जनूबी मुक़ाम उन्नाव।

मुक़द्दमा नंबर ११७ सन् १९३० ई०

लछमीप्रसाद वल्द गुरुबख़्श क़ौम ब्राह्मण साकिन सोभा मोहाल परगना हरहा तहसील उन्नाव मुद्दई

बनाम

सूरजप्रसाद वग़ैरा साकिनान मज़कूर मुद्दाअलेहुम

बनाम रामप्रसाद उर्फ़ लल्लू वल्द सीताराम क़ौम ब्राह्मण शुक्ल साकिन सोभा मोहाल परगना बदिला तहसील उन्नाव हाल वर्क याम शहर इंदौर इमपिरियल ट्रांसपोर्ट राजपूत ट्रूप में

हरगाह मुसम्मा लछमीप्रसाद ने दरख़्वास्त इस अदालत में गुज़रानी है कि मुद्दई को डिगरी क़तई फ़र्माई जावे।

लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि तुम असालतन् या मार्फ़त किसी वकील के जो हालात मुक़द्दमा से बख़ूबी वाक़िफ़ हो बवक़्त १० बजे बतारीख़ १६ माह नवंबर सन् १९३० ई० इस अदालत में हाज़िर होकर दरख़्वास्त के ख़िलाफ़ वजह दिखाओ अगर ऐसा न करोगे तो दरख़्वास्त मज़कूर तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में समाअत की जावेगी। बतारीख़ १४ माह नवंबर सन् १९ ० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

सम्मन बग़रज़ इनफ़िसाल मुक़द्दमा

ख़फ़ीफ़ा मुक़द्दमा नंबर १६४५ सन् १९३० ई०

बअदालत जनाब मुंसिफ़ साहब बहादुर क़ैसरगंज मुक़ाम बहराइच

सरजूप्रसाद उम्र ३० साल वल्द सीतल क़ौम ब्राह्मण साकिन मौज़ा खपरौल इलाक़ा चहलारी परगना महरपुर — मुद्दई

बनाम

कालीप्रसाद — मुद्दाअलेह

बनाम कालीप्रसाद उम्र ४० साल वल्द द्वारका क़ौम ब्राह्मण साकिन खपरौल इलाक़ा चहलारी परगना फख़रपुर लगायत ८ कोस दक्खिन

हरगाह सरजूप्रसाद मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत २-) रु० असल व सूद बरबिनाय नमक के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ ८ माह दिसंबर सन् १९३० ई० बवक्त १० बजे असालतन् या मार्फ़त वकील के जो मुक़द्दमे के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतअल्लिक़ै मुक़द्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और सख़्श हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाबदिही दावे मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिये मुक़र्रर है वास्ते इनफ़िसाल क़तई मुक़द्दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ उनको पेश करो।

मुत्तिला रहो कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़द्दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मू और फ़ैसल होगा—आज बतारीख़ २० माह नवंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

इत्तिलानामा वास्ते इज़हार वजह इस अमर के कि हुक्म नीलाम क़तई क्यों न सादिर किया जावे।

(दफ़ा ८९ ऐक्ट नंबर ४ सन् १८८२ ई०)

(क़ायदा १६)

अदालत मुंसिफ़ी शाहजहाँपुर मुक़द्दमा नंबर १२१ सन् १९२९ ई०

नाम फ़रीक़ैन जगन्नाथप्रसाद वग़ैरा

बनाम

मुसम्मात गौरा

बअदालत मुंसिफ़ी जनाब मिस्टर बिसंभरप्रकाश साहब मुंसिफ़ मुक़ाम व ज़िला शाहजहाँपुर

जगन्नाथप्रसाद वल्द लाला बद्रीदास व मुकुटबिहारीलाल वल्द जगन्नाथप्रसाद क़ौम अग्रवाल साकिनान शहर मोहल्ला गंज — डिगरीदारान सायल

बनाम

मुसम्मात गौरा वग़ैरा — मदयून डिगरी फ़रीक़सानी

बाबू बिशम्भरनाथ वल्द लाला बिशेसरनाथ क़ौम खत्री साकिन हाल शाहाबाद ज़िला हरदोई व मुंशी रघुवरसहाय वल्द देवीप्रसाद क़ौम कायस्थ साकिन शाहजहाँपुर मोहल्ला रंगमहला

हरगाह मुद्दई डिगरीदार मज़कूरुस्सदर ने दरख़्वास्त सुदूर हुक्म क़तई वास्ते नीलाम जायदाद मरहूना व मक़फ़ूला डिगरी नंबरी १२३ सन् १९२६ ई० कि जो बतारीख़ ९ माह दिसंबर सन् १९२९ ई० अदालतहाज़ा से सादिर हुई थी व मुतालिबा मुफ़स्सिला गुज़रानी है लिहाज़ा तुमको इत्तिला दी जाती है कि अगर तुमको कोई उज़्र निस्बत सादिर होने हुक्म क़तई नीलाम जायदाद मज़कूरह के हो तो इस अदालत में बतारीख़ २० माह दिसंबर सन् १९३० ई० बवक्त १० बजे दिन के असालतन् या विकालतन या बज़रिए मुख़्तार ख़ास हाज़िर होकर पेश करो।

आज बतारीख़ २१ माह नवंबर सन् १९३० ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया।

जज

भिखारी से भगवान्

अर्थात्

सफलता और शांति-मार्ग

का

रहस्य

इसमें

बुराइयों से शिक्षा, संसार अपनी ही मानसिक दशा का प्रतिबिंब है, अनिष्ट दशाओं से छुटकारा पाने का उपाय, विचार-जन्य मूक शक्तियाँ, स्वास्थ्य, सफलता, शक्ति और परमानंद का रहस्य, ध्यान-जन्य-शक्ति, स्वार्थ तथा सत्य, आध्यात्मिक शक्ति का उपार्जन, निष्काम प्रेम की प्राप्ति, अनंत में लीन होना, सेवा-नियम तथा पूर्ण शांति की सिद्धि आदि विषयों का विशद वर्णन है।

स्त्री-पुरुष सभी के पढ़ने योग्य है।

मूल्य १) —— सजिल्द १॥)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

योगत्रयी

इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का संक्षेप, किंतु विशद वर्णन है। स्वामी रामचारकजी ने इसमें तीनों योगों की सापेक्षता सिद्ध की है। इसके अध्ययन से मनुष्य आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन को सफल शुभाशापूर्ण और शांत बना सकता है। पुस्तक की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। एकबार अवश्य पढ़िए। पृष्ठ-संख्या १०४; मूल्य ॥), सजिल्द १)

प्राणायाम

यह पुस्तक स्वामी रामचारक-लिखित 'साइंस ऑफ़् ब्रेथ' का हिंदी-रूपांतर है। प्राणायाम-जैसी कठिन क्रिया बड़ी सरल भाषा में समझाई गई है। साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी इसे एक बार पढ़कर प्राणायाम का अभ्यास कर सकता है। योगी तथा गृहस्थ सभी इससे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य केवल ॥।=), सजिल्द १।=)

योग की कुछ विभूतियाँ

योग की विभूतियाँ तो अनंत हैं, परंतु इस पुस्तिका में कुछ ऐसी विभूतियों का वर्णन है, जिन्हें जानकर आप अनंत लाभ उठा सकते हैं। इसमें ध्यान, समाधि और संयम इत्यादि का ऐसा सुंदर वर्णन है कि थोड़े ही से अभ्यास से मनुष्य की विचित्र शक्तियों का विकास हो सकता है। हमारे कथन का सत्य तथा पुस्तक के तत्त्व पढ़ने ही से ज्ञात हो सकते हैं। पृष्ठ-संख्या १३४; मूल्य ॥।), सजिल्द १।)

योगशास्त्रांतर्गत धर्म

संसार में धर्म का विचित्र झमेला है। धार्मिक मतभेदों से संसार में असंख्य अनिष्ट हुए हैं। स्वामीजी ने धार्मिक अनेकता में एकता और प्रतिकूलता में अनुकूलता दिखलाई है। इसके मनन और अध्ययन से धर्म-विषयक सारे संशय मिट जाते हैं। इसमें विषयों का इतना विशद तथा सरल वर्णन है कि योग-ऐसा क्लिष्ट विषय भी सरस हो गया है। पुस्तक के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है। पृष्ठ-संख्या ६८; मूल्य ॥)

हठयोग

नाम पढ़कर मत घबराइए। आप समझते होंगे कि पुस्तक योगियों के पुराने दुःसाध्य अभ्यासों से भरी होगी; भूलकर भी ऐसा ख़याल मत कीजिए। इसमें असाध्यता की बू तक नहीं है। इस बीसवीं शताब्दी के सर्वसाधारण के लिये यह लिखी गई है। इसमें स्वामी रामचारक के बताए हुए ऐसे सरल अभ्यास हैं जिन्हें आप खाते, पीते, उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते, फिरते हर वक्त कर सकते हैं। थोड़े ही अभ्यास से आपकी शारीरिक उन्नति और मनःशक्ति-प्रबलता उस मात्रा तक पहुँच जायगी जिसका आपको स्वप्न में भी ख़याल न होगा। इसे अवश्य पढ़िए। छप रहा है।

राजयोग अर्थात् मानसिक विकास

वह विद्या है, जिसके द्वारा आप अपने मानसिक दूषणों और त्रुटियोंको दूर करके मनःशक्ति को प्रबल तथा 'हृदय' को परमानंद, परिप्लावित कर सकते हैं। लेखक ने इसमें मन के भिन्न-भिन्न भेदों का स्पष्ट वर्णन करके आत्मोद्धार के उत्तम उपाय बतलाए हैं। इसमें अनुभव-हीनों की तरह मन को मारना या इसे ज़बरदस्ती दबा लेना नहीं बतलाया गया है। स्वामीजी ने इसमें मतवाले मन को स्वच्छंद रीति से वश में करना सिखाया है। सुंदर उपदेशों के साथ-साथ सरल भाषा में ऐसे मंत्र दिए गए हैं, जिनके मननसे वास्तविक कल्याण होगा। इसके तत्त्व पढ़ने ही से ज्ञात होंगे। पृष्ठ ३००; मूल्य १।)

जीवन-मरण-रहस्य

इस पुस्तक में मानव-शरीर-यंत्र का सूक्ष्म वर्णन है,जिसका ज्ञान प्रत्येक प्राणी को आवश्यक है। शरीर के साथ आत्मा, मन-प्रवृत्ति, अंतःकरण इत्यादि का वर्णन ऐसी सरल रीति से किया गया है, जिसे साधारण मनुष्य भी भली भाँति समझ सकता और अपना शारीरिक और मानसिक विकास कर सकता है। इसे सच्चे हृदय से पढ़ने से मरण-भय की सत्ता हृदय में नहीं रह सकती। इस पुस्तक को पढ़कर अपनी आत्मा को कर्मण्य तथा निर्भीक बनाइए। मूल्य ।=)

हास्य-रस की अलौकिक पुस्तक

मिस्टर व्यास की कथा

[लेखक—भूतपूर्व आनंद-संपादक स्वर्गीय श्रीशिवनाथ शर्मा बी० ए०]

अन्य रसों की तरह हास्य-रस पर क़लम चलाना सहज नहीं। बिरले ही प्रतिभा-शाली, सिद्ध-हस्त लेखक इसमें सफलता पाते हैं। व्यंग्य और विनोद द्वारा समाज की बुराइयों का चित्र खींचना साधारण लेखक की क़लम से बाहर है। लक्ष्य-हीन, उद्देश्य-हीन हँसी के चुटकुले लिख लेना मामूली बात है। यही कारण है कि संसार की सभी भाषाओं में हास्य-रस का साहित्य बहुत ही कम है। हिंदी में तो इस प्रकार की मौलिक रचनाएँ नहीं के बराबर हैं। शर्माजी उच्चकोटि के हास्य-लेखक हैं। आपकी इस पुस्तक में व्यंग्य और विनोद द्वारा बड़े ही अच्छे ढंग से समाज की बुराइयों का चित्र खींचा गया है। पुस्तक की पंक्ति-पंक्ति और अक्षर-अक्षर में व्यंग्य और विनोद कूट-कूटकर भरे हुए हैं। हास्य-रस की प्रधानता के साथ-साथ भाषा की सजीवता और ओज ने सोने में सुगंध का काम किया है। सभ्य हँसी, लच्छेदार भाषा में, स्थान-स्थान पर भर दी गई है। क्या मजाल कि रोनी सूरतवाले भी इसकी एक-एक पंक्ति पढ़कर हँसते-हँसते लोट-पोट न हो जायँ। एक बार पुस्तक को हाथ में लेकर फिर समाप्त किए बिना उसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। अपने ढंग के इस नए और निराले, हास्य-रस-पूर्ण, सचित्र ४३२ पृष्ठ के ग्रंथ का मूल्य केवल २॥) रक्खा गया है।